

( ६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|
| अत्र प्रपागलंतिकादानम् ....           | .... ८०    |
| वैशाखे मलमासे सति नि० ....            | .... "     |
| वैशाखेसर्वस्नानाशक्तौ ....            | .... "     |
| वैशाखेमलमासेसति....                   | .... "     |
| अत्र दानविशेषः ....                   | .... "     |
| वैशाखव्रतोद्यापनं ....                | .... "     |
| उद्यापनाशक्तौ ....                    | .... "     |
| वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीया ....   | .... "     |
| ५ युगादि ....                         | .... "     |
| अत्रश्राद्धनिर्णयः ....               | .... ८२    |
| अत्र धर्मघटादिदानं मंत्रश्च....       | .... ८३    |
| अत्र रात्रिभोजननिषेधः ....            | .... "     |
| वैशाखे मलमासेसति ....                 | .... "     |
| अत्रैवयुगादिःकार्यः ....              | .... "     |
| अत्र श्राद्धाकरणेप्रायश्चित्तं ....   | .... ८४    |
| अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम् ....      | .... "     |
| कुयमेव परशुरामजयंती ....              | .... "     |
| वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः .... | .... "     |
| वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषः ....   | .... ८५    |
| वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती....    | .... "     |
| वैशाखशुक्लपौर्णिमास्यां विशेषः ....   | .... "     |
| कृष्णाजिनदानम् ....                   | .... "     |

इति वैशाखः ।

## अथ ज्येष्ठमासः ।

|                                 |         |
|---------------------------------|---------|
| संक्रान्तिः ....                | .... ८७ |
| शुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम् .... | .... "  |
| शुक्लदशमी दशहरा ....            | .... "  |
| मलमासे सति ....                 | .... "  |
| विशेषः काशीखंडे ....            | .... "  |
| कैकादशी निर्जला ....            | .... ८८ |

| विषयाः                                   | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------------|------------|
| ज्येष्ठशुक्लपौर्णिमास्यांसावित्री व्रतम् | ८९         |
| इयं मन्वादिः ....                        | .... "     |
| इति ज्येष्ठमासः ।                        |            |
| अथाषाढः ।                                |            |
| मिथुनसंक्रान्तिः ....                    | .... ९०    |
| आषाढशुक्लद्वितीयायां दोलोत्सवः ....      | .... "     |
| आषाढशुक्लदशमी पौर्णिमासी च               |            |
| मन्वादि ....                             | .... ९१    |
| आषाढशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः         | .... "     |
| अत्रैव विष्णुशयनोत्सवः ....              | .... "     |
| आषाढशुक्लैकादशी ....                     | .... "     |
| अत्रैव चातुर्मास्यारंभः ....             | .... "     |
| व्रतग्रहणमंत्रः ....                     | .... ९३    |
| चातुर्मास्ये वर्ज्यपदार्थाः ....         | .... "     |
| चातुर्मास्यव्रतसमाप्तौ दानानि            | .... ९६    |
| अत्र तप्तमुद्राधारणम् ....               | .... "     |
| आषाढशुक्लपौर्णिमास्यां कोकिला-           |            |
| व्रतम् ....                              | .... ९७    |
| अत्रैव शिवशयनोत्सवविधिः ....             | .... "     |
| अत्रैव व्यासपूजा ....                    | .... "     |

इत्याषाढमासः ।

## अथ श्रावणमासः ।

|                               |         |
|-------------------------------|---------|
| कर्कसंक्रान्तिः ....          | .... ९८ |
| कर्के केशनिकृंतनवर्ज्यम् .... | .... "  |
| नदीनां रजोदोषः ....           | .... "  |
| महानद्यः ....                 | .... ९९ |
| सप्तनदाः ....                 | .... "  |
| कुत्रचिद्रजोदोषाभावः ....     | .... "  |



## अनुक्रमणिका ।

( ३ )

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                              | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|-------------------------------------|------------|
| सूतकादौ निर्णयः ....                  | २५         | एकादशी नित्यकाम्योपवासनिषेधे        |            |
| जाताशौचे निर्णयः ....                 | "          | फलाहाराभ्यनुज्ञानिर्णयः ....        | ३२         |
| मृताशौचे निर्णयः ....                 | "          | दशमीवेधे निर्णयः ....               | "          |
| क्षतजाशौचे निर्णयः ....               | "          | एकादशीव्रतोपबुक्तधर्माः ....        | ३९         |
| गर्भिण्यादीनां व्रते प्रतिनिषेधः .... | "          | एकादशीव्रतेऽधिकारिणः ....           | "          |
| पूर्वसंकल्पितव्रते ....               | "          | एकादशीव्रताशक्तौ ....               | "          |
| रजस्वलासु ....                        | "          | एकादशीव्रताकरणे प्रायश्चित्तम् .... | "          |
| प्रतिनिधयः ....                       | "          | काम्यव्रतविधि ....                  | "          |
| स्त्रीशूद्रयोर्व्रतादौ निषेधः ....    | २६         | दशमीनियमः ....                      | ४०         |
| ब्राह्मणस्य हीनवर्णकर्मकरणे निषेधः    | "          | व्रतघ्नानि तस्य प्रायश्चित्तम्      | ४०         |
| कुत्रचित्प्रतिनिधिनिषेधः ....         | "          | एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ ....      | "          |
| व्रतादिसंनिपाते ....                  | "          | व्रतघ्नानि ....                     | ४१         |
| शिवरात्रौ प्रातःपारणम् ....           | २७         | सर्वमतेषु नियमः ....                | "          |
| भूताष्टम्यादौ दिवाभोजन निषेधः         | "          | उपवाससंकल्पः ....                   | २१         |
| संक्रान्त्यादौ रात्रिभोजननिषेधः ....  | "          | द्वादश्यां व्रतनिवेदनमन्त्रः ....   | ४२         |
| चान्द्रायणे एकादश्यां भोजनं कार्यम्   | "          | द्वादश्यां वर्ज्यपदार्थाः ....      | "          |
| प्रतिपदादितिथिनिर्णयः ....            | "          | आशौचे द्वादशीव्रतम् ....            | २३         |
| सर्वतिथिषु वर्ज्यानि ....             | "          | रजस्वलाया एकादशी ....               | "          |
| द्वितीयानिर्णयः ....                  | २८         | अथ द्वादशीनिर्णयः ....              | ४१         |
| तृतीयानिर्णयः ....                    | "          | आह्निकापकर्षः ....                  | २६         |
| चतुर्थीनिर्णयः ....                   | २९         | प्रदोषादिसंकटे निर्णयः ....         | १२         |
| पञ्चमीनिर्णयः ....                    | "          | हरिवासरलक्षणम् ....                 | "          |
| षष्ठीनिर्णयः ....                     | "          | उपवासातिक्रमे ....                  | १८         |
| सप्तमीनिर्णयः ....                    | "          | द्वादशीनिर्णयः ....                 | "          |
| अष्टमीनिर्णयः ....                    | ३०         | त्रयोदशीनिर्णयः ....                | "          |
| नवमीनिर्णयः ....                      | "          | प्रदोषव्रतम् ....                   | १८७        |
| द्वादशीनिर्णयः तत्रबुधाष्टमी          | "          | चतुर्दशीनिर्णयः ....                | "          |
| त्रयोदशीनिर्णयः ....                  | "          | पूर्णिमामावास्यानिर्णयः ....        | "          |
| चतुर्दशीनिर्णयः ....                  | "          | अमायां सोमवारादि ....               | "          |
| एकादशीनिर्णयः ....                    | "          | योगे संयोगलक्षणो व्यतीपातः ....     | १३०        |



| विषयाः                              | पृष्ठांकाः | विषयाः                                      | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------|------------|---------------------------------------------|------------|
| अथेष्टिकालः ....                    | ४५         | वेधे भोजनादिप्रायश्चित्तम् ....             | ५५         |
| अमायां विशेषः ....                  | ४६         | ग्रहणकाले भोजनेप्रायः ....                  | ५५         |
| मलमासादौ प्रथमारम्भनिर्णयः ....     | ४७         | उपवासो ग्रहणे कैः कार्यः ....               | ५६         |
| अथ विकृतिः ....                     | ५१         | पुत्रवत् उपवासनिषेधः ....                   | ५१         |
| पशुसोमयागकालाः ....                 | ५१         | ग्रहणे चूडामणियोगे ....                     | ५१         |
| आधानकालाः ....                      | ४८         | स्नानादिकालनिर्णयः ....                     | ५१         |
| आधाननक्षत्राणि ....                 | ५१         | मुक्तिस्नानाकरणे दोषः ....                  | ५१         |
| अमावास्या श्राद्धकालः ....          | ४९         | ग्रहणस्नानेतीर्थादौविशेषः ....              | ५७         |
| पिण्डपितृतृयज्ञकालः ....            | ५०         | उष्णोदकस्नाने तारतम्यम् ....                | ५१         |
| पिण्डपितृतृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तम् | ५२         | तीर्थविशेषे दानविशेषः ....                  | ५१         |
| वैश्वदेवाकरणे प्रायश्चित्तम् ....   | ५१         | ग्रहणे श्राद्धविधिः ....                    | ५१         |
| पतितान्नभोजने प्रायश्चित्तम् ....   | ५१         | ग्रहणे श्राद्धभोजने दोषः ....               | ५८         |
| निरग्निकस्यामानिर्णयः ....          | ५१         | सूतके ग्रहणे च कर्तव्यविशेषः ....           | ५१         |
| साग्निकस्यामानिर्णयः ....           | ५१         | रजस्वलास्नानम् ....                         | ५१         |
| अनुपनीतानां शूदाणां चामश्राद्धानि   | ५३         | रात्रावपि श्राद्धानि ....                   | ५१         |
| श्राद्धान्तरसन्निपाते ....          | ५१         | चन्द्रग्रहणं दिवाचेत् ....                  | ५९         |
| सिनीवालीलक्षणम् ....                | ५१         | ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धे ....              | ५१         |
| कुहूलक्षणम् ....                    | ५१         | तत्रमन्त्रप्राप्तौ दीक्षाकालः ....          | ५१         |
| कुतुपकाललक्षणम् ....                | ५१         | जन्मराश्यादौ ग्रहणम् ....                   | ५१         |
| लादानम् ....                        | ५१         | ग्रहणे इष्टानिष्टफलम् ....                  | ६०         |
| माश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तं     | ५४         | नागबिम्बदाने मन्त्रः ....                   | ५१         |
| निर्णयः ....                        | ५१         | अत्र शान्तिरुक्ता ....                      | ५१         |
| निर्णयः ....                        | ५१         | ग्रहणे होमादिकर्तव्यता ....                 | ६१         |
| ग्रहणे विशेषः ....                  | ५१         | होमाशक्तौ चतुर्गुणो जपः ....                | ६२         |
| ग्रस्तोदये ....                     | ५१         | गर्भिण्या ग्रहणावलोकननिषेधः ....            | ५१         |
| सूर्यग्रस्तास्ते ....               | ५१         | मंगलकृत्येषु वेधाविचारः ....                | ५१         |
| सन्ध्याहोमादौ ....                  | ५५         | मन्त्रदीक्षाहोमतर्पणम् ....                 | ५१         |
| छातुराणाम् ....                     | ५१         | कुरुक्षेत्रे प्रतिग्रहे प्रायश्चित्तम् .... | ५१         |
| निषेधः ....                         | ५१         | पूर्वसंकल्पितद्रव्योपग्रहणे विशेषः ....     | ५१         |
| पाचितानां निर्णयः ....              | ५१         | मेघाच्छादने अन्धादीनाम् ....                | ६३         |

इति ग्रहणनिर्णयः ।



## अनुक्रमणिका ।

( ५ )

| विषयाः                     | पृष्ठांकाः | विषयाः                                     | पृष्ठांकाः |
|----------------------------|------------|--------------------------------------------|------------|
| अथ समुद्रस्नानम् ....      | ६५         | चैत्रशुक्लपंचमी कल्पादिः ....              | ७१         |
| भौमभृगुवारस्नाननिषेधः .... | "          | चैत्रशुक्लपंचम्यां लक्ष्मीपूजनम् ....      | "          |
| अथ पर्वणि स्नानं ....      | "          | चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः .... | ७२         |
| समुद्रस्नानविधिः ....      | ६६         | अत्रैव भवानीयात्रा....                     | "          |
| समुद्रार्घ्यमंत्रः ....    | "          | तत्रैवाशोककलिकाप्राशनं ....                | "          |
| समुद्रतर्पणम् ....         | "          | चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी....                 | "          |

इति प्रथमपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

## अथ द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

|                                         |    |                                        |    |
|-----------------------------------------|----|----------------------------------------|----|
| • तत्रादौ तिथिकृत्ये विवाहादौ च शुक्ल-  |    | आगमोक्तदीक्षावतां दमनारोपणविधिः ....   | "  |
| कृष्णमासादिनिर्णयः ....                 | ६८ | चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् ....    | ७७ |
| मीनसंक्रान्तिः ....                     | "  | चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वाग्राह्या .... | "  |
| चैत्रशुक्लप्रतिपत्संवत्सरारम्भः ....    | "  | चैत्रशुक्लपौर्णमासी ....               | ७८ |
| अधिकश्चेत्तदनिर्णयः ....                | "  | अत्र चित्रवस्त्रदानस्नानदानश्रा-       |    |
| अत्र तैलाभ्यंगः ....                    | ६९ | द्धाद्युक्तम्....                      | "  |
| अत्र नवरात्रारंभः ....                  | "  | अत्रैव सर्वदेवानां दमनपूजनमुक्तम्      |    |
| प्रपादानम् ....                         | "  | इयंमन्वादिरपि ....                     | "  |
| प्रत्यहं धर्मकुंभदानम् ....             | "  | चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसं-     |    |
| चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीदोलोत्सवः....   | "  | ज्ञयोगः ....                           | "  |
| अत्र सौभाग्यशयनव्रतम् ....              | "  | चैत्रकृष्णचतुर्दश्यांस्नानम् ....      | "  |
| इयं मन्वादिरपि ....                     | "  | इति चैत्रमासः ।                        |    |
| अत्रैव प्रसंगात्सर्वमन्वादिनिर्णयः .... | "  | अथ वैशाखमासः ।                         |    |
| अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये ....        | ७० | मेषसंक्रान्तिः....                     | "  |
| मलमासेपि मन्वादिश्राद्धमुक्तं ....      | "  | धर्मघटदानम् ....                       | "  |
| तत्र कर्तव्यतानिर्णयः ....              | "  | अथ वैशाखस्नानम्....                    | "  |
| अकरणे प्रायश्चित्तम् ....               | "  | तीर्थनामाज्ञाने ....                   | "  |
| चैत्रशुक्लतृतीया मत्स्यजयंती ....       | "  | तुलस्यादिपुष्पैर्विष्णुपूजा ....       | "  |
| अत्रैव दशावतारजयंत्यः ....              | "  | अत्राश्वत्थसेचनादि ....                | "  |



( ६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|
| अत्र मपागलंतिकादानम् ....             | ८०         |
| वैशाखे मलमासे सति नि० ....            | "          |
| वैशाखेसर्वस्नानाशकौ ....              | "          |
| वैशाखेमलमासेसति....                   | "          |
| अत्र दानविशेषः ....                   | "          |
| वैशाखत्रतोद्यापनं ....                | "          |
| उद्यापनाशकौ ....                      | "          |
| वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीया ....   | "          |
| इयं युगादि ....                       | "          |
| अत्रश्राद्धनिर्णयः ....               | ८२         |
| अत्र धर्मघटादिदानं मंत्रश्च....       | ८३         |
| अत्र रात्रिभोजननिषेधः ....            | "          |
| वैशाखे मलमासेसति ....                 | "          |
| अत्रैवयुगादिःकार्यः ....              | "          |
| अत्र श्राद्धाकरणेप्रायश्चित्तं ....   | ८४         |
| अत्र समुद्रस्नानं मशस्तम् ....        | "          |
| अत्रैव परशुरामजयंती ....              | "          |
| वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः .... | "          |
| वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषः ....   | ८५         |
| वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती....    | "          |
| वैशाखशुक्लपौर्णिमास्यां विशेषः ....   | "          |
| कृष्णाजिनदानम् ....                   | "          |

इति वैशाखः ।

## अथ ज्येष्ठमासः ।

|                                 |    |
|---------------------------------|----|
| अत्र संक्रान्तिः ....           | ८७ |
| शुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम् .... | "  |
| शुक्लदशमी दशहरा ....            | "  |
| मलमासे सति ....                 | "  |
| विशेषः काशीखंडे ....            | "  |
| कैकादशी निर्जला ....            | ८८ |

| विषयाः                                        | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------------------|------------|
| ज्येष्ठशुक्लपौर्णिमास्यांसावित्री व्रतम् .... | ८९         |
| इयं मन्वादिः ....                             | "          |
| इति ज्येष्ठमासः ।                             |            |

## अथाषाढः ।

|                                       |    |
|---------------------------------------|----|
| मिथुनसंक्रान्तिः ....                 | ९० |
| आषाढशुक्लद्वितीयायां दोलोत्सवः ....   | "  |
| आषाढशुक्लदशमी पौर्णिमासी च            |    |
| मन्वादि ....                          | ९१ |
| आषाढशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः .... | "  |
| अत्रैव विष्णुशयनोत्सवः ....           | "  |
| आषाढशुक्लैकादशी ....                  | "  |
| अत्रैव चातुर्मास्यारंभः ....          | "  |
| व्रतग्रहणमंत्रः ....                  | ९३ |
| चातुर्मास्ये वर्ज्यपदार्थाः ....      | "  |
| चातुर्मास्यव्रतसमाप्तौ दानानि ....    | ९६ |
| अत्र तप्तमुद्राधारणम् ....            | "  |
| आषाढशुक्लपौर्णिमास्यां कोकिला-        |    |
| व्रतम् ....                           | ९७ |
| अत्रैव शिवशयनोत्सवविधिः ....          | "  |
| अत्रैव व्यासपूजा ....                 | "  |
| इत्याषाढमासः ।                        |    |

## अथ श्रावणमासः ।

|                               |    |
|-------------------------------|----|
| अत्र संक्रान्तिः ....         | ९८ |
| कर्कसंक्रान्तिः ....          | ९८ |
| कर्के केशनिकृंतनवर्ज्यम् .... | "  |
| नदीनां रजोदोषः ....           | "  |
| महानद्यः ....                 | ९९ |
| सप्तनदाः ....                 | "  |
| कुत्रचिद्रजोदोषाभावः ....     | "  |



## अनुक्रमणिका ।

( ७ )

| विषयाः                                     | पृष्ठांकाः | विषयाः                                | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------------|------------|---------------------------------------|------------|
| श्रावणशुक्लतृतीयामधुसूता ....              | ९९         | भाद्रकृष्णसप्तमी शीतला० ....          | १११        |
| श्रावणशुक्लचतुर्थी मातृविद्धाग्राह्या .... | १००        | भाद्रकृष्णाष्टमी जन्माष्टमी ....      | "          |
| श्रावणशुक्लपंचमी नागपंचमी ....             | "          | जन्माष्टमीपारणानिर्णयः....            | ११७        |
| अत्र विशेषो हेमाद्रौ ....                  | "          | अष्टम्यां पूजाविधिः ....              | ११८        |
| श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिघृतम् ....        | "          | भाद्रपदामावास्यायां कुशग्रहणम्        | ११९        |
| अस्यामेव विष्णोः पवित्रारोपणम्             | "          | भाद्रशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम्   | "          |
| शिवपवित्रारोपणम् ....                      | "          | भाद्रशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी अत्रैव   | "          |
| देवतापरत्वेन पवित्रारोपणम् ....            | "          | सिद्धिविनायकव्रतम्....                | "          |
| पवित्रारोपणे गौणकालः....                   | "          | अत्र चंद्रदर्शनं निषिद्धम् ....       | १२०        |
| पवित्रनिर्माणप्रकारः ....                  | "          | भाद्रशुक्लपंचमी ऋषिपंचमी ....         | "          |
| पवित्रारोपणेऽधिकारिणः....                  | १०१        | भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी ....       | "          |
| पवित्रारोपणविधिः ....                      | "          | भाद्रशुक्लसप्तमी अमुकाभरणसप्तमी       | "          |
| पवित्रारोपणाकरणे प्रायश्चित्तम् ....       | "          | भाद्रशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी ....     | १२१        |
| श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ....         | "          | अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता ....          | १२२        |
| अथोपाकर्मनिर्णयः ....                      | "          | भाद्रशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः.... | "          |
| उत्सर्जननिर्णयः ....                       | १०८        | अत्र परिवर्तनोत्सवः ....              | १२३        |
| श्रावणपौर्णमास्यां रक्षाबंधनमुक्तम्        | १०९        | अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनम् ....         | "          |
| अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः ....               | "          | इयमेव श्रावणद्वादशी ....              | "          |
| अस्यामेव श्रावणाकर्म ....                  | ११०        | अस्यामेव द्वादश्यां वामनोत्पत्तिः     | १२६        |
| श्रावणकृष्णद्वितीयायामशून्यव्रतम्          | "          | अत्रैव दुग्धव्रतम्....                | "          |
| इति श्रावणः ।                              |            | भाद्रपदचतुर्दश्यामनंतव्रतम्           | १२७        |
| अथ भाद्रपदमासः ।                           |            | अथागस्त्यार्घ्यम्....                 | "          |
| सिंहसंक्रांतिः ....                        | ११०        | भाद्रशुक्लपौर्णमास्यायां नांदाः       | "          |
| सिंहे गोप्रसवशान्तिः ....                  | "          | श्राद्धम् ....                        | "          |
| महिष्यादिप्रसवशान्तयः ....                 | "          | इति भाद्रपदः ।                        | "          |
| भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा ....         | "          | अथाश्विनमासः ।                        | "          |
| भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुला ....               | १११        | कन्यासंक्रांतिः ....                  | १३०        |
| अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च ....              | "          | अथ महालयाः ....                       | "          |
| भाद्रकृष्णषष्ठी हलषष्ठी ....               | "          |                                       |            |



( ६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| अत्र मपागलंतिकादानम् ....             | ८०         | ज्येष्ठशुक्लपौर्णमास्यांसावित्री व्रतम् | ८९         |
| वैशाखे मलमासे सति नि० ....            | "          | इयं मन्वादिः ....                       | "          |
| वैशाखेसर्वस्नानाशकौ ....              | "          | इति ज्येष्ठमासः ।                       |            |
| वैशाखेमलमासेसति....                   | "          | अथाषाढः ।                               |            |
| अत्र दानविशेषः ....                   | "          | मिथुनसंक्रान्तिः ....                   | ९०         |
| वैशाखव्रतोद्यापनं ....                | "          | आषाढशुक्लद्वितीयायां दोलोत्सवः ....     | "          |
| उद्यापनाशकौ ....                      | "          | आषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च               |            |
| वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीया ....   | "          | मन्वादि ....                            | ९१         |
| इयं युगादि ....                       | "          | आषाढशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः        | "          |
| अत्रश्राद्धनिर्णयः ....               | ८२         | अत्रैव विष्णुशयनोत्सवः ....             | "          |
| अत्र धर्मघटादिदानं मंत्रश्च....       | ८३         | आषाढशुक्लैकादशी ....                    | "          |
| अत्र रात्रिभोजननिषेधः ....            | "          | अत्रैव चातुर्मास्यारंभः ....            | "          |
| वैशाखे मलमासेसति ....                 | "          | व्रतग्रहणमंत्रः ....                    | ९३         |
| अत्रैवयुगादिःकार्यः ....              | "          | चातुर्मास्ये वर्ज्यपदार्थाः ....        | "          |
| अत्र श्राद्धाकरणेप्रायश्चित्तं ....   | ८४         | चातुर्मास्यव्रतसमाप्तौ दानानि ....      | ९६         |
| अत्र समुद्रस्नानं मशस्तम् ....        | "          | अत्र तप्तमुद्राधारणम् ....              | "          |
| उद्यमेव परशुरामजयंती ....             | "          | आषाढशुक्लपौर्णमास्यां कोकिला-           |            |
| वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः .... | "          | व्रतम् ....                             | ९७         |
| वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषः ....   | ८५         | अत्रैव शिवशयनोत्सवविधिः ....            | "          |
| वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती....    | "          | अत्रैव व्यासपूजा ....                   | "          |
| वैशाखशुक्लपौर्णिमास्यां विशेषः ....   | "          | इत्याषाढमासः ।                          |            |
| कृष्णाजिनदानम् ....                   | "          |                                         |            |

इति वैशाखः ।

## अथ ज्येष्ठमासः ।

|                                 |    |                               |    |
|---------------------------------|----|-------------------------------|----|
| संक्रान्तिः ....                | ८७ | कर्कसंक्रान्तिः ....          | ९८ |
| शुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम् .... | "  | कर्के केशनिकृंतनवर्ज्यम् .... | "  |
| शुक्लदशमी दशहरा ....            | "  | नदीनां रजोदोषः ....           | "  |
| मलमासे सति ....                 | "  | महानद्यः ....                 | ९९ |
| विशेषः काशीखंडे ....            | "  | सप्तनदाः ....                 | "  |
| कैकादशी निर्जला ....            | ८८ | कुत्रचिद्रजोदोषाभावः ....     | "  |



## अनुक्रमणिका ।

( ७ )

| विषयाः                                    | पृष्ठांकाः | विषयाः                                | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------------|------------|---------------------------------------|------------|
| श्रावणशुक्लतृतीयामधुस्रवा ....            | ९९         | भाद्रकृष्णसप्तमी शीतला० ....          | १११        |
| श्रावणशुक्लचतुर्थी मातृविद्धाग्राह्या १०० |            | भाद्रकृष्णाष्टमी जन्माष्टमी ....      | "          |
| श्रावणशुक्लपंचमी नागपंचमी ....            | "          | जन्माष्टमीपारणानिर्णयः....            | ११७        |
| अत्र विशेषो हेमाद्रौ ....                 | "          | अष्टम्यां पूजाविधिः ....              | ११८        |
| श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिब्रतम् ....      | "          | भाद्रपदामावास्यायां कुशग्रहणम् ११९    |            |
| अस्यामेव विष्णोः पवित्रारोपणम्            | "          | भाद्रशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम्   | "          |
| शिवपवित्रारोपणम् ....                     | "          | भाद्रशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी अत्रैव   |            |
| देवतापरत्वेन पवित्रारोपणम् ....           | "          | सिद्धिविनायकव्रतम्....                | "          |
| पवित्रारोपणे गौणकालः....                  | "          | अत्र चंद्रदर्शनं निषिद्धम् ....       | १२०        |
| पवित्रनिर्माणप्रकारः ....                 | "          | भाद्रशुक्लपंचमी ऋषिपंचमी ....         | "          |
| पवित्रारोपणेऽधिकारिणः....                 | १०१        | भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी ....       | "          |
| पवित्रारोपणविधिः ....                     | "          | भाद्रशुक्लसप्तमी अमुकाभरणसप्तमी       | "          |
| पवित्रारोपणाकरणे प्रायश्चित्तम् ....      | "          | भाद्रशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी ....     | १२१        |
| श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ....        | "          | अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता ....          | १२२        |
| अथोपाकर्मनिर्णयः ....                     | "          | भाद्रशुक्लद्वादश्यां पारणानिर्णयः.... | "          |
| उत्सर्जननिर्णयः ....                      | १०८        | अत्र परिवर्तनोत्सवः ....              | १२३        |
| श्रावणपौर्णमास्यां रक्षाबंधनमुक्तम् १०९   |            | अत्रैव शकध्वजोत्थापनम् ....           | "          |
| अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः ....              | "          | इयमेव श्रावणद्वादशी ....              | "          |
| अस्यामेव श्रावणाकर्म ....                 | ११०        | अस्यामेव द्वादश्यां वामनोत्पत्तिः १२६ | "          |
| श्रावणकृष्णद्वितीयायामशून्यव्रतम्         | "          | अत्रैव दुग्धव्रतम्....                | "          |
| इति श्रावणः ।                             |            | भाद्रपदचतुर्दश्यामनंतव्रतम् १२७       | "          |
| अथ भाद्रपदमासः ।                          |            | अथागस्त्यार्घ्यम्....                 | "          |
| सिंहसंक्रांतिः ....                       | ११०        | भाद्रशुक्लपौर्णमास्यायां नांदाः       | "          |
| सिंहे गोप्रसवशान्तिः ....                 | "          | श्राद्धम् ....                        | "          |
| महिष्यादिप्रसवशान्तयः ....                | "          | इति भाद्रपदः ।                        | "          |
| भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा ....        | "          | अथाश्विनमासः ।                        | "          |
| भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुला ....              | १११        | कन्यासंक्रांतिः ....                  | १३०        |
| अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च ....             | "          | अथ महालयाः ....                       | "          |
| भाद्रकृष्णपञ्चमी हलषष्ठी ....             | "          |                                       |            |



(८)

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                                                      | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------------------------|------------|-------------------------------------------------------------|------------|
| षोडशमहालयनिर्णयः ....                                 | १३०        | अष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् ....                             | १३८        |
| विधवायाविशेषः ....                                    | १३१        | अथनवम्यामन्वष्टकाश्राद्धं ....                              | "          |
| महालयेवर्ज्यतिथयः ....                                | १३२        | अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः ....                          | १४१        |
| महालयेवर्ज्यनक्षत्रादि ....                           | १३३        | एतदकरणे प्रायश्चित्तम् ....                                 | "          |
| एषामपवादमाह ....                                      | "          | द्वादश्यां संन्यासिनांमहा० ....                             | "          |
| संन्यासिनां महालयः ....                               | "          | मघात्रयोदशी श्राद्धम् ....                                  | "          |
| कालातिक्रमेणैवकालः ....                               | "          | अत्र गजच्छायां ....                                         | "          |
| महालयादिश्राद्धमन्त्रेनैव कार्यव्रत्वा-<br>मेन ....   | १३४        | मघात्रयोदशीमहालयः ....                                      | १४२        |
| महालयेदेवताः ....                                     | "          | गुगादिश्राद्धानां तंत्रेण प्रयोगः ....                      | "          |
| अनेक सापत्नमातृषुपिंडदानं ....                        | "          | आश्विनकृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रादिमु-<br>तानां श्राद्धम् .... | १४३        |
| बहुव्राह्मणाभावे ....                                 | १३५        | अमावास्यायां गजच्छाया ....                                  | १४५        |
| एकोद्दिष्टस्वरूपम् ....                               | "          | आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रश्राद्धम् ....                   | "          |
| अथ पाणिहोमः ....                                      | "          | इति महालयनिर्णयः ।                                          |            |
| अत्र धूरिलोचनौ देवौ ....                              | "          | आश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारंभनि-<br>र्णयः ....            | "          |
| संन्यस्तपितृकेण जीवत्पितृकेणापि<br>महालयः कार्यः .... | "          | अथ पूजाविधिः ....                                           | १५०        |
| जीवत्पितृकेनिषेधः ....                                | "          | कुमारीपूजा ....                                             | १५१        |
| सांक्लिपकश्राद्धस्वरूपम् ....                         | १३६        | नवरात्रे वेदपारायणम् ....                                   | १५२        |
| सकृन्महालये तर्पणनिर्णयः ....                         | "          | सप्तशतीचंडीपाठः ....                                        | "          |
| निषिद्धाग्निर्न तर्पणम् ....                          | "          | प्रतिपदादौ विशेषः ....                                      | १५३        |
| इति निर्णयः ....                                      | "          | स्त्रीकर्तृकव्रते विशेषः ....                               | "          |
| फलम् ....                                             | "          | अत्राशौचे निर्णयः ....                                      | १५४        |
| आकरणेदोषः ....                                        | "          | आश्विनशुक्लपंचम्यामुपांगललिताव-<br>्रतम् ....               | "          |
| आकरणेप्रायश्चित्तम् ....                              | "          | सरस्वत्यावाहनम् ....                                        | "          |
| अथ भरणीश्राद्धनिर्णयः ....                            | "          | आश्विनशुक्लषष्ठ्यांबिल्वाभिमंत्रणम् ....                    | १५५        |
| कपिलाषष्ठीनिर्णयः ....                                | "          | अस्यामेव देवीत्रिरात्रम् ....                               | १५६        |
| अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे ....                    | १३७        | पत्रिकापूजाविधिः ....                                       | "          |
| इयं चंद्रषष्ठी ....                                   | "          |                                                             |            |
| अष्टम्यां माघ्यावर्षश्राद्धम् ....                    | "          |                                                             |            |



## अनुक्रमणिका ।

( ९ )

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                              | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|-------------------------------------|------------|
| देव्यागृहकरणे निर्णयः ....            | .... १५७   | अथ मालाधारणम् ....                  | .... १७७   |
| देव्याः प्रतिमालक्षणम् ....           | .... १५८   | कार्तिके द्विदलादिवर्जनम् ....      | .... १७८   |
| हेमादिप्रतिमाकरणम् ....               | .... १५९   | आकाशदीपनिर्णयः ....                 | .... १७९   |
| प्रतिमाभावे विशेषः ....               | .... १५९   | करकचतुर्थीनिर्णयः ....              | .... १८०   |
| सप्तमीपूजाविधिः ....                  | .... १६०   | कार्तिककृष्णद्वादशी गोवत्सद्वादशी   | .... १८०   |
| अथ शस्त्रादिपूजोक्ता ....             | .... १६१   | द्वादश्यादिषु पंचदिनेषु नीराजनविधिः | .... १८०   |
| दुर्गास्तुतिः ....                    | .... १६२   | कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां यमदीपदानम्  | .... १८१   |
| अथ महाष्टमी ....                      | .... १६२   | कार्तिककृ० चतुर्दशी नरकचतुर्दशी     | .... १८१   |
| इयमेव मूलयुक्तामहानवमी                | .... १६३   | अस्यामभ्यंगस्नाननिर्णयः ....        | .... १८२   |
| पुत्रवतोष्टम्यामुपवासनिषेधः           | .... १६३   | अस्यामेव दीपोत्सवः ....             | .... १८३   |
| लोहाभिसारिकं कर्म ....                | .... १६४   | अस्यां माषपत्रशाकभोजनम् ....        | .... १८४   |
| छत्रादिपूजामंत्राः ....               | .... १६४   | अत्र भीष्मतर्पणमुक्तम् ....         | .... १८५   |
| महानवमीनिर्णयः ....                   | .... १६५   | अथामावास्यायामभ्यंगम् ....          | .... १८६   |
| होमप्रकारः ....                       | .... १६६   | अत्र लक्ष्मीपूजनम् ....             | .... १८७   |
| अथ बलिदानम् ....                      | .... १६७   | अलक्ष्मीनिःसारणम् ....              | .... १८८   |
| अथशतचंडीविधानम् ....                  | .... १६८   | कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोकीडनम् ....  | .... १८९   |
| सहस्रचंडीविधानम् ....                 | .... १६९   | अत्र बलिपूजोक्ता ....               | .... १९०   |
| नवरात्रपारणानिर्णयः ....              | .... १७०   | अत्रैव द्यूतं कर्तव्यम् ....        | .... १९१   |
| स्त्रीणां रजोदर्शने पारणानिर्णयः .... | .... १७१   | अस्यां गोवर्धनपूजोत्सवः ....        | .... १९२   |
| अथ दशमीनिर्णयः ....                   | .... १७२   | अत्र मार्गपालीबंधनम् ....           | .... १९३   |
| इयमेव विजयादशमी ....                  | .... १७३   | अथ यमाद्वितीया ....                 | .... १९४   |
| आश्विनपौर्णमासीनिर्णयः ....           | .... १७४   | अत्र यमपूजनं यमुनास्नानं च          | .... १९५   |
| अस्यां कोजागरीव्रतम् ....             | .... १७५   | अस्यां भगिनीहस्ताद्भोजनम् ....      | .... १९६   |
| अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तम् ....         | .... १७६   | कार्तिकशुक्लनवमी युगादिः ....       | .... १९७   |
| अत्रैवाग्रयणनिर्णयः ....              | .... १७७   | अत्रैव विष्णुत्रिरात्रव्रतम् ....   | .... १९८   |
| अस्याऽकरणे प्रायश्चित्तम् ....        | .... १७८   | का० शुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकव्रतम्  | .... १९९   |
| इत्याश्विनः ।                         |            | कार्तिकशुक्लैकादश्यां पारणानिर्णयः  | .... २००   |
| अथ कार्तिकमासः ।                      |            | अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तम्   | .... २०१   |
| फाल्गुनमासकांतिः ....                 | .... १७९   | यां चातुर्मासस्यव्रतसमाप्तिः ....   | .... २०२   |
| परंभः ....                            | .... १८०   |                                     |            |



( १० )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                           | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------------------|------------|
| अथ वाराहोक्तो बोधिनीविधिः ....                   | १८९        |
| कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च<br>मन्वादिः .... | ११         |
| कार्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी             | ११         |
| अस्यामेव विश्वेश्वरयात्रा ....                   | ११         |
| अथ कार्तिकव्रतोद्यापनम्....                      | १९०        |
| अथ कार्तिकपौर्णिमा ....                          | ११         |
| अत्र योगविशेषः ....                              | ११         |
| अस्यां पद्मकयोगउक्तः ....                        | ११         |
| अस्यामेव मत्स्यावतारः....                        | ११         |
| अत्र त्रिपुरोत्सवउक्तः ....                      | ११         |
| अत्र वृषोत्सर्गउक्तः ....                        | ११         |
| अत्रैव कार्तिकेयदर्शनमुक्तम् ....                | १९१        |
| इति कार्तिकः ।                                   |            |

## अथ मार्गशीर्षमासः ।

|                                                          |     |
|----------------------------------------------------------|-----|
| वृश्चिकसंक्रान्तिः ....                                  | ११  |
| मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी कालाष्टमी ....                     | ११  |
| मन्त्रोपवासनिर्णयः ....                                  | ११  |
| मार्गशीर्षशुक्लपंचमी नागपंचमी ....                       | ११  |
| मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चंपाषष्ठी ....                      | ११  |
| इयमेव स्कदषष्ठी ....                                     | १९२ |
| मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचमो-<br>चनीश्राद्धम् .... | ११  |
| मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः               | ११  |
| इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ....                         | ११  |
| मार्गशीर्षपूर्णिमानंतराष्टमीअन्वष्टका                    | ११  |
| अष्टकानिर्णयः ....                                       | ११  |
| अत्र कामकालौ देवौ ....                                   | १९३ |

| विषयाः                            | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------|------------|
| इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौदेवौ .... | १९३        |
| अष्टकाऽकरणे प्रायश्चित्तम् ....   | ११         |
| मलमासे सति निर्णयः ....           | ११         |
| मार्गशीर्षादौरविवारव्रतम्....     | ११         |
| इति मार्गशीर्षः ।                 |            |

## अथ पौषमासः ।

|                                                         |     |
|---------------------------------------------------------|-----|
| धनुःसंक्रान्ति ....                                     | १९४ |
| पौषशुक्लाष्टम्यां बुधयोगे स्नानदाना-<br>दिकमुक्तम् .... | ११  |
| अत्रैव रोहिण्यार्द्रायामे विशेषः ....                   | ११  |
| पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः ....                            | ११  |
| पौषपौर्णमासीनिर्णयः ....                                | ११  |
| पौषामावास्यायामर्धोदयः ....                             | ११  |
| अत्र दानादिविशेषउक्तः ....                              | १९५ |
| इति पौषः ।                                              |     |

## अथ माघमासः ।

|                                                     |     |
|-----------------------------------------------------|-----|
| माघस्नाननिर्णयः....                                 | ११  |
| अत्राधिकारिणः ....                                  | ११  |
| अशक्तौ उष्णोदकस्नानम् ....                          | ११  |
| माघे मलमासे सति निर्णयः ....                        | १९६ |
| माघस्नाने मंत्रः ....                               | ११  |
| माघस्नानकालः ....                                   | ११  |
| मासपर्यंतं स्नानासंभवे व्यहं स्नान-<br>निर्णयः .... | ११  |
| स्नानोत्तरकृत्यमुक्तम् ....                         | १९८ |
| अत्र भोज्यकंबलादिदानं ....                          | ११  |
| अत्र व्रतोद्यापनमुक्तम् ....                        | ११  |
| मकरसंक्रान्तिः ....                                 | १९९ |



## अनुक्रमिका ।

( १३ )

| विषयाः                                         | पृष्ठांकाः | विषयाः                             | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| तत्रकालनिर्णयः ....                            | ॥          | तत्र भद्रानिर्णयः ....             | ॥          |
| अत्र रात्रावपि श्राद्धमुक्तम् ....             | ॥          | अत्र ग्रहणे निर्णयः ....           | २०९        |
| माघकृष्णचतुर्दश्यां मतर्पणम् ....              | २००        | होलिकापूजामंत्र ....               | ॥          |
| माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी ....                | ॥          | मलमासे सति निर्णयः ....            | २१०        |
| इयमेव कुंदचतुर्थी ....                         | ॥          | इयं मन्वादिः ....                  | ॥          |
| माघशुक्लपंचमी श्रीपंचमी ....                   | ॥          | अत्र गोविंददोलोत्सवः ....          | ॥          |
| माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी ....                   | २०१        | चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसंतोत्सवः .... | ॥          |
| अस्यां स्नानमुक्तम् ....                       | ॥          | होलिकाविभूतिवन्दनम् ....           | ॥          |
| अत्र विधिर्भविष्ये ....                        | ॥          | तत्र मंत्रः ....                   | ॥          |
| दानादिविशेषउक्तः ....                          | ॥          | अस्यामेव चूतकुसुमप्राशनम् ....     | ॥          |
| इयं मन्वादिः ....                              | ॥          | चैत्रामावास्या मन्वादिः ....       | ॥          |
| माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी ....                | २०२        | इति फाल्गुनः ।                     |            |
| अत्र श्राद्धं काम्यमुक्तम् ....                | २०३        | ग्रंथकर्तुरभ्यर्थना ....           | ॥          |
| माघशुक्लद्वादशी भीष्मद्वादशी ....              | ॥          | इति द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।   |            |
| माघपौर्णमासीनिर्णयः ....                       | ॥          | अथ तृतीयपरिच्छेदः ।                |            |
| अत्र स्नानदानाद्युक्तम् ....                   | ॥          | भंगलाचरणम् ....                    | २१२        |
| अस्यां माघ्याष्टकानिर्णयः ....                 | ॥          | आदौर्गर्भाधानम् ....               | ॥          |
| इति माघः ।                                     |            | तत्र प्रथमरजोदर्शने ....           | ॥          |
| अथ फाल्गुनमासः ।                               |            | दुष्टतिथ्यादिफलम् ....             | ॥          |
| कुंभसंक्रांति ....                             | २०४        | दुष्टवारादिफलम् ....               | ॥          |
| फाल्गुनकृष्णाष्टमी सीताष्टमी ....              | ॥          | दुष्टनक्षत्रादिफलम् ....           | ॥          |
| फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रि निर्णयः .... | ॥          | लग्नफलम् ....                      | ॥          |
| शिवरात्रेः पारणानिर्णयः ....                   | २०६        | वस्त्रफलम् ....                    | ॥          |
| इदं व्रतं नित्यं काम्यं चेत्युक्तम् ....       | ॥          | समविषमरक्तर्बिंदुफलम् ....         | ॥          |
| अस्यां व्रतारंभो हेमाद्रौ ....                 | २०७        | प्रभूतदोषेस्त्रीसंसर्गवर्जनम् .... | ॥          |
| शिवरात्रिव्रतोद्यापनम् ....                    | ॥          | योगफलम् ....                       | २१३        |
| माघामावास्या युगादिः ....                      | ॥          | प्रथमतौ दुष्टयोगे शांतिः ....      | ॥          |
| फाल्गुनपौर्णमास्यां होलिकानिर्णयः २०८          |            | प्रथमतौ विशेषः ....                | २१४        |
|                                                |            | द्वितीयाद्युत्तुषु नियममाह ....    | २१५        |



( १० )

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                             | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| प्रथमतोः पूर्वं स्त्रीगमनेनिषेधः .... | ॥          | सीमंतोन्नयनाभावे ....              | ॥          |
| ऋतौ गमनमाह ....                       | ॥          | सीमन्तोन्नयने भोजनप्रायश्चित्तम्   | ॥          |
| अनृतावपिगमनम् ....                    | ॥          | गर्भिणीतत्पतिधर्माः ....           | ॥          |
| ऋतोरत्रिसंख्या ....                   | ॥          | पत्युर्वपनादिनिषेधः ....           | २२२        |
| तत्र निन्दरात्रयः....                 | ॥          | पत्युः श्राद्धभोजननिषेधः ....      | ॥          |
| तत्र तिथ्यादीनाह....                  | ॥          | अथ सूतिकागृहप्रवेशः ....           | २२३        |
| समविषमरात्रिफलम् ....                 | ॥          | अथ जातकर्म ....                    | ॥          |
| चतुर्थ्यादिरात्रिफलानि ....           | ॥          | अत्र वृद्धिश्राद्धे विचारः....     | ॥          |
| रजस्वलायाश्चतुर्थदिनेकर्माधिकारनि०    | ॥          | एतत् जननमरणाशौचेऽपि ....           | ॥          |
| श्राद्धादौ स्त्रीगमने निर्णयः ....    | २१७        | जन्मनि गंडांतादिदुष्टकालस्तद्दानम् | २२४        |
| अनेकभार्यस्य ऋतुगमने ....             | ॥          | अथाश्लेषफलम् ....                  | २२५        |
| ऋतावगमने दोषमाह ....                  | ॥          | अथ ज्येष्ठाफलम्....                | ॥          |
| गर्भाधानांगहोमाकरणे प्रायश्चित्तम्    | ॥          | अथ मूलफलम् ....                    | ॥          |
| अत्र मलमासशुक्रास्तादिनिर्णयः....     | ॥          | अभुक्तमूललक्षणम् ....              | ॥          |
| स्त्रीगमने शुद्धिमाह ....             | २१८        | अथ मूलवृक्षाः ....                 | ॥          |
| रात्रौ रजसि जननाशौचादि निर्णयः        | ॥          | वृषादिपरत्वेनमूलवासस्तत्फलंच       | ॥          |
| सप्तदशदिनात्माक् रजोदर्शने ....       | ॥          | विशाखादिनक्षत्रफलम् ....           | ॥          |
| रोगजे रजसि ....                       | ॥          | चित्रादिफलम् ....                  | २२६        |
| रजस्वलानामन्योन्यस्पर्शं ....         | ॥          | व्यतीपातादिफलम् ....               | ॥          |
| असवर्णानां विशेषः ....                | ॥          | विकृतांगजननेफलम् ....              | ॥          |
| रजस्वलायाश्चांडालादिस्पर्शं ....      | २१९        | सदंतजातेफलम् ....                  | ॥          |
| रजस्वलायानैमित्तिकस्नानम् ....        | ॥          | कृष्णचतुर्दशीजनने ....             | ॥          |
| रजस्वलास्नानम्....                    | ॥          | पित्राद्येकनक्षत्रजाते ....        | ॥          |
| रजसोऽज्ञानेसतिविचारः....              | ॥          | ग्रहजननशांतिः ....                 | २२७        |
| अथ पुंसवनम् ....                      | ॥          | अकालप्रसवादिफलम् ....              | ॥          |
| पुंनक्षत्राणि ....                    | २२०        | युगुलप्रसवादि० ....                | ॥          |
| पुंसवने तिथ्यादि ....                 | ॥          | विकृतप्रसवादि० ....                | ॥          |
| अनवल्लोभनम् ....                      | ॥          | उपरिदंतजनने० ....                  | ॥          |
| अथ सीमन्तोन्नयनम् ....                | ॥          | द्वितीयादिमासे दंतजननेफलम्....     | ॥          |
| प्रतिगर्भं कर्तव्यता ....             | २२१        | तच्छांतिविधिः ....                 | ॥          |

अत्र मकरसंक्रान्तिः .... १९३



## अनुक्रमणि ।

( १३ )

| विषयाः                          | पृष्ठांकाः | विषयाः                          | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------|------------|---------------------------------|------------|
| प्रथमोर्ध्वदंतजननेफ० ....       | .... २२८   | षष्ठाब्दादौमुंडननिषेधः ....     | .... ११    |
| तच्छांतिविधिः ....              | .... ११    | शिखाधारणविचारः ....             | .... २३९   |
| अथ त्रिकजननशान्तिः ....         | .... ११    | स्त्रीशूद्रयोःशिखाविचारः ....   | .... ११    |
| अथ षष्ठीपूजा ....               | .... ११    | अत्र भोजने प्रायश्चित्तम् ....  | .... ११    |
| दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः ....     | .... २२९   | स्त्रीणां संस्कारविचारः ....    | .... ११    |
| स्त्रीशूद्रयोर्दत्तकविचारः .... | .... २३०   | अथ विद्यारंभः ....              | .... ११    |
| शूद्रकर्तृकहोमेविशेषः ....      | .... ११    | अथ धनुर्विद्या ....             | .... २४०   |
| यमलयोर्ज्येष्ठकनिष्ठविचारः .... | .... २३१   | अनुपनीतस्यविशेषः ....           | .... ११    |
| सूतिकास्नानम् ....              | .... ११    | शिशुलक्षणम् ....                | .... ११    |
| अथनामकर्मतत्कालनिर्णयः ....     | .... ११    | अथोपनयनम् ....                  | .... ११    |
| अथ दोलारोहः ....                | .... २३३   | जन्ममासादिनिर्णयः ....          | .... २४१   |
| अथ दुग्धपानम् ....              | .... ११    | उपनयने गुरुबलम् ....            | .... ११    |
| अथ कर्णवेधः ....                | .... ११    | गलग्रहाः ....                   | .... ११    |
| अथ ताम्बूलभक्षणम् ....          | .... २३४   | नैमित्तिकानध्यायाः ....         | .... ११    |
| अथ निष्क्रमणम् ....             | .... ११    | ज्येष्ठमासादिनिर्णयः ....       | .... ११    |
| अथोपवेशनम् ....                 | .... ११    | सोपदास्तिथयः ....               | .... ११    |
| अथान्नप्राशनम् ....             | .... २३५   | प्रदोषस्वरूपम् ....             | .... २४२   |
| अथान्दपूर्तिः ....              | .... ११    | अक्षय्यतृतीयादौउपनयनम् ..       | .... ११    |
| तद्दिनेवर्ज्यम् ....            | .... २३६   | भूकंपादौ ....                   | .... २४३   |
| उष्णोदकस्नानमुक्तम् ....        | .... ११    | शाखाधिपाः ....                  | .... २४४   |
| कटिसूत्रम् ....                 | .... ११    | प्रातःसंध्यागर्जने ....         | .... ११    |
| अथ चौलम् ....                   | .... ११    | पुनरुपनयनम् ....                | .... ११    |
| मातरिगर्भिण्यां निषेधः ....     | .... २३८   | सायंगर्जने शान्तिः ....         | .... ११    |
| ज्वरोत्पत्तौ निषेधः ....        | .... २३८   | उपनयने नक्षत्राणि ....          | .... ११    |
| मातरि रजस्वलायाम् ....          | .... ११    | उपनयनाधिकारिणः ....             | .... ११    |
| संकटे विचारः ....               | .... ११    | षष्ठमूकादीनांविशेषः ....        | .... २४५   |
| मुंडनोत्तरं नाकर्यम् ....       | .... ११    | कुंडगोलकयोर्गायत्र्युपदेशः .... | .... ११    |
| मुंडनमुंडनविचारः ....           | .... ११    | भिक्षायांविचारः ....            | .... ११    |
| सोदरयोःसमानक्रियानिषेधः ....    | .... ११    | संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम् .... | .... ११    |
| आशौचादौ प्राप्ते निर्णयः ....   | .... ११    | अतीतसंस्काराणां युगपत्करणम्     | .... २४६   |



( १० )

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                             | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| प्रथमतोः पूर्वं स्त्रीगमनेनिषेधः .... | ॥          | सीमंतोन्नयनाभावे ....              | ॥          |
| ऋतौ गमनमाह ....                       | ॥          | सीमन्तोन्नयने भोजनप्रायश्चित्तम्   | ॥          |
| अनृतावपिगमनम् ....                    | ॥          | गर्भिणीतत्पतिधर्माः ....           | ॥          |
| ऋतोरत्रिसंख्या ....                   | ॥          | पत्युर्वपनादिनिषेधः ....           | २२२        |
| तत्र निन्दरात्रयः ....                | ॥          | पत्युः श्राद्धभोजननिषेधः ....      | ॥          |
| तत्र तिथ्यादीनाह ....                 | ॥          | अथ सूतिकागृहप्रवेशः ....           | २२३        |
| समविषमरात्रिफलम् ....                 | ॥          | अथ जातकर्म ....                    | ॥          |
| चतुर्थ्यादिरात्रिफलानि ....           | ॥          | अत्र वृद्धिश्राद्धे विचारः ....    | ॥          |
| रजस्वलायाश्चतुर्थदिनेकर्माधिकारानि०   | ॥          | एतत् जननमरणाशौचेऽपि ....           | ॥          |
| श्राद्धादौ स्त्रीगमने निर्णयः ....    | २१७        | जन्मनि गंडांतादिदुष्टकालस्तद्दानम् | २२४        |
| अनेकभार्यस्य ऋतुगमने ....             | ॥          | अथाश्लेषफलम् ....                  | २२५        |
| ऋतावगमने दोषमाह ....                  | ॥          | अथ ज्येष्ठाफलम् ....               | ॥          |
| गर्भाधानांगहोमाकरणे प्रायश्चित्तम्    | ॥          | अथ मूलफलम् ....                    | ॥          |
| अत्र मलमासशुक्रास्तादिनिर्णयः ....    | ॥          | अभुक्तमूलक्षणम् ....               | ॥          |
| स्त्रीगमने शुद्धिमाह ....             | २१८        | अथ मूलवृक्षाः ....                 | ॥          |
| रात्रौ रजसि जननाशौचादि निर्णयः        | ॥          | वृषादिपरत्वेनमूलवासस्तत्फलं च      | ॥          |
| सप्तदशदिनात्माक् रजोदर्शने ....       | ॥          | विशाखादिनक्षत्रफलम् ....           | ॥          |
| रोगजे रजसि ....                       | ॥          | चित्रादिफलम् ....                  | २२६        |
| रजस्वलानामन्योन्यस्पर्शं ....         | ॥          | व्यतीपातादिफलम् ....               | ॥          |
| असवर्णानां विशेषः ....                | ॥          | विकृतांगजननेफलम् ....              | ॥          |
| रजस्वलायाश्चांडालादिस्पर्शं ....      | २१९        | सदंतेजातेफलम् ....                 | ॥          |
| रजस्वलायानैमित्तिकस्नानम् ....        | ॥          | कृष्णचतुर्दशीजनने ....             | ॥          |
| रजस्वलास्नानम् ....                   | ॥          | पित्राद्येकनक्षत्रजाते ....        | ॥          |
| रजसोऽज्ञानेसतिविचारः ....             | ॥          | ग्रहजननशांतिः ....                 | २२७        |
| अथ पुंसवनम् ....                      | ॥          | अकालप्रसवादिफलम् ....              | ॥          |
| पुंनक्षत्राणि ....                    | २२०        | युगुलप्रसवादि० ....                | ॥          |
| पुंसवने तिथ्यादि ....                 | ॥          | विकृतप्रसवादि० ....                | ॥          |
| अनवल्लोभनम् ....                      | ॥          | उपरिदंतजनने० ....                  | ॥          |
| अथ सीमन्तोन्नयनम् ....                | ॥          | द्वितीयादिमासे दंतजननेफलम् ....    | ॥          |
| प्रतिगर्भं कर्तव्यता ....             | २२१        | तच्छांतिविधिः ....                 | ॥          |

अत्र ... १९३ । मकरसंक्रान्तिः ....



## अनुक्रमणि ।

( १३ )

| विषयाः                          | पृष्ठांकाः | विषयाः                          | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------|------------|---------------------------------|------------|
| प्रथमोर्ध्वदंतजननेफ० ....       | .... २२८   | षष्ठाब्दादौमुंडननिषेधः ....     | .... ११    |
| तच्छांतिविधिः ....              | .... ११    | शिखाधारणविचारः ....             | .... २३९   |
| अथ त्रिकजननशान्तिः ....         | .... ११    | स्त्रीशूद्रयोःशिखाविचारः ....   | .... ११    |
| अथ षष्ठीपूजा ....               | .... ११    | अत्र भोजने प्रायश्चित्तम् ....  | .... ११    |
| दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः ....     | .... २२९   | स्त्रीणां संस्कारविचारः ....    | .... ११    |
| स्त्रीशूद्रयोर्दत्तकविचारः .... | .... २३०   | अथ विद्यारंभः ....              | .... ११    |
| शूद्रकर्तृकहोमेविशेषः ....      | .... ११    | अथ धनुर्विद्या ....             | .... २४८   |
| यमलयोर्ज्येष्ठकनिष्ठविचारः .... | .... २३१   | अनुपनीतस्यविशेषः ....           | .... ११    |
| सूतिकास्नानम् ....              | .... ११    | शिगुलक्षणम् ....                | .... ११    |
| अथनामकर्मतत्कालनिर्णयः ....     | .... ११    | अथोपनयनम् ....                  | .... ११    |
| अथ दोलारोहः ....                | .... २३३   | जन्ममासादिनिर्णयः ....          | .... २४१   |
| अथ दुग्धपानम् ....              | .... ११    | उपनयने गुरुबलम् ....            | .... ११    |
| अथ कर्णवेधः ....                | .... ११    | गलग्रहाः ....                   | .... ११    |
| अथ ताम्बूलभक्षणम् ....          | .... २३४   | नैमित्तिकानध्यायाः ....         | .... ११    |
| अथ निष्क्रमणम् ....             | .... ११    | ज्येष्ठमासादिनिर्णयः ....       | .... ११    |
| अथोपवेशनम् ....                 | .... ११    | सोपदास्तिथयः ....               | .... ११    |
| अथान्नप्राशम् ....              | .... २३५   | मदो रूपम् ....                  | .... २४२   |
| अथाब्दपूर्तिः ....              | .... ११    | अक्षय्यमासौपनयनम् ....          | .... ११    |
| तद्दिनेवर्ज्यम् ....            | .... २३६   | भूकंपादौ ....                   | .... २४३   |
| उष्णोदकस्नानमुक्तम् ....        | .... ११    | शाखाधिपाः ....                  | .... २४४   |
| कटिसूत्रम्....                  | .... ११    | प्रातःसंध्यागर्जने ....         | .... ११    |
| अथ चौलम् ....                   | .... ११    | पुनरुपनयनम् ....                | .... ११    |
| मातरिगर्भिण्यां निषेधः ....     | .... २३८   | सायंगर्जने शांतिः....           | .... ११    |
| ज्वरोत्पत्तौ निषेधः ....        | .... २३८   | उपनयने नक्षत्राणि ....          | .... ११    |
| मातरि रजस्वलायाम् ....          | .... ११    | उपनयनाधिकारिणः ....             | .... ११    |
| संकटे विचारः ....               | .... ११    | षण्ढमूकादीनांविशेषः ....        | .... २४५   |
| मंडनोत्तरं नाकर्यम् ....        | .... ११    | कुंडगोलकयोर्गायत्र्युपदेशः .... | .... ११    |
| मंडनमुंडनविचारः ....            | .... ११    | भिक्षायांविचारः ....            | .... ११    |
| सोदरयोःसमानक्रियानिषेधः ....    | .... ११    | संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम्....  | .... ११    |
| आशौचादौ प्राप्ते निर्णयः....    | .... ११    | अतीतसंस्काराणां युगपत्करणम्     | २४६        |



( १०१ )

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                             | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| प्रथमतोः पूर्वं स्त्रीगमनेनिषेधः .... | ॥          | सीमंतोन्नयनाभावे ....              | ॥          |
| ऋतौ गमनमाह ....                       | ॥          | सीमन्तोन्नयने भोजनप्रायश्चित्तम्   | ॥          |
| अनृतावपिगमनम् ....                    | ॥          | गर्भिणीतत्पतिधर्माः ....           | ॥          |
| ऋतोरत्रिसंख्या ....                   | ॥          | पत्युर्वपनादिनिषेधः ....           | २२२        |
| तत्र निन्दरात्रयः ....                | ॥          | पत्युः श्राद्धभोजननिषेधः ....      | ॥          |
| तत्र तिथ्यादीनाह ....                 | ॥          | अथ सूतिकागृहप्रवेशः ....           | २२३        |
| समविषमरात्रिफलम् ....                 | ॥          | अथ जातकर्म ....                    | ॥          |
| चतुर्थ्यादिरात्रिफलानि ....           | ॥          | अत्र वृद्धिश्राद्धे विचारः ....    | ॥          |
| रजस्वलायाश्चतुर्थदिनेकर्माधिकारनि०    | ॥          | एतत् जननमरणाशौचेऽपि ....           | ॥          |
| श्राद्धादौ स्त्रीगमने निर्णयः ....    | २१७        | जन्मनि गंडांतादिदुष्टकालस्तद्दानम् | २२४        |
| अनेकभार्यस्य ऋतुगमने ....             | ॥          | अथाश्लेषफलम् ....                  | २२५        |
| ऋतावगमने दोषमाह ....                  | ॥          | अथ ज्येष्ठाफलम् ....               | ॥          |
| गर्भाधानांगहोमाकरणे प्रायश्चित्तम्    | ॥          | अथ मूलफलम् ....                    | ॥          |
| अत्र मलमासशुक्रास्तादिनिर्णयः ....    | ॥          | अभुक्तमूललक्षणम् ....              | ॥          |
| स्त्रीगमने शुद्धिमाह ....             | २१८        | अथ मूलवृक्षाः ....                 | ॥          |
| रात्रौ रजसि जननाशौचादि निर्णयः        | ॥          | वृषादिपरत्वेनमूलवासस्तत्फलं च      | ॥          |
| सप्तदशदिनात्माक् रजोदर्शने ....       | ॥          | विशाखादिनक्षत्रफलम् ....           | ॥          |
| रोगजे रजसि ....                       | ॥          | चित्रादिफलम् ....                  | २२६        |
| रजस्वलानामन्योन्यस्पर्शं ....         | ॥          | व्यतीपातादिफलम् ....               | ॥          |
| असवर्णानां विशेषः ....                | ॥          | विकृतांगजननेफलम् ....              | ॥          |
| रजस्वलायाश्चांडालादिस्पर्शं ....      | २१९        | सदंतेजातेफलम् ....                 | ॥          |
| रजस्वलायानैमित्तिकस्नानम् ....        | ॥          | कृष्णचतुर्दशीजनने ....             | ॥          |
| रजस्वलास्नानम् ....                   | ॥          | पित्राद्येकनक्षत्रजाते ....        | ॥          |
| रजसोऽज्ञानेसतिविचारः ....             | ॥          | ग्रहजननशांतिः ....                 | २२७        |
| अथ पुंसवनम् ....                      | ॥          | अकालप्रसवादिफलम् ....              | ॥          |
| पुंनक्षत्राणि ....                    | २२०        | युगुलप्रसवादि० ....                | ॥          |
| पुंसवने तिथ्यादि ....                 | ॥          | विकृतप्रसवादि० ....                | ॥          |
| अनवल्लोभनम् ....                      | ॥          | उपरिदंतजनने० ....                  | ॥          |
| अथ सीमन्तोन्नयनम् ....                | ॥          | द्वितीयादिमासे दंतजननेफलम् ....    | ॥          |
| प्रतिगर्भं कर्तव्यता ....             | २२१        | तच्छांतिविधिः ....                 | ॥          |

अत्र मकरसंक्रान्तिः .... १९३ । मकरसंक्रान्तिः ....



## अनुक्रमणि ।

( १३ )

| विषयाः                          | पृष्ठांकाः | विषयाः                         | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------|------------|--------------------------------|------------|
| प्रथमोर्ध्वदंतजननेफ० ....       | .... २२८   | षष्ठाब्दादौमुंडननिषेधः ....    | .... ११    |
| तच्छांतिविधिः ....              | .... ११    | शिखाधारणविचारः ....            | .... २३९   |
| अथ त्रिकजननशान्तिः ....         | .... ११    | स्त्रीशूद्रयोःशिखाविचारः ....  | .... ११    |
| अथ षष्ठीपूजा ....               | .... ११    | अत्र भोजने प्रायश्चित्तम् .... | .... ११    |
| दत्तकपुत्रपरिग्रहविधिः ....     | .... २२९   | स्त्रीणां संस्कारविचारः ....   | .... ११    |
| स्त्रीशूद्रयोर्दत्तकविचारः .... | .... २३०   | अथ विद्यारंभः ....             | .... ११    |
| शूद्रकर्तृकहोमेविशेषः ....      | .... ११    | अथ धनुर्विद्या ....            | .... २४८   |
| यमलयोर्येष्ठकनिष्ठविचारः ....   | .... २३१   | अनुपनीतस्यविशेषः ....          | .... ११    |
| सूतिकास्नानम् ....              | .... ११    | शिशुलक्षणम् ....               | .... ११    |
| अथनामकर्मतत्कालनिर्णयः ....     | .... ११    | अथोपनयनम् ....                 | .... ११    |
| अथ दोलारोहः ....                | .... २३३   | जन्ममासादिनिर्णयः ....         | .... २४१   |
| अथ दुग्धपानम् ....              | .... ११    | उपनयने गुरुबलम् ....           | .... ११    |
| अथ कर्णवेधः ....                | .... ११    | गलग्रहाः ....                  | .... ११    |
| अथ ताम्बूलभक्षणम् ....          | .... २३४   | नैमित्तिकानध्यायाः ....        | .... ११    |
| अथ निष्क्रमणम् ....             | .... ११    | ज्येष्ठमासादिनिर्णयः ....      | .... ११    |
| अथोपवेशनम् ....                 | .... ११    | सोपदास्तिथयः ....              | .... ११    |
| अथान्नप्राशम् ....              | .... २३५   | प्रदोषस्वरूपम् ....            | .... २४२   |
| अथाब्दपूर्तिः ....              | .... ११    | अक्षय्यतृतीयादौउपनयनम् ....    | .... ११    |
| तद्दिनेवर्ज्यम् ....            | .... २३६   | भूकंपादौ ....                  | .... २४३   |
| उष्णोदकस्नानमुक्तम् ....        | .... ११    | शाखाधिपाः ....                 | .... २४४   |
| कटिसूत्रम्....                  | .... ११    | प्रातःसंध्यागर्जने ....        | .... ११    |
| अथ चौलम् ....                   | .... ११    | पुनरुपनयनम् ....               | .... ११    |
| मातरिगर्भिण्यां निषेधः ....     | .... २३८   | सायंगर्जने शांतिः....          | .... ११    |
| ज्वरोत्पत्तौ निषेधः ....        | .... २३८   | उपनयने नक्षत्राणि ....         | .... ११    |
| मातरि रजस्वलायाम् ....          | .... ११    | उपनयनाधिकारिणः ....            | .... ११    |
| संकटे विचारः ....               | .... ११    | षण्ढमूकादीनांविशेषः ....       | .... २४५   |
| मंडनोत्तरं नाकर्यम् ....        | .... ११    | कुंडगोलकयोगाद्युपदेशः ....     | .... ११    |
| मंडनमुंडनविचारः ....            | .... ११    | भिक्षायांविचारः ....           | .... ११    |
| सोदरयोःसमानक्रियानिषेधः ....    | .... ११    | संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम्.... | .... ११    |
| आशौचादौ प्राप्ते निर्णयः....    | .... ११    | अतीतसंस्काराणां युगपत्करणम्    | २४६        |



( १४ )

## अनुक्रमिका ।

| विषयाः                                     | पृष्ठांकाः | विषयाः                               | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------------|------------|--------------------------------------|------------|
| उपनीत्या सहचौलकरणे ....                    | .... २४६   | स्नातकव्रतानि ....                   | .... २५५   |
| उपनयनदिने मध्याह्नसंध्या ....              | .... ॥     | छुरिकाबंधः ....                      | .... ॥     |
| ब्रह्मयज्ञारंभः ....                       | .... ॥     | अथ विवाहः ....                       | .... ॥     |
| अथ ब्रह्मचारिधर्माः ....                   | .... ॥     | सापिण्ड्यनिर्णयः ....                | .... ॥     |
| गुरुच्छिष्टम् ....                         | .... २४७   | त्रिगोत्रात्यये विशेषः ....          | .... २५७   |
| दण्डाः ....                                | .... ॥     | मातुलकन्यापरिणयननिर्णयः ....         | .... २५९   |
| अजिनम् ....                                | .... ॥     | जीवत्पित्रादित्रिकसपिंडाः ....       | .... २६०   |
| यज्ञोपवीतं तन्निर्माणप्रकारश्च ....        | .... ॥     | कन्यासापिण्ड्यम् ....                | .... २६१   |
| यज्ञोपवीतधारणसंख्या ....                   | .... २४८   | सापत्नमातामहकुलेसा० ....             | .... ॥     |
| ब्रह्मचारिधर्मलोपे प्रायश्चित्तम् ....     | .... ॥     | गुरुकुले त्रिपुरुषं सापिण्ड्यम् .... | .... ॥     |
| अग्निकार्यलोपे ....                        | .... २४९   | दत्तकस्यसापिण्ड्यम् ....             | .... ॥     |
| संध्यालोपे ....                            | .... ॥     | गोत्रप्रवरनिर्णयः ....               | .... २६४   |
| स्त्रीसंगे ....                            | .... ॥     | अथदिगोत्राः ....                     | .... २६९   |
| यज्ञोपवीतं विना भोजनादिकरणे ....           | .... ॥     | गोत्राज्ञाने ....                    | .... २७०   |
| प्रायश्चित्तम् ....                        | .... ॥     | मातृगोत्रनिर्णयः ....                | .... ॥     |
| अथ पुनरुपनयनम् ....                        | .... ॥     | सगोत्रविवाहे प्रायश्चित्तम् ....     | .... २७१   |
| तन्निमित्तानिच ....                        | .... ॥     | कन्याविवाहकालः ....                  | .... ॥     |
| मृतवार्तां श्रुत्वा कृतौर्ध्वदेहिकः ....   | .... ॥     | गुर्वर्कबलम् ....                    | .... २७२   |
| पुनरागच्छति चेत् ....                      | .... ॥     | बृहस्पतिशांतिः ....                  | .... २७३   |
| प्रव्रजितः पुनर्गृहस्थाश्रमं कर्तुमि- .... | .... ॥     | सिंहस्थे निर्णयः ....                | .... ॥     |
| च्छतिचेत् ....                             | .... २५०   | शुक्रास्तादिनिमित्ते ....            | .... ॥     |
| पित्रादिव्यतिरेके प्रेतकर्मकरणे ....       | .... ॥     | अथ कन्यादातारः ....                  | .... २७४   |
| एकवेदमधीत्य द्वितीयमध्येतुमिच्छ- ....      | .... ॥     | भ्रातृणांसंस्कृतानामधिकारः ....      | .... ॥     |
| ति चेत् ....                               | .... २५१   | स्वयंवरेनां दीश्राद्धम् ....         | .... ॥     |
| पुनरुपनयने कृत्यविचारः ....                | .... ॥     | मातृदातृत्वेनां दीश्राद्धम् ....     | .... ॥     |
| स्त्रीणामुपनयनम् ....                      | .... ॥     | परकीयकन्यादाने ....                  | .... ॥     |
| अथानध्यायाः ....                           | .... ॥     | गौर्यादिदानफलम् ....                 | .... ॥     |
| महानाम्न्यादिव्रतम् ....                   | .... २५४   | विवाहे मासनिर्णयः ....               | .... ॥     |
| समावर्तनम् ....                            | .... ॥     | ज्येष्ठमासनिर्णयः ....               | .... ॥     |
| घटोः पूर्वमृतानां त्र्यहाशौचं ....         | .... ॥     | दशदोषाः ....                         | .... २७६   |



## अनुक्रमणिका ।

( १५ )

| विषयाः                               | पृष्ठांकाः | विषयाः                                      | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|---------------------------------------------|------------|
| गुरोरतिचारे ....                     | २७६        | अत्र प्रायश्चित्तम् ....                    | २८५        |
| घातचंद्रे विचारः ....                | "          | अन्नादौ विशेषः ....                         | "          |
| अकालवृष्ट्यादौ ....                  | २७७        | धर्मार्थविवाहकरणे ....                      | "          |
| भूकंपादौ ....                        | "          | कन्यागृहे भोजननिषेधः ....                   | "          |
| नांदीश्राद्धे भूकंपादेरपवादः ....    | "          | भोजनकाले नूतनवस्त्रधारणे दोषा-<br>भावः .... | "          |
| कन्यायावैधव्ययोगः ....               | "          | विवाहे स्त्रियासह भोजने ....                | २८६        |
| कुम्भविवाहविधिः ....                 | "          | विवाहे नक्षत्राणि ....                      | "          |
| विष्णुमूर्तिदानम् ....               | २७८        | वर्जवाराः ....                              | "          |
| प्रतिकूलादि ....                     | "          | अनिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ....             | "          |
| पित्रादौ मृते विशेषः ....            | "          | विवाहमंडपनिर्माणप्रकारः ....                | "          |
| तत्र विनायकशांतिः ....               | २७९        | तैलहरिद्रालापनादि ....                      | "          |
| प्रतिकूलापवादः ....                  | "          | विवाहवेदिका ....                            | "          |
| मातूरजोदोषे ....                     | "          | अथ चुल्ल्याद्यर्थं मृत्तिकाहरणम् ....       | "          |
| नांदीश्राद्धोत्तरं मातूरजसि ....     | "          | कन्यावरयोर्वरणं वाग्दानं च ....             | २८७        |
| एकमातृजयोः क्रियानिर्णयः ....        | २८०        | वाग्दानोत्तरं वरभरणे ....                   | "          |
| एतदपवादस्तत्रैव ....                 | "          | विवाहितापि अविध्योनिर्णयः ....              | "          |
| मंडनमुंडनविचारः ....                 | "          | वरस्यान्यजातीयत्वादिदोषसत्त्वे ....         | "          |
| संकटे विशेषः ....                    | २८१        | कलौ पुनरुद्ग्रहनादिनिषेधः ....              | "          |
| विवाहमध्ये श्राद्धपाते ....          | "          | वरस्य देशान्तरगमने ....                     | "          |
| मासिकश्राद्धापकर्षः ....             | "          | शुल्कदाने ....                              | २८८        |
| यमलयोः सहोदरयोश्च विशेषः ....        | "          | अनेकेभ्योपि दत्तायां ....                   | "          |
| भिन्नमातृजयोर्विवाहः ....            | २८२        | अत्र नांदीश्राद्धे विशेषः ....              | "          |
| प्रत्युद्वाहे विधिनिषेधः ....        | "          | अथ घटिकास्थापनम् ....                       | "          |
| कन्यारजोदर्शने ....                  | "          | अथ मधुपर्कः ....                            | २८९        |
| तत्र प्रायश्चित्तम् ....             | "          | अन्यशाखीयनिर्णयः ....                       | "          |
| तद्विवाहे वरस्य प्रायश्चित्तम् ....  | २८३        | विष्टरलक्षणम् ....                          | "          |
| गांधर्वादि विवाहाः ....              | "          | कन्यादानविधिः ....                          | "          |
| बलादपहरणे कन्यायाः ....              | २८४        | गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषः ....                | २९०        |
| विवाहादौ आशौचे प्राप्ते निर्णयः .... | "          | अथ देवकोत्थापनम् ....                       | "          |
| नांदीमुखदिनावधिः ....                | "          |                                             |            |



( १६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                          | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|---------------------------------|------------|
| नांदिश्राद्धोत्तरं मातृकाविसर्जनम्    | ॥          | अथावसथ्याधानम्                  | .... २९५   |
| नपर्यंतं सर्पिडानां निषेधः            | .... २९०   | पितर्युपरतेऽवश्यमग्निग्रहणं     | .... २९६   |
| स्पृष्टास्पृष्टिदोषाभावः              | ....       | अगृहीताग्नेरन्ननिषेधः           | .... ॥     |
| मंगलोत्तरं स्नाननिषेधः                | ....       | ज्येष्ठेभ्रातरिपितरिच सत्यपि    | .... ॥     |
| मंगलानंतरं वर्षपर्यंतं निषिद्धकर्माणि | ॥          | अग्निविनाशानादिनिष्ठस्यदोषाभावः | ॥          |
| विवाहोपनयनोर्ध्वं मुंडननिषेधः         | ....       | गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह           | .... ॥     |
| गोपीचंदनधारणनिषेधः                    | ....       | आधानंज्येष्ठेकृताधानेनकार्यम्   | .... ॥     |
| प्रथमवर्षेवध्वावरपितृगृहे वर्ज्यमासाः | ॥          | परिवेत्रादिनिर्णयः              | .... ॥     |
| विवाहप्रतोर्ध्वं पिंडदानादिनिषेधः     | २९१        | ज्येष्ठे सोदरे तिष्ठति विषेधः   | .... ॥     |
| अथ वधूमवेशः                           | ....       | तदाज्ञया दोषाभावउक्तः           | .... ॥     |
| तत्र मासादिनिर्णयः                    | ....       | देशांतरे विशेषः                 | .... ॥     |
| प्रतिशुक्रविचारः                      | ....       | कृत्वादावप्यदोषः                | .... ॥     |
| गुरुशुक्रास्तादिनिर्णयः               | ....       | अथ शूद्रसंस्काराः               | .... ॥     |
| शस्तानि नक्षत्राणि                    | ....       | इतिसंस्कारप्रकरणम् ।            |            |
| मांगलिके प्राप्ताश्राद्धादिनकार्यम्   | ....       | अथ क्षुद्रकालाः ।               |            |
| अथ द्विरागमनम्                        | ....       | तत्रजलाशयकालः                   | .... २९९   |
| तत्र मासपक्षादिविचारः                 | ....       | कूपदेशास्तत्फलं च               | .... ॥     |
| अथदंपत्योः पुनर्विवाहः                | .... २९२   | उत्सर्गाविधिः                   | .... ३००   |
| तत्र कारणनिर्णयः                      | ....       | कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोषः        | .... ॥     |
| बहुभार्यात्वे ज्येष्ठासाधर्माधिकारः   | ॥          | अथ वृक्षारोपणम्                 | .... ॥     |
| द्वितीयविवाहोमेऽग्निमाह               | ....       | अथमूर्तिप्रतिष्ठा               | .... ॥     |
| अग्निद्वयसंसर्गविधिः                  | .... २९३   | प्रतिष्ठानक्षत्राणि             | .... ॥     |
| द्वितीयविवाहे कालः                    | .... २९४   | मासनिर्णयः                      | .... ॥     |
| तृतीयविवाहे निषेधः                    | ....       | प्रतिष्ठातिथयस्तत्फलानिच        | .... ३०१   |
| अथार्कविवाहः                          | ....       | पुनः शस्तनक्षत्राणि             | .... ॥     |
| तस्य विधिः                            | ....       | वारफलानि                        | .... ॥     |
| अथाग्न्याधानम्                        | ....       | अयनर्तुफलानि                    | .... ॥     |
| तत्रक्षत्राणि                         | ....       | लिंगे विशेषः                    | .... ॥     |
| अग्निहोत्रकालः                        | .... २९५   | प्रतिष्ठाधिकारिणः               | .... ॥     |
| उदितानुदितलक्षणम्                     | ....       |                                 | ॥          |



## अनुक्रमणिका ।

( १७ )

| विषयाः                                    | पृष्ठांकाः | विषयाः                              | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------------|------------|-------------------------------------|------------|
| शूद्रस्थापितलिंगादौ निर्णयः ....          | ११         | विष्ण्वादौपंचामृतैर्महास्नानम् .... | ११         |
| स्त्रीशूद्राणां शिवविष्णुपूजने निषेधः ३०३ |            | चंडादीनां नैवेद्यविभाग ...          | ३१०        |
| प्रतिमादिपूजने दिङ्मियमः ....             | ११         | अथकेशवादिमूर्तीनां लक्षणानि ....    | ११         |
| प्रतिमाद्रव्याणि ....                     | ३०४        | अथलिंगार्चाप्रतिष्ठाप्रयोगः ....    | ३११        |
| गृहे प्रतिमामानम् ...                     | ११         | अथपुनःप्रतिष्ठा ....                | ३१९        |
| प्रतिमानां प्राणप्रतिष्ठादि ....          | ११         | अथजीर्णोद्धारः ....                 | ३२०        |
| लिंगे विशेषः ....                         | ११         | अथमूर्तिप्रासादभेदने ....           | ११         |
| अथ पंचसूत्रीनिर्णयः ....                  | ३०५        | अथतुलसीग्रहणम् ....                 | ३२१        |
| गृहे समविषमलिंगादिपूजनेविचारः ११          |            | पुष्पादेःपर्युषितत्वम् ..           | ११         |
| विष्ण्वाराधने ब्राह्मणाद्यधिकारिणः ३०६    |            | शिवनिर्माल्यनिर्णयः ..              | ३२३        |
| अविभक्तानांपृथग्देवपूजादिनिर्णयः ११       |            | अथकृषिकर्म ..                       | ३२४        |
| क्षत्रियादेःस्पर्शसहितपूजानिषेधः..... ११  |            | अथवस्त्रधारणम् ..                   | ११         |
| सर्ववर्णानां पूज्यप्रतिमाः ....           | ३०७        | अलंकारधारणम् ..                     | ११         |
| ब्राह्मणादिभिः कतिसंख्याः प्रतिमाः        |            | अथ सूचीकर्म ..                      | ३२६        |
| पूजाः ....                                | ११         | अथशय्या ..                          | ११         |
| नवधाप्रतिमाः ....                         | ११         | अथशस्त्रम् ..                       | ११         |
| अधमोत्तमप्रतिमास्तत्फलानिच ....           | ११         | अथस्वामिसेवा ..                     | ११         |
| शिवनाभिशालग्रामलक्षणम् ....               | ११         | गजाश्वदोलाः ..                      | ११         |
| पार्थिवपूजा ....                          | ११         | अथनृत्यम् ..                        | ११         |
| शिवादिदेवालये निषिद्धवाद्यानि.... ३०८     |            | अथराजदर्शनम् ..                     | ११         |
| रुद्रनिर्माल्यस्पर्शनिषेधः ....           | ११         | अथ क्रयविक्रयौ ..                   | ११         |
| पुष्पादिसमर्पणं निर्माल्यनिःसारणं च ११    |            | अथ सेतुबंधनम् ..                    | ११         |
| ✓ शिवपूजनावश्यकत्वम् ....                 | ११         | अथ पशुकृत्यम् ..                    | ३२६        |
| ✓ भस्मत्रिपुंड्रधारणम् ....               | ११         | अथ गजदंतच्छेदः ..                   | ११         |
| ✓ रुद्राक्षधारणे विशेषः ....              | ११         | अथ निःक्षेपऋणमोक्षौ ..              | ११         |
| ✓ रुद्राक्षमहिमा ....                     | ११         | अथ राजमुद्राप्रतिष्ठा ..            | ११         |
| ✓ रुद्राक्षाभिमंत्रणम् ....               | ३०९        | अथ नौकासंघटनवाहनं ..                | ११         |
| ✓ रुद्राक्षधारणे संख्या ....              | ११         | अथ भोगभोगादि ..                     | ११         |
| रुद्राक्षमालादानम्....                    | ११         | अथ इमश्रुकर्म ..                    | ११         |
| शिवस्याभ्यंगादिस्नानम् ....               | ११         | अथेधनसंग्रहः ..                     | ३२७        |



( १८ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                   | पृष्ठांकाः | विषयाः                                    | पृष्ठांकाः |
|--------------------------|------------|-------------------------------------------|------------|
| अथ नवान्नम् ....         | ११         | परगृहेश्राद्धनिषेधः.....                  | ११         |
| नवभोजनपात्रम् ....       | ११         | श्राद्धकालाः ....                         | ३४३        |
| नवपर्णफलादिभक्षणं ..     | ३२८        | नवान्नेश्राद्धनिर्णयः ....                | ११         |
| होमे आहुतिपातः ..        | ११         | शंखपद्मादियोगाः.....                      | ११         |
| अत्र शान्तिः ..          | ११         | कृष्णपक्षश्राद्धम् ....                   | ३४४        |
| अत्रापवादः ..            | ११         | व्यतीपातश्राद्धम्.....                    | ११         |
| ज्वरादौ नक्षत्रफलम् ..   | ११         | तिथिविशेषश्राद्धम् ....                   | ११         |
| अत्र संक्षेपतःशान्तिः .. | ११         | नक्षत्रश्राद्धम् ....                     | ३४५        |
| अथ भेषजम् ..             | ३२९        | श्राद्धाधिकारिणः.....                     | ११         |
| अथारोग्यस्नानम् ..       | ११         | तत्रद्वादशविधपुत्राः ....                 | ११         |
| अथ दंतधावनम् ..          | ११         | अनुपनीतस्याधिकारः ....                    | ३४७        |
| प्रोषितभर्तृकानियमाः ..  | ११         | अपुत्रस्यक्रियादिव्यव० ....               | ३४८        |
| आमलकस्नानम् ..           | ११         | भगिनीतत्सुतयोर्वि० ....                   | ३५०        |
| तैलस्नाननिषेधः ..        | ३३०        | ब्राह्मणस्यान्यवर्णक्रियानिषेधः ....      | ३५१        |
| अथ गृहारंभनिर्णयः ..     | ३३१        | दत्तक्रीतादिपुत्राणां श्राद्धनिर्णयः..... | ११         |
| गृहप्रवेशनिर्णयः ..      | ३३३        | पत्न्यादेःसर्पिडनाधिकारः.....             | ११         |
| कलिवर्ज्यानि ..          | ३३४        | पितुःपुत्रौर्ध्वदेहिककरणे ....            | ३५३        |
|                          |            | भ्रह्मचारिणःश्राद्धाधिकारः ....           | ११         |
|                          |            | अविभक्तानांविशेषः ....                    | ११         |
|                          |            | विभक्तानांविशेषः.....                     | ११         |
|                          |            | दत्तकस्यश्राद्धाधिका० ....                | ११         |
|                          |            | जारजानां विशेषः ....                      | ३५५        |
|                          |            | धर्मार्थश्राद्धकरणे.....                  | ११         |
|                          |            | गयायामपि ....                             | ११         |
|                          |            | स्त्रीशूद्राणाममंत्रकंकर्म ....           | ११         |
|                          |            | शूद्रेणामेनैवश्राद्धकार्यं ....           | ११         |
|                          |            | शूद्राणांगोत्राज्ञाने ....                | ३५७        |
|                          |            | राजकार्यनियुक्तानांश्राद्धनिर्णयः.....    | ११         |
|                          |            | यवनादीनांश्राद्धनिर्णयः ....              | ११         |
|                          |            | इतिश्राद्धाधिकारिनिर्णयः ।                |            |

इति तृतीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

## अथोत्तरार्द्धानुक्रमणिका ।

|                     |     |
|---------------------|-----|
| अथश्राद्धनिर्णयः .. | ३३८ |
| श्राद्धलक्षणम् ..   | ११  |
| श्राद्धभेदाः ..     | ११  |
| श्राद्धदेशाः ..     | ३४० |
| गयाश्राद्धम् ..     | ३४१ |
| गयाशिरःप्रमाणम् ..  | ११  |
| सप्तगोत्राणि ..     | ११  |
| एकोत्तरशतकुलानि ..  | ११  |
| निषिद्धदेशाः ..     | ११  |



## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                              | पृष्ठांकाः | विषयाः                                   | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------|------------|------------------------------------------|------------|
| अथ श्राद्धेपितरः ....               | ३५८        | तीर्थेषुब्राह्मणविचारः ....              | ११         |
| पितृणांश्राद्धान्नंयथोपतिष्ठति .... | ११         | दैवेपित्र्येचकर्मणिविप्रवि० ....         | ३६६        |
| वसुरुद्रादित्यानांस्वरूपम् ....     | ११         | श्राद्धेविप्रनिमंत्रणम् ....             | ११         |
| ब्राह्मणादिवर्णानांपितरः ....       | ११         | ब्राह्मणादीनानिमंत्रणप्रकारः ....        | ११         |
| केवलपितृपार्वणनिषेधोत्रापवादश्च ३५९ |            | सवर्णेनैवविप्रानिमंत्र्याः ....          | ११         |
| दर्शादौसपत्नीकानानि० ....           | ११         | निमंत्रणेशूद्रनिषेधः ....                | ११         |
| अथ विदवेदेवाः ....                  | ३६०        | श्राद्धेब्राह्मणसंख्या ....              | ११         |
| इष्टिश्राद्धेऋतुदक्षौ ....          | ११         | अशक्तौएकविप्रभोजनेनिर्णयः ....           | ३६७        |
| नांदिश्राद्धेसत्यवसू ....           | ११         | एकविप्रसाग्रेर्विशेषः ....               | ११         |
| नैमित्तिकश्रा० कामकालौ ....         | ११         | सर्वथाविप्रालाभेचटश्रा० ....             | ११         |
| काम्यश्राद्धेधूरिलोचनौ ....         | ११         | तत्रदक्षिणादानेविचारः ....               | ११         |
| पार्वणश्राद्धेपुरूरवाद्वैवौ ....    | ११         | दर्भवटौदर्भग्रहणेवि० ....                | ३६८        |
| श्राद्धत्रिविधम् ....               | ११         | मातृश्राद्धेविप्रालाभे ....              | ११         |
| अथ श्राद्धेविमाः ....               | ११         | लिंगशालग्रामसंन्निधौ श्राद्धकार्यम् .... | ११         |
| तत्र उत्तमाः ....                   | ११         | श्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः ....            | ११         |
| श्राद्धेऽग्निमित्रौवज्र्यौ ....     | ३६१        | निमंत्रितब्राह्मणातिक्रमे ....           | ११         |
| पितृपुत्रौभ्रातरौचव० ....           | ११         | ब्राह्मणेनगृहीतामंत्रणत्यागे ....        | ३६९        |
| अथमध्यमाविमाः ....                  | ११         | कर्तृभोक्तृश्रक्तुगमनादिनिषेधः ....      | ११         |
| अत्रविशेषः ....                     | ३६२        | श्राद्धभोजनेप्रायश्चित्तम् ....          | ३७०        |
| अथवज्र्याविमाः ....                 | ३६३        | अमायांनिषेधः ....                        | ११         |
| तत्रकांडपृष्ठविप्रलक्षणं ....       | ११         | श्राद्धभोजनेहोमादिनिषेधः ....            | ११         |
| त्रिशंकुबर्बरादिविमाव० ....         | ३६४        | कर्तृभोक्तृदंतधावननिर्णयः ....           | ११         |
| काणकुब्जादयोवज्र्याः ....           | ११         | वनस्पतिगतस्वरूपम् ....                   | ११         |
| द्विर्नग्राययोवज्र्याः ....         | ११         | क्षौरविचारः ....                         | ११         |
| तत्रद्विर्नग्नलक्षणम् ....          | ११         | अशक्तौपुत्रादिप्रतिनिधयः ....            | ३७१        |
| लंबकर्णलक्षणम् ....                 | ११         | स्त्रियानियमाः ....                      | ११         |
| षण्डस्सप्तविधः ....                 | ११         | पिंडदानात्प्राक्गृहेभोजननिषेधः ....      | ११         |
| तप्तमुद्रांकितविप्रनिषेधः ....      | ३६५        | गंधादिधारणनिषेधः ....                    | ११         |
| कुष्ठिकाणादेरपवादः ....             | ११         | अथश्राद्धार्हवस्तुनिर्णयः ....           | ११         |
| गयास्थविप्रप्राशस्त्यम् ....        | ११         | दर्भग्रहणम् ....                         | ११         |



( २० )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                            | पृष्ठांकाः | विषयाः                                          | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------|------------|-------------------------------------------------|------------|
| पवित्रेदर्भसंख्या ....            | ११         | वस्त्रेविशेषः ..                                | ११         |
| पवित्राभावे ....                  | ११         | कर्तृभोक्त्रोरुर्ध्वपुंड्रनिषेधः ..             | ११         |
| दर्भग्रहणेमंत्रः ....             | ३७२        | वामहस्तेदर्भधारणनिषेधः ..                       | ३८७        |
| दशदर्भाः ....                     | ११         | गृहेरंगवलिनिषेधः ..                             | ११         |
| काशादौविशेषः ..                   | ११         | अत्राचाराद्व्यवस्था ..                          | ११         |
| निषिद्धदर्भा ..                   | ११         | सदर्भतिलककरणेनिषेधः ..                          | ११         |
| सुवर्णपवित्रम् ..                 | ११         | श्राद्धारंभकालः ..                              | ११         |
| अथहविः ..                         | ११         | श्राद्धपरिभाषा ..                               | ११         |
| शाकादिवस्तूनि ..                  | ११         | तत्रजानुपातनम् ..                               | ११         |
| श्राद्धेमांसमधुग्रहणं ..          | ३७५        | गोत्रनामोच्चारणनिर्णयः ..                       | ३८८        |
| कलौमांसनिषेधः ..                  | ३७६        | गोत्रस्यापरिज्ञाने ..                           | ११         |
| अत्रदेशाचाराद्व्यवस्थोक्ता ..     | ११         | नामोच्चारणेविशेषः ..                            | ११         |
| क्षीरादौविशेषमाह ..               | ३७७        | पित्रादिनामाज्ञाने ..                           | ११         |
| कालशाकादिग्रहणम् ..               | ११         | स्त्रीणां नामोच्चारणेविशेषः ..                  | ३८९        |
| अथवर्ज्यहविः ..                   | ३७८        | संकल्पादौविभक्तिविचारः ..                       | ११         |
| श्राद्धेजलनिर्णयः ..              | ३७९        | तत्रमातुर्विशेषः ..                             | ११         |
| कुतुपाअष्टविधाउक्ताः ..           | ३८२        | अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेः सव्यापसव्य<br>निर्णयः .. | ११         |
| दौहित्रलक्षणम् ..                 | ११         | सूक्तस्तोत्रजपादौसव्यापसव्य० ..                 | ११         |
| श्राद्धेसप्तपवित्राणि ..          | ११         | आचमनविचारः ..                                   | ३९०        |
| श्राद्धेतिलाः ..                  | ११         | विप्रविसर्जनात्प्राक्दानादिनिषेधः ..            | ११         |
| श्राद्धेवर्ज्यानि ..              | ११         | श्राद्धेनैवेद्यनिर्णयः ..                       | ११         |
| अत्रश्राद्धदिनकृत्यम् ..          | ३८३        | देवाद्यर्चाक्रमः ..                             | ११         |
| श्राद्धदिनेकांजिकादिदानेनिषेधः .. | ११         | श्राद्धेदर्भत्यागविचारः ..                      | ११         |
| पिंडदानात्प्राक्किंचिन्नदेयम् ..  | ११         | श्राद्धेमंत्रादौऊहः ..                          | ११         |
| श्राद्धेपाकाधिकारिणः ..           | ११         | संकल्पात्पूर्वप्रायश्चित्तादिकर्तव्यता ..       | ३९१        |
| पाकभांडानि ..                     | ३८४        | संकल्पविचारः ..                                 | ११         |
| अथपाकाग्निनिर्णयः ..              | ११         | निमंत्रणप्रकारः ..                              | ११         |
| श्राद्धकृत्यनिर्णयः ..            | ३८६        | पाद्यार्थमंडलविचारः ....                        | ३९३        |
| निमंत्रितविप्रस्यकृत्यम् ..       | ११         | तत्रगोभयग्रहणेविचारः ....                       | ११         |
| श्राद्धकर्तृनियमाः ..             | ११         |                                                 |            |



## अनुक्रमणिका ।

( २१ )

| विषयाः                                 | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|----------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| पाद्यविधिः ....                        | ३९३        | देवाज्ञयापित्रर्चा ....                 | ४००        |
| द्विराचमनम् ....                       | "          | तस्यांविशेषः ....                       | "          |
| आसनानि ....                            | "          | तत्रार्घ्यकल्पना ....                   | ४०१        |
| निषिद्धासनानि ....                     | "          | एकब्राह्मणपक्षेअर्घ्यपात्रासादनेनिर्णयः | "          |
| नीवीबंधः ....                          | ३९४        | अर्घ्येसव्यापसव्यम् ....                | "          |
| अथदेवार्चा....                         | "          | अर्घ्यानुमंत्रणादिविशेषः ....           | "          |
| अर्घ्यपात्रनिर्णयः ....                | ३९५        | पित्रादीनामावाहनप्रकारः....             | "          |
| विप्रैकत्वद्वित्वादौअर्घ्यपात्रनिर्णयः | "          | अर्घ्यनिवेदनादि ....                    | ४०२        |
| अर्घ्यपात्रासादनादिवि० ....            | "          | संस्तवशेषविचारः ....                    | ४०३        |
| आवाहनविधिः ....                        | ३९६        | पितृपात्रस्थापननिर्णयः ....             | "          |
| अर्घ्यदानम्....                        | ३९७        | गंधपुष्पादिदानम् ....                   | ४०४        |
| गंधपुष्पाद्यर्चनम् ....                | "          | मण्डलानि ....                           | "          |
| तत्रगंधाः ....                         | "          | श्राद्धेभोजनपात्राणि ....               | "          |
| आसनादिदानेप्रतिवचनम्....               | "          | कांस्यादिभोजनपात्रमानम् ....            | "          |
| विमाणामूर्ध्वपुंड्रादिनिषेधः           | "          | कांस्यपात्रनिषेधः ....                  | ४०५        |
| श्राद्धेयोग्यपुष्पाणि ....             | "          | श्राद्धेपालाशादिपात्राणि ....           | "          |
| अथधूपः ....                            | ३९९        | अभावेकदल्यादीनिग्राह्याणि ....          | "          |
| अथदीपः ....                            | "          | कदलीपात्रनिषेधः ....                    | "          |
| अथवस्त्रम् ....                        | "          | भस्ममर्यादाऽकरणेदोषः ....               | "          |
| यज्ञोपवीतदानम् ....                    | "          | अग्नौकरणनिर्णयः....                     | "          |
| श्राद्धेदीपिकादिदेयानि ....            | "          | अथपाणिहोमनिर्णयः ....                   | ४०७        |
| कंचुकादिदेयम् ....                     | "          | बहुचातिरिक्तानग्निकेनि० ....            | ४०८        |
| स्त्रीणांश्राद्धेसिंदूरादिदेयम्        | "          | तीर्थश्राद्धेपाणिहोमनि० ....            | "          |
| कृष्णवर्णादिनिषेधः ....                | ४००        | अनग्निकस्यपाणिहोमनिर्णयः                | "          |
| यज्ञोपवीतदानावश्यकता ....              | "          | विधुरस्यपाणिहोमनिर्णयः....              | "          |
| कमंडल्वादिपात्रदानम् ....              | "          | देवविमानेकत्वे ....                     | "          |
| उपानच्छत्रादिदानम् ....                | "          | अथ श्राद्धानु ....                      | "          |
| अलंकारादिदानम्....                     | ४२४        | तत्रविमालाभेदर्भवेदुः                   | "          |
| आपदे ....                              | "          | अशक्तौआमश्राद्धम्                       | "          |
| चदानम् ....                            | "          | सव्यनिर्णयः                             | "          |



(२२)

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                            | पृष्ठांकाः | विषयाः                               | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------|------------|--------------------------------------|------------|
| सामेर्विदेशादौपाणिहोमः ....       | .... ४०८   | अश्रवत्सुविप्रेषुगायत्र्यादिसूक्तजपः | ४१४        |
| अग्निदूरभार्ययोःपाणि० ....        | .... ११    | भोजनकालेविप्रनियमाः ....             | .... ११    |
| अथपाणिहोमप्रकारः ....             | .... ४०९   | अपेक्षितायाचनेदोषः ....              | .... ११    |
| तत्रवर्ज्यकर्माणि ....            | .... ११    | पंक्तौपरस्परस्पर्शप्रायश्चित्तम्     | .... ४१५   |
| पाणिहोमेश्रादि ....               | .... ११    | अश्रुपातादिवर्ज्यम्                  | .... ११    |
| पाणिहुतान्नस्यविनियोगः ....       | .... ११    | विप्राणांगुदस्त्रावेप्रायश्चित्तम्   | .... ११    |
| हुतशेषपितृपात्रेषुदेयम् ....      | .... ११    | विप्रवमनेप्रायश्चित्तम्              | .... ११    |
| आपस्तंबानामग्नौकरणम् ....         | .... ४१०   | श्राद्धविघ्नेप्रायश्चित्तादि ....    | .... ११    |
| छंदोगादीनांपाणिहोमः ....          | .... ११    | श्राद्धविघ्नेपुनःश्राद्धम्           | .... ११    |
| अथपरिवेषणम् ....                  | .... ४११   | पिंडदानोत्तरंवांतौ....               | .... ४१६   |
| तच्चोपवीत्यैवदेवपूर्वम् ....      | .... ११    | पिंडदानात्प्राग्वान्तौ               | .... ११    |
| स्वयंभार्ययावापरिवेषणकार्यम् .... | .... ११    | दर्शादौवमनेआमश्राद्धम्               | .... ११    |
| अपवित्रेणैकहस्तेनपरिवेषणनकार्यम्  | .... ११    | श्राद्धविघ्नेपुनरावृत्तिनिर्णयः      | .... ११    |
| आयसादिपात्रेणपरिवेषणेदोषः ....    | .... ११    | तृप्तिप्रश्नादि ....                 | .... ४१७   |
| परिवेषणेपवित्रपात्राणि ....       | .... ४१२   | श्राद्धविशेषप्रश्नभेदः ....          | .... ११    |
| दर्व्याघृतादिदेयम् ....           | .... ११    | विकिरदानमुच्छिष्टपिंडश्च....         | .... ११    |
| दर्व्यान्नोदकदानेनिषेधः ....      | .... ११    | आचमनदाननिर्णयः ....                  | .... ४१८   |
| पंक्त्यांविषमदानेदोषः ....        | .... ११    | हस्तक्षालननिर्णयः....                | .... ११    |
| भोज्यपात्रोतिलनिषेधः ....         | .... ११    | गंडूषादिकरणेकांस्यपात्रवर्ज्यम्      | .... ४१९   |
| हस्तदत्तस्नेहलवणादिभोजनेदोषः .... | .... ११    | अथपिंडदाननिर्णयः ....                | .... ११    |
| घृतपात्रेविशेषः ....              | .... ११    | शाखाभेदेनव्यवस्था ....               | .... ११    |
| अपक्वतैलपक्वचहस्तदत्तग्राह्यम्    | .... ११    | पिंडदानंकुत्रकर्तव्यम्               | .... ११    |
| पात्रालंभननिर्णयः ....            | .... ११    | पिंडदानेकुशादयः ....                 | .... ११    |
| अंगुष्ठानिवेशनेविशेषः ....        | .... ११    | अष्टांगःपिंडः ....                   | .... ४२०   |
| अन्नदानविधिः ....                 | .... ११    | पिंडादौमाषनिषेधः....                 | .... ११    |
| संकल्पादिकर्मक्रमः ....           | .... ११    | पिंडार्थमन्नग्रहणाविचारः ....        | .... ११    |
| असंकल्पितान्नभोजनेनिषेधः ....     | .... ११    | अथपिंडप्रमाणम् ....                  | .... ११    |
| आपोशनेविशेषः ....                 | .... ११    | पाद्यार्थमंडलेपिंडप्रमाणम्           | .... ११    |
| चित्राहुतिनिषेधः ....             | .... ११    | तत्रगोमयग्रहणेविप्रमाणम्             | .... ११    |
| भोजनेलवणादिनपुच्छत                | .... ११    |                                      |            |



## अनुक्रमणिका ।

( २३ )

| विषयाः                                 | पृष्ठांकाः | विषयाः                                      | पृष्ठांकाः |
|----------------------------------------|------------|---------------------------------------------|------------|
| मेतपिंडप्रमाणम् ....                   | ४२०        | तीर्थश्राद्धेतीर्थएवपिंडप्रक्षेपः ....      | ४२५        |
| महालयादौपिंडशब्दप्रयोगः कथं कर्तव्यः ॥ | ॥          | गवादिभ्यः पिंडादेयाः ....                   | ॥          |
| पत्न्यापिंडाः करणीयाः ....             | ॥          | पत्न्यांरोगादियुक्तायाम् ....               | ॥          |
| पित्रादिनामाज्ञानेपिंडदानेऊहः ....     | ४२१        | भक्षणेनिर्णयः ....                          | ॥          |
| पित्रादिपिंडेभ्यः पश्चिमेमात्रादिपिंडा |            | अथ पिंडोपघातेदोषः ....                      | ॥          |
| देयाः ....                             | ॥          | तत्प्रायश्चित्तम् ....                      | ॥          |
| अन्वष्टकादौस्त्राणिपृथक्श्राद्धम् .... | ॥          | पुनःपिंडदाननिर्णयः ....                     | ॥          |
| दर्भमूलेहस्तलेपादिनिर्णयः ....         | ४२२        | अथ पिंडदानेनिषिद्धकालः ....                 | ॥          |
| नीवीविसर्जनम् ....                     | ॥          | विवाहादौकृतेपिंडनिषेधेमाससंख्या ४२६         |            |
| अंजनाभ्यंजने ....                      | ॥          | कृतोद्वाहेनापिपित्रोः पिंडदानं कार्यम् ॥    |            |
| वासोदानादि ....                        | ॥          | पुत्रेप्सुभिर्नैदादितिथ्यादौपिंडावर्ज्याः ॥ |            |
| अथ पिंडपूजा ....                       | ॥          | तदपवादः ....                                | ॥          |
| पिंडानां सर्वान्नैवेद्यं देयम् ....    | ॥          | उच्छिष्टोद्वासननिर्णयः ....                 | ॥          |
| अत्रसव्यापसव्ययोर्विकल्पः ....         | ॥          | श्राद्धोच्छिष्टंशूद्रादिभ्यो न देयम् ....   | ॥          |
| पिंडावघ्राणम् ....                     | ॥          | द्विजोच्छिष्टंभूमौनिखानयेत् .... ४२७        |            |
| पिंडोपस्थानम् ....                     | ॥          | श्राद्धदिनेवैश्वदेवनिर्णयः ....             | ॥          |
| आचातेषु उदकादिदानम् ....               | ॥          | अथ नित्यश्राद्धनिर्णयः .... ४२८             |            |
| द्विजेभ्य आशीर्ग्रहणम् ....            | ४२३        | नित्यश्राद्धेपात्राभावे ....                | ॥          |
| स्वास्तिवाचनात्पात्रचालनं न            |            | नित्यश्राद्धस्यप्रसंगासिद्धिः .... ४२९      |            |
| कार्यम् ....                           | ॥          | श्राद्धेएकादश्यादौभोजननिर्णयः ....          | ॥          |
| पात्रचालनंकेनकार्यम् ....              | ॥          | श्राद्धेकृतेदिवैवभोक्तव्यम् ....            | ॥          |
| स्वास्तिवाचनम् ....                    | ॥          | तद्दिनेपरपाकसेवनेनिषेधः ....                | ॥          |
| अक्षय्योदकदानम् ....                   | ॥          | श्राद्धशेषभोजनस्यक्वचिन्निषेधः ....         | ॥          |
| दक्षिणादानम् ....                      | ॥          | श्राद्धावशिष्टभोजनेनिषेधः ....              | ॥          |
| स्वधावाचनम् ....                       | ॥          | अस्यापवादः .... ४३०                         |            |
| पिंडप्रवाहणम् ....                     | ॥          | श्राद्धकर्त्रातांबूलादिवर्ज्यम् ....        | ॥          |
| विप्रसर्जनम् ....                      | ॥          | श्राद्धदिनेगृहेशूद्रं न भोजयेत् ....        | ॥          |
| विप्रमार्थना ....                      | ४२४        | अथ श्राद्धानुकल्पाः ....                    | ॥          |
| अथ पिंडप्रतिपत्तिः ....                | ॥          | तत्रविप्रालाभेदर्भबटुः ....                 | ॥          |
| अथ पिंडादौ निर्णयः ....                | ॥          | अशक्तौआमश्राद्धम् ....                      | ॥          |



( २४ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                          | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| आमश्राद्धं कुत्र कार्यम् ....                   | ४३०        | आमहेमसंकल्पश्राद्धेषुभो० ...            | ४३६        |
| शूद्रस्यश्राद्धेपक्वनिषेधः ....                 | ४३१        | यत्यादीनांश्राद्धभोजनेनिषेधः ..         | ११         |
| मृताहादौआमश्राद्धंनकार्यम् ....                 | ११         | दर्शादौभोजनेमा०....                     | ११         |
| आमंक्रियत्परिमितंदेयम् ....                     | ११         | अथक्षयाहश्राद्धम् ....                  | ११         |
| आमश्राद्धविधिः ....                             | ११         | तत्स्वरूपम् ....                        | ११         |
| आमश्राद्धेपिंडदाननिर्णयः ....                   | ११         | मृततिथिनिर्णयः ....                     | ११         |
| आमश्राद्धेऊहविचारः ....                         | ४३२        | अत्रचांद्रमानंज्ञेयम् ....              | ११         |
| आमश्राद्धेवर्ज्यकर्माणि ....                    | ११         | मलमासमृतेसावनम् ....                    | ११         |
| शूद्रस्य आमश्राद्धविधिः ....                    | ११         | प्रतिसांवत्सरिकंकेनकार्यम् ....         | ११         |
| आमश्राद्धादेःकालः ....                          | ११         | सांवत्सरिकेऽकरणेदोषः ....               | ४३७        |
| आमाभावेहेमश्राद्धनिर्णयः ....                   | ४३३        | तत्रपार्वणैकोद्दिष्टयोर्विचारः ....     | ११         |
| हेमश्राद्धेपिंडदानपदार्थाः ....                 | ११         | अत्रदेशाचारवंशधर्मव्यवस्था ....         | ११         |
| पिंडदानेविकल्पः ....                            | ११         | संन्यासिनांश्राद्धनिर्णयः ....          | ११         |
| हेमश्राद्धंशूद्रैःकथं कार्यम् ....              | ११         | संग्राममृतानांश्राद्धनिर्णयः ....       | ४३८        |
| हेमश्राद्धेवर्ज्यकर्माणि ....                   | ११         | ज्येष्ठभ्रातुःकनिष्ठेनकर्तव्यम् ....    | ११         |
| हेमश्राद्धे मंत्रोहःकालश्चपूर्ववत् ....         | ११         | कनिष्ठस्य च ज्येष्ठेनैकोद्दिष्टंका०.... | ११         |
| श्राद्धीयस्यहेमादेर्लब्धस्यविनियोगः ....        | ११         | अपुत्रपितृव्यस्यश्राद्धेनि० ....        | ११         |
| आमादौशूद्राल्लब्धेनि० ....                      | ११         | पत्न्याःकर्तृत्वेश्राद्धनि० ....        | ११         |
| शूद्रगृहेक्षिरादिभोजननिषेधः ....                | ११         | अपुत्रमृतानांकिंकायम् ....              | ४३९        |
| शूद्रात्मासान्नादेर्ग्राह्याग्राह्यनिर्णयः .... | ४३४        | एकोद्दिष्टंकेषांकार्यतन्निर्णयः ....    | ११         |
| श्राद्धाशक्तौसांकल्पविधिः ....                  | ११         | अथक्षयाहद्वैधेनिर्णयः ....              | ४४०        |
| सांकल्पविधौवर्ज्यकर्माणि....                    | ११         | तत्रैकोद्दिष्टेतिथिनिर्णयः ....         | ११         |
| मघादिश्राद्धेषुसांकल्पविधिरेव ....              | ११         | पार्वणश्राद्धेतिथिनिर्णयः ....          | ११         |
| विवाहाद्यूर्ध्वसपिण्डानांपिंडनिषेधः ....        | ४३५        | प्रत्याब्दिकश्राद्धेतिथि० ....          | ४४१        |
| अस्यापवादःपूर्वमुक्तः ....                      | ११         | दिवाविघ्नेरात्रावपिश्राद्धम् ....       | ४४२        |
| अनग्रिकादिभिःसांकल्पिक० ....                    | ११         | श्राद्धंविनामृताहातिक्रमेदो० ....       | ११         |
| अशक्तौश्राद्धानुकल्पाः ....                     | ११         | ग्रहणदिनेश्राद्धमाप्तौ ....             | ११         |
| अथश्राद्धभोजनेप्रायश्चित्तम् ....               | ११         | मलमासेप्रत्याब्दिकनिर्णयः ....          | ११         |
| संस्कारेषुभोजनेप्रायश्चित्तानि ....             | ११         | दर्शेवार्षिकंचेत्तन्निर्णयः ....        | ११         |
| नवश्राद्धेकादशाहादौभोजनेमा० ....                | ४३६        | एवंमासिकादिश्राद्धमपि ....              | ११         |



## अनुक्रमणिका ।

( २५ )

| विषयाः                                    | पृष्ठांकाः | विषयाः                                        | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------------|------------|-----------------------------------------------|------------|
| मृताहेवृषोत्सर्गउक्तः ....                | ४४३        | भर्त्राशौचोत्तरमृतौतु ....                    | ४५१        |
| अथशुद्धिश्राद्धनिर्णयः ....               | "          | अन्यसपिंडाशौचमध्येविदेशमृता-                  |            |
| वर्षत्रयपर्यंतं श्राद्धभोजनेनिषेधः ....   | "          | न्वारोहणे ....                                | "          |
| अथक्षयाहाशानेनिर्णयः ....                 | "          | अन्यकालेऽन्यतिथावन्वारोहणे ० ....             | "          |
| श्राद्धविघ्नेनिर्णयः ....                 | ४४४        | सहगमनश्राद्धेपाकनिर्णयः ....                  | "          |
| तत्रनिमंत्रितविप्रस्याशौचेप्राप्ते ० .... | "          | अत्रश्राद्धेसुवासिनीभोजनम् ....               | ४५२        |
| श्राद्धकर्तुराशौचेप्राप्ते ० ....         | "          | श्राद्धसंपातेनिर्णयः ....                     | "          |
| श्राद्धारंभनिर्णयः ....                   | "          | तत्रपित्रोर्मृततित्येकत्वे ....               | "          |
| दातुर्गृहेमरणादौनिर्णयः ....              | "          | पार्वणैकोद्दिष्टयोः संपाते ....               | "          |
| विप्रेषुभुंजानेषुसूतकेप्राप्ते ....       | "          | एककालेमृतानांश्राद्धनिर्णयः ....              | "          |
| दातुर्भोक्तुश्चाशौचेप्राप्ते ....         | ४४५        | एकस्मिन्दिनेऽनेकश्राद्धप्राप्तौकर्तृनि ० .... | "          |
| तत्रभोक्तुरेवप्रायश्चित्तम् ....          | "          | युगपन्नित्यनैमित्तिकदर्शा-                    |            |
| आशौचमध्येश्राद्धं प्राप्तं चेत् ....      | "          | दौप्राप्तेनिर्णयः ....                        | ४५३        |
| दर्शादिनित्यकर्मलोपेऽपवासप्राय ० ....     | "          | अस्यदेवताभेदाऽपवादः ....                      | "          |
| सूतकादिविघ्नंचेच्छाद्धंकदाकर्तव्यम् ....  | "          | अथश्राद्धांगतर्पणम् ....                      | "          |
| अथभार्यारजोदर्शने ....                    | ४४६        | परेद्युस्तर्पणेऽकृतेदोषः ....                 | "          |
| तत्रदर्शश्राद्धनिर्णयः ....               | "          | तिलतर्पणेनिषिद्धकालः ....                     | ४५४        |
| महालययुगादिश्राद्धनिर्णयः ....            | "          | श्राद्धेदिनेनित्यतर्पणेतिलनि ० ....           | "          |
| आब्दिकश्राद्धनिर्णयः ....                 | "          | मृत्युन्देश्राद्धेपरेद्युस्तर्पणमुक्तम् ....  | ४५५        |
| अपुत्रस्यभार्यारजोदर्शने ....             | ४४७        | महालयेपरेद्युस्तर्पणम् ....                   | "          |
| गर्भिणीसूतिकादीनानिर्णयः ....             | "          | अन्वष्टक्येसद्यस्तर्पणम् ....                 | "          |
| अनुपनीतादेःश्राद्धाधिकारः ....            | "          | तीर्थश्राद्धेदर्शवत् ....                     | "          |
| अथान्वारोहणेनिर्णयः ....                  | ४४८        | माध्याह्न्यन्वष्टकादावंतेतर्पणम् ....         | "          |
| एककालेमृतानाम् ....                       | "          | अनेकश्राद्धसंपातेतर्पणनिर्णयः ....            | "          |
| स्वामिसेवकानामेकसमयमरणे ....              | ४५०        | श्राद्धांगतर्पणविधिः ....                     | "          |
| पतिनासहस्रीमरणे ....                      | "          | मन्वाद्यादौतर्पणनिर्णयः ....                  | "          |
| भर्तुराशौचमध्येन्यदिनेस्त्रीमरणे ....     | "          | अथतिलतर्पणनिषेधः ....                         | ४५६        |
| भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे ० ....          | "          | अत्रापवादः ....                               | "          |
| देशान्तरमृतमन्वारोहणे ....                | ४५१        | तिलाभावेतर्पणसुवर्णादि ....                   | "          |
| भर्त्राशौचमध्येपृथक्कचितौवा ....          | "          | अथशुद्धिश्राद्धनिर्णयः ....                   | "          |



( २६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                         | पृष्ठांकाः | विषयाः                                             | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------------------|------------|----------------------------------------------------|------------|
| वृद्धिश्राद्धनिमित्तानि ....                   | ४५६        | विभक्तैः पृथक्सांवत्सरिकं कार्यम् ....             | ४७२        |
| वृषोत्सर्गादौ वृद्धिश्राद्धं वर्ज्यम् ....     | ४५७        | विभक्तानां पित्रोर्वर्षपर्यंतं श्राद्धादिकि-       |            |
| वृद्धिश्राद्धकालमाह ....                       | ॥          | यानिर्णयः ....                                     | ॥          |
| अथान्नाधिकारिणः ....                           | ४६२        | अथतीर्थश्राद्धनिर्णयः ....                         | ॥          |
| जातकर्मादौ वृद्धिश्राद्धनिर्णयः ....           | ॥          | तत्रयात्रायां सपत्नीकेनैव गंतव्यम् ....            | ॥          |
| सायिकस्य जीवत्पितुराधिकारः ....                | ॥          | प्रायश्चित्तार्थं यात्रायां पत्नीरहितो गच्छेत् ४७३ |            |
| समावर्तनादौ वृद्धिश्राद्धनिर्णयः ....          | ॥          | विधवायाः पुत्राद्यनुज्ञा ....                      | ॥          |
| प्रथमविवाहे वृद्धिश्राद्धनिर्णयः ....          | ४६३        | अथतीर्थयात्राविधिः ....                            | ॥          |
| पितुरभावे वृद्धिश्राद्धाधिकारिक्रमः ॥          |            | यात्राकाले वपनविचारः ....                          | ॥          |
| जीवत्पितृकस्य विशेषः ....                      | ॥          | गमनादौ घृतश्राद्धनिर्णयः ....                      | ॥          |
| कर्मागवृद्धिश्राद्धयोर्निर्णयः ....            | ४६४        | तीर्थात्प्रत्यागमने घृतश्राद्धम् ....              | ॥          |
| वृद्धिश्राद्धेऽतिकर्तव्यता ....                | ॥          | श्राद्धोत्तरंगमनप्रकारः ....                       | ४७४        |
| वृद्धौ कुशस्थाने दूर्वाः ....                  | ॥          | अन्यद्वारा यात्राकरणे फलम् ....                    | ॥          |
| वृद्धिश्राद्धे विप्रसंख्या ....                | ॥          | यात्रामध्ये आशौचे रजसिवाप्राप्ते ....              | ॥          |
| अत्र विमालाभे स्त्रियो भोज्याः ....            | ॥          | यात्रामध्येऽन्यतीर्थप्राप्तौ ....                  | ॥          |
| वृद्धिश्राद्धे पिंडाग्नौ करणे निर्णयः ....     | ४६५        | वाणिज्याद्यर्थं गते तीर्थप्राप्तौ ....             | ॥          |
| अत्र संकल्पे विशेषः ....                       | ॥          | मार्गान्तरे तीर्थप्राप्तौ ....                     | ॥          |
| वृद्धिश्राद्धप्रयोगक्रमः ....                  | ॥          | यात्रायां द्विर्भोजने निर्णयः ....                 | ॥          |
| वृद्धिश्राद्धे वैश्वदेवनिर्णयः ....            | ४६६        | यानादिना यात्राकरणे ....                           | ॥          |
| अत्र श्राद्धांगतर्पणं वर्ज्यम् ....            | ॥          | मार्गांतरानदीप्राप्तौ ....                         | ॥          |
| अथ जीवत्पितृकवृद्धिश्राद्धनिर्णयः ....         | ४६८        | तीर्थप्राप्तौ लुंठनं कार्यम् ....                  | ॥          |
| अथ पितामहे जीवतिसति ....                       | ४६९        | तीर्थप्रार्थनामंत्राः ....                         | ॥          |
| जीवत्पित्राऽन्वष्टाकादौ श्राद्धं न कार्यम् ४७० |            | तीर्थे आवाहनादिकर्मक्रमः ....                      | ॥          |
| अथ विभक्ता विभक्तनिर्णयः ....                  | ॥          | तीर्थे उपवासमुंडननिर्णयः ....                      | ४७५        |
| अविभक्तानां वैश्वदेवनिर्णयः ....               | ४७१        | कुरुक्षेत्रादिषु मुंडनोपवासनिषेधः ....             | ॥          |
| विभक्ता विभक्तानां ब्रह्मयज्ञादिनि ४७२         |            | दशमासोर्ध्वं पुनस्तीर्थप्राप्तौ ....               | ॥          |
| देवपूजायां विकल्पः ....                        | ॥          | तीर्थे निषिद्धदिने पिक्षौरमावश्यकम् ॥              |            |
| दर्शग्रहणादि श्राद्धादौ निर्णयः ....           | ॥          | वपने दिङ्मयम् ....                                 | ॥          |
| अविभक्तानां युगपत्तीर्थप्राप्तौ निर्णयः ॥      |            | सधवानां प्रयागे वपननिर्णयः ....                    | ॥          |
| काम्यदानादि अनुमत्या ....                      | ॥          | यनीनां तीर्थे वपननिर्णयः ....                      | ॥          |



## अनुक्रमणिका ।

( २७ )

| विषयाः                                  | पृष्ठांकाः | विषयाः                                   | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------------|------------|------------------------------------------|------------|
| जीवत्पितृकस्यवपननिर्णयः                 | .... ४७५   | अथमृताशौचम्                              | .... ४८०   |
| परार्थयात्रायांफलम्                     | .... ७७    | जातमृतेमृतजातेवा                         | .... ७७    |
| प्रतिकृतिद्वारातीर्थेस्नानफलम्          | .... ७७    | नालच्छेदनात्माक्षिशुमरणे                 | .... ४८१   |
| तीर्थेऽविलंबेनश्राद्धं तर्पणं च कार्यम् | ... ४७६    | नालच्छेदनोर्ध्वदशाहमध्ये शिशुमरणे        | ७७         |
| तीर्थविधौ कालनियमो नास्ति               | .... ७७    | नामकरणात्माक्षिशुमरणे                    | .... ७७    |
| आशौचेऽपि तीर्थमाप्तौ                    | .... ७७    | नामोत्तरंदन्तोत्पत्तेः प्राक्षिशुमरणे    | ४८२        |
| मलमासे तीर्थश्राद्धादि निर्णयः          | .... ७७    | दंतोत्पत्त्यनंतरं त्रिवर्षात्प्राङ्मरणे  | .... ७७    |
| आकस्मिक तीर्थमाप्तौ                     | .... ७७    | त्रिवर्षोर्ध्वं तच्चूडे मृते             | .... ७७    |
| तीर्थश्राद्धे वर्ज्यकर्माणि             | .... ७७    | प्रथमवर्षादौ कृतचूडे मृते                | .... ४८३   |
| तीर्थश्राद्धं पक्वान्नादिना             | .... ४७७   | शूद्रशिशुमरणे                            | .... ७७    |
| पिंडद्रव्याणि                           | .... ७७    | त्रिवर्षोर्ध्वं शूद्रशिशो मृते           | .... ७७    |
| पिंडानां तीर्थभक्षेपः                   | .... ७७    | अनूढभार्य्ये शूद्रे मृते                 | .... ७७    |
| सपुत्रविधवया तीर्थविधिर्न कार्यः        | .... ७७    | कन्यामरणां शौचनिर्णयः                    | .... ४८४   |
| संन्यासिनां तीर्थविधिः                  | .... ७७    | पितृगृहेऽनूढा कन्यारजस्वलामरणे           | .... ७७    |
| तीर्थे प्रतिग्रहनिर्णयः                 | .... ७७    | अथानुपनीतमृतानां दाहादि निर्णयः          | ७७         |
| इति तीर्थश्राद्धविधिः ।                 |            | त्र्यहाशौचेऽपि ङदानविधिः                 | .... ४८५   |
| अथाशौचप्रकरणम् ।                        | ४७८        | शिशुलक्षणम्                              | .... ७७    |
| तत्र शावाशौचम्                          | .... ७७    | बाललक्षणम्                               | .... ७७    |
| पाताशौचम्                               | .... ७७    | कुमारलक्षणम्                             | .... ७७    |
| सप्तममासादि जनने पूर्णाशौचम्            | .... ७७    | पौगंडलक्षणम्                             | .... ७७    |
| जाताशौचे विप्रादीनां दिनसंख्या          | .... ७७    | एतेषां मृतानां क्रियाविधिः               | .... ७७    |
| पुत्रे जाते मातापित्रोः स्नाननिर्णयः    | .... ७७    | स्त्रीणामुद्वाहात्प्राङ्मृतानां पिंडदाने | ४८६        |
| कन्योत्पत्तौ स्नाननिर्णयः               | .... ७७    | अथ जात्याशौचम्                           | .... ७७    |
| सर्ववर्णानां सूतिकाशुद्धिनिर्णयः        | .... ४७९   | तत्र विप्रादीनां दशाहादि निर्णयः         | .... ७७    |
| सूतके संसर्गनिर्णयः                     | .... ७७    | पित्रादयो महागुरवः                       | .... ७७    |
| सूतिकायाः कर्माधिकारनिर्णयः             | .... ७७    | स्त्रीणां पतिरेव गुरुः                   | .... ७७    |
| प्रथमषष्ठदशमादिनेषु जातकर्माद्यधि-      |            | सपिंडानां लक्षणम्                        | .... ७७    |
| कारः                                    | .... ४८०   | समानोदकलक्षणम्                           | .... ७७    |
| सपिंडादीनां सूतके निर्णयः               | .... ७७    | सगोत्रलक्षणम्                            | .... ७७    |
|                                         |            | स्त्रीशूद्रयोर्विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम्  | .... ७७    |



( २८ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                  | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| आशौचसंकोचेनिर्णयः ...                   | ४८८        | पुत्र्याः पितृव्याशौचम् ....            | ४९२        |
| सर्ववर्णानां दशाहादेवशुद्धिः ...        | "          | मातामहादीनां मरणे ....                  | "          |
| पूर्णाशौचेस्पर्शनिर्णयः ...             | ४८९        | स्वगृहे परमरणे ....                     | "          |
| दत्तक्रीतादिपुत्राणामाशौचम् ...         | ४९०        | बंधुत्रयमरणे ....                       | "          |
| व्यभिचारिणीषुसपिंडत्वादिनिर्णयः         | "          | स्वल्पसंबंधयुक्ते मृते ....             | "          |
| अनौरसेषु पुत्रेषु ...                   | "          | दौहित्रभागिनेययोराशौचम् ....            | ४९३        |
| पुनर्भूषु स्त्रीषु ...                  | "          | मातुलादौ संनिधिविदेशयोर्मृते ....       | "          |
| अन्याश्रितस्त्रीणामाशौचम् ...           | "          | श्रोत्रिये स्वगृहे मृते ....            | "          |
| परपत्नीसुतानामा० ...                    | "          | ऋत्विग्विषये ....                       | "          |
| दत्तके मृते पूर्वापरपित्रोराशौचनि०      | ४९१        | बंधुत्रयनिर्णयः ....                    | "          |
| दत्तकसपिंड्यम् ...                      | "          | पितृष्वास्त्रादिकन्यानाम् ....          | "          |
| पूर्वापरभर्त्रोरुत्पन्नयोः पुत्रयोः ... | "          | जामातृमरणे ....                         | "          |
| ऊढकन्यानामाशौचम् ...                    | "          | शालकमरणे ....                           | "          |
| ऊढकन्यायाः पितृगृहे प्रसवे मरणे च       | "          | असपिंडे स्ववेश्मनि मृते ....            | ४९४        |
| मातापित्रोराशौचम् ...                   | "          | द्विजगृहे श्वशूद्रपतितादिषु मृतेषु .... | "          |
| भ्रातुराशौचम् ....                      | "          | शवदूषितगृहशुद्धिः ....                  | "          |
| परस्परं भ्रातृभगिन्योः ....             | "          | ग्राममध्ये शवस्तिष्ठति चेत् ....        | "          |
| भ्रातृभिन्नानामाशौचम् ....              | "          | गृहे पशवादौ मृते ....                   | "          |
| पतिग्रहे प्रसवे ....                    | "          | क्रियाकर्तुराशौचम् ....                 | ४९५        |
| कन्यामृतौ पित्रोः ....                  | ४९२        | युद्धे मृतस्याशौचम् ....                | "          |
| ग्रामान्तरे कन्यामृतौ पित्रोः ....      | "          | शृंगिदंष्ट्रादिभिर्हतानाम् ....         | "          |
| श्वश्रूश्चशुरयोर्मरणे ....              | "          | गोविप्रपालने मृतानाम् ....              | "          |
| भगिनीभरणे ....                          | "          | शस्त्रं विना पराङ्मुखहते ....           | ४९६        |
| मातुलमातुलान्योर्मरणे ....              | "          | राज्ञावध्येहते ....                     | "          |
| पित्रोस्स्वसरिमृतायाम् ...              | "          | क्षतेन मृते ....                        | "          |
| सोदरमरणे ...                            | "          | शस्त्राघाते अन्ह ऊर्ध्वमृते ....        | "          |
| पित्रोर्मरणे स्त्रीणामाशौचनिर्णयः ...   | "          | शवस्य स्पर्शे आशौचम् ...                | "          |
| तत्र पित्रोर्मरणे ऊढकन्यायाः ...        | "          | संसर्गाशौचे कर्माधिकार ...              | "          |
| भ्रातृभगिन्योरन्योन्यगृहे मरणे ...      | "          | अथ निर्हरणाद्याशौचम् ...                | "          |
| भ्रातृभगिन्योः परस्परमरणे ...           | "          | निर्हरणं विना तदन्नाशने तद्गृहवासे च    | "          |



## अनुक्रमणिका ।

( २९ )

| विषयाः                             | पृष्ठांकाः | विषयाः                             | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------|------------|------------------------------------|------------|
| भृतिग्रहणेननिर्हारे                | .... ४९६   | जननेऽतिकांताशौचनिर्णयः             | .... ११    |
| विजातीयनिर्हारे                    | .... ११    | अतिकांतेआपदनापद्यवस्था             | .... ५०१   |
| सोदकनिर्हारे                       | .... ११    | देशांतरेक्लीबादिमृतौ               | .... ११    |
| मेतालंकरणे                         | .... ११    | देशांतरलक्षणम्                     | .... ११    |
| धर्मार्थमनाथाहरणेक्रियाकरणेच       | .... ११    | देशांतरेमातापित्रोर्मरणे           | .... ११    |
| ब्रह्मचारिणाशववाहादिकृतेप्रायः     | .... ४९७   | स्त्रीपुंसयोः परस्परंमरणे          | .... ११    |
| समोत्कृष्टवर्णानुगमने              | .... ११    | सापत्नमातुराशौचम्                  | .... ११    |
| हीनवर्णस्यदाहादिकरणे               | .... ११    | हीनवर्णसापत्नमातृषुमृतासु          | .... ११    |
| अथरोदनेआशौचनिर्णयः                 | .... ११    | अथाशौचसंपाते                       | .... ११    |
| तत्रसमोत्तमवर्णयोः                 | .... ११    | तत्रजननेजननाशौचे                   | .... ११    |
| हीनवर्णेषु                         | .... ११    | शवेशावाशौचे                        | .... ११    |
| विप्रस्यक्षत्रियविषये              | .... ११    | सूतकेशावाशौचम्                     | .... ११    |
| क्षत्रस्यवैश्येपि                  | .... ११    | शावेसूतकम्                         | .... ११    |
| विप्रादीनांशूद्रे                  | .... ११    | एकदिनेसमंन्यूनमाधिकंवाप्राप्तंचेत् | .... ११    |
| शूद्रस्यशूद्रे                     | .... ४९८   | स्पल्पाशौचेदीर्घाशौचम्             | .... ५०३   |
| सपिंडानांरोदनेनिर्हारेच            | .... ११    | दीर्घाशौचेस्वल्पाशौचम्             | .... ११    |
| आशौचान्नभक्षणे                     | .... ११    | जननमरणाशौचस्यगुरुत्वम्             | .... ११    |
| आशौचान्नभक्षणेप्रायश्चित्तम्       | .... ११    | दशमेहनिआशौचांतरपाते                | .... ५०५   |
| अथदासाशौचम्                        | .... ११    | पित्राशौचेमात्राशौचम्              | .... ५०६   |
| दास्याशौचम्                        | .... ११    | मात्राशौचेपित्राशौचम्              | .... ११    |
| दत्तदासीनांस्वामिसपिंडमरणादौ       | .... ४९९   | अन्वारोहणेविशेषः                   | .... ११    |
| पंचदशदासभेदाः                      | .... ११    | भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे          | .... ११    |
| अथरात्रौजननेमरणेवानिर्णयः          | .... ११    | अथाशौचापवादःपंचधा                  | .... ५०७   |
| आहिताग्नेर्दाहादिनिर्णयः           | .... ११    | तत्रकर्तृतः                        | .... ११    |
| अथातिकांताशौचम्                    | .... ५००   | यत्यादीनामाशौचाभावः                | .... ५०८   |
| तत्राशौचमध्येजननादौज्ञाते          | .... ११    | ब्रह्मचारिणापित्रोरंत्यकर्मकार्यम् | .... ११    |
| देशांतरेअतिकांताशौचे               | .... ११    | संध्यादिलोपाभावाः                  | .... ११    |
| दशदिनमध्येश्रुतंचेत्               | .... ११    | ब्रह्मचारिणोऽत्यकर्माकरणेआशौ       |            |
| दशाहोर्ध्वमासत्रयपर्यंतंश्रुतंचेत् | .... ११    | चाभावः                             | .... ५०९   |
| षण्मासपर्यंतंश्रुतंचेत्            | .... ११    | समावर्तनोत्तरंत्र्यहाशौचम्         | .... ११    |
| नवमासपर्यंतंश्रुतंचेत्             | .... ११    | दुर्भिक्षाद्यापद्रुतानामाशौचाभावः  | .... ११    |
| तदूर्ध्वंश्रुतंचेत्                | .... ११    | अथकर्मतआशौचम्                      | .... ११    |



( ३० )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                             | पृष्ठांकाः | विषयाः                     | पृष्ठांकाः |
|------------------------------------|------------|----------------------------|------------|
| तत्रसत्रिव्रत्यादीनामाशौ०          | .... ५०९   | प्रमादमरणेत्वाशौचं         | .... ५१६   |
| कार्वादीनामाशौचाभावः ....          | .... ५१०   | सर्पहतेमृतेविशेषः ....     | .... ११    |
| राजादीनाम् ....                    | .... ११    | दुर्मरणनिमित्तदानानि ....  | .... ११    |
| व्रतयज्ञविवाहादिषु ....            | .... ११    | तत्रव्याघ्रेणनिहते ....    | .... ११    |
| आशौचेआकस्मिकतीर्थप्राप्तौ ....     | .... ११    | सर्पदष्टेमृते ....         | .... ११    |
| दीक्षावतान्जपपूजानुष्ठानाशौचाभावः  | ११         | राज्ञानिहते....            | .... ११    |
| सूतकिनःपूजाधिकारः ....             | .... ११    | चौरेणनिहते ....            | .... ११    |
| श्रौतकर्मणिविशेषः ....             | .... ५११   | शय्यामृते ....             | .... ११    |
| ऋत्विजामाशौचाभावः ....             | .... ११    | शौचहीनेमृते ....           | .... ११    |
| तुलापुरुषदानादौदोषाभावः ....       | .... ११    | संस्कारहीनेमृते ....       | .... ११    |
| अत्रापवादांतरम् ....               | .... ११    | अश्वहते ....               | .... ११    |
| श्राद्धादौविशेषः ....              | .... ११    | शुनाहते ....               | .... ११    |
| स्मार्ताग्निहोमादौसूतकाभावः ....   | .... ११    | सूकरेणहते....              | .... ११    |
| आशौचेपंचमहायज्ञनिषेधः ....         | .... ५१२   | कृमिभिर्मृते ....          | .... ११    |
| संध्यादीनामपवादः ....              | .... ५१३   | वृक्षहते ....              | .... ११    |
| मृतकेसंध्याविधिः....               | .... ११    | शृंगिणाहते....             | .... ११    |
| ग्रहणेआशौचापवादः ....              | .... ११    | शकटेनहते ....              | .... ११    |
| भोजनकालेअशुचिर्भवतिचेत् ....       | .... ११    | भृगुपातमृते ....           | .... ११    |
| अथद्रव्यतः ....                    | .... ११    | अग्निनानिहते ....          | .... ५१७   |
| तत्रलवणादिद्रव्ये ....             | .... ११    | दारुणानिहते ....           | .... ११    |
| पण्यद्रव्येषुनाशौचम् ....          | .... ११    | शस्त्रेणनिहते ....         | .... ११    |
| सत्रेआमान्नादौदोषाभावः ....        | .... ५१४   | अश्मनानिहते ....           | .... ११    |
| उभाभ्यामपरिज्ञातेसूतके ....        | .... ११    | विषेणमृते ....             | .... ११    |
| विवाहोत्सवादिषुसूतके ....          | .... ११    | ऊर्ध्वधनेनमृते ....        | .... ११    |
| पुस्तकशुद्धिः ....                 | .... ११    | जलेनमृते ....              | .... ११    |
| अथमृतदोषतः ....                    | .... ११    | विषूचिकामृते ....          | .... ११    |
| तत्रात्मधाते ....                  | .... ११    | कंठान्नकवलेमृते ....       | .... ११    |
| पतितानामृतानांदाहादिनिर्णयः ....   | .... ५१५   | कासरोगेणमृते ....          | .... ११    |
| चांडालादिभ्योमरणे ....             | .... ११    | अतिसारमृते ....            | .... ११    |
| पतितानामंत्यकर्मकरणेप्रायश्चि०.... | .... ११    | शाकिन्यादिग्रहैर्मृते .... | .... ११    |
| आत्मत्यागिनांक्रियाकरणेप्राय० .... | .... ११    | विद्युत्पातेनमृते ....     | .... ११    |
| आहिताग्नेर्विशेषः ....             | .... ११    | अंतरिक्षमृते ....          | .... ११    |



## अनुक्रमणिका ।

( ३१ )

| विषयाः                                    | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| अस्पृश्यस्पर्शितोमृते ....                | ५१८        | तत्रगृहीताशौचानां निर्णयः ....          | ११         |
| पतितोमृते ....                            | ११         | अगृहीताशौचानां निर्णयः ....             | ११         |
| अपत्यरहितोमृते ....                       | ११         | अथातीतसंस्कारे आशौचनिर्णयः ....         | ५२९        |
| स्त्रिया अन्वारोहणे ....                  | ११         | अथमृतसंस्कारकालः ....                   | ११         |
| वैधमरणे ....                              | ५१९        | प्रत्यक्षशवसंस्कारे ....                | ११         |
| तीर्थमरणे ....                            | ११         | आशौचमध्ये शवसंस्कारे ....               | ११         |
| कलौ स्त्रीणां सहगमनम् ....                | ११         | अशौचोत्तरसंस्कारे ....                  | ११         |
| प्रयागादौ मरणे दशाहाशौचम् ....            | ५२०        | अस्यापवादः ....                         | ११         |
| अनशनादिमृतानाम् ....                      | ११         | साक्षात्संस्कारे ....                   | ११         |
| मरणांत प्रायश्चित्ते ....                 | ११         | अतीते अस्तादिवर्ज्यम् ....              | ५३०        |
| आत्महादीनां वत्सरान्ते और्ध्वदेहिकम् .... | ११         | निषिद्धकाले दाहेदानादि ....             | ११         |
| आत्मघातादि प्रायश्चित्तम् ....            | ५२१        | कृतौर्ध्वदेहिके जीवन्नागच्छति चेद् .... | ११         |
| नारायणबलिः ....                           | ११         | अमृतस्य दाहादौ स्त्रीसहगमने ....        | ११         |
| पतितोदकविधिः ....                         | ५२२        | अथ सर्पसंस्कारविधिः ....                | ११         |
| नारायणबलिप्रयोगः ....                     | ५२३        | नागबलिविधिः ....                        | ११         |
| अत्र सर्पहते तु विशेषः ....               | ५२४        | घटस्फोटविधिः ....                       | ५३१        |
| उदकमृते विशेषः ....                       | ११         | पतितसंग्रहविधिः ....                    | ११         |
| नारायणबलिर्नुराशौचम् ....                 | ५२५        | कृतघटस्फोटस्य पुनः संग्रहविधिः ....     | ५३२        |
| व्युच्छिन्नसंततिमृते विशेषः ....          | ११         | पतितानां चरितव्रतानां परिग्रहः ....     | ५३३        |
| युद्धमृतौ ....                            | ११         | साधारणां त्यक्रियाविधिः ....            | ५३४        |
| अपुत्रस्य नारायणबलिः ....                 | ११         | तत्राधिकारिणः प्रागुक्ताः ....          | ११         |
| अथ विधानादाशौचाभावः ....                  | ११         | सर्वाभावे धर्मपुत्रः ....               | ११         |
| तत्र यतिमरणे संस्कारनिर्णयः ....          | ११         | योगिदः सदशाहं कुर्यात् ....             | ११         |
| अपरो नारायणबलिः ....                      | ५२६        | आसन्नमरणे दानानि ....                   | ११         |
| कृतजीवच्छ्राद्धे मृते ....                | ११         | तत्र मोक्षधेनुदानम् ....                | ११         |
| आहिताग्नौ प्रोषिते मृते ....              | ११         | ऋणधेनुदानम् ....                        | ११         |
| अस्थ्याद्यलाभे पालादि दाहविधिः ....       | ५२७        | पापधेनुदानम् ....                       | ११         |
| पालाशविधिद्रव्याणि ....                   | ११         | मरणस्य पुण्यकालः ....                   | ११         |
| इदं निरग्रेयम् ....                       | ११         | वैतरणीधेनुदानम् ....                    | ११         |
| प्रोषितस्य द्वादशान्दातिक्रमे ....        | ११         | उत्क्रांतिधेनुदानम् ....                | ११         |
| देशांतरमृतस्य दिनाज्ञाने संस्कारकालः .... | ११         | दशदानानि ....                           | ११         |
| आहिताग्न्यादीनामाशौचनिर्णयः ....          | ५२८        | तिलपात्रदानम् ....                      | ५३५        |
|                                           |            | मरणकाले पुण्यमंत्रश्रवणम् ....          | ११         |



( ३२ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                 | पृष्ठांकाः | विषयाः                               | पृष्ठांकाः |
|----------------------------------------|------------|--------------------------------------|------------|
| अष्टौदानानि ....                       | ५३५        | साग्नेर्दाहिपात्रन्यासादि ....       | ५४१        |
| कर्तुराधिकारप्रायश्चित्तम् ....        | ५३५        | शवेग्निदानमंत्रः ....                | ५४१        |
| मुमुक्षोर्मधुपर्कदानम् ....            | ५३५        | उत्क्रांतिकालेषट्पिण्डदानम् ....     | ५४१        |
| दुर्मरणेप्रायश्चित्तम् ....            | ५३५        | प्रेतस्यस्नानवस्त्रालंकरणम् ....     | ५४२        |
| शूद्रेणदग्धेप्रायश्चित्तम् ....        | ५३५        | प्रेतस्यवपनम् ....                   | ५४२        |
| अस्पृश्यस्पर्शप्रायश्चित्तम् ....      | ५३५        | नलदानुलेपनादि ....                   | ५४२        |
| ऊर्ध्वोच्छिष्टेमृतेप्रायश्चित्तम् .... | ५३५        | नग्नःप्रेतो न दग्धव्यः ....          | ५४२        |
| खट्वायांमरणेप्रायश्चित्तम् ....        | ५३५        | सशेषःप्रेतोदाह्यः ....               | ५४२        |
| रात्रौप्रेतदाहेनिर्णयः ....            | ५३६        | दाहकालेग्निनाशे ....                 | ५४२        |
| रात्रौपवननिर्णयः ....                  | ५३६        | पर्णशरदाहाग्निनाशे ....              | ५४२        |
| प्रेतस्यपवननिर्णयः ....                | ५३६        | पर्णशरदग्धेतद्देहलाभे ....           | ५४२        |
| आशौचातिपुनर्वपनम् ....                 | ५३६        | दंपत्योरेकदामृतौ ....                | ५४२        |
| रात्र्युषितेप्रेतेप्रायश्चित्तम् ....  | ५३६        | उदकदानविधिः ....                     | ५४३        |
| साग्नेर्विशेषः ....                    | ५३७        | प्रेतस्नानेविशेषः ....               | ५४४        |
| विच्छिन्नश्रौताग्नेःप्रेताधानम् ....   | ५३७        | अंजलिदाननिर्णयः ....                 | ५४४        |
| अग्न्यरणीनां नाशे ....                 | ५३७        | क्लीबाद्यैर्नोदकंदेयम् ....          | ५४५        |
| वृष्ट्यादिनाऽग्निनाशे ....             | ५३७        | आशौचेनियमाः ....                     | ५४५        |
| पत्नीमरणेप्येवम् ....                  | ५३८        | प्रेतदग्ध्वागृहमागत्यनिर्बदशनादि     |            |
| प्रथमायांजीवत्यां द्वितीयायांमृता-     |            | कार्यम् ....                         | ५४५        |
| यांदाहनि० ....                         | ५३८        | तद्दिनेकीतलब्धमन्नादिभक्षणीयम् ....  | ५४५        |
| दंपत्योर्मध्येप्रथममृतस्यदाहनि० ....   | ५३८        | उपवासाशक्तौअशननि० ....               | ५४५        |
| प्रश्चान्मृतस्यदाहनि० ....             | ५३८        | अधःशय्यासनादिनियमाः ....             | ५४५        |
| अपत्रीकस्याधानम् ....                  | ५३९        | दशाहमध्येज्ञातिभोजनम् ....           | ५४६        |
| विधुरस्यदाहाग्निनि० ....               | ५३९        | आशौचेदानप्रतिग्रहादिवर्ज्यम् ....    | ५४६        |
| विधवायादाहाग्निनि० ....                | ५३९        | मृत्युस्थानेप्रत्यहंबलिर्देयः ....   | ५४६        |
| ब्रह्मचारिणोदाहेनि० ....               | ५३९        | नग्नप्रच्छादनश्राद्धेवस्त्रादिदानानि |            |
| उत्तापनाग्निलक्षणम् ....               | ५३९        | अथप्रेतपिण्डनिर्णयः ....             | ५४७        |
| दाहेनिषिद्धाग्निः ....                 | ५३९        | वर्णभेदेनपिण्डसंख्या ....            | ५४७        |
| शवनिर्हरणेदिङ्नियमः ....               | ५४०        | सद्यःशौचेपिण्डदाननि० ....            | ५४७        |
| निर्हरणप्रकारः ....                    | ५४०        | त्र्यहाशौचेपिण्डदाननि० ....          | ५४७        |
| शवसंस्कारविधिः ....                    | ५४०        | उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये  |            |
| आहिताग्नौविदेशमृतेदाहनि० ....          | ५४०        | निर्णयः ....                         | ५४७        |



## अनुक्रमणिका ।

( ३३ )

| विषयाः                               | पृष्ठांकाः | विषयाः                                     | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|--------------------------------------------|------------|
| क्रियाकर्तुर्नाशे ....               | ५४७        | अनुपनीतस्यास्थिसंचयनि० ....                | ॥          |
| भार्यायाःकर्तृत्वेरजोदर्शनेनि० ....  | ॥          | अथनवश्राद्धनिर्णयः ....                    | ५५४        |
| आशौचमव्येकर्तुरस्वास्थ्ये ....       | ५४८        | नवश्राद्धाकरणेदोषः ....                    | ॥          |
| असंस्कृतानांपिंडःकुत्रदेयः ....      | ॥          | शाखाभेदाद्यवस्था ....                      | ॥          |
| फलमूलादिद्रव्यमिश्रितःपिंडोदेयः .... | ॥          | प्रेतश्राद्धेऽष्टादशपदार्थावज्याः ....     | ॥          |
| एकमेवपिंडद्रव्यम्....                | ॥          | प्रेतश्राद्धानिलौकिकाग्नौगृहेकार्याणि .... | ॥          |
| पिंडान्नलौकिकाग्नौपचेत् ....         | ॥          | प्रेतश्राद्धसंभवेऽन्नेनकार्यम् ....        | ५५५        |
| येनकेनापिदाहादिक्रियारब्धाचेत् ....  | ५४९        | नवश्राद्धशेषभोजनेप्राय०....                | ॥          |
| पुत्रेणपुनःकरणेनिषेधः ....           | ॥          | नवश्राद्धेविघ्नेप्राप्तेनि० ....           | ॥          |
| प्रेतपिंडदानेपितृशब्दस्वधाशब्दादिनो  |            | अन्वारोहणेविशेषः ....                      | ॥          |
| च्चारणीयं ....                       | ॥          | आशौचांत्यदिनकृत्यम् ....                   | ॥          |
| एकादशाहदिनपर्यंतरात्रौजलंदुग्धंच     |            | दशमदिनेवपननिर्णयः ....                     | ५५६        |
| देयम् ....                           | ॥          | अथैकादशाहकृत्यम् ....                      | ५५७        |
| दशाहैतैलदीपःस्थाप्यः ....            | ५५०        | विप्रादीनामाशौचशुद्धिः ....                | ॥          |
| भोजनकालेभक्तमुष्टिदानम् ....         | ॥          | आद्यश्राद्धमेकादशेऽह्निका० ....            | ॥          |
| दशाहमध्येदर्शपाते ....               | ॥          | अस्यविघ्नेगौणकालः ....                     | ५५८        |
| मातापित्रोस्तुविशेषः ....            | ॥          | आद्यमासिकाद्याब्दिकयोर्निर्णयः...          | ५५९        |
| अत्रदेशाचाराद्यवस्था ....            | ॥          | विप्राभावेअग्नौमहैकोदिष्टम् ....           | ५६०        |
| अथास्थिसंचयः ....                    | ॥          | अथवृषोत्सर्गः ....                         | ॥          |
| तत्रकालनिर्णयः ....                  | ॥          | वृषोत्सर्गाकरणेदोषः ....                   | ॥          |
| संचयनेश्राद्धत्रयम् ....             | ५५१        | नीलवृषोत्सर्गफलम् ....                     | ॥          |
| सद्यः शौचेसंचयनम् ....               | ॥          | वृषोत्सर्गकालः ....                        | ॥          |
| त्र्यहाशौचेसंच० ....                 | ॥          | अयंगृहेनकार्यः ....                        | ॥          |
| संचयनेश्मशानदेवताः ....              | ॥          | नीलवृषलक्षणम् ....                         | ॥          |
| संचयनविधिः ....                      | ॥          | वृषाभावेमृदादिनाकार्यः ....                | ५६१        |
| प्रेतस्यप्रधानांगास्थिग्रहणम् ....   | ॥          | तदभावेहोमःकार्यः ....                      | ॥          |
| तीर्थेऽस्थिक्षेपविधिः ....           | ५५२        | वृषोत्सर्गविधिः ....                       | ॥          |
| अन्यकुलस्यास्थिनयनेदोषः ....         | ॥          | पतिपुत्रवत्यावृषोत्सर्गेनकार्यः ....       | ॥          |
| अस्थिक्षेपांगहेमश्राद्धम् ....       | ५५३        | तत्स्थानेसवत्सापयस्विनीदेया ....           | ॥          |
| अस्थिक्षेपांगहोमः ....               | ॥          | आशौचांतरेपिवृषोत्सर्गादिकर्मका             |            |
| अस्त्रांशुद्धिकरणेपदार्थाः ....      | ॥          | र्यमेव ....                                | ॥          |
| संचयनोत्तरश्राद्धम् ....             | ॥          |                                            |            |



( ३४ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                                | पृष्ठांकाः | विषयाः                                      | पृष्ठांकाः |
|---------------------------------------|------------|---------------------------------------------|------------|
| अथपददानम् ....                        | ५६२        | सपिंडीकरणेज्येष्ठस्यैवाधिकारः ....          | ५७३        |
| पददानवस्तूनि ....                     | ५६२        | आहिताग्नेः कनिष्ठस्याप्यधिकारः ....         | ५७३        |
| चतुर्दशोपदानानि ....                  | ५६२        | एवंवृद्धावपि ....                           | ५७३        |
| अथशय्यादानम् ....                     | ५६३        | वृद्ध्यभावेवर्षांतसपिंडी ० ....             | ५७४        |
| शय्यादानसामग्री ....                  | ५६३        | ज्येष्ठदेशांतरे सति ....                    | ५७४        |
| शय्यादानमंत्रः ....                   | ५६३        | देशांतरे पितरिमृते पुत्रैः किं कार्यम् .... | ५७४        |
| मृतकशय्यादानविशेषः ....               | ५६३        | अत्र दत्तकस्य विशेषः प्रागुक्तः ....        | ५७४        |
| लालाटिकास्थिभोजनम् ....               | ५६३        | कचित्कनिष्ठस्याप्यधिकारयुक्तः ....          | ५७४        |
| अथोदकुंभदाननिर्णयः ....               | ५६३        | पुनः सपिंडीकरणे विशेषः ....                 | ५७४        |
| अथान्नदानम् ....                      | ५६३        | व्युत्क्रममृतौ सपिंडीकरणनि ० ....           | ५७४        |
| प्रथमान्दे प्रत्यहं दीपो देयः ....    | ५६३        | गोत्रादेः सपिंडनाधिकारः ....                | ५७५        |
| अथ मासिकश्राद्धानि ....               | ५६५        | स्त्रीणां सपिंडीकरणनि ० ....                | ५७६        |
| तत्र षोडशश्राद्धनि ० ....             | ५६५        | अपुत्रायाः सपिंडनम् ....                    | ५७६        |
| ऊनमासिकनिर्णयः ....                   | ५६५        | आसुरादिविवाहितायाः स ० नि ० ....            | ५७७        |
| ऊनेषुवर्ज्यदिनानि ....                | ५६५        | सर्वत्र देशभेदाद्विकल्पः ....               | ५७७        |
| त्रिपुष्करलक्षणम् ....                | ५६६        | कोकिलमतानुसारिणः ....                       | ५७७        |
| प्रतिमासंश्राद्धकरणाशक्तौ नि ० ....   | ५६६        | अपुत्राणां सपिंडनम् ....                    | ५७८        |
| एतेषां युगपत्करणे नि ० ....           | ५६७        | ब्रह्मचारिणां सपिंडनम् ....                 | ५७८        |
| वृद्धिर्बिनापकर्षे पुनः करणम् ....    | ५६८        | अपुत्रे व्युत्क्रममृते विधिः ..             | ५७९        |
| वृद्धिनिमित्तापकर्षे पुनः करणाभावः .. | ५६८        | यतीनां सपिंडनं नास्ति ..                    | ५७९        |
| सपिंडनापकर्षे दोषः ....               | ५६९        | सपिंडनविधिः ..                              | ५७९        |
| अंतरितानां नवश्राद्धमासिकादीनां सह    | ५६९        | सपिंडने कामकालौ देवौ ..                     | ५८०        |
| तंत्रम् ....                          | ५६९        | सपिंडीकरणं पक्वाग्नेनैव कर्तव्यम् ..        | ५८०        |
| अथ सपिंडीकरणनिर्णयः ....              | ५७१        | सपिंडनान्तरं पाथेयश्राद्धम् ..              | ५८०        |
| तत्र साग्निकनिराग्निकयोर्नि ० ....    | ५७२        | ततो वृद्धिश्राद्धं कार्यम् ..               | ५८०        |
| सपिंडीकरणकालः ....                    | ५७२        | एतन्मलमासेपि कर्तव्यम् ..                   | ५८०        |
| सपिंडीकरणस्यापकर्षनिर्णयः ....        | ५७२        | इति सपिंडीकरणम् ।                           | ५८०        |
| वृद्धिश्राद्धस्थावश्यकानावश्यकता      | ५७२        | अथ प्रथमान्दे निषिद्धानि ..                 | ५८०        |
| निर्णयः ....                          | ५७२        | दैवपितृव्यकर्मणि अशुचित्वम् ..              | ५८०        |
| अंतरितसपिंडीकरणेन क्षत्रा ० ....      | ५७२        | पत्न्यादौ अपवादः ..                         | ५८०        |
| सपिंडीकरणेऽष्टौ कालाः ....            | ५७२        | संघातमरणे निर्णयः ..                        | ५८०        |
|                                       | ५७२        | पितरिमृते अन्यस्य श्राद्धं न कार्यम् ..     | ५८१        |



## अनुक्रमणिका ।

( ३५ )

| विषयाः                                  | पृष्ठांकाः | विषयाः                                        | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------------------|------------|-----------------------------------------------|------------|
| पित्रादीनामाशौचनिर्णयः ....             | ५८१        | दृषदुपलापूजनम् ....                           | ५८८        |
| तत्रपितर्युपरतेअब्दपर्यंतमा० ....       | ॥          | पुनरग्निप्रार्थना ....                        | ॥          |
| मातुःषण्मासपर्यंतमा० ....               | ॥          | कातरायाःपुनरुत्थापनम् ....                    | ॥          |
| भार्यायास्त्रिमासप० ....                | ॥          | सहगमनमहिमा ....                               | ॥          |
| भ्रातृपुत्रयोःसार्धमासमाशौ० ....        | ॥          | पृथक्चितारोहणेनिषे० ....                      | ॥          |
| प्रथमेन्देगयाश्राद्धादिनिषेधः ....      | ॥          | क्षत्रियादिस्त्रीणांपृथक्चितिः ....           | ॥          |
| अस्यापवादः ....                         | ५८२        | पत्न्यौदेशांतरेमृतेगमनेवि० ....               | ॥          |
| अथविधानानि ....                         | ॥          | अस्थिदाहेपर्णशरदाहेवानपृथक्-<br>चितिदोषः .... | ५८९        |
| तत्रपंचकमृतेविधानम् ....                | ॥          | ग्रामांतरस्थायाःसहगमननिर्णयः ....             | ॥          |
| त्रिपादक्षेमृतौवि० ....                 | ५८३        | उदक्यायाअन्वारोहणेनिर्ण० ....                 | ॥          |
| त्रिपुष्करेमृतौवि० ....                 | ॥          | चितिभ्रष्टायाः प्राय० ....                    | ॥          |
| पंचरत्नानि ....                         | ॥          | गर्भिण्यादीनांसहगमनेनिषे० ....                | ॥          |
| सूतकांतिशांतिविधिः ....                 | ॥          | अन्वारोहणेरजस्वलायाःशुद्धिविधिः ५९०           |            |
| प्रकारांतरेणशांतिविधिः ....             | ५८४        | अत्रश्राद्धादिनिर्णयःपूर्वमुक्तः ....         | ॥          |
| त्रिपान्नक्षत्राणि ....                 | ॥          | इत्यन्त्यकर्मनिर्णयः ।                        |            |
| मृतःश्मशानाज्जीवन्पुनरागच्छेच्चेत् ॥    |            | अथाग्निप्रवेशाशक्तौ ....                      | ॥          |
| अथब्रह्मचारिमृतौ....                    | ॥          | अथविधवाधर्माः ....                            | ५९१        |
| तत्रावकीर्णदोषप्राय० ....               | ॥          | विधवायास्तर्पणविधिः ....                      | ॥          |
| कुष्ठिमृतौ० ...                         | ५८५        | श्राद्धादौविशेषःप्रागुक्तः ....               | ॥          |
| कुष्ठिलक्षणानि ....                     | ॥          | अथसंन्यासनिर्णयः ....                         | ॥          |
| प्रायश्चित्तंविनाकुष्ठिदाहेप्राय० ....  | ॥          | अत्रविप्रस्यैवाधिकारउक्तः....                 | ५९२        |
| अष्टौमहारोगाः ....                      | ॥          | वर्णक्रमेणाश्रमाउक्ताः ...                    | ॥          |
| रजस्वलामरणे ....                        | ॥          | संन्यासश्चतुर्धा ...                          | ॥          |
| सूतिकामरणे ....                         | ५८६        | तत्रकुटीचकलक्षणम् ....                        | ॥          |
| गर्भिणीमरणे ....                        | ॥          | बहूदकलक्षणम् ....                             | ॥          |
| अन्वारोहणेप्रयोगः ....                  | ५८७        | परमहंसलक्षणम् ...                             | ॥          |
| तत्रहरिद्राकुंकुमांजनयुतशूर्पवायनानि० ॥ |            | वैराग्यंविनासंन्यासेदोषः... ५९३               |            |
| पंचरत्नानि ....                         | ५८८        | यतेःपूज्यत्वम् ....                           | ॥          |
| अग्निप्रार्थना ....                     | ॥          | अथसंन्यासविधिः....                            | ॥          |
| आज्यहोमः ....                           | ॥          | तत्रादौप्रायश्चित्तम् ....                    | ॥          |
|                                         |            | अष्टौश्राद्धानि ...                           | ॥          |



( ३६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                               | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| तत्रप्रतिश्राद्धं देवताक्रमः ....    | .... ५९३   | यतेनिषिद्धकर्माणि ....                  | .... ११    |
| तद्विधिश्च ... ..                    | .... ११    | यतेःपितृपुत्रादिमरणेस्नानमात्रम्....    | ५९९        |
| देवौ दक्षकतू, सत्यवसू वा ....        | .... ११    | अथयतिसंस्कारः ....                      | .... ११    |
| दंडादिसामग्री ....                   | .... ११    | अथातुरसंन्यासः ....                     | .... ११    |
| पूर्वेद्युर्नादीश्राद्धम्....        | .... ५९४   | आतुरसंन्यासप्रयोगः ..                   | .. ११      |
| दण्डस्यप्रमाणंलक्षणंच ....           | .... ११    | संन्यासग्रहणेफलम् ..                    | .. ११      |
| साग्नेर्निरग्नेश्चविधिः ....         | .... ११    | कृच्छ्रनादीश्राद्धविरजाहोमाशक्तौनि०     | ११         |
| संन्यासग्रहणक्रमः ....               | .... ११    | आतुरसंन्यासविधिः ..                     | .. ६००     |
| तत्राधिकारार्थस्वयंनवश्राद्धादीनि    |            | तत्रअप्सुहोमः ..                        | .. ११      |
| कर्तव्यानि ....                      | .... ११    | आतुरसंन्यासिनिमृतेनि० ..                | .. ११      |
| अनाश्रमीचेत्प्रायश्चित्तम् ....      | .... ११    | विरक्तस्यातुरस्यनिर्ण० ..               | .. ११      |
| संन्यासग्रहणकालः ....                | .... ११    | समाधिसंस्कारादिनि० ..                   | .. ११      |
| संन्याससंकल्पादि० ....               | .... ५९५   | आतुरसंन्यासानंतरंजीवितश्चेन्निर्ण०      | ६०१        |
| होमेअग्निसिद्धिः ....                | .... ११    | कुटीचकस्यदहनम् ..                       | .. ११      |
| तत्राहिताग्नेर्गार्हपत्ये ....       | .... ११    | बहूदकंपूरयेत् ..                        | .. ११      |
| विधुरोगिहोत्रीचेत्....               | .... ११    | हंसस्यजलेनिक्षेपः ..                    | .. ११      |
| ब्रह्मचारीचेत्लौकिके ....            | .... ११    | परमहंसंपूरयेत् ..                       | .. ११      |
| वपनपूर्वकंसावित्रीप्रवेशादिकर्म .... | .... ११    | पलाशमूलेनदीतीरेवापूरणम् ..              | .. ११      |
| अत्रविरजाहोमःकेचिन्मते....           | .... ११    | शवस्यस्नानालंकरणादिपूजनम् ..            | .. ११      |
| ततोवशिष्टप्रयोगः....                 | .... ५९६   | यथास्थानंदंडादिदानम् ..                 | .. ११      |
| अथयतिधर्माः ....                     | .... ५९७   | ततःप्रोक्षणम् ..                        | .. ११      |
| अथयतिभिक्षाकालः ....                 | .... ११    | अवटेप्रोक्षणंभेतनिक्षेपश्च ..           | .. ११      |
| यतोर्भिक्षाविधिः ....                | .... ५९८   | शंखेनमूर्धभेदनम् ..                     | .. ११      |
| यतेर्भोजनविधिः ....                  | .... ११    | ततोलवणेनगर्तपूरणम् ..                   | .. ११      |
| यतिभिक्षादानेफलम् ....               | .... ११    | कुटीचकस्यदहनविधिः ..                    | .. ११      |
| यतेर्ग्रामादौवासदिनानि ....          | .... ११    | अस्त्रांतीर्थेनिक्षेपः ..               | .. ११      |
| निषिद्धवासस्थानानि ....              | .... ११    | अस्याशौचंनास्ति ..                      | .. ११      |
| यतेर्निषिद्धकर्माणिषट् ....          | .... ११    | एकादशोह्निपार्वणम् ..                   | .. ११      |
| यतेःपतनहेतूनिकर्माणिषट् ....         | .... ११    | हंसपरमहंसानांनपार्वणम् ..               | .. ११      |
| यतेर्बधकषट्कर्मा० ....               | .... ११    | द्वादशोह्निनारायणबलिः ..                | .. ६०२     |
| यतिपात्राणि ....                     | .... ११    | तद्विधिरन्यश्चविशेषःप्रागुक्तः ..       | .. ११      |
| यतेर्निषिद्धभिक्षा ....              | .... ११    | ग्रंथकर्तुःश्लोकाः ..                   | .. ११      |
|                                      |            | इतिनिर्णयसिंधोर्विषयानुक्रमणिकासमाप्ता. |            |



श्रीः ।

## अथ निर्णयसिन्धुः प्रारभ्यते ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ अविघ्नमस्तु ॥  
 कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥ विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालंबि  
 शाखिनं वन्दे ॥ १ ॥ लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतलरं जितगोकुलम् ॥ बर्हर्षाडं  
 घनश्यामं महः किंचिदुपास्महे ॥ २ ॥ वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥  
 पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥ यत्पादसंस्मृतिः सर्वमङ्गलप्रति  
 भूर्मता ॥ तान् भट्टरामकृष्णाख्यान् श्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥ सर्वकल्याणसं  
 दोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥ युनदीसोदरीमंबामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥  
 बिन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ॥ ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपा  
 स्महे ॥ ६ ॥ हेमाद्रिमाधवमते विचार्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां  
 परेषाम् ॥ श्रीरामकृष्णतनयः मलाकराख्यः काले यथामति विनिर्णय  
 मातनोति ॥ ७ ॥ सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ॥ तथाप्यमु  
 ष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥ तत्र संक्षेपतः कालः षोढा—अब्दोयनमृ  
 तुर्मासः पक्षो दिवस इति ॥ तत्राब्दो माधवमते पञ्चधा—सावनः सौरश्चान्द्रो  
 नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति ॥ गुरोर्मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः ॥ स च ज्योतिः  
 शास्त्रे प्रसिद्धः ॥ हेमाद्रिस्त्वन्त्ययोर्धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात्तिस्र एव विधा आह ॥  
 तत्र वक्ष्यमाणैः सावनादिद्वादशमासैस्तत्तदब्दम् ॥ मलमासे तु सति षष्टिदिना  
 त्मक एको मास इति ॥ द्वादशमासत्वमविरुद्धम् ॥ तथाच व्यासः 'षष्ठ्या तु दि  
 वसैर्मासः कथितो बादरायणैः' इति ॥ तत्र चान्द्रोऽब्दः षष्टिभेदः ॥ तदाह गार्ग्यः

१ अन्ववायो वंश इति टीका २ कल्पद्रुतलरञ्जितगोकुलम्, कल्पद्रुतलं रञ्जितगोकुल-  
 म्, इति टीकास्थपाठान्तरम् ३ इदं च राजसिंह इतीवपूर्वपदार्थगतश्रेष्ठ्यतात्पर्यग्राहकम्  
 'तं भट्टरामकृष्णाख्यं श्रीतातं सादरं नुमः' इति तु रमणीयमिति संन्यध्वान्तनाशिनी  
 व्याख्याकृत् ४ तथा चोक्तं माधवेनैव—सौरबृहस्पतिसावनचान्द्रिकनाक्षत्रिकाः क्रमेण  
 स्युः । मा<sup>३६</sup>तुल<sup>५</sup>पा<sup>३३</sup>ता<sup>३८</sup>ला<sup>३५</sup>तुल<sup>३८</sup>विमल<sup>३५</sup>वरा<sup>३८</sup>ङ्गा<sup>३५</sup>श्चवत्सराः पञ्च ॥ इति टीका ॥



( ३६ )

## अनुक्रमणिका ।

| विषयाः                               | पृष्ठांकाः | विषयाः                                  | पृष्ठांकाः |
|--------------------------------------|------------|-----------------------------------------|------------|
| तत्रप्रतिश्राद्धं देवताक्रमः ....    | ५९३        | यतेनिषिद्धकर्माणि ....                  | ११         |
| तद्विधिश्च ....                      | ११         | यतेःपितृपुत्रादिमरणेस्नानमात्रम् ....   | ५९९        |
| देवौ दक्षकतू, सत्यवसू वा ....        | ११         | अथयतिसंस्कारः ....                      | ११         |
| दंडादिसामग्री ....                   | ११         | अथातुरसंन्यासः ....                     | ११         |
| पूर्वेद्युर्नादीश्राद्धम् ....       | ५९४        | आतुरसंन्यासप्रयोगः ..                   | ११         |
| दण्डस्यप्रमाणं लक्षणंच ....          | ११         | संन्यासग्रहणेफलम् ..                    | ११         |
| साग्नेर्निरग्नेश्चविधिः ....         | ११         | कृच्छ्रनादीश्राद्धविरजाहोमाशक्तौनि०     | ११         |
| संन्यासग्रहणक्रमः ....               | ११         | आतुरसंन्यासविधिः ..                     | ६००        |
| तत्राधिकारार्थस्वयंनवश्राद्धादीनि    |            | तत्रअप्सुहोमः ..                        | ११         |
| कर्तव्यानि ....                      | ११         | आतुरसंन्यासिनिमृतेनि० ..                | ११         |
| अनाश्रमीचेत्प्रायश्चित्तम् ....      | ११         | विरक्तस्यातुरस्यनिर्ण० ..               | ११         |
| संन्यासग्रहणकालः ....                | ११         | समाधिसंस्कारादिनि० ..                   | ११         |
| संन्याससंकल्पादि० ....               | ५९५        | आतुरसंन्यासानंतरंजीवितश्चेन्निर्ण०      | ६०१        |
| होमेअग्निसिद्धिः ....                | ११         | कुटीचकस्यदहनम् ..                       | ११         |
| तत्राहिताग्नेर्गार्हपत्ये ....       | ११         | बहूदकंपूरयेत् ..                        | ११         |
| विधुरोग्निहोत्रीचेत् ....            | ११         | हंसस्यजलेनिक्षेपः ..                    | ११         |
| ब्रह्मचारीचेत्लौकिके ....            | ११         | परमहंसंपूरयेत् ..                       | ११         |
| वपनपूर्वकंसावित्रीप्रवेशादिकर्म .... | ११         | पलाशमूलेनदीतीरेवापूरणम् ..              | ११         |
| अत्रविरजाहोमःकेचिन्मते ....          | ११         | शवस्यस्नानालंकरणादिपूजनम् ..            | ११         |
| ततोवशिष्टप्रयोगः ....                | ५९६        | यथास्थानंदंडादिदानम् ..                 | ११         |
| अथयतिधर्माः ....                     | ५९७        | ततःप्रोक्षणम् ..                        | ११         |
| अथयतिभिक्षांकालः ....                | ११         | अवटेप्रोक्षणंमेतन्निक्षेपश्च ..         | ११         |
| यतोर्भिक्षाविधिः ....                | ५९८        | शंखेनमूर्धभेदनम् ..                     | ११         |
| यतेर्भोजनविधिः ....                  | ११         | ततो लवणेन गर्तपूरणम् ..                 | ११         |
| यतिभिक्षादानेफलम् ....               | ११         | कुटीचकस्यदहनविधिः ..                    | ११         |
| यतेर्ग्रामादौवासदिनानि ....          | ११         | अस्त्रांत्येनिक्षेपः ..                 | ११         |
| निषिद्धवासस्थानानि ....              | ११         | अस्याशौचं नास्ति ..                     | ११         |
| यतेर्निषिद्धकर्माणिषट् ....          | ११         | एकादशेहोमपार्वणम् ..                    | ११         |
| यतेःपतनहेतूनि कर्माणिषट् ....        | ११         | हंसपरमहंसानांनपार्वणम् ..               | ११         |
| यतेर्बधकषट्कर्मा० ....               | ११         | द्वादशेहोमनारायणबलिः ..                 | ६०२        |
| यतिपात्राणि ....                     | ११         | तद्विधिरन्यश्चविशेषः प्रागुक्तः ..      | ११         |
| यतेर्निषिद्धभिक्षा ....              | ११         | ग्रंथकर्तुःश्लोकाः ..                   | ११         |
|                                      |            | इतिनिर्णयसिंधोर्विषयानुक्रमणिकासमाप्ता. |            |



श्रीः ।

## अथ निर्णयसिन्धुः प्रारभ्यते ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ अविघ्नमस्तु ॥  
 कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥ विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालंबि  
 शाखिनं वन्दे ॥ १ ॥ लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतलरं जितगोकुलम् ॥ बर्हर्षीं  
 घनश्यामं महः किंचिदुपास्महे ॥ २ ॥ वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥  
 पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥ यत्पादसंस्मृतिः सर्वमङ्गलप्रति  
 भूर्मता ॥ तान् भट्टरामकृष्णारूपां श्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥ सर्वकल्याणसं  
 दोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥ युनदीसोदरीमंबामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥  
 बिन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ॥ ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपा  
 स्महे ॥ ६ ॥ हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां  
 परेषाम् ॥ श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकराख्यः काले यथामति विनिर्णय  
 मातनोति ॥ ७ ॥ सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ॥ तथाप्यमु  
 ष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥ तत्र संक्षेपतः कालः षोढा-अब्दोयनमृ  
 तुर्मासः पक्षो दिवस इति ॥ तत्राब्दो माधवमते पञ्चर्धा-सावनः सौरश्चान्द्रो  
 नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति ॥ गुरोर्मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः ॥ स च ज्योतिः  
 शास्त्रे प्रसिद्धः ॥ हेमाद्रिस्त्वन्त्ययोर्धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात्तिस्र एव विधा आह ॥  
 तत्र वक्ष्यमाणैः सावनादिद्वादशमासैस्तत्तदब्दम् ॥ मलमासे तु सति षष्टिदिना  
 त्मक एको मास इति ॥ द्वादशमासत्वमविरुद्धम् ॥ तथाच व्यासः 'षष्ट्या तु दि  
 वसैर्मासः कथितो बादरायणैः' इति ॥ तत्र चान्द्रोऽब्दः षष्टिभेदः ॥ तदाह गार्ग्यः

१ अन्ववायो वंश इति टीका २ कल्पद्रुतलरञ्जितगोकुलम्, कल्पद्रुतलं रञ्जितगोकुल-  
 म्, इति टीकास्थपाठान्तरम् ३ इदं च राजसिंह इतीवपूर्वपदार्थगतश्रैष्ठ्यतात्पर्यग्राहकम्  
 'तं भट्टरामकृष्णारूपां श्रीतातं सादरं नुमः' इति तु रमणीयमिति संशयध्वान्तनाशिनी  
 व्याख्याकृत् ४ तथा चोक्तं माधवेनैव - सौरबृहस्पतिसावनचान्द्रिकनाक्षत्रिकाः क्रमेण  
 स्युः । मा<sup>३६</sup>तु<sup>५</sup>ल<sup>३३</sup>पा<sup>३८</sup>ता<sup>३५</sup>ला<sup>३६</sup>तु<sup>३८</sup>ल<sup>३५</sup>विमेलवराङ्गाश्च वत्सराः पञ्च ॥ इति टीका ॥



‘प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोथ प्रजापतिः ॥ अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धाते  
 श्वरस्तथा ॥ बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमोथ वृषस्तथा ॥ चित्रभानुः सुभानुश्च  
 तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥ सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः ॥ नन्दनो  
 विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥ हेमलम्बो विलम्बोथ विकारी शार्वरी पुवः ॥  
 शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥ पुवंगः कीलकः सौम्यः साधारण  
 विरोधकृत् ॥ परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोनलः ॥ पिङ्गलः  
 कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती ॥ दुन्दुभीरुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥  
 इति । यद्यपि ज्यौतिषे गुरोर्मध्यमराशिभोगेन प्रभवादीनां माघादौ प्रवृत्तिरु  
 क्ता । तथापि प्रभवादीनां चान्द्रत्वमप्यस्ति ‘चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके  
 युगे’ इति माधवोक्तेः ॥ तेन चान्द्रः प्रभवादिश्चैत्रसिते प्रवर्तते, बार्हस्पत्यस्तु मा  
 घादौ ॥ तयोर्विनियोगो ज्योतिर्निबन्धे ब्रह्मसिद्धान्ते ‘व्यावहारिकसंज्ञोऽयं  
 कालः स्मृत्यादिकर्मसु । याज्यः सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे’ ॥ आ  
 ष्टिषेणः ‘स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा । नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृ  
 त्तिस्तस्य कीर्तिता’ इति ॥ अयनं तु सौरर्तुत्रयात्मकम् । ‘सौरर्तुत्रितयं प्रदिष्टम  
 यनम्’ इति दीपिकोक्तेः ॥ तत्तद्विविधम् दक्षिणमुत्तरं चेति ॥ कर्कसंक्रांतिर्द  
 क्षिणायनं मकरेन्त्यम् ॥ अनयोर्विनियोगमाह मदनरत्ने सत्यव्रतः ‘देवता  
 रामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ । दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात्’  
 वैखानसः ‘मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहंन्यश्च स्था  
 प्या वै दक्षिणायने ॥’ वैशब्दोप्यर्थे न तु दक्षिणायन एवेति नियमः । पूर्ववचने  
 दक्षिणायने निषिद्धाया देवप्रतिष्ठाया देवविषये प्रतिप्रसवमात्रात् ॥ रत्नमाला  
 याम् ‘गृहप्रवेशाद्विदशप्रतिष्ठा विवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं  
 विधेयं यद्गर्हितं तत्स्वल् दक्षिणे च’ इति ॥ अस्यापवादः काशीखण्डे ‘सदा  
 कृतयुगं चास्तु सदाचास्तूत्तरायणम् । सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां  
 सताम्’ ॥ इत्ययनम् ॥ ऋतुर्मासद्वयात्मा ॥ मलमासे तु मासद्वयात्मक एको  
 मासः तेन मासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम् । स द्वेधा-चान्द्रः सौरश्च । चैत्रारम्भो वसन्ता



दिश्वान्द्रः, मीनारम्भो मेषारम्भो वा सौरः 'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः' इति  
 बौधायनोक्तेः । अनयोर्विनियोगमाह त्रिकाण्डमण्डनः " श्रौतस्मार्तक्रियाः  
 सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु । तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम् । " सद्धि  
 विधोपि षोढा वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः शरद्धेमन्तः शिशिरः । इत्यृतुः ॥ मासश्चतुर्धा  
 सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्र इति ॥ त्रिंशद्दिनः सावनः । अर्कसंक्रान्तेः संक्रान्त्यव  
 धिः सौरः ॥ यद्यपि हेमाद्रिमाधवकालादर्शाद्यालोचनेन 'मेषसंक्रान्त्यां स  
 माप्ताभावास्यकत्वं चैत्रत्वम्' इतिलक्षणाच्च मेषसंक्रान्तेश्चैत्रत्वं प्रतीयते तथापि  
 मेषसंक्रमे दर्शद्वये सति वैशाखस्यैवाधिक्यात्तत्पूर्वभावित्वेन मीनस्यैव चैत्रत्वं  
 युक्तम् । एवं मेषादयो वैशाखाद्याः अतो मीनसंक्रान्त्या मध्यस्य पौर्णमासिकत्वम्  
 आद्यतिथिकत्वं वा चैत्रत्वमिति लक्षणात् मीन एव सौरश्चैत्रः ॥ एवं वैशाखाद  
 योपि मेषाद्या ज्ञेयाः ॥ सौरमासप्रसङ्गात् संक्रान्तिनिर्णय उच्यते ॥ तत्र 'पूर्वतोपि प  
 रतोपि संक्रमात् पुण्यकालघटिकास्तु षोडश' इति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्त  
 विशेषस्तूच्यते । अत्र मामकाः संग्रहश्लोकाः 'प्रागूर्ध्वादश पूर्वतः षड्वनिस्तद्व  
 त्पराः पूर्वतस्त्रिंशत् षोडश पूर्वतोऽथ परतः पूर्वाः पराः स्युर्दश ॥ पूर्वाः षोडश चोत्तरा  
 ऋतुभुवः पश्चात्स्ववेदाः पुनः पूर्वाः षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः ॥  
 अस्यार्थः । मेषे प्रागूर्ध्वं च दश घटिकाः पुण्यकालः, वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः  
 षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां  
 प्रागूर्ध्वा दश, वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि पराः षोडश, मकरे चत्वारिंशत्पराः ।  
 इदं च हेमाद्रिमतेनोक्तम् । माधवमते त्वत्र परा विंशतिः पुण्याः, कुम्भे  
 पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडशेति ॥ 'याप्युत्तरा पुण्यतमामयोक्ता सायं भवेत्सा  
 यदि सापि पूर्वा ॥ पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते साप्युत्तरा रात्रिनिषेधतः स्यात्  
 अर्वाक् निशीथाद्यदि संक्रमः स्यात्पूर्वेहि पुण्यं परतः परेहि ॥ आसन्नयामद्वय  
 मेव पुण्यं निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात् ॥ कर्के ज्ञेयेवमिति ह्युवाच हे  
 माद्रिसूरिश्च तथा परार्कः ॥ ज्ञषः प्रदोषे यदि वार्धरात्रे परेहि पुण्यं त्वथ क

१. अयं यद्यपीत्यादि--मेषाद्या ज्ञेया इत्यन्तः पाठो लिखितप्राचीनपुस्तके नोपलभ्यते ।



कटश्चेत् ॥ प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वेह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः ॥ अत्र  
मूलवचनानि माधवापरार्कहेमाद्यादिषु द्रष्टव्यानि ॥ सर्वासु संक्रांतिषु दा  
नविशेषो हेमाद्रौ दानकाण्डे उक्तः ॥ विश्वामित्रः 'मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं म  
हाफलम् ॥ वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च ॥ वस्त्रान्नपानदानानि मिथु  
ने विहितानि तु ॥ घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेऽपि विशिष्यते ॥ समुवर्णं छत्रदानं सिं  
हेऽपि विहितं सदा ॥ कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च ॥ तुलाप्रवेशे ति  
लानां गोरसानामपीष्टदम् ॥ अन्नकीचलिते भानौ दीपदानं महाफलम् ॥ अन्नकी  
वृश्चिकः । धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम् ॥ ज्येष्ठप्रवेशे दारुणां दा  
नमग्रेस्तथैव च ॥ कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य च ॥ मीनप्रवेशे स्थाना  
नां मालानामपि चोत्तमम् ॥ इति ॥ अत्रोपवासमाह हेमाद्रावापस्तम्बः 'अयने  
विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः । स्नात्वा यस्त्वर्चयेद्भानुं सर्वकामफलं लभेत् ॥  
अशक्तौ तु वृद्धवसिष्ठः 'अयने संक्रमे चैव' ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ अहोरात्रोपि  
तः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अत्रोपवासः संक्रमदिने, दानादि तु पुण्यकालदिने  
इत्याचार्यचूडामणिः ॥ विधिलाघवात् पुण्यकालदिन एवोभयमिति वृद्धाः ॥  
इदं च पुत्रिगृहस्थातिरिक्तविषयम् 'आदित्येहनि संक्रातौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥  
उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा तथा' ॥ इति जैमिनिवचनात् । अत्र श्राद्धमु  
क्तं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे 'श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते' । अपरार्कैपिवि  
ष्णुः 'आदित्यसंक्रमणं विषुवद्वयम्' विशेषेणायनद्वयम्, व्यतीपातः, जन्मर्क्षम्  
अभ्युदयश्च, एतास्तु श्राद्धकालान्वैकाम्यानाह प्रजापतिः ॥ इति ॥ द्वादशादिदिने  
रर्वागयनांशप्रवृत्तावपि पुण्यं वक्तुमयनग्रहणम् । अन्यथासंक्रमेण सिद्धेरयनग्र

१ अहोरात्रोपित इति प्रत्ययार्थो भूतकालो न विवक्षितः 'अमावास्या द्वादशी च  
संक्रान्तिश्च विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥ अत्र स्नानं जपो  
होमो देवतानां च पूजनम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम् इति सांवर्तैकवा  
क्यत्वात् ॥ वस्तुतस्तु 'प्राच्यद्वात्रितयैवोपवसनम्' इति दीपिकायाम् प्राचीतिविशे  
षणात् ॥ 'त्रिरात्रोपोषितः' इति पूर्ववाक्ये इवात्र प्रत्ययार्थविवक्षा । सांवर्तं संक्रान्त्य  
धिकरणकोपवासविध्यन्तम् इति टीकानिष्कर्षः । २ अभ्युदयो विवाहादिमङ्गलम् ।



हणं व्यर्थं स्यादित्यपरार्कः ॥ हेमाद्रावपि गालवः 'अयनांशकतुल्येन काले नैव स्फुटं भवेत् ॥ मृगकर्कादिगे सूर्येयाभ्योदगयने सति ॥ तदासंक्रान्तिकालेस्यु रुक्ताविष्णुपदादयः' इति ॥ अयनांशच्युतिरूपेसंक्रान्तिकालेपिविष्णुपदादयः प्रवर्तन्ते। तेन तत्प्रयुक्तं पुण्यकालादितत्रापिज्ञेयमितिसएव व्याचख्यौ ॥ तच्च मेषायनंवृषायनमित्यादिसर्वत्रज्ञेयम् ॥ माधवीयेपि जावालिः—'संक्रान्तिषु यथा कालस्तदीयेप्ययने तथा ॥ अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा' ॥ इति ॥ मकरायणे पूर्वाः विंशतिघटिकाः पुण्याः, मकरसंक्रान्तौ तु पश्चाद्विंशतिः पुण्याः अन्यत्रायने तत्संक्रान्तिवदित्यर्थः ॥ विष्णुपदादिस्वरूपंचदीपिकायामुक्तम् 'हर्यङ्घ्रिर्वृषसिंहवृश्चिकघटेष्वर्कस्ययः संक्रमः कन्यामीनधनुर्नृयक्षुषडशीत्याख्यं तुलामेषयोः ॥ प्रोक्तं तद्विषुवंज्ञपेयनमुदकर्काटके दक्षिणम्' इति ॥ हर्यङ्घ्रिर्विष्णु पदम्, नृयुक्मिथुनम् ॥ अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् ॥ तथाचापरार्के मात्स्ये 'अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ॥ संक्रान्तिषु च सर्वासु पिण्ड निर्वपणादते' ॥ इति ॥ श्राद्धशूलपाणिस्तु अस्य निर्मूलत्वात् समूलत्वेपि 'ततः प्राप्नोति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु । त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताह नि' इति मात्स्योक्तेर्ग्रहणाग्रहणवद्विकल्प एव इत्याह ॥ तन्न । अस्य पार्वणा नुवादकत्वेन पिण्डाविधायकत्वात् ॥ पिण्डो व्यक्तिः ॥ अन्यथैकपदे पिण्डानुवादे त्रित्वविधौ वषट्कर्तुः प्रथमभक्षवद्वैरूप्यापत्तेः ॥ तथाचोभयसमूलत्वे पिण्डरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्युभयवचनयोरर्थः ॥ त्रिपिण्डशब्देनैकोद्दिष्टव्यावर्तनमात्रम् ॥ मङ्गलकृत्येषु विशेषमाह ज्योतिर्निबन्धे नारदः 'त्या ज्याः सूर्यस्य संक्रान्तेः पूर्वतः परतस्तथा ॥ विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडशषोडश' इति ॥ एतत्पुण्यकालोपलक्षणम् ॥ 'भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्धयामकः' इति ज्योतिःप्रकाशेवर्ज्येषु परिगणनात् ॥ अयनव्यतिरिक्तासु

१ वैधीप्राप्तिमनूयैकार्थस्य निषेधस्य पाक्षिकतन्निवृत्तौ पर्यवसानादिति टीका २ उद्देश्यत्वं विधेयत्वरूपवैरूप्यापत्तेः । अनेनैव पिण्डविधौ तदुद्देशेन त्रित्वविधौ चैकप्रसरताभङ्गापत्तिरिति टीकाशयः । ३ कुलिकज्ञानं मुहूर्तग्रन्थानुसारेण ।



दशसु संक्रान्तिषु रात्रौ स्नानश्राद्धादि न कार्यम्, अहि संक्रमणे कृत्स्नमहःपु  
 ण्यंप्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः । अर्धरात्रादधस्त  
 स्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वसंक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् । पूर्णे  
 चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमतेरविः प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ इ  
 ति वृद्धवसिष्ठादिवचनैरहःपुण्यत्वोक्त्या 'रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु त  
 त्क्रियाम् । पूर्वस्मात्परतो वापि प्रत्यासन्नस्य तत्फलम्' इति वसिष्ठवचनाच्चात्था  
 द्रात्रौ स्नानादिनिषेधप्रतीतेः ॥ यानितु 'विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु ।  
 तथोपरागपातादौ स्नानेदानेनिशा शुभा' इति 'राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृ  
 द्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्युर्निशिकाम्यव्रतेषु च' ॥ इत्यादीनि विष्णुगोभिलादिव  
 चनानितानि मकरकर्कसंक्रान्तिविषयाणि ॥ 'मुक्त्वामकरकर्कटौ' इति तयोर्दि  
 वानुष्ठानस्य पर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः ॥ वस्तुतस्तु प्रागुक्तवचने  
 न तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेव पर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि 'स्नानं दानं परेहनि' इ  
 त्यादिभिरहःपुण्यत्वोक्तेः अहःपुण्यत्वानुपपत्त्या कल्प्यरात्रिनिषेधस्य च प्रत्य  
 क्षरात्रिविधिना बाधात्सर्वसंक्रान्तिषु रात्रावनुष्ठानविकल्पः ॥ सच देशाचाराद्व्य  
 वतिष्ठत इति युक्तः पन्थाः ॥ अयनयोस्तु वक्तव्यो विशेषः श्रावणेमाघे च वक्ष्यते  
 ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः 'यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् । तन्मासा  
 भ्यन्तरे तस्य वैरक्लेशधनक्षयाः । तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ॥  
 स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम्' ॥ हेमाद्रौ 'अहि चेद्रात्रियुग्मं  
 स्याद्रात्रौ चेद्वासरद्वयम् ॥ संक्रान्तिः पक्षिणी ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ यत्तु  
 मौडाः 'संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे ॥ सायंसंध्यां न कुर्वीत कुर्व  
 श्वपितृहा भवेत्' इति कर्मोपदेशिन्यां व्यासोक्तेः सायं पुण्यकाले संध्या  
 निषेधमाहुः ॥ तन्निर्मूलम् ॥ अन्यच्च बहु वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते ॥ इति  
 संक्रान्तिनिर्णयः ॥ पक्षयुगजश्चान्द्रो मासः ॥ सद्देधाशुक्लादिरमान्तः, कृष्णादिः

१ अस्यार्थस्तु विषुवायनयोरहि संक्रमे पूर्वापरनिशयोस्तदहि वाध्यापनाध्ययने  
 वर्जयेत्, रात्रिसंक्रमे पूर्वापरदिनयोस्तद्रात्रौ च वर्जयेत् । एवं पक्षिणी संक्रान्तिः ।  
 द्वादशप्रहरपर्यन्तमनध्यायादिकमिति तात्पर्यम् इति धर्मसिन्धुतोवगन्तव्यः ॥



पूर्णमान्तश्चेति ॥ तथाच त्रिकाण्डमण्डनः 'चान्द्रोपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादि  
 वेतिच द्विधा' ॥ इत्युक्त्वा देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह 'कृष्णपक्षादिकं मासं  
 नाङ्गीकुर्वन्ति केचन ॥ येषीच्छन्ति न तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे' इति ॥  
 विन्ध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरतो द्वयोरभ्यनुज्ञा गम्यते ॥ तत्रापि शुक्ला  
 दिर्मुख्यः, कृष्णादिर्गौणः ॥ शास्त्रेषु चैत्रशुक्लप्रतिपद्येव चान्द्रसंवत्सरारम्भोक्तेः  
 तदुक्तं दीपिकायाम् 'चान्द्रोब्दो मधुशुक्लगप्रतिपदारम्भः' इति ॥ नहि ये कृष्णा  
 दिमन्यन्ते तेषां वत्सरारम्भो भिद्यते ॥ अतः शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिना मल  
 मासासंभवाच्च ॥ चन्द्रस्य सर्वनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः ॥ सावनादीनां  
 व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ ब्रह्मसिद्धान्ते 'अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद्ब्राह्म-  
 णस्य तु ॥ संक्रान्तिपौर्णिमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः' ॥ अत्र ब्राह्मणादीनां  
 यत्र कर्मविशेषे वचनान्तरेण 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' इत्यादिवन्मास उक्तः  
 तत्र दर्शान्तत्वमात्रं नियम्यते न तु सर्वकर्मसु दर्शान्त एवेति ॥ वृष्ट्याद्यर्थसौभरे  
 हीषादिनिधननियमवद्विधिलाघवात् ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः  
 सावनादीनां शूद्रानुलोमादिपरत्वापत्तेश्चेति गुरुचरणाः ॥ ज्योतिर्गर्गः 'सौरो  
 मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः ॥ आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो  
 मासः प्रशस्यते' ॥ ऋष्यशृंगः 'विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते ॥ पार्वणे  
 त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके' ॥ स्मृत्यन्तरे 'एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणा  
 दौ सौरसावनौ' ॥ ज्योतिर्गर्गः 'आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा ॥  
 सावनेनैव कर्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना' ॥ विष्णुधर्म 'नक्षत्रसत्राण्ययनानि  
 चेन्दोर्मासेन कुर्याद्भगणात्मकेन' इति ब्राह्मे ॥ 'तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते  
 शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्' ॥ अथमल  
 मासः । तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहितः सितादिश्चान्द्रो मासो मलमासः ॥ एकमात्रसं  
 क्रान्तिराहित्यमसंक्रान्तत्वेन संक्रान्तिद्वयवत्त्वेन च भवतीति-मलमासो द्वेधा  
 अधिमासः क्षयमासश्चेति ॥ तदुक्तं काठकगृह्ये 'यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः  
 संक्रान्तिद्वयमेव वा ॥ मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः' इति ॥ स

१ 'मासे त्रिंशत्तमं भवेत्' इति कालमाधवस्थपाठः ।



त्यत्रतोपि 'राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः ॥ नाधिमासो भवेदेष  
मलमासस्तु केवलम्' इति ॥ अधिकमासस्य कालनियममाह वसिष्ठः 'द्वात्रिं  
शद्दिर्मितैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा । घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमास  
कः' ॥ इति ॥ एतच्च सावनादिमानेन संभवार्थं नतु नियमार्थम् ॥ अन्यथा षोडश  
दिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लादित्वभंगापत्तेः । तेन न्यूना  
धिककाले मलमासपातेऽपि न दोषः ॥ अत एवोक्तं माधवीये 'मासे त्रिंशत्तमे भवे  
त्' इति ॥ क्षयस्यापि ज्योतिःशास्त्रे 'असंक्रान्तिमासोधिमासः स्फुटं स्यात्  
द्विसंक्रातिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ॥ क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्तदा  
वर्षमध्येधिमासद्वयं च' ॥ एकः क्षयात्पूर्वः, परतश्चैक इत्यधिमासद्वयं भवतीत्यर्थः  
अत्र विशेषमाह जावालिः 'मासद्वयेऽदमध्ये तु संक्रांतिर्न यदा भवेत् ॥ प्राक्त  
तस्तत्रपूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः' इति ॥ उत्तर एव कालाधिक्यं न पूर्वस्मि  
न्नित्यर्थः ॥ यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते 'चैत्रादर्वाङ्गाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत्' इति  
तत्र चैत्रात्पूर्वमसंक्रान्तद्वये पूर्वो नाधिकः, किंतु पर इत्यर्थः ॥ यच्च ज्योतिःसि  
द्धान्ते 'घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाथ धन्विनि ॥ मकरे वाथ कुम्भे वा नाधिमा  
सो विधीयते' ॥ इति ॥ तत् वृश्चिकादिचतुष्टये मलमासे सति पूर्वम्, तुलाकन्या  
गते सूर्ये क्षयात्पूर्वं कालाधिक्यनिषेधार्थं न त्वधिकमात्रस्य । 'दशानां फाल्गु  
नादीनां प्रायोमाघस्य च कचित् ॥ न पुंसकत्वं भवतीत्येष शास्त्रविनिश्चयः' इति  
हेमाद्रौ विष्णुधर्मविरोधात् मलमासेष्टकादिनिषेधानुपपत्तेश्च । मकरे वाथ कुम्भे  
वा इति दृष्टान्तार्थं प्राप्त्यभावाच्च । क्षयस्यागमनकालोक्तः सिद्धान्तशिरोमणौ  
'गतोऽब्ध्यद्रिर्नैर्गतेशाककालेतिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः । गजाद्यग्निभूमि  
स्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः कचिद्भोक्तुभिश्च' ॥ इति ॥ अब्ध्यश्चत्वारः, अद्रयः  
सप्त, नंदाः नव, एषां प्रातिलोम्येन पाते ९७४ तैर्मिते वर्षे कश्चित् क्षयमासः पूर्व  
जात इत्यर्थः तिथयः पञ्चदश १५ ईशाएकादश १११५ एवंमि ते याते कश्चि  
द्भविष्यतीत्यर्थः । अङ्गा ६ क्षयसूर्याः १२ एकत्र १२५६, गजाः ८ अद्रयः ७  
अग्नयः ३ भूः १ एकत्र १३७८, कुः १ वेदाः ४ इन्दुः १ एकत्र १४१, गावः ९  
कुः १ एकत्र १९ एतैर्मिते वर्षे याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः ॥ अथ मलमासे



कार्याकार्यं निरूप्यते-तत्र जावालिः 'नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलिल्लुचे ॥ तिथिनक्षत्रवारोक्तंकाम्यं नैव कदाचन' ॥ अयंचकाम्यनिषेधः आरम्भसमाप्तिविषयः "असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम संमतः ॥ व्रतानां चैव यज्ञानामारम्भश्च समापनम्" इति तेनैवोक्तत्वात् ॥ असूर्या अधिकमासा इत्यर्थः । तत्र 'मण्डलं तपतेरविः' इति वचनात् ॥ कारीर्यादेः काम्यस्य त्वारम्भसमाप्ती भवत एवेत्यादिरन्यत्र विस्तरः ॥ काठकगृह्येऽपि 'मले ऽनन्यगतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्' इति ॥ तानि नैमित्तिकानि दीपिकायामुक्तानि 'यन्नैमित्तिकमग्निनष्टचनुगताग्न्याधानमर्चासुवा संस्कारादिविलोपने सति पुनः प्रोक्तं प्रतिष्ठादिकम्' इति ॥ गत्यन्तरयुतं तु सोमादि हेयमेव । तत्र कर्तव्यान्युक्तानि कालादर्शे 'द्वादशाहं सपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः । सीमन्ते पुंसवे श्राद्धं द्वावेतौ जातकर्म च । रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धव्रतानि च ॥ प्रायश्चित्तानि मित्तस्य वशात्पूर्वं परत्र च ॥ अब्दोदकुम्भमन्वादिमहालययुगादिषु । श्राद्धं दर्शप्यहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम् ॥ मलिल्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् । श्राद्धं नुपूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेव युगादिषु ॥ मन्वादिषु च यद्दानं दानं दैनंदिनं च यत् ॥ तिलगोभूहिरण्यानां संध्योपासनयोः क्रिया ॥ पर्वहोमश्चाग्रयणं साग्निरिष्टिश्च पर्वणि ॥ नित्याग्निहोत्रहोमश्च देवतातिथिपूजनम् ॥ स्नानं च स्नानविधिनाप्यभक्ष्यापेयवर्जनम् ॥ तर्पणं वा निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च ॥ इति ॥ एतौ पुंसवनसीमन्तौ ॥ एतच्च गर्भाधानायन्नप्राशनान्तसंस्कारोपलक्षणम् ॥ तदुक्तं दीपिकाम् 'गर्भाधानमुखं च चौलविधितः प्राग्जातयागं विना कृच्छ्रेष्वाग्रयणं गजेन्द्रपुरतश्छाया मघानङ्गयोः ॥ तीर्थे दुक्षययोश्च पित्र्यमधिके मास्येवमायाचरेत् इति ॥ अलभ्ययोगे ऽर्धोदयपद्मकादौ काम्यान्यपि व्रतादीनि कार्याणीत्यर्थः ॥ पूर्वं परत्र मले शुद्धे चेत्यर्थः ॥ महालयशब्देन

१ यत् ॥ 'प्रवृत्तं मलमासात् प्राक्काम्यं कर्मा समापितम् ॥ आगते मलमासेऽपि तत्समाप्तिर्न संशयः' इति ॥ तत्सावनमासप्रवृत्तकृच्छ्रचान्द्रायणादिपरमिति माधवः ॥ २ यस्यान्यमासे नुष्ठाने कालातिक्रमानिमित्तप्रायश्चित्तापत्तिविहितकालालाभेन लोपोवातादित्यर्थः ॥



मघात्रयोदशुच्यत इति माधैवः ॥ दर्शश्राद्धं मलेपि कार्यम् ॥ यत्तुऋष्यश्रु-  
द्धः संवत्सरातिरेकेण मासो यः स्यान्मलिम्लुचः ॥ तस्मिन्मघयोदशे श्राद्धं न  
कुर्यादिदुसंक्षये।इति ॥ तत्काम्यदर्शश्राद्धविषयम् 'काम्यं नैव कदाचन' इतिव  
चनात् ॥ दर्शे च काम्यं श्राद्धं 'कन्यांकन्यावेदिनश्च' इत्यादिना याज्ञवल्क्येनो-  
क्तम् ॥ नित्यं तु मलेपि भवत्येव 'दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धं दानं च प्रतिवासरम्। गोभूति-  
लहिरण्यानां मासेपि स्यान्मलिम्लुचे' ॥ इति मात्स्योक्तेरिति हेमाद्यादयः ॥  
दिवोदासीयेपि 'अनिन्दुरिन्दुपूर्णा च हरिवारो बुधाष्टमी ॥ नाधिमासे परित्या-  
ज्याः सीमन्तान्नाशने शिशोः' इति ॥ अनिन्दुदर्शः ॥ 'द्विविधमप्यमाश्राद्धं न का-  
र्यम्' इत्यपरार्कः 'अत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत्' इत्युक्तेः ॥ "षष्ठ्या तु  
दिवसैर्मासः" इति शुद्धमासकरणेऽपि शास्त्रार्थोपपत्तेर्दर्शश्राद्धं मले न कार्यमिति  
प्राचीनगौडाः । शूलपाणिश्च संवत्सरप्रदीपेपि " एकराशिस्थिते सूर्ये  
यदा दर्शद्वयं भवेत् । दर्शश्राद्धं तदादौ स्यान्न परत्र मलिम्लुचे" । अत्रापि  
नित्यकाम्यभेदेन प्राग्व्यवस्था ॥ यद्यपि कालादर्शे 'सर्वं वार्षिकं मासद्वये  
कार्यम्' इत्युक्तम् तथापि हेमाद्रिमाधवापरार्कादिमतात् प्रथमाब्दिकं  
त्रयोदशे मलमासे द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास एव कार्यम् । "असंक्रान्तेपि  
कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः । तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा"  
इति हारीतोक्तेः । "आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । चतुर्दशे

१ अत्रेदमपि बीजम्— "महालयशब्दस्य मघात्रयोदश्यां लक्षणाव्यर्था 'वृद्धिश्राद्धं तथा  
सोममग्न्याधेयं महालयम्। राज्याभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलङ्घिते' इति भृगूक्तनिषेध-  
स्य च कालातिपन्नमहालयविषयकत्वात् । यतः 'संसर्प आश्विनादिषट्क एव' इति भूतेऽतीतो  
महालयस्तत्र मासोऽपि न कार्यः । किंतु तदुत्तरगौणतत्काल एवेति। यदि तु 'भाद्रपदोऽपि संस-  
र्पः' इति मतम् । तदा प्रत्याब्दिकादिवत्स्वकालप्राप्तो महालयो भवत्येव । एवमेव तथा  
धिमाससंसर्पमलमासादिषु द्विज । प्रथमे या कृतिर्न स्यात्' इति संसर्पपदोपादानसंगतिः ॥  
आश्विनस्यैव संसर्पत्वे तत्रोपाकर्मप्राप्तिरेव निषेधानुपपत्तेः" इति ॥ इति टीका ॥  
२ 'मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः । चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वे धिमा-  
सोन्त्यः' इति ज्योतिः पितामहोक्तिर्मेषाद्याधिकरणदर्शान्तत्वादिरूपस्य चैत्रत्वादेर्दर्शद्वये स-  
त्वेन्यो धिमास इति तदभिप्रायकमेतत्, इति टीका ॥ ३ अपरार्कादिमतं निरस्यति इति टीका ॥



तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम्” इति स्मृत्यन्तरोक्तेश्च ॥ पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशे मासेऽतीते चतुर्दशाद्यदिने कुर्यादित्यर्थः ॥ यत्तु सत्यव्रतः ‘वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि । मलमासे न नत्कार्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा’ इति ॥ तद्वितीयादिवार्षिकविषयम् । ‘आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे’ इति पूर्वोक्तवचनात् ॥ यत्र द्वादशं मासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिक एवाद्याब्दिकं कार्यम् यत्र त्वाधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्ध एव प्रथमाब्दिकं इति निष्कर्षः ॥ तेन द्वितीयादिशुद्धमास एव पृथ्वीचन्द्रोदये दिवोदासीये मदनहारिजाते चैवम् ॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यम् । यथा पैठीनसिः ‘मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मलमासेऽपि कर्त्तव्यं नान्येषां तु कथंचन’ इति ॥ हेमाद्रौ व्यासोऽपि ‘मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत् । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धपिण्डोदकादिषु’ ॥ अत्राधिकमृतस्य न द्वितीयाद्यब्देऽपि सौरविधिः, द्वितीयादावन्याधिकेऽपि बाब्दिकेऽपि पूर्वनियमविधिवैरूप्यात् किंतु प्रथमाब्दिकस्य मले नियमात् ॥ सत्यव्रतेन तद्भिन्नस्य सर्वस्याधिके प्रतिप्रसवमात्रे लाघवात् ॥ अतो न द्वितीयादौ सौरमासप्रसङ्गः । ‘चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके । मासपक्षतिथिस्पष्टे’ इत्यादिविरोधाच्च ॥ यत्तु वृद्धवासिष्ठः ‘श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि । मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति’ । यच्च व्यासः ‘उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः’ इति तन्मासिकादिविषयम् ॥ ‘यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् । मन्वादिनं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च’ इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः । तैर्थिकं तीर्थश्राद्धं तच्च मासद्वयेऽपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टः । केचित्तु ‘प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि’ इति मरीचिवचनात् ‘वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि । मासद्वयेऽपि तत्कुर्याद्व्याघ्रस्य वचनं यथा’ इति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुः ॥ तत्तुच्छम् ॥ प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकम् । प्रतिसंवत्सरं क्रियमाणं



कल्पादिश्राद्धं इति मरीचिवचसो मदनरत्नेन व्याख्याना-  
 मलमासकार्याणि त् ॥ गालवीयस्य च 'मासद्वयात्मके क्षयमासे' इति माध-  
 वेन व्याख्यानात् ॥ यच्च कैश्चिदुक्तम् प्रथमाब्दिकं मासद्वये  
 कार्यम् । "आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मल्लिल्लुचे । त्रयोदशे च संप्राप्ते  
 कुर्वीत पुनराब्दिकम् ।" इति यमोक्तेः ॥ तदपि चिन्त्यम् । पुनराब्दिकं द्वितीयादि-  
 वार्षिकं त्रयोदशेऽतीते चतुर्दशे कुर्यात् ॥ अन्यथा 'सांवत्सरं वर्धेत श्राद्धं तत्र मृते  
 हनि' इति पैठीनसि विरोधः स्यात् इति हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ॥ एतेन न व-  
 र्धेत न च्छिन्द्याच्छुद्धेऽपि कुर्यादेवेत्यनन्त भट्टव्याख्या मानाभावात् परास्ता ॥  
 पूर्वव्याख्यायां तु हारीतीये प्रथमग्रहणमेव मानम् ॥ यदपि निर्णयामृते पूर्वोक्त-  
 कालादर्शवचनात् मलमासे श्राद्धादिनस्य वन्ध्यत्वनिरासार्थं पित्रुद्देशेन ब्राह्म-  
 णान् भोजयित्वा शुद्धमासे सपिण्डकं श्राद्धं कुर्यात् 'पिण्डवर्जमसंक्रान्ते संक्रान्तौ  
 पिण्डसंयुतम् । प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च' इति वृद्धपराशरोक्तेः ॥  
 तदपि चिन्त्यम् । पूर्वोक्तवचनस्य क्षयपूर्वभाव्यधिकमासविषयत्वात् । तत्र हि  
 मासद्वये श्राद्धमुक्तम् । तदाह सत्यतपाः 'एक एव यदा मासः संक्रातिद्वयसं-  
 युतः । मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेऽपि शस्यते' ॥ इति ॥ मासद्वयगतं पूर्वासंक्रातिगतं  
 क्षयगतं च । मलमासे क्षयमासे । अपिशब्दात् पूर्वाधिमासे चेति हेमाद्रिः दीपिका  
 यामपि "तत्प्राक्संग्यधिमासको यदि भवेत्तत्र तस्य सांवत्सरं तस्मिञ्छुद्धतया क्षये  
 च वचनात् कुर्याद्वयोः कोविदः" इति कालादर्शोप्येतद्विषय  
 मलमासवर्ज्यानि एवेत्यलं बहुना ॥ मलमासे वर्ज्यान्युक्तानि कालादर्शे 'अनि-  
 त्यमनिमित्तं च दानं च महदादिकम् ॥ अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्रामरे-

१ 'स्युः पक्षद्वयगाः क्रमात्प्रातिपदाद्याश्चैत्रमासक्रमात्भूतौ मधवगौ मधौ तु मदनौ  
 ज्येष्ठस्थिते पर्वणी । श्राद्धे त्रिंशदमी शुभाः शुभतराः कल्पादयः शुक्लगाः' इति दीपिका ॥  
 २ 'असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमम्' इति हारीतवाक्ये वत्सरान्तराय वार्षिकश्राद्धस्य  
 शुद्धमासकर्तव्यत्व एवाब्दिकस्य प्रथमत्वं विशेषणं युज्यते इति टीका ॥ ३ क्षयसमनन्त  
 रपूर्वः संसर्प इत्यर्थः ॥



क्षणम् । देवारामतडागादिप्रतिष्ठामौञ्जबन्धनम् ॥ आश्रमस्वीकृतिकाम्यवृ-  
षोत्सर्गश्च निष्क्रमः । राज्याभिषेकः प्रथमश्चूडाकर्मव्रतानि च । अन्नप्राशनमार-  
म्भो गृहाणां च प्रवेशनम् । स्नानं विवाहो नामातिपन्नदेवमहोत्सवः । व्रतारम्भस-  
माप्ती च कर्म काम्यं च पाप्मनाम् । प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत् ।  
उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । अवरोहश्च हैमंतः सर्पाणां बलिरष्टकाः ।  
ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं  
च वज्रिणः । पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम्' इति ॥ अत्र मूलवच-  
नानि हेमाद्रिमाधवादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ दीवोदासीयेपि—'यात्रोत्सवं च दे-  
वादिशपथं दिव्यमेव च । मलमासे न कुर्वीत व्याघ्रस्य वचनं यथा' इति । अयं  
क्षयमासेऽपि निर्णयः क्षयमासेपि ज्ञेयः 'रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यविधिः  
वर्ज्यावर्ज्ये स्मृतः । स एव तु द्विसंक्राते मलमासेऽप्युदीरितः' इति काठ  
कगृह्योक्तेः ॥ क्षयमासमृतानां प्रत्याब्दिके विशेषो हेमाद्रौ—तिथ्यर्थे प्रथमेपू-  
र्वो द्वितीयेर्द्धे तथोत्तरः । मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥ आब्दि  
कवर्धपनेपि ज्ञेयम् ॥ यन्मलमासे वर्ज्यमुक्तं तच्छुक्रगुर्वोरस्तादिष्वपि ज्ञेयम् ।  
तदाह बृहस्पतिः—'बाले वा यदि वा वृद्धे शुके वास्तं गते गुरौ । मलमास  
भृगुर्वस्ता इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम्' इति ॥ अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्ट  
दिवर्ज्यानि भार्गवे । मलमासेऽप्यनावृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत् । आवृत्ततीर्थे  
दोषाभावमात्रं न तु फलम् इति वाचस्पतिमिश्राः । तन्न । असति बाधके  
फलहेतुत्वाक्षतेः ॥ लल्लोपि—'नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृ-  
द्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जी  
बन्धो गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्रि  
दशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च' इति ॥ दीक्षा यागदीक्षा आगमदीक्षा

१ यत्तु 'मासः संक्रान्तिहीनोधिक इति कथितः शीघ्रमन्दप्रचारैः संसर्पो हस्पतिः  
स्यात्समविषमतया चालनं तत्क्षयस्यापूर्वैश्चन्द्रार्कयोगैर्विरहितसंक्रान्तितश्चालनं स्याद्व-  
क्रस्यार्कस्य मासे यदि न चलति वैमासयुग्मं विचिन्त्यम्' इति वटेश्वरसिद्धान्ते मासयुग्म  
चिन्ताभिधानम् ॥ तत्त्वशुद्धमेवेति निष्कर्षानुसारिणः इति टीका ॥



च ॥ तथा 'उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्राश्च वधूप्रवेशः ॥ तडा-  
गकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात्' ॥ दिवोदासीये-गुर्वा-  
दित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिम्लुचे । गृहकर्म व्रतं यात्रां मनसापि न चिन्त  
येत्' ॥ अस्यापवादास्तत्रैव ब्राह्मे-मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुरौ।

कन्यागते तु कृष्णायां नतु तर्तीरवासिनाम्' ॥ तथा । 'आद्यासौ  
सिंहगुरौगो गौतमी गंगा द्वितीया जाह्नवी स्मृता । सर्वतीर्थफलं स्नानाद्गौत  
दावरीस्नानम् म्यांसिंहगे गुरौ' ॥ संहिताप्रदीपे-'स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च

बालत्वमह्नां दशकंच वार्धम् । वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ  
यतस्तावुपचीयमानौ' ॥ वसिष्ठः-'अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतो  
द्वाहादिकार्येषु अष्टाविंशतिवासरान्' ॥ बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते-  
'रविणासत्तिरन्येषां ग्रहाणामस्त उच्यते । ततोऽर्वाग्वार्धकं प्रोक्तमूर्ध्व  
बाल्यं प्रकीर्तितम्' इति ॥ बाल्यादिपरिमाणं च वृत्तशते 'बालः

शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः पश्चादह्नां  
गुरुशुक्रयोर्बाल्य त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्र्यां क्रमेण । जीवो वृद्धः शुचिरपि तथा  
वार्धक्यनिर्णयः पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरा  
त्रम्' ॥ पश्चिमत उदये दश दिनानि बालः । अस्ते पञ्चदि-

नानि वृद्धः । पूर्वतो दिनत्रयं बालः पक्षं च वृद्ध इत्यर्थः । जीवो गुरुः ॥  
अन्यत्र त्वन्यथोक्तम् 'प्राक्पश्चादुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः । विपरीतं तु  
वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि' इति ॥ एषां च पक्षाणां व्यवस्थामाह मिहिरः 'ब-  
हवो दर्शिताः काला ये बाल्ये वार्धकेपि वा । ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषा  
देशभेदादुतापदि' इति ॥ देशभेदश्च मदनरत्ने गार्ग्यः-'शुक्रो गुरुः प्राक्च  
पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम् । वंगेषु हूणेषु च षट्च पञ्च शेषे  
च देशे त्रिदिनं वदन्ति' इति ॥ अस्तादेरपवादः काशीखण्डे-'न ग्रहास्तो-  
दयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये' ॥ त्रिस्थलीसेतौ वायवीये-'गोदावर्या  
गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । सुरासुरगुरुणां च मौढ्यदोषो न विद्यते' ॥



ग्रहणद्वये तन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रादानादावित्यर्थः ॥ तदाह त्रिस्थलीसेतौ  
 लल्लः—‘उपपुवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वै कपिलाख्यषष्ठ्याम् । सुरासुरे-  
 ज्यास्तमयेपि तीर्थे यात्राविधिः संक्रमणे च शस्तः’ । ‘नमूढदोषो न च रात्रि  
 दोषो न चाधिमासो न मृतिर्नसूतिः’ एवमप्युत्तरार्धं पठति ॥ इत्यलं बहुना ॥ मल  
 मासेच व्रतविशेषउक्तो हेमाद्रौ पाद्मे, अधिमासे तु संप्राप्ते गुडसर्पिर्युतानि च।  
 त्रयस्त्रिंशदपूपानि दातव्यानि दिनेदिने । साज्यानि गुडमिश्राणि अधिमासेनृपो-  
 त्तम । अधिमासे तु संप्राप्ते त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः। उद्दिश्यापूपदानेन पृथ्वीदानफलं  
 लभेत् । त्रयस्त्रिंशदपूपान्नं कांस्यपात्रे निधाय च । सघृतं सहिरण्यं च ब्राह्म-  
 णाय निवेदयेत् । विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः । अपूपान्नप्रदानेन  
 मम पापं व्यपोहतु ॥ नारायण जगद्धीज भास्करप्रतिरूपक। व्रतेनानेन पुत्रांश्च  
 संपदं चाभिवर्धय । यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम् । शंखः  
 करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु। कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना।  
 यो वञ्चयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः। कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्वद्विजो  
 हरिः । पृथ्वीसममिदं दानं गृहाण पुरुषोत्तम । मलानां च विशुद्ध्यर्थं पा  
 पप्रशमनाय च। पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर। मंत्रेणानेन योदद्या-  
 त्रयस्त्रिंशदपूपकान् । प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं पुत्रपौत्रादिसंपदः’ इति ॥ इति  
 निर्णयसिन्धौ मलमासनिर्णयः ॥ पक्षनिर्णयस्तु—‘दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः कृष्णः  
 पित्र्ये विशिष्यते’ इति माधवेनोक्तः ॥ अथ तिथिनिर्णयः—तत्र तिथिर्द्वैधा शुद्धा  
 विद्धा च ॥ दिने तिथ्यन्तरसंबन्धरहिता शुद्धा । तद्रहिता विद्धा ॥ तत्र  
 शुद्धायामसंदेहाद्विद्धा निर्णीयते ॥ तत्र सामान्यतो वेधमाह माधवीये पैठी-

नसिः ‘पक्षद्वयेपि तिथयस्तिथिं पूर्वा तथोत्तराम् । त्रिभि  
 तिथौ वेधनिर्णयः मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः’— इति ॥  
 हेमाद्रिमदनरत्नादौ तु द्विमुहूर्तोऽप्युक्तः— ‘उदिते



दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ । द्विमुहूर्त्ता त्रिरहश्च सातिथिर्ह  
व्यकव्ययोः 'इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ द्विमुहूर्त्तत्वं चानुकल्पः—'द्विमुहूर्त्तापि  
कर्त्तव्या या तिथिर्वृद्धिगामिनी'इति दक्षेणापिशब्दोक्तेः ॥ अयं वेधः  
प्रातरेव । सायं तु त्रिमुहूर्त्तो वेध एव—'यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मि  
नीपतिः । सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैवया भवेत्'इतिस्कान्दोक्तेः ॥  
दीपिकापि—'त्रिमुहूर्त्तगा तु सकला साये'इति ॥ यानि तु—'व्रतोपवासस्नानादौ  
घटिकैकापि या भवेत् । उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके'इत्यादीनि  
स्कान्दादिवचनानि तानिवैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्यात्रिमुहूर्त्तप्रशंसा  
पराणि । तिथिविशेषे वेधविशेषः स्कान्दे—'नागो द्वादशनाडीभिर्द्विषयत्पुत्रां तिथिम्'इति ॥ अयं चोपवासातिरिक्त  
विषय इति वक्ष्यते ॥ इति वेधः ॥ तत्र सर्वा तिथिर्यदहःकर्मकालव्यापिनी  
सैव ग्राह्या । 'कर्मणो यस्य यःकालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तया कर्माणि  
कुर्वीत हासवृद्धीन कारणम्'इतिविष्णुधर्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेश  
व्याप्तौ वा युग्मवाक्यान्निर्णयः । तस्य पूर्वावाधेनोपपत्तेः । कर्मकालस्य प्रधानांग  
त्वाच्च । युग्मवाक्यं तु निगमः । 'युग्मानियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ।  
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा । प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं  
हाफलम् । एतद्व्यस्त महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्' इति ॥ अत्र रन्धान्ताः  
शब्दाः द्वितीयादिनवम्यन्ततिथिवाचकाः । रुद्र एकादशी द्वितीया तृतीयायु  
ता सा च द्वितीयायुतेति सप्त युग्मानीत्यर्थः ॥ इदं च शुक्लपक्षे । अमाप्रतिपद्यु  
ग्मस्य पूर्णिमायाश्च तत्रैव सत्त्वादिति केचित् ॥ तत्त्वं त्वमावास्याप्रतिपद्युग्मा  
त्तृष्णपक्षलिङ्गात्पक्षद्वयपरमिदम् तत्तद्विशेषवाक्यैः कृष्णेतिथिविशेषेपोह्यत  
इति ॥ दशमी तूक्ता पुराणसमुच्चये—'संपूर्णे दशमी कार्या मिश्रिता पूर्वयाथवा'  
इति ॥ संपूर्णे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तु सुमन्तुनोक्ता—'त्रयोदशी तु कर्त्तव्या  
द्वादशीसहिता मुने'इति । कृष्णपक्षे त्वापस्तम्बः—'प्रतिपत्सद्वितीया स्याद्वि  
तीया प्रतिपद्युता । चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया फलप्रदा । पञ्चमी च प्र



कर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद । कृष्णपक्षेष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी । पूर्व  
विद्धा प्रकर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् । दशमी च प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम  
षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी । एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण  
संयुताः' इति । यत्तु व्याघ्रः 'स्वर्गो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् ।  
स्वर्वदर्पोपरौ पूज्यौ हिंसा स्यात् पूर्वकालिकी' इति ॥ स्वर्वः साम्यम्, दर्पो वृद्धिः,  
तयोः परा । हिंसा क्षयस्तत्र पूर्वत्यर्थः ॥ एतच्छ्राद्धादिविषयम् । 'द्वितीयादिषु  
युग्मानां पूज्यता नियमादिषु । एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ हासवृद्ध्यादिचोदना'  
इति व्यासोक्तेः ॥ नियमादिषु व्रतदानादिदैवकर्मसु । एकोद्दिष्टादितिथेर्वृद्ध्या  
दावित्यर्थः ॥ कर्मकालव्याप्त्यभावे तु कर्मोपक्रमकालगैव ग्राह्या 'कर्मोपक्रम  
कालगा तु कृतिभिर्ग्राह्या न युग्मादरः' इति दीपिकोक्तेः ॥ यानितु 'यांतिथि  
समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः । सा तिथिः सकलाज्ञेया दानाध्ययनक  
र्मसु' । इत्यादीनि ॥ तानि त्रिमुहूर्त्तादिस्तुतिरिति निर्णयशैली ॥ अथैकभक्तम् ॥  
तत्कालः पादौ 'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः' इति ॥ मध्याह्नश्च  
पञ्चधा विभक्तदिनतृतीयांशः ॥ तेन यद्यपि द्वादशदण्डानन्तरं प्राप्यते तथापि,  
'दिनार्धसमयेतीति भुज्यते नियमेन यत् । एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्या  
दिवैवहि' इति स्कान्दोक्तेः षोडशसप्तदशादिदण्डौ मुख्यः कालः ॥ दीपिका  
यांतु 'मध्याह्नान्त्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्' इति ॥ ततः सूर्यास्तपर्यन्तः  
गौणः । 'दिवैवहि' इत्यस्य वैयर्थ्यपित्येतत्परत्वात् ॥ अत्र पूर्वद्युर्व्याप्तिः  
परद्युरुभेयद्युर्व्याप्तिः तदभावोऽश्व्याप्तिः । तत्रापि साम्यं वैषम्यंचेति षट्पक्षाः  
तत्राद्ययोरसंदेह एव । तृतीये तु पूर्वन्दि गौणमुख्यप्राप्तेः सत्त्वात् पूर्वति  
माधवः, युग्मवाक्यान्निर्णय इति हेमाद्रिः । चतुर्थपक्षे पूर्वैव गौणकालव्याप्तेः  
सत्त्वात् । वैषम्येणांशव्याप्तौ याधिका सा ग्राह्या । साम्ये पूर्वा ॥ अयं च

१ 'यो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे । विद्यमाना भवेदङ्गं नोज्झितोपक्रमेण  
तु' इति बौधायनवाक्याच्च' इति टीका ॥ २-संध्याभोजननिषेधस्य रागप्राप्तभोजनपरतये  
हाप्रवृत्तेः इति टीका ॥



स्वतन्त्रैकभक्तनिर्णयः । अन्याङ्गेऽपवासप्रतिनिधौ तदनुसारेण निर्णयः ॥  
 अथ नक्तम् । तच्च दिनानशनपूर्वरात्रिभोजनम् ॥ तत्र प्रदोषव्यापिनी  
 ग्राह्या । ‘प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा’ इति वत्सोक्तेः । प्रदोषस्तु  
 ‘त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति । नक्तं तत्र तु कर्त्तव्यमिति शास्त्रवि-  
 निश्चयः’ इति मदनरत्ने व्यासोक्तेः । तत्रापि त्रिदण्डोत्तरं कार्यम् ‘सायंसंध्या  
 त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः’ इति स्कांदोक्तेः दण्डत्रयस्य संध्यात्वात्  
 तत्र ‘चत्वारिमानि कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां  
 स्वाध्यायं च चतुर्थकम्’ इति ॥ मार्कण्डेयेन भोजननिषेधात् ॥ ‘मुहूर्त्तोऽनं  
 दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप’ । इति  
 माधवीये भविष्योक्तेश्च ॥ गौडास्तु ‘प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमि-  
 प्यते’ । इति वत्सोक्तः प्रदोषः संध्या च दिनरात्र्योः संधौ मुहूर्तः । ‘अर्धा-  
 स्तमया संध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । तेजः परिहानिवशाद्भानो-  
 र्धोदयं यावत्’ इति वराहोक्तेरित्याहुः ॥ तत्र । अस्य संध्यावन्दनानध्याया-  
 दिपरत्वात् ॥ अतएव तत्र खण्डमण्डलस्य संध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण ॥  
 यच्च मदरत्ने—नक्तस्य वैधत्वाद्वागप्राप्तभोजनगोचरो निषेध इत्युक्तम् ॥ तत्र  
 विधेर्निषेधाविरोधात् ॥ अन्यथा कपिञ्जलानित्यत्र त्रिभ्योधिकानां हिंसनं  
 स्यात् ॥ सायंकाले नक्तं तु दिनद्वये प्रदोषस्पर्शे ज्ञेयम् । ‘अतथात्वे परत्र  
 स्यादस्तादर्वाग्यतो हि सा’ इति जाबालिवचनात् । ‘प्रदोषव्यापिनी नस्या-  
 द्विवा नक्तं विधीयते । आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे । तन्नक्तं  
 नक्तमित्याहुर्न नक्तं निशि भोजनम्’ इति स्कान्दाच्च ॥ यत्यादीनामपि  
 सायान्हे ‘नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः । यतिश्च विधवा चैव  
 कुर्यात्तत्सदिवाकरम्’ इति तत्रैव स्मृत्यन्तरात् ॥ इदमपुत्रविधुरोपलक्षणम् ॥  
 पुत्रवतस्तु रात्रावेव ॥ ‘अनाश्रमोऽप्याश्रमी स्यादपत्नीकोऽपि पुत्रवान्’ इति

१ ‘तिथिर्यथोपवासे स्यादेकभक्तेऽपि सा तथा’ इति सौमन्तवमपि उपवासप्रतिनिध्ये  
 कभक्तपरम् इति टीका ॥



संग्रहोक्तेः ॥ सौरनक्तं तु दिवैव 'त्रिमुहूर्तस्पृगेवाह्नि निशि  
 नक्तनिर्णयः चैतावती तिथिः । तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येवतु भोजनम्' इति  
 सुमन्तूक्तेः ॥ हरिनक्ते विशेषः कालादर्शो स्कान्दे 'उदयस्था  
 सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः' इति ॥ अन्यनक्तं तु संक्रान्त्यादावपि रात्रा  
 वेव । निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन वैधाबाधकत्वात् ॥ दिनद्वय  
 व्याप्तौपरा 'उभयोर्यदि वा तिथ्योः प्रदोषव्यापिनी तिथिः । तत्रोत्तरत्र नक्तं  
 स्यादुभयत्रापिसा यतः' इति कालादर्शो जाबालिवचनात् ॥ अन्यपक्षेषु एक  
 भक्तवन्निर्णयः ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने गारुडे 'हविष्यभोजनं स्नानं  
 सत्यमाहारलाघवम् । अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी षडाचरेत्' ॥ अग्नि  
 कार्यं व्याहृतिहोमः ॥ इति नक्तम् ॥ अयाचिते तु विशेषवचनाभावात् पक्षे उप  
 वासे प्राप्ते उपवासवन्निर्णयः ॥ अथ नक्षत्रव्रतकालनिर्णयः ॥ विष्णुधर्मे  
 'उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः । युज्यते यत्र वा तारा निशीथे  
 शनिना सह' इति ॥ माधवीये स्कान्दे 'तत्रैवोपवसेदक्षे यन्निशीथादधो  
 भवेत् । उपवासे यदृक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः ॥ अथ व्रतपरिभाषाः ॥ तत्रा-  
 धिकारिणो मदनरत्ने भविष्ये 'अनग्रयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते ।  
 व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथानृप' ॥ अनग्रिग्रहणमुपवासविषयम् । अतएव  
 देवलः 'आहिताग्निरनङ्गांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्वन्त एव सिध्यन्ति  
 नैषां सिद्धिरनश्वताम्' ॥ एकादश्यादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ॥ शूद्रस्याप्य  
 धिकारः 'शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति विदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारा  
 दिभिर्विना' इति व्यासोक्तेः ॥ प्राच्यास्तु वैश्यशूद्रयोर्द्विरात्राधिकोपवासनि  
 षेधः । 'वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न  
 विद्यते । चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते । त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवा-  
 दिभिः' ॥ इति हेमाद्रौ वचनादित्याहुः ॥ यावदुक्तनिषेधइत्यन्ये । तत्त्वं तु निर्मूलमि

१ 'एकभक्तायाचितयोर्यां विंशतिषट्कावधिः । सा तिथिः सकला ज्ञेया नक्ते सायान्ह  
 संगता' इति विशेषवचनान्निर्णय इति मयूखे ॥ भृत्यभार्यादिभ्योपि न याचितव्यमित्यन्यत्र  
 विस्तरः ॥



ति प्रकरणान्महातपोविषय इति युक्तम् ॥ एवं स्त्रीणामपि । यत्तुस्कान्दे—‘ना  
 स्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । भर्तृशुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान्  
 व्रजन्ति हि । यद्देवेभ्यो यच्चपित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियांच । तस्या  
 धं वै सा फलं नान्यचित्तानारी भुंक्ते भर्तृशुश्रूषयैव’ । आदित्यपुराणे—‘नारी  
 खल्वननुज्ञाता भर्ता वापि सुतेन वा । विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदेहि  
 क्रम्’ इति । और्ध्वदेहिकं पारलौकिकम् तद्भर्तृननुज्ञाविषयम् । ‘भार्या पत्यु  
 र्भतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा’ इति कात्यायनोक्तेः ॥ अत्र विशेषो हरिवंशे  
 ‘स्नानं च कार्यं शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् । स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं  
 विज्ञापयेत्सती’ ॥ तथा—‘गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा । गोशृङ्ग  
 दक्षिणं सित्का प्रगृण्हीयाच्च तज्जलम्’ । औदुम्बरं ताम्रमयम् । ‘ततो भर्तुः  
 सती दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च । आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसितज्जलम् ।  
 उपवासेषु कर्त्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च’ इति । सर्वव्रतेषु संकल्पविधिश्च भारते ।  
 गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदमुखः । उपवासं तु गृण्हीयाद्यद्वा संकल्पये  
 द्बुधः’ ॥ हस्तेनैवेत्यर्थः ॥ अथ व्रतारम्भकालः ॥ मदनरत्नेगार्ग्यः—‘अ  
 स्तगे च गुरौ शुके बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कार  
 येत्’ ॥ रत्नमालायाम्—‘सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धि  
 दाः । भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति’ ॥ तथा—‘वि  
 रुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः । सवैधृतिस्तु व्यति  
 पातनामा सर्वोऽप्यारिष्टः परिघस्य चार्धम् । तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्जे व्याघात  
 संज्ञे नवपंचशूले । गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाढ्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनी  
 याः ॥ संग्रहे—‘रुष्णेग्निदिशयोरुर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः’ । शक्ले वेदेशयोरुर्ध्वं  
 भद्रा प्राग्वसुपूर्णयोः’ ॥ श्रीपतिः—‘नसिद्धिमायातिकृतं च विष्ट्यां विषा  
 रिघातादिकमत्रसिद्धम्’ ॥ व्यवहारसमुच्चये—‘दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिका  
 पञ्चकपरं हरियोसप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम् । तृतीयाका  
 यां खयमघटिकाभ्यः परभवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तुविरमे’ ॥



व्रतारम्भ- तत्रैव—‘सर्पिणी तु सिते पक्षे कृष्णे चैवतुवृश्चिकी।सर्पिण्यास्तु  
निर्णयः मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च’ ॥ माधवीये—‘विष्टिर्य  
दाहनि तिथेरपरार्धजातापूर्वार्धजा निशितदा शुभदाच पुच्छे’ ॥  
ब्रह्मयामले—‘दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा । न त्याज्या शुभ  
कार्येषु प्रादुरेवं पुरातनाः’ ॥ श्रीपतिः—षट्पौष्णतो द्वादश शांकराच्च पौरंद  
राद्भानि नव क्रमेण । पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जिचिरंतनैज्यौतिषिकैः स्मृतानि’  
व्रतारम्भे च विशेषो मदनरत्ने सत्यव्रतेनोक्तः—‘उदयस्था तिथिर्या हि न  
भवेद्दिनमध्यभाक् । सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्’ इति ॥  
देवलः—‘अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः । सूर्याय देवताभ्यश्च  
निवेद्य व्रतमाचरेत्’ ॥ मदनरत्ने भविष्ये—‘क्षमा सत्यं दया दानं शौच  
मिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम् । सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सा  
मान्यो दशधा स्मृतः’ ॥ अग्निहोमस्तद्देवत्यः, व्याहृतिहोमो वेति वर्धमानः  
यत्तु तेनोक्तम्—सर्वपदमेतत्पुराणोक्तकृतव्रतपरम् । व्रतान्तरे तु विध्यन्तरस  
त्त्वेहोमोऽन्यथान । अतएवैकादश्यां शिष्टानां होमानाचरणमिति तन्न । ‘जपो  
होमश्च’ इति वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्य कास्यव्रतसमाप्तिपरत्वात् ॥ तत्त्वंतु  
सामदश्यस्य पशुमित्रविन्दादिप्रकरणस्थेनेव तत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभिरस्यो  
पसंहार इति ॥ विष्णुधर्मै—‘तज्जप्यजपनं ध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम् । तद  
र्चनंच तन्नामकीर्तनश्रवणादयः । उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः’ ॥  
कौर्मै—‘बहिर्ग्रामान्त्यजान्सूतिं पतितं च रजस्वलाम् । न स्पृशेन्नाभिभाषेत  
नेक्षेत व्रतवासेर’ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निपुराणे—‘स्नात्वा व्रतवता सर्वव्र  
तेषु व्रतमूर्त्तयः । पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्या वै भूमिशायिना । जपो हो  
मश्च सामान्यं व्रतान्ते दानमेव च । चतुर्विंशत् द्वादश वा पञ्च वा त्रय एव  
वा । विप्रा भोज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्’ ॥ अत्र विप्रा इति  
पुंलिङ्गनिर्देशात् पुमांस एव भोज्याः । नतु स्त्रियः ॥ एवं सहस्रभोजनादाव

१‘उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह॥उपावासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः’  
इति तल्लक्षणमुपनिषदि ।



पि । विरूपैकशेषस्य प्रमाणान्तरं विनाऽयुक्तत्वात् ॥ अतएव 'द्वयोर्यजमानयोःप्रतिपदं कुर्यात्बहुभ्यो यजमानेभ्यः' इत्यादौ विरूपैकशेषायोगात्पत्न्यभिप्रायं द्वित्वं बहुत्वं वा न संभवतीत्युक्तमाचार्यैः । पार्थसारथिना च ॥ एतेनैकस्य ब्राह्मणस्यावृत्या भोजनं परास्तं बहुत्वस्यैकपदश्रुत्या ब्राह्मणान्वितत्वेन भोजनान्वयाभावादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ शूद्रस्य तु प्रतिष्ठादिवद्विप्रद्वारा व्याहृतिहोम इति वर्धमानः ॥ व्रतमूर्तयो व्रतदेवताप्रतिमाः ॥ प्रतिमास्वरूपं च मदनरत्ने भविष्ये 'अनुक्तद्रव्यतत्संख्यादेवताप्रतिमा नृपं । सौवर्णीं राजती ताम्रीं वृक्षजां मार्त्तिकीं तथा । चित्रजां पिष्टलेखोत्थां निजवित्तानुरूपतः । आमाषात्पलपर्यन्तं कर्त्तव्याशाठ्यवर्जितैः' । तत्रैव ब्राह्मे 'आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः' ॥ मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतिरूपो मन्त्रः प्रजापतिश्च देवतेति कल्पतरुः । वर्धमानधृतदेवीपुराणे 'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत् ॥ अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्तिं विधीयते' ॥ मदनरत्ने 'अनुक्तसंख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरं शतम्' ॥ वर्धमानधृतवृद्धशाततपः 'उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम् । कुर्यात्तेनास्य सगुण उपवासोऽभिजायते' ॥ व्रतोद्यापनानुक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदयेन न्दिपुराणे 'कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम् । उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् । यदि चोद्यापनं नोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत् । वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते । गाश्चैव काश्चनं दद्याद्भ्रतस्य परिपूर्त्तये' ॥ अशक्तौ नारदीये 'सर्वेषां मप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना । विप्रवाक्यं स्मृतं शुद्धं व्रतस्य परिपूर्त्तये । यथा विप्रवचो यस्तु गृण्हाति मनुजः शुभम् । अदत्वा दक्षिणां पापः सयाति नरकं ध्रुवम्' ॥ भारते 'वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा । सर्वत्र तु मयोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथ काश्चनम्' ॥ बैजवापः 'शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्भजतं पितृवस्तुभम् । अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्' ॥ टोडरानन्दे देवीपुराणे 'व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेपि च विशेषतः परान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फ



लम्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे 'नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः । क्षारं क्षौरं च लवणं मधु मांसं च वर्जयेत्' । क्षारास्तु तत्रैवोक्ताः 'तिलमुद्रादते शैब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ । धान्यकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम् । स्विन्नधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः' ॥ गोधूमानां तु तत्रैव प्रतिप्रसवः 'व्रीहिषष्टिकमुद्राश्च कलायः सतिलंपयः । श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः' ॥ कुष्मांडालाबुवार्त्ताकपालंकीज्योत्स्निकास्त्यजेत् । चतुर्भैक्षं सक्तुकणाः शाकंदधिवृतं मधु । श्यामाकाःशालिनीवारायावकं मूलतन्दुलम् । हविष्यव्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम् । मधु मांसं विहायान्यद्भते वा हितमीरितम्' इति ॥ शमीधान्यं माषादि । पालंकीमध्यदेशे ( पोर्ष ) इति प्रसिद्धा । ज्योत्स्निका कोशातकी । मिताक्षरायां गौतमः 'चतुर्भैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिवृतमूलफलोदकानिहवीष्युत्तरोत्तरं प्रशस्ता नि पयो दधि घृतं च गव्यम्' इति ॥ अन्ये च विशेषा एकादशीचातुर्मास्यादिप्रकरणे वक्ष्यन्ते ॥ गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्ने छागलेयः । 'पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो नाचरेत्काममोहितः । जीवन्भवति चण्डालो मृतःश्वाचाभिजायते' ॥ तत्र प्रायश्चित्तमुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निगारुडपुराणयोः । 'क्रोधात्प्रमादालोभाद्वा व्रतभङ्गेभवेद्यदि । दिनत्रयं न भुञ्जीत मुंडनं शिरसोथवा' इति ॥ प्रायश्चित्तस्नानादतिक्रान्तव्रतानुष्ठानं नास्तीति गम्बत ॥ यत्तु 'प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।' इति वचनात् यच्चातिक्रान्तं मपि व्रतं कार्यमेवेति शूलपाणिः तन्मध्ये लोपे व्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयम् ॥ एतच्च शक्तविषयम् ॥ अशक्तौ तु कालहेमाद्रौ पुराणान्तरे 'उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् । तावद्धनादि वा दद्याद्भुक्तस्य द्विगुणं तथा । सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् ॥ कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथाशक्त्यतुरो नरः' इति ॥ शुद्धितत्त्वे मात्स्ये 'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते' ॥ मदनरत्ने वायवीये 'द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंश



यम्' ॥ तथापराकै देवलः 'ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमाभिषवर्जनम् । व्रते  
 ष्वेतानिचत्वारि वरिष्ठानीतिनिश्चयः' ॥ मात्स्ये' तस्मात्कृतोपवासेनस्नानम्  
 भ्यङ्गपूर्वकम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप' ॥ अन्ये च निय  
 मास्तत्र तत्रान्वेषणीयाः ॥ अथ स्त्रीव्रतेषु विशेष उच्यते । तत्र हेमाद्रौ  
 व्रतकाण्डेगारुडे'गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम्।उपवासे न दुष्यन्ति  
 दन्तधावनमञ्जनम्'इति ॥ इदं च सभर्तृकोपवासविषयम् । 'अञ्जनं च सता  
 म्बूलं कुंकुमं रक्तवाससी।धारयेत्सोपवासापि अवैधव्यकरंयतः। विधवा यति  
 मार्गेण कुमारी वा यदृच्छया'इति तत्रैव भविष्योक्तेः॥ तथा विष्णुधर्मे  
 ' सर्वेषु तूपवासेषु पुमान्वाथसुवासिनी।धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि  
 च । विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत्' । मनुरपि 'पुष्पालंकारवस्त्राणि  
 गन्धधूपानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्' ॥ मदनरत्ने  
 व्यासः 'दन्तधावनपुष्पादि व्रतेष्वस्या न दुष्यति'इति ॥ यद्यपीदं सर्वोपवास  
 विषयं प्रतीयते, तथापि शिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थं क्रियमाणनवरात्रत्रिरात्रा  
 युपवासविषयमेव । नत्वेकादश्यादिविषयम् ॥ 'असकृज्जलपानाच्च सकृत्ता  
 म्बूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्'इत्यपराकै देव-  
 लेन तन्निषेधात् ॥ नचास्य पुंविषयत्वेन सावकाशत्वात्स्त्रीणां ताम्बूलादि  
 प्राप्नोतीति वाच्यम्।ताम्बूलादिप्रापकस्यैवैकादशीतरविषयत्वेन वैपरीत्यस्या  
 पि सुवचत्वात् ॥ यत्तुहरिवंशे 'अञ्जनं रोचनं चैव गन्धान्सुमनसस्तथा ।  
 व्रते चैवोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् । शिरसोभ्यञ्जनं सौम्ये नैवमेतत्प्रश-  
 स्यते । न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता'इति, तत्रैवोक्तपुण्यक  
 व्रतविषयं नतु सर्वत्र पूर्वोक्तविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ तत्रैव  
 ' अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहस्य कृतिस्तथा । उपवासाद्भ्रताद्वापि सद्यो भ्रंशश्च

१ 'स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिःसंकथनादपि।विपद्यतेब्रह्मचर्यं स्वदारेष्वृतुसंगमात्'॥  
 २ 'आमिषं दृतिपानीयं गोवर्जं क्षरिमाभिषम् ॥ मसूरमाभिषंसस्येफलजम्बीरमाभिषम् ॥  
 आमिषं शुक्तिकाचूर्णमारनालं तथामिषम्'इतिस्मृत्यन्तरोक्तं च । ३ 'स्मरणं कीर्तनं केलिः  
 प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्चक्रियानिर्वृत्तिरेवच॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति  
 मनीषिणः' ॥



तिस्त्रियम्' ॥ स्त्रियमित्युपलक्षणम् । मदनरत्ने शिवधर्मे 'दानव्रतानि नियमा  
ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः । यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत्' ॥  
अथ सूतकादौ निर्णयः । तत्र शावसूत्याशौचयोः सर्वस्मार्तकर्मनिवृत्तिर्निबं-  
न्धेषु स्पष्टैव ॥ गौडास्तु शौचादावपि तामाहुः । 'जानूर्ध्वं क्षतजे जाते नित्य-  
कर्म न चाचरेत् । नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न वाचरेत् । लौतके च  
समुत्पन्ने ज्वरकर्मणि मैथुने । धूमोद्गारे तथा वान्तौ नित्यकर्माणि संत्यजेत्  
द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च नैव भुक्त्वापि किञ्चनाकर्म कुर्यान्नरो नित्यंसूतके मृतके  
तथा' इति कालिकापुराणात् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वं देवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रवि-  
षयत्वमस्येति युक्तं प्रतीमः । तथा हेमाद्रौ पाद्मे 'गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी  
वाथ रोहिणी । यदाशुद्धा तदान्येन कारयेत्प्रयता स्वयम्' इति ॥ पुंसो-  
प्येष विधिः । लिङ्गस्याविवक्षितत्वात् ॥ तेन 'यस्मिन्व्रते यत्पूजायुक्तं तद-  
न्येन कारयेत् । शारीरनियमान्स्वयं कुर्यात्' इति हेमाद्रिव्याचख्यौ ॥ 'न  
व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेश्च ॥ आरम्भस्तु न भवत्येव ॥ शुद्धितत्त्वे विष्णुः-  
'बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि । सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नै-  
व दुष्यति' ॥ एतत्काम्यपरम् । नित्यं त्वनारब्धमपि कार्यमिति गौडाः ॥  
मदनरत्ने 'पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः । तत्कर्त्तव्यं नरैः शुद्धं  
दानार्चनविवर्जितम्' ॥ माधवीये कौर्मे 'काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा  
मृतसूतके । तत्र काम्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्' इति ॥ एतेन साधिका  
राद्रताङ्गदेवपूजादि कार्यमिति वर्धमानोक्तिः परास्ता ॥ प्रारब्धं पूजादि का-  
र्यमेव ॥ नवरात्रे तु तत्रैव विशेषं वक्ष्यामः ॥ एवं रजस्वलापि ॥ यत्तु  
सत्यव्रतः 'प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य  
स्यादुपरोधः कथञ्चन' इति ॥ तत्प्रतिनिधिना कारयेदित्येतत्परम् ॥ तदुक्तं  
मदनरत्ने मात्स्ये—'अन्तरातुरजोयोगे पूजामन्येन कारयेत्' ॥ इति । प्रतिनि-  
धयश्च निर्णयामृते पैठीनसिः—'भार्यापत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिव्रतम् ।  
असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते' ॥ स्कान्देपि—'पुत्रं वा विनयोपेतं



भगिनीं भ्रातरं तथा । एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ' ॥  
 कात्यायनः- 'पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः । उपवासं प्रकुर्वाणः  
 पुण्यं शतगुणं लभेत् । मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यामुपोषणे । कृते ते तु  
 फलं विप्राः समग्रं समवाप्नुयुः ' ॥ मदनरत्ने प्रभासखण्डे- 'भर्ता पुत्रः  
 पुरोधश्च भ्राता पत्नी सखापि च । यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः ।  
 एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् ' ॥ तत्रैव वायवीये- 'स्वयं  
 कर्तुमशक्तश्चेत्कारयेत् पुरोधसा ' ॥ इदं च सर्ववर्णसाधारणम् अविशेषात् ॥  
 यत्तु कश्चिन्महोक्ष आह- शूद्रस्य ब्राह्मणादिरेव प्रतिनिधिर्युक्तो न शूद्रः  
 'जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् । विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं  
 तस्य तत्फलम्' इति मरीचिवचनात् ' इति तत्तुच्छम् । प्रव्रज्यादीनां  
 शूद्रेऽसंभवात् ' विषये प्रायदर्शनात् ' इतिन्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात् ॥  
 यदापि 'उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम्' इति पूर्वार्द्धे पाठस्तदापि स  
 एवदोषः 'स्त्रीशूद्रपतनानिषट्' इतिमानवीयेजपनिषेधात् ॥ वस्तुतस्तु संपूर्णता  
 वाचनमात्रमत्रोच्यत इति प्रतिनिधेः का वार्त्तत्यलम् ॥ अत्र विशेषमाह त्रि  
 काण्डमण्डनः- 'काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः । काम्येषु  
 पक्रमादूर्ध्वकेचित्प्रतिनिधिविदुः । न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु ।  
 सदेशकालयोर्नास्ति नारणेरग्निरिव सा । नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु  
 कुत्रचित् ' ॥ हिरण्यकेशिसूत्रेपि- 'न स्वामित्वस्य भार्यायाः पुत्रस्य देश  
 स्य कालस्याग्नेर्देवतायाः कर्मणः शब्दस्य च प्रतिनिधिर्विद्यते' इति ॥ अथ  
 व्रतादिसंनिपाते निर्णयः । तत्र तिथिद्वयसंनिपाते तत्रोक्तं दानहोमादिक्रमे  
 णानुष्ठेयम् । अविरोधात् ॥ इदं पूर्वार्द्धेष्वेव ॥ एकमध्येन्यकाम्यकर्मारम्भ  
 स्तु न भवत्येव गुणफलादृते 'यस्य यज्ञे प्रततेन्तरा यज्ञस्तायते तं यज्ञं निर्कृतिर्गृ  
 ह्णाति ' इति राणकधृतश्रुतेः । यज्ञः व्रतादिकर्ममात्रम् । अनङ्गेन व्यवधान  
 दोषस्य सर्वत्र साम्यात् ॥ शिष्टास्तु माघकार्तिकस्नानादिमध्ये लक्षहोमतुला

१ एतदारभ्य 'न तु काम्यमध्ये' इत्यन्तः पाठो व्याख्यान्तर्गतः केनचित्प्राक्षितः ॥



भारतश्रवणाद्याचरन्ति तन्नित्यमध्ये नतु काम्यमध्ये । यत्र तु नक्तैकभक्तादौ विरोधस्तत्र प्राथम्यादेकभक्तं कार्यम् ॥ नक्तं तु परेद्युस्तत्तिथौ गौणकाले कार्यम् ॥ समकालीनविरुद्धव्रतादौ त्वेकं स्वयं कृत्वान्यद्भार्यादिना कारयेदिति माधवः । यत्र तु शिवरात्र्यादौ तिथिमध्ये पारणयाऽन्हि भोजनं प्राप्तं । 'भूताष्टम्योर्दिवा भुक्त्वा रात्रौ भुक्त्वा च पर्वणि।एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्' इति तन्निषेधश्च । तत्र पारणाया वैधत्वाद्वैव भोजनम् निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनविषयः ॥ एवमष्टम्यादिनक्तव्रते संक्रान्त्यादौ रवौ संकष्टचतुर्थ्यां च रात्रौ भोजनम् ॥ यत्र त्वष्टम्यादौ दिवाभुजिनिषेधः, संक्रमेच रात्राविति निषेधद्वयं ॥ तत्रोपवास एव कार्यः ॥ यद्यपि पुत्रिण उपवासो निषिद्धः । तथापि 'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत्' इति वचनात्किञ्चिद्भक्षयित्वोपवासः कार्यः ॥ चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादौ तु भोजनं कार्यमेव । चान्द्रायणस्य काम्यत्वेन नित्यबाधकत्वात् । अबाधेन गत्यसंभवाच्च । एकादश्यामेकान्तरोपवासादिपारणायां जलपारणां कृत्वोपवसेत् । 'आपो वा अशितमनशितंच' इति श्रुतेः ॥ एवं द्वादश्यां मासोपवासश्चाहप्रदोषादिषु ज्ञेयम् ॥ एवं काम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतं बलाबलं स्वयमूह्यमिति दिक् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥

अथ प्रतिपदादिनिर्णयः ॥ शुक्लप्रतिपदपराह्णव्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या । युग्मवाक्यात् 'प्रतिपत्संमुखीकार्या या भवेदापराह्णिकी' इति स्कान्दोक्तेः । शुक्ला स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतश्चेत्सापराह्णे भवेत्' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ अप

राह्णश्च पञ्चधा भक्ते दिने चतुर्थो भागः ॥ तदभावे सायाह्णव्या प्रतिपत्तिर्णयः पिनी ग्राह्या । 'तदभावे तु सायाह्णव्यापिनी परिगृह्यताम्' इति माधवोक्तेः ॥ कृष्णा तु परा । 'कृष्णा तूत्तरतोखिला' इति दीपिकोक्तेः ॥ 'कृष्णापि पूर्वैव' इत्यनन्तभट्टाः ॥ सर्वतिथिषु वर्ज्यान्युक्तानि मुहूर्तदीपिकायाम् 'कुष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा तैलं चामलकं दिवं प्रवसता शीर्षकपालान्त्रकम् । निष्पावांश्चमसूरिकान् फलमथोवृन्ताकसंज्ञं



मधु द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश' ॥ शीर्षं नारिकेलम् ।  
कपालम् अलाबु । आन्त्रं पटोलकम् ॥ भूपालः—'कूष्माण्डं बृहतीक्षारं  
मूलकं पनसं फलम् । धात्रीशिरः कपालान्त्रं नखचर्मतिलानि च ॥ क्षुर  
कर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत्' ॥ नखं शिबी । चर्म मसूरिका ॥

'द्वितीया तु कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा' इति हेमाद्रिः ॥ 'कृष्णा  
द्वितीयानिर्णयः द्वितीयादिमा पूर्वाणहे यदि सा सिता तु परतः सर्वा' इति दीपि-  
कोक्तेः । माधवानन्तभट्टमते तु सर्वापि द्वितीया परा ।

तथाच माधवः 'पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा । सा द्वितीया  
परोपोष्या पूर्वविद्धा ततोऽन्यथा' इति ॥ तृतीया तु सर्वमते रम्भा  
व्यतिरिक्ता परैव ॥ तेन युग्मवाक्यं रम्भाव्रतविषयम् 'रम्भाख्यां वर्जयित्वा

तृतीयानि तु तृतीयां द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रश-  
र्णयः स्यते' इति ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ गौरीव्रते तु विशेषमाह माधवः  
'मुहूर्त्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धादिकायामप्येवं गुणयो  
गप्रशंसनात्' इति ॥ चतुर्थ्यपि सर्वमते गणेशव्रतातिरिक्ता परैव । युग्म  
वाक्यात् । 'एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः पर  
चतुर्थीनिर्णयः संयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः' इति माधवीये बृहद्रसिष्ठोक्तेश्च ॥

'नागचतुर्थी तु मध्याह्नव्यापिनी पञ्चमीयुता च ग्राह्या' इति  
निर्णयामृते माधवीये चोक्तम् । 'युगं मध्यंदिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान् ।  
क्षीरेणाप्याध्य पञ्चम्यां पूजयेत् प्रयतो नरः । विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान्  
हिंसन्ति पन्नगाः' इति माधवीये देवलोक्तेः ॥ युगं चतुर्थी । पूर्वत्र मध्या  
ह्नव्याप्तौ पूर्वा । अन्यपक्षेषु परैव पञ्चम्यां पूजोक्तेः ॥ गणेशव्रते तृतीयायुतै  
व चतुर्थी । 'चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा । कर्त्तव्या व्रतिभिर्वत्स  
गणनाथसुतोषिणी' इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ माधवीये तु गणेशव्रते मध्या  
ह्नव्यापिनी मुख्या । 'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्या  
पिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेहनि' इति बृहस्पतिवचनात् । प्रातः शुक्लतिलैः



स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप'इति तत्कल्पेभिधानाच्च ॥ तेन परदिने सत्त्वे परा । अन्यथापूर्वेत्युक्तम् । वस्तुतस्तु । यत्र भाद्रशुक्लचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्न पूजोक्ता तद्विषयाण्येव प्रागुक्तवचनानि नतु सार्वत्रिकाणि ॥ संकष्टचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेः । तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्व्वेति सिद्धम् ॥ संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये सत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात्पूर्वेति केचित् ॥ अन्ये तु दिने मुहूर्त्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्याभावात् परदिने माधवोक्तमध्याह्नव्यापिसत्त्वात्संपूर्णत्वाच्च परेत्याचक्षते ॥ दिनद्वये तदभावे तु परैव ॥ गौरीव्रते तु पूर्व्वेव । 'गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयोगतः'इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥ पञ्चमी तु माधवमते सर्वापि पूर्वा 'चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया नतु । दैवे कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथासिता'इति हारीतोक्तेः । हेमाद्रिमते तु कृष्णा पूर्वा सिता परा 'कृष्णा पूर्व्वयुता सिता परयुता स्यात् पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु हारीतोक्तिरुपवासविषया ॥ 'प्रतिपत्पञ्च

पञ्चमीनिर्णयः मी चैव सावित्री भूतपूर्णिमा । नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ यत्तु 'पञ्चमी तु प्रकर्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद' इत्यापस्तम्बीयम् ॥ तत्स्कंदव्रतपरम् 'स्कंदो पवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता' इति वाक्यशेषादिति माधवः ॥ तन्नागपूजाविषयमित्यनन्तभट्टनिर्णयामृतादयः ॥ चमत्कारचिन्तामणौ च 'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरासु चतुर्थिका' इति ॥ तेन नागपूजादौ परैव ॥ यत्तु मदनरत्नदिवोदासीययोः ॥ 'श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी ॥ तां परित्यज्य पञ्चम्यश्वतुर्थीसहिता हिताः' इति संग्रहोक्तेः 'गणेशस्कंदयोगाभ्यां क्रमाच्चागः शुभाशुभः । मित्रा मित्रे तयोः पत्रे नागानामाखुबर्हिणौ' इति षट्त्रिंशन्मताच्च श्रावणपंचम्यति षष्ठीनिर्णयः रिक्ताया नागपंचम्याश्वतुर्थीयुतत्वमुक्तम् ॥ तदुपवासादिविषयम् । पत्रे वाहने षष्ठी सर्वमते स्कंदव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्या



तु । ' नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी चैव कदाचन ' इति स्कान्दाच्च ॥ निर्णयः  
 सप्तमीनिर्णयः यामृते- ' षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेदं शुमालिनः । योगोयं पद्मको  
 नाम सूर्यकोटिग्रहैः समः ' ॥ सप्तमी पूर्वैव युग्मवाक्यात् । ' षष्ठ्या  
 युता सप्तमी च कर्त्तव्या तात सर्वदा ' इति स्कान्दाच्च ॥ अष्टमी तु सर्वमते  
 कृष्णा पूर्वा सिता परा । ' व्रतमात्रेष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा ' इति माधवो  
 क्तेः ॥ परयुक्शुक्लाष्टमी पूर्वयुक्कृष्णा ' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ शिवशक्त्युत्सवे  
 च कृष्णाप्युत्तरा । ' पक्षद्वयेप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे ' इति माधवोक्तेः ॥  
 दिवोदासीये भविष्ये- ' यदा यदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेत् कचित् ।  
 तदा तदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशने नृप । संध्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च  
 बुधाष्टमीनिर्णयः जनार्दने- ' बुधाष्टमी न कर्त्तव्या हन्ति पुण्यं पुरातनम् ' ॥ अंत्यं पञ्च  
 हेमाद्रौ न धृतम् । नवमी तु सर्वमते पूर्वा । युग्मवाक्यात् ' न  
 कुर्यान्नवमी तात दशम्या तु कदाचन ' इति स्कान्दाच्च ॥ दशमी तु पूर्वा परा च  
 नवमीनिर्णयः इति हेमाद्रिः ॥ ' कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला दशम्येव व्यवस्थिता ' इति  
 माधवः ॥ वस्तुतस्तु मुख्या नवमीयुतैव ग्राह्या । ' दशमी तु प्रकर्त्त  
 दशमीनिर्णयः व्यासदुर्गा द्विजसत्तम ' इत्यापस्तम्बोक्तेः ॥ यत्तु- ' संपूर्णा दशमी  
 कार्यापूर्वयापरयाथवा ' इत्यंगिरसोक्तम् । तन्नवमीयुक्तालाभे औद  
 यिकी ग्राह्येत्येवं नेयम् । अथैकादशी । तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा निषेधपरिपालना  
 एकादशीनिर्णयः त्मको व्रतरूपश्च ॥ तत्राद्यः- ' न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेत्कूं  
 र्मसूकरौ ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ' इति कौर्म  
 देवलाद्युक्तेः ॥ अग्निपुराणेपि- ' गृहस्थो ब्रह्मचारीच आहिताग्निस्तथैव  
 च । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ' इति ॥ नचात्र पर्युदासेन  
 व्रतविधिः, तद्धेतुव्रतादिशब्दाभावात् ॥ व्रतरूपन्तु ब्रह्मवैवर्ते- ' प्राप्ते हरिदिने  
 सम्यग्विधाय नियमं निशि । दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम् ' इति ॥

१ ' माधवमतमेव सम्यक् । आपस्तम्बवाक्यं तु कृष्णपक्षपरम् ' इति टीका ॥ २ पर्युदासः  
 स विज्ञेयो यत्रोत्तरपदेन नञ् ॥



इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । 'वैष्णवो वाथ शैवो वा कुर्यादे-  
कादशीव्रतम्' इति शिवधर्मोक्तेः । 'वैष्णवो वाथ शैवो वा सौरोप्येतत्समाच-  
रेत्' इति सौरपुराणाच्च ॥ सोपिद्वेधा नित्यः काम्यश्च 'उपोष्यैकादशीनित्यं  
पक्षयोरुभयोरपि' इति गारुडोक्तेः ॥ 'पक्षे पक्षे चकर्तव्यमेकादश्यामुपोषण-  
म्' इति नारदोक्तेश्च नित्यता ॥ 'यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं संततिमात्मनः ।  
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' ॥ इति कौर्मादिषु फलश्रुते-  
श्च काम्यता ॥ उभयैकादशीव्रतं गृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यम् ॥ गृहस्थस्य तु  
शुक्लायामेव व्रत नित्यं न कृष्णायाम् । 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥  
वनस्थयतिधर्मोयं शुक्लमेव सदा गृही' इति देवलोक्तेः ॥ नचानेन निषे-  
धपालनमेव वनस्थयतिविषये उपसंहियते, न तु व्रतमिति वाच्यम् ।  
अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात् । अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने  
निषेधपालने गृहस्थस्याधिकारोक्त्या विरोधः स्यात् ॥ निषेधस्य निवृत्ति-  
मात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षणादुपसंहारायोगात् । अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च ॥  
तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनां सामान्यवाक्यानां वनस्थयतिविषये  
उपसंहारान्न गृहस्थस्य कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः ॥ कथं तर्हि 'संक्रांत्यामुपवासं  
च कृष्णैकादशिवासरे । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात् पुत्रवान् गृही' इति नारदा-  
दिवचनेषु कृष्णानिषेधः प्राप्त्यभावादिति चेच्छ्रूयताम्— 'शयनीबोधिनीमध्ये  
या कृष्णैकादशी भवेत् । सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन' इति  
पाद्मे गृहस्थस्य आषाढीकार्तिकीमध्यस्था या कृष्णा विहिता सा  
पुत्रवतो निषिध्यते ॥ अन्यकृष्णायांतु न विधिः सर्वविधीनां वनस्थयति-  
षूपसंहारात् निषेधः प्राप्त्यभावात् ॥ शयन्यादिवाक्यं त्वपुत्रगृहिगोचरमित्य-  
नन्तभट्टहेमाद्र्यादिग्रन्थाः । दीपिकापि 'असितातु शयनीबोधान्तरस्थाप्यथो  
न स्यात्सा तमेवतोपि' इति ॥ मदनरत्ने भविष्ये— 'यथा शुक्ला तथा कृष्णा  
द्वादशी मे सदा प्रिया । शुक्ला गृहस्थैः कर्तव्या भोगसंतानवर्धिनी ॥ मुमुक्षुभिस्त-



‘था कृष्णा न ते तेनोपदर्शिता’ इति ॥ निषेधपालनं काम्यव्रतं च सर्वकृष्णायां  
 सर्वगृहिणां भवत्येव ‘पुत्रवांश्च सभार्यश्च बन्धुयुक्तस्तथैव च । उभयोः पक्षयोः  
 काम्यव्रतं कुर्यात्तु वैष्णवम्’ इति । नारदोक्तेः ॥ एतच्च सर्वं कालादर्शं उक्तम्  
 ‘विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये । उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव  
 पुत्रिणः । भुजेर्निषेधः कृष्णायां सिद्धिस्तस्य ततो व्रते’ इति ॥ प्राच्यास्तु  
 वैष्णवगृहस्थानां कृष्णापि नित्या । ‘नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।  
 पक्षे पक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् । सपुत्रश्च सभार्यश्च सुजनो भक्तिसं  
 युतः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि’ इति नारदोक्तेरित्याहुः ॥ पुत्रशब्द  
 श्चापत्यमात्रवचनः ॥ नारायणवृत्तौ—‘पुमांस एवमेपुत्राजायेरन्’ इत्यत्रापत्य  
 मात्रवाचित्वोक्तेः ॥ ‘जनयेद्बहुपुत्राणि’ इति लिङ्गात् । ‘पौत्री मातामहस्तेन’  
 इति मनूक्तेः । पुत्र्या अपत्यमित्यर्थे तु “स्त्रीभ्यो ढक्” इति पौत्रेय इत्यापत्तेः  
 ‘पुमान् पुत्रो जायते’ इति च ॥ उपवासनिषेधे विशेषो वायवीये उक्तः—‘उप  
 वासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत् ॥ न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत्’ ।  
 भक्ष्यं च तत्रैवोक्तम्—‘नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु  
 चाज्यम् । यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च’ इत्यलम् । तत्र  
 दशमीवेधो द्वेधा—अरुणोदयवेधः, सूर्योदयवेधश्चेति ॥ आद्यो गारुडे—‘दशमी  
 शेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि नैकादशीव्रतम्’ इति  
 अरुणोदयस्वरूपं च माधवीये स्कान्दे—‘उदयात्प्राक् चतसस्तु घटिका अरु  
 णोदयः’ इति ॥ यदपि—‘उदयात्प्राग्यदाविप्रमुहूर्तद्वयसंयुता । संपूर्णैकादशीनाम  
 तत्रैवोपवसेद्गृही’ इति गारुडसौधर्मादिवचनम् । यच्च भविष्ये—‘आदित्योदय  
 वेलायाः प्राङ्मुहूर्तद्वयान्विता । एकादशी तु संपूर्णा विद्धान्या परिकीर्तिता’  
 इति ॥ तदप्युपसंहारन्यायेन दण्डचतुष्टयपरमेव ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ यत्तु ब्रह्म  
 वैवर्ते—‘चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः । चतुष्टयविभागोत्र वेधादीनां  
 किलोदितः ॥ अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम् । अतिवेधो द्विघ-



टिकः प्रभासंदर्शनाद्रवेः । 'महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यते । 'तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदयेवुधैः' इति ॥ तदप्यवयवद्वारारुणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवी ये मदनरत्ने च ॥ अन्त्यस्तूदयवेधः ॥ तथान्येपि वेधाः ॥ हेमाद्रौ माधवीये च गारुडे—'उदयात्प्राक्त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा । संदिग्धे कादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः । उदयात्प्राङ्मुहूर्त्तेन व्यापिन्येकादशी यदा । संयुक्तेकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मवृद्धये' ॥ हेमाद्रौ—रात्रेरन्त्योष्टमो भागोप्यरुणोदय उक्तः । 'निशः प्रान्ते तु यामार्धे देववादित्रवादने । सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यते' इति स्मृतेः ॥ अत्रैके—एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्त्तद्वयेन क्रीडीकारात् 'निशः प्रान्ते' इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदण्डादयो नैकेरुणोदयाः । तदाह हेमाद्रिः—सार्धघटिकात्रयोक्तिरष्टाविंशतिघटीमितरा

१—अवयवेति । अतिवेधादेरुणोदयवेधावयवत्वादरुणोदयवेधत्वमित्यर्थः ॥  
 २ उदयवेध इति ॥ 'अतिवेधादयः सर्वे ये वेधास्तथिषु स्मृताः । सर्वेप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये मतः' इति वचनात् ॥ ३—उदयात्प्राक्चतुर्दण्डत्वमरुणोदयशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् अतएव काम्योपवासवर्ज्यवेधवाक्ये घटिकाशब्दोपादानमित्युपोद्बलकं दर्शयति—तथेति एकादशी त्रेधा—पूर्णा, खण्डा, विद्धा चेति भेदात् ॥ तत्र या द्वात्रिंशन्मुहूर्त्तव्यापिनी सा पूर्णा प्रतिपत्प्रभृतिः सर्वा उदयादोदयाद्रवेः । संपूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिता इति स्कान्दे हरिवासरपर्युदासात्तत्र 'उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्ब्रह्मी' इति गारुडात् । अत्र विशेषापेक्षायाम् 'आदित्योदयवेलायां आरभ्य षष्टिनाडिकाः । संपूर्णैकादशी नाम कार्या धर्मफलेप्सुभिः' इति गारुडं द्रष्टव्यम् ५ अरुणोदयव्यापिन्याः परदिने न्यूनत्वे खण्डा ॥ अरुणोदयव्यापिनी तु विद्धा 'आदित्योदयवेलायाः प्राङ् मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु संपूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता ।' इति भविष्यात् ॥ विद्धापि द्वेधा—संदिग्धा संयुक्ता च ॥ तत्र 'पुत्रराज्यप्रसिद्धयर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति विहितं काम्योपवासं संदिग्धां लक्षयित्वा तत्र निषेधति—उदयादिति ॥ 'पुत्रपौत्रप्रसिद्धयर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति विहितं काम्योपवासं संयुक्तां लक्षयित्वा तत्र निषेधति—उदयादिति ॥ एतच्च वाक्यद्वयं वैष्णवेतरविषयम् । वैष्णवान्प्रति तन्निषेधवैयर्थ्यात् 'नैवोपोष्यं वैष्णवेन' इति सामान्यत एव निवृत्त्यसाधारण्येन निषिद्धत्वात् ॥ इति टीका ॥



त्रिविषया । महत्तरास्तु 'रात्रीरपेक्ष्य चतस्रो घटिकाः-इत्युक्तमिती'त्याहुः ॥  
तन्न । अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः ॥ नच मुहूर्त्तद्वयमर्थः । दण्डद्वयैक-  
मुहूर्त्तादिवेधानां तथाप्यनुपपत्तेः । नहि तेषां यामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति ।  
मुहूर्त्तद्वयस्य यामार्द्धस्य च चतस्रो घटिका इत्यनेनोपसंहाराच्च न तदर्थः ।  
नच 'सार्द्धं तु घटिकात्रयम्'इत्यनेनाऽपि तदापत्तिः शङ्क्या । तेन चतुर्दण्ड  
वेधस्यैवोक्तेः । चतुर्दण्डेर्घटीदशमीसत्वेहिबेधस्तदर्थः । द्विघटिकादौतदयोगा  
च्च ॥ यत्तु मतम्--कियतारुणोदयवेध इत्यपेक्षायां सार्द्धघटिकात्रयनियमादरु  
णोदयेर्घघटिकातो न्यूनदशमीसत्वे न दोष इति ॥ तत्तुच्छम् । द्विदंडादावपि  
तदापत्तेः । 'दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादारुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि  
नैकादशीव्रतम्'इतिगारुडे भविष्येच योगमात्रनिषेधात् ॥ नारदीयेऽपि 'लव  
वेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत् ॥ सुराया विंदुना स्पृष्टं गंगांभ इव निर्म  
लम्' ॥ स्कान्देऽपि--'कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो । एकादश्यां न  
कर्त्तव्यं व्रतं राजन्कदाचन'इति । माधवोप्याह--सोऽयं कलादिवेधो ऽरुणोदय  
वेधे सूर्योदयवेधे च समानइति ॥ निगमेऽपि--'सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य  
दूषकः'इति ॥ अतएव माधवेन 'अरुणोदयाद्यदंडेऽल्पदशमीस्पर्शे संपृक्ता कृ  
त्स्नघटीयोगे संदिग्धा, मुहूर्त्तव्याप्तौ संयुक्ता उदये संकीर्णा'इत्युक्त्वा । 'अरु  
णोदयवेलायां दशमी यदि संगता । संपृक्तैकादशीं तां तु मोहिन्यै दत्तवानूप  
भुः'इति गोभिलाद्युक्तेः पूर्वोक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चारुणोदयवे  
धो निषिद्धः ॥ यत्त्वष्टमभागोरुणोदय इति हेमाद्रिणोक्तम् ॥ यच्च महत्तरा  
रात्रीरिति तत्परमतं स्वयमेव दूषितम् ॥ अन्तेप्युक्तम् । वेधतारतम्यं च दो  
षतारतम्यादुपपद्यतइति ॥ दोषतारतम्यं च प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते ॥ त  
च्चोक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे--'अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कुर्वन्नेकादशी नरः । दश  
मीशेषसंयुक्तां प्रायश्चित्तमिदं चरेत् । कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वा गां च दद्यात्सवत्स  
काम् । सुवर्णस्यार्धकं देयं तिलद्रोणसमन्वितम्' ॥ विधानान्तरं तत्रैव--'ब्राह्म



णान् भोजयेत्त्रिंशद्वां च दद्यात्सवत्सकाम् । धरंणस्यार्धकंदेयं तिलद्रोणमथापि  
 वा'इति ॥ अत्र वेधतारतम्याद्वयवस्थेति हेमाद्रिः । निशःप्रान्ते' इत्यपि दोषा  
 धिक्यार्थमेव ॥ तस्माच्चतुर्घटिकात्मक एवारुणोदय इति सिद्धम् । तेन षट्प-  
 आशद्वण्डानंतरं दशमीप्रवेशेरुणोदयवेध उक्तो भवति ॥ अंत्योऽपि तत्रैव कण्वे  
 नोक्तः—'उदयोपरिविद्धा तु दशम्यैकादशी यदि । दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवां  
 न्पाकशासनः'इति स्मृत्यन्तरेऽपि 'दशम्याःप्रान्तमादाय यदोदेतिदिवाकरः ॥  
 तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तत्'इति ॥ तत्रारुणोदयवेधो वैष्णववि-  
 षयः । तद्वाक्येषु वैष्णवग्रहणात् ॥ तत्स्वरूपं तु माधवीये स्कान्दे—परमापद  
 मापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते । नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ॥  
 विष्णवर्षिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते'इति ॥ यद्यपि पित्रादेरागमदी  
 क्षायां तन्मात्रस्य वैष्णवत्वं न तु पुत्रादे तथापि स्वपारम्पर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं  
 स्मार्तत्वं च मन्यन्ते वृद्धाः ॥ तत्त्वसागरे भविष्ये 'यथा  
 शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा । तुल्ये ते मन्यन्ते यस्तु स वै वैष्णव  
 उच्यते' ॥ केचित्तु दशम्यां नवमीवेधमपि त्यजन्ति तत्र मूलं मृग्यम् । उदयवे  
 धस्तु परिशेषात् स्मार्तगोचरः । तदाह माधवः 'अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्यो  
 दये तथा । उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात्' ॥ हेमाद्रिस्तु केषां  
 चिदर्धरात्रेऽपि दशमीवेधमाह 'अर्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्या वेध उच्यते । कपाल  
 वेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ॥ नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरि

१ धरणं सुवर्णं हेम चत्वारिंशन्माषैः । 'तुल्या यवाभ्यां कथितात्र गुञ्जा वल्लस्त्रिगुञ्जो  
 धरणं चतेष्टौ ॥ गद्याणकस्तद्वयमिन्द्रतुल्यैर्वल्लैस्तथैको धटकः प्रदिष्टः'इति ज्योतिषं तु  
 नेह प्रवर्तते धार्मिकसंप्रदायभंगापत्तेः । कृच्छ्रपाद—सवत्सगोदानोभयम्, केवलमेकैकम्  
 त्रिंशद्वाह्यभोजनेन वैकल्पिकतिलद्रोणसुवर्णाधाभ्यां वा समुच्चिततद्वयेन वाऽधिकेन युक्त  
 मिति चत्वारः पक्षा वेधातिवेधमहावेधयोगेषु क्रमेण योज्याः ॥ इति टीका ॥  
 २ अयं हि टीकाग्रन्थः केनचिन्मूलमध्ये प्रक्षिप्तः ॥ तत्र चेत्थम्—हरिप्रिया इति ॥  
 तदनन्तरं 'नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते'इत्यर्धम् ॥ 'अयमर्थः—अतीतरात्रेः  
 पश्चार्धेनागामिरात्रेः पूर्वार्धेन सह दिवस अद्यतनः । स एकादश्यामुपोष्यः । तत्र दशमीप्र



प्यते' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अस्यार्थः—'अनद्यतने लङ्' इत्यत्रातीताया रात्रेः पश्चिमयामद्वयमागामिन्या रात्रेः पूर्वयामद्वयं दिवसश्च स कालएषोद्यतनः । सकाल इत्युक्तं महाभाष्ये स एष वर्तमानःकाल एकादश्यहोरात्र उपोष्यः । तन्मध्ये दशमीप्रवेशे विद्धा सा त्याज्या । अतएव हेमाद्रौ—'दशम्याःसंगदोषेण अर्धरात्रात् परेण तु ॥ वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा ॥' इति दोष उक्तः ॥ चतुरो यामान् दिवसस्येत्यर्थः । स्वमते तु रात्रेस्त्रियामत्वात् प्रहरत्रयं पूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्तः । सोप्यरुणोदय एवा'सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकः क्रमः' इति मार्कण्डेयपुराणात् । 'प्रत्यूषोऽहमुखंकल्य' इतिकोशादरुणोदयमारभ्यसूर्याशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेधः । तेन मतभेदाद्व्यवस्थेति केचित् ॥ कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैव यंस्तुतिरिति तु माधवः ॥ यस्तु 'दिक्पञ्चदशभिस्तथा' इतिवेधः स उपवासातिरिक्तविषय इति माधवः ॥ 'सर्वप्रकारवेधोयमुपवासस्य दूषकः ॥ सार्धसप्तमुहूर्तस्तु योगोयं बाधते व्रतम्' इतिनिगमादित्यलम् ॥ अत्र माधवमते वैष्णवैरुणोदयविद्धा त्याज्या ॥ यदा त्वेकादश्येव शुद्धा सती वर्द्धते द्वादशी वा उभयं वा तदा परोपोष्या । एकादशी द्वादशी बाधिका चेत्त्यज्यतां दिनम् ॥ पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः' इति माधवोक्तेः ॥ स्मार्त्तैस्तु—सूर्योदयविद्धा त्याजा ॥ यदा त्वे

देशे विद्धा । सा त्याज्या' इति ॥ एतन्निराकरोति—नैतन्मम मतमिति ॥ त्रियामेति ॥ प्रथमप्रहरार्धस्य चतुर्थप्रहरार्धस्य च दिनकर्मसंबन्धितया तदन्या कथंचित्रियामा रात्री रात्रिकर्मणि ग्राह्येत्यर्थः ॥ एवं चोपवासे दिनकर्मणि अरुणोदयमारभ्य ग्राह्या । तत्र विद्धा हेया ॥ यस्तु कपालवेधो नामार्धरात्रवेधः स परोह्निउपवासे न त्याज्यः किंतु दिवासंकल्प एव'दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा इति हेमाद्रौ वचनात् इति ॥ ये तु रात्रेस्त्रियामत्वात्प्रहरत्रयपूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्त इति वदन्ति ॥ तदाशयं त एव जानन्ति ॥ अन्येतु 'सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकक्रमम्' इति वचनात् 'प्रत्यूषोऽहमुखं कल्यः, इतिकोशादरुणोदयमारभ्य सूर्याशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेध इति 'नैतन्मम मतम्' इत्यस्यार्थमाहुः ।



कादशी शुद्धा सती वर्धते द्वादशी च समान्यूना वा तदा गृहस्थैः पूर्वा, यति  
भिरुत्तरा कार्या । 'प्रथमेहनि संपूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता । द्वादश्यांच तथा  
तात दृश्यते पुनरेव च ॥ पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो' इति  
स्कान्दोक्तेः ॥ वर्धमानोप्येवमेवाह ॥ उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धा वा सर्वेषां  
परैवा 'संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ॥ सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतौ द्वादशी  
यदि' इति नारदोक्तेः । द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैवा 'नचेदेकादशी विष्णौ  
द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्यैकादशी तत्रयदीच्छेत्परमंपदम्' इति नारदोक्तेः ।  
'द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते । शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्तनिर्णय  
ईदृशः' इति माधवोक्तेश्च ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु 'विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया  
परतौ द्वादशी न चेत् । अविद्धाऽपि च विद्धा स्यात्परतौ द्वादशी यदि' इति हेमा  
द्रौ पाद्मवचनम् ॥ तदेकादश्या वृद्धौ ज्ञेयम् । तदुक्तं माधवेन 'एकादशी द्वादशी  
चेत्युभयं वर्द्धते यदा ॥ तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम्' इति ॥  
विद्धैकादश्यां द्वादशीमात्रवृद्धौ च सर्वेषां परैव तत्रैवैकादशीमात्रवृद्धौ गृहिणः  
पूर्वा यतेरुत्तरा । पूर्वोक्तपाद्मोक्तेः । 'एकादशीविवृद्धौ चेच्छुक्ले कृष्णे विशेष-  
षतः । उत्तरां तु यतिः कुर्यात् पूर्वामुपवसेद्गृही ॥' इति प्रचेतसोक्तेः । एतच्छुद्धा  
विद्धा तुल्यमिति माधवः ॥ 'त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किंचन । उपो-  
ष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रितापि च ॥' इति स्कान्दात् 'अविद्धानि निषिद्धैश्च  
न लभ्यन्ते दिनानि तु मुहूर्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः ।' इत्यप्यष्ट  
ङ्गोक्तेश्च । मुहूर्तपञ्चकमरुणोदयमारभ्य ज्ञेयम् । अन्यथोत्तरेऽहि एकादश्यभा  
वासंभवात् ॥ यदपि हेमाद्रिणा—शुद्धसमा शुद्धन्यूना वा अधिकद्वादशिका  
चेत्सर्वेषां परैवेत्युक्तम् ॥ तदपि वैष्णवविषयम् ॥ स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्यावि-  
रोधः ॥ हेमाद्रिमतेतूच्यते तत्र—'शुद्धाविद्धा द्वयीनन्दा त्रैधा न्यूनसमाधिकैः  
षट्प्रकाराः पुनस्त्रैधा द्वादश्यूनसमाधिकैः' इत्यष्टादशैकादशीभेदाः ॥ तत्र शुद्धा  
धिकन्यूनद्वादशिका शुद्धाधिकसमद्वादशिका च सकामैः पूर्वा, निष्कामैरुत्तरा  
कार्या । 'प्रथमेहनि संपूर्णा' इति पूर्वोक्तस्कान्दात् । ऊनद्वादशिकायां तु विष्णु  
श्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यम् । 'संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।



लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नुपवासः कथं भवेत् । उपोष्येद्वेतिथी तत्र विष्णुप्रीणन  
तत्परैः 'इतिवृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ शुद्धन्यूना शुद्धाधिका शुद्धसमा विद्धन्यूना  
विद्धसमा बाधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेति हेमाद्रिः ॥ मदनरत्ने तु शुद्धा  
धिका परा । 'संपूर्णैकादशी यत्र' इति पूर्वोक्तेः । अन्या पूर्वा । 'शुद्धा यदा समा  
हीना समा हीनाधिकोत्तरा । एकादशीमुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि' इति स्का  
न्दात् । शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी । 'नचेदेकादशीविष्णौ' इति नारदोक्ते  
श्च यत्तु—'अविद्धापिचविद्धास्यात्' इति पाञ्चमम् । तच्छुद्धाधिकापरम् । यत्तु संपूर्णै  
कादशी त्याज्यापरतो द्वादशी यदि । उपोष्याद्वादशी शुद्धाद्वादश्यामेव पारणम्  
इत्यादि तद्वैष्णवपरम् । स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्युक्तम् ॥ विद्धन्यूना समद्वादशिका  
तु मुमुक्षूणां पुत्रवतां च परा, अन्येषां पूर्वा ॥ पुत्रवतोऽपि पूर्वैति मदनरत्ने ॥  
विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका सैव सर्वैः कार्येति हेमाद्रिः ॥ मुमुक्षूणां परा, अन्ये  
षां पूर्वैति मदनरत्ने ॥ विद्धसमा समद्वादशिकोनद्वादशिका च मुमुक्षुभिः  
पराऽन्यैः पूर्वा कार्या' दशमीमिश्रिता पूर्वाद्वादशी यदि लुप्यते । शुद्धवद्वादशी  
राजन्नोपोष्या मोक्षकांक्षिभिः' इति व्यासोक्तेः । मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषां पूर्वैव  
'सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वामा वा यतो नित्य  
मुपोषणम्' इति पाञ्चोक्तेः ॥ विद्धाधिका समद्वादशिका च सर्वेषां पूर्वैव 'पार  
णाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत् । तदानीं दशमीविद्याप्युपोष्यैकादशी  
तिथिः' इति ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ॥ माधवमते तु—अत्र गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा  
विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका मोक्षपापक्षयविष्णुप्रीतिकामैः परा कार्या । गृह  
स्थेन तु न क्तं कार्यम् 'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । उपवासं न कु  
र्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः' इति कौर्मै दिनक्षये उपवासनिषेधात् ॥ 'दशम्यैकाद  
शीविद्धा द्वादशी च क्षयं गता । क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तु गृहिणः  
स्मृतम्' इति वृद्धशातातपोक्तेश्च ॥ गृहिणः पूर्वत्रोपवासः ॥ एकादश्याः शुद्ध

१ गृहिणः पूर्वत्रोपवास इति । नक्तकाले किञ्चिद्भक्षणोनेति शेषः । उपवासनिषेधेतु इति  
वचनात् ।



न्यूनत्वे 'शुद्धसमत्वे' वा द्वादश्या न्यूनसमत्वयोरेकादश्यामुपवासः । यानि तु 'दशम्यनुगता हन्ति द्वादशद्वादशीफलम् । धर्मापत्यधनायूषि त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति कौर्मादीनि दशमीवेधत्रयोदशीपारणयोः निषेधकानि तानि विहित-भिन्नपराणि ॥ अत्र मूलवचनानि तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया ॥ यत्तु कालहेमाद्रौ 'बहुवाक्यविरोधेन संदेहो जायते यदा । द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम्' इति मार्कण्डेयोक्तेः । 'संदिग्धेषु च वाक्येषु द्वादशीं समुपोषयेत्' तथा 'विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम् । पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने' इति पाद्मोक्तेश्च वेधसंदेहे ज्योतिर्विदां विप्रतिपत्तौ वा परा कार्येत्युक्तम् ॥ तद्वैष्णवविषयमित्यलं बहुना । अथात्रोपयुक्तं किञ्चिदुच्यते । तत्र दशम्यामेकादशीयोगे दशमीमध्ये एव भोजनं कार्यम् । 'एकादश्यां न भुञ्जीत' इति तस्या एव निमित्तत्वात् ॥ निषेधस्तु 'निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति देवलोक्तेश्च ॥ केचित्तु एकादशीव्रताङ्गत्वेन पूर्वद्युरेकभक्तविधानादिधिस्पृष्टे च निषेधानवकाशान्न काम्यव्रताङ्गे भोजननिषेधः प्रवर्तते । तेनैकादशीमध्येऽपि पूर्वदिने भोजनमित्याहुः ॥ अत्राधिकारी माधवीये कात्यायनेनोक्तः 'अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः । एकादश्यामुपवेसेत्पक्षयोरुभयोरपि' इति ॥ भविष्ये 'ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही' इति ॥ यत्तु विष्णुः—'पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति' इति । तद्भर्तृननुज्ञाविषयमिति प्रागुक्तम् ॥ उपवासासामर्थ्यं तु मार्कण्डेयकौर्मयोः 'एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत्' । अत्र 'एकभक्तेन यो मर्त्य उपवासव्रतं चरेत्' इत्येकभक्तादिषूपवासशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थः तेन तत्प्रयुक्ताः सर्वे धर्माः ॥ संकल्पमंत्रे चैकभक्तादिपदेनोहः कार्य इति मदनरत्ने ॥ तथाऽसामर्थ्यं प्रतिनिधिना कारयेदिति प्रागुक्तम् ॥ व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीय कात्यायनः—'अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमीदिवा एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्' इति । अथ काम्यव्रतविधिः ॥ लघुनारदीये 'दश-



म्यादि महीपाल त्रिदिनं परिवर्जयेत् । गन्धताम्बूलपुष्पादि स्त्रीसंभोगं महा-  
यशाः । तत्र दशम्यां विधिः कौर्मै 'काश्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोरदू-  
षकान् । शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसनृच्चियम्' । तथा 'शाकं मांसं मसूरां  
श्च पुनर्भोजनमैथुने । द्यूतमत्यंबुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् । मदनरत्ने  
नारदीये 'अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः । अवनीतल्पशयनाः प्रिया  
संगमवर्जिताः' । व्रतग्रान्याह हेमाद्रौ देवलः 'असकज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बू-  
लचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्' । अशक्तौ तु मदन  
रत्ने देवलः 'अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति' । अत्यये कष्टे ॥  
विष्णुरहस्ये 'गात्राभ्यङ्गं शिरोभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् । व्रतस्थो वर्जये  
त्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम्' ॥ एषु प्रायश्चित्तमुक्तं निर्णयामृते संग्रहे स्तेनहिं  
सकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम् । प्रायश्चित्तं व्रती कुर्याज्जपेन्नामशतत्र  
यम् । मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोम्बुनिषेवणे । अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टो-  
त्तरं शुचिः । ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरः ॥ तत्रैव पैठीनसिः 'ताम्बूलचर्वणे  
स्त्रीसंभोगे मांसनिषेवणे । व्रतलोपो न चेत्कुर्यात्कृष्णावद्भुजिवर्जनम्' इति ।  
कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालने तु ताम्बूलचर्वणादावपि न दोष इ  
त्यर्थः ॥ संभोगक्रतुकालादन्यत्र । 'रेतःसेकात्मसंभोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः'  
इति कात्यायनोक्तेः ॥ हेमाद्रौ वसिष्ठः 'उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्यादन्तधा-  
वनम् । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ।' काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्ठायनि-  
षेध इति हेमाद्रिः । विष्णुरहस्ये 'श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् ।  
गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्यविशुध्यति' । निर्णयामृते व्यासः 'वर्जयेत्पारणे  
मांसं व्रताहेप्यौषधं सदा' इति । एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ माधवीये कात्यायन  
आह 'उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय  
पितृसेवितम् । मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि । अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च

१ पैठीनसिः 'अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने ॥ पर्णादिना विशुध्येत जि-  
ह्वोल्लेखं सदैव च ॥ व्यासः 'अलाभेदन्तकाष्ठां निषिद्धायां तिथौ तथा ॥ अपां द्वादशग  
ण्डूर्विदध्यादन्तधावनमिति मयूखः ।



आजिघ्रेत्पितृसेवितम्'इति । हेमाद्र्यादिसर्वनिबन्धेष्वप्येवम् ॥ एतेन एकादशी  
निमित्तकं श्राद्धं द्वादश्यां कार्यमिति वदन्तः परास्ताः ॥ किंच महालयैः स पक्ष-  
सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति' इति श्रुतं षोडशत्वम् । पौषैकादश्यां  
च मन्वादिश्राद्धम्, क्षयाहापरिज्ञाने च तत्पक्षैकादश्यां विहितं श्राद्धं  
बाधितमेव स्यात् ॥ यदपि स्मृतिचन्द्रिकास्थं पठन्ति 'अन्नाश्रितानि  
पापानि तद्भोक्तुर्दातुरेव च ॥ मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः  
समाः'इति ॥ तस्यापि रागप्राप्तभुजिगोचरस्य वैधं श्राद्धं गोचरयतां मह-  
त्साहसमित्यलम् ॥ योपि 'अकृतश्राद्धनिचया जलपिण्डं विना कृताः'इति  
लघुनारदीये एकादश्यां श्राद्धादिनिषेधः ॥ समातापितृभिन्नविषयः । पूर्ववाक्ये  
तदग्रहणात् । निचयः प्रतिग्रहः ॥ व्रतग्रान्याहमदनरत्ने देवलः—'सर्वभू-  
तभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम् । अव्रतग्रानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः  
स्कांदेपि—'अष्टौ तान्यव्रतग्रानि आपो मूलं फलं पयः । हविर्ब्राह्म-  
णकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्' ॥ इदं चातिसंकटविषयम् ॥ नारदीये—'अनु-  
कल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि । मूलं फलं पयस्तोयमुपभोज्यं भवे  
च्छुभे । नत्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां बुधैः स्मृतम्'इति ॥ अस्यापवादः—'शयने  
च मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने । नरो मूलफलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्'  
एते चाविरोधिनो निर्णयाः सर्वव्रतेषु ज्ञेयाः ॥ तत्रैकादश्यां संकल्पः  
'गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः । उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा वार्येव धार-  
येत्'इति माधवीये वाराहोक्तेः । मन्त्रस्तु विष्णूक्तः—'एकादश्यां निराहारः  
स्थित्वाहमपरेहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत'इति ॥ शैवादीनां  
तु हेमाद्रौ सौरपुराणे—'सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत् ॥  
शिवादिगायत्र्यो यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ॥ वाराहे—'इत्युच्चार्य ततो विद्वान्पुष्पा-  
ञ्जलिमथार्पयेत्' ॥ ततस्तज्जलं पिबेत् । अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्ते  
नाभिमन्त्रितम् । उपवासफलप्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम्' इतिकात्याय



नोक्तेः ॥ मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौसंकल्प इतिमाधवः॥ 'दशम्याः  
सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु। वर्जयेच्चतुरोयामान्संकल्पार्चनयोस्तदा। विद्धो-  
पवास्यनश्वंस्तु दिनंत्यक्त्वा समाहितः । रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च तदा-  
चरेत्' इति नारदीयोक्तेः ॥ तत्रैव पूजामभिधाय 'देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं  
नियतोव्रती ।' द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन 'अज्ञानतिमिरान्धस्य  
व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव' इति ॥ नारदीये  
'ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद्द्वैदक्षिणां ततः ॥ स्कान्देपि- 'कृत्वा चैवोपवा-  
सं तु योश्चीयाद्वादशीदिने नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ।' द्वादश्यां  
च वज्र्या न्याहबृहस्पतिः- 'दिवानिद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने । क्षौद्रं कांस्या-  
मिषंतैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥' हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे- 'पुनर्भोजनमध्यायो  
भारआयासमैथुने। उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चमी ॥' स्कान्दे- 'परान्नं  
कांस्याताम्बूले लोभं वितथभाषणम्' ॥ वर्जयेदिति शेषः ॥ विष्णुधर्मे- 'असं-  
भाष्यान् हि संभाष्य तुलस्यतसिकादलम् । आमलक्याः फलं वापि पारणे  
प्राश्य शुध्यति' ॥ बृहन्नारदीये- 'रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा ।  
सूतिकांपतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् । व्रतादिमध्ये शृणुयाद्यघेषां ध्वनि  
मुत्तमः । अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्द्वै वेदमातरम्' ॥ एतत्प्रवृत्तं सूतकेपि कार्यम् ।  
सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्' इति विष्णूक्तेः ॥ तत्र त्यक्तं दानादि  
सूतकान्ते कार्यम् । 'सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । दानं दत्त्वा  
विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते' इति मात्स्योक्तेः ॥ रजोदर्शनेपि कार्यम् 'एकादश्यः  
न भुञ्जीत नारीदृष्टेरजस्यपि' इति पुलस्त्योक्तेः ॥ यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्ष तदा  
शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः । 'शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी  
श्रवणान्विता । तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां च पारणम्' इति नारदीयोक्तेः  
एते च नियमाः काम्यव्रते नियताः । नित्यव्रते सति संभवे कार्याः ।  
'शक्तिमांस्तु पुनः कुर्यान्नियमं सविशेषणम्' इति कात्यायनोक्तेः ॥ अशक्तौ

१ श्वशुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव च ॥ पितृव्यभ्रातृपुत्राणां परान्नं नैव दोषकृदिता  
वचनं तु निर्मूलम् ॥



तु माधवीयेब्रह्मवैवर्ते—‘इतिविज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् । विशेषनिय  
माशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः’ इति ॥ अथाष्टौ महाद्वादश्यः । तत्र शुद्धाधिकैका  
दशीयुता द्वादशीउन्मीलिनीसंज्ञा । द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते चेत्सा वज्जुली ॥  
वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा । अग्रेपर्वणः संपूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी । पुण्यक्ष-  
युता जया । श्रवणयुता विजया । पुनर्वसुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापना-  
शिनी । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥  
एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः । पार्थक्ये तु शक्तस्योपवासद्वयम् ।  
‘एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत्’ इति विष्णुरहस्यात् ॥ अशक्तौ तु  
द्वादश्यामेव । ‘एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं  
सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्’ इतितत्रैवोक्तेः ॥ यदा त्वल्पाद्वादशी तदोक्तं मात्सर्ये—‘यदा  
भवति अल्पापि द्वादशी पारणादिने । उषःकालेद्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं  
तदा’ ॥ नारदीयेपि—‘अल्पायामथविप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये । स्नानार्चनक्रियाः  
कार्या दानहोमादिसंयुताः’ इति ॥ संकटे तु माधवीये देवलः—‘संकटे विषमे  
प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम् ॥ अद्भिस्तु पारणां कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत्’ इति  
संकटे त्रयोदशीश्राद्धप्रदोषादौ ॥ अत्र केचिदाहुः—अपकर्षवाक्यान्यनाहिता-  
ग्निविषयाणि । अग्निहोत्रादीनां श्रौतत्वेनापकर्षायोगादिति ॥ द्वादश्यां च  
प्रथमपादमतिक्रम्य पारणं कार्यम् ‘द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः ।  
तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः’ इति निर्णयामृते मदनरत्ने च विष्णु  
धर्मोक्तेः । अत्र केचित्संगिरन्ते । यदा भूयसी द्वादशी, तदापि प्रातर्भुहूर्तत्रये  
पारणं कार्यम् ‘सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम्’ इति वचनात् ॥ अस्मद्गुरुव-  
स्तु—बहूनां कर्मकालानां विना कारणं बाधापत्तेः प्रागुक्तवचनैश्च अल्पद्वादश्या  
मेवापकर्षविधानादपराह्णं एव कार्यम् । प्रातःशब्दस्तु ‘सायं प्रातर्दिजातीनाम  
शनं श्रुतिचोदितम्’ इति वदपराह्णवाचित्वेऽप्युपपन्नः । चवाक्यं वैयर्थ्यं, पुन-  
र्भोजनसायंपारणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्येत्याहुः ॥ प्रमादेन एकादश्युपवासातिक्रमे  
अपराकैवाराहे—‘एकादशी विष्णुताचेद्वादशी परतःस्थिता । उपोष्या द्वादशी



तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्' इति ॥ कैश्चित्तु 'विष्णुना चेत्' इति पठितम् ॥ अत्रा-  
 विरोधिनो नियमाः सर्वव्रतेषु बोद्धव्याः । अन्ये च नवरात्रे वक्ष्यन्ते इति  
 दिक् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ  
 द्वादशीनिर्णयः ॥ द्वादशी तु पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'द्वादशी तु  
 त्रयोदशीनि- प्रकर्त्तव्या एकादश्या युता प्रभो' इति स्कान्दाच्च ॥ त्रयोदशी तु  
 र्णयः सर्वमते शुक्ला पूर्वा कृष्णोत्तरा । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितोत्थोऽ  
 थासितः पश्चात्' इति दीपिकोक्तेः । 'शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयो-  
 दशी' इति माधवाच्च ॥ चतुर्दशी सर्वमते कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा ॥  
 चतुर्दशीनिर्णयः उपवासे तु द्वय्यपि परेति मदनरत्ने ॥ पौर्णमास्यमावास्येतु सा-  
 पूर्णिमानि- वित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये । 'भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णं कदाचन ।  
 र्णयः वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥  
 अमायां योगविशेषमाहाऽपराकैः ज्ञातातपः—'अमावास्यां भवेद्धारो यदा  
 भूमिसुतस्य वै । जाह्नवीस्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ अमावै सोमवा-  
 रेण रविवारेण सप्तमी । चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम्' ॥ तत्रैव  
 व्यासः—'सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत् । गोसहस्रफलं

१ अत्र प्रदोषव्रतम्—ब्रह्मोत्तरखण्डे—'पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्दिवा ।  
 घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः । कृत-  
 संध्याजपाविधिः शिवपूजां समारभेत्' इति व्रतमभिधाय 'एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरि-  
 जापतिम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्' इति दिनेऽनाहारकर्त्तव्यं शिवपूजा-  
 प्रधानकं व्रतं स्मर्यते ॥ अत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तत्रैव पूजाविधानात् । प्रदोषस्त्रिमुहू-  
 र्त्तमित्यभिप्रायः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा 'त्रयोदशी तु कर्त्तव्या द्वादशी  
 सहिता मुने' इति सुमन्तूक्तिरिति मयूखकृतः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ, तदव्याप्तौ, साम्येन  
 तदेकदेशास्पर्शे, च उत्तरा संकल्पकाले सत्त्वात् । वैषम्ये तदेकस्पर्शे तदाधिक्यवती ग्राह्ये  
 ति विवेचनानुसारिणः ॥ इदं च मन्दवारे कृष्णपक्षेऽतिप्रशस्तम् 'मन्दवारे प्रदोषोऽयं  
 दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन्कृष्णपक्षे समागतः' इति तत्रैवोक्तेः ॥ आरम्भ-  
 श्रद्धानिप्रदोषे कार्यः 'यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता : आरभेत व्रतं तत्र संतान  
 फलसिद्धये' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इति टीका ॥



दद्यात्स्नानं वै मौनिना कृतम् ॥ हेमाद्रौ बृहन्मनुः—‘श्रवणाश्विनि-  
 ष्टार्द्राणागदैवतमस्तके ॥ यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते’ ॥ नागदैव  
 तमाश्लेषा । मस्तकोमृगशिरः । प्रथमपादइत्यन्ये । स च सर्वेषाम् ॥ अथेष्टिकालः  
 गोभिलः—‘पक्षान्ताउपवस्तव्याः, पक्षादयोऽभियष्टव्याः’ इति । उपवासोन्वाधा  
 नम् । तत्र मध्याह्ने तत्पूर्ववापर्वप्रतिपत्संधौ तद्दिनेयागः । ‘पूर्वाह्णे वाथ मध्याह्ने  
 यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तत्र पूर्वद्युस्तदहर्याग इष्यते’ इति लौगाक्षिवच-  
 नात् ॥ तत्र द्वेधा विभागः—‘आवर्तनात्तु पूर्वाह्णे ह्यपराह्णस्ततः परः ।  
 मध्याह्णस्तु तयोः संधिर्यदावर्तनमुच्यते’ इति मदनरत्ने वचनात् ॥ मध्याह्ना-  
 दूर्ध्वं संधौ माधवमते परेऽह्नियागः—‘अपराह्णेऽथ वा रात्रौ यदि पर्व समाप्य-  
 ते । उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते यागइष्यते’ इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥ हेमाद्रि-  
 स्त्वपराह्णसंधावपि परदिनेप्रतिपच्चतुर्थांशे चन्द्रोदये च सति द्वितीयादिष्वत्यन्त  
 क्षये सति ‘पूर्वद्युर्यागः पर्वणोऽंशे द्वितीये तु यष्टव्यं तु द्विजातिभिः । द्वितीयासहितं  
 यस्मादूर्ध्वयंत्याश्वलायनाः इति । द्वितीये त्विति कैमुतिकन्यायेन तुर्यांशपरम् ।  
 तुरीये त्विति शूलपाणौ पाठः स्वष्टार्थ एवातथा—‘भूता पञ्चदशी पूर्णाद्वितीया  
 क्षयगामिनी । चरुरिष्टिरमायां स्याद्भूते कव्यादिकी क्रिया’ इति बौधायनवचनाच्चे-  
 त्युचिवान् ॥ मदनरत्नेपि—‘चतुर्दशी चतुर्यामा अमावास्या न दृश्यते । श्वो-  
 भूते प्रतिपच्चेत्स्यत्पूर्वा तत्रैव कारयेत्’ इति ॥ यत्तु माधवः—‘यस्तु वाजसनेयी  
 स्यात्तस्य संधिदिनात्पुरा । न काप्यन्वाहितिः किंतु सदा संधिदिने हि सा’  
 इत्याह । यच्च कालादर्शेऽप्युक्तम्—‘आवर्तनादधः संधिर्यद्यन्वाधाय तद्दिने । परे  
 द्युरिष्टिरित्याहुर्विष्णोः वाजसनेयिनः’ इति । यच्च मदनरत्ने—‘मध्यंदिनात्स्यादह

१ इध्माबर्हिः संपादनमग्निपरिग्रहइत्यादिप्रयोगप्रारंभः । २ संधाविति ॥ तत्स्वरूपं भगव  
 तीपुराणे’ अनुमत्याश्चराकायाः सिनीवाल्याः कुहंविना ॥ एतस्यां द्विलवः कालः कुहूमात्र  
 कुहूः स्मृता’ इति ॥ लवश्च स्मृत्यंतरे ॥ लवाक्षरचतुर्भागश्चुष्टिरित्यभिधीयते ॥ चुष्टिद्वयं  
 निमेषोक्तो निमेषस्तु लवद्वयम् ॥ तथाचैकलब्धाक्षरोच्चारणपरिमिते काले एकः पर्वणोपरः प्रति  
 पदस्तदुभयं मिलितं संधिः कुह्वितिकोकिलेनोक्तेर्यावान्कालः समाप्यते तत्कालसंज्ञिताचैषा  
 अमावास्या कुहूः स्मृता’ इति मात्स्यात्कुहूप्रतिग्रहोः संधिद्विगुण इति पुरुषार्थचिन्तामणिः ।



नीह यस्मिन् प्राक्पर्वणः संधिरियं तृतीया । सा खर्विका वाजसनेयिमत्या  
 तस्यामुपोष्याथपरेद्युरिष्टिः' इति । एतत् पौर्णमासीपरमितितत्रैव । आवर्तनोर्ध्वम  
 वर्गस्ताद्रात्रौवासमाप्तौ द्वे, मध्याह्नादवाक् समाप्तौ तृतीयेत्यर्थः ॥ तत्कर्कभाव्य  
 देवजानीश्र्यनन्तभाष्यादिसकलतच्छाखीयग्रन्थविरोधाद्वृद्धानादराचोपे  
 क्ष्यम् । पौर्णमास्यां विशेषमाह कात्यायनः 'संधिश्चेत्संगवाद्धूर्ध्वं प्राक् पर्यावर्त  
 नाद्रवेः । सापौर्णमासी विज्ञेयासद्यस्कालविधौ नरैः' । अमायां विशेषमाह बौ  
 धायनः 'द्वितीया त्रिमुहूर्ता चेत् प्रतिपद्यापराह्निकी । अन्वाधानं चतुर्दश्यां  
 परतः सोमदर्शनात्' । कात्यायनश्च 'यजनीयेऽहिं सोमश्चेद्धारुण्यां दिशि  
 दृश्यते । तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्विजातये' इति । एतच्च बौधायनवाज  
 सनेयिविषयम् ॥ तैत्तिरीयश्रुतौ तु चन्द्रदर्शनेऽपि याग उक्तः 'एषा वै सुमना  
 नामेष्टिर्यामभ्यजानन् । पश्वाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवासमै लोकेर्धुकं भवति  
 इति ॥ श्रुत्यन्तरेऽपि 'यदहः पश्वाच्चन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्यजन्निमाल्लोकान  
 भ्युदेति' इति इदं बहुचापस्तम्बविषयम् ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् । आपस्त-  
 म्बभाष्यार्थसंग्रहेऽप्येवम् ॥ अतः पक्षद्वयस्य स्वस्वसूत्राद्वयवस्थेति तत्त्वम् ॥  
 'दूषयन्त्याश्वलायनाः' इति तु पूर्वाह्नसंधिविषयमिति माधवः ॥ शेषपर्वणीष्टौ  
 विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः 'प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते । पुनः  
 प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या यागवित्तमैः' । गृह्याग्नेर्नायं नियम इति मदनपारि-  
 जातः ॥ एवं पर्वान्त्यांशः प्रतिपदश्च त्रयोऽशा यागकालः उक्तः ॥ क्वचित् प्र-  
 तिपत्तुर्यांशेऽपि यागः 'संधिर्यद्यपराह्नेस्याद्यागं प्रातः परेहनि । कुर्वाणः प्रतिप  
 द्रागे चतुर्थेऽपि न दुष्यति' इति वृद्धशातातपोक्तेः ॥ एतत्पौर्णमापरमिति  
 मदनरत्ने । पर्वणि प्रतिपदः क्षयस्य वृद्धेश्चार्द्धं प्रक्षिप्य संधिर्ज्ञेयः । तदाह माधवः  
 'वृद्धिः प्रतिपदोयास्ति तदर्थं पर्वणि क्षिपेत् । क्षयस्यार्धं तथा क्षिप्त्वा सं-  
 धिर्निर्णीयतां सदा' इति । कात्यायनोऽपि 'परेह्नि घटिका न्यूनास्तथैवाभ्यधि-  
 काश्च याः । क्षिप्त्वा तदर्थं पूर्वस्मिन् हासवृद्धौ प्रकल्पयेत्' इति । एवं स्मार्त-  
 स्थालीपाकेऽपि ज्ञेयम् । तत्रेष्टिस्थालीपाकान्वाधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरभा

१ तथा चापराह्णसंधावपि ब्राह्मणभोजनातिरेकः पदार्थः प्रतिपदि कर्त्तव्य इति हेमाद्रौ ॥



विन्यां पौर्णमास्यां प्रारम्भणीयौ नतु दर्शे ॥ यद्यारम्भे मलमासपौषमासगुरु-  
शुक्रास्तादि भवति तदाप्यारम्भः कार्यः ॥ यानि तु 'उपरागोधिमासश्च यदि  
प्रथमपर्वणि । तथा मलिम्लुचे पौषे नान्वारम्भणमिष्यते । गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये  
चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।' इतिसंग्रहवचनानि ॥ तानि आलस्यादिनातिक्रान्तशुद्धका-  
लप्रारम्भविषयाणि ॥ 'नामकर्म च दर्शेष्टिं यथाकालं समाचरेत् । अतिपाते सति  
तयोः प्रशस्ते मासि पुण्यभे' इत्यपराकैर्गर्गवचनादिति प्रयोगपारिजाते ।  
उक्तं चेतत् प्रयोगरत्ने भट्टैः ॥ कालादर्शे तु 'नामकर्म च जातेष्टिम्' इति  
पाठः । याज्ञिकास्तु 'आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा । तस्यामारम्भ-  
णीयादीन् कुर्वीत कदाचन' इति त्रिकाण्डमण्डनवचनाच्छुद्धकाल एव विभ-  
ष्टेष्टिं कृत्वारम्भं कुर्यादित्याहुः ॥ कालादर्शे स्मृतिसंग्रहेऽपि 'आरम्भे दर्शपूर्णे  
ष्ट्योरग्निहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठाः पञ्चकर्माद्या मलमासे विवर्जयेत्' इति ।  
अथ विकृतीष्टिः । तत्रापस्तम्बः—'यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत  
सोमावास्यायां पौर्णमास्यां वा' इति ॥ अत्र प्रकृतितः काले सिद्धेऽपि सद्यःका-  
लता विधेया । तृतीयायां साङ्गत्वेनोक्तेः ॥ अत्र पौर्णमास्यमावास्याशब्दाभ्यां  
तदन्त्यक्षणो गृह्यते । तेन तद्वत्यहोरात्रे इत्यर्थमाह रामाण्डरः ॥ माधवोऽपि  
'इष्ट्यादिविकृतिः सर्वा पर्वण्येवेति निर्णयः' इति । अत्र विशेषमाह त्रिका-  
ण्डमण्डनः कात्यायनश्च 'आवर्तनात् प्राग्यदिपर्वसंधिः कृत्वा तु तस्मिन्  
प्रकृतिं विकृत्याः । तदैव यागः परतो यदि स्यात्तस्मिन्विकृत्याः प्रकृतेः परेद्युः'  
इति । धूर्तस्वाम्यादयोऽप्येवमाहुः । यदीष्ट्येति साङ्गाया विकृतेः पर्वकालत्वादा-  
वर्तनात् प्राक् संधौ 'संधिमभितो यजेत्' इति प्रकृतेः प्रतिपदि समाप्तिनियमात्  
प्रकृत्यनन्तरप्रतिपदि विकृत्ययोगात् पूर्वद्युर्विकृतिरित्युक्तं तन्त्ररत्ने पार्थसार-  
थिनायवापि 'प्रकृतेः पूर्वत्वादपूर्वमन्तेस्यात्' इत्यापस्तम्बेनोक्तम् । तथापि हेतु-  
वादेन श्रुतिमूलत्वाभावात् 'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' इति वदप्रामाण्यमिति  
तदाशयः ॥ आग्रयणे तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ अन्वारम्भणीया तु चतुर्दश्यां कार्येति  
हिरण्यकेशिवृत्तौ मातृदत्तीये ॥ अन्येषां पर्वण्येव ॥ पशौ सोमे च काला-



न्तरमप्याह बौधायनः । 'आमावास्येन वा हविषेष्टा नक्षत्रेच' इति ॥ शुक्लपक्षे  
 कृत्तिकादिविशाखान्तेषु देवनक्षत्रेष्विति केशवस्वामी व्याचख्यौ ॥  
 चातुर्मास्येष्वपि द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रेष्वप्यारम्भः ॥ यावज्जीवत्सां  
 वत्सरप्रयोगयोस्तु फाल्गुन्यां चैत्र्यां वारम्भः ॥ पशौतु विशेषमाहकात्यायनः  
 'अर्धादन्हो भवति नियतं पर्वसंधि- परस्तात्कृत्वा तस्मिन्नहनि तु पशुं सद्य  
 एव द्वयहंवा । आरभ्याथ प्रकृतिरथ चेत् पर्वसंधिः पुरस्तात् कृत्वा तस्मिन्  
 प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुः सद्य एव ।' अधिकारपशुस्त्वग्नीषोमीयेण सवनीयेन  
 वा समानतन्त्रो वा कार्य इति त्रिकाण्डमण्डनः ॥ सोमे त्वाहापस्तम्बः-  
 अमावास्याया दीक्षा, यजनीये, वामावास्यायां यजनीये वा सुत्यमहः, पौ-  
 र्णमास्यां दीक्षायजनीये वा पौर्णमास्यां यजनीये वा सुत्यमहः' इति ॥ लाट्या  
 यनसूत्रेपि- 'पूर्वपक्षस्य प्रथमेहनि दृष्ट्वा वा नक्षत्रयोगेच' इति ॥ पूर्व  
 पक्ष शुक्लपक्षः । नक्षत्रयोगेचेति । अयमर्थः 'चैत्र्यादिपूर्णिमायाश्चित्रानक्षत्रयोगे  
 दीक्षेत' इति ॥ आधानं तु पर्वणि नक्षत्रेषु चोक्तम् । तत्र पर्व नक्तम् 'गार्हपत्यमा-  
 दधीत' इत्यादिकर्मकालव्यापि ग्राह्यम् ॥ दिनद्वये तत्वे परं ग्राह्यम् । संकल्प-  
 स्य पर्वणि लाभात् । पूर्वत्र नक्षत्रयोगे तदेव ग्राह्यम् ॥ यत्र त्रीणि संनिपति  
 तान्यृतुर्नक्षत्रं च पर्व तत्समृद्धं 'विप्रतिषेधे ऋतुर्नक्षत्रं च बलीयः' इति हिरण्य  
 कोशिसूत्रात् ॥ ऋतुः 'वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' इत्यादिः ॥ रेणुकारिकायां तु  
 'भाषादिपञ्चमासेषु श्रावणे वाश्विने तथा । मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे आधानमथका-  
 रयेत्' इत्युक्तम् ॥ अत्र मूलं मृग्यम् ॥ आधाननक्षत्राणि त्वापस्तम्बसूत्रे  
 'कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपुष्यपूर्वोत्तरापूर्वाषाढोत्तराषाढाहस्तचित्रावि-  
 शाखाऽनुराधाश्रवणोत्तराभाद्रपदा' इति ॥ सोमपूर्वाधाने विशेषमाहापस्तम्बः-  
 'सोमेन यक्ष्यमाण आदधानो नर्तून्सूक्ष्मेन नक्षत्रम्' इति ॥ अत्र प्रकरणाधा-  
 नकालबाधः । तेन सोमस्य वसंतकालता न बाध्यत इति रुद्रदत्तवृत्तौ नारा-  
 यणवृत्तौ चोक्तम् ॥ तन्त्ररत्ने वार्तिके च 'ते वा एते उभये अपहतपाप्मा  
 नो ऋतवः । एष वा उद्यन्नादित्येषां पाप्मनोपहन्ता । यदेदैनं कदाचन यज्ञ



मुपनमेदथादधीत' इत्यत्रोत्तरायणरूपं दैवं दक्षिणायनरूपं च पित्र्यमित्युभयमु-  
 तुत्रयं सोमाधानेशतपथे विशिष्यविहितम् । तदेकवाक्यतया शाखान्तरेऽपि 'नर्तु-  
 न्सूक्ष्मेत्' इत्यत्र सोमकालबाधएवा आधानकालबाधस्य 'यदेवैनं श्रद्धोपनमेत्त-  
 दादधीत' इत्यस्यां शाखायां वाक्यान्तरेणासिद्धत्वात् सोमकालबाधार्थमेवेदमि-  
 त्युक्तम् ॥ धूर्तस्वामी तु 'सोमस्यापि य ऋतुस्तस्यापि न सूक्ष्मेत्' इतिलिखनादु-  
 भयकालबाधं मन्यते ॥ श्रीरामांडारस्तु 'कालान्तरविधानं वा सर्वकालानादरो  
 वा' इति पक्षद्वयमुक्तवान् ॥ तत्राद्येकृत्तिकादिकालान्तरस्य यथाधाने वसंताद्य-  
 बाधेन विधानम् । तथा 'सोमेष्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसंनिपाते यज्ञकालानादेशः'  
 इति छन्दोगसूत्रोक्तोदगयनबाधेन सोमाभिसंधिरूपकालान्तरविधानादुदगयनं  
 त्वपेक्षत इत्युक्तम् ॥ द्वितीयपक्षे तु 'यदेवैनं यज्ञ उपनमेत्' इति सर्वकालानादर  
 उक्तः इति भारद्वाजसूत्रात् सर्वशब्दस्य च 'विश्वजित्सर्वपृष्ठ' इति वद्वयोरप्रयो-  
 गात् सर्वकालबाधइति । तेन दक्षिणायनेऽपि भवतीत्युक्तम् ॥ षड्गुरुभाष्ये देव-  
 त्रातभाष्ये तन्त्ररत्ने च षट्स्वपि ऋतुषु भवतीत्युक्तमिति दिक् ॥ श्राद्धे त्वमा-  
 वास्या त्रेधा विभक्तदिनतृतीयांशे योपराह्लाभागस्तद्व्यापिनी साग्निकैर्ग्राह्या 'पि

ण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते । वासरस्य तृतीये शो  
 दर्शश्राद्धकालः नातिसंध्यासमीपतः' इति कात्यायनोक्तेः । 'दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं  
 पार्वणंतत्प्रकीर्तितम् । अपराह्णे पितृणां च तत्र दानं प्रशस्यते' इति शातातपो-  
 केश्व ॥ दिनद्वये तत्र सत्त्वे सर्वापराह्लाग्यापी दशो ग्राह्यः ॥ 'यद्युभयेद्युरेष विहितः  
 सर्वापराह्लास्थितः' इति दीपिकोक्तेः ॥ यत्तु काष्णार्जिनिः 'भूतविद्धाममावस्यां  
 माहोदज्ञानतोपि वा । श्राद्धकर्मणिये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते' इति । तदपराह्णे चतु  
 र्दशीवेधपरमिति श्राद्धहेमाद्रिः ॥ अपराह्लाग्यातिपरमिति माधवः ॥ 'दिनद्वयेऽ  
 पराह्लाग्याप्त्यभावं शतो व्याप्तौ च तिथिक्षये पूर्वा' इति हेमाद्रिः 'यदा चतुर्दशीयामं  
 तुरीयमनुपूरयेत् । अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते' इति कात्यायनो  
 क्तेः ॥ चतुर्दश्याश्वतुर्थं यामं दर्शः पूरयेत् । चतुर्दशी यामत्रयं स्यादित्यर्थः ॥ क्षीय  
 माणा परदिनेऽपराह्लाग्यापिनी नेत्यर्थः ॥ व्यतिरेकमाह 'वर्धमानमामावास्यां



लक्षयेदपरेहनि।यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ।'ततःश्राद्धं च ॥  
 दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौतिथिवृद्धौच हारीतः 'त्रिमुहूर्ता च कर्तव्या पूर्वा  
 खर्वाच बह्वचैः।कुहूरध्वर्युभिःकार्या यथेष्टं सामगीतिभिः।'त्रिमुहूर्ताभावेतुपूर्वा  
 नेत्यर्थः ॥ पिण्डपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेद्युःकार्यः'पूर्वो वाङ्मन्वात्  
 पिण्डपितृयज्ञः'इतितत्सूत्रात् ॥ व्याख्यातं चैतत् कर्काचार्यैःपूर्व  
 पिण्डपितृयज्ञः  
 एव दर्शात् पिण्डपितृयज्ञो,न पश्चात्।कुतः अङ्गत्वात्।तथाच श्रु-  
 तिः'तस्मात्पूर्वेद्युःपितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान्यजन्ते' इति 'पूर्वेद्युःपितृभ्यो  
 यज्ञं निपृणीयप्रातर्देवेभ्यःप्रतनुते'इति च तेन तन्मतेअङ्गमेवासौ।तदुक्तम्'अङ्गं  
 वासमभिव्याहारात्'इति तेन कर्कमते चतुर्दशीयुक्तदर्शं पिण्डपितृयज्ञइति ॥  
 श्रीअनन्तभाष्येतु'परेद्युः'इत्युक्तम् ॥ अत्रद्वेधाप्याचारो दृश्यते ॥ आपस्तम्बा  
 नांतु परदिनेमुहूर्तमपि दर्शसत्त्वे तत्रैव पितृयज्ञः।तदाह आपस्तम्बः—अमावा-  
 स्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहःपिण्डपितृयज्ञं कुरुते' इति॥अस्य रुद्र-  
 दत्तीया व्याख्या पिण्डैर्युक्तःपितृयज्ञःपिण्डपितृयज्ञःस च कर्मान्तरं न तु दर्श-  
 शेषः।यथावक्ष्यति—'पितृयज्ञःस्वकालविधानादनङ्गस्यात्'इति।तं च यदहश्च-  
 न्द्रमसं न पश्यति पञ्चदश्यां प्रतिप्रदि वा तदहः कुरुते।यदहस्तयोः संधिस्त-  
 दहरित्यर्थः'इति ॥रामाण्डारोप्याह—'पिण्डपितृयज्ञस्तु पर्वसंधिमदहोरात्रा-  
 पराह्ण'इति ॥ अतःपर्वसंधिदिने पितृयज्ञः ॥ इतपथश्रुतिरपि 'यदैवैषनापु-  
 रस्तान्न पश्चाद्दृश्यतेथ पितृभ्यो ददाति'इति ॥ पर्वसंधिदिने हि पूर्वतःपश्चाद्वा-  
 चन्द्रो न दृश्यत एवेत्यर्थः॥सत्याषाढोपि पितृयज्ञं प्रक्रम्य 'दृश्यमाने तूपोप्य  
 श्वाभूते यजते' इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु—अमावास्याशब्दस्तिथिवचन एव।पूर्वो  
 कापस्तम्बेसूत्रे यदुक्तम् नपश्यन्ति इतितत्र क्षयोभिप्रेतः।अतश्चतुर्दश्यां  
 चन्द्रमसश्च क्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शं पितृयज्ञः 'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रेक्षये  
 ऽग्निमान्'इति मनूकेः॥'यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः।तत्क्षयापे-  
 क्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि'इति'यदुक्तं दृश्यमानेऽपितञ्चतुर्दश्यपेक्षया'इति  
 च कात्यायनोक्तेः।'दृश्यमानेप्येके'इति गोभिलोक्तेः॥ तस्यांसंध्यागतःसोमो



मृणालमिव दृश्यते । अपराह्णे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम्' इति हारी-  
 तोक्तेश्च चन्द्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन 'अष्टमेशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति  
 चन्द्रमाः । अमावास्याष्टमेशे तु पुनः किल भवेदणुः' इति । तेन पूर्वद्युरेव पितृ-  
 यज्ञ इत्युचिवाच ॥ कर्काचायैरपि—'अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेमा-  
 वास्यायाम्' इति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन क्षय एवोक्तः 'तस्मिन्क्षीणे ददाति  
 इति श्रुतेः ॥ अतस्तन्मते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोर्थात्सि-  
 द्धः ॥ तदेतत्सर्वोत्कृष्टमपि हेमाद्रिकर्कादिव्याख्यानमापस्तम्बैरनभ्युपगमा-  
 त्कातीयबौधायनादिविषयम् ॥ आश्वलायनानामपि शेषपर्वणि पिण्डपितृयज्ञः  
 तथाच सूत्रम्—'अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः' इति ॥ अत्र नाराय-  
 णवृत्तिः—अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पञ्चदश्योः संधिवचनोप्यत्रापराह्णशब्दसम-  
 न्वयात्तद्व्यहोरात्रे वर्तते । तस्यापराह्णेह्यतुर्थे भागे पिण्डपितृयज्ञः कार्यः ।  
 औपवसथ्ययजनीये वाहनि ॥ यदा त्वहोरात्रसंधौ तिथिसंधिः स्यात्तदौपवस-  
 थ्ये एवाहनि क्रियत इति ॥ अत एव 'मुहूर्तमप्यमावास्या प्रतिपद्यपि चेद्भ-  
 वेत् । तद्वत्तमक्षयं ज्ञेयं पर्वशेषं तु पर्ववत्' इति हेमाद्रौ वचनं पिण्डपितृयज्ञप-  
 रमुक्तं प्रयोगपारिजाते ॥ अयं च स्मार्ताभिमतः संपूर्ण दर्शः श्राद्धव्यतिषङ्गेण  
 कार्यः । व्यतिषङ्गो नामोभयोः सहानुष्ठानम् एतच्च 'स्थालीपाकेन सह पिण्डा-  
 र्थमुद्धृत्य' इति सूत्रे वृत्तिकृतोक्तम् ॥ खण्डपर्वणि तु केचिदाहुः—'पूर्वेहि पिं-  
 डपितृयज्ञव्यतिषङ्गेण श्राद्धं कृत्वा परोहि केवलः पिण्डपितृयज्ञः कार्यः' ॥  
 वृत्तिकृता तु—'अन्वाष्टक्यं च पूर्वद्युर्मासि मास्यथ पार्वणम् । काम्यामाभ्युदये  
 ष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम्' इत्युदाहृत्य पूर्वेषु चतुर्षु 'स्थालीपाकादुद्धृत्याग्नौ  
 करणम्' इत्युक्तेर्दर्शश्राद्धस्थालीपाको नियत इति गम्यते ॥ स्थालीपाकश्च  
 पितृयज्ञ एवेति पूर्वदिने व्यतिषङ्गः प्रसिद्धः ॥ प्रयोगपारिजाते तु वार्षिकश्रा-  
 द्धादेरपि व्यतिषङ्ग उक्तः । किमुत दर्शश्राद्धस्य ॥ न्यायविदस्त्वाहुः । सूत्रस्य  
 वृत्तेश्च संपूर्णदर्शविषयत्वात् खण्डपर्वणि पूर्वदिने केवल श्राद्ध परदिने च  
 केवलः पितृयज्ञः कार्यः ॥ अतएवोक्तं वृत्तिकृता नात्र पूर्वस्थालीपाकश्चोच्यते



सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गादिति ॥ प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयैव ॥ पूर्वदिने  
 च श्राद्धेऽग्नौकरणमेव न पाणिहोमः। 'चतुर्ष्वर्धेषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधी-  
 यते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ' इति परिशिष्टे नियमात् ॥  
 नच लौकिकाग्नौ पक्वस्य कथं गृह्याग्नौ होमः। 'नान्याग्नौ पक्वमन्याग्नौ जुहुया-  
 त्' इतिनिषेधात् । मैवम् । श्राद्धस्य गृहत्वेन स्मार्ताग्नौ पचनाग्नौ वा  
 कर्तव्यत्वात् ॥ तस्मात् पूर्वद्युः केवलं श्राद्धं न व्यतिषङ्गः ॥ इदमेव च युक्तं  
 आहिताग्निना तु सर्वाधानिनार्धाधानिना वा संपूर्णे खण्डे वा दर्शे श्रौताग्नौ  
 पृथगेव पितृयज्ञः कार्यो नतु दर्शश्राद्धव्यतिषङ्गेणेति विस्तरभीतिर्विरमामः ॥  
 संपूर्णे दर्शे च विशेषमाह लौगाक्षिः—'पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्नि-  
 कः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः' इति ॥ पक्षान्तं कर्मान्वाधान-  
 म् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् ॥ अयमेव साग्नेर्जीवत्पितृकस्य पिण्डपितृयज्ञ-  
 कालो ज्ञेयः । तस्यापि कात्यायनेन होमान्तमनारम्भो वा' इत्याम्नानात् ॥  
 पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाधवीये कात्यायनः—'पितृ-  
 यज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्ययेपि च। भोजनेपतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत्' इत्य-  
 लम् ॥ प्रकृतमनुसरामः ॥ निरग्निकादिभिस्त्वामावास्यापराह्णव्याप्त्यभावे तु  
 कुतुपकालव्यापिनी ग्राह्या ' भूतविद्धाप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा ।  
 पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतुपकालिकी' इति हारीतोक्तेः ॥ इदं च निरग्नि-  
 कादिविषयम् 'सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि। स्त्रीभिः शूद्रैः कूहः  
 कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः।' इतिलौगाक्षिवचवात् ॥ अत्र साग्निरौपासनाग्नि-  
 रपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ कुतश्चापराह्णव्याप्त्यलाभेन कल्पः अपराह्ण-  
 द्वयव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये । आहिताग्नेः सिनीवालीनिरग्न्यादेः कुहूर्मता।  
 इतिजाबालिनाभावे विधानात् ॥ तेन साग्नीनां निरग्नीनां वापराह्णव्यापिन्येव  
 मुख्या ॥ तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैः समव्याप्तौ खर्वादिना निर्णयः । वैषम्येधिका

१ अपराह्णेति । दिनद्वये अपराह्णे स्पर्शाभावे इति यावत् ॥



दिनद्वये पराह्णस्पर्शे कुतपव्यापिनीति माधवः ॥ इदमेव युक्तम् ॥ हेमाद्रिमतं  
 कुतपव्यापिन्येव निरय्यादेमुख्या । अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारि-  
 जाते उक्तम् । सिनीवाली दृष्टचंद्रा । तथा च व्यासः—‘दृष्टचन्द्रासिनीवाली  
 नष्टचंद्राकुहूः स्मृता’ इति ॥ पूर्वदिने परदिन एव वा तद्व्यापित्वे सैव ग्राह्या । अंश-  
 व्यापित्वे वैषम्येधिककालव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयं शतः समव्याप्तौ तिथिक्षये  
 पूर्वावृद्धौ साम्ये च परा । ‘तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूः स्मृता । साम्येऽपि  
 च कुहूर्जेया वेदवेदाङ्गवेदिभिः’ इति प्रचेतोवचनात् ॥ दिनद्वये संपूर्णकु-  
 तुपव्याप्तिस्तु तिथिवृद्धावेव भवतीत्यनन्तरवचनात् परैवेति ॥ कुतुपस्तु अहोमु-  
 हूर्ता विज्ञेया दशपञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तोयः सकालः कुतुपः स्मृतः’  
 इति मात्स्योक्तेः ॥ तुलादानपितृदेवप्रीत्यर्थोपवासादौ तु परा ग्राह्येत्यन्यत्र वि-  
 स्तरः ॥ दर्शे च मासिकवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौ कालादर्शो विशेष उक्तः ‘दर्शस्य  
 चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि नित्यस्य चाब्दिकस्यापि वार्षि-  
 कदर्शेऽन्यश्राद्धप्राप्तौ काब्दिकयोरपि’ इत्युक्त्वा । संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समा-  
 चरेत् । निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम् इति ॥ अत्र क्रमो निर्णयदी-  
 पे उक्तः—‘नष्टचन्द्रेयदाकाले क्षयाहदिवसो भवेत् । वैश्वदेवं क्षयश्राद्धं कुर्यात्  
 प्राग्दर्शकर्मणः’ ॥ अमाश्राद्धं चानुपनीतोऽपि कुर्यात् । श्राद्धशूलपाणौ ‘अमावा-  
 स्याष्टका कृष्णपक्षपञ्चदशीषु च’ इत्युपक्रम्य ‘एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पूर्व-

- १ ‘स्यातां ते यदि मध्याह्नात्’ इति प्रामाणिकपाठान्न कुतुपो मुख्य इति भावः ॥  
 २ कुतुपश्चेत्यादिना माधवमतं प्रदर्श्य प्रकृते हेमाद्रिमतमनुसृत्याह—हेमाद्रिमतं इति ॥  
 इति टीका ॥ ३ अत्र नवीनाः—यन्माधवेन हेमाद्रिणा वा ‘दिनद्वये संपूर्णपराह्णव्याप्तौ  
 संपूर्णकुतुपव्याप्तौ वा परा’ इत्युक्तम् ॥ तदयुक्तम् । सर्वादिवाक्ये ‘तिथिक्षये सिनीवाली’ इति-  
 वाक्ये च क्षयादीनां ग्राह्यतिथिगत्वात् दिनद्वयगतसमैकदेशव्याप्तिविषयकत्वेन हाप्रवृत्तेः ॥  
 ‘किंतूत्तरतिथिः क्षये पूर्वा, वृद्धिसाम्ययोस्तूत्तरा’ अमावास्यातु सा हि स्यादपराह्णद्वयेपि  
 या । क्षये पूर्वा परा वृद्धौ साम्येपि च परा स्मृता’ इत्युक्तेः ॥ नचेदं दिनद्वयगतसमैकदेश  
 व्याप्तिपरम् । स्वरसतोऽपराह्णद्वयव्याप्तिरेव प्रतीतेः ॥ एवं कुतुपव्याप्तिवादिनां मतेपि ॥  
 इति वदन्ति ॥ इति टीका ॥



सु । श्राद्धंसाधारणं नामसर्वकामफलप्रदम् । भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोऽपि  
 नित्यशः । शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेनविधिनावुधः' इतिमात्स्योक्तेः ॥ अमाश्रा-  
 अमाश्राद्धातिक्त- द्धातिक्रमेप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने 'न्युषूवाचंजपेन्मन्त्रंशत-  
 मेप्रायश्चित्तम् । वारं दिने दिने । अमाश्राद्धंयदानास्ति तदासंपूर्णमेतितत्' ॥ अत्र  
 पूर्वोक्तसाग्निकपदेनाहिताग्निः स्मार्ताग्निमांश्वगृह्यते । विच्छिन्नाग्निकादिश्चनिर-  
 ग्निकः ॥ तथाचहेमाद्रिग्नौकरणप्रकरणे 'साग्निरग्नावनग्निस्तुद्विजपाणावथा-  
 प्सुवा । कुर्यादग्नौक्रियांनित्यंलौकिकेनेतिनिश्चितम्' इतिस्मृतिवाक्यमुदाहृत्य  
 यस्त्वस्वीकृतौपासनतयासमुच्छिन्नाग्निताभार्याविधुरतया वाग्निरहितस्तस्य  
 द्विजपाणौजलादौहोम इति व्याचक्षे ॥ मदनपारिजातेप्येवम् ॥ इदमेव  
 साग्निकानग्निकस्वरूपंसर्वत्रज्ञेयम् ॥ अथ ग्रहणं निर्णीयते ॥ तत्र  
 ग्रहणनिर्णयः  
 चन्द्रग्रहणेयस्मिन्यामे ग्रहणं तस्मात्पूर्वप्रहरत्रयं न भुञ्जीत । सूर्य-  
 ग्रहे तु प्रहरचतुष्टये न भुञ्जीत 'सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्  
 चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना' इतिमाधवीये वृद्धगौतमोक्तेः ॥  
 'ग्रहणं तु भवेदिन्द्रोः प्रथमादधि यामतः । भुञ्जीतावर्तनात् पूर्वं प्रथमे प्रथमा-  
 दधः' इति मार्कण्डेयोक्तेश्च ॥ अधि ऊर्ध्वननु चन्द्रग्रहे यामचतुष्टयनिषेध-  
 उचितो न तु सूर्यग्रहे सूर्योदयात् प्राग्भोजनाप्राप्तेः । मैवं वचनस्य प्रथमयामे  
 सूर्यग्रहे सति पूर्वद्युः पूर्वरात्रे भोजननिषेधपरत्वात् । चन्द्रग्रहे विशेषमाहमाधवीये  
 वृद्धवसिष्ठः 'ग्रस्तोदये विधोः पूर्वनाहर्भोजनमाचरेत्' इति ॥ द्वयोर्ग्रस्तास्ते  
 तु माधवीये व्यासः 'अमुक्तयोरस्तगयोरद्यादृष्ट्वा परेहानि' इति । विष्णुधर्मेऽपि  
 'अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा । मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा  
 ततः परम्' ॥ अहोरात्रनिषेधः सूर्यग्रस्तास्ते ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः 'संध्याकाले  
 यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करो । तदहे नैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन । सायंसं-

१ स्नात्वेति शेषः । एवं च ग्रस्ते मुक्तिस्नानमपि परेद्युरेव ब्रह्माण्डे । 'नाश्रीयादथ तत्काले  
 ग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ मुक्तयोश्च कृतस्नानः पश्चाद्भुज्यात्स्ववेश्मनि' इति । स्ववेश्मनीति  
 परान्नानवधः ॥ मुक्तावपि भोजनं महानिशातः प्रागेव 'मुक्तके निशि भुञ्जीत यदि न  
 स्यान्महानिशा' इति शातातपोक्तेः इति टीका ॥



ध्यायाः सूर्यग्रस्तास्ते पूर्वोह्नि रात्रौ च न भोक्तव्यम् । प्रातः संध्यायांचन्द्रस्या  
स्तास्ते पूर्वरात्रावुत्तरोह्नि च न भोक्तव्यमित्यर्थः ॥ चंद्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने सं-  
ध्याहोमादौ न दोषः । तदाहोशनाः 'ग्रस्ते चास्तं गते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यव-  
धारणम् । स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्द्रदये पुनः । एतदनाहिताभिविषय-  
म् । 'अपराह्णे व्रतोपायनीयमश्नीत' इतिकात्यायनोक्तेर्व्रतस्य श्रोतत्वेन  
विहितत्वेन च प्रबलत्वात् ॥ अद्भिर्व्रतं कुर्यादिति निर्णयदीपः । रागप्राप्त-  
भोजने कालनियमोयम् । तेनज्वरादाविव न भोजनमिति कर्कानुसारिणः ॥  
बालवृद्धातुराणां तु ग्रहयामात्पूर्वमेकयामोनिषिद्धः 'सायाह्णे ग्रहणं चेत्स्यादप-  
राह्णे न भोजनम् । अपराह्णे न मध्याह्णे मध्याह्णे न तु संगवे । भुञ्जीत संगवे  
चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया इतिमार्कण्डेयोक्तेः ॥ इदं च बालादिविषय-  
म् । 'बालवृद्धातुरैर्विना' इतिपूर्वोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा पक्वमन्नं त्याज्य-  
म् 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं  
विवर्जयेत्' इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ शृतमिति तदन्तरितस्योपलक्ष-  
णम् 'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्' इति मिताक्षरायां वचनात् ॥  
भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबन्धे मेधातिथिः—'आरनालं पयस्तक्रं  
दधि स्नेहाज्यपाचितम् । मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके' । मन्वर्थ-  
मुक्तावल्याम् 'अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि  
तिलदर्भैर्न दुष्यति' । जले त्वदोषो गाङ्गाविषयः 'ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादक-  
च्छं समाचरेत्' इति । तत्रैवचतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्यदोषोक्तेः ॥ वेधकालेग्रहणे  
वा भोजने प्रायश्चित्तमुक्तम् माधवीये कात्यायनेन 'चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा  
प्राजापत्येन शुध्यति । तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति' इति । ग्रहणे  
च त्रिरात्रमेकरात्रं वोषवासः श्रेयार्थिना कार्यः 'एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा

१ ग्रहणकाले च स्वापादि निषिद्धम् 'सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।  
न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीतमुक्तयोः' इति वचनात् । निद्रायां जायते रोगो मूत्रे  
दारिद्र्यमाप्नुयात् । पुरीषे कृमियोनिः स्यान्मैथुनेग्रामसूकरः । अभ्यङ्गे च भवेत्कुष्ठां भोजने  
स्यादधोगतिः । वस्त्रे च भवेत्सर्पो वधे च नरकं व्रजेत्' इति निगेदोक्तेश्च ॥ इति टीका ॥



दत्त्वा च शक्तितः। कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः। त्रिरात्रं समुपो-  
 ष्यैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह' इति  
 हेमाद्रौ लैङ्गोक्तेः॥ इदं च पुण्यतिरिक्तविषयम्। 'आदित्येहनि संक्रातौ ग्रहणे  
 चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान्गृही' इति जैमिनिवचनात्  
 यदा तु रवेर्ग्रस्तास्तस्तदा पुत्रिणः प्रहरद्वयं हित्वा बालादिवद्भोजनं, न तूपवासः  
 'सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यात्' इति पूर्वोक्तमार्कण्डेयवचनात् सायाह्ने संगवे-  
 श्रीयाच्छारदे संगवादधः। मध्याह्ने परतो श्रीयान्नोपवासो रविग्रहे इति स्मृते  
 श्वेति हेमाद्रिः शारदोऽपराह्णः॥ माधवमते तु पुत्रिणोपि तत्रोपवास एव  
 'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति पूर्वोक्तनिषेधस्य तेनापि पालनीयत्वात् उपवा-  
 सनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः। कृष्णैकादशीनिषेधवादिति॥ मदनरत्नेऽप्येव-  
 म्॥ इदमेव च युक्तम्॥ वर्धमानस्तु 'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति शातात-  
 पीयोक्तेः 'सूर्याचन्द्रमसोर्लोकानक्षयान्याति मानव' इति फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शने  
 उपवासः काम्यः। न त्वयं निषेध इत्याह॥ तत्र। तत्र व्रतत्वेऽपि प्रागुक्तविष्णुधर्म  
 निषेधावश्यं भावात्। तथा च व्यासः 'रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा  
 चूडामणिरिति ख्यातस्तत्र दत्तमनन्तकम्। वारेष्वन्येषु यत् पुण्यं ग्रहणे चन्द्र  
 सूर्ययोः। तत् पुण्यं कोटिगुणितं योगे चूडामणौ स्मृतम्'॥ अत्र चाद्यन्तयोः  
 स्नानं कुर्यात् 'ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते। मुच्यमाने  
 भवेदानं मुक्ते स्नानं विधीयते' इति हेमाद्रौ वचनात्। 'स्नानं स्यादुप-  
 रागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम्' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च। 'सर्वेषामेव वर्णानां  
 सूतकं राहुदर्शने। सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्' इति वृद्धव  
 सिष्ठोक्तेश्च॥ सचैलं मुक्तिस्नानपरमिति मदनरत्ने उक्तम्॥ भार्गवार्चन  
 दीपिकायां चतुर्विंशतिमते मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके। समू-  
 तकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः॥ इदं च स्नानममन्त्रकं कार्यमिति स्मृति  
 रत्नावल्याम्। तत्र तीर्थविशेषो भारते 'गङ्गास्नानं न कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसू-

१ मार्कण्डेये भागैकवर्जनं सायाह्ण इत्यत्र तु भागद्वयवजनमुक्तम्। तत्र बालादीनां  
 भागद्वयवर्जनं मुख्यम्॥ एकभागवर्जनं त्वनुकल्प इति॥



र्ययोः। महानदी पुचान्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि' ॥ महानदीष्वपि मासविशेषे  
 स्नानमाहात्म्यम् काश्चिच्छ्रेष्ठाः 'प्रयागं देविका रेवासंनिहत्या च वारणम्। सरस्व  
 ती चन्द्रभागा कौशिकी तापिका तथा। सिन्धुर्गण्डाकिका चैव  
 सरयूः कार्तिकादितः' मूलं हेमाद्रौ व्यासः इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं ततः।  
 गङ्गातोये तु संप्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्दश। गवां कोटिसहस्रस्य यत् फलं लभते  
 नरः। तत्फलं लभते मर्त्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ असंभवे तु माधवीये शंखः  
 'वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु चानद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धताम्बुनि। उष्णो  
 दकेन वा स्नायात् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः' ॥ अत्र तारतम्यमाह मार्कण्डेयः 'शीतमु  
 ष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात्। भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्।  
 ततोऽपिसारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् ॥ तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बु  
 पावनम्। ततस्तोपि गङ्गाम्बु पुण्यं पुण्यस्ततोम्बुधिः' इति॥ उष्णोदकमातुरवि-  
 षयम्॥ तथा 'गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते। सूर्ये च राहुणा ग्रस्ते  
 तमोभूते महामुने । नर्मदातोयसंस्पर्शे कृतकृत्या भवन्ति हि' ॥ पृथ्वीचन्द्रोद-  
 ये प्रभासखण्डे 'गावो नागास्तिला धान्यं रत्नानि कनकं मही । संप्रदाय  
 कुरुक्षेत्रे यत्फलं लभते नरः। तदिन्दुग्रहणम्भोधौ स्नानाद्भवति षड्गुणम्' ॥ तत्रैव  
 सौरपुराणम्बुधिल्लानमुपक्रम्य दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः।  
 तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः' ॥ देवीपुराणे 'गङ्गा कनखलं पुण्यं  
 प्रयागः पुष्करं तथा। कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे' ॥ स्नानासंभवे स्मरणं  
 वा कार्यम्। स्मृत्वा शतक्रतुफलं दृष्ट्वा सर्वाघनाशनम्॥ स्पृष्ट्वा गोमेधपुण्यं तुपीत्वा  
 सौत्रामणेर्लभेत्। स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारतः। रविचन्द्रोपरागे च अ-  
 ग्रहणश्राद्धम् यने चोत्तरे तथा' इति मार्कण्डेयोक्तेः॥ अत्र श्राद्धमाह ऋष्यशृङ्गः च  
 चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत्। तेनैव सकला पृथ्वी दत्ताविप्रस्य  
 वैकरे'। भारते 'सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने । अकुर्वाणस्तु नास्ति कया

१ 'त्रिदशाः स्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरस्तथा । मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु  
 राक्षसाः' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः स्पर्शकाले करणीयमिति टीका ।



तपङ्के गौरिव सीदति' ॥ विष्णुः 'राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्' ॥ इदं  
 चामात्रेण हेम्ना वा कार्यं नत्वन्नेन 'आपयनग्रौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ।  
 आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धमथापि वा' इति ज्ञातातपोक्तेरिति हेमाद्रिमाध  
 वादयः ॥ अपरार्कस्तु 'एतद्विजातीनां पाकाभावे द्रष्टव्यं तीर्थश्राद्धवत् पाका-  
 भावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' । इति सुमन्तूक्तेः । 'सैहिके यो यदा सूर्य  
 ग्रसते पर्वसंधिषु । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् । घृतेन  
 भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत्' इति वायवीयोक्तेश्चेत्याह ॥ विज्ञानेऽव  
 रोप्याह ग्रहणश्राद्धे भोक्तुर्दोषो दातुस्त्वभ्युदय इति । 'सूतके मृतके भुङ्क्ते  
 गृहीते शशिभास्करे। छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्' इत्यापस्तम्बे  
 न भोजननिषेधाच्च ॥ अयं च निषेधः श्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात् ॥  
 अत्र ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासंक्रान्त्यादिनैमित्तिकानां सिद्धिः । 'दार्शिका  
 लभ्ययोरपि' इति कालादर्शोक्तेः ॥ अत्राशौचमध्येऽपि स्नानश्राद्धादि कार्यमेव  
 सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते' ।  
 इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेः । 'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके' इति  
 व्याघ्रपादोक्तेश्च ॥ कालादर्शे अङ्गिराः 'सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि मृतके राहुदर्श  
 ने । स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाक्यविवर्जितम् ॥ मदनपारिजातेऽप्येव  
 म् ॥ तेन 'स्नानमात्रं प्रकुर्वीत दानश्राद्धविवर्जितम्' इति निर्मूलं वदन्तौ गोडा-  
 परास्ताः ॥ इयं च शुद्धिरविशेषान्मन्त्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्वस्मार्तकर्मविषया ॥  
 मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धे  
 न सूतकादिदोषोऽस्ति ग्रहे होमजपादिषु । ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादिच्छृत  
 वारिणा' इति ॥ अत्र च 'स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्त-  
 रिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत्' इत्यादिमिताक्षरोक्तो विधिर्ज्ञेयः । ग्रहणे  
 रात्रावपि श्राद्धादि कार्यम् 'ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च। दानं नैमि-  
 त्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते' इत्यपराकै व्यासः 'चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ  
 स्नानं दानं प्रशस्यते' इति देवलोक्तेश्च ॥ यदा तु ज्योतिःशास्त्रगम्ये दिने चन्द्र



ग्रहो, रात्रौ च सूर्यग्रहस्तदा स्नानादि न कार्यम् 'सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्र-  
ग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्यादानं न च कश्चित्' इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥  
ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ तु प्रयोगपारिजाते गोभिलः । 'दर्शं रविग्रहे  
ग्रहणदिने वार्षिकं पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम् । अन्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा  
कश्राद्धप्राप्तौ सुतः' इति ॥ अत्र दर्शरविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः । न्यायसा-  
म्यात् ॥ तेन चन्द्रग्रहेऽपि सापिण्डादि वार्षिकमन्नादिना तद्दिन एव कार्यमिति  
मदनपारिजाते व्याख्यातम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् ॥ तेन यानि 'आमश्राद्धं  
प्रकुर्वीत माससंवत्सरादृते' इति । अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न कश्चित्'  
इति मरीचिलौगाक्ष्यादिवचनानि । तानि ग्रहणदिनातिरिक्तविषयाणि ॥ यानि  
तु 'ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे' तथा 'ग्रस्तोदये यदा चन्द्रे प्रत्यब्दं  
समुपस्थितम् । तद्दिने चोपवासः स्यात् प्रत्यब्दं तु परेहनि' तथा 'ग्रस्तावेवास्त-  
मानंतु रवीन्द्रू प्रामुतो यदि । प्रत्यब्दं तु तदा कार्यं परेहन्येव सर्वदा । चन्द्रसूर्योप-  
रागे च तथा श्राद्धं परेहनि' इत्यादीनि वचनानि । तानि महानिबन्धेषु काप्य  
नुलम्भान्निर्मूलानि ॥ प्रत्युत पूर्वोक्तनिबन्धेषु तद्दिन एव श्राद्धमुक्तमित्यलम् ॥  
ग्रहणादिसप्तदिनपर्यन्तं रामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ता । शिवार्चनचन्द्रिकायां  
ज्ञानार्णवे मन्त्राधारम्भणं कुर्यात्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । ग्रहणाद्वापि देवेशि  
कालः सप्तदिनावधि' इति ॥ रत्नसागरे 'सतीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणि ॥  
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन् शोधयेत्' ॥ अत्र सूर्यग्रहणमेव मुख्यम्  
'सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत् । सूर्यग्रहणकाले न समोनान्यः कदाचन ।  
न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि' इति तत्रैव कालोत्तरवचनात् । चन्द्र-  
ग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा व्रतचारिणाम् । वनस्थस्य च या दीक्षादारिद्र्यं  
सप्तजन्मसु इति तत्रैव योगिनीतन्त्रे निषेधाच्च ॥ ग्रहणं च जन्मराश्यादौ  
निषिद्धम् । तदुक्तं ज्योतिषे 'त्रिषट्दशा योपगतं नराणां शुभप्रदं स्यात् ग्रहणं  
रवीन्द्रोः । द्विसप्तनन्देषु सुमध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः' इति ॥

१ सूर्यग्रहदीक्षायाः प्राशस्त्यपरमिदम्, अन्यथा ज्ञानार्णवधृतचन्द्रपदवैयर्थ्यापत्तेः ।



आय एकादश । नन्दा नव । इषुःपञ्च ॥ भद्रनरत्नेगर्गः जन्मसप्ताष्टरिःफा-  
 ड्दशमस्थे निशाकरे । दृष्टोरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपिच ॥ रिःफं द्वाद-  
 शम् । अङ्का नव । निधानं सप्तमतारा ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे 'यन्न-  
 क्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करो । तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिव-  
 र्जिताः' ॥ तत्रैव पुराणान्तरे 'सूर्यस्य संक्रमो वापि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः—  
 यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोथ वा मृतिः । तस्य दानं च होमं च देवार्चन-  
 जपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भविष्यति । स्वर्णेन वाथ पिष्टेन  
 कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम् । ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः ॥ जन्मन-  
 क्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते । जन्मदशमैकोनविंशतितारा इति  
 केचित् । सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः ॥ अद्भुतसागरे भार्गवः 'यस्य  
 राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभङ्गः सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दि-  
 शेत्' ॥ राज्यस्य नक्षत्रं अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम् ॥ भार्ग-  
 वार्चनदिपिकायां ज्योतिःसागरे 'सौवर्णं कारयेन्नागं पलेनाथ पलार्धतः ।  
 तदर्धेन तदर्धेन फणायां मौक्तिकं न्यसेत् । ताम्रपात्रे निधायाथ घृतपूर्णे विशे-  
 षतः । कांस्ये वा कान्तिलोहे वा न्यस्य दद्यात्सदक्षिणम् । चन्द्रग्रहे तु रूप्यस्य  
 बिम्बं दद्यात्सदक्षिणम् । नागं रुक्ममयं सूर्यग्रहे बिम्बं च हेमजम् । तुरंगरथ-  
 गोभूमितिलसर्पिश्च काञ्चनम्' ॥ कालविवेकेऽपि 'सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलंकां  
 स्यभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । सौवर्णं राजतं वापि  
 बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः । उपरागभवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत्' ॥ मन्त्रस्तु  
 'तमोमय महार्हाम सोमसूर्यविमर्दन । हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदोभव ।  
 विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युतादानेनानेननागस्य रक्षमां वेधजाद्रया-  
 त्' इति ॥ अत्र शान्तिरप्युक्ता हेमाद्रौमात्स्ये 'यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्र-  
 हण संभवः । स्नानं तस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् । चन्द्रोपरागं संप्राप्य  
 कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । संपूज्य चतुरो विप्रांश्छुक्कृमाल्यानुलेपनैः । पूर्वमे-  
 वोपरागस्यसमानीयोषधादिकम् । स्थापयेश्चतुरः कुम्भानव्रणान् सलिलान्वि



तान् । गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्भृदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृद-  
 मानीय निक्षिपेत् । पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवान् । रोचनं पद्मकं शं-  
 खं कुंकुमं रक्तचन्दनम् । शुक्तिस्फटिकतीर्थाम्बुसितसर्पपगुगुलून् । मधुकं  
 देवदारुं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम् । बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव  
 च । गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरचन्दनम् । एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्व-  
 वाहयेत्सुरान् । सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमा-  
 नस्य दुरितक्षयकारकाः । योसौ वज्रधरो देवः आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनः  
 शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु । मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चन्द्रोपराग-  
 संभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु । यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः । यम-  
 श्वन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु । रक्षोगणाधिपः साक्षान्नीलाञ्जनसमप्रभः  
 खड्गहस्तोतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु । नागपाशधरो देव सदा मकरवाहनः ।  
 स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु । प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृग-  
 प्रियः । वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु । योसौ निधिपतिर्देवः ख-  
 ड्गशूलगदाधरः । चन्द्रोपरागकलुषं धनदोत्र व्यपोहतु । योसाविन्दुधरो देवः पि-  
 नाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शंकरः । त्रैलोक्ये यानि  
 भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्मविष्णुर्वकरुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् । ए-  
 वमावाहयेद्देवान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः । एतानेव तथा मन्त्रान्स्वर्णपट्टे विलेखये-  
 त् । ताम्रपट्टेथवालिरुय नववस्त्रे तथैव च । मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्वि-  
 जोत्तमाः । कलशान् द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् । गृहीत्वा स्नापयेद्ब्रूढं भ-  
 द्रपीठोपरिस्थितम् । पूर्वं रेव तु मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः । अभिषेकं ततः  
 कुर्यान्मन्त्रैर्वारुणसूक्तकैः । आचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेदयेत् । आचार्यद-  
 क्षिणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः । होमं वापि प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ।  
 दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् । सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्च  
 कीर्तयेत् । अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् । न तस्य ग्रहणे दोषः कदा-  
 चिदपि जायते २४ इति ग्रहणशान्तिः । भार्गवार्चनदीपिकायां ब्रह्मसिद्धान्ते



ग्रहणवीक्षणं सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्य स्वस्थं तैलाम्बुदर्पणैः । ग्रहणं गुर्विणीजातुनपश्ये  
तपटं विना । तथा मङ्गलकृत्येषु वेधविशेषो हेमाद्रौ, त्रयोदश्यादितो  
मङ्गलेवर्ज्यं वर्जं दिनानां नवकं ध्रुवम् । मङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
दिनानि प्रकारान्तरं तत्रैवोक्तम् । द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः ।  
एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः । इदं च पूर्णग्रासे 'अर्धं' खण्डग्रहे तयोः  
इतितत्रैवोक्तेः ॥ इदं च 'ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वम्' इति नारदेन ग्रस्तास्ते विशेषोक्तेर्न  
स्तास्तभिन्नग्रहणपरम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे च्यवनः 'ग्रहणोत्पातं त्याज्यं मङ्गले  
षु क्रतुत्रयम् । यावच्च रविणा भुक्त्वा मुक्ते भं दग्धकाष्ठवत् ।' अन्यानि चाग्नेयानि  
मण्डलानितत्फलं वर्णविकारादिफलं च देवज्ञेभ्योज्ञेयम् ॥ पुरश्चरण  
पुरश्चरणम् चन्द्रिकायाम् 'चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः । स्पर्शादिमोक्ष  
पर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः । जपादशांशतो होमस्तथा होमात्तु तर्पणम् ।  
तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किला । तत्रैव देवतारूपं ध्यात्वा त्मानं प्रपूज्य च ।  
नमोन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् । द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चास्यनेन  
तु । तोयैरञ्जलिना शुद्धैरोभिः सिञ्जेत्स्वमूर्धनि । मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि  
भोजयेत् । जपोर्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम् ॥ भूदेवपूजनं पञ्चप्रका-  
रोक्ता पुरस्क्रिया । तथा 'होमाशक्तो जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम् । एवं कृते तु  
मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा । ग्रहणप्रसङ्गात् कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तमुच्य  
ते तत्रारुणस्मृतौ प्रतिग्रही कुरुक्षेत्रे न भूयः पुरुषो भवेत् ।  
प्रायश्चित्तं तथापि मनसः शुद्धयै प्रायश्चित्तं समाचरेत् । तत्र कच्छद्वयं कुर्या  
दैन्दवेन समन्वितम् । सत्रेण वा यजेताथ जपेद्वा लक्षसप्तकम् । वापीकूपतडा  
गादिखननैर्विसृजेद्धनम्' इति ॥ एतच्च 'यद्गृहिते नार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धन  
म् । तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति दानेन तपसैव च' इति मनूक्तेरुत्सर्गोत्तरं ज्ञेयमिति  
ग्रहणेन्तरिते पूर्वसं- दिक् ॥ ग्रहणान्तरितस्य पूर्वसंकल्पितद्रव्यस्य द्वैगुण्यं भवती  
कल्पितस्य द्वैगुण्यम् । तिशिष्टाः पठन्ति चलघुब्रह्मवैवर्ते 'दातव्यमिति नोकाश्यांव-

१. ग्रहणतत्पूर्वोत्तरादिमानातिरामकल्पद्रुमः । दीपिकापि । खण्डग्रहे तस्याः प्राक्प-  
श्चाद् द्विदिनं निघमिति ।



कव्यं कुत्रचित्कचित् । अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् । दर्शोत्तरं  
 पर्वसु स्याच्छतं चन्द्रग्रहे भवेत् । सूर्यग्रहे सहस्रं तन्मरणेनन्तकं स्मृतम्' इति ॥  
 अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र केचिद्बौद्धतुल्या आहुः 'ग्रहणस्य निमित्तत्वेन त-  
 केचिन्मतस्य त्रिंश्वयस्य प्रयोजकत्वात् ज्योतिश्शास्त्रादिना जातस्य ज्ञान  
 ण्डनम् स्यनिमित्तत्वे प्राप्तेऽपि 'स्नानं दानं ततः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने ।  
 चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरं' इतिजाबाल्यादिवचनेषु दृशिप्रयोगाच्चा  
 क्षुषज्ञानस्यैवोपसंहारन्यायेन निमित्तत्वम् । अन्यथा दृशौ लक्षणा स्यात् ।  
 तेन मेघाच्छादनेन्धादीनां 'जन्मसप्ताष्ट' इत्यादिनिषिद्धदर्शनानां च स्नानश्रा-  
 द्धादौ नाधिकार इति ॥ कल्पतरुरप्याह दर्शनशब्देन चाक्षुषज्ञानं गृह्यते न  
 ज्ञानमात्रम् । अज्ञानस्य निमित्तत्वासंभवान्निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभेन  
 दर्शनपदवैयर्थ्यापत्तेः । तेन चाक्षुषधीयोग्यः कालः पुण्यः । योग्यत्वं च  
 प्रयत्नानपनेयचाक्षुषज्ञानप्रतिबन्धकराहित्यं तेन मेघच्छन्ने योग्यताभावान्न  
 स्नानादीति ॥ निर्णयामृतेऽप्येवम् ॥ तदेतत्तुच्छम् । यदि चाक्षुषज्ञानं निमि-  
 त्तं स्यात्तदा 'सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत  
 दद्याद्दानं न च क्वचित्' इतिवाक्यं व्यर्थं स्यात् । चाक्षुषज्ञानाभावेन प्राप्त्यभा-  
 वात् । तत्पूर्वकत्वाच्च निषेधस्य ॥ नचेदं ग्रस्तास्तपरं रविचन्द्रयोरस्तान-  
 न्तरं रात्रिदिवाग्रहत्वादितिवाच्यम् । तत्रपदस्य ग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगा  
 निमित्तपरत्वे च तद्ग्रहनिमित्तकस्नानादेरस्तात्प्रागप्यभावापत्तेः ॥ अथ तत्रेति  
 रात्रिदिने उच्येते 'सा वैश्वदेवी इतिवद्गुणभूते अपि ॥ तन्न । तादृशमन्त्रलिङ्गा  
 भावात् । तयोर्निमित्तत्वेऽधिकारणत्वे वाऽन्यप्रयुक्तस्नानाद्यभावापत्तेश्च ॥ किं  
 च 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तंयन्तं कदाचन । नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं  
 नभसो गतम् इति मनुवचनं बाध्येत' । 'दृष्टोरिष्टप्रदो राहुः' इत्यादि च । न  
 चात्र विहिते दर्शने निषेधाप्रवृत्तिवत् पर्युदसनीयतापि न युक्तेतिवाच्यम् ।



दर्शनस्यानुवादेन विधेयत्वाभावात् । एतच्चाग्रे वक्ष्यामः तत्त्वे वा विरुद्धत्रिक-  
 द्वापत्तेः ॥ अस्तु सकृदर्शनविधानेन संकोच इति चेन्न ॥ 'मुक्तिं दृष्ट्वा ततः  
 स्नायात्' इति मुक्तिस्नानेपि चाक्षुषज्ञानस्य निमित्तत्वापत्तेः ॥ अस्तु किं-  
 शिञ्जमिति चेत् । ग्रस्तास्ते 'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिः' इति दर्श-  
 नोत्तरं भोजनविधानादन्धस्य पूर्ववेधकाल इव यावदर्शनं भोजननिषेधापत्तिः ॥  
 मध्येन्धीभूतस्य सुतरां यावच्चक्षुःप्राप्त्युपवासप्रसङ्गश्च । अथान्नलोलुपतया तत्र  
 ज्ञानमात्रं विवक्ष्यते, तत्पूर्वमपि निर्लज्जेन स्वीक्रियताम् ॥ एतेन यत्केन  
 चिदुक्तं 'स्पर्शस्नानं मुक्तिस्नानं च यस्य दर्शनं तेनैव कार्यम् नान्येन ।  
 क्त्वाप्रत्ययेन समानकर्तृकत्वावगतेः' इति, तन्निरस्तम् ॥ का तर्हि तस्य गतिः ।  
 दृशेरुद्देश्यविशेषणत्वात् ग्रहैकत्ववद्विवक्षयार्थतः सिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वे सर्व-  
 सुस्थम् ॥ अंगुलाद्यनादेश्यग्रहव्यावृत्त्या वा दर्शनस्यार्थवत्त्वम् ॥ न चो-  
 क्ययोग्यतापिसाध्वी दर्शनोत्तरं मेघच्छन्ने योग्यताभावापत्त्या दानाद्यभावाप-  
 त्तेः ॥ तेन तत्तद्रेखावच्छेदेन ज्योतिःशास्त्राऽऽवेद्यत्वमेव योग्यता ॥ किंच 'रजसो  
 दर्शनेनारी त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इत्यत्राप्यन्धस्त्रीणामाशौचाभावप्रसङ्गः ॥ यत्तु  
 वर्धमानेनोक्तं ज्ञानोत्तरं त्वधिकारो न ज्ञानकाले । स्नानकाले ज्ञानभा-  
 वात् । एवं दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्यन्तमस्त्येव योग्यतेति तदपि प्रतिज्ञामात्रम् ॥  
 किंच ग्रस्तास्ते 'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिः' इत्यादिवाक्यवैयर्थ्या  
 पत्तिः । चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये स्नानसिद्धेः ॥ ननु मुक्तिस्नाने शा-  
 स्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं, न चाक्षुषम् 'चन्द्रसूर्यग्रहे नाऽद्यात्तस्मिन्नहनि पूर्वतः  
 राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम्' इति वृद्धगौतमेन विज्ञायेति  
 ज्ञानमात्रोक्तेः ॥ यत्तु 'मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्' इति तदपि  
 ज्ञानमात्रपरम् । 'मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते ॥ आकलय्य तु तं  
 कालं स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यत' इति गौडनिबन्धे वचनात् ॥ मैवम् । अज्ञात-

१. येन 'मा हिंस्यात्' इत्यस्याग्निषोमीयादिविधिनेव प्रकृते दर्शनविधिना निषेधस्य  
 प्राप्तगोचरत्वं स्यात्, तदेव तु नेत्यर्थः इति टीका ॥ २ ॥ विधेयत्वे वा उद्देश्यत्वानुवा-  
 दत्वमुख्यत्वरूपविरुद्धत्रिकेत्यर्थः ॥



स्य निमित्तत्वाभावेन निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभे वाक्यवैयर्थ्यात् । अस्तास्ते  
 पि तदापत्तेश्च । किंच दर्शनं पुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा ॥ नाद्यः । दर्शनावच्छि  
 न्ने काले स्नानतुलादानादेर्बाधात् । दर्शनविच्छेदे कृतमपि स्नानादि न ग्रहण-  
 निमित्तं स्यात् ॥ नान्त्यः । 'यावद्दर्शनगोचरः' इतियावत् पदवैयर्थ्यप्रसङ्गात्  
 दृष्टग्रहस्य ग्रहणोत्तरमपि स्नानाद्यापत्तेश्च ॥ ज्ञानपक्षेऽप्येपदोषस्तुल्य इति चेत्  
 मूर्खोऽसि । यदि ज्ञानवाचकं पदं श्रूयेत, ततस्तस्यान्वयोविचार्येत ॥ दृशिस्तु  
 श्रूयत इति वैषम्यम् ॥ कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते । 'संक्रान्तौ स्नायात्' इति वद  
 र्थादित्यवेहि ॥ अश्रुतत्वादेव नोद्देश्यविशेषणविवक्षाकृतो वाक्यभेदोऽपि ॥ अस्तु  
 तर्हि दृष्टं ग्रहणं निमित्तमिति चेत् । अस्तास्तेऽस्तोत्तरं स्नानापत्तेः ॥ विशि  
 ष्टोद्देशे वाक्यभेदाच्च तवाप्येतत्तुल्यमिति चेत् । 'यावद्दर्शनगोचरः' इति वच-  
 नेन तन्निषेधात् ॥ तत्वन्यग्रह इव अस्तास्तेऽपि स्यात् ॥ किंच दर्शनस्य विधि  
 रपवादो वा । आद्ये । ग्रहणोद्देशेन दर्शनविधिः, न तु दर्शनविशिष्टस्नानविधिः,  
 उत स्नानोद्देशेन दर्शनविधिः ॥ नाद्यः । ग्रहोद्देशेन स्नानविधाने दर्शनविधाने च  
 वाक्यभेदात् ॥ एतेन द्वितीयोऽपि परास्तः ॥ न तृतीयः । स्नानस्याप्राप्तेः ।  
 दर्शनस्य निमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च ॥ अन्यथा सोमवमनादौ प्रसज्जनाविधिः  
 केन वार्येत ॥ अथ नानावाक्येषु कचिद्दर्शनविशिष्टस्नानविधिः कचिच्च प्राप्तं  
 दर्शनं निमित्तीकृत्य स्नानमात्रविधिः तत्रास्नानस्य प्रधानस्य प्राप्तौ तदङ्गदर्शन  
 प्राप्तिः । तस्यां च निमित्ते सति स्नानमित्यन्योन्याश्रयात् । एवं दर्शनविधौ  
 सति तन्निमित्तकस्नानविधिः । सति च प्रधानस्नानविधौ तदङ्गदर्शनविधिः एवं-  
 मधिकारे प्रयोजकत्वे च योज्यम् ॥ उक्तार्थपूर्वकालत्वविधौ चास्त्येव वाक्य-  
 भेदः अन्यथा स्नानोत्तरमपि दर्शनमङ्गं स्यात् ॥ न द्वितीयः तत्रापि दर्शनग्रह-  
 योर्निमित्तत्वे स्नानद्वयापत्तेः । दर्शनावृत्तौ नैमित्तिकावृत्तिप्रसङ्गात् । दर्शनवि-  
 शिष्टग्रहस्य विशिष्टस्यानुवादे वाक्यभेदापत्तेः ॥ न च हविरार्तिवद्विशिष्टं निमि-  
 त्तमिति वाच्यम् ॥ आर्तिमात्रस्य हि निमित्तत्वे निर्निमेषाद्यार्तेरपि तत्वापत्तेर्न  
 निमित्तकत्वभङ्गाद्युक्तं विशिष्टोद्देशत्वम् ॥ इह तु ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे न का



चित्क्षतिः ॥ तस्माद्दर्शनवाक्यानां ग्रस्तास्तविषयत्वाद्नादेश्यग्रहपरत्वाद्वाज्ञा-  
नस्य चार्थतः प्राप्तेस्तदेव निमित्तं तेन मेघाद्याच्छादनेऽन्धादेश्च स्नानादि भवत्येवे-  
त्यलं वेदवाह्यैः संज्ञापेन ॥ इति ग्रहणनिर्णयः ॥ अथ समुद्रस्नानम् ॥ आश्व-  
लायनः ॥ 'समुद्रेऽपर्वसु स्नायादमायां च विशेषतः । पापैर्विमुच्यते  
समुद्रस्नानम् सवैरमायां स्नानमाचरन् । भृगुभौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जये-  
त्' ॥ भारते 'अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन । अश्वत्थं मन्दवारे तु सागरं  
पर्वणि स्पृशेत्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे 'पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः  
सरितां पतिः । कदाचिदपि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि' । अस्यापवादस्तत्रैव  
ग्रन्थासखण्डे 'पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनां च समागमे । सेतुबन्धे तथा सिन्धौ  
तीर्थेष्वन्येषु संयतः । एवमादिषु सर्वेषु मध्येन्ये तु स्वकर्मणि' ॥ तथा 'विना  
मंत्रं विना पर्वक्षुरकर्म विनानरैः । कुशाग्रेणापि देवेशिनस्पृष्टव्यो महोदधिः' । तथा  
'न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि' ॥ तद्विधिश्च तत्रैव 'पिप्पलादसमुत्पन्ने  
कृत्येलोकभयं करो । पाषाणस्तेमया दत्त आहारार्थं प्रकल्प्यताम्' इति पाषाणं  
प्रक्षिप्य 'विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते । सांनिध्यं कुरु मे देव  
सागरे लवणाम्भसि । नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते । नमो जलधि-  
रूपाय नदीनां पतये नमः । नमस्ते जगदाधार शंखचक्रगदाधर । देव देहि ममा-  
नुज्ञां तव तीर्थनिषेवणे । त्रितत्त्वात्मकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम् ।  
सन्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि' । 'अग्निश्च योनिरनिलश्च देहे रेतोधा  
विष्णुरमितस्य नाभिः । एतद्भुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदी-  
नाम्' इति भारतोक्तमन्त्रान् पठित्वा विधिवत्स्नात्वा 'सर्वरत्नो भवान् श्रीमान्  
सर्वरत्नाकरो यतः । सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे' । इत्यर्घ्यं दत्वा  
तर्पयेत् ॥ यथोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे 'पिप्पलादं विकण्वं च कृतान्तं  
जीविकेश्वरम् । वसिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम् । वाल्मीकिं नारदं चैव  
बालखिल्यांस्तथैव च । नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम् । जाम्बवन्तं  
हनुमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा । मैन्दं च द्विविदं चैव ऋषभं शरभं तथा । रामं च



लक्ष्मणं, चैवं सीतां चैव यशस्विनीम् । एतांस्तु तर्पयेद्विद्वान्जलमध्ये विशेषतः ।  
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभि-  
गच्छतु' इति ।

इति श्रीमीमांसकनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मज-  
दिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णय-  
सिन्धौ प्रथमपरिच्छेदः समाप्तः ॥





श्रीः ।

## अथ निर्णयसिन्धौ—

द्वितीयपरिच्छेदः ।



श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ सांवत्सरप्रतिपदमारभ्य । 'तिथिकृत्ये च कृष्णादि  
व्रते शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादि मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्' इति ब्राह्मं  
प्रायशोनुसृत्यतिथिनिर्णयस्तत्कृत्यं च निरूप्यते । तत्र मीनसंक्रांतौ पश्चात् षोडश

घटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु निशीथात् प्राक् परतश्च संक्रमे  
मीनसंक्रान्तिः ।

पूर्वोत्तरदिनार्धं पुण्यम् ॥ निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति  
सामान्यनिर्णयादवसेयम् ॥ अथ तिथिनिर्णयः ॥ तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि

वत्सरारम्भः । तत्रौदयिकी ग्राह्या । 'चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज  
चैत्रशुक्लप्रतिपत्

प्रथमेऽहनि ॥ शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति' इति हे

माद्रौ ब्राह्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वैव । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे

'चैत्रसितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः । उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगु-

लेपि पूर्वः स्यात् । यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः' इति ॥ 'वत्सरादौ

वसन्तादौ बलिं राज्ये तथैव च ॥ पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः' इति

वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ 'चैत्रमासस्य या शुक्लप्रथमा प्रतिपद्भवेत् ॥ तदा हि ब्राह्मणः

कृत्वा सोपवासस्तु पूजनम् । संवत्सरमवाप्नोति सौख्यानि भृगुनन्दन' इति हेमाद्रौ

विष्णुधर्मोक्तेः ॥ यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा दैवकार्यस्य तत्र निषि-

द्धत्वाच्छुद्धे मासि संवत्सरारम्भः कार्य इति केचिदाहुः ॥ निष्कर्षस्तु 'शुक्लादेर्म

लमासस्य सौतर्भवति चोत्तरः' इत्यादिवचनादग्निमवर्षान्तःपातान्मलमासमार-

भ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्रास्तादाविव मलमास एव कार्य इति वयंप्रतीमः ॥ ननु शुक्रा-

स्तादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदन्तरस्याभावाद्युक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानम् । मलमासे तु शुद्ध

प्रतिपदन्तरस्य संभवात् शुद्ध एव वत्सरारम्भो युक्त इति चेत् भांतोसि । नहि

प्रतिपदन्तरसत्त्वं प्रयोजकं द्विःकरणापत्तेः वर्षद्वयापत्तेश्च । अपि तु वत्सरारं-



भः । स तु मलमासेपीत्युक्तं प्राक् । नहि 'चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेन्तर्भव-  
 ति' इति ब्रह्मणापिसुवचम् ॥ तत्र तैलाभ्यङ्गो नित्यः । 'वत्सरादौ वसन्तादौ बलि-  
 राज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ अ-  
 स्यामेव नवरात्रारम्भः ॥ तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—'शरत्कालेमहापूजाक्रियतेया  
 चवार्षिकी' इति ॥ तत्र परयुतैव ग्राह्या 'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिका-  
 र्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता' इति देवीपुराणात् ॥  
 'तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन । कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे  
 मासि च भारत' इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः ॥ पराः परयुताः । अत्र विशेषः ।  
 पारणानिर्णयश्च शारदनवरात्रे वक्ष्यते । अत्र प्रपादानमुक्तमपरांके भवि-  
 ष्ये 'अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे । पुण्येहि विप्रकथिते  
 प्रपादानं समारभेत्' इत्युपक्रम्य 'ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मंत्रेणानेन मानवः ।  
 प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता । अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्य-  
 न्तु हि पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्' इति ॥ तथा 'प्र-  
 पां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना । प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ।  
 ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः' । तत्रमंत्रः "एष धर्मघटो दत्तो ब्र-  
 ह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः" ॥ "अनेन  
 विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोपि प्राप्नोतीह न संशयः"—  
 इति । चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम् संपूज्य दोलोत्सवं कुर्यात् । तदुक्तं  
 निर्णयामृते देवीपुराणे 'तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् । कु-  
 चै० शु० तृ०  
 ङ्गमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः । स्रग्गन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ।  
 आन्दोलयेत्ततो वत्सं शिवो मातुष्टये सदा' इति ॥ अत्र चतुर्थीयुता ग्राह्या 'मुहूर्तमा-  
 त्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे' इति माधवोक्तेः ॥ अत्रैव सौभाग्यशयनव्रतमुक्तं मा-  
 त्स्ये 'वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये । सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यपुत्र  
 सुखेप्सुभिः' इति तत्रापि परयुतैवा । इयंच मन्वादिरपि । अत्रैव प्रसङ्गात्सर्वमन्वा  
 दिनिर्णय उच्यते । ताश्चोक्तादीपिकायाम्—'तिथ्यंती' न तिथिस्तिथ्यांशे कृष्णे



भोऽनलोग्रहः तिथ्यैर्को न शिवोऽश्वोऽमां तिथीमन्वादयोमधोः'  
मन्वादिनिर्णयः इति ॥ तिथिः पूर्णिमा ॥ अग्निस्तृतीया नेतिवैशाखे नास्तीत्यर्थः ॥  
आशादशमी ॥ कृष्णेभः कृष्णाष्टमी ॥ अनलस्तृतीया ॥ ग्रहोनवमी ॥ अर्कोद्वा-  
दशी ॥ नेति मार्गशीर्षेनास्तीत्यर्थः ॥ शिव एकादशी ॥ अश्वः सप्तमी ॥ मधोश्चैत्रा-  
दारभ्यैता मन्वादय इत्यर्थः ॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्रादर्ज्ञेयानि ॥ एताश्च  
मन्वादयो हेमाद्रिमते शुक्लपक्षस्थाः पौर्वाहिकाः कृष्णपक्षस्थाः अपराह्निका  
ग्राह्याः । 'पूर्वाह्ने तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृ-  
ष्णे चैवापराह्निकाः' इति गारुडवचनात् ॥ 'अथो मन्वादि युगादिकर्मतिथयः  
पूर्वाह्निकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्निकाश्च बहुले' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ काला-  
दर्शे त्वपरह्णव्यापित्वं मन्वादिषूक्तं तत्त्वयुक्तमिति युगादिनिर्णये वक्ष्या-  
मः । अत्र च श्राद्धमुक्तं मात्स्ये—'कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु ।  
हायनानि द्विसाहस्रं पितृणां तृप्तिदं भवेत्' इति । मन्वादिश्राद्धं च मलमासे  
सति मासद्वयेऽपि कार्यम् । 'मन्वादिकं तैत्थिकं च कुर्यान्मास द्वयेऽपि च' इति स्मृ-  
तिचन्द्रिकोक्तेः ॥ अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे 'विषुवा-  
यनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु । विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत्' इ-  
ति ॥ मन्वादिश्राद्धं नित्यम् । अकरणे प्रायश्चित्तदर्शनात् । तदुक्तमृग्विधाने  
'त्वं भुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् । मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव  
चापि यः' इति ॥ एवं यत्र प्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनं तानि षण्णवतिश्राद्धानि  
नित्यानि ॥ तानि तु 'अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः । अन्वष्टक्यं च पूर्वे  
द्युः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः' इत्युक्तानि ॥ चकारादष्टकाग्रहणम् द्वासप्ततिः पुत्र  
काम्यानि श्राद्धानि 'पित्रोः क्षये त्वमावस्या ऋतुसंक्रान्त्यनन्तकाः । अपरपक्षे  
नवान्ने द्वे मन्वादिषु युगादिषु ॥ आषाढी कार्तिकी माघी वैशाखीयेत्यनन्तकाः ।  
२।१२।६।१२।१६।२।१४।४।४। मिलित्वा द्वासप्ततिः ॥ चैत्रशुक्लतृतीयैव  
मत्स्यजयन्ती ॥ अत्रैव प्रसंगाद्दशावतारजयन्त्यो निर्णय-  
दशावतारजयन्त्यः । न्ते । तत्र पुराणसमुच्चये 'मत्स्यां भूद्धुतभुग्दिने मधुसिते कू-



मी विधौ माधवे वाराहो गिरिजासुते नभसि यद्भूते सिते माधवे । सिंहो  
 भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामोगौरितिथावतः परमभूद्रामो  
 नवम्यां मधोः ॥ कृष्णोष्टम्यां नभसि सितपरे चाश्विने यदशम्यां बुद्धः  
 कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण ॥ अहोमध्ये वामनो रामरामौ  
 मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे ॥ कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं  
 कृष्णो रात्रौकालसाम्ये च पूर्वे'इति ॥ केचित्तुस्फुटान्श्लोकान्पठन्ति । तथा  
 'चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् ॥ ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूप-  
 धरो हरिः ॥ चैत्रे कृष्णे नवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् ॥ नारसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे  
 शुक्लपक्षके ॥ मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः ॥ राघवश्चतुर्तीयायां  
 रामो भार्गवरूपधृक् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः ॥ नभस्येतु  
 द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्धरिः ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोऽभूच्छोकरक्षकः ॥  
 ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यति'इति ॥ कौङ्कणास्तु वराहपुरा-  
 णस्थानिवाक्यानिपठन्ति--'आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महातिथौ ॥ जयन्ती  
 मत्स्यनाम्नीति तस्यां कार्यमुपोषणम् ॥ नभोमासि तृतीयायां हरिः कमठ-  
 रूपधृक् ॥ नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका ॥ वैशाखे तु चतुर्दश्यां नृ-  
 सिंहः समपद्यत ॥ मासि भाद्रपदेशुक्लैकादश्यां वामनो हरिः ॥ वैशाखे शुक्लप-  
 क्षे तु तृतीयायां भृगूद्वहः ॥ चैत्रे नवम्यां रामोऽभूत्कौसल्यायां परःपुमान् ॥ श्रा-  
 वणे बहुलेऽष्टम्यां वासुदेवो जनार्दनः ॥ पौषशुक्ले तु सप्तम्यां कुर्याद्बौद्धस्य पूज-  
 नम् ॥ माघशुक्लतृतीयायां कल्किनः पूजनं हरेः ॥ प्रातःप्रातस्तु मध्याह्ने सा-  
 यं सायं तथा निशि ॥ मध्याह्ने मध्यरात्रे च सायं प्रातरनुक्रमात्' इति ॥ तद-  
 त्र समूलत्वनिर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या ॥ एताश्च तदुपासकानां  
 नित्याः । अन्येषां तु काम्याः ॥ जन्माष्टम्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ चैत्रशुक्लप-  
 ञ्चमी कल्पादिः । तदुक्तं हेमाद्रौमात्स्ये । 'ब्रह्मणो यादिनस्यादिः क-  
 ल्पादिः सा प्रकातिता ॥ वैशाखस्य तृतीयायाः कृष्णा या फाल्गुन-  
 स्य च ॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवांत्या तथापरा ॥ शुक्लात्रयोदशीमाघे कार्तिकस्य



तुसप्तमी ॥ नवमीमार्गशीर्षस्यसप्तैताःसंस्मराम्यहम् ॥ कल्पानामादयोह्येतादत्त-  
स्याक्षयकारकाः ॥ अत्रसर्वोपिनिर्णयोमन्वादिवज्ज्ञेयः । हेमाद्रौब्राह्मे'शुक्ला-  
यामथपञ्चम्यांचैत्रे मासि शुभानना ॥ श्रीब्रह्मलोकान्मानुष्यं संप्राप्ता केशवा-  
ज्ञया ॥ अतस्तांपूजयेत्तत्रयस्तंलक्ष्मीर्नमुञ्चति' ॥ चैत्रशुक्लाष्टम्यांभवान्या उत्प-  
त्तिः ॥ तत्रनवमीयुताग्राह्या । 'अष्टमीनवमीयुक्तानवमी चाष्टमी  
चैत्रशुक्लाष्टमी युता'इतिब्रह्मवैवर्तात् ॥ अत्रभवानीयात्रोक्ताकाशीखण्डे'भवानीं  
यस्तुपश्येतशुक्लाष्टम्यांमधोनरः ॥ नजातुशोकंलभतेसदानन्दमयो भवेत्'  
इति ॥ अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तंहेमाद्रौलैङ्गे'अशोककलिकाश्चाष्टौयेपि-  
बन्तिपुनर्वसौ ॥ चैत्रेमासिसितेष्टम्यांनतेशोकमवाप्नुयुः' ॥ प्राशनमन्त्रस्तु'त्वाम-  
शोकवराभीष्टंमधुमाससमुद्भवम् ॥ पिबामिशोकसंतप्तोमामशोकंसदाकुरु'इति ।  
अत्रविशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः--'पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिता-  
ष्टमी । प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत्' इति ॥ तिथितत्वे कालि-  
कापुराणे 'चैत्रेमासिसिताष्टम्यां यो नरोनियतेन्द्रियः ॥ स्नायाल्लौहित्यतोयेषु  
स याति ब्रह्मणःपदम् ॥ चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः ॥ लौहित्य-  
तोयेयः स्नायात्सकैवल्यमवाप्नुयात्' ॥ लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः ॥ मन्त्रस्तु'ब्रह्मपु-  
त्रमहाभाग शंतनोः कुलसंभव ॥ अमोघगर्भसंभूतं पापं लौहित्य मे हर' ॥ चै-  
त्रशुक्लनवमी त्रशुक्लनवमी रामनवमी । तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम् । 'चैत्रे नवम्यां  
प्राक्पक्षेदिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥ उदये गुरुगौराश्वोःस्वोच्चस्थेग्रहपञ्च  
के ॥ मेषे पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ॥ आविरासत्सकलया कौसल्या  
यांपरःपुमान् ॥ तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतंसदा ॥ तत्र जागरणं कुर्याद्रघु-  
नाथपरो भुवि' इति ॥ इयं च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या । 'चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसु-  
युता यदि ॥ सैव मध्याह्नयोगेनमहापुण्यतमा भवेत्'इति तत्रैवोक्तेः ॥ तथा--'चै-  
त्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः ॥ पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्व  
कामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका' ॥ तथा'केवलापि सदोपो-  
ष्या नवमीशब्दसंग्रहात् ॥ तस्मात्सर्वात्मना सर्वैःकार्यं वै नवमीव्रतम्' ॥ पूर्व-



द्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या । दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे  
 वा पूर्वदिने पुनर्वस्वक्षयुक्तमपि त्यक्त्वा परैव कार्या ॥ तदुक्तं माधवीयेऽग-  
 स्तिसंहितायाम्—‘नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः । उपोषणं नव-  
 म्यां च दशम्यां चैव पारणम्’ इति । अष्टमीविद्धा सक्त्रक्षापि नोपोष्येति माधवः ।  
 रामार्चनचंद्रिकायामपि—‘विद्धैव चेदक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत् ॥ विद्धा  
 निषिद्धश्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः ॥ वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैर-  
 पि ॥ दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ॥ तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं  
 तत्रैव निश्चितम्’ इति ॥ अत्र ‘दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्’ इति ‘तदन्येषाम्’ इति  
 च वदन् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समा-  
 प्यते तदा स्मार्त्तानां तत्रैव एकादशीनिमित्तोपवासात् नवमीव्रतांगपारणालोपः  
 स्यात् । अतोष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या  
 हेयत्वान्न पारणालोपप्रसङ्ग इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति ॥ ‘दशमी  
 वृद्धयभावेष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपो-  
 ष्या’ इत्यर्थसिद्धम् ॥ इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यं च । तदुक्तं  
 हेमाद्रावगस्तिसंहितायाम्—‘उपोषणं जागरणं पितृनुद्दिश्य तर्पणम् । तस्मिन्  
 दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥ सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्तयेकसाधनः ।  
 अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव  
 सः ॥ यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढधीः ॥ कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते  
 नात्र संशयः ॥ तथा—‘अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥ व्रतान्यन्यानि  
 कुरुते न तेषां फलभागभवेत् ॥ प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः ॥ उपो-  
 षणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते’ ॥ अत्र केचित् तदुपासकानामेवेदं नित्यं न  
 त्वन्येषाम्’ इत्याहुः । अन्येतु—‘अकरणे दोषश्रवणात् तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः  
 कार्यं वै नवमीव्रतम्’ इति पूर्वोक्तवचनाच्च जन्माष्टम्यादिवदिदमपि सर्वेषां नि-  
 त्यम् । अन्यथा जन्माष्टम्यादावपि तदुपासकानामेव नित्यतां वक्तुः को वारयिता  
 इत्याहुः ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्—‘आचार्यं चैव संपूज्य



वृणुयात्प्रार्थयेन्निशि ॥ श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येहं द्विजोत्तम ॥ भक्त्याचार्यो  
 भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव च ॥ तथा—स्वगृहे चोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलम  
 ण्डपम् ॥ शंखचक्रहनूमद्विः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥ गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षि-  
 णे समलंकृतम् ॥ गदाखड्गगण्डैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥ पद्मस्वस्तिकनीलैश्च  
 कौबेर्यां समलंकृतम् ॥ मध्ये हस्तचतुष्काढ्यवेदिकायुक्तमायतम् ॥ ततः  
 संकल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने ॥ अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः ॥ उ-  
 पास्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि ॥ इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रय-  
 त्नतः ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते ॥ प्रीतो रामो हरत्वाशु पापा-  
 नि सुबहूनि मे ॥ अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च ॥ ततः स्वर्णम-  
 यीं रामप्रतिमां पलमात्रतः ॥ निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीं  
 ॥ विभर्ती दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने ॥ वामेनाधःकरेणाराद्देवीमालिंग्य  
 संस्थिताम् ॥ सिंहासने राजते पलद्वयविनिर्मिते ॥ तथा—‘अशक्तो यो महा-  
 भाग स तु वित्तानुसारतः ॥ पलेनार्धतदर्धार्धतदर्धार्धेन वा मुने ॥ सौवर्णं राजतं  
 वापि कारयेद्रघुनन्दनम् ॥ पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकरावुभौ ॥ चापद्वयस-  
 मायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् ॥ दक्षिणांगे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥ मातुरं  
 कगतं राममिन्द्रनीलसमप्रभम् ॥ पञ्चामृतस्नानपूर्वं संपूज्य विधिवत्ततः’ ॥ कौ-  
 सल्यामन्त्रस्तु—‘रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत् ॥ अतस्त्वां पूजयिष्या-  
 मि लोकमातर्नमोस्तुते ॥ नमो दशरथायेति पूजयेत्पितरं ततः’ ॥ अत्र दशा-  
 वरणपञ्चावरणादिपूजाऽन्यत्र ज्ञेया ॥ अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥  
 दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय  
 च ॥ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ॥ गृहाणाधर्यं मया दत्तं भ्रातृ-  
 भिः सहितो नद्य ॥ पुष्पांजलिं पुनर्दत्त्वा यामेयामे प्रपूजयेत् ॥ दिवैवं विधिवत्कृ-  
 त्वा रात्रौ जागरणं ततः ॥ ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः ॥ स-  
 माप्य विधिवद्ग्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्  
 ॥ पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः ॥ लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं



ततः ॥ साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः । ततो भक्त्या सुसंतोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने ॥ ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ इमां स्वर्णमयीं राम-  
प्रतिमां समलंकृताम् ॥ चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोहं राघवाय ते ॥ श्रीरामप्रीतये  
दास्ये तुष्टो भवतु राघवः । इति दत्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्या-  
दिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । इति ॥ इयं मलमासे न कार्या । 'सुजप्तमप्य-  
जप्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत्' इति 'नकुर्यान्मलमासे तु महादानव्रतानि च'  
इति च माधवीये संग्रहवचनात् ॥ ननु रामनवमीव्रतस्य नित्यत्वादेकादशी-  
वन्मलमासेपि कर्तव्यता स्यादिति चेत् ॥ अत्र ब्रूमः—नैकादश्युपवासस्य-व्रत-  
त्वेन प्राप्तिः । किंतु 'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि' इत्यादिनिषेधस्य  
मलमासेपि पालनीयत्वात् कृष्णैकादश्यां पुत्रवद्धिण इवार्थादुपवासः प्रस-  
ज्यते । न त्विह तथेति व्रतत्वेन प्राप्तिर्वाच्या । सा च निषिद्धेत्यप्रसङ्गः । 'स्पष्टमा-  
सविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले' इति निषेधाच्च ॥ एवं जन्माष्टम्यादावपि बोद्ध-  
व्यम् ॥ इतिरामनवमी । चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे—'चैत्र  
मासस्य शुक्लायामैकादश्यां तु वैष्णवैः । आंदोलनीयो देवेशः  
चैत्रशुक्लैकादशी सलक्ष्मीको महोत्सवैः' इति । चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः ।  
चैत्रशुक्लद्वादशी 'द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः । बौधायनादिभिः प्रो-  
क्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम्' इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । 'ऊर्जे व्रतं मधौ दोला  
श्रावणे तन्तुपूजनम् ॥ चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः' ॥ इति  
तत्रैव पाद्मवचनाच्च ॥ शिवभक्तादिभिस्तु चतुर्दश्यादौ कार्यम् । 'तत्र  
स्यात्स्वीयतिथिषु वन्द्यादेर्दमनार्पणम्' इति तत्रैवोक्तेः ॥ ज्योतिः प्रका-  
शेपि—'स्वस्वदेवप्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा ॥ पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्त  
त्तिथिर्बुधैः ॥' तिथयस्तु—वह्निर्विरिञ्चि गिरिजा गणेशः फणी विशाखो  
दिनकृन्महेशः ॥ दुर्गान्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी चेति तिथीषु  
पूज्याः' इत्युक्ताः ॥ अथागमोक्तदीक्षावतो दमनारोपणविधिः । रामार्चनच-  
न्द्रिकायां—तत्रैकादश्याम् । 'क्रियालोपविधातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो । न मे  
विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दयां मयि । सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा ग



तिः॥ उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते । कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्र-  
तघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् । तावद्रक्षा त्वया कार्या  
सर्वस्यास्य जगत्पते” । इति देवं संप्रार्थ्य दमनमादाय पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य वा  
रिणाप्रक्षाल्याशोकमूले देवाग्नेवा॥ “अशोकाय नमस्तुभ्यंकामस्त्रीशोकनाशन।  
शोकार्त्ती हर मे नित्यमानन्दं जनयस्वमे” । इत्यशोकम् । ‘त्रुट्यादिकालपर्य-  
न्तःकालरूपो महाबलः॥ कलतेचैवयःसर्व तस्मैकालात्मने नमः’॥ इतिकालम्  
‘वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताश्रय । सहस्रमुखसंवास कामरूप न  
मोस्तुते’॥ इतिवसन्तम्। ‘कामभस्मसमुद्भूतरतिबाष्पपरिप्लुत। ऋषिगन्धर्वदेवादि  
विमोहकनमोस्तुते’॥ इतिदमनंचसंपूज्य। ‘नमोस्तुपञ्चबाणायजगदाह्लादकारि  
णे॥ मन्मथायजगन्नेत्रेरतिप्रीतिप्रियायते’ । इतिदमनमुपस्थाय। ॐ कामायनमइ  
ति संपूज्य निशायां देवताये पञ्चवर्णैः चन्दनेन वा अष्टदलं कृत्वा बहिश्चतुरस्रं  
तद्बहिर्वर्तुलत्रयं तद्बहिर्वृत्तं चतुरस्रं च कृत्वा तत्र कुंभं संस्थाप्योपरि दमनं  
पूजयित्वा “पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेःप्रभोः । मदन त्वमिहागच्छ सा  
न्निध्यं कुरु ते नमः”॥ ॐ क्लीं कामदेवाय नमः ॐ ह्रीं रत्यै नमः इत्यावाह्यादिशु  
पूर्वादितःस्मरशरीराय नमः अनङ्गाय ०, मन्मथाय ०, कामाय ०, क्लीं वसन्तसखा  
य ०, स्मराय ०, इक्षुचापाय ०, पुष्पास्त्राय नमः इति पूजयित्वा ‘ॐ तत्स्वरूपाय  
विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नो नंगः प्रचोदयात्’ इत्यष्टोत्तरशतं संमंत्र्य पूजयि-  
त्वा ह्रीं नमः इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा । ‘नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे।  
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते’ । इति नत्वा । ‘आमन्त्रितोसि देवेश पुरा  
णपुरुषोत्तम । प्रास्तत्वां पूजयिष्यामि सांनिध्यं कुरु केशव । क्षीरोदधिमहानाग  
शय्यावांस्थितविग्रह। प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भवते नमः। निवेदयाम्यहं  
तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम् । सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे’ । इति देवं  
संप्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्वा, अस्त्रेण चक्रमन्त्रेण वा रक्षां कुर्यात् । ततः प्रातर्नित्य  
पूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुक्तं दमनमादायमूलमन्त्रं पठित्वा। ‘देव  
देव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक । हृदिस्थान् पूरयेः कामान्मम कामेश्वरीप्रि



या इदं दमनकं देव गृहाण मदनग्रहात् ॥ इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय” इति मन्त्रान्ते पुनर्मूलमन्त्रेण देवे समर्पयेत् । ततो अंगदेवताभ्यः स्वस्वमन्त्रेण दत्त्वा प्रार्थयेत् । “मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज । वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वद्वा मनकीं मालां पूजां च हृदये वह । जानता जानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते । जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ नमस्तेस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज” ॥ मन्त्रहीनमिति च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैः पुनः संपूज्य नीराज्य पारयेदिति ॥ दीक्षारहितानां तु नाम्नैव समर्पणम् ॥ अत्र च द्वादशीमतन्त्रीकृत्य परमहो ग्राह्यम् । ‘पारणाहे न लभ्येत द्वादशीघटिकापि चेत् ॥ तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे’ इति तत्रैवोक्तेः ॥ गौणोपि काल उक्तस्तत्रैव । ‘हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि वैशाखे श्रावणे वापि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम् ॥ श्रावणावधिशुक्लास्ते कर्त्तव्यमिति नारदः’ इति पाठान्तरम् ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । ‘उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्’ इति कालादर्शं मलमासवर्ज्येषु परिगणनात् । ‘उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पर्वोत्सवं तथा । उत्तरे नियतं कुर्यात्पूर्वं तन्निष्फलं भवेत्’ इति माधवायि प्रजापतिवचनाच्च ॥ शुक्रास्तादौ तु कार्यमेव । पूर्वोक्तवचनात् ॥ ‘उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् ॥ ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येपीति विनिश्चयः’ इति ज्योतिर्निबन्धे वृद्धगार्ग्यवचनाच्च चैत्रशुक्लत्रयोदशी इति दमनारोपः ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् । हेमाद्रौ भविष्ये—‘चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासे कामं त्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम् । पत्न्या सहार्च्यं पुरुषप्रवरोऽथ योषित्सौ भाग्यरूपसुतसौ स्खयुतः सदा स्यात् ॥’ तत्र सा पूर्वा ग्राह्या । ‘त्रयोदशतिथिः पूर्वासिते’ इति दीपिकोक्तेः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या । ‘मधोः चैत्रशुक्लचतुर्दशी श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी । सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन’ इति हेमाद्रौ बोधायनोक्तेः ॥ परां पूर्वाह्णगामि

१-‘परा मासान्तरवर्तिनी शुक्ला पूर्वाह्णगमिनी उत्तरविद्धा’ इत्यर्थः— इति टीका ॥



नी इति वा पाठः। अत्र केचिद्यथाश्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति ॥ “निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः। अतस्तत्र चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत्” इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ हेमाद्रिमाधवादिलिखनमप्येवम् ॥ संप्रदायविदस्त्वाहुः “चतुर्दशी तु कर्तव्या त्रयोदश्यायुता विभो।” इति स्कांदमुत्सर्गः। तदपवादश्च “तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता” इति नारदीयवचनम्। तदपवादश्च ‘मधोः श्रावणमासस्य’ इति ॥ तत्रापवादाभावे पुनरुत्सर्गस्य स्थितिरिति न्यायेन पूर्वविद्धैव ग्राह्येति सिध्यति ॥ ब्रह्मवैवर्ते तु सामान्यरूपमन्यत्र सावकाशमिति तेन पूर्वदिने मुहूर्तत्रयवेधे पूर्वा, अन्यथोत्तरेति ॥

चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णयात्परैव ॥ अत्र विशेषो निर्णयामृतचैत्रशुक्लपूर्णिमा ते विष्णुस्मृतौ ‘चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदाने न सौभाग्यमाप्नोति’ इति। तथा ब्राह्मे—“मंदे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका ॥ तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत्” इति ॥ अत्र सर्वदेवानां दमनपूजोक्ता। तत्रैव वायवीये—“संवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाः खिलान्सुरान्। दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम्” इति। अत्र स्वीयतिथ्या समुच्चय इति केचित्। स्वीयतिथ्यामकरणेन दमनपूजनमित्यन्ये ॥ दीक्षिततदितरविषयत्वेन व्यवस्थेत्यपरे। इयं मन्वादिरपि साच पूर्वमुक्ता ॥ चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञोयोगो गौडेषुप्रसिद्धः।

तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कांदे “वारुणेन समा युक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गंगायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा। शनिवारसमामुक्ता सा महावारुणी स्मृता ॥ गंगायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा। शुभयोगसमायुक्ता शनौ शताभिषा यदि महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्। तत्रैव ज्योतिषे “चैत्रासिते वारुणः कक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे ॥ योगे शुभे सा महती महत्या गं गाजलेर्कग्रहकोटितुल्या” इति ॥ त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्मांडपुराणे—‘वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गंगायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः



समा "इति ॥ कल्पतरौ ब्राह्मे—'मधौकृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषायुता।  
 वारुणीति समाख्याता'शुभे तु महती स्मृता ।चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषः  
 चैत्रकृष्णचतुर्दशी पृथ्वीचंद्रोदये पुलस्त्यः"चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नाया  
 च्छिवसन्निधौ।न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायां तु विशेषतः"इति  
 ॥ अत्र पूर्वा ग्राह्या कृष्णपक्षत्वात् ॥ गौडैस्त्वेतदेव शुक्लचतुर्दश्यामित्ये  
 वं देवलीयत्वेन पठितम् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते  
 कालनिर्णयसिंधौ चैत्रमासः ॥ मेषसंक्रमे प्रागपरा दश दश घटिकाः पुण्यकालः  
 रात्रौ तु प्रागुक्तम् । अत्र धर्मघटादिदानमुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये पाद्मे—'तीर्थे  
 चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् ॥ दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम्  
 माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम्" ॥ अथ वैशाखस्ना  
 नम् । तत्र पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुस्मृतिपादयोः "तुलाम-  
 करमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते ॥ हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम्"  
 इति सौरमास उक्तः ॥ अन्यत् पक्षद्वयमुक्तं तत्रैव पाद्मे—'मधुमासस्य  
 शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः । पंचदश्यां च भोवीर मेषसंक्रमणे तु वा ॥ वैशा  
 खस्नाननियमंब्राह्मणानामनुज्ञया ॥ मधुसूदनमभ्यर्च्यकुर्यात्संकल्पपूर्वकम्" ।  
 तत्रमंत्रः । "वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः ॥ प्रातः सनियमः स्नास्ये  
 प्रीयतां मधुसूदनः ॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ॥ निर्विघ्नमस्तु मे  
 पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् । माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन ॥ प्रातःस्नानेन मे  
 नाथ फलदो भव पापहन्"इति ॥ तीर्थविशेषोपि तत्रैवोक्तः । 'मेषसंक्रमणे  
 भानोर्माधवे मासि यत्नतः ॥ महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे ॥ देव-  
 खातेथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये ॥ दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं  
 स्मरन्"इति।संकल्पे च तत्तत्तीर्थनाम ग्राह्यम् । अज्ञाने तु विष्णुतीर्थमिति वदे  
 त् ॥ 'यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः ॥ तत्रेत्युच्चारणं कार्यं  
 विष्णुतीर्थमिदं' तु इति ॥ तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः"इति तत्रैवो-  
 क्तः । तथान्योपि विशेषस्तत्रैव पाद्मे 'तुलसीकृष्णगौराख्या तयाभ्यर्च्य मधुद्विष



माविशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत् ॥ माधवं सकलं मासं तुलस्या योर्च  
येन्नरः ॥ त्रिसंध्यं मधुहंतारं नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ तथा प्रातःस्नात्वा वि-  
धानेन माधवे माधवप्रियम् ॥ योश्च तथमूलमासिचेत्तोयेन बहुना सदा ॥ कु-  
र्यात् प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः । पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम् ॥  
योश्च तथमर्चयेद्देवमुदकेन समंततः ॥ कुलानामयुतं तेन तारितं स्थान्न संशयः  
कंडूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम् ॥ कृत्वा गोविंदमभ्यर्च्य न दुर्गति-  
मवाप्नुयुः ॥ तथा एकभक्तमथो नक्तमयाचितमतंद्रितः ॥ माधवे मासि यः कुर्या-  
ल्लभते सर्वभीक्षितम् ॥ वैशाखे विधिना स्नानं देवनद्यादिके बहिः ॥ हविष्यं  
ब्रह्मचर्यं च भूशय्यानियमस्थितिः । व्रतं दानं दमो देवि मधुसूदनपूजनम् । अ-  
पि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम् ॥ मदनरस्ते रुकादे—‘प्रपाकार्या च  
वैशाखे देवे देया गलंतिका । उपानद्वयजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चंदनम् । जलपात्रा-  
णि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च । पानकानि च चित्राणि द्राक्षारंभ फलान्य-  
पि । तिथितत्त्वे—‘ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनं बुधटान्वितान् । पितृनुद्दिश्य वि-  
प्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते’ इति ॥ तथा—‘वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विज-  
न्यने । ददाति सुरराजेंद्र स याति परमां गतिम् ।’ एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ व्यहं  
वा स्नायात् ॥ तदुक्तं तत्रैव पादौ—‘त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां वा दिनत्र-  
यम् । अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोपि वा ॥ प्रातः स्नातः सनियमः सर्व-  
पापैः प्रमुच्यते’ । यदा तु वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समा-  
प्तिनिषेधात् मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः । मासोपवसचांद्रायणादितु  
मलमासे एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्—‘नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे  
मास्यारभ्य समापयेत् मलिने मासोपवासव्रतम्’ इति ॥ अत्र दानविशेष  
उक्तोपरार्के वामनपुराणे—‘गंधाश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुरभीणि च । देया-  
नि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतृष्टये’ ॥ एवं स्नाने कृते तस्योद्यापनं कार्यम् । तदुक्तं

१—‘गलन्तिका सततं पतद्धारमुदकम्’ इति टीका ॥ २—निषेधादिति । “आरब्ध  
कर्म यत्किंचित्तत्तु कार्यं मलिम्लुचे इत्यनुवृत्तिवचनाच्च’ इत्यपि द्रष्टव्यम्—इति टीका ॥



तत्रैव—“मासमेवंबहिः स्नात्वानद्यादौ विमले जले ॥ एकादश्यां च द्वादश्यांपौ  
र्णमास्यामथापि वा ॥ उपोष्य नियतो भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥ मंडपं कार-  
येदादौ कलशं तत्र विन्यसेत् ॥ निष्केण वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥ शक्त्या  
वा कारयेद्देवं सौवर्णं लक्षणान्वितम् ॥ लक्ष्मीयुक्तं जगन्नाथं पूजयेदा-  
सने बुधः ॥ भूषणैश्चंदनैः पुष्पैर्दीपै नैवेद्यसंचयैः ॥ एवंसंपूज्य विधिवद्वात्रौ जा-  
गरणंचरेत् ॥ श्वोभूते कृतमैत्रोथ ग्रहवेद्यां ग्रहान्यजेत् ॥ होमं कुर्यात्प्रय-  
त्नेन पायसेन विचक्षणः ॥ तिलाज्येन यवैर्वापि सर्वैर्वापि स्वशक्तितः ॥ अष्टौ  
त्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ प्रतद्विष्णुरनेनैव इदं विष्णुरनेन वा ॥ व्रतसं-  
पूर्तिसिद्धयर्थं धेनुमेकां पयस्विनीम् ॥ पादुकोपानहौ छत्रं गुरवे व्यजनं  
तथा ॥ शय्यां सोपस्करां दद्याद्दीपिकां दर्पणं तथा ॥ ब्राह्मणान्  
भोजयेत्त्रिंशत्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ कलशान् जलसंपूर्णांस्तेभ्यो दद्याद्यवां-  
स्तथा ॥ एवंकृते माधवस्य चोद्यापनविधौ शुभे ॥ फलमामोति सकलं विष्णुसा-  
युज्यमानुयात्” । एतावत्यशक्तौ तत्रैवोक्तम्—“वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोज-

येत् ब्राह्मणान् दश ॥ कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः”  
वैशाखशुक्लतृतीया इति ॥ वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीयोच्यते । सा  
पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेपि तद्व्याप्तौ परैव । तदुक्तं निर्णयामृते  
नारदीये—“वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता ॥ दुर्लभा बुधवारेण सो  
मेनापियुता तथा ॥ रोहिणीबुधयुक्तापि पूर्वविद्धाविवर्जिता ॥ भक्त्या कृतापि  
मांधातः पुण्यं हन्ति पुराकृतम् । गौरीविनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता । वि-  
नापि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदा सदा” । इति ॥ इयं युगादिरपि  
युगादिनिर्णयः

। सा चोक्ता रत्नमालायाम्—“माघे पंचदशी कृष्णा नभ-  
स्ये च त्रयोदशी । तृतीयामाधवेशुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः” इति ॥ यत्तु गौडाः—  
‘माघस्य पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम्’ इति ब्राह्मोक्तेः ॥ ‘वैशाखमासस्य  
च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे । नभस्य मासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी  
पंचदशी च माघे’ ॥ इति विष्णुपुराणे चकारेण तमिस्रपक्षानुषंगेऽपि पूर्वानुरोधात्  
पौर्णमास्येव ज्ञेया । द्वे शुक्ले इत्यादिकं तु निर्मूलमित्याहुः ॥ तत्र ॥ ‘दर्शे तु



माघमासस्यप्रवृत्तं द्वापरं युगम्'इति भविष्यविरोधात् ॥ एतेन ब्राह्मणानुसारात् पूर्णिमायामेव युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः ॥ तेन कल्पभेदाद्वचस्थेति तत्त्वम् ॥ एतेन 'कार्तिके नवमीशुक्लमाघमासे च पूर्णिमा' इति बृहन्नारदीय व्याख्यातम् ॥ निर्मूलत्वोक्तिर्नारदीयाज्ञानकृता । अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये—'कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितॄणां तृप्तिदं भवेत्' इति ॥ भारतेपि—'या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवः । स्नात्वा हुत्वा च दत्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्' इति ॥ श्राद्धेपि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । 'पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः ॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये च रुष्णे चैवापराह्निकाः' इति पाद्मोक्तेः ॥ 'द्वे शुक्ले द्वे तथा रुष्णे युगादि कवयो विदुः ॥ शुक्ले पूर्वाह्निके ग्राह्ये रुष्णे चैवापराह्निके' इति हेमाद्रौ नारदीयवचनाच्च । दीपिकापि—'अथोमन्वादियुगादिकर्म तिथयः पूर्वाह्निकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्निकाश्च बहुले' इति ॥ स्मृत्यर्थसारेपि—'युगादिमन्वादिश्राद्धेषु शुक्लपक्षे उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । रुष्णपक्षेऽपराह्णव्यापिनी' इति—॥ दिवोदासीये गोभिलः वैशाखस्य तृतीयांयः पूर्वविद्धां करोति वै । हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा' इति गोविंदा र्णवेप्येवम्—तेनेयं पूर्वाह्णव्यापिनी । दिनद्वये तत्त्वे परैवेति धर्मतत्त्वविदो हेमाद्र्यादयः ॥ अनन्तभट्टस्तु—'सवैधृतिर्व्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा । सस्मृत्वा उपवासे स्युर्दानादावन्तिमाः स्मृताः' इत्याह ॥ दानादाविति श्राद्धसंग्रहः । उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ माधवस्तु 'व्यतीपातः श्राद्धेऽपराह्णव्यापी ग्राह्यः' इत्याह ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'कुतुपकालयोगी' इत्युक्तम् ॥ यत्तु मार्कण्डेयः—'शुक्लापक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । रुष्णपक्षापराह्णे हि रौहिणं तु न लघयेत्' ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्यमिति शूलपाणिः ॥ निर्णयामृतादयस्तु कालदर्शेऽप्यश्राद्धमापराह्णिकमुक्त्वा 'एष मन्वंतरादीनां युगादीनां विनिर्णयः' इत्युक्तत्वात् द्वे शुक्ल इत्यादिवचनं विष्णुपूजनविषयम् । श्राद्धेत्वापराह्णिकयेवेति व्यवस्था जग-



दुः॥ सेयं पूर्वोक्तानेकवचोविरोधात् 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात्' इत्यादिवचनादेव सिद्धे वचनवैयर्थ्याच्च स्वाच्छन्द्यविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया ॥ किंच कालाद् शोक्तिर्न्यायमूला वचोमूला वा । नाद्यः—युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेन न्यायतोपराह्व्याप्तावपि वचनेन तस्य बाधात् । नान्त्यः—अतिदेशादेवापराह्व-  
 प्राप्तेर्वचनवैयर्थ्यात् अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत् इति न्यायात् । तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धाजाड्येन समाधित्सा तर्हि न्यायप्राप्तकृष्ण पक्षयुगादिविषयत्वेन सा व्यवस्थापनीयेति दिक् ॥ पूर्वाह्णस्तत्र द्वेधा भक्तदिनपूर्वार्धः 'द्वेधा भक्तदिनांशकोत्र गदितः प्राह्णापराह्णौ' इति दीपि-  
 कोक्तेः ॥ माधवादयोप्येवम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—वैशाखे शुक्ल-  
 पक्षे तु तृतीयायां तथैव चांगतातोयेनरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः । तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् । यवान् दद्याद्विजातिभ्यः प्रयतः प्राश-  
 येद्यवान्' इति ॥ अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्ये इमां प्रक्रम्य 'उदकुंभान्तसक-  
 नकान्तसान्नान्तसर्वरसैः सह । यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा ॥ ग्रैष्मि-  
 कं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते' इति ॥ देवीपुराणेपि—'तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्युक्षे प्रपूज्य तु ॥ उदकुंभप्रदानेन शिवलोके महीयते' ॥ मंत्रस्तु—'एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्तृप्यंतु पितरोपि पिताम-  
 हाः । गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुभं फलान्वितम् ॥ पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु' इति ॥ अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्—'अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । युगादिषु च सर्वेषु पिंडनिर्वपणादृते' इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात् ॥ अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधाने—'रात्रौ भुक्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु । अभिस्ववृष्टिमंत्रं च जपेदशनपातके' इति ॥ अप-  
 राकै यमः—'कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु च । दास्यंत्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः' इति ॥ वैशाखे मलमासे सति तत्रैव युगादिः कार्यः । तथाच हेमाद्रौ ऋष्यशृंगः—'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्विपियुगादिषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः' इति ॥ एतद्दशहरादिकं वृषादिसंक्रमे इष्टम् ॥



‘कन्याचंद्रवृषेरवौ’ इत्यादिसौरमासोक्तेरित्यर्थः ॥ कालादर्शोपि-‘अब्दोदकुं-  
 भमन्वादिमहालययुगादिषु’ इति मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च ॥ महालयश-  
 ब्देन माघत्रयोदश्युच्यतइति माधवः ॥ स्मृतिचंद्रिकायांतुमासद्वये कर्तव्य-  
 मित्युक्तम्-‘यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् ॥ मन्वादिकं तैत्थिकं  
 च कुर्यान्मासद्वयेपि च’ इति ॥ अपरपक्षः कृष्णपक्षः न तु महालयः ॥ तस्य तत्र  
 निषेधात् । मदनरत्नेपि मरीचिः-‘प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सर-  
 म् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि’ इति ॥ प्रतिवत्सरं क्रियमाणं  
 कल्पादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ । अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तम्  
 विधाने । ‘नयस्यद्यावामंत्रं च शतवारं तदा जपेत् ॥ युगादयो यदान्यूनाः  
 कुरुते नैव चापि यः’ इति अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रो-  
 दये सौरपुराणे-‘युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ । गोसहस्रमदान-  
 स्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत् । तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम्’ इति ॥  
 अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः ॥ इति युगादिनिर्णयः । इयमेव तृतीया  
 परशुरामजयंती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं भार्गवार्चनदीपिकायां  
 स्कांदभविष्ययोः-‘वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ । निशायाः  
 प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः । स्वोच्चगैः षड्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते ।  
 रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्’ इति ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः  
 समव्याप्तौ च पराअन्यथा पूर्वैव । तदुक्तं तत्रैव भविष्ये-‘शुक्ला तृतीया वैशाखे  
 शुद्धोपोष्यादिनद्वये । निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विका’ इति ॥ वैशाखशु-  
 वैशाखशुक्ल क्लृप्तसप्तम्यां गंगोत्पत्तिः ॥ तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-‘वैशाखे  
 सप्तमी शुक्लसप्तम्यां जन्हुना जाह्नवी पुरा ॥ क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता  
 कर्णरन्धात्तु दक्षिणात् ॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गंगां गगनमेखलाम्’ इति ॥ अत्र  
 शिष्टाचारात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ

१-वैशाखे मासि शुद्धायां तृतीयायां भगीरथः । ब्रह्मलोकात्त्रिपथगां पृथिवीतलमान  
 यत् इति व्रतहेमाद्रौ ॥



वा पूर्वा ॥ युग्मवाक्यात् । वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ ज्योति-  
वैशाखशुक्ल-शास्त्रे—‘पंचाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेघे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ॥

द्वादशी पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपातइतीहयोगः । अस्मिन्स्तु  
गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्व परिहाय पापम् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्या-  
धिपत्यं लभते मनुष्यः’ इति ॥ पंचाननः सिंहः । पाशाभिधानातिथिर्द्वादशी । करभो  
हस्तः ॥ वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं  
वैशाखशुक्ल-हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे—‘वैशाखेशुक्लपक्षेतुचतुर्दश्यानिशामुखे ॥  
चतुर्दशी मञ्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मम संतु  
ष्टिकारणम्’ इति ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा । विषमव्याप्तौ त्वधि-  
कव्याप्तिमती दिनद्वयेऽप्यव्याप्तौ परा । परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् पूर्वदिने च  
तदभावात् । यत्तु—‘ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले’ इत्युपक्रम्य ‘परि-  
धाय ततो वासो व्रतकर्मसमारभेत्’ इति तत्रैवोक्तम् ॥ तत्संकल्परूपव्रतोपक्रम-  
विषयं ॥ नत्वेतावता मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति भ्रमितव्यम् ॥ पूर्वोक्तवचनवि-  
रोधात् ॥ ‘वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेनिलक्षके ॥ अवतारो नृसिंहस्य प्रदो-  
षसमये द्विजाः’ इति टोडरानन्देस्कांदात् । ‘कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायम्’  
इति पूर्वोक्तपुराणसमुच्चयवचनाच्चेतिकेचित् ॥ तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन  
निर्मूलत्वात् ॥ हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे—‘मञ्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम्’ इ-  
त्युपक्रम्य ‘स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे तु मद्रतम् ॥ सिद्धयोगस्य संयोगे  
वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः ॥ सर्वैरेतैस्तु सं-  
युक्तं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनम् ॥ के-  
वलेपि प्रकर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ॥ अन्यथा नरकं यांति यावच्चंद्रदिवाक-  
रम्’ इत्युक्त्वा ‘ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले’ इत्यादिना मध्याह्न-  
एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्म प्रतीयते  
संध्यायां जन्म तु काप्यनुकेमौख्यरुतम् ॥ तद्वशान्निर्णयश्च हेय एवेति ॥ इय-  
मेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता । तदुक्तं तत्रैव—‘स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च



मद्गतम् ॥ सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन  
 लभते दैवयोगतः ॥ एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव  
 वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्गते ॥ मद्गतेऽस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः' ॥ तथा  
 'सिंहः स्वर्णमयो देवो मम संतोषकारकः' ॥ तथा—'विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लब्धये  
 त्पापकृन्तरः ॥ स याति नरकंधोरं यावच्चंद्रदिवाकरम्' ॥ इदं च संयोगपृथक्त्व  
 न्यायेन नित्यं काम्यं च ॥ अथात्र विशेषः । मध्याह्ने मृद्धोमयतिलामलकस्नानं  
 कृत्वा 'नृसिंह देवदेवेश तव जन्म दिने शुभे ॥ उपवासं करिष्यामि  
 सर्वभोगविवर्जितः' इति मंत्रेण संकल्पं कृत्वा आचार्यं वृत्वा सायंकाले—'हैमी तु  
 तत्र मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च । पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा  
 पुनः ॥ यथाशक्ति तथा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः' ॥ इत्युक्तम् नृसिंहमूर्तिं  
 शक्त्या कृतं सुवर्णसिंहं च कलशोपरि संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः  
 पुनः संपूज्य 'नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ अनेनार्चाप्रदानेन  
 सफलाः स्युर्मनोरथाः' इत्याचार्याय दत्त्वा 'मद्देशे ये नरा जाता ये ज  
 निष्यन्ति चापरे ॥ तांस्त्वमुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ॥ पातकार्णवमग्नस्य  
 व्याधिदुःखां वुवारिभिः ॥ तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥ करावलं-  
 बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते ॥ श्रीनृसिंह रमाकांत भक्तानां भयनाशन ॥  
 क्षीराम्बुधिनिवासिंस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन । व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव'  
 इति प्रार्थयेदिति संक्षेपः ॥ वैशाखपौर्णमास्यां विशेषोपराके जावालिनोक्तः  
 'श्रुतान्नमुदकुंभं च वैशाख्यां च विशेषतः । निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नु-  
 यात् ॥ सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पंच च ॥ तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां  
 व्यपोहति' इति ॥ उदकुंभदानमन्त्रस्त्वक्षय्यतृतीयाप्रकरणे उक्तः ॥ भविष्येपि—  
 'वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयो तीव्र पूजिताः ॥ स्नानदानविहीनास्ता न ने  
 याः पांडुनन्दन' ॥ अत्र कृष्णाजिनदानं कार्यम् । तथाच विष्णुः 'कृष्णाजिने  
 तिलान् कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिणी ॥ ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृत  
 म्' इति ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णय-



सिन्धौ वैशाखमासः समाप्तः ॥ वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्यकालः ॥

रात्रौ संक्रमे सति प्रागेवोक्तम् । ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रत-  
ज्येष्ठशुक्लतृतीया मुक्तं माधवीये भविष्ये—‘भद्रेकुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्त-

मम् ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नाता नियमतत्परा’ इति ॥ सा पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥

‘बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी ॥ कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या

संमुखी तिथिः’ इति स्कान्दोक्तेः । ज्येष्ठशुक्लदशमी  
ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे—‘ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी

हस्तसंयुता ॥ हरते दश पापानि तस्मादशहरा स्मृता’ इति ॥ वाराहेषि—

‘दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेहनि ॥ अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च

सरिद्वरा ॥ हरते दश पापानि तस्मादशहरा स्मृता’ इति ॥ स्कान्दे तु दश

योगाः उक्ताः । तथा—‘ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ॥ व्यतीपाते

गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते’

इति ॥ अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च यत्रैव योगबाहुल्यं

सैव ग्राह्या योगाधिक्ये फलाधिक्यात् । ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा

कार्या नतु शुद्धे । ‘दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु’ इति हेमाद्रौ ऋष्य-

शृङ्गोक्तेः ॥ तथा स्कान्दे—‘यां कांचित्सरितं प्राप्य दद्यादघ्न्यं तिलोदकम् ॥

मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः’ ॥ अत्र विशेषः काशीखण्डे—‘ज्येष्ठे

मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम् । दशाश्वमेधके स्नात्वा मुच्यते सर्व-

पातकैः ॥ एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमीं

प्रतिजन्माघमुत्सृजेत्’ ॥ ‘तथा—लिङ्गं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ ॥ दश-

जन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः’ । तथाच भविष्योत्तरकाशीखण्डयोः

‘निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः ॥ पुष्पैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः फलैश्च

दशसंख्यया ॥ तथा दीपैश्च तांबूलैः पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ स्नात्वा भक्त्या

तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ॥ दशप्रसूतिकृष्णांश्च तिलान्सर्पिश्च वै

जले ॥ गुडपिंडान्सक्तुपिंडान्दद्याच्च दशसंख्यया ॥ ताते गंगातटे रम्ये हेम्ना



रूप्येण वा तथा । गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम् । संस्थाप्य  
 पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदापि च । अथ तत्राप्यशक्तश्चेल्लिखेत्पिष्टेन वै  
 भुवि ॥ वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः । नारायणं महेशं च  
 ब्रह्माणं भास्करं तथा । भगीरथं च नृपतिं हिमवन्तं नगेश्वरम् ॥ गन्धपुष्पादि-  
 भिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयेत् । दशप्रस्थांस्तिलान्दद्याद्दशसंख्यागवीस्तथा ।  
 प्रस्थः षोडशपलानि । पलं तु—‘मुष्टिमात्रं पलं स्मृतम्’ इति महार्णवे उक्तम् ।  
 ‘मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान् ॥ हंसकारंडवक्त्रचक्रदिट्टिभसार-  
 सान् । कारयित्वा यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा ॥ तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य  
 कुसुमादिभिः ॥ गंगायां प्रक्षिपेदाज्यदीपांश्चैव प्रवाहयेत् ॥ पुष्पाद्यैः पूजयेद्गङ्गां  
 मन्त्रेणानेन भक्तितः’ ‘ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै नमोनमः’ इति  
 मन्त्रं तु यो मर्त्यो दिने तस्मिन् दिवानिशम् । जपेत्पञ्चसहस्राणि दशधर्मफलं  
 लभेत् ॥ काशीखण्डे त्वन्यो मन्त्र उक्तः ‘नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं  
 ततः । दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एष वै । स्वाहान्तः प्रणवादिश्च भवे-  
 द्विंशक्षरो मनुः ॥ पूजादानं जपो होमोऽनेनैव मनुना स्मृतम्’ इति ॥ अत्र गंगा-  
 स्तोत्रपाठमपि दशवारं कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये—‘तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं  
 गङ्गाजले स्थितः ॥ यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः । सोऽपि त-  
 त्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः’ इति ॥ स्तोत्रं च प्रतिपदादिदशमीपर्यन्तं  
 दिनवृद्धिसंख्यया पठनीयमिति शिष्टाः ॥ अत्र च सर्वोपि विस्तरः स्तोत्रादि  
 च भट्टकृतत्रिस्थलीसेतोरवधेयः ॥ विस्तरभीतेस्तु न लिख्यते ॥ एवं कुर्वतः  
 फलमुक्तं काशीखण्डे—‘एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ उपवासी  
 वक्ष्यमाणैर्दशपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते’  
 इति च ॥ अस्यां सेतुबन्धरामेश्वरस्य प्रतिष्ठादिनत्वाद्विशेषेण पूजा कार्या ।  
 तदुक्तं स्कांदे सेतुमाहात्म्ये—‘ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ।  
 गगनन्दे व्यतीपाते कन्याचंद्रे वृषेरवौ ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिंगरूपधरं हरम् ॥ रा-  
 ज्येष्ठशुक्लकादशी मौर्वे स्थापयामास शिवलिंगमनुत्तमम्’ इति ॥ इति दशदरा ॥  
 ज्येष्ठशुक्लकादशी निर्जला । तत्र निर्जलमुपोष्य विप्रेभ्यो जलकुंभान् दद्यादिति



निर्णयामृते उक्तम् । मदनरत्ने स्कान्दे—‘ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा ॥ निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुंभान्नसशर्करान्न । प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ’ ॥ ज्येष्ठपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम् । ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमा तदुक्तं स्कान्दभविष्ययोः—‘ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे’ इत्युपक्रम्य ‘व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारान्नि स्थिरा भवेत्’ इति अन्तेप्युपसंहृतम् ॥ ‘ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम् । चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप’ इति ॥ दाक्षिणात्याश्चैतदेवादियन्ते ॥ एतच्चाभावास्यायामप्युक्तं निर्णयामृते भविष्ये—‘अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती ॥ त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् इति’ ॥ मदनरत्ने त्विदं वाक्यम् ‘पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे’ इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्यामुक्तम् ॥ तथा—‘अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रियः। अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम्’ इति ॥ तत्तु पाश्चात्या आद्रियन्ते ॥ हेमाद्रिसमयोद्योतादिषु तु भाद्रपद पूर्णिमायामुक्तं तत्तु नेदानीं प्रचरति ॥ गौडास्तु—‘मेघे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत् ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः ॥ वट मूले सोपवासा न ता वैधव्यमामुयुः’ इति पराशरोक्तेश्चतुर्दश्यां प्रदोषे व्रतम् । दिनद्वये तद्व्याप्तौ परैवेत्याहुः ॥ तन्निर्मूलम् ॥ अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये । ‘भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा ॥ वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्’ इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ स्कांदेपि—‘भूतविद्धासिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत् ॥ वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु शिखिवाहन’ इति ॥ मदन रत्ने ब्रह्मवैवर्तेपि—‘प्रतिपत्पञ्चमी भूतसावित्री वटपूर्णिमा ॥ नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः’ इति । यदा त्वष्टादशघटिका चतुर्दशी तदा परा ग्राह्या । ‘पूर्वविद्धैव सावित्रीव्रते पञ्चदशीतिथिः । नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चै तच्च परेऽहनि’ इति माधवोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु ‘भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथि-म्’ इत्यस्य व्रतांतरे सावकाशत्वाद्विशेषप्रवृत्तपूर्वविद्धाविधायकवचनेन त-



स्य बाधादष्टादशनाडीवेधेपिपूर्वैवेत्ययं पन्थाः साधुः । अत्र पूर्णिमानुरोधेनैवय-  
 था त्रिरात्रिसंपत्तिर्भवति तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यं तस्याः प्रधानत्वा-  
 त् ॥ अयं निर्णयोऽमायामपि ज्ञेयः । पारणं तु पूर्णिमांते कार्यम् ॥ अथस्त्री  
 व्रतेषु विशेषाःपरिभाषायामुक्ताः । अत्र विशेषो भविष्ये 'गृहीत्वा वालुकां  
 पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर । ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते । सावित्रीप्र-  
 तिमां कुर्यात्सौवर्णीं वापि मृन्मयीम् । सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीप-  
 कैः । रजन्या कंठसूत्रैश्च शुभैः कुंकुमकेशरैः ॥ पूजयेत्' इतिशेषः । रजनी हरि-  
 द्रा । कण्ठसूत्रं सौभाग्यतन्तुः । 'सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयीत द्विजोत्तमैः  
 रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः । तामपि ब्राह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य  
 क्षमापयेत् इति' ॥ मन्त्रस्तु—'सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती । ब्रह्मणः  
 प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ॥ व्रतेनानेन राजेन्द्र वैधव्यं नामुयात्क-  
 चित्' इति ॥ ज्येष्ठपौर्णमास्यां विशेष आदित्यपुराणे—'ज्येष्ठे मासि तिलान्  
 दद्यात् पौर्णमास्यां विशेषतः ॥ अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः' ॥  
 विष्णुरपि—'ज्येष्ठी ज्येष्ठायुता चेत्स्यात्तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नराधिपत्य  
 प्राप्नोति' इति ॥ हेमाद्रौ ज्योतिषे—'ऐन्द्रे गुरुःशशी चैव प्राजापत्ये रविस्त  
 था ॥ पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता' इति ॥ इयं मन्वादिरपि । सा  
 पौर्वाहिकी ग्राह्या । विशेषस्तु चैत्रे उक्तः ॥ तथाऽपराकै वामनपुराणे—  
 'उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम् ॥ त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं  
 ज्येष्ठमासि तु' इति ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ ज्येष्ठमासः  
 समाप्तः ॥ मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः ॥  
 रात्रौ तु प्रागेवोक्तम् ॥ आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः ।  
 तदुक्तं तिथितत्वे स्कान्दे—'आषाढस्य सिते पक्षे  
 द्वितीया पुष्यसंयुता ॥ तस्यां रथे समारोप्य रामं वै  
 भद्रया सह ॥ यात्रोत्सवंप्रवर्त्यथ प्रीणयेत् द्विजान् बहून्' ॥  
 तथा—'ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्रासौ मम पुण्यदा' ॥

मिथुनसंक्रान्ति  
निर्णयः

आषाढशुक्ल  
द्वितीया

आषाढशुक्लदशमी



आषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः। सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्येति प्रागु-  
 आषाढशुक्लद्वादशी कम् ॥ आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं  
 कुर्यात् । तदुक्तं भविष्ये —‘आभाकासितपक्षेषु मै-  
 त्रश्रवणरेवती ॥ संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेत् ’ ॥ अस्यार्थः—  
 आषाढभाद्रपदकार्तिकशुक्लद्वादशीष्वनुराधाश्रवणरेवतीयोगे पारणं न कुर्या-  
 दिति ॥ अत्र यद्यप्येतावदेवोक्तम् । तथाप्यनुराधाप्रथमपाद एव  
 वर्ज्यः । तदुक्तं विष्णुधर्मे—‘मैत्राघपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णा  
 न्त्यपादे प्रतिबोधमेति ॥ श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव ॥  
 वर्ज्यम्’ इति ॥ वस्तुतस्तु पूर्ववचनमिदं च निर्मूलम् । अत्रैव विष्णुशयनो-  
 त्सव उक्तो हेमाद्रौ ब्राह्मे —‘एकदश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान्हरिः । भु-  
 जंगशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा’ इति ॥ कल्पतरौ यमः—‘क्षीराब्धौ शेषपर्य-  
 ङ्क्ते आषाढ्यां संविशेद्धरिः ॥ निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा ॥  
 ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेवं व्यपोहति ॥ हिंसात्मकैस्तु किं तस्य यज्ञैः कार्यं  
 महात्मनः । प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः’ ॥ टोडरानंदेऽपि स्कांदे  
 ‘आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वप्नमहोत्सवम् ॥ अयं द्वादश्यामप्युक्तः । ‘आभाका-  
 सितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती ॥ आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥ निशि  
 स्वापो दिवोत्थानं संध्यायां परिवर्तनम्’ ॥ अत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कार-  
 येत् ॥ ‘आभाकाख्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च ॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्र-  
 स्वापावर्तनोत्सवाः’ इति भविष्योक्तेः । ‘द्वादश्यां संधिसमये नक्षत्राणामसंभवे ।  
 आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम्’ इति वाराहोक्तेः । द्वादश्यामित्यत्रा-  
 पि पारणाहोमात्रं विवक्षितम् । ‘पारणाहे पूर्वरात्रे घंटादीन्वादेन्मुहुः’ इति  
 रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः । अत्रैकादशीद्वादश्योर्दशभेदेन व्यवस्था ॥ इदं च मल-  
 मासे न कार्यम् । ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्’ इति कालादर्शे निषे-  
 धात् ॥ यद्यपि ‘एकादश्यां तु गृहीयात्संक्रान्तौ कर्कटस्य च ॥ आषाढ्यां वा  
 नरो भक्त्या चातुर्मास्यव्रतक्रियाम्’ इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तम् ॥ तदपि मल-



मासे सति द्रष्टव्यम् । 'मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत् ॥ द्विराषा-  
ढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे' इति तत्रैव मोहचूलोत्तरोक्तेः । अत्रैव  
चातुर्मास्यव्रतारंभ उक्तो भारते—'आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।  
चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किञ्चिन्नियतो नरः' इति ॥ अस्य नित्यत्वं तत्रैवोक्त-  
म् । 'वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत् केनचिन्नरः । व्रतेन नो चेदामोति कि-  
ल्बिषं वत्सरोद्भवम् ॥ असंभवे तु लार्केऽपि कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः' इति । तेनाषाढ-  
शुक्लैकादश्यां द्वादश्यां पौर्णमास्यां वाऽऽरम्भः । समाप्तिस्तु कार्तिकशुक्लद्वादश्या-  
मेव । तदुक्तं हेमाद्रौ भारते—'चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः ॥ का-  
र्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्' इति ॥ अस्यारम्भः शुक्रास्तादावपि  
कार्यः । 'न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः ॥ खंडत्वं चिंतयेदादौ  
चातुर्मास्यविधौ नरः' इति हेमाद्रौ वृद्धगार्ग्योक्तेः ॥ इदं च द्वितीयाधारम्भावि-  
षयम् । प्रथमारम्भस्तु न भवत्येव । आशौचमध्येऽपि द्वितीयाधारम्भो भवति ।  
'अशुचिर्वाशुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् ॥ व्रतमेतन्नरः कृत्वामुच्यते सर्व  
पातकैः' इति भार्गवार्चनदीपिकायां स्कांदोक्तेः । 'आरब्धे सूतकं न स्यादनार-  
ब्धे तु सूतकम्' इति विष्णुवचनाच्च ॥ यत्तु 'असंक्रान्तं तथा मासं देवे पित्र्ये च  
कर्मणि ॥ मलमासमशौचं च वर्जयेन्मतिमात्ररः' इति हेमाद्रौ चातुर्मास्यप्रक-  
रणे भविष्यवचनं तत् पूषानुमन्त्रवदसंबद्धं मध्येऽपठितमिति ज्ञेयम् । अन्य-  
था पित्र्यस्य पूर्वोक्तस्य विवाहादेश्च चातुर्मास्येव्रते कः प्रसंगः । प्रकरणनिवे-  
शोऽपि वा प्रथमारम्भाविषयं ज्ञेयम् ॥ केचित्तु प्रतिवर्षं चातुर्मास्यव्रतप्रयोगाणां  
भिन्नत्वादाशौचादिपाते द्वितीयादिप्रयोगो न भवत्येव इत्याहुः ॥ तन्न ॥ 'प्रतिवर्षं  
च यः कुर्यादेवं वै संस्मरन् हरिम् ॥ देहांतेति प्रदीप्तेन विमानेनार्कवर्चसा ॥ मो-  
दते विष्णुलोके सौ यावदाभूतसंप्लवम्' इति हेमाद्रौ भविष्येवचनादित्यास्तां

१—इदं चेति ॥ निषिद्धस्यास्तादेः सामान्यतः प्रतिप्रसवे गौरवाद् द्वितीयाधारम्भपरत्वमि-  
त्यर्थः ॥ वस्तुतस्तु वर्षभेदेऽपि व्रतैक्ये मानाभावात् सर्वोऽपि प्रथमारम्भ एवेति ॥ अत एव  
बहुषु पुस्तकेषु 'इदं च—' इत्यादि पाठो न दृश्यते इति टीका ॥



विस्तरः॥ इदं च शिवभक्तादिभिरपिकार्यम् । शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गण-  
 नायके ॥ कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभागभवेत्' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ व्रत-  
 ग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्रौ भविष्ये—'महापूजांततः कुर्याद्देवदेवस्य चक्रिणः ।  
 जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवे-  
 दिदम् । विबुद्धे च विबुद्धयेत प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः  
 पूजयित्वा स्वयं नरः । प्रभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥  
 चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधि । इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु  
 मेच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । दिर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादा  
 त्व केशव ॥ गृहीतेस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत् ॥ तदा भवतु संपूर्णं  
 त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ गृहीतेस्मिन् व्रते देव यद्यपूणे मृतो ह्ययम् ॥ तन्मे भवतु  
 संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन' इति ॥ तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिच-  
 र्यायां च भविष्ये—'श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा । दुग्धमाश्वयुजे  
 मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति ॥ स्कान्देऽपि चातुर्मास्यकल्पे—'चत्वार्येतानि  
 नित्यानि चतुराश्रमवर्णिनाम् । प्रथमे मासिकर्तव्यं नित्यं शार्कं व्रतं नरैः ॥ द्वितीये  
 मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम् ॥ पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थेऽपि निशामय ।  
 द्विदलं बहुबीजं च वृन्ताकं च विवर्जयेत् ॥ नित्यान्येतानि विघ्नेभ्यो व्रतान्या-  
 हुर्मनीषिणः । जम्बीरं राजमाषांश्च मूलकं रक्तमूलकम् । कूष्माण्डं  
 चक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः' ॥ तथा—'विशेषाद्ददरीं धात्रीं कूष्माण्डं  
 तिन्रिडीं त्यजेत् । जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथंचित् कायशोधनम्' इति ॥ ती-  
 र्थसौख्ये स्कान्दे—'वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते वै जनार्दने । मंचखड्गादिशयनं  
 वर्जयेद्भक्तिमान्नरः ॥ अनृतौ वर्जयेद्भार्यां मांसं मधु परौदनम् । पटोलं मूलकं  
 चैव वृन्ताकं च न भक्षयेत् ॥ अभक्ष्यं वर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम् । राजमाषा  
 न् कुलित्थांश्च आशुधान्यं च संत्यजेत् ॥ शाकं दधि पयोमाषान् श्रावणादिषु  
 संत्यजेत्' ॥ अत्र त्यजेदिति वर्जनसंकल्परूपः पर्युदासो ज्ञेयः । व्रतोपक्रमात् ॥

१-शाकवर्जनसंकल्पः ।



अत्रकेचित् 'छाकाख्यपत्रपुष्पादि' इत्यमरकोशस्य शक्यतेऽशितुमनेनेतिशा-  
 क इति क्षीरस्वामिना व्याख्यानात् व्यञ्जनमात्रस्य निषेधमाचक्षते ॥ अन्येतु  
 शाकशब्दस्य पत्रादिदशविधशाके योगरूढत्वात् योगाच्चरूढेर्बलीयस्त्वात्सू-  
 पादीनामपि त्यागापत्तेश्च तत्प्रत्याचक्षते ॥ तेन 'मूलपत्रकरीराग्रफलकांडाधि-  
 रूढकाः । त्वक्पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्' इति क्षीरस्वामिनो  
 क्तस्य शाकस्य निषेध इति ॥ अधिरूढकः अंकुरः ॥ वस्तुतस्तु 'तत्तत्कालोद्भवाः  
 शाकावर्जनीयाः प्रयत्नतः । बहुबीजमबीजं च विकारिं च विवर्जयेत्' इति भवि-  
 ष्यवचनात्तत्कालोत्पन्नानां दशविधशाकानां निषेधः । अत्र तत्तत्कालोद्भवजा-  
 तिः विवक्षिता । तेनातपादिशोषितानां वर्षातरोद्भवानामपि निषेधः । अत्र  
 तत्तत्कालोद्भवत्वमात्रं विवक्षितं न तु तन्मात्रकालोद्भवं गौरवात् । तेना-  
 न्यकालोद्भवानां तत्कालोद्भवानां च बिम्बादीनां निषेधः । अत्र तत्तत्कालोद्भवा इति  
 वीप्सावशात् स्वस्वकालोद्भवानां सर्वेषां निषेध इति निष्कर्षः । बहुबीज-  
 मित्यनेकबीजमिति केचित् । इतरावयवापेक्षया बीजावयवायत्रबहवस्तदित्य-  
 न्ये ॥ अबीजं कंदलादि ॥ वस्तुतस्तु इदं महानिबन्धे स्वभावान्निर्मूलमेव ॥  
 आचारप्रदीपे--'वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वौ दुम्बरभिस्सटाः । उदरे यस्य  
 जीर्यते तस्य दूरतरोहरिः' ॥ तथा परार्के देवलः--ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमा-  
 मिषवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः 'आमिषानि चोक्तानि  
 रामार्चनचंद्रिकायां पाद्मे--'प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम् ॥ अय-  
 ज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् । दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामिषम् ॥  
 रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं सुप्ते देवे विवर्जयेत्' । पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये 'गोच्छागीम  
 हिषीदुग्धादन्यद्दुग्धादि चामिषम् । धान्ये मसूरिकाः प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं  
 तथा ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा । ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं  
 पल्वलसंस्थितम् ॥ आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः' ॥ तथा

१--भिस्सटा दग्धान्नम् । भीस्सटेति पाठे--भीस्सटं श्लेष्मातकमिति धन्वन्तरिनिघण्टुः  
 इति टीका ॥



‘निष्पावान्नराजमाषांश्च मसूरं संधितानि च ॥ वृन्ताकं च कलिङ्गं च सुप्ते देवे  
विवर्जयेत् ॥ संधितानि लवणशाकादीनि तत्रैव विष्णुधर्मैः चतुर्ष्वपीह मासेषु  
हविष्याशी न पापभाक् ॥ हविष्याणितु पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये हैमन्तिकं  
सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः । कलायकं गुनीवारवास्तुकं हिलमोचिका  
षष्टिका कालशाकं च मूलकं केमुकेतरम् ॥ कंदः सैधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी  
पयोनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकि । पिप्पली जीरकं चैव नागरं च तिल-  
णी ॥ कदली लवली धात्रीफलान्यगुडमैक्षवम् । अतैलपक्कं मुनयो हविष्या  
णि प्रचक्षते ॥ इति ॥ सितास्विन्नं अनूष्मपक्कं धान्यं च तंदुलाः ॥ केमुकं केमुत  
इति प्राच्येषु प्रसिद्धः कंदः ॥ ‘कलायस्तु सतीनकः’ इत्यमरः ‘बटुरी’ इति  
प्रसिद्धं धान्यं । मदनरत्नेष्वेवम् ॥ अगस्तिसंहितायां हैमन्तायुक्त्वा  
‘नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा । आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ।  
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्वते बुधाः’ ॥ अन्यान्यपि व्रतान्युक्तानि हेमाद्रौ  
भविष्ये—‘स्त्री वा नरो वा मद्रक्तो धर्मार्थं सुदृढव्रतः ॥ गृह्णीयान्नियमाने तान्  
दन्तधावनपूर्वकान् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्तृणां पृथक् पृथक् ॥  
मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ तैलस्य वर्जनाद्राजन् सुन्दरांगः प्रजा  
यते ॥ कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते ॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्र-  
ह्मपदमाप्नुयात् । तांबूलवर्जनाद्भोगी रक्तकंठश्च जायते ॥ घृतत्यागाच्च लावण्यं  
सर्वस्निग्धतनुर्भवेत् । शाकपत्राशनाद्भोगी अपक्वादोऽमलो भवेत् ॥ भूमौ प्रस्तर-  
शायी च विप्रो मुनिवरो भवेत् । एकांतरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ धारणाच्च  
खरोष्णां च गंगास्नानफलं लभेत् । मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञास्खलिता भवेत् ।  
भूमौ भुंक्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । प्रदक्षिणशतं यस्तु करोति  
स्तुतिपाठकः । हंसयुक्ताविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ अयाचितेन प्राप्नोति  
पुत्रान् धर्म्यान् विशेषतः । षष्ठान्नकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेदिति ॥ पर्णेषु  
यो नरो भुंक्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् । गुडवर्जी नरो दद्यात्तद्धृतं ताम्रभाजनम् ॥  
सहिरण्यं नरश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः । सुप्ते देवे तु यो विष्णोः शिवस्याङ्ग



णमर्चयेत् ॥ पंचवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा । स याति रुद्रलोकं  
 हि गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ अथैषां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि । 'एकभुक्तव्रते  
 दंपती संपूज्य धेनुर्देया । नक्ते वस्त्रयुगम् । एकांतरोपवासे गौः । भूशयने शय्या  
 षष्ठकालभोजने गौः । ब्रीहिगोधूमादित्यागे हैमव्रीह्यादि । कृच्छ्रे गोयुग्मम् ।  
 शाकाशने गौः पयोव्रते च । दधिमधुघृतव्रतेषु वासो गौश्च । ब्रह्मचर्ये स्वर्ण-  
 मूर्तिः । ताम्बूलव्रते वासोयुगम् । मौने घृतकुम्भो वस्त्रयुगं घण्टा च ॥ देवाग्रे  
 रंगमालिकाकरणे धेनुर्हैमपद्मं च । दीपिकाव्रते दीपिका वासोयुगं च । भूमि-  
 भोजने पर्णभोजने च कांस्यपात्रं गौश्च । चतुष्पथदीपे गोशसे च गोवृषौ ।  
 प्रदाक्षिणशते वस्त्रम् । अनुक्तेषु स्वर्णं गौश्च' इत्यादि हेमाद्रौ ज्ञेयम् । तथा च  
 भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे- 'शयनीबोधिनीमध्ये शमीदूर्वापमार्गकैः भृंग-  
 राजेन देवास्तु नार्चयित कदाचन' ॥ हेमाद्रौ पाद्मे- 'आषाढादिचतुर्मासान  
 भ्यङ्गं वर्जयेन्नरः ॥ समाप्तौ च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुतं घटम् ॥ आषाढादिच-  
 तुर्मासं वर्जयेन्नखकृन्तनम् ॥ वृंताकं गृञ्जनं चैव मधुसर्पिर्घटोचितम् ॥  
 कार्तिक्यां तदपुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्' ॥ अन्यान्यपि केशकर्तनादिव-  
 र्जनसंकल्पानुरूपाणि पृथ्वीचन्द्रोदये ज्ञेयानि । टोडरानन्दे स्कान्दे-  
 'एकान्तरं द्वयन्तरं वा कुर्यान्मासोपवासकम् । अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथा-  
 पि वा' ॥ अत्रैव तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायां भविष्ये- 'शयन्यां  
 चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च । शंखचक्रविधानेन वह्निपूतो  
 तप्तमुद्राधारणम् भवेन्नरः' इति । "अतस्ततनूर्न तदामो अश्नुते" इति ऋग्वेदात् स  
 होवाच याज्ञवल्क्यस्तस्मात्पुमानात्महिताय हरिं भजेत् । सुश्लोकमौलेर्वर्मा-  
 ण्यग्निना संदधते इति शतपथश्रुतेः । प्रतद्विष्णो अब्जचक्रे सुतप्ते जन्मांभोधी  
 तर्तवे चर्षणींशः ॥ मूले बाह्वोर्दधन्ये पुराणा तु लिंगान्यंगेतप्तायुधान्यर्पयंत  
 इतिसामवेदात् ॥ 'अग्निहोत्रं तथा नित्यं वेदस्याध्ययनं तथा । ब्राह्मणस्य तथै-  
 वेदं तप्तमुद्रादिधारणम्' इति पद्मपुराणाच्चेति ॥ 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रा  
 वायदि वेतरः । शंखमुद्रांकिततनुस्तुलसीमञ्जरीधरः ॥ गोपीचन्दनलिप्तांगो ह-



दृष्टेत्तदधं कुतः' ॥ इति काशीखण्डात् । तत्प्रकारस्तुरामार्चनचन्द्रिकातो  
 ज्ञेयः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयादयस्तु—'यस्तु संतप्तशंखादिलिङ्गचिह्नतनुर्नरः ॥ स  
 सर्वयातनाभोगी चांडालो जन्मकोटिषु ॥ द्विजं तु तप्तशंखादिलिङ्गाङ्किततनुं नरः  
 संभाष्यरौरवं याति यावदिंद्राश्वतुर्दशेति' बृहन्नारदीयोक्तेः ॥ 'शंखचक्रायङ्गुनं  
 च गीतनृत्यादिकं तथा ॥ एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्विजन्मनः । शंखचक्रे  
 मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥  
 यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु । तथा चक्रांकितो विप्रः सर्वकर्मसु गार्हितः' ।  
 तथा—'शिवकेशवयोरङ्गाच्छूलचक्रादिकान् द्विजः ॥ न धारयेत् मतिमान्वै  
 दिके वर्त्मनि स्थितः' इति विष्ण्वाश्वलायनादिवचनात् ऋग्वेदादिश्रुतीनामन्या  
 र्थत्वादन्यश्रुतीनां चासत्त्वात् चक्रादिधारणं शूद्रविषयमित्यूचुः ॥ नृत्यं चोद-  
 रार्थनिषिद्धमिति श्रीधरस्वामीयद्यपि निषेधस्य प्राप्तिसापेक्षत्वाद्विधिं विना  
 चतदयोगादुपजीव्यविरोधेन 'न तौ पशौ करोति' इति वद्विकल्पो युक्तस्तथापि  
 एकजातेरयं धर्म इत्यनेन सामान्यवाक्यानामुपसंहारात् द्विजातिनिषेधो नित्या-  
 नुवाद इति तदाशयः ॥ अत्र शिष्टाचार एव संकटपाशानिःसरणसृणिरिति संक्षेपः  
 आषाढपौर्णमास्यां कोकिलव्रतमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये—'आषाढपौर्ण  
 मास्यां तु संध्याकाले ह्युपस्थिते ॥ संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे  
 कोकिलव्रतम्  
 प्रत्यहं ह्यहम् ॥ स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती ॥  
 भौक्ष्यामि नक्तं भूशय्यं करिष्ये प्राणिनां दयाम्' इति ॥ अस्य नक्तव्रतत्वात्  
 सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ अत्रैव शिवशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ वास-  
 नपुराणे—'पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे ॥ वैय्याघ्रे  
 शिवशयनोत्सवः  
 च जटाभारं समुद्ग्रथ्याहि वर्ष्मणा' । मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ इयं च  
 प्रदोषव्यापिनी । अत्रैव व्यासपूजोक्ता । तत्र त्रिमुहूर्ताचेत् परै-  
 व्यासपूजा  
 वेति संन्यासपद्धतौ 'त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्वक्षौरप्रणामयोः' इति  
 वचनात् । इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते  
 निर्णयसिन्धौ आषाढः समाप्तः ॥ कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशदंडाः पुण्यकालः ।



सूर्योदयोत्तरं संक्रमे तु परत एव पुण्यं रात्रौ तु निशीथात् प्रा-  
 कर्कसंक्रातिः क् परतश्च संक्रमेऽपराकेहेमाध्वनन्तभट्टादिमते पूर्वोत्तरादिनयोः  
 पञ्चनाड्यः पुण्यकालः । 'धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वापर-  
 विभागेन रात्रौ संक्रमते रविः ॥ दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तुतदापुण्यतमाः स्मृताः ॥  
 उदयेपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि' इति स्कांदोक्तेः ॥ पूर्वापरविभागेनेति  
 मकरऋकभिन्नसंक्रांतिपरम् वक्ष्यमाणवचोविरोधादित्युक्तं मदनरत्ने । तेना-  
 यमर्थः-रात्रौ पूर्वभागे मकरे उदये पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । रात्रावपरभागे  
 कर्कटोदिनातिपञ्चनाड्यः पुण्यकालः । विषुवतोस्तुपूर्वदिने पञ्चापरदिनेचपञ्चेति  
 वाक्यान्तरानुरोधात् । तेन हेमाद्रिमाधवयोः सर्ववचनानां चाविरोधः । माधव  
 मते तु 'अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रातौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते  
 रविः' इति वृद्धगार्ग्योक्तेः । 'मिथुनात् कर्कसंक्रांतिर्यदिस्यादंशुमालिनः ॥ प्रभाते  
 वा निशीथे वा तदा पुण्यं तु पूर्वतः' इति भाविष्योक्तेः । पूर्वदिन एव पुण्यं दक्षिणा  
 त्यास्त्वेतदेवादियन्ते । अत्र रात्रावपि स्नानादिभवतीत्युक्तं प्राक् । अत्र दानोप-  
 वासादि पूर्वमुक्तम् । तथा कर्के केशादिकर्तनं निषिद्धम् कुम्भे कर्कटके वापि  
 कन्यायां कार्मुकेरवौ । रोमखण्डं गृहस्थस्य पितृन् प्राशयते यमः' इति सुमन्तुवच-  
 नादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥ अथ नदीनां रजोदोषः । हेमाद्राव-  
 त्रिः- 'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वानद्यो रजस्वलाः ॥ न स्नानादीनि क-  
 नदीनारजोदोषः माणि तासु कुर्वीत मानवः' ॥ इदं च क्षुद्रनदीषु । सिंहकर्कटयो-  
 र्मध्ये सर्वानद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगा' इति व्याघ्रो-  
 क्तेः । मात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम् । 'यावन्नोदेति भगवान् दक्षिणाशा  
 विभूषणः । तावद्रजोमहानद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः' ॥ करतोया अल्पतो-  
 याः । तथा कात्यायनः- 'याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि । तासु  
 प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे ॥ इदं चापदि । स्मृतिसंग्रहे- 'धनुः सहस्राण्य

१-गृहस्थेति वण्यादिव्युदासः । जीवत्पितृकस्यापि व्युदास इति केचित् ॥ उपरते लक्ष-  
 णापत्त्या तस्य न व्युदास इत्यन्ये । 'धनुः कुम्भौ द्विधा कृत्वा पूर्वभागं परित्यजेत् ॥ कर्कट-  
 स्यान्तिमं भागं कन्यां तु सकलां त्यजेत्' इत्यपि केचित् । इति टीका ॥



ष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते । न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः' ॥  
मदानदीषु तु भविष्ये उक्तम्—'आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः ।  
त्रिदिनंचचतुर्थेहि शुद्धा स्युर्जाह्नवी यथा' । महानद्यश्च ब्राह्मे—'गोदावरी भी-  
मरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका । तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥  
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च विहस्ता च विन्ध्य-  
स्योत्तरसंस्थिताः ॥ द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः' ॥ मदनरत्ने पुरा-  
णान्तरे—'महानद्यो देविका च कावेरी वंजरा तथा ॥ रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः  
कर्कटादौ व्यहं नृप' ॥ कात्यायनः—'कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासरत्र-  
यम् ॥ चन्द्रभागा सती सिन्धुः शरयू नर्मदा तथा' । इदं गंगाद्यतिरिक्तविषयम् ।  
'गंगा च यमुना चैव पुक्षजाता सरस्वती । रजसा नाभिभूयंते ये चान्ये नद-  
संज्ञिताः ॥ शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः । शतद्रूश्च नदाः सप्त  
पावनाः परिकीर्तिताः ॥ इति देवलोक्तेः ॥ यत्तु—'प्रथमं कर्कटे देवि  
व्यहं गङ्गा रजस्वला' इत्यादिवचनम् तज्जाह्नवी भिन्नगोदावर्यादिगङ्गान्तरपर-  
मिति मदनरत्ने । अन्ये त्वन्तर्गत रजोविषयम् । 'गङ्गाधर्मद्रवः पुण्या यमुना  
च सरस्वती ॥ अन्तर्गत रजोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः' इति निगमोक्तेः ।  
तीरवासिनां तु रजोदोषो नास्ति । 'न तु तत्तीरवासिनाम्' इति निगमोक्तेः । रजोदुष्ट-  
मपि जलं गङ्गाजलयोगे पावनम् । 'गङ्गाम्भसा समायोगाद्दुष्टमप्यम्बु पावनम्'  
इति मात्स्योक्तेः ॥ नूतनकूपादौ तु योगयाज्ञवल्क्यः—'अजा गावो महिष्यश्च  
ब्राह्मणी च प्रसूतिका । भूमेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुद्ध्यति' इति ॥ क-  
चित्त्वदोषमाह व्याघ्रपादः—'अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम् ।  
रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति' ॥ गौडारस्तु—'अन्येनापि समुद्धृते'  
इति द्वितीयपाठे पाठः । तेनोद्धृते न दोषः । तथा च तासु स्नानं नेति  
प्रागुक्तमित्याहुः । वसिष्ठोऽपि—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ॥  
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते' इत्यलं विस्तरेण ॥ श्रावणशुक्ल-  
श्रा० शु० ३ तीया मधुसूतारण्या मधुसूता गुर्जरेषु प्रसिद्धा ॥ सा परयु-



श्रा०शु०४

ता ग्राह्येति दिवोदासः ॥ श्रावणशुक्लचतुर्थी पूर्वयुता 'मातृवि-  
द्वा गणेश्वर' इत्यादिवचनात् । श्रावणशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ परैवेति सा-  
मान्यनिर्णये उक्तम् ॥ चमत्कारचिन्तामणौ- 'पञ्चमी नाग-  
नागपञ्चमी पूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता ॥ तस्यां तु तुषिता नागा इतरा  
सचतुर्थिका' । इति ॥ 'श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी । तां परित्यज्य  
पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता इति' मदुनरत्नेभिधानाच्चातेन परैवेति । अत्र विशेषः  
हेमाद्रौ भविष्ये- 'श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप । द्वारस्योभयते-  
लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ॥ पूजयेद्विधिवद्दीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः । गन्धपु-  
ष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरःसराः ।  
न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित्' इति । श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतं  
प्रागुक्तम् । तक्रादीनां त्वनिषेधः । तत्र दधिव्यवहाराभावादिति वक्ष्यते ।

श्रावणशु० १२  
दधिव्रतम्

अत्रैव विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये- 'श्राव-  
णस्य सिते पक्षे कर्कटस्य दिवाकरे । द्वादश्यां वासुदेवाय पवि-  
त्रारोपणं स्मृतम् ॥ द्वादश्यां श्रावणे वापी पञ्चम्यामथ वा द्विज ।  
पवित्रारोपणम् आनुकूल्येषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा' इति शिवे तु तत्रैव  
कालोत्तरे- 'आषाढान्ते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां  
पक्षयोरुभयोः समम्' इति ॥ अन्यदेवतानां तु वक्ष्यते । अधिवासनं तु दीपि-  
कायाम् । 'मोदोहान्तारिते काले पूर्वद्युर्वाधिवासनम्' इति । गौणकालो रा-  
मार्चनचंद्रिकायाम्- 'पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेद्यदि कार्तिक्यवधि  
शुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारद' ॥ 'हेमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः । कुशैः  
काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥ कृत्वा त्रिमुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य  
शोधयेत् । तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ठ्या सह शतैस्त्रिभिः ॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां  
शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् । साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् । साधारण-  
पवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्य-  
मम् ॥ कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम् ॥ षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश



द्वादशेति च केचन ॥ चतुर्विंशद्वादशाष्टावित्येके मुनयोविदुः' ॥ हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये त्वन्यथोक्तम्—'अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशति रेवाथ ज्येष्ठमध्यकर्णायसम् ॥ अधमं नाभिमात्रं स्याद्दूरमात्रं द्वितीयकम् । प्रलम्बतो जानुमात्रं प्रतिमायां निगद्यते' ॥ शिवपवित्रं तु तत्रैवज्ञैवागमे—'एकाशीत्यथ वा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया । पञ्चाशता वा कर्त्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥ द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि वा । लिङ्गाविस्तारमानानि च तुरङ्गुलकानि च' इति ॥ अधिकारिणोपि तत्रैव विष्णुरहस्ये—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च । स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् ॥ तथा—अतोदेवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् ॥ शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद्धरिम्' ॥ एतच्च नित्यम्—'न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम । तस्माद्रक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः' इति तत्रैवोक्तेः ॥ देवताविशेषेतिथयोपि तत्रैव । धनदश्च रमा गौरी गणेशः सोमराङ्गुहः । भास्करश्चण्डिका न्या च वासुकिश्च तथर्षयः । चक्रपाणिर्ह्यनङ्गश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च ॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥ यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथयः श्रावणस्य च इति ॥ यथा हेमाद्रौ कालोत्तरे—चतुर्दश्यामथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत् इति ॥ तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायां यथा—'ततस्तानि पवित्राणि वैणवे पटले शुभे । संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय पुरतो न्यसेत् ॥ अरत्निसंमितां वेणीं कुर्यात् षट्त्रिंशताकुशैः । क्रियालोपविधातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ॥ मयैतत् क्रियते देव तव तुष्टयै पवित्रकम् । न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन देव त्वां तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्ब्रतघातकाः ॥ अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् ॥ तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोस्तु ते ॥ इति देवं संप्रार्थ्यकुंभं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे ॥ 'ॐ सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भो ॥ विष्णुलोकात्पवित्राय आगच्छे-



ह नमोस्तुते' ॥ अनेन मूलेन चावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान्  
सत्त्वरजस्तमांसि वेदत्रयं वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरु  
द्रान् ग्रन्थिषु क्रिया पौरुषी वीरा विजया ईशा अपराजिता मनोन्मनी जया  
भद्रा मुक्तिश्चेत्यावाह्य संपूज्य। ॐ संवत्सरकृतार्चायाः संपूर्णफलदोपि यत् ॥  
पवित्रारोपणायैतत्कुरु कंथर ते नमः॥विष्णुतेजोद्भवंस्म्यंसर्वपातकनाशनम् ॥  
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् इति देवकरे मङ्गलसूत्रं बध्वा देवं संपूज्य  
निमन्त्रयेत् । 'आमन्त्रितोसि देवेश पुराण पुरुषोत्तम ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्या-  
मि सान्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥ प्रातस्त्वां  
पूजयिष्यामि सन्निधौ भवतेनमः ॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत् पवित्रकम् ॥  
सर्वथासर्वदा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीदमे' ॥ ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रात्रौ जागरणं  
कुर्यादिति अधिवासनम् ॥ प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धदूर्वाक्षतयुतं पवित्रमा-  
दाय । 'ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफ-  
लप्रदम् ॥ पवित्रकं कुरुष्वाय यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ शुद्धो भवाम्यहं देव त्व-  
त्प्रसादान्महेश्वर' ॥ मूलसंपुटितेनानेन दत्त्वांगदेवताभ्योनाम्नासमर्प्यमहानैवेद्यं द-  
त्त्वा नीराज्यमणिविद्रुममालाभिरित्यादिभिर्दमनारोपणोक्तमन्त्रैः प्रार्थयित्वा ।  
गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वास्वयं धारयेत् । तथा—मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारये-  
त्तथा । देवे तं सूत्रसंदर्भं देशकालविवक्षया ॥ अकरणेतु तत्रैवा 'पवित्रारोपणं का-  
ले न करोति कथंचन ॥ तदायुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः' इत्युक्तम् । इति  
पवित्रारोपः । श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुताग्राह्या ॥ अत्र वक्तव्यो विशेषश्चैत्रच-  
तुर्दश्यामुक्तः ॥ अथोपाकर्म । तत्र बह्वृचानां प्रयोगपरिजाते शौनकः 'अथा-  
तः श्रावणेमासे श्रवणक्षयुते दिने । श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्च-  
उपाकर्म म्यां हस्तसंयुते ॥ दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम् ॥ अ-  
ध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रौपासनवह्निना' इति ॥ अत्र पौर्णमास्युपसंहारन्याये-  
न यजुर्वेदिपरेतिहेमाद्रिः । अत्र हस्तयुक्ता पञ्चम्युक्ता । कारिकापि—'तन्मासे  
हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वातदिष्यत' इति केवलपञ्चम्यां हस्तयुतेन्यस्मिन् दिने' इति



तु हेमाद्रिः । उपासनवह्निनेति तु कर्मद्वयमिदं के चिन्नौकिकाग्रौ प्रकुर्वत इति ।  
कारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्पते ॥ तत्र 'अध्याप्यैरन्वारब्ध' इति सूत्रात्  
सशिष्यत्वेतदधिकारिकस्याचार्याग्रौ 'नान्यस्याश्रावन्यो जुहुयात्' इति निषेधा-  
लौकिक एवातदभावे तु स्मार्ते' इति निगर्वः । यद्यपि दीपिकायाम्—वेदोपाकृति-  
रोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे इति शुक्लपक्षोपि सर्वेषां मुख्यकालत्वेनोक्तः ।  
वक्ष्यमाणगार्ग्यवचनेन छांदोगान् प्रतिविहितस्य तस्याविरोधिनः सर्वान् प्रति-  
प्रवृत्तिश्च । तथापि श्रावणमाससंबन्धस्य सूत्रोक्तत्वात् । कृष्णपक्षेपि कार्यमिति  
वृद्धाः । तथाच सूत्रम्—'अथातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन  
श्रावणस्य पंचम्यां हस्तेन वा' । अत्र श्रवणो मुख्योन्ये गौणाः । तस्याहर्द्वय-  
योगे हेमाद्रौ व्यासः—धनिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत् ॥ तत् कर्म  
सकलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम् ॥ श्रवणेन तु यत् कर्म ह्युत्तराषाढसंयुतम् ॥ संव-  
त्सरकृतोऽध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति इति ॥ गार्ग्योपि—उदयव्यापिनीत्वेव वि-  
ष्णवर्क्षे चंद्रिकाद्वयम् ॥ तत्कर्म सकलं ज्ञेयं तस्य पुण्यं त्वनन्तकम् ॥ इति  
पूर्वेद्युत्तराषाढयोगे परेद्युः श्रवणाभावे घटिकाद्वयन्यूने वा पञ्चम्यादौ का-  
र्यम् । नतु पूर्वविद्धायां संगवमात्रे । अपवादाभावात् ॥ किंच परेद्युः संग-  
वास्पर्शे निषिद्धपूर्वाग्रहणे किं मानम् । संगववाक्यं श्रवणवाक्यं चेति चेत्  
तर्हि ब्रीहिवाक्यादश्वशफवाक्याच्च माषमिश्राणामप्युपादानं स्यादिति महत्पा-  
ण्डित्यं निषेधानुप्रवेशान्नैरपेक्ष्यबाधा नेति चेत् । इहापि तुल्यम् ॥ एतेन पर्वा-  
प्यौदयिकं व्याख्यातं निषेधानुप्रवेशस्योभयत्र तुल्यत्वात् । श्रवणयुतदिने  
संक्रात्यादौ तु—'उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः ॥ ग्रहसंक्रातियुक्तेषु  
हस्तश्रवणपर्वसु' इति । हेमाद्रौ निषेधात् पञ्चम्यादयो ग्राह्याः । मदनरत्ने  
पि—'यदि स्याच्छ्रावणं पर्वग्रहसंक्रान्तिदूषितम् ॥ स्यादुपाकरणं शुक्लपञ्चम्यां  
श्रावणस्य तु' ॥ स्मृतिमहार्णवे—'संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते ।  
तन्मासे हस्त युक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते' ॥ तत्रापि प्रयोगपारिजाते  
वृद्धमनुकात्यायनौ—'अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणं तदा ॥ उपाक-

१ अथ काचित्कः पाठः इति टीका ॥



मनकुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत्' इति ॥ मदनरत्ने गाग्योपि—'यद्यर्धरात्रादर्वाक्  
तु ग्रहः संक्रम एव च ॥ नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेपि वा ॥ एतेन ग्रहण  
संक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे एव निषेधो नार्वागिति मूर्खशङ्का परास्ता । ग्रहवि-  
शिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेधे तद्युतोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशः  
वाक्यभेदात् । पञ्चम्यां संक्रान्तौ निषेधाभावापत्तेश्च । तेनार्धरात्रात् पूर्वं ग्रह-  
संक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधो न तद्योगे एवायत्तु—'प्रतिपन्मिश्रिते नैव नोत्त-  
राषाढसंयुते ॥ श्रवणे श्रावणं कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते' इति । प्रतिपन्मिश्रनिषे-  
धकं वचनं तन्निर्मूलम् । अत्रच । 'वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ ।  
उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके' इति वचनं देशान्तरविषयम् । 'नर्मदो-  
त्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके । कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे' इति  
बृहस्पतिवचनादिति प्रयोगपारिजातेनोक्तम् ॥ पराशरमाधवीयेप्येवम् ।  
सामगानां सिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषय इदं पुरोडाशचतुर्धाकरणवदुपसंह्रियते ।  
तेषामेव देशव्यवस्था नतु बव्हृचादिपरम् । तेषां सूत्रे चांद्रश्रावणोक्तेः ॥  
सौरैः पञ्चम्ययोगात् इति तु वयं पश्यामः ॥ यत्तु कालादर्श—अध्यायानामुपा-  
कर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बव्हृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोर्को भवेद्यदि ।  
सहस्तशुक्लपञ्चम्यां वातग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्रौष्ठपद्यां श्रवणेन व्यवस्थया ।  
इति ॥ तन्मूलालेखनाच्चिन्त्यम् । श्रावणे सस्यानुद्रमादौ तु बव्हृचपरिशिष्टे  
'अवृष्ट्यौषधयस्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत् । तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन  
तदिष्यते' इति ॥ 'तत्राप्यनुद्रमे तु कुर्यादेव तद्वार्षिकमित्याचक्षते' इति सूत्रात् ।  
वर्षतौ भवं वार्षिकम् ॥ एतच्च शुक्रास्तावपि कार्यम् । 'उपाकर्मात्सर्जनं च प-  
वित्रदमनार्पणम्' इति दमनारोपे लिखितवचनात् । 'नित्ये नैमित्तिके जप्ये  
होमे यज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते' इति  
प्रयोगपारिजाते संग्रहोक्तेः । 'पर्वणि ग्रहणे सति पूर्वं त्रिरात्रादिवे-

१ तन्मूलालेखनात्सूत्रविरोधाच्च चिन्त्यम् । सूत्रे हि 'श्रवणस्य' इति चान्द्रमास  
एवोक्तो न सौरः । तस्य पञ्चम्यभावात् । श्रुतिलक्षणाभ्यामुभयपरत्वे वृत्तिद्वयविरोधा  
इति पुस्तकान्तरेऽधिकः पाठः ॥



धाभावं वक्तुमिदम् ॥ तेन पर्वणि ग्रहणेपि चतुर्दश्यां श्रवणे कार्यमिति हेमाद्रिः ।  
 अस्ते प्रथमारम्भस्तु न भवति 'गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्द्धकेपि वा ।  
 तथाधिमाससंसर्पमलमासादिषु द्विजे ॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाश-  
 कृत्' इति । तत्रैव कश्यपोक्तेः । अत्र प्रथमारम्भे वृद्धिश्राद्धं कुर्यादिति नाराय-  
 णवृत्तौ ॥ एतच्चाधिमासे न कार्यम् । 'उपाकर्म तथोत्सर्गः प्रसवाहोत्सवाष्टकाः ।  
 मासवृद्धौ परे कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम्' इति ज्योतिः पराशरोक्तेः ।  
 'उत्कर्षः कालवृद्धौ स्यादुपाकर्मादिकर्मणि । अभिषेकादिवृद्धीनां न तूत्कर्षोयु-  
 गादिषु' इति कात्यायनोक्तेः ॥ यत्तु—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः'  
 इति ऋष्यशृङ्गवचनम् । तत्सामगविषयम् । तेषां सिंहार्क एवोक्तेः ॥ एतच्चा-  
 पराह्णे कार्यम् ।—'उपाकर्मापराह्णे स्यादुत्सर्गः प्रातरेव तु' इति । 'अध्याया-  
 नामुपाकर्म कुर्यात्काले पराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः'  
 इति च हेमाद्रौ गोभिलोक्तेः । वस्तुतस्तु 'भवेदुपाकृतिः पौर्णमास्यां पूर्वाह्ण  
 एव तु' इति प्रचेतसो वचनात् । पूर्ववाक्यं सामगविषयम् । तेषामपराह्ण  
 एवोक्तेरित्यनुपदं वक्ष्यते ॥ दोषिकापि—'अस्य तु विधेः पूर्वाह्णकालः स्मृतः'  
 इति ॥ याजुषास्तु पर्वणि कुर्युः तच्चापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्ववत्  
 'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणे तैत्तिरीयकाः ॥ बवृचाः श्रवणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिव  
 र्जिते' इति गार्ग्योक्तेः । 'संप्राप्तवाञ्छुतीर्ब्रह्मापर्वण्यौदयिके पुनः ॥ अतो  
 भूतदिने तस्मिन्नापाकरणमिष्यते' इति कालिकापुराणाच्च ॥ 'अथ चेद्दोषसं  
 युक्ते पर्वणि स्यादुपाक्रिया । दुःखशोकामयग्रस्ता राष्ट्रे तस्मिन् द्विजातयः' इति  
 मदनरत्ने हेमाद्रौ गार्ग्येण दोषोक्तेः । अत्र शिगाभट्टीये विशेषः । 'श्रवणः  
 श्रावणं पर्व संगवस्पृग्यदा भवेत् । तदैवौदयिकं कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत्'  
 पराशरमाधवीयेपि गार्ग्यः—'श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात् परतो  
 यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत्' ॥ कर्मकालमाह  
 कालादर्शे निगमः—'श्रावण्यां प्रोष्ठपद्यां वा प्रतिपत् षण्मुहूर्तकैः । विद्धा  
 स्याच्छन्दसां तत्रोपाकर्मात्सर्जनं भवेत्' ॥ अत्र पौर्णमासी श्रव



णहस्तयोरुपलक्षणमातेन तावपि संगवस्पृशौ । 'उदये संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे ॥ कुर्युर्नक्षत्रपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात्' इति पृथ्वीचन्द्रः । तेनोदयसंगवोभयव्यापिनी मुख्या । परेद्युः संगवाभावे पूर्वद्युरुभयाभावे चैकैकसत्वे पूर्वद्युश्चतुर्दशीवेधनिषेधात्सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ताग्राह्या । न पूर्वा । संगवनिमित्तपूर्वविद्धापवादाभावात् । नान्यदौदयिकी इत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावात् । तेन भाद्रादौ कालान्तरे स्यान्नतु निषिद्धे नहि ब्रीह्यलाभे निषिद्धमाषग्रहणं युक्तम् ॥ अत एव परेद्युः संगवव्याप्तौ पूर्वविद्धानिषेधः । तदभावे तु न इति मूर्खव्यवस्थाप्ययुक्ता विधिवैषम्यात् । माषनिषेधेपि तथापत्तेश्च । पूर्वविद्धावचनसत्वे हि सा युज्यते । एवं श्रवणेपि ज्ञेयम् ॥ 'विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम्' इति पूर्वोक्तविरोधात् । तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदम् । तत्वंतु एतच्छ्रद्धाधिकपरमातेन यथाग्निहोत्रादौ सायंप्रातःकालबाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वानुष्ठानम् । यथा वा ब्रीह्यश्वशफाद्यभावे यागाक्षिप्तनिषिद्धवर्जद्रव्येण । तथात्र संगवाभावे निषिद्धवर्जकर्मपर्याप्तौदयिके कालान्तरे वानुष्ठानं न तु कदाचिन्निषिद्धे । अपवादाभावे उत्सर्गस्यैवप्राप्तेः । कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्नव्याप्तौ एकदेशस्पर्शेवा पूर्वेवेति हेमाद्रिः ॥ यदपि—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धाप्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्' इति । ब्रह्मवैवर्तम् ॥ तद्ब्रह्मपवित्रश्रवणकर्मादिदैवकर्मविषयम् इति हेमाद्रिः ॥ अतएव वचनात् कुलधर्मव्रतादावपि पूर्वैव ॥ मदरत्नेप्येवम् ॥ मदनपारिजातेपि पूर्वविद्धायां श्रावण्यां वाजसनेयिनामुपाकर्मैत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने तु—'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः' इति बह्वृचपरिशिष्टात् बह्वृचान् प्रति कर्मविधानार्थप्रवृत्तेः । तत्र तैत्तिरीयककर्मविध्ययोगात् पूर्वोक्तकालिकापुराणादौसामान्यतऔदयिकपर्वप्राप्तेस्तन्निषेधेन बह्वृचानां श्रवणविधिना तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात्तस्यच प्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्च यजुर्वेदिमात्रपरत्वात् सर्वयजुर्वेद्युपलक्षणार्थं अवयुत्यानुवादो वा नतु विधायकं येन विशेषविधिनोपसंहारः स्यात् । अनुवादत्वाल्लक्ष-



जा न दोषः । अन्यथा त्वौदयिकपर्वविशिष्टोपाकर्मोद्देशेन कर्तृविधौ कर्तृवि-  
शिष्टे वा औदयिकपर्वविधौ वाक्यभेदापत्तेः । तस्मात्तैत्तिरीयकपदाविवक्षया  
सर्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेव पर्वत्युक्तम् ॥ तन्न । न तावत् परिशिष्टे बव्ह-  
चान् प्रत्येवविधिः । 'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तत्वाष्ट्रकक्षसमन्वितम्' इत्यादितदुदाहृते  
एव परिशिष्टे वेदान्तधर्मविधीनां दर्शनात् । नाप्यनुवादोयं कालिकापुराणा  
त् बव्हचादीनामपितदापत्तेः । कुर्युरित्यस्यविधित्वेन तस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्रा-  
प्तानुवादित्वाच्च । नच तैत्तिरीयकाणां गृह्ये तद्विधिरस्ति । येनानुवादः स्यात्  
नच वाक्यभेदः । तैत्तिरीयकमात्रस्य कर्ममात्रस्य वा उद्देश्यत्वायोगेन हविरा-  
र्तिवदष्टवर्षब्राह्मणमुपनयीतेतिवच्चागत्याविशिष्टस्योद्देशत्वात् । अन्यथोत्तरार्धे  
बव्हचपदस्याप्यविवक्षापत्त्या श्रावणस्य सर्वसाधारण्यापत्तेः । तस्माद्धेमाद्रि-  
मतमेव युक्तम् इति दिक् ॥ इदं च शिष्यान्ध्यापयतः । आवसथ्येग्रौ  
अन्ध्यापयतो नाधिकार इति कर्कः ॥ श्रावण्यामपि ग्रहणादिदुष्टायां काती-  
यभिन्नैः प्रौष्ठपद्यां कार्यम् । तैस्तु श्रावणपञ्चम्याम्—'संक्रान्तिर्ग्रहणं वापि  
पौर्णमास्यां यदा भवेत् । उपाकृतिस्तु पञ्चम्यां कार्या वाजसनेयिभिः' इति  
स्मृतिमहार्णवे वाजसनेयिग्रहणात् इति हेमाद्रिः ॥ इदं च सूत्रोक्तकालपर-  
त्वात् बव्हचपरमपि सांख्यानैस्तु हस्ते कार्यम् । आपस्तम्बैराथर्वणैश्च प्रौष्ठ-  
पद्याम् ॥ यत्तुबौधायनः—'श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य'मित्यूचे  
तत् प्रौष्ठपद्यामपिदोषे आषाढ्यां कार्यमित्येवमर्थम् तच्छाखीयविषयं वा ॥  
सामगास्तु श्रावणे हस्तेकुर्युः 'बव्हचाः श्रावणे चैव हस्तर्क्षे सामवेदिनः' इति नि-  
र्णयामृते गोभिलोक्तेः । सोप्युत्तरः—'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रकक्षसम-  
न्वितम् । श्रावणं कर्म कुर्वीरन् ऋग्यजुःसामपाठकाः' ॥ इति मदनरत्ने परि-  
शिष्टोक्तेः ॥ गार्ग्योपि—'सिंहेरवौ तु पुष्यर्क्षपूर्वाह्नेऽविवरे बहिः । छन्दोगा मि-  
लिताः कुर्युरुत्सर्गस्वच्छन्दसाम् । शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्निकम्' इति  
अविवरे ग्रहादिदोषहीने । विचरेदिति पाठोऽज्ञानकृतः । पुष्यर्क्षे पूर्वाह्ने उत्सर्गः ।  
अपराह्निकमुपाकर्मेत्यन्वयः । अन्यस्तु विशेषः पूर्वमेवोक्तः । प्रयोगपा-



रिजाते गोभिलः— ‘उपाकर्मोत्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते ॥ धारणाध्य-  
यनाङ्गत्वाद्गृहिणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ उत्सर्जनं च वेदानामुपाकरणकर्म च ॥  
अकृत्वावेदजप्येन फलं नाप्नोति मानवः’ ॥ सर्वथालोपे तु कृच्छ्र उपवासश्च ।  
‘वेदोदितानां नित्यानाम्’ इति मनुना भोजनोक्तेः । एवमुत्सर्गेऽपि ॥ अथप्रसंगाद्  
त्रैवोत्सर्जनमुच्यते । तच्च पौषमासे रोहिण्यां तत्कृष्णाष्टम्यां  
उत्सर्जनम् वा कार्यम् । ‘पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ॥  
जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः’ इति याज्ञवल्क्योक्तेः । श्रावण्यां  
प्रौष्ठपद्यां चोपाकृतौ क्रमेण पौषशुक्लप्रतिपदि वा कार्यम् । ‘अर्ध-  
पञ्चमान्मासानधीयी’ इति तेनैवोक्तेः । अर्धः पञ्चमो येषु सार्धचतुर इत्य-  
र्थः ॥ यत्तु हारीतः ‘अर्धपञ्चमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजेत् । पञ्चाधषष्ठा-  
न्वा’ इति ॥ तदाषाढ्युपाकर्मविषयम् ॥ बौधायनास्तु पौष्यां माघ्यां वा कुर्युः  
‘पौष्यां माघ्यां चोत्सृजेत्’ इतितत्सूत्रात् ॥ तैत्तिरीयैस्तु तैष्यां कार्यं तैष्यां  
पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेत्’ इतितत्सूत्रात् । बह्वृचैस्तु माघ्यां कार्यम् ।  
‘अध्यायोत्सर्जनं माघ्यां पौर्णमास्यां विधीयते’ इति कारिकोक्तेः ॥ काती-  
यास्तु भाद्रपदे कुर्युः । ‘उत्सर्गश्चेति नन्दादितिथ्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा’ इति कात्याय-  
नोक्तेः ॥ सामगास्तु सिंहार्के पुष्ये कुर्युः । तथा च ‘सिंहेरवौ तु’ इति गार्ग्यवचन-  
पूर्वमुक्तम् । सर्वैरुपाकर्मदिने वा कार्यम् । ‘पुष्ये तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेथ-  
वा’ इति हैमाद्रौ खादिरगृह्योक्तेः । यदा सिंहस्थे सूर्ये सतितन्मध्यहस्तनक्षत्रात्  
प्राक्पुष्यः कर्कटस्थो भवतितदा तस्मिन् पुष्ये उत्सर्गं कृत्वा तदुत्तरहस्ते उपा-  
कर्म सामगाः कुर्युः । ‘मासे प्रौष्ठपदे हस्तात् पुष्यः पूर्वो भवेद्यदा । तदा च  
श्रावणे कुर्यादुत्सर्गं छन्दसां द्विजः’ इति तत्रैव परिशिष्टोक्तेः ॥ अत्र द्वाव-  
पि सौरौ मासौ ज्ञेयौ तेषां सौरस्यैवोक्तेः । अत्र विशेषमाह काष्णार्जिनिः—  
‘उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य चाकषीन् दर्शमयान् कृत्वा पूजयेत्त-  
र्पयेत्ततः’ इति ॥ उपाकर्मण्युत्सर्गे च त्रिरात्रम् पक्षिणीमहोरात्रं वानध्याय-  
इति मिताक्षरायामुक्तम् ॥ अत्र नदीनां रजोदोषो नास्ति । ‘उपाक-



र्गणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते 'इति गार्ग्योक्तेः ॥ अत्रैव रक्षाबन्धन-  
 रक्षाबन्धनम् मुक्तम् हेमाद्रौ भविष्ये—'संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां  
 दिनोदये । स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्छुतिस्मृतिविधानतः । उपाकर्मा  
 द्विकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते ।  
 उपाकर्मणि कर्तव्यं ऋषीणांचैव पूजनम् । ततोपराह्णसमये रक्षापोटलिकां  
 शुभाम् । कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेम भूषितैः' इति ॥ अत्रोपाकर्मानन्तर्य  
 स्य पूर्णातिथौ वार्षिकस्यानुवादो न तु विधिः गौरवात् प्रयोगविधिभेदे च क्रमा-  
 योगाच्छूद्रादौ तदयोगाच्च ॥ तेन परेद्युरपाकरणेपि पूर्वद्युरपराह्णे तत्करणं  
 सिद्धम् ॥ इदं भद्रायां न कार्यम् 'भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।  
 श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी' इति संग्रहोक्तेः । तत्सत्त्वे तु रात्रा  
 वपि तदन्ते कुर्यादिति निर्णयामृते ॥ इदं प्रतिपद्युतायां न कार्यम् ॥ 'नन्दाया  
 दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते' इति  
 मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥ भविष्ये—'उपलिप्ते ग्रहमध्ये दत्तचतुष्केन्यसेत्  
 कुम्भम् ॥ पीठे तत्रोपविशेद्राजामात्यैश्च सुमुहूर्ते ॥ तदनु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नी-  
 त मन्त्रेण' ॥ इदं रक्षाबन्धनं नियतकालत्वात् भद्रावर्ज्यग्रहणादिनेपि कार्यं  
 होलिकावत् । ग्रहसंक्रान्त्यादौ रक्षानिषेधाभावात् 'सर्वेषामेव वर्णानां सूत-  
 कं राहुदर्शने' इति तत्कालमात्रनिषेधाच्च । 'त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां  
 नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः' इति यो निषेधः  
 सोऽप्यनियतकालीनकर्मपर एव न त्वन्यत्र । अन्यथा होलिकायां का गतिः ॥  
 अतएव 'नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे  
 ग्रहवेधो न विद्यते' इति ॥ नियतकालीने तदभाव इति दिक् ॥ उपाकर्मणि  
 तद्दिनभिन्नपरं तत्र तन्निषेधादित्युक्तं प्राक् । मन्त्रस्तु—'येन बद्धो बली राजा दा-  
 नवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा चल मा चल' ॥ 'ब्राह्मणैः क्षात्रि-  
 यैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः ॥ कर्तव्यो रक्षिताचारो द्विजान् संपूज्य शक्तितः'  
 यद्ग्रीवोत्पत्तिः इति ॥ अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः । तदुक्तं कल्पतरौ—'श्रावण्यां



श्रवणे जातः पूर्वं ह्यशिरा हरिः। जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम् । स्ना-  
त्वा संपूजयेत्तं तु शङ्खचक्रगदाधरम् । अत्राश्वलायनेन श्रवणाकर्मो-  
श्रवणाकर्मनिर्णयः कम् । 'श्रावण्यांपौर्णमास्यांश्रवणाकर्म' इति । तत्रास्तमय  
योगिनी ग्राह्या । 'अस्तमिते स्थालीपाकं श्रपयित्वा' इति सूत्रात् । अ-  
तएवेष्टौ निशीष्टौ दर्शप्रयोगान्तःपातनियमात्तदङ्गैः प्रसङ्गसिद्धिरुक्ता द्वादशे  
अन्यथापरेद्युःप्राप्तौकःप्रसङ्गःप्रसङ्गस्य ॥ याज्ञिकास्तु पूर्णिमादर्शशब्दयोःपर्वा  
न्त्यक्षणवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैव कर्मकालव्याप्तिर्ग्राह्येति विकृतित्वाच्छेषपर्वे

कृष्णद्वितीया च्छन्ति ॥ श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षद्वितीयासु अशून्यव्र-  
यामशून्यव्रतम् तम् । तत्र चन्द्रोदयव्यापिनी । दिनद्वये सत्त्वे परेति निर्णयामृ

ते ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्रावणमासः ॥ सिंह  
सिंहसंक्रान्तिः पराः षोडशघटिकाःपुण्यकालः। अन्यत् पूर्ववत् ॥ अत्र गोप्रसवेऽ

जुहूतसागरेनारदः—'भानौ सिंहगते चैवयस्य गौःसंप्रसूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं  
गोप्रसवेशान्तिः षड्भिर्मासैर्न संशयः। तत्रशान्तिप्रवक्ष्यामि येनसंपद्यते शुभम् ।  
प्रसूतां तत्क्षणादेवतां गां विप्राय दापयेत्। ततोहोमं प्रकुर्वीतघृताक्तै राजसर्षपैः  
आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः'। व्याहृतिभिश्चायं होमः। 'सोपवासः  
प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्' इति ॥ तथा 'सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा  
भवेत् । पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरती तथा। तदानिष्टं भवेत् किञ्चित्तच्छा-  
न्त्यै शान्तिकं चरेत्। अस्यवामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मंत्रतः। जुहुयाच्चतिला-  
ज्येन शतमष्टोत्तराधिकम् ॥ मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथायुतम् । श्रीसू-  
क्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः ॥ मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौःक्रन्द-  
ते सदा ॥ ग्रामे वास्वगृहे वापि शान्तिकं पूर्ववद्विशेत्'। एवं श्रावणे वडवाप्रस-  
वो दिने निषिद्धः। तदुक्तमथर्ववेदिनां गार्ग्यपरिशिष्टे—'माघे बुधे च महिषी  
श्रावणे वडवा दिवा ॥ सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः' इति ॥ अत्र  
भा० शु० तृतीयातदुक्तमृतास्याशान्तिः कार्या। भाद्रकृष्णतृतीयाकज्जलीसंज्ञा  
कज्जलीसंज्ञा सा परा ग्राह्येति दिवोदासीये उक्तम् । वचनं तु हरितालिका



भा० कृष्णचतुर्थी प्रकरणे वक्ष्यामः—भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसि-

बहुला द्वा । सासायाहव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये सत्त्वे पूर्वा ग्राह्या  
'गौर्याश्वतुर्थी वटधेनुपूजादुर्गार्चनं दुर्भरहोलिकेच ॥ वत्सस्यपूजा शिवरात्रिरेताः  
परान्विता व्रन्ति नृपं सराष्ट्रम्' इति दिवोदासीयवचनात् ॥ अत्र वत्स  
पूजायाः पृथगुपादानाद्धेनुपूजाशब्देन बहुलाख्या गृह्यते इति स एव व्याच-  
र्यौ ॥ मदनरत्नेप्येवम् । अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च तत्रैवोक्तम् ॥ भाद्र

कृष्णषष्ठी हलषष्ठीसासप्तमीयुतेति दिवोदासः ॥ भाद्रकृष्णसप्तम्यां  
हलषष्ठी

शीतलाव्रमम् । तत्र पूर्वा ग्राह्येति हेमाद्रौ । अथ जन्मा-  
शीतलासप्तमी ष्टमी । साच कृष्णादिमासेन भाद्रपदकृष्णाष्टमी । 'तथाभाद्र-  
अथजन्माष्टमी पदेमासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे ॥ अष्टाविंशतिमे जातःकृष्णो

ऽसौ देवकीसुतः' इतिकल्पतरौ ब्रह्मोक्तेः । अत्रेदं माधवमतम् ।

अष्टमीद्वेधा । जन्माष्टमीजयन्तीचेति । तत्राद्याकेवलाष्टमी । 'ये नकुर्वन्तिजानन्तः  
कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । ते भवन्तिनराः प्राज्ञव्याला व्याघ्राश्चकानने' इति स्कां-  
न्दात् । 'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत  
विशेषेणेंदुसंयुताम्' इति पुराणान्तरात् । 'श्रावणेबहुले पक्षेकृष्णजन्माष्टमीव्रत  
म् । न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः' इति भविष्योक्तेश्च केवलाष्टम्या एवो-  
पोष्यत्वावगतेः सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती । 'कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहि-  
णी यदि ॥ जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः' इति बह्वि पुराणात् ।

'अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणी ऋक्षसंयुता । भवेत् प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम  
सा स्मृता' इति विष्णुरहस्यादिवचनाच्च ॥ ज्योतिरादिवत्संज्ञया कर्मभेदः ॥ रो-  
हिणीयोगश्चाहोरात्रं मुख्यः । निशीथमात्रे मध्यमः । दिवसादावधमः । 'अहोरात्रं  
तयोर्योगो ह्यसंपूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्तामुपोषयेत्' इति  
वसिष्ठसंहितोक्तेः 'अर्धरात्रे तु योगोयं तारापत्युदये सति । नियतात्मा शुचिः  
स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत्' इति विष्णुधर्मोक्तेः । 'वासरे वा निशायां वा यत्र  
स्थल्पापि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः' इति पुराणा-



न्तराच्च । विशेषेणेति श्रुतेर्भाद्रपदेऽपीदम् । 'श्रावणे वा नभस्ये तु' इति वक्ष्य-  
 माणात् ॥ गौडास्तु-निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहुः ॥  
 तन्न । 'वासरे निशायां' इति विरोधात् ॥ योगविशेषाद्गुणात् फल-  
 मित्यन्ये । तेप्यकरणे दोषश्रुतेरुपेक्षयाः ॥ तत्र जन्माष्टमीव्रतं नित्यं  
 पूर्वाक्तवचनेषु अकरणे निन्दाश्रुतेः । 'वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्ट-  
 मीव्रतम् ॥ न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने' इति स्कान्दे वीप्साश्रु-  
 तेश्च । 'न करोति नरो यस्तु' इति पूर्वमुक्तेरत्र स्त्रीलिङ्गमतन्त्रम् । मदनरत्ने  
 स्कान्दे त्वत्र फलमप्युक्तम् । 'जन्माष्टमीव्रतये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ कार-  
 यन्त्यथवा लोकान् लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ॥ सिध्यन्ति सर्वकार्याणि कृते जन्मा-  
 ष्टमीव्रतम्' इति ॥ जयन्तीव्रतं तु नित्यं काम्यं च । 'महाजयार्थं कुरुतां जयन्तीं  
 मुक्तये नघ ॥ धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव ॥ ददाति वाञ्छितान  
 र्थान् ये चान्येप्यतिदुर्लभाः' इति स्कान्दादौ फलश्रुतेः । 'शूद्रान्नेन तु यत्पापं  
 शवहस्तस्य भोजने ॥ तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः ॥ न करोति यदा  
 विष्णोर्जयन्तीसंभवं व्रतम् ॥ यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम्' इत्य-  
 करणे निन्दाश्रुतेश्च । यदा च पूर्वेषुः परेषुर्वा रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी  
 जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया । न तु जन्माष्टमीव्रतं पृथक्कार्यम् । विष्णुशृङ्खलवत् ।  
 तदुक्तं माधवेनैव- 'यस्मिन् वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमीतदा ॥ अन्तर्भूता  
 जयन्त्यां स्यादृक्षयोगप्रशस्तितः' इति ॥ मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिल म-  
 तेप्येवम् । हेमाद्रिस्तु 'रोहिणीसंयुतोपोष्या सर्वाधौघविनाशिनी ॥ अर्धरात्रा-  
 दधश्चोर्ध्वं कलया वा यदा भवेत् ॥ जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशि-  
 नी' इत्यग्निपुराणादर्धरात्र एव रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्यात् मुहूर्तमपि लभ्ये-  
 तेत्यादीनां चार्धरात्रयोगेषु पपत्तेर्न जयन्तीव्रतं भिन्नम् । तत्त्वं तु हेमाद्रि-  
 मतेपि जयन्तीव्रतं भिन्नमेव । 'उदये चाष्टमी' इत्यस्य तेन जयन्तीपरत्वोक्तेः ।  
 किञ्च । 'रोहिण्यामर्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत् ॥ तस्यामभ्यर्चनं शौरेह  
 न्ति पापं त्रिजन्मजम्' इति विष्णुधर्मोक्तेः । 'समायोगे तु रोहिण्यां निशीथे रा



जसत्तम ॥ समजायत गोविंदो बालरूपी चतुर्भुजः ॥ तस्मात्तं पूजयेत्तत्र य-  
था वित्तानुरूपतः' इति वह्निपुराणाच्चार्द्धरात्रस्य कर्मकालत्वमवसीयते ।  
अतः 'कर्मणो यस्य यः कालः' इत्यादिवचनात् पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने सतोपि  
रोहिणीयोगस्य न प्रयोजकत्वम् । अन्यथा बुधवारादेरपि तत्त्वापत्तेः । किंच ।  
जयन्तीशब्दो रात्रिविशेषवचनः । 'अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी ॥  
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः' इति ब्रह्माण्डपुराणात् । तेन तद्योगि-  
रोहण्यांगौणत्वाच्च व्रतभेदः । यत्तु 'वासरे वा निशायां वा' इति तत्कैमुतिकन्या-  
येन निशथियोगस्यैव स्तुत्यर्थं पूर्वदिनेऽर्द्धरात्रयोगाभावे प्राशस्त्यार्थं । यद्यपि ।  
'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला ॥ रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणे-  
न्दुसंयुताम्' इत्यनेन रोहिणीयोगाभावेऽर्द्धरात्रव्याप्तेर्ग्राह्यतोक्ता । तथापि य-  
स्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तत्र जयन्तीव्रतलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेपि ज-  
यन्तीव्रतं कार्यम् इत्येवंपरमिति तदाशयः । अत्रहि 'सत्रायापूर्य विश्वजिता य-  
जेत । एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः' इति च रोहिणीयोगाभावे विधा-  
नात् तत्कार्यापत्तिः स्यात् ॥ अतएवोक्तम् । 'जयन्ती नाम शर्वरी' इति । यत्र  
स्कान्दे—'उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि ॥ भवते बुधसंयुक्ता प्राजाप-  
त्यर्क्षसंयुता ॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वाथवा नवा' इति ॥ यच्च पाद्मे ॥ 'प्रेत-  
योनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः । यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयु-  
ता ॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु  
मुक्तिदा' इति ॥ तद्दानादिविषयम् ॥ उपवासाश्रवणादित्यनन्तमदृष्टः । जयन्तीप-  
रमिति हेमाद्रिः । उदये चन्द्रोदय इति केचित् । तत्र चन्द्रोदयसत्त्वसंदेहात् 'नव-  
मी सकला' इत्ययोगान्मानाभावाच्च । तेन पूर्वेषुः सप्तमीवेधे परदिने सूर्योदये घ-  
टिकापि ग्राह्या । पूर्वविद्धाष्टमीति पाद्मोक्तेः । इतियुक्तम् । अतो न व्रतभेदो ना-  
प्यन्तर्भाव इत्युचिवात् । गौडास्तु । नवमीक्षयपरमिदं वचनम् । 'नवमी सकला  
यदि' इति विशिष्योक्तेः । एतत्पूर्वदिने जयन्त्यभावपरमित्याहुः जयन्त्यादिस-  
र्वापवादोयमिति चूडामण्यादयः ॥ वयं तु सत्यं व्रतभेदः । लोकास्तु जन्माष्टमी



मेवानुतिष्ठन्ति ॥ नहि 'श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी । यदा  
 कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता । श्रावणे नभवेद्योगो नभस्ये तु भवे-  
 द्भुवम्' इति माधवीये वसिष्ठसंहितोक्तावपि भाद्रे जयन्ती केनापि क्रियते ॥  
 अतः पूर्वद्युरेवोपवासः । यद्वा गुणात्फलम् ॥ 'सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममुपनयेत्' इति व-  
 दित्यन्ये ॥ तन्न । नित्यत्वानुपपत्तेः अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव मास  
 इत्यन्ये ॥ तन्न । एकवाक्ये उभयनिर्देशे वा शब्दद्वयायोगात् ॥ अतो जय-  
 न्तीव्रतस्यापि नित्यत्वादुपवासद्वयं कार्यमिति ब्रूमः ॥ अतएव हेमाद्रिमदनर-  
 त्नादौ जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नमुक्तम् ॥ भिन्नकालत्वात्सर्वथा  
 तावदन्तर्भावो नेति सिद्धम् ॥ यदपि पूर्वापराबाल्पादि रोहिणीयुतैव कार्येति  
 ग्रन्थानां तत्त्वं प्रतीयते तदपि जयन्तीपरमेव । इदं च काम्यमेवेत्यनन्तभट्टः  
 तदूषणं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ नित्यं काम्यमिति तु बहवः ॥ ननु यथा विष्णु-  
 शंखलयोगेन श्रवणद्वादशीवामनजयन्त्यादिसर्वसिद्धिः । यथा वैकादशी स्व-  
 ल्पापि परा तथा 'कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ॥ नवम्यां  
 सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि' ॥ इत्यादि वचनादर्धोदयादिवयोगाधिक्ये  
 फलाधिक्यात् परैव जन्माष्टमी युक्तेति चेत् वार्तामातृ नहि तत्र व्रतभेदो  
 द्वयोर्नित्यत्वं द्वयोरकरणे दोषो वा श्रुतः । इह त्वेतैस्त्रिभिर्हेतुभिः संज्ञाभेदा-  
 द्धर्मभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदः स्पष्ट एव ॥ एकदैवत्वाच्छ्रवणद्वादशीवन्न  
 पारणालोपदोषोपि ॥ तेन व्रतद्वयमेव युक्तम् । द्वयोरपि नित्यत्वात् केचित्तु  
 त्रितायां द्वापरे चैव राजन् कृतयुगे तथा । रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समु-  
 पोषिता । अतः परं महीपाल संप्राप्ते तामसे कलौ । जन्मना वासुदेवस्य भ-  
 विताव्रतमुत्तमम्' इति हेमाद्रौ वह्निपुराणात् । कलौ जन्माष्टमीव्रतमेव न जय-  
 न्तीव्रतमित्याहुः ॥ तन्न । 'तामसे कलौ' इत्युक्तेः परमश्रेयोहेतोरस्य कलौ पा-  
 पिनां दुर्लभत्वमुच्यते । तेन कलौ तामसा न करिष्यन्ति । किंतु धन्या एवे-  
 त्यर्थः । अन्यथा 'शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगे कलौ' इत्यादौ विधि  
 कल्पनापत्तेः ॥ अत्र 'निशीथवेध एव ग्राह्याः । पूर्वोक्तवचनेषु तस्यैव मुख्यकाल-



त्वोक्तेः । 'अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादधो यदि ॥ दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता' इति माधवीये पुराणान्तरात् । 'अर्धरात्रेतु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत् ॥ तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्' इति भविष्योक्तेः । 'अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्चये दृश्यते यदि । मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्' इति वसिष्ठसंहितोक्तेश्च ॥ तत्राष्टमी द्वेधारोहिणीरहिता तद्युता च । आद्यापि चतुर्धा—पूर्वेद्युरेव निशीथयोगिनी परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्चेति । तत्राद्ययोरसन्देह एव कर्मकालव्याप्तेः । 'जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभ्रान्ते च पारणम्' इति भृगूक्तेश्च ॥ अस्मात्केवलरोहिण्युपवासोपि सिद्धः । अन्त्ययोः परैव । प्रातःसंकल्पकालव्याप्तेराधिक्यात् । 'वर्जनीयाप्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च । एवमंशतः समव्याप्तावपि ॥ विषमव्याप्तौ त्वाधिक्येन निर्णयः । रोहिणीयुतापि चतुर्धा—पूर्वेद्युरेव निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्च । अत्राप्याद्ययोरसन्देहः 'कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी' इति पाद्मोक्तेः । 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इति गारुडाच्च । 'सप्तमीसहिताष्टम्यां निशीथे रोहिणी यदि ॥ भविता साष्टमी पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ' इति वह्निपुराणाच्च ॥ द्वितीये त्वसन्देह एव । तृतीयपक्षे परैव । 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी ॥ सक्त्रक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च । चतुर्थ्यापित्रेधा—पूर्वेद्युर्निशीथेष्टमीपरेह्निरोहिणीपरेह्ण्यष्टमीपूर्वेन्निहरोहिणी ॥ उभयेद्युरुभयस्य निशीथसंबन्धोवा' इति । आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य सत्त्वात् । परैवेति माधवः ॥ तदुक्तं तेनैव 'यस्मिन् वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादक्षयोगप्रशस्तितः' इति । 'पूर्वविद्धाष्टमीया तु उदये नवमीदिने । मुहूर्तमपि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत् । कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ॥ नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता नहि' इति पाद्मोक्तेश्च ॥ हेमाद्रिस्त्वाह—अष्टम्याः प्राधान्यात्तस्याश्च पूर्वद्युः कर्मकालव्यापित्वात् पूर्वैव । पाद्मं तु पूर्वह्नि निशीथेष्टम्यभावे ज्ञेयम् । अन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्खद-



न्धणामात्रमिति ॥ अन्ये तु पूर्वविद्धाष्टमीवाक्येन जन्माष्टम्यां सूर्योदये-  
 सप्तमीवेधनिषेधात् कलाघटीमात्राप्यौदयिकी ग्राह्या 'कार्या विद्धापि  
 सप्तम्या' इतिजयन्तीपरम् । 'जयन्त्यां पूर्वाविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इत्येक-  
 वाक्यत्वात् । तत्रापि द्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवासद्वयं भवत्येवायदा तु के  
 वलाष्टमी शुद्धाधिका । तदा त्यागहेतोः सप्तमीवेधस्याभावात् पूर्वैव । यदि वा  
 विद्धन्यूनातदा परदिने ग्राह्यतिथेरभावात् पूर्वैव । एवं सर्वाण्यौदयिकवाक्यानि  
 सप्तमीवेधपराणि । 'जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सकक्षां सकलामपि । विहायनवमीं  
 शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत्' इति व्यासोक्तेर्विद्धायाः क्षये शुद्धनवम्यामुपवासः ।  
 दशमीवेधे द्वादश्युपवासवदित्याहुः ॥ ते निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः । 'मुहूर्तमपि संयुता'  
 इति रोहिणीयोगे त्याज्यत्वोक्तेः । तिथ्यन्तपारणवाक्यानां निर्विषयत्वापत्तेः ।  
 नच जयन्तीपराणि शुद्धाधिकापराणि वा तानि । भृगवायैः पूर्वविद्धाष्टम्यामपि  
 तिथ्यन्तं पारणोक्तेः । तेन 'कलाकाष्ठा' इतिवाक्यान्तरवशाज्जयन्तीपरमेतत् ।  
 तत्त्वं तु अष्टम्याः कर्मकालव्याप्तेः । 'दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहि-  
 णीकला ॥ रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणन्दुसंयुताम्' इति । पूर्वोक्तवाक्यैरोहि-  
 णीयोगाभावे ग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात् कर्मकालव्यापिर्नीत्यक्त्वापूर्वापराबाल्पापि  
 रोहिणीयुताग्राह्या । माधवमदरत्ननिर्णयामृतानन्तभट्टगौडमैथिल-  
 ग्रन्थादिष्वप्येवमिति ॥ युक्तं तु उपवासद्वयं कार्यम् । द्वयोर्नित्यत्वादितितुवयम् ॥  
 अन्त्ययोः परैव । 'सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम । प्राज्यापत्यं  
 द्वितीयेहि मुहूर्ताद्धं भवेद्यदि ॥ तदाष्टयामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा'  
 इति स्कान्दात् । 'मुहूर्तेनापि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत् ॥ किं पुनर्नव-  
 मीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा' इति पाद्माचेतिदिक् ॥ निम्बादित्योपास-  
 कास्तु जन्माष्टमी रामनवमीशिवरात्र्यादौ पूर्वैहि कर्मकालीनां तिथिं त्यक्त्वा  
 त्रिद्विमुहूर्ता परैव तिथिर्ग्राह्या । 'उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे ।  
 निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थफलप्रदः' इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तमुक्तिसप्त-  
 मीव्रते भविष्योक्तेरित्याहुः ॥ तत्रा 'यदि द्वितीये दिवसेतु ऋक्षतिथ्योर्युतिः स्या



न तदोपवासः । 'पूर्वप्रकुर्याद्विसे द्वितीये दिनेशभक्तोऽथ तदा व्रतोद्यमः' इति  
मात्स्न्यवाक्येन तत्रैव उपसंहारात्सर्वार्थत्वेन मानाभावात् ॥ ऋक्षतिथ्योर्ह-  
स्तसप्तम्योः । अन्यथा ऋषिपञ्चम्यादौ तदापत्तिः । शिष्टाचारान्नेति चेत् ।  
जन्माष्टमीपारणं न तस्य न्यायवचोविरोधेन हेयत्वात् । इदानीं कापि निम्बार्को  
पासनाभावाच्चेति संक्षेपः ॥ पारणं तु—'तिथिरष्टगुणं हन्तिनक्षत्रं  
च चतुर्गुणम् । तस्मात् प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् ' इति  
ब्रह्मवैवर्तम् । 'तिथ्यर्क्षयोर्धदाच्छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा । अर्धरात्रेथवा  
कुर्यात्पारणं त्वपरेहनि' इति हेमाद्रौ वचनाच्चार्षरात्रेऽप्युभयान्तेन्यतरान्ते  
वेति मुख्यः पक्षः । 'सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते' इति ब्रह्मवैवर्तं  
त्वन्यविषयं दिने मुख्यकाललाभेऽन्यतरान्ते वा ज्ञेयम् । गौडास्तु—'न रात्रौ  
पारणं कुर्याद्वे वै रोहिणीव्रतात् । तत्र निश्यपि तत्कुर्याद्वर्जयित्वा महानि-  
शाम्' इति ब्रह्माण्डपुराणाद्वात्रौ सार्धप्रहरमध्ये कार्यमित्याहुः ॥ 'महा-  
निशा तु विज्ञेया मध्यमं मध्ययामयोः' ॥ तथा—'मध्यमप्रहरे मात्रे विज्ञेया तु  
महानिशा' इति स्मृत्यन्तरात् ॥ कल्पतरौ मदनरत्ने चैवम् ॥ काम-  
धेनौ गर्गस्तु—'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्' इत्याह । बृद्धशातात  
पस्तु—'महानिशा द्वेघटिके रात्रौ मध्यमयामयोः' इत्याह ॥ वेदपाठप-  
रमेतदित्यन्ये । महानिशायामन्यतरान्ते तृतीयदिने पारणम् । 'अपरेहनि' इति  
पारणोत्तरदिनपरत्वात् । उभयान्तापेक्षणादित्याहुः ॥ तत्त्वं तु महानिशातो  
वर्गन्यतरान्तलाभे महानिशानिषेधः । महानिशायामेवलाभे तत्रैव पारणं  
मिति ॥ दिवोदासस्तु—'रजनीप्रहरं यावत्प्रवृत्तिः कर्मणो मता । पारणं  
तावदेवेष्टं प्रसादान्न भवेद्यदि' इति स्कान्दादूर्ध्वं निषेधमाह ॥ तन्निर्मूलम् ।  
अशक्तौ तु वह्निपुराणे—'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम्' इति ॥  
मारुडे विष्णुधर्म च—'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् । तिथ्यन्ते  
वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ' ॥ अशक्तौ तु—'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते  
वा पारणं यत्र चोदितम् । यामद्वयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' ॥



स एवोत्सवान्त इति कालादर्शोक्तेश्चेति संक्षेपः ॥ अष्टम्यां विशेषो हेमाद्रौ  
 भविष्ये-ततोष्टम्यां तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले । सुदेशे  
 शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकाग्रहम् । तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्ट-  
 विधा स्मृता । काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा । वार्क्षी  
 मणिमयी चैव वर्णकैलिखिताथ वा । सर्वलक्षणसंपूर्णा पर्यङ्के च पटावृते ॥  
 देवकीं तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे प्रस्तुतां च प्रसूतां च स्थापयेन्मन्त्रको  
 परि । मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यङ्के स्तनपायिनम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे  
 सूतिकागृहे । तद्वच्च कल्पयेत्पार्थ प्रसूतवरकन्यकाम् । कश्यपो वसुदेवो यमदि-  
 तिश्चैव देवकी ॥ शेषो वै बलभद्रो यं यशोदा क्षितिर्नृन्वभूत् । नन्दः प्रजापति  
 र्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः । गौर्धेनुः कुञ्जरश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः ॥ लेखनी-  
 याश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्वदे । इत्येवमादि यत्किञ्चिच्छक्यते चरितं मम  
 लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः । मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः  
 गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैः शृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरक-  
 त्तकरैः किङ्करैः सेव्यमाना । पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते  
 सा देवी देवमाता जयति सुतनया देवकी कान्तरूपा । पादौ संहवाहयन्ती श्रीर्देव-  
 क्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो दैव्यै श्रिये इति । अर्धरात्रे  
 वसोर्धारां पातयेद्भुङ्सर्पिषा । नाडीवर्धार्पणं षष्ठी नामादेः करणं मम । ततो  
 मन्त्रेण वै दद्याच्चन्द्रायार्घ्यं समाहितः । शंखेतोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम् ।  
 जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् । क्षीरोदारणवसंभूत अत्रिगोत्र  
 समुद्भव । गृहाणार्घ्यं शशाङ्कदं रोहिण्या सहितो मम । ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं  
 नमस्ते ज्योतिषां पते । नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् । 'यथा  
 पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः परा । तामेव निर्वृतिं देहि सुपुत्रं दर्शयस्व मे' ॥  
 इति देवक्यर्घः ॥ 'ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा यामे यामे प्रपूजयत् । प्रभाते ब्राह्म-  
 णान् शक्त्या भोजयेद्भक्तिमान्नरः । ओं नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।  
 शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत् ।' इदं प्रतिमासकृष्णाष्टम्याम-



प्युक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे—‘प्रतिमासं च ते पूजामष्टम्यां यः करिष्यति ।  
मम चैवाखिलान् कामान् स संप्राप्स्यत्यसंशयम्’ ॥ तथा—‘अनेनविधिनायस्तु  
प्रतिमासं नरेश्वर ॥ करोति वत्सरं पूर्णं यावदागमनं हरेः ॥ दद्याच्छ्रद्धयां सुसं-  
पूर्णं गोभीरत्नैरलंकृतम्’ ॥ इति जन्माष्टमीव्रतम् । भाद्रा-  
कुशग्रहणम्  
मावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ हारीतेच—‘मासे नभस्य-  
मावास्यां तस्यांदर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ।  
नभाः श्रावणः । तेन दर्शान्तमासे जन्माष्टम्यनन्तरं दर्शो लभ्यते । मदनरत्ने  
तु ‘मासे नभस्येमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः’ इति मरीचिवाक्यमुक्तम् ॥  
नभस्यो भाद्रपदः । तेन महालयान्तर्गतदर्शो लभ्यते । अत्रगौणमुख्यचान्द्राभ्या  
हरितालिका मेकएव दर्श इत्यन्ये । भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिका  
व्रतम् व्रतम् । तत्र परा ग्राह्या ‘मुहूर्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे ।  
शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्’ इति माधवोक्तेः । चतुर्थीयुक्तायां  
फलाधिक्यं माधवीये आपस्तम्बः—‘चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फल-  
प्रदा । अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥ द्वितीयायोगे प्रत्यवायमाह स  
एव—‘द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता । सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवद-  
न्ति मनीषिणः’ इति ॥ ‘आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका । चतुर्थी-  
मिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते । तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका  
स्मृता । भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका’ इति दिवोदासोदाहृत  
वचनाच्च ॥ भाद्रशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी । सा मध्याह्नव्या-  
वरदचतुर्थी  
पिनी ग्राह्या । ‘प्रातःशुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप’ इति  
हेमाद्रौ भविष्ये । तत्रैव पूजोक्तेः ॥ मदनरत्नेप्येवम् । परदिने एवांशेन  
साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वपक्षेषु पूर्वा ग्राह्या । तथा च बृह-  
स्पतिः—‘चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्या  
त्परतश्चेत् परेहनि’ इति ॥ ‘मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थीगणनाथके । मध्याह्ने



परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते' इति माधवीये स्मृत्यन्तराच्च । तत्र गणेशरूपं  
स्कान्दे- 'एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सि-  
द्धिविनायकम्' इति ॥ इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता । 'भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमे-  
नार्केण वा युता । महती सात्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः' इति निर्णयामृते  
वाराहोक्तेः ॥ अत्र चन्द्रदर्शनं निषिद्धम् ॥ तथा चापरार्के मार्कण्डेयः- 'सिंहा-  
दित्य शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न  
तंसदा' इति ॥ चतुर्थ्यां न पश्येदित्यन्वयः ॥ प्रधानक्रियान्वयलाभात् ।  
तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां न निषेधः । गौडा अप्येवमाहुः ॥  
पराशरोपि- 'कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् ॥ मिथ्या-  
भिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तंसदा ॥ तद्दोषशान्तये 'सिंहः प्रसेनमिति वै  
पठेत्' इति ॥ श्लोकस्तु विष्णुपुराणे- 'सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता  
हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः' इति ॥ भाद्रपद-  
ऋषिपञ्चमीव्रतं शुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी । सा मध्याह्न्यापिनी ग्राह्या ।  
'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्न्यापिनी तिथिः' इति माधवीये हारीतोक्तेः ॥  
दिनद्वये तत्त्वे हेमाद्रिमते परा- 'सिता परयुता स्यात् पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः  
॥ माधवमते पूर्वा । 'सर्वत्र पञ्चमी पूर्वा' इत्युक्तेः ॥ युग्मवाक्यान्निर्णयस्तु  
युक्तः ॥ ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतैवेति दिवोदासः ॥ अत्र ऋषीन् प्रतिमासु  
पूजयित्वाऽऽकृष्टभूमिजशाकेन वर्तनम् । एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्तकुम्भेषु  
प्रतिमासु संपूज्य परेहि तत्तन्मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान् हुत्वा सप्त ब्राह्मणान्  
भोजयेदिति निर्णयामृते । भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी सा सप्तमीयु-  
सूर्यषष्ठी तैवेति दिवोदासः ॥ 'शुक्लभाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम्  
॥ प्राशनं पञ्चगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम्' इतिवचनात् ॥ कल्प-  
तरौ भविष्ये- 'येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ ॥ योस्यां पश्यति  
गाङ्गेयं दक्षिणापथवासिनम् । ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः' ॥  
अमुक्ताभरणसा गाङ्गेयः स्वामिकार्तिकेयः ॥ भाद्रपदशुक्लसप्तम्याममुक्ताभरणव्रत



दूर्वाष्टमी ॥ तत्र सप्तमी पूर्वायुता ग्राह्या । 'षण्मुन्योः' इतियुग्मवा-  
 क्यात् । भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी सा पूर्वा ग्राह्या 'श्रावणी  
 दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ॥ पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्वलेर्दिनम्' इति  
 हेमाद्रौ बृहद्यमोक्तेः । 'शुक्लाष्टमीतिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत् ॥ दूर्वा  
 ष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते' इति पुराणसमुच्चयाच्च ॥ यत्तु—'मुहूर्त-  
 र्ते रौहिणेष्टम्यां पूर्वा वा यदि वापरा । दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठा मूलं च  
 वर्जयेत्' इति तत्रैव पराकार्येत्युक्तम् । तत्पूर्वदिने ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम् ॥  
 'दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या ज्येष्ठामूलर्क्षसंयुता' ॥ तथा—'ऐंद्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हंत्य  
 पत्यानि नान्यथा ॥ भर्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत्' इति तत्रैव तन्नि-  
 षेधात् ॥ इदमगस्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम् । 'शुक्लाभाद्रपदे मासि दूर्वासं-  
 ज्ञा तथाष्टमी । सिंहार्क एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन ॥ सिंहस्थे सोत्तमा  
 सूर्येनुदिते मुनिसत्तम' इति मदनरत्ने स्कांदोक्तेः । 'अगस्त्ये उदिते तात  
 पूजयेदमृतोद्भवाम् । वैधव्यं पुत्रशोकं च दश वर्षाणि पंचच' इति तत्रैव दोषोक्ते-  
 श्च । भाद्रपदशुक्लाष्टम्यां अगस्त्योदये भाविनि सति पूर्वकृष्णाष्टम्यामेव कुर्यादि-  
 ति हेमाद्रिः । दीपिकाप्येवम् ॥ इदंच व्रतं स्त्रीणां नित्यम् 'या न पूजयते  
 दूर्वा मोहादिह यथाविधि । त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः ।  
 तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः' इति । पुराणसमुच्चयात् । यदा ज्येष्ठा  
 दिकं विनाष्टमी न लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम् । 'कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठामूलं  
 यदा भवेत् । दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न बन्ध्यं दिवसं नयेत्' इति । अत्र विधि-  
 र्मदनरत्ने भविष्ये—'शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम । स्थाप्य  
 लिंगं ततो गंधैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् । दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्त्रिलोच-  
 ने । दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः' ॥ मन्त्रस्तु—'त्वं दूर्वमृत-  
 जन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः । सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ।  
 यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ॥ तथा ममापि संतानं देहि त्वम-  
 जरामरम्' इति ॥ अत्रानग्निपकं भक्षयेत् । 'अनग्निपकमश्नीयादन्नं दधिफलं



तथा । अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्रीयान्मधुनान्वितम्' इतितत्रैव भविष्योक्तेः ॥  
 भाद्रपदेधिमासेसति निर्णयदीपे स्कान्दे- 'अधिमासे तु संप्राप्ते नभस्य उदये  
 ज्येष्ठापूजाव्रतम् मुनेः । अर्वागृद्वाव्रतं कार्यं परतो नैव कुत्रचित्' ॥ अत्रैव  
 ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीयेस्कान्दे- 'मासिभाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्ये  
 ष्ठर्क्षसंयुता । रात्रिर्यस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्' इति ॥ इयं  
 ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या ॥ दिनद्वययोगे परा । पूर्वेहि रात्रि  
 योगे पूर्वैव । 'नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः । मासि भाद्रपदे  
 शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ॥ रात्रिर्यस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्' इतितत्रै  
 वोक्तेः । अस्यापवादः- 'यस्मिन्दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्यान्हादूर्ध्वमप्यणुः ।  
 तस्मिन् हविष्यं पूजाचन्यूना चेत्पूर्ववासरे' इति ॥ इदं केवलतिथौ नक्षत्रे चोक्तम् ।  
 तत्रायं केवलतिथौ कार्यम् । अंत्यं केवलर्क्षे । तदुक्तं मात्स्ये- 'प्रत्या  
 ब्दिकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतं व्रतम् । प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि  
 तिथावेवाचरेदायं द्वितीयं केवलर्क्षतः' इति ॥ अतएव मदनरत्ने भविष्ये  
 नक्षत्रमात्रे उक्तम् 'मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत् । रात्रौ जाग-  
 रणं कृत्वा एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत्' इति ॥ दाक्षिणात्यास्तृक्ष एव कुर्वन्ति ।  
 हेमाद्रौस्कान्देपि- 'मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते । यस्मिन्कस्मिन्  
 दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम्' इति ॥ तथा- 'मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां  
 तु प्रपूजयेत् ॥ मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम्' इति ॥ मन्त्रस्तु- 'एहो  
 हि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ॥ ज्येष्ठे त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव'  
 इत्यावाह्य । 'तामग्निवर्णाम्' इतिसंपूज्य । 'ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते  
 नमोनमः ॥ शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शांकर्यै ते नमोनमः ॥ ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे  
 ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि ॥ एहोहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति' इत्यर्घः ॥  
 भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कुर्यात् । 'आभाकासितप-  
 क्षेषु' इति दिवोदासोदाहृतवचनात् । 'उपोष्यैकादशीं मोहात्पारणं श्रवणे यदि।  
 करोति हंति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम्' इति तत्रैव स्कान्दाच्च ॥ अस्य



तत्रैव प्रतिप्रसवः । मार्कण्डेयः—‘विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्धते यदि ।  
 तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लघयेन्नहि’ इति ॥ केचित्तु—‘यदा त्वपरिहा-  
 र्यो योगस्तदा श्रवणनक्षत्रे त्रेधा विभक्ते मध्यमविंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा  
 पारणं कार्यम् ॥ तदुक्तं विष्णुधर्मे—‘श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्ति-  
 प्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्’ इति ॥ केचित्तुर्धा विभज्य  
 परिवर्तनोत्सवः  
 मध्यपादद्वयं वर्ज्यमाहुः । अत्र मूलं चिन्त्यम् । अत्रैव विष्णु-  
 परिवर्तनोत्सवं कुर्यात् । संध्यायां विष्णुं संपूज्य प्रार्थयेत् । मन्त्रस्तु तिथित-  
 त्वे उक्तः । ॐ ‘वासुदेव जमन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव ॥ पार्श्वेन परिवर्तस्व  
 सुखं स्वपिहि माधव’ इति ॥ अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्तम-  
 शक्रध्वजो  
 त्यापनम्  
 परार्के गर्गेण । ‘द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा ॥  
 शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे’ इत्यमेव श्रवणद्वादशी । तत्रैकादश्यां द्वादशी  
 श्रावणद्वा-  
 दशीव्रतम्  
 श्रवणयोगे सैवोपोष्या । ‘एकादशीद्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र  
 चेत् । तद्विष्णुशृङ्खलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत्’ इति वि-  
 ण्णुधर्मोक्तेः । नारदीयेऽपि—‘संस्पृश्यैकादशीं रात्रौद्वादशीं यदि संस्पृशेत् ।  
 श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं  
 यदि । स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृङ्खलसंज्ञितः’ ॥ इति हेमाद्रौ मास्योक्तेश्च  
 दिनद्वये द्वादशी श्रवणयोगेऽपि पूर्वा । निर्णयामृते त्वस्य पूर्वार्धमन्यथा पठितम् ।  
 ‘द्वादशी श्रवणं च स्पृशेदेकादशीं यदि’ इति ॥ तेन हेमाद्रिमते एकादश्याः  
 श्रवणयोगाभावेऽपि तद्युक्तद्वादशीयोगमात्रेण विष्णुशृङ्खलं भवति ॥ निर्ण-  
 यामृतमते तु—श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यां योग एव विष्णुशृङ्खलं नान्यथे-  
 ति । यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणं भवति । तदापि  
 पूर्वैव ॥ तदुक्तं तत्रैव नारदीये इमां प्रकृत्य—‘तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव न-  
 राधिप ॥ द्विकलो यदि लभ्येत स ज्ञेयो ह्यष्टयामिकः’ इति ॥ ‘द्वादशी श्रवणस्पृष्टा  
 कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः ॥ न तु सा तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते’ इति ॥ मदन  
 रत्ने मात्स्याच ॥ दिवोदासीये तु—‘रात्रेः प्रथमपादे चेच्छ्रवणं हरिवासरे । त-



दा पूर्वामुपवसेत् प्रातर्भान्ते च पारणम्' इत्युक्तम् । इदं तु निर्मूलत्वात्पूर्वविरोधा  
 चोपेक्ष्यम् । इयं बुधवारोऽति प्रशस्ता । 'बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेद्वादशी भवेत् ।  
 अत्यन्तमहती सा स्याद्वत्तं भवति चाक्षयम्' इति । हैमाद्रौ स्कान्दात् । यानि  
 तु पठन्ति 'उत्तराषाढसंयुक्ता श्रोणा मध्याह्नापि वा ॥ आसुरी सैव तारा स्याद्व  
 न्ति पुण्यं पुराकृतम् । उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रोणा द्वादशिकायुता । विश्वर्क्षसं-  
 युता साचनैवोपोष्या शुभेप्सुभिः' इत्यादीनि विष्णुधर्मस्कांदभविष्यादीनि  
 वचनानि तानि निर्मूलानि । यदपि स्मृत्यर्थसारे । 'उदयव्यापिनी ग्राह्या' इत्युक्तम् ।  
 यच्च बृहन्नारदीये 'उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते' इति । तद्यदा शुद्धाधि-  
 काद्वादशी परदिन एवोदये श्रवणयोगः पूर्वैह च तद्भिन्ने कालयोगस्तत्परम् ॥  
 दिनद्वये उदययोगे पूर्वैव । बहुकर्मकालव्याप्तेरित्युक्तं मदनरत्ने ॥ यदा त्वेकादश्ये  
 व श्रवणयुता न द्वादशी, तदापि पूर्वैव । 'यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित्  
 एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता' इति मदनरत्ने नारदीयोक्तेः ॥  
 यदा परैवर्क्षयुता तदा परा । तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम् । 'एकादशीमुपोष्यैव  
 द्वादशीं समुपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवतंहरिः' इति भविष्यो-  
 क्तेः ॥ यत्तु विष्णुधर्मे - 'पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रतान्ते विप्रभोजनम् । असमा-  
 ते व्रते पूर्वं नैव कुर्याद्ब्रतान्तरम्' इति ॥ तदेतद्भिन्नपरम् । अत्र गौडाः । 'शृ-  
 णु राजन् परं काम्यं श्रवणद्वादशीव्रतम्' इति स्थूलशीर्षवचनात्काम्यमेवेद-  
 म् । तेनाशक्तस्य नित्यैकादशीव्रतमेवेति मन्यते । 'द्वादश्यामुपवासेन शुद्धात्मानुप-  
 सर्वशः ॥ चक्रवर्तित्वमतुलं संप्राप्नोत्युत्तमां श्रियम्' इति गौडनिबन्धे मार्क-  
 ण्डेयोक्तेश्च । दाक्षिणात्यास्तु - 'एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोष-  
 णात् । व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्' इति वराहवामनपुराणोक्तेः ।  
 श्रवणद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः । भुक्तेति फलाद्याहारपरम् । न त्वन्नपरम् ।  
 'अन्नाश्रितानि पापानि' इति निषेधात् । 'उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि ।  
 प्रथमेहि फलाहारी निराहारोऽपरेहनि' इति दिवोदासीये भविष्योक्तेश्च ॥  
 अशक्तौ तु गृहीतैकादशीव्रतो यस्तं प्रत्युक्तं मात्स्ये - 'द्वादश्यां शुक्लपक्षे



नक्षत्रं श्रवणं यदि । उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्धारिम्' इति पूजये-  
 न्नतूपवसेदित्यर्थः । अगृहीतैकादशीव्रतश्चेदेकादश्यां भुक्त्वा द्वादश्यामुपवसेत् ।  
 'एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंश-  
 यम्' इति नारदीयोक्तेः ॥ 'पारणंतूभयान्तेऽन्यतरान्तेवाकुर्यात् तिथिनक्षत्रनि-  
 यमे तिथिभान्ते च पारणम्' इति स्कान्दात् । 'तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो  
 यदा भवेत् । पारणं तु न कर्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः' इति नारदीया  
 दिति हेमाद्रिः ॥ यद्यप्यत्र नक्षत्रमात्रान्तेपि पारणं प्रतिभाति तथापि ति-  
 थिमात्रान्ते ज्ञेयम् । नत्वृक्षान्ते तिथिमध्येपि । 'याः काश्चित्तिथयः प्रो-  
 क्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः । ऋक्षान्ते पारणं कुर्याद्विना श्रवणरोहिणीम्' इति ।  
 विष्णुधर्मे—श्रवणान्तमात्रे पारणनिषेधात् ॥ रोहण्यां तु—'भान्ते कुर्यात्ति-  
 थेर्वापि' इति वह्निपुराणात् । तदन्तेप्यस्तु नत्वत्रैवमस्तीति न ऋक्षान्तो-  
 ऽनुकल्प इति मदनरत्ने ॥ असंभवे तु 'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पा-  
 रणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' इति ज्ञेयम्  
 यत्तु मदनरत्ने—द्वादशीवृद्धौ श्रवणवृद्धौ वा श्रवणान्त एव पारणं कुर्यात् ।  
 'पारणं तिथिवृद्धौ तु द्वादश्यामुडुसंक्षयात् । वृद्धौ कुर्यात्त्रयोदश्यां तत्र  
 दोषो न विद्यते' इति वह्निपुराणादित्युक्तम् ॥ तत्प्रकरणादेतस्यामेव श्रव-  
 णयुक्तैकादश्यां विहितं विजयैकादशीव्रतपरं नतुश्रवणद्वादशीपरमिति मद-  
 नरत्ने ॥ गौडास्तु श्रवणद्वादशीपरमाहुः ॥ अत्र विधिर्मदनरत्ने विष्णु-  
 धर्मे—'तस्मिन्दिने तथा स्नानं यत्र कचन संगमे' ॥ तथा 'दध्योदनयुतं  
 तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे । वस्त्रसंवेष्टितं दत्वा छत्रोपानहमेव च । न दुर्ग-  
 तिमवाप्नोति गतिमश्यां च विन्दति' ॥ मन्त्रस्तु भविष्ये—घटे जनार्दनपूजाम-  
 भिधाय 'नमोनमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक । अधौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्य  
 प्रदो भव । प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः' । वामनावतारनिमित्तोपवास  
 वामनद्वादशी स्तु व्रतहेमाद्रौ भविष्ये—'द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन  
 व्रतम् युधिष्ठिर ॥ सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः । एकादशीयदासा



स्याच्छ्रवणेन समन्विता। विजया सातिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा' इत्युप-  
क्रम्य । 'अथ काले बहुतिथे गते सा गुर्विणी भवेत्। सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा  
वामनं हरिम्' इत्युक्ता 'एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां युधिष्ठिर ॥ तेनेष्टा देवदेव-  
स्य सर्वथा विजया तिथिः । एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव।  
पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता' इत्युपसंहारादेकादश्यामेव व्युष्टिः  
फलं । भागवतेष्टमस्कन्धे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता—'श्रोणायां श्रवणद्वा-  
दश्यां मुहूर्तेभिजिति प्रभुः । ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रस्तज्जन्म दक्षिणम् । द्वाद-  
श्यां सविता तिष्ठन् मध्यं दिनगतो नृप। विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म  
विदुर्हरेः' ॥ श्रोणायां चन्द्रे ॥ अभिजिच्छ्रवणप्रथमोऽंशः ॥ गोडा अप्येवम् । अत्र  
कल्पभेदाद्वचवस्था ॥ तद्विधिश्च हेमाद्रौ वह्निपुराणे—'नदीनां संगमे स्नाया-  
दर्चयेदत्र वामनम् । सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं द्वादशांगुलमुच्छ्रितम् ।' ततो विधिवत्संपूज्य  
'हिरण्मयेन पात्रेण दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः । नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने।  
तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे । नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे।  
महाह्वरिपुस्कन्धधृतस्कन्धाय चक्रिणे । नमः शार्ङ्गसीरबाणपाणये वामनाय  
चायज्ञभुक्कुलदात्रे च वामनाय नमोनमः । देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारणे ।  
प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमोनमः । एवं संपूजयित्वा तं द्वादश्यामुदये रवेः ।  
शृंगारसहितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् । वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो ऽहं  
ददामि ते । वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये ' इति ॥ अनन्तभट्टोप्याह ।  
'श्रवणद्वादश्यां जनार्दननामा विष्णुः पूज्यते । श्रवणैकादश्यां वामनावतारः' इति ।  
श्रवणयुतशुक्लैकादश्यलाभे तु दशमीविद्धापि श्रवणयुता कार्या । 'दशम्यैकाद-  
शी यत्र सा नो पोष्या भवेत्तिथिः । श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदा'  
दुग्धव्रतम् इति वह्निपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने ॥ पूजा च मध्याह्ने कार्या ।

अहो मध्य वामनो रामरामौ इति पूर्वोक्तवचनात् ॥ अ-  
त्रैव दुग्धव्रतं संकल्पयेत् । तदुक्तम् । 'दुग्धमाश्वयुजे मासि' इति । अत्रेदं चिन्त्य-  
ते—दुग्धव्रते पायसादि वर्ज्यं नवेति ॥ नेति केचित् । नहि प्रकृतिवर्जने वि-



कारवर्जनं युक्तम् । दधिघृतादीनामपि वर्जनापत्तेः । नच यत्र प्रकृतिरसोपलम्भस्तद्वर्जनमिति वाच्यम् । मांसविकारस्यौष्ठदध्योदनश्चावर्जनापत्तेः । तस्मादध्यादिकम् पायसादि भक्ष्यमिति ॥ अत्र प्रब्रूमः । यत्र विकारे प्रकृतिरसोपलम्भस्तत्प्रत्यभिज्ञा वा तत्र विकारस्यापि निषेधः । अस्ति च मांसविकारे मांसप्रत्यभिज्ञा मांसत्वानपायात् । यत्तु । औष्ठदध्यादेरनिषेधापत्तिरिति । तन्न । औष्ट्रमिति विकारस्तद्धितेन निषेधात् । तथाच विज्ञानेश्वरः—‘औष्ट्रमेकशफं स्रैणमारण्यकमथाविकम्’ इत्यत्र औष्ट्रमिति विकारतद्धिताच्छलन्मूत्रादीनामपि निषेध इत्याह ॥ नन्वेवं ‘संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयःपरिवर्जयेत्’ इति संधिन्यादिक्षीरनिषेधेपि दध्यादिग्रहणं स्यात् । सत्यं प्राप्तम् । वचनेन परं निषेधः । तदाहापराकैः शंखः—‘क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः’ इति ॥ व्रतं गोमूत्रयावकम् । तस्मात्पायसे दुग्धरसोपलम्भाद्वर्जनम् । अतएवामिक्षायां दधिसत्त्वेपि माधुर्योपलम्भात् पयोरूपत्वमुक्तं मीमांसकैः । तदुक्तं—‘पयएव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते’ इति ॥ दध्यादिषु तु तदभावादवर्जनमिति । एवं दध्यादिव्रते नतक्रादीनां निषेधः । उक्तो भयहेत्वभावादिति केचित् । पूर्वोक्तशंखवचनात्सर्वविकारनिषेध इति युक्तं

अनन्तव्रतम् प्रतीमः ॥ इति दुग्धव्रतम् । भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम् । तत्र

त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकी ग्राह्येति माधवः । तदुक्तम्—‘उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्या नन्तव्रते तिथिः’ इति ॥ ‘मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्’ इति कथायां श्रवणात् ‘उपरिहिदेवेभ्योधारयति’ इति वद्विधिकल्पनात् । ‘पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः’ इति माधवीयवचनात् ‘मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या’ इति तु दिवोदासः । प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम् । इदमेव च युक्तम् निर्णयामृते तु ‘घटिकामात्राप्यौदयिकी’ इत्युक्तम् । तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तमा पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्’ इति भविष्योक्तेः ॥ ‘मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । संपूर्णा तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम्’ इति स्कान्दाच्चेति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् । द्वयहे औदयिकत्वे पूर्णत्वात् पूर्वेति युक्तम् । तत्त्वं



तुविध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे एकवाक्यतायोगात् । संदिग्धेषु एकवाक्यत्वात्  
इतिन्यायेन पूर्वापरावामध्याह्नव्यापिन्येवमुख्या ॥ माधवस्तुसामान्यवा-  
क्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव । अनन्तव्रतस्यपुराणान्तरेष्वभावाच्चिबन्धान्तरे  
ष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति । अथागस्त्यार्घ्यः । तत्कालो व्रतहेमाद्रौ  
भविष्ये—‘कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने ॥ कन्यायां समनुप्राते ह्यर्ध-  
कालो निवर्तते’ ॥ तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये इत्यर्थः ॥ यत्पादो—  
आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण । यावत्समाः सप्त  
दशाथवा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित् । यमस्यागस्त्यस्य । उदयकालश्च  
दिवोदासीये उक्तः । ‘उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिकेविंशतिमेत्यगस्त्यः  
सप्तमेस्तं वृषसंक्रमाच्चप्रयातिगर्गादिभिरभ्यभाणि’ ॥ अत्र विधिर्विष्णुर-  
हस्ये—‘काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणैः । प्रदोषे विन्यसेत्तां तु  
पूर्णकुम्भे स्वलंकृताम् । कुम्भस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः । दध्य-  
क्षतवलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम्’ ॥ पूजा च वक्ष्यमाणार्घ्यमन्त्रेण का-  
र्या । ‘प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जलाशयम् । निशावसाने तां  
पश्यन्जलान्ते प्रतिमां मुनेः ॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः’ ।  
मात्स्ये तु—‘अंमुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम्’ ॥ पूर्वं  
काशमयत्वमशक्तौ ‘चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्तांकुरसंयुतानि ।  
सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तमन्त्रेण दद्याद्विजपुंगवाय ॥ धेनुं बहुक्षीरवतीं च  
दद्यात्सवस्त्रघंटाभरणां द्विजाय’ ॥ भविष्ये—‘विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्र-  
निधापितैः । सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन वा । मूर्ध्निस्थितेन नम्रेण जानुभ्यां  
धरणीगतः’ ॥ विष्णुरहस्ये—‘अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं  
मुनेः । अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय शूद्रे मन्त्रविधिस्त्वयम् । काशपुष्पप्रतीकाश वह्नि  
मारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोस्तुते ॥ विंध्यवृद्धिक्षयकरमे-  
घतोयविषापह ॥ रत्नवल्लभ देवेश लंकावास नेमोस्तुते ॥ वातापी भक्षितोयेन  
समुद्रः शोषितः पुरा । लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योसौ तस्मै नमोनमः । येनोदितेन



पापानि विलयं यांति व्याधयः । तस्मै नमोऽस्तु गस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ।  
 अगस्त्यः खनमानेति विप्रोर्घ्यं विनिवेदयेत् । राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि  
 वरानने । लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् । दत्तवैवमर्घ्यं कौरव्य  
 प्रणिपत्य विसर्जयेत् । अर्चितस्त्वं यथा शक्त्या नमोगस्त्यमहर्षये । ऐहिका-  
 मुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व मे । विसर्जयित्वा गस्त्यं तं विप्राय प्रति  
 पादयेत् । अगस्त्यो मे मनस्थोऽस्तु अगस्त्योऽस्मिन् घटे स्थितः । अगस्त्यो  
 द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः । ॥ दानमन्त्रः—‘अगस्त्यः सप्तजन्मार्घं  
 नाशयत्वा वयोरयम् । अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने’ ॥ प्रति-  
 ग्रहमन्त्रः विष्णुरहस्ये—‘त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् ।  
 होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम्’ ॥ होमश्चाद्यमन्त्रेणाज्येन ।  
 भविष्ये—‘दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव । ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः  
 क्षत्रियः पृथिवीपतिः । वैश्ये च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान् भवेत् ।

भाद्रपौर्णमास्यां यावदायुश्च यः कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति’ ॥ इत्यगस्त्यार्घ्यः ।

श्राद्धम् भाद्रपौर्णमास्यां प्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम् ।

तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्ममार्कण्डेययोः—‘नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते  
 रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा’ इति ॥ नान्दीमुखत्वं चोक्तं  
 ब्राह्मे ‘पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते  
 पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः ॥ ते तु  
 नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते’ ॥ एतच्च ‘प्रत्यब्दम्’ इत्युक्तेः  
 पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपारिजाते ॥ अत्र  
 मातामहा अपि कार्याः । ‘पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि’ इति  
 धौम्योक्तेः । पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्न  
 परत्वात् । वार्षिके तु वचनान्निवृत्तिः । नच जीवत्पितृकस्यान्वष्टकायां  
 मातृश्राद्धे तदापत्तिः । इष्टापत्तेः । अत एव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमाताम-  
 हयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादशौ ॥ एतज्जीवत्पितृकश्राद्धे वक्ष्यामः ॥



केचित्तु--अजहलक्षणया पित्रादयो यत्र तत्र मातामहस्तेनात्र नेत्याहुः॥  
नचात्र नाम्ना नांदीश्राद्धधर्मातिदेशः । वैष्णवादिशब्दवद्देवतापरस्य कर्मना-  
मत्वाभावात् । नापि नांदीमुखत्वं पितृविशेषणम् । पारिभाषिकत्वादिति  
दिक् । तथा निर्णयदीपे गार्ग्यः--'पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपात-  
नम् । वर्जयित्वा प्रौष्ठर्दीयथा दर्शस्तथैव सा' इति । इति भाद्रपदमासः ।  
कन्यासंक्रांतिनिर्णयः ॥ कन्यासंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्याः शेषं प्रा-

अथमहालयः गवत् । अथमहालयः । तत्र पृथिवीचन्द्रोदये वृद्धमनुः 'आषा-

ढीमवधिं कृत्वा पंचमं पक्षमाश्रिताः । कांक्षंति पितरः क्लिष्टा अन्न  
मप्यन्वहं जलम्' ॥ कन्यायोगे पुण्यतमत्वमाह शाक्यायनिः--'कन्यास्था  
कान्वितः पक्षः सोत्यन्तं पुण्यमुच्यते' इति । अत्र विशेषमाह वृद्धमनुः--'मध्ये  
वा यदिवाप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद्विः ॥ स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति'  
तथा ब्रह्माण्डमार्कण्डेययोः--'कन्यागते सवितरि दिनानि दश पंच च । पार्वणे  
नेहविधिना श्राद्धं तत्र विधीयते' ॥ तथा तत्रैव षोडशदिनान्युक्तानि 'कन्यागते स  
वितरि यान्यहानि तु षोडश । क्रतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत्' ॥  
अत्र हेमाद्रिः षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ । तिथिवृद्ध्या पक्षस्य षोडशदिनात्मकत्वं  
श्राद्धवृद्धयर्थमेकः पक्षः । भाद्रपदपूर्णिमया सहेति द्वितीयः । आश्विनशुक्लप्रतिपदा  
सहेति तृतीयः ॥ अन्त्य एव तु युक्तः । 'अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह ॥  
चंद्रक्षयाविशेषेण साप्ति दशात्मिका स्मृता' इति देवल्लोकेः ॥ तत्र पञ्चपक्षाः  
तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे--'आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । त्रिभा-  
गहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा' । दिनेदिने इति पक्षपर्यंतत्वमुक्तम् । त्रिभा-  
गहीनमिति मञ्चम्यादिपक्षः । त्रिभागमिति दशम्यादिपक्षः । त्रिभागहीन-  
मिति चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेति कल्पतरुः ॥ अत्र  
दिनपदं तिथिपरं वीप्सया तत्पक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् ।  
तेन पञ्चदशतिथिव्यापि श्राद्धं सिद्धयति । तेन चतुर्दशीनिषेधोऽन्यकृष्णपक्षपर  
इति गौडाः ॥ तत्र 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' ॥ इत्यादिविरो-



धात् । यच्च कश्चित् पूरणप्रत्ययलोपेन तृतीयभागहीनं षष्ठ्यादिपक्षतृतीयभागमे  
कादश्यादितदर्थं त्रयोदश्यादि उत्तरोत्तरं लघुकालोक्तेरिति ॥ तन्न । गौतमादि  
वचनेन मूलकल्पनालाघवात् । पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च । 'पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि  
दशम्यूर्ध्वं ततोप्यती'ति विष्णुधर्मोक्तेः । षष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपि ज्ञेया  
विति तत्त्वम् ॥ कालादर्शोपि—'पक्षाद्यादि च दर्शांतं पञ्चम्यादि दिगादिच ।  
अष्टम्यादि यथाशक्तिकुर्यादापरपक्षिकम्' ॥ पक्षादिः प्रतिपत् । दिक्दशमी ।  
दर्शांतमिति सर्वत्र । गौतमोपि—'अथापरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात्पञ्चम्यादि  
दर्शांतमष्टम्यादि दशम्यादि सर्वस्मिन्नेति' ॥ तथैकस्मिन्नपि दिने श्राद्धमुक्तं  
हेमाद्रौ नागरखण्डे—'आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरो यो वै श्राद्धं  
नरः कुर्यादिकस्मिन्नपि वासरे । तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्'  
इति ॥ अत्र शक्ताशक्तपरा व्यवस्थेति प्राञ्चः ॥ तन्न । तद्वाचकपदाभावात्  
त्रयोदश्यादिपक्ष एव नित्यः । तत्रैव निंदाश्रुतेः । ब्राह्मे—एवकारेण तस्यैव  
पञ्चमपक्षयोगव्यवच्छेदोक्तेरिति गौडाः ॥ तन्न । 'एकस्मिन्नपि'इति विरो-  
धात् । तेन फलभूयार्थिनान्यानि कार्याणीति तत्त्वम् ॥ तत्र चतुर्दशी श्राद्धा-  
भावे पञ्चम्यादि दशम्यादि पक्षौ तत्सत्त्वे षष्ठ्याद्येकादश्यादिकौ । एवं चतु-  
र्दश्यभावे द्वादश्यादिः । तत्सत्त्वे त्रयोदश्यादिरिति व्यवस्था ॥ विधवायास्तु  
विधवाकर्तृक विशेषः स्मृतिसंग्रहे—'चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः  
श्राद्धम् सदैव हि । स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च । ततो माता-  
महानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥' तथा—'अश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्त-  
थैव च'इति ॥ अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्—'स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्य-  
स्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता' ॥ विधवा स्वयं संकल्पं  
कृतवान्यत् ब्राह्मणद्वारा कारयेदित्युक्तम् प्रयोगपारिजाते ॥ सकृन्म-  
हालये च वर्ज्यतिथ्यायुक्तम् पृथिवीचन्द्रोदये प्रयोगपारिजातादिषु ।  
वसिष्ठः—'वन्दायां भार्गवादिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत  
गृही पुत्रधनक्षयात् । जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मानि ॥ वृद्धगार्ग्यः—'प्रा-



जापत्ये च पौष्णे च पित्रर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो  
विनश्यति ॥ प्रजापत्यं रोहिणी । पौष्णं रेवती । पित्र्यं मघा । अन्यान्यपि  
प्रत्यारादीनि तत्रैव ज्ञेयानि ॥ केचित्तु—‘नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ।  
गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः’ इति संग्रहात् ॥ नन्दा प्रति-  
पत्पष्ठयेकादशः । अश्वः सप्तमी । कामस्त्रयोदशी । आरो भौमः ॥ भृगुः  
शुक्रः । अग्निभं कृत्तिका ॥ कालभं भरणी । तत्र पिण्डास्त्याज्या इत्याहुः ॥  
तत्र मूलं मृग्यम् । एतच्च सकृन्महालयविषयम् ॥ ‘सकृन्महालये काम्ये पुन  
श्राद्धेखिलेषु च । अतीतिविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत्’ इति पृथिवी-  
चन्द्रोदये नारदोक्तेः । अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च—‘अमा-  
पाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्येके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचा-  
रयेत्’ ॥ पराशरमाधवीये मदनपारिजातादिषु चैवम् ॥ निर्णयदी-  
पिकायां तु—पितृमृताहे निषिद्धदिनेपि सकृन्महालयः कार्य इत्युक्तम् ॥  
‘आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । मृताहनि पितुर्यो वै श्राद्धं  
दास्यति मानवः । तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम्’ इति नागर  
खण्डोक्तेः ॥ “या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते । सा तिथिः पितृ-  
पक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः । तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विना शौचं यद-  
च्छया । पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छिन्ति नैव कारयेत् । अशक्तः पक्षमध्ये  
तु करोत्येकदिने यदा । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि” इति  
कात्यायनोक्तेः । अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तथा पक्षश्राद्धकरणेपि न नन्दा-  
दिषु पिण्डनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये काष्णार्जिनिः—‘नभस्यस्यापरे  
पक्षे श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । नैव नन्दादिवर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतुर्दशी’ इति ॥  
अत्र श्राद्धमित्येकवचनात् ‘दिनेदिने’ इति वीप्सावशाच्च सोमयागवेदकस्या-  
भ्यासैर्नैकप्रयोगपरमिदम् । अतः ‘प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्द-  
शीम्’ इति याज्ञवल्कीयं प्रयोगभेदपरं नतु पञ्चम्यादिपक्षविषयम् ।  
‘प्रतिपत्प्रभृतिषु’ इति विशिष्योक्तेः । निर्णयदीपे पृथ्वीचन्द्रोदये मदन



पारिजाते चैवम् । अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्कीयम् । एतत्परत्वेनैव  
 निंदा चतुर्दशी इति विरोधादिति गौडाः ॥ तन्न । 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव  
 चतुर्दश्यां महालये' इति विरोधात् । तत्त्वं तु—'तिथिनक्षत्रवारादिनिषेधो  
 य उदाहृतः । स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुषङ्गकृते ह्यसौ' इति दिवोदा-  
 सीये वृद्धगाग्योक्तेस्तन्निमित्ते पक्षांतरे च ज्ञेयः ॥ सकृन्महालये तु वच-  
 नान्निषेधः अन्यत्र कोपिन निषेधः । काष्णाजिनिस्मृतेरिति ॥ अतो  
 नन्दादौ सर्पिडश्राद्धे पुत्रवतोप्यधिकारः । अत्रिरपि—'महालये क्षयाहे च  
 दर्शे पुत्रस्य जन्मनि । तीर्थेपि निर्वपेत् पिण्डानुरविवारादिकेष्वपि' ।  
 पूर्वोक्तनंदानिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे  
 तन्निमित्ते च ज्ञेयः ॥ यत्तु स्मृत्यर्थसारे—'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं  
 तदर्धकम् । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्' इति ॥ तस्यात्रापवादो  
 दिवोदासीये बृहस्पतिः—'तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये । पि-  
 ण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे । महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेह-  
 नि । कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा' इति निर्णयदीपे तु नन्दा-  
 निषेधः प्रत्यहभिन्नश्राद्धविषयः । षोडशाहव्यापिश्राद्धप्रयोगकत्वे तु प्रत्यहं  
 पिण्डदानं कार्यमेवेत्युक्तम् ॥ तदयमर्थः संपन्नः । षोडशाहव्यापिश्राद्धैक्ये न  
 पिण्डनिषेधः ॥ मृताहे सकृन्महालयेपि तथा इति केचित् । तत्रापि निषेधस्तु  
 युक्तः । प्रत्यहं श्राद्धभेदेपि व्यतीपातादौ तथा । अन्यमृताहातिक्रमे महा-  
 संन्यासिनां महा लयातिक्रमे च पिण्डनिषेधः । संन्यासिनां तु द्वादश्यां श्राद्धं  
 लयः कार्यम् 'यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वाद-  
 श्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः' इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः ।  
 अत्र पक्षे श्राद्धाकरणे गौणकालमाह हेमाद्रौ यमः—'हंसे कन्यासुवर्षास्थे  
 शाकेनापि गृहे वसन् ॥ पञ्चम्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः' ॥ आश्विन-  
 कृष्णशुक्लपञ्चम्योर्मध्य इत्यर्थः । तत्राप्यसंभवे भविष्ये—'येयं दीपान्विता  
 राजन् ख्याता पंचदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेदत्तं पितॄणां वै महालये' ॥



तत्राप्यसंभवे भारते—‘यावच्च कन्यातुल्योः क्रमादास्ते दिवाकरः । शून्यं प्रेतपुरं तावद्वृश्चिको यावदागतः’ । ब्राह्मे—‘वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सहानिःश्वस्यप्रतिगच्छन्तिशापं दत्वा सुदारुणम्’ ॥ यत्तु जातृकर्ण्यः—  
‘आकांक्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः । तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्’ इति ॥ तत्फलातिशयहानिपरम् ॥ ‘कन्यां गच्छतु वा न वा’ इति तुर्यपादे वा पाठः ॥ तेन कन्यायोगे प्राशस्त्यमात्रम् । अतः श्राद्धविवेकोक्तं श्राद्धद्वयं हेयम् । इदं च श्राद्धमन्त्रेनैव कार्यं नामान्नादिना । ‘मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् । आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामने कर्हिचित्’ इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः । अथात्र देवताः संग्रहे—ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयम् सस्त्रि स्त्रीतनयादितातजननी स्वभ्रातरस्तत्स्त्रियः । ताताम्बात्मभागिन्यपत्यधवयुक्जायापिता सद्गुरुः शिष्यान्माः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे’ ॥ अस्यार्थः तातत्रयी पितृत्रयी । अंबात्रयी च । स्मृत्यर्थसारेपि महालये मातृश्राद्धं पृथक् प्राशस्त्यमिति अत्र विशेषः स्मृतिदर्पणे गालवः—‘अनेका मातरो यस्यश्राद्धे चापरपक्षिके । अर्घ्यदानं पृथकुर्यात् पिण्डमेकं तु निर्वपेत् । जीवन्मातृकस्तु सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम् । श्राद्धदीपकलिकाया तु पार्वणमुक्तम् ‘अन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम् । पितृपत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद्भवेत्’ इति बृहन्मनूक्तेः । सस्त्रीति मातामहानां सपत्नीकत्वेपि विभये सति मातामहीनां पृथक्कार्यं । ‘महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च’ इति निगमोक्तेः ॥ हेमाद्रिमते त्वत्र नवदैवत्यमेव । ‘महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । नवदैवत्यमत्रेष्टं शेषं षट्पौरुषं विदुः’ इति विष्णुधर्मोक्तेः । तातभाता पितृव्यः । जननीभाता मातुलः । तत्स्त्रियः । पितृव्यस्त्री । मातुलानी । भ्रातृजायाः पितृष्वसृमातृष्वसृस्वभागिन्योपत्यभर्तृयुक्ताः । तेन सापत्यायै सधवायै इति प्रयोगो ज्ञेयः । एतासु सतीषु न तद्भ्रादेर्दानम् । द्वारलोपात् । जायापिता श्वशुरः श्वशूरप्यत्रोपलक्ष्या । अत्र म



लंस्मृतिचन्द्रिकायां ज्ञेयम् ॥ अत्र पार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ पुराणां-  
 तरे-‘उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः ॥ श्वशुरभातृतत्पुत्रपुत्रार्तिविक्षि-  
 प्यपोषकाः। भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः। पितरौ पितृपत्नीनां पितु-  
 र्मातुश्च यास्वसा। सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये। एकोद्दिष्टविधानेन  
 पूजनीयाः प्रयत्नतः’ इति ॥ इतरेषां पित्रादीनां पार्वणमर्थसिद्धम् ॥ अत्र क्रमान्य-  
 त्वेप्याचाराद्व्यवस्था ॥ अशक्तौ तु पृथिवीचंद्रोदये चतुर्विंशतिमते-‘एक-  
 स्मिन् ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन् प्रपूजयेत् । दश द्वादशवापिण्डान् दद्यादकरणं  
 नतु’ ॥ एकोद्दिष्टस्वरूपं चाह याज्ञवल्क्यः-‘एकोद्दिष्टं देवहीनमेकाध्यैकपावि-  
 त्रकम् । आवाहनाद्यैकरणरहितं त्वपसव्यवत्’ इति । अत्रैकपाको वैश्व  
 पाणिहोमः देवतन्त्रपिण्डं बर्हिश्चैकमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तं । अत्र पाणि-  
 होमः पिण्डाश्च द्विजान्तिक इत्याह प्रयोगपारिजाते आचार्यः  
 —‘काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥ चतुर्वेषु करे होमः पिंडाश्चात्र  
 द्विजान्तिके’ इति ॥ पार्वणैकोद्दिष्टयोः समानतन्त्रत्वे तु अग्निसमीप एव ।  
 अत्र धूरिलोचनौ वैश्वदेवौ । ‘अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ’ ।  
 इति हेमाद्रावादित्यपुराणात् । अत्र प्रतिदिनं भिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदो  
 वाप्रयोगैक्यादन्ते एव वा दक्षिणेति हेमाद्रौ उक्तम् ॥ एतच्च संन्यस्तपितृका-  
 दिना जीवत्पितृकेणापि कार्यम् ॥ ‘वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्तेताते च पतिते सति।  
 येभ्य एव पितादयात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः’ ॥ इति कात्यायनोक्तेः । यत्तु कौण्डि-  
 न्यः-‘दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्ति  
 लैस्तर्पणमेव च ॥’ इति तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् । काम्यश्राद्धपरं  
 वा ॥ अत्र बहु वक्तव्यं श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयम् ॥ एतच्च जीवत्पितृ-  
 केण पिण्डरहितं कार्यम् । ‘मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीव-  
 त्पितृकः कुर्याद्भुविणीपतिरेव च’ इति दक्षेण तस्य पिण्डनिषेधात् ॥ अन्वष्ट-  
 क्यमातृवार्षिकादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ॥ तथा छागलेयः । ‘पिण्डो  
 यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः’ ॥



सांकल्पस्वरूपं च वक्ष्यते॥ अत्रश्राद्धाङ्गतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तर  
 म् । सकृन्महालये तु परेहि कार्यम् । तदुक्तंनारदीये-‘पक्षश्राद्धं यदा कुर्या  
 तर्पणं तु दिनेदिने । सकृन्महालये चैव परेहनि तिलोदकम्’ ॥ गर्गोपि-‘पक्षः  
 श्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम्’ इति ॥ तथा प्रयोगपारिजाते  
 गर्गः-‘कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषि-  
 द्धाहेपि तर्पणम् । सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि’ ॥ इदं निषि-  
 द्धदिनेपि कार्यम् । ‘ तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा’ ॥ इति स्मृत्य-  
 र्थसारोक्तेः । ‘तीर्थेतिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके ॥ निषिद्धेपि दिने कुर्या-  
 तर्पणं तिलमिश्रितम्’ इति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च । एतच्च श्राद्धं मलमासे  
 न कार्यं । तदाह भृगुः-‘वृद्धिश्राद्धं तथा सोममभ्याधेयं महालयम् ॥ राजा-  
 भिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते’ इति हेमाद्रौ नागरखण्डे-‘नभो वाथ  
 नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पंचमः’ ॥  
 एतच्च पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे कृताकृतम् इति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः ॥ इदं च  
 नित्यं काम्यं । ‘पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा  
 श्राद्धं कामान् सुपुष्कलान्’ इति जाबाल्युक्तेः ॥ ‘वृश्चिके समतिक्रान्ते  
 पितरो दैवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छेति शापं दत्त्वा सुदारुणम्’ इति  
 काष्णाजिनिवचनाच्च ॥ तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-‘दुरोअश्वस्य  
 मन्त्रं च दशमासं द्विमासयोः । महालयं यदान्यूनं तदा संपूर्णमेति तत्’ ॥ इति  
 भरणीश्राद्ध- द्विमासयोः कन्यातुलयोर्महालयश्राद्धं यदाहीनमित्यर्थः ॥  
 निर्णयः अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथिवीचन्द्रोदये  
 मात्स्ये-‘भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं येन स  
 गयाश्राद्धकृद्भवेत्’ ॥ पृथिवीचन्द्रोदये श्रीधरीये बृहस्पतिः-‘नभस्यापर-  
 पक्षस्य द्वितीया यदि याम्यभे । तृतीया चाशिताराभिः सहिता  
 कपिलाषष्ठी प्रीतिदा पितुः । एतत्पक्षे षष्ठी योगविशेषेण कपिलासंज्ञा ।  
 तदुक्तं वाराहे-‘नभस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणीपातभूसुतैः । युक्ता षष्ठि पुराणज्ञैः



कपिला परिकीर्तिता । व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् । कपिलां च  
द्विजाग्न्याय दत्वा ऋतुफलं लभेत् ॥ पुराणसमुच्चये—‘भाद्रे मास्यासिते पक्षे  
भानौ चैव करे स्थितोपाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत् ॥ अत्र  
दर्शात्तत्वेन महालयो भाद्रपदकृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ  
च ॥ हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः । ‘संयोगे तु चतुर्णां वै निर्दिष्टा परमेष्ठिना’  
इति तत्रैवोक्तेः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कांदे—‘देवदारुं तथोशीरं कुंकुमैलां  
मनःशिलाम् । पत्रकं पद्मकं यष्टिमधु गव्येन पेषयत् ॥ क्षीरेणालोडय कल्के  
न स्नानं कुर्यात्समंत्रकम् । आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च । पापं  
नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम् । पंचगव्यकृतस्नानः पञ्चभंगैस्तु मार्ज-  
येत् ॥ पंचभंगैः पञ्चपल्लवैः । तथा ॥ ‘स्तनैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णं कारयेद्र-  
विम् ॥ शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धकर्षतोपि वा ॥ सौवर्णमरुणं कुर्यान्नौ-  
कां चैव तथा रथम्’ ॥ तथा—‘अल्पवित्तोपि यः कश्चित्सोपि कुर्यादिमं वि-  
धिम्’ ॥ प्रभासखण्डे—‘स्थापयेद्व्रणं कुंभं चन्दनोदकपूरितम् । रक्तवस्त्रयु-  
गच्छन्नं ताम्रपात्रेण संयुतम् । रथो रौक्मपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रितः ।  
सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्तिं सूर्यस्य कारयेत्’ । ततः सूर्यं कपिलां च षोडशो  
पचारैः संपूज्य दद्यात् । ‘दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः ॥ कपिला  
सहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यस्मात्त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य  
पावनी । प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव’ इति ॥ विशेषांतरं तत्रैव ज्ञेय-  
चंद्रषष्ठी मिति दिक् ॥ इयमेव चन्द्रषष्ठी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी  
ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे पूर्वा । तदुक्तं भविष्ये—‘तद्भाद्रपदे  
मासि षष्ठ्यां पक्षे सिते तरे ॥ चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते ॥ चंद्रो  
दये यदा षष्ठी पूर्वाह्ने चापरेहनि ॥ चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रय-  
माध्यावर्षं ततः’ इति ॥ अष्टम्यामाश्वलायनेन मघावर्षसंज्ञं श्राद्धं  
संज्ञं श्राद्धं मुक्तम् । ‘ऐतन माध्यावर्षं प्रोष्ठपद्या अपरपक्षे’ । इति ।  
इदं सप्तम्यदिषु त्रिष्वहःसु कार्यामिति नारायणवृत्तिः हरदत्तस्तु



मघायुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्धमिति व्याचख्यौ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये  
 ब्राह्मे—‘आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गया माध्याष्टमी स्मृता ॥ त्रयोदशी गजच्छाया  
 महालक्ष्मी गयातुल्या तु पैतृके । आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् ।  
 व्रतम् तत्र निर्णयामृते पुराणसमुच्चये—‘श्रियोर्चनं भाद्रपदेसिता-  
 ष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये । समापयेत्तत्र तिथौ च यावत्सूर्यस्तु पूर्वा-  
 र्धगतो युवत्या’ इति ॥ तत्रैव—‘कन्यागतेर्के प्रारभ्य कर्तव्यं न श्रियोर्चनम् ॥  
 हस्तप्रान्तदलस्थेर्के तद्गतं न समापयेत् । पूजनीया गृहस्थानामष्टमी प्रावृषि  
 श्रियः ॥ दोषैश्चतुर्भिः संयुक्ता सर्वसंपत्करी तिथिः’—तथा—‘पुत्रसौभाग्यरा-  
 ज्यायुर्नाशिनी साप्रकीर्तिता ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्याज्या कन्यागते रवौ ॥ वि-  
 शेषेण परित्याज्या नवमी दूषिता यदि’ इति ॥ दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम् । ‘त्रिदिने  
 चावमे चैव अष्टमीं नोपवासयेत् ॥ पुत्रहा नवमी विद्धा स्वघ्नी हस्तोर्ध्वगे रवौ’  
 इति ॥ त्रिदिनावमदिनलक्षणं च रत्नमालायाम्—‘यत्रैकः स्पृशति तिथि-  
 द्वावसानं वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमार्यैः । यः स्पृशद्भिवति तिथित्रयस्य चा-  
 ह्नां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयं च नेष्टम्’ ॥ एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारंभविषयाः  
 मध्ये तु सति संभवे ज्ञेयाः । व्रतस्य षोडशाब्दसाध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात् ।  
 इयं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । तत्रैव पूजाद्युक्तेः ॥ परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं  
 त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव कार्या । अन्यथा पूर्वैव ॥ ‘पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या  
 चन्द्रोदये सदा ॥ त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी’ इति ॥ मदन-  
 रत्ने निर्णयामृते च संग्रहोक्तेः । ‘अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः ॥  
 तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा’ इति वचनाच्चेतिसंक्षेपः ।  
 इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः । अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् ।  
 अन्वष्टका तत्र कात्यायनः—‘अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदा-  
 श्राद्धम् हृतम् । पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहांतकम्’ ॥  
 पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्माण्डे—‘पितृणां प्रथमं दद्यान्मातृणां तदनन्तरम् । त-



तो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः' ॥ श्राद्धहेमाद्रौ छागलेयः  
 'केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः ॥ अन्वष्टकासु मध्यस्था ना-  
 न्त्याः कार्यास्तु मातरः' ॥ दीपिकायां तु मातृश्राद्धमाद्रौ कार्यमित्युक्तम् ।  
 'मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादितः' इति । हेमाद्रौ ब्राह्मेपि—'अन्वष्टकासु  
 क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते' इति । अत्र शाखाभेदेन व्यवस्थेति—पृथ्वी  
 चन्द्रोदयः । जीवत्पितृकविषयमिति निर्णयदीपः । इदं च जीव  
 त्पितृकेणापि कार्यम् । तदुक्तं निर्णयामृते मैत्रायणीयपरिशिष्टे—'अन्वष्ट  
 क्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्य-  
 पि च जीवति' ॥ यद्यपि जीवत्पितृकस्य षड्अन्वष्टका अवश्यं कर्त-  
 व्याः । तथाप्यशक्तस्येयमावश्यकी ॥ 'प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भवि-  
 ष्यति' इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः । 'सर्वासामेव मातृणां श्राद्धं कन्यागते रवौ ।  
 नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः' इति सुतेनावश्यक-  
 त्वोक्तेश्च । अत्र सर्वासामित्युक्तेः स्वमातरि जीवन्त्यामपि सप्तमातृ-  
 भ्यो दद्यात् । तन्मरणे सति तस्यै ताभ्यश्च दद्यादित्युक्तम् जीव-  
 त्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥ अत्र सर्वासां नामनिर्देशेनैको ब्राह्मणोर्ध्वः पि-  
 ण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवचनादिप्रयोग इत्युक्तं नारायणवृत्तौ । अन्वष्ट-  
 काश्राद्धं तद्यागश्च गोभिलीयानां मध्यमायामेव न सर्वासु । 'अन्वष्ट-  
 क्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । अत्र  
 भर्तृमरणोत्तरं पूर्वमृतमातृश्राद्धं न कार्यमिति केचिदाहुः पठन्ति च ।  
 'श्राद्धं नवम्यां कुर्यात्तन्मृते भर्तरि लुप्यते' इति ॥ तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्र-  
 तारणमात्रम् । श्राद्धदीपकलिकायां ब्राह्मे—'पितृमातृकुलोत्पन्ना याः  
 काश्चित्तु मृताः स्त्रियः ॥ श्राद्धार्हा मातरो ज्ञेयाः श्राद्धं तत्र प्रदीयते' इति ॥  
 अत्र देशाचाराद्व्यवस्था । इदं चानुपनीतेनापि कार्यम् । तदुक्तं  
 श्राद्धशूलपाणौ मात्स्ये—'अमावास्याष्टकारुण्यपक्षपञ्चदशीषु च' इत्य-  
 भिधाय 'एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम



सर्वकामफलप्रदम् । भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः ।  
 शूद्रोप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः' ॥ इति तेन साग्रेरेवेदमिति परास्तम् ।  
 अन्वष्टकातः पृथगेवेदं मातुः श्राद्धमित्यपि परास्तम् । लाघवेन मूलैक्या-  
 दष्टकापदाविशेषाच्च । तेनान्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्यांगस्याप्यत्र प्रधानत्वं वच-  
 नात् । 'अवेष्टेरिवराजसूयांतर्गतायाः । एतयान्नायकामं याजयेत्'  
 इति फलार्थत्वम् । अत्र अष्टकाम्वष्टका पूर्वानुरोधात् । तथात्रिपुराणे—  
 अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि । अत्र मातुः पृथक्  
 श्राद्धमन्यत्र पतिना सह' ॥ आपस्तम्बानां 'त्वष्टकासु च वृद्धौ चेत्'  
 इति भाष्यकारैः पाठादष्टकायां मातृकाश्राद्धम् । छन्दोगैस्त्वत्र मातृ-  
 मातामहश्राद्धे न कार्ये किं तु त्रिपुरुषमेव । 'न योषिद्वयः पृथग्दद्यादव-  
 सानदिनादृते । कर्षूसमन्वितं मुक्ता तथाद्यं श्राद्धषोडशम् । प्रत्या-  
 ब्दिकं च शेषेषु पिंडाः स्युः षडिति स्थितिः' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ।  
 अन्वष्टकासु तेषां कर्षूविधानादिति शूलपाणिः ॥ यत्तु—'तमिस्रपक्षे नव-  
 मी पुण्या भाद्रपदे हि या । चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनी-  
 षिभिः' इति ॥ तद्देशाचारतो व्यवस्थितं ज्ञेयम् । इदं जीवत्पितृकेणा-  
 पि सपिण्डं कार्यम् । हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे—'अन्वष्टकासु च स्त्रीणां  
 श्राद्धं कार्यं तथैव च' इत्युपक्रम्य 'पिण्डनिर्वपणं कार्यं तस्यामपि नृसत्तम'  
 इति वचनं श्राद्धविधिना पिण्डदाने प्राप्ते पुनस्तत्कीर्तनं यस्य जीवत्-  
 पितृकगर्भिणीपतित्वादिना पिण्डदानं निषिद्धम् तस्य तत्प्राप्त्यर्थमिति  
 श्रुतातचरणाः । अत्र सुवासिनीभोजनमुक्तं—मार्कण्डेयपुराणे—'मातुःश्राद्धे तु  
 संप्राप्ते ब्राह्मणैः सहभोजनम् । सुवासिन्यैः प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत्' । 'भर्तुर

१-भर्तुरिति । विवाहश्राद्धे सुवासिन्या अनावश्यकत्वार्थम् । एतदेव मातुरान्दिकादि-  
 समस्तश्राद्धे सुवासिनीप्रापकम् ॥ सह दाहेनेति ॥ तच्च सह दग्धाया मातुरान्दिकादा-  
 विव्रनवमीश्राद्धमपि प्रापयति ॥ इति टीका ।



त्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता । तस्याः स्थाने नियुजीत विप्रः सहसुवा  
सिनीं ॥ तत्रैव मदालसावाक्यम्—‘स्त्रीश्राद्धे पुत्रदेयाः स्युरलंकाराश्च योषिते।  
मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकंकणादयः’ इति ॥ अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वला-  
यनः—‘अनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कैक्षमुपोषेदेषामेष्टकेति न त्वेवानष्टकः  
स्यात्’ इति । हेमाद्रौ पितामहः—‘अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु  
च । विद्वान्श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते’ । अकरणे च प्रायश्चित्त-  
मुक्तमृग्विधाने—‘एभिर्द्युभिर्जपेन्मंत्रं शतवारं तु तद्दिने ॥ आन्वष्टक्यं यदा  
शून्यं संपूर्णं याति सर्वथा’ इति ॥ एतत्पक्षे द्वादश्यां विशेषः पृथिवीचन्द्रो-  
दये वायवीये—‘संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु  
यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं तु तत्’ इति ॥ अथ त्रयोदशीश्राद्धम् । तत्र

चन्द्रिका—‘त्रयोदशी भाद्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया ॥  
मघात्रयोदशी तृप्यन्ति पितरस्तस्यां स्वयं पञ्चशतं समाः ॥ मघायुतायां  
तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः ॥ तृप्यन्ति पितरस्तद्वद्वर्षाणामयुतायुतम्’ ॥  
प्रयोगपारिजाते शंखः—‘प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य  
श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च ॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं  
तथा । नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः’ ॥ एतन्नित्यमपि पृथ्वी-  
चन्द्रोदये विष्णुधर्मे—‘प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी’ इत्युक्त्वा ॥  
‘एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः ॥ श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणोनरकं प्रति  
पद्यते’ इत्युक्तेः ॥ एतच्चाविभक्तैरपि पृथक्कार्यं ॥ तथाच हेमाद्रौ—‘विभक्ता  
वाविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः । मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः  
पृथग्विना’ इति ॥ अपराकै वायवीये—‘हंसे हस्तस्थितेया तु मघायुक्तत्रयो-  
दशी । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुंजरस्य तु’ ॥ अत्र च । ‘अपि नः स  
कुले भूयाद्यो नो दद्यात्रयोदशी । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुंजरस्य च’ ।  
इति ॥ विष्णुमनुवचने ॥ केवलत्रयोदशीश्रुतेर्मघागुण इति कल्पतरुः ॥

१ यवसमार्द्रवणम् । २ कक्षं शुष्कवृणम् उपोषेत् दहेत् इति टीका ।



शूलपाणिस्तु-केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्विधौचमवायोगश्रुतेर्विधिलाघवात्  
विशिष्टमेव निमित्तमित्याह ॥ वस्तुतस्तु-‘मधुमासैश्च शकैश्च पयसापयः  
सेन च ॥ एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च’ इति ॥ वसिष्ठवचने  
केवलमवाश्रुतेर्विनिगमकाभावादुभयं भिन्ननिमित्तं । पूर्वोक्तवचनाच्च योगा-  
धिक्ये फलाधिक्यं ॥ अत एव याज्ञवल्क्यः ‘तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च  
विशेषतः’ इति ॥ त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम् । अन्यत्काम्यं । अत्र त्रयोदश्यां बहु-  
पुत्रा युवमारिणस्तु भवन्तीत्यापस्तंबोक्तेर्युवमारित्वमपत्यदोषं सहिष्णोरपत्य  
मात्रार्थिनः स्मृत्यन्तरोक्तेर्धनार्थिनो वाधिकार इति कल्पतरुः ॥ अपत्य  
निंदया तदर्थिनां नाधिकारात् । ‘फलान्तरकामस्यैवाधिकार’ इति हलायुधः ॥  
एतत्पिण्डरहितं कार्यं । ‘मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः ॥ संसंतानोनैव  
कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः’ इति बृहत्पराशरोक्तेः । इदं मलमासेपि कार्यम् । ‘म-  
घात्रयोदशीश्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकं ॥ अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मलि-  
म्लुचे’ ॥ इति काठकगृह्योक्तेः । यानि तु अंगिराः-‘त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः  
श्राद्धं कुरुते नरः ॥ पंचत्वं तस्य जानीयाज्जेष्ठपुत्रस्य निश्चितं’ ॥ वामन-  
पुराणे-‘त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं न कुर्यात् पुत्रवान् गृही’ इत्यादीनि वचनानि  
तानि पुत्रवद्विषयाणि वा महालयस्य भिन्नत्रयोदशीविषयाणि वा काम्यश्राद्ध  
विषयाणि वा सपिण्डकश्राद्धविषयाणि वेति केचित् ॥ हेमाद्रिप्रमुखास्त्वे  
कवर्गश्राद्धविषयाणि-‘श्राद्धं नैवैकवर्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् ॥ न तृप्ता-  
स्तत्र ये यस्य प्रजा हिंसन्ति तस्यते’ इति काष्णार्जिनिस्मृतेः ॥ यद्यपि  
‘पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि’ इति धौम्योक्तेर्न केवलपितृवर्गस्य  
प्राप्तिस्तथापि व्यामोहादिप्राप्तनिषेधोयमित्याहुः ॥ वयं तु पश्यामः ।  
पुत्रवद्विषयाण्येवेति । असंतानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी । संतानयुक्तो  
यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत्’ इति हेमाद्रौ नागरखण्डोक्तेः । पूर्ववाक्य  
मप्यसंतानस्यैकवर्गनिषेधकमिति ॥ अत्र मघात्रयोदशीमहालययुगादि-  
श्राद्धानां तन्त्रेण प्रयोगः ॥ नतु प्रसङ्गसिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥



कृष्णचतुर्दशी अथ चतुर्दशी पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः—‘वृक्षारोहण-  
लोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः । नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी’ ॥  
ब्राह्मे—‘युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां  
तृप्तिमभीप्सता’ ॥ नागरखण्डे—‘अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा ।  
श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप’ ॥ एतच्च ‘प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषो-  
दकोद्दिग्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्’ इति गौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणं एकयोगनि-  
र्देशात् । ‘सर्वेषां तुल्यधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते ॥ सर्वेषां तत्समं  
ज्ञेयमेकरूपाहि तेस्मृताः’ इत्युक्तानसोक्तेश्च ॥ तच्चरुतक्रियाणामेवेतिवक्ष्यामः ।  
मरोचिः—‘विषशस्त्रश्चापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनां । चतुर्दश्यां क्रियाः कार्या  
अन्येषां तु विगर्हिताः’ ॥ अत्र ब्राह्मणघाती तेन हतो, न तु ब्रह्महा। तस्य प-  
तितत्वादिति शूलपाणिः ॥ अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वात् । स्त्रीणाम-  
पि शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टं कार्यं, न पार्वणमिति श्रीदत्तोपाध्यायः ॥ ‘इदंवि-  
षादिहतानामेव न प्रसवादिमृतानां’ इति वाचस्पतिः ॥ यत्तु शाकटायनः—  
‘जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पथि । श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्ज-  
यित्वा चतुर्दशीम्’ इति तत् प्रायश्चित्तार्थजलादिमृतविषयमित्याकरे  
उक्तम् ॥ अतएव वैधत्वात् सहगमनेपि न कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ एतच्च दै-  
वयुक्तमेकोद्दिष्टं कार्यमित्युक्तं प्रयोगपारिजाते—‘प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं  
विधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितृणामक्षयं भवेत् । तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्  
पुत्रदारधनक्षयः । एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत्’ ॥ भविष्येपि—‘सम-  
त्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य चाचतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालयो  
चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृतं । एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्र-  
घातिनः’ इति ॥ संवत्सरप्रदीपे हारीतः—‘विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वादि-  
तो मलान्नाये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतंद्रितः’ ॥ अत्रैकोद्दिष्टवचनानां  
निर्मूलत्वम् । समूलत्वेपि पार्वणाशक्तपराणि । विष्णवादिवचनैः प्रकरणात्  
कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिः तन्नावाक्येन प्रकरणस्य बाधात् ।



पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोद्दिष्टमिति गौडार्वाचः ॥ तत्र । पितुरित्य-  
नेन विरोधात् ॥ विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च । अत्र शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति  
नियमो, नतु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्येति । ‘श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महा-  
लये’ ॥ इति कालादर्शात् । वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च । तेन महालये  
एव दिनांतरे पार्वणं मातामहादितृप्त्यर्थं कार्यमेव । पितामहोपि शस्त्रहतश्चे-  
देकोद्दिष्टद्वयं कार्यं । तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—‘एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टम्’  
इति । त्रिशस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यं ॥ यत्तु देवस्वामिनोक्तं त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु  
पृथगेकोद्दिष्टत्रयं कार्यं । नतु पार्वणमाहत्य वचनाभावादिति । तदयुक्तं । ‘पित्रा-  
दयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुक्रमात् ॥ स भूते पार्वणं कुर्यादाब्दिकानि पृथ-  
क्पृथक्’ इति बृहत्पराशरोक्तेः । ‘एकस्मिन्वा द्वयोर्वापि विद्युच्छस्त्रेण वा  
हते ॥ एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यात्रयाणां दर्शवद्भवेत्’ इति स्मृत्यन्तराच्चेति  
पृथिवीचन्द्रोदये उक्तम् ॥ अपरार्के हेमाद्रौ चैवायस्तु अत्रैव शस्त्रादिना  
हतस्तस्य वार्षिकमेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यं नतु श्राद्धद्वयम् । प्रसङ्गसि-  
द्धेरिति पृथिवीचन्द्रोदये ॥ अत्र श्राद्धाकरणेऽग्निमापरपक्षे दिनान्तरे पार्वणे-  
नैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम् ॥ यद्यपि ‘शस्त्रविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृ-  
पैः । आत्मनस्त्याग्निनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत्’ इति छागलेयाद्यैः श-  
स्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धं । तथापि प्रमादमृतानां श्राद्धार्हत्वात् कार्यं । वृद्धा-  
दिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यं ॥ यत्तु ‘चतुर्दश्यां तर्पणीया लुप्तपिंडोदक  
क्रियाः’ ॥ इति ब्राह्मे ॥ तद्रौणमिति शूलपाणिः । लक्षणायां मानाभावात्  
‘पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य च’ इति गयादिवद्विशेषविधिवलात्  
पतितानामपि कार्यमिति नव्यगौडाः । तत्त्वं तु समत्वमागतस्य इत्यादिवशा-  
त्कृतक्रियाणां कार्यं नान्येषामिति वयं प्रतीमः ॥ यत्तु मनुः—‘न पैतृयज्ञि  
यो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्विधीयते’  
इति ॥ अत्र पूर्वार्द्धं हेतुत्वेनोक्तं । तद्यथाश्रुतमेव मन्वते पृथ्वीचन्द्रोदया-  
दयः । आहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं नतु साकल्यादेरपीः



त्यस्मद्गुरुवः ॥ कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्रातर्व्याहिताग्नेर्दर्शे नियम्यत इति  
तु वयं । दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं न ॥ तेन कापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टं नेति

हरिहरः ॥ इति चतुर्दशी । अमायां विशेषमाहापरार्के यमः—  
गजच्छाया

‘हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता । सा ज्ञेया कुञ्जर-  
च्छाया इति बौधायनोब्रवीत् ॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी  
भवेत् । गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यांश्राद्धं प्रकल्पयेत्’ ॥ भारते—‘अजेन  
सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः । हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम् ।’

श्राद्धं दद्यादिति शेषः ॥ आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रस्य माता-  
दौहित्रप्रतिपत् महेश्राद्धमुक्तम् । हेमाद्रौ संग्रहे च—जातमात्रोपि दौहित्रो विद्यमा  
नेपि मातुले । कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते’ इति ॥ इयं संगवव्यापिनि  
ग्राह्येति निर्णयदीपे उक्तं । ‘प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम् ॥ श्राद्धं  
मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सदा ॥ जातमात्रोपि दौहित्रो जीवत्यपि चमा-  
तुले ॥ प्रातःसंगवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद्भवेत्’ इति वचनात् । अत्र समूलत्वं  
विमृश्यं ॥ इदं च मलमासे न कार्यं । ‘स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जये  
न्मले’ इति निषेधात् ॥ इदं च जीवत्पितृकेणैव कार्यमिति शिष्टाः ॥ इदं च  
शिष्टाचारात्सपिंडकं कार्यमिति केचित् ॥ पिंडरहितं तु युक्तं जीवत्पितृ-  
कस्य—‘मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विणी-  
पतिरेव च’ इति दक्षेण पिंडनिषेधात् आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावाच्चेति संक्षेपः ।

इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ महालयनिर्णयः ॥ अथा-  
अथनवरात्रारंभः

श्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भः ॥ तन्निर्णयः तत्र भार्गवार्च  
नदीपिकायां देवीपुराणे—सुमेधाउवाच ‘शृणुराजन् प्रवक्ष्यामि चंडिका-  
पूजनक्रमं ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सु शुभे दिने’ इत्युपक्रम्योक्तं । ‘शुद्धेति-  
थौ प्रकर्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनि ॥ आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्ता षोडशदाद-  
शापि वा ॥ अपराह्णे च कर्तव्यं शुभसंततिकांक्षिभिः ॥ इदं चापराह्णयोगिन्याः  
प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदोभावे ज्ञेयम् । तथा तत्रैव देवीपुराणे डामरतंत्रे



च देवीवचः- 'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत् पूजने मम ॥ मुहूर्तमात्रा कर्त-  
 व्या द्वितीयादिगुणान्विता ॥ आद्याः षोडशनाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः ॥  
 कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवं ॥ मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः । पूर्ववि-  
 द्धातुयाशुक्लाभवेत् प्रतिपदाश्विनी ॥ नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ।  
 देशभंगो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते ॥ नंदायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पू-  
 जनम्' इति ॥ स्कान्देपि- 'प्रतिपद्याश्विने मासि सा शुद्धा शुभदा भवेत् ॥  
 भाद्रपंचदशी कृष्णा तथा युक्तानसस्यते ॥ विरुद्धफलदा सा हि पुत्रदारभया-  
 वहा' इति ॥ तथा ॥ 'वर्जनीया प्रयत्नेन अमायुक्ता तु पार्थिव ॥ द्वितीयादिगुणै-  
 र्युक्ता प्रतिपत्सर्वकामदा ॥' तथा देवीपुराणे - 'यो मां पूजयते नित्यं द्विती-  
 यादिगुणान्विताम् ॥ प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥ यदि कु-  
 र्यादमायुक्तां प्रतिपत्स्थापने मम ॥ तस्य शापायुतं दत्त्वा भस्मशेषं करोम्यहम् ॥  
 आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम ॥ तस्य संपद्भिनाशः स्याज्ज्येष्ठः पुत्रो  
 विनश्यति ॥ अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चंडिकार्चने ॥ धनार्थिभिर्विशेषेण  
 वंशहानिश्च जायते ॥ न दर्शकलयां युक्ता प्रतिपच्चंडिकार्चने ॥ उदये द्विमुहूर्ता-  
 पि ग्राह्या सोऽदयदायिनी' इति ॥ देवीपुराणे - 'याचाश्वयुजिमासे स्यात् प्रतिपद्-  
 द्रयान्विता ॥ शुक्ला ममार्चनं तस्यां शतयज्ञफलप्रदं ॥' रुद्रयामले - 'अमायुक्ता  
 सदा चैव प्रतिपन्निदिता मता ॥ तत्र चेत्स्थापयेत्कुंभं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवं ॥  
 प्रतिपत्सद्वितीया तु कुंभारोपणकर्मणि' इति ॥ यद्यपि रुद्रयामलं डामरंचनि-  
 मूलं तथाप्यविरोधात् प्रचाराच्च तद्वचनानि लिख्यन्ते । तिथितत्वे देवीपुरा-  
 णेपि - 'प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् ॥ प्रातःप्रातश्च संपूज्य प्रातरेव  
 विसर्जयेत् ॥' तत्रैव - 'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ॥ सा कार्यो-  
 दयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता ।' तथा - 'कुहूकाष्ठोपसंयुक्तां वर्जयेत् प्रतिप-  
 त्तिथिं ॥ राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निदिता चाश्वपूजने' इति ॥ एषु वचनेषु  
 कलशस्थापनग्रहणात् तदेव प्रथमदिने निषिध्यते न तूपवासादि तस्य 'प्रतिपद्य-  
 प्यमावास्या' इति युग्मवाक्यात् । 'शुक्ला स्यात् प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः' इति



दीपिकोक्तेः। 'शुक्लपक्षे दर्शविद्धा' इति माधवोक्तेश्च । पूर्वदिने प्रातस्य बाधे  
मानाभावादिति केचित् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवाक्येषु चण्डिकार्चनपूजाग्रहणा  
दुपवासादेश्वाङ्गत्वात् प्रधानदेवीपूजादावपि परेति युक्तं ॥ कलशस्थापन  
ग्रहणं तूपलक्षणं । अत एव देवलः—'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्  
सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके' इति ॥ अत्र घटिका मुहूर्त इति  
गौडाः ॥ यदा तु पूर्वदिने संपूर्णा शुद्धा च भूत्वा परदिने वर्धते तदा संपूर्णत्वाद  
मायोगाभावाच्च पूर्वव ॥ यानि च द्वितीयायोगनिषेधकानि वचनानि केचित्  
पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकानिषेधपराणि । परदिने प्रतिपदोत्पन्तासत्त्वे तु दर्शयु  
ता पि पूर्वव ग्राह्या । तदाह लल्लुः—'तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमा  
णं तिथिरेव साधनम्' इति ॥ यानि तु 'अमायुक्ता प्रकर्तव्या' इत्यादीनि नृसिंह  
प्रसादे वचनानि ॥ तानि समूलत्वे सत्येतद्विषयाणि । अत्रेदं तत्त्वम् । पूर्वोक्तवा  
क्यानां सर्वेषां हेमाद्र्याद्यलिखितत्वेन निर्मूलत्वात्तैश्चान्यनिर्णयस्यानुक्तेः  
सामान्यनिर्णयात् । पूर्ववत्प्राप्तावपि गौडनिबन्धेषु विशेषनिर्णयादौदयिकी  
'ग्राह्या । तत्रापि 'घटिका' इत्यस्य द्विमुहूर्तस्तुतिर्वोक्तेर्द्विमुहूर्ता ग्राह्या ।  
उदिते दैवतं भानौ' इत्यत्र 'द्विमुहूर्ता त्रिरहश्च' इति औदयिक्या द्विमुहू  
र्तत्वनियमात् । तेन 'उदये द्विमुहूर्तापि—' इत्याद्यनुसरोपि 'मुहूर्तमात्रा कर्त  
व्या'—इति द्विमुहूर्तस्तुतिः । अन्यथा द्विमुहूर्तविधिवैयर्थ्यात् । केचित्तु 'मु  
हूर्तमात्रा' इति वचनात्ततो न्यूनत्वे परा नेत्याहुः ॥ गौडा अप्येवम् ॥ अत्र  
देवीपूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वङ्गम् । 'अष्टम्यां च नवम्यां च जग  
न्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः, इति हेमा  
द्रौ भविष्ये तस्या एव फलसंबन्धात् । नवमीतिथिपर्यंतं वृद्ध्या पूजा  
जपादिकम्' इति तत्रैव देवीपुराणात् । 'शरत्काले महापूजा क्रियते या  
च वार्षिकी इति मार्कण्डेयपुराणाच्च । पूर्ववचनादष्टमी पूजैव प्रधानमन्यत्स  
र्वमंगमिति गौडाः ॥ एकाहपक्षोऽपि कालिकापुराणे—'यस्त्वेकस्यामथाष्ट



म्यां नवम्यामथ साधकः । पूजयेद्वरदां देवीं महाविभवविस्तरैः इति ॥ तत्त्वं  
तु—राजसूयेन्ययागैः समप्रधानायाः सहिता अप्यवेष्टेः एतयान्नायकामं या-  
जयेदित्येकत्वान्मध्ये विधानाच्च यथा फलार्थो बहिः प्रयोगस्तथानवरात्रमध्य  
स्थाया अष्टम्या नवम्या वा फलार्थः पृथक्प्रयोगः ॥ रूपनारायणधृत-  
देवीपुराणे—‘महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका ॥ सर्वेषु वत्स वर्णेषु  
तव भक्त्या प्रकीर्तिता । कृत्वा भोति यशोराज्यपुत्रायुर्धनसंपदः ॥ ’ सा  
च काम्या नित्या च । ‘एवमन्यैरपि तथा देव्याः कार्यं प्रपूजनं । विभूतिम-  
तुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम्’ इति ‘यो मोहादथवालस्या देवीं दुर्गां महोत्सवे ।  
न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यत्र भैरव । क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्नि  
हन्ति वै’ इति कालिकापुराणे फलनिन्दाश्रुतेः । ‘वर्षे वर्षे विधातव्यं स्था-  
पनं च विसर्जनम्’ इति तिथितत्त्वे देवीपुराणाच्च । अत्रोपवासादिकमुक्तं  
हेमाद्रौ भविष्ये । ‘एवं च विंध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन  
नक्तेन तथैवायाचितेन चापूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरेपुरे ॥ गृहेगृहे  
शक्तिपरैर्ग्रामिग्रामे वनेवने । स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रै-  
र्भक्तियुक्तैर्मल्लैश्छैरन्यैश्च मानवैः’ इति ॥ यत्तु रूपनारायणीये भविष्ये—‘एवं  
नानाम्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः’ इति ॥ तन्नामसपूजापरं ॥ विना मन्त्रै-  
स्तामसी स्यात्किरातानां तु संमता ‘इति तत्रैवोक्तेः ॥ मदनरत्ने देवीपुरा  
णेपि ‘कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ॥ आयाची ह्यथ वैकाशी  
नक्ताशी वाथवाबदः ॥ भूमौ शयीतं चामंत्र कुमारीर्भोजयेन्मुदा । वस्त्रालं-  
कारदानैश्च संतोष्याः प्रतिवासरम् । बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदः । मांसमा  
षवत् । त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः’ इति ॥ नन्दिका प्रतिपत्तिथिः

१ इदं तु चिन्त्यम् एतद्येति सर्वनाम्ना प्रकृतपरामर्शाद्युक्तोऽवेष्टेरेव बहिः प्रयोगः न  
त्विह तथा परामर्शकं किञ्चिदास्ति अष्टमीनवम्योः पृथगग्रे पूजाविधानादेतद्वचनस्य तदेक-  
वाक्यता संभवति । ‘शरत्काले महापूजा—’ इति मार्कण्डेयं तु न नित्यत्वव्यञ्जकम् ॥  
विस्माद्यभावात् इति टीका ।



इति मैथिलाः । षष्ठीति गौडाः । तच्च पूजनं रात्रौ कार्यम् । 'आश्विने मासि मेघान्ते महिषासुरमर्दिनीम् । निशासु पूजयेद्भक्त्या सोपवासादिकः क्रमात्' इति देवीपुराणात् ॥ संग्रहेपि—'आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद्या तिथिर्भवेत् । तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं च पूजयेत् । रात्रिरूपा यतो देवी दिवारूपो महेश्वरः । रात्रिव्रतमिदं देवि सर्पपापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं नृणां सर्वशत्रुनिबर्हणम् । रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते । नक्तव्रतमिदं यस्मादन्यथा नरके गतिः' इत्यादि वचनाच्च रात्रिव्रतत्वमेवाभिप्रेत्य माधवेनोक्तम्—तस्य नक्तव्रतत्वादिति ॥ ननु रात्रिभोजनात् ॥ ननु 'मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रे विशेषतः । संपूज्य नवदुर्गां च नक्तं कुर्यात्समाहितः । नवरात्राभिधं कर्म नक्तव्रतमिदं स्मृतम् । आरंभे नवरात्रस्य' इत्यादि स्का-न्दात् माधवोक्तेश्च नक्तमेव प्रधानमिति चेन्न ॥ 'नवरात्रोपवासतः' इत्यादे-रनुपपत्तेः । तेन पाक्षिकनक्तानुवादोयम् । ( नित्यानित्यसंयोगविरोधात् । नह्यग्निहोत्रे दशमपक्षे प्राप्तस्य दध्ना जुहोतीत्यस्येन्द्रियकामहोमेनुवादो घटते । नित्यवदनुवादायोगादियुक्तं वार्तिके तथात्रापि । तेनात्र तद्वदेव गुणात्फलमिति ज्ञेयं ॥ ) ननु रात्रेः कर्मकालत्वे तद्व्यापिनी पूर्वेव प्रतिपत् प्राप्नुयात् ॥ मैवं न्यायतः प्राप्तावपि पूर्वोक्तवचनैर्बाधात् । यथा पूर्वद्युः कर्म-कालव्यापिनीमपि त्यक्त्वा स्वल्पापि परैव रामनवमीति प्रागुक्तं । यथा वा निशीथे सतीमपि पूर्वा जन्माष्टमीं त्यक्त्वा रोहिणीयुक्ता परैवेति माधवे-नोक्तं तथात्रापि । वस्तुतस्तु रात्रेः कर्मकालत्ववचसां हेमाद्र्याद्यलिखनात् । समूलत्वं विमृश्यमेव । त्रिकालं पूजयेत्—इत्यादिपूर्वविरोधाच्च माधवोक्तिस्तु पाक्षिकनक्तानुवाद इत्युक्तम् । तस्मात्सर्वपक्षेषु परैव प्रतिपदिति सिद्धम् ॥ अत्र केचिन्नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः । 'वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां न्हासेमाप्रतिप-न्निशि । प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोर्थवत्' इति देवीपुराणादित्याहुः तन्ना । अति-न्हासवृद्धयोर्न्यूनाधिकत्वापत्तेः । अत्र मूलाभावाच्च तेन तिथिवाच्ये-बायं । तदुक्तं—'तिथिवृद्धौ तिथि-न्हासे नवरात्रमपार्थक्यं । अष्टरात्रे न दोषोऽयं



नवरात्रतिथिक्षये'इति ॥ स च नवरात्रशब्दः कचिल्लक्षणया कर्मवाची ॥ यथा-  
 'प्रारम्भो नवरात्रस्य' इत्यत्रेतिदिक् ॥ प्रतिपदि च वैधृत्यादियोगनिषेधो भा-  
 र्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे--'त्वाष्ट्रवैधृतियुक्ता चेत् प्रतिपच्चण्डिकार्चने ॥  
 तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गुह'इति ॥ चित्रावैधृतियुक्तापि द्वितीया-  
 युक्ता चेत्सैव ग्राह्येत्युक्तं ॥ दुर्गोत्सवे--'भद्रान्विता चेत् प्रतिपत्तु लभ्यते विरु-  
 द्धयोगैरपिसंगता सती ॥ सैवापराह्णे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतुः'  
 इति ॥ यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्याय-  
 नेन--'प्रतिपद्याश्विने मासि भवो वैधृतिचित्रयोः । आद्यपादौ परित्यज्य प्रा-  
 रभेन्नवरात्रकम्'इति ॥ भविष्येपि--'चित्रावैधृतिसंपूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृपात्या-  
 ज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम्' इति ॥ रुद्रयामलेपि--'वैधृतौ  
 पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनं । तस्मान्न स्थापयेत् कुंभं चित्रायां वैधृतौ  
 तथा ॥ संपूर्णा प्रतिपदेव चित्रायुक्ता यदा भवेत् । वैधृत्या वापि युक्ता स्या-  
 त्तदा मध्यंदिने रवौ । अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते' इति ॥ चित्रादि  
 निषेधे मूलं चित्यम् । इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यं । 'नरात्रौ स्थापनं कार्यं  
 न च कुंभाभिषेचनम्' इति मात्स्योक्तेः । 'भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश  
 नाडिकाः ॥ प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु' इति विष्णुधर्मोक्ते-  
 श्च ॥ रुद्रयामले--'स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत् । शुभाभि-  
 र्भूतिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् । यवान्वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि सं-  
 युतान् । तत्र संस्थापयेत्कुंभं विधिना मन्त्रपूर्वकम् । सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं  
 मृन्मयजं तु वा' इति ॥ अथ पूजाविधिः । स च जयन्तीमंत्रेण नवाक्षरेण  
 कार्यः । तदुक्तं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे--'कुर्याद्वेद्यास्तु मन्त्रेण  
 पूजां क्षीरघृतादिभिः'इत्युक्त्वा--'जयन्तीमङ्गलाकालीभद्रकाली कपालिनी ॥  
 दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तुते । अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमौ  
 तु कारयेत्'इति ॥ ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणी स्वाहा' इति नवाक्षरः । तत्र प्रतिपदि  
 प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा । देशकालौ संकीर्त्यममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वाप-



च्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसंततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्धयर्थं शारदनवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि करिष्ये इति संकल्प्य 'महीधौः' इति भूमिं स्पृष्ट्वा 'ओषधयःसम्' इति यवान्निक्षिप्या 'आकलशेषु' इति कुम्भं संस्थाप्या 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य 'गन्धद्वाराम्' इति गन्धम्, -- 'या औषधीः' इति सर्वोषधीः 'काण्डात् काण्डात्' इति दूर्वाः । 'अश्वत्थे व' इति पञ्च पल्लवान्, 'स्योना पृथिवि' इति सप्तमृदः, 'याःफलिनीः' इतिफलम् 'स हि रत्नानि' इति पञ्च रत्नानि, हिरण्यं क्षिप्त्वा ॥ 'युवा सुवासाः' इति वस्त्रेणावेष्ट्य । 'पूर्णा दर्वि'—इति पूर्णपात्रं निधाय,—तत्र वरुणं संपूज्य, जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गाभावाद्य पूजयेत् ॥ तद्यथा । पूर्वोक्तं मंत्रमुक्त्वा,—'आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि । पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये । सर्वतीर्थमयं वारि सर्व देवसमन्वितम् । इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैःसह । दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह' इत्यावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण षोडशीपचारैः पूजयित्वा । माषभक्त-बलिं कूष्माण्डादिबलिं वा निवेदयेत् । ततः कुमारीपूजा । तदुक्तं हेमाद्रौ स्कांदे—'एकैकां पूजयेत् कन्यामेकवृद्ध्या तथैवच ॥ द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं तु वा' ॥ तथा—'नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु । एकवृद्ध्या लभेत् क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थे तां विवर्जयेत् । गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते' । तेन द्विवर्षामारभ्य दशवर्षापर्यन्ता एव पूज्या नत्वन्याः । तासां च क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका शाम्भवी दुर्गा सुभद्रा इति नामभिः पूजा कार्या । आसां च प्रत्येकं पूजामंत्राः फलविशेषाश्च तत्रैव ज्ञेयाः । सामान्यतस्तु 'मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीं । नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्याभावाहयाम्यहम् ॥ एवमभ्यर्चनं कुर्यात् कुमारीणां प्रयत्नतः । कंचुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत् पायसादिभिः ।



तथा—‘ग्रन्थिस्फुटितशीर्ष्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम् ॥ जात्यन्धां केकरां  
 क्राणीं कुरूपां तनुरोमशाम् । संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्’ ।  
 तथा—‘ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थं नृपवंशजाम् । लाभार्थं वैश्यवंशोत्थां  
 सुतार्थं शूद्रवंशजाम् । दारुणे चान्त्यजातानां पूजयेद्विधिना नरः’ इति । अत्र वेद-  
 पारायणमप्युक्तं रुद्रयामले ‘एवं चतुर्वेदविदो विप्रान् सर्वान् प्रसादयेत् ।  
 तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै’ इति । तथा—‘एकोत्तराभिवृद्ध्या तु  
 नवमी यावदेव हि ॥ चण्डीपाठं जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः ॥ तिथितत्त्वे  
 वाराहीतन्त्रे—‘प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत्’ । अन्ते च प्र-  
 णवं दद्यादित्युवाचादिपुरुषः । आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत्सुधीः ।  
 हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्वै विफलं भवेत् । स्वयं च लिखितं यच्च शूद्रेण लि-  
 खितं भवेत् । अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् । ऋषिच्छन्दादिकं  
 न्यस्य पठेत् स्तोत्रविचक्षणः । स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् ।  
 सर्वत्र पाठ्ये विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत्’ । एवं नवमीपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात्  
 अत्र विशेषो हेमाद्रौ देवीपुराणे—‘यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम्  
 द्विगुणं तद्वितीयेहि त्रिगुणं तत्परेहनि ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाज-  
 पादिकम्’ इति ॥ एतेन नवरात्रे पूजैव प्रधानं । उपवासादित्वङ्गमिति गम्यते ।  
 तिथिच्चासे तु तिथिद्वयनिमित्तं पूजादि महालयश्राद्धवेदकदिने आवृत्त्या  
 कार्यं । वृद्धौ तद्वदेवावृत्तिः ॥ ततो नवरात्रोपवासादिसंकल्पं कुर्यात् । स्व-  
 स्याशक्तावन्येन वा पूजादि कारयेत् । ‘स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत्  
 पूजयीत वा’ इति तरङ्गिण्यां देवीपुराणात् ॥ इदं च देवीपूजनं शुक्रास्ता-  
 दावपि कार्यं । तदुक्तं धर्मप्रदीपे—‘नष्टे शुके तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ ।  
 कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः’ इति ॥ मलमासे तु वचनाभावाच्च  
 भवात् । अत्र साश्वस्याश्वपूजनमुक्तम् मदनरत्ने देवीपुराणे—‘आश्वयुक्  
 शुक्लप्रतिपत्स्वातीयोगे शुभे दिने । पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं श्रियमावहत् ॥  
 तस्मात्साश्वैर्वैरेस्तत्र पूज्योसौ श्रद्धया सह । पूजनीयाश्च तुरगा नवमी याव



देवहि । शान्तिः स्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिनेदिने ॥ धान्यं भल्लातकं  
कुष्ठं वचा सिद्धार्थकास्तथा ॥ पञ्चवर्णेन सूत्रेण ग्रन्थि तेषां तु बन्धयेत् ।  
वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शक्तैर्मन्त्रैः सवैष्णवैः ॥ वैश्वदेवैस्तथाग्नैर्यैर्होमः कार्यो  
दिनेदिने' ॥ कल्पतरौ त्वेतदग्रेन्यदपि ॥ 'ज्येष्ठे योगे पुरा तत्र गजाश्वाष्टौ  
महाबलाः । पृथिवीमवहनपूर्वं सशैलवनकाननाम् । कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्प-  
दन्तोथ वामनः ॥ सुप्रतीकोऽनो नीलस्तस्मात्तास्तत्र पूजयेत् । शाक्रादृक्षा-  
अथप्रतिपदा त्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत्' ॥ अश्ववद्धोमादित्यर्थः ॥  
दिविशेषः अथ प्रतिपदादिषु विशेषो दुर्गाभक्तितरंगिण्यां भविष्ये-  
'केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात्प्रतिपदिने ॥ पक्वतैलं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे'  
पट्टादोरमिति गौडपादः ॥ 'दर्पणं च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकं तथा । मधु-  
पर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डनम् । पञ्चम्यामङ्गरागं च शक्त्यालंकरणानि  
च ॥ षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं संध्यासु कारयेत् ॥ सप्तम्यां प्रातरानीय  
गृहमध्ये प्रपूजयेत् ॥ उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या च पूजनम् ॥ नवम्यामु-  
ग्रचण्डायाः पूजां कुर्याद्वलिं तथा ॥ संपूज्य प्रेषणं कुर्यादशम्यां सारवोत्सवैः ।  
अनेन विधिना यस्तु देवीं प्रीणयते नरः ॥ स्कन्दवत् पालयेद्देवीं तं पुत्रधनकी-  
र्तिभिः' ॥ कृत्यतत्त्वार्णवे लैङ्गे- 'कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाद-  
भेपि वा । नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः । शुक्लपक्षे च  
तुर्थ्यां तु देवीकेशविमोक्षणम् । प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत्सुशुभैर्जलैः । षष्ठ्यां  
सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेधिवासनम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपो-  
षणम् ॥ पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्दालिः । विसर्जनं दशम्यां तु  
क्रीडाकौतुकमंगलैः' । अत्र नवम्यां बोधनासामर्थ्ये षष्ठ्यां बोधनमिति स्मार्ताः ।  
फलभूमार्थिनः समुच्चयइत्यन्ये । नवम्यां मन्त्रः कालिकापुराणे -- 'इषे मा-  
स्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रभे दिवा । श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत् पूजां क-  
रोम्यहं' ॥ अत्र स्त्रीव्रते विशेषः परिभाषायां ज्ञेयः ॥ अथाशौचे विशेषो नि-  
र्णयामृते विश्वरूपनिबन्धे- 'आश्विनशुक्लपक्षेतुप्रारब्धे नवरात्रके । शावाशौ-



चे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः। सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः।  
 देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः । सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं चैव विशेष  
 तः ॥ देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषोनविद्यते'इति ॥ कालादर्शं विष्णुरह  
 स्येऽपि पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं मुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनवि-  
 वर्जितम्'इति गौडानिवन्धेति थितत्वेऽप्युक्तम् ॥ आश्विनशुक्लपञ्चम्यादिशुक्लप्र-  
 तिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, चैकं कर्म। अतश्च मध्ये आशौचपातेऽपि न दो-  
 षः 'संकल्पो व्रतसत्रयोः' इति विष्णूक्तेरिति ॥ आरब्धं स्वयमेव कार्यम्  
 अनारब्धं त्वन्येन कारयेदिति दिवोदासः ॥ रजस्वला त्वन्येन कारयेत् सू-  
 तकादिवद्विशेषवचनाभावात् ॥ स्त्रीणां च नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणं भवति ॥  
 तदुक्तं व्रतहेमाद्रौ गारुडे 'गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् । उपवासे  
 न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्' इति ॥ एतत्समर्तृकोपवासविषयम् ॥ अन्य-  
 उपाङ्गल- श्वात्र विशेषः परिभाषायामुक्तः । आश्विनशुक्लपञ्चम्या-  
 लिताव्रतम् मुपाङ्गललिताव्रतं महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धम् ॥ तत्र यद्यपि कथा-  
 यां कालविशेषो नोक्तस्तथापि 'रात्रौ जागरणं कुर्याद्भीतवादित्रिभिः स्वनैः' इति  
 रात्रौ जागरोक्तेः शक्तिपूजायारात्रौ प्राशस्त्याच्च रात्रिव्यापिनी ग्राह्येतिकेचित्  
 ॥ वस्तुतस्तु वचनं विनारात्रिपूजायां मानाभावात् जागरस्य चाङ्गत्वाद्युगमवा-  
 क्यात् 'भुक्त्वा जागरणे नक्ते चन्द्रार्घ्यव्रते तथा । ताराव्रतेषु सर्वेषु रा-  
 त्रियोगो विशिष्यते' इति कालहेमाद्रौ वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ रात्रि-  
 शब्दः पूर्वविद्धावचन इति हेमाद्रिः । अस्य च भुक्त्वा जागरणरूपत्वादिति  
 साधु प्रतीतिः ॥ भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकं पदं तस्मिन् व्रते इत्यर्थः ॥ अन्यथा  
 सरस्वत्या- भुक्त्वेत्यसङ्गतेः । दिवोदासीयेऽप्येवं ॥ आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे  
 वाहनम्- सरस्वतीस्थापनम् । यथोक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे 'मूलेषु  
 स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम् ॥ उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्  
 इति ॥ रुद्रयामलेपि- 'मूलकक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती । पूजयेत्  
 प्रत्यहं देव यावद्वैष्णवमृक्षकम् । नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन । पुस्त



के स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः' ॥ संग्रहे—'आश्विनस्य सिते पक्षे  
मेधाकामःसरस्वतीम् । मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्' मूलस्याद्यपा-  
दे आवाहनमिति शिष्टाः ॥ श्रवणाद्यपादे च विसर्जयेत्'आदिभागो नि-  
शायां तु श्रवणस्य यदा भवेत्।संप्रेषणंतदा देव्या दशम्यां च महोत्सवः'इति  
चिन्तामणौब्रह्माण्डपुराणात् ॥अथ षष्ठी॥गौडनिबन्धेदेवीपुराणे'ज्येष्ठा-  
षष्ठी नक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिर्मंत्रणम्।सप्तम्यांमूलयुक्तायां पत्रिकायाः  
प्रवेशनम् । पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्। उत्तरेण नवम्यांतु  
बलिभिः पूजयेच्छिवम् । श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ' का-  
लिकापुराणे—'बोधयेद्विल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च । सप्तम्यां  
बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् । पुनःपूजां तथाष्टम्यांविशेषेण समाचरे-  
त् । जागरं च स्वयं कुर्याद्वलिदानं महानिशि । प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां  
विधिवच्चरेत् । विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै सारवोत्सवैः ॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैःक्री-  
डाकौतुकमङ्गलैः' ॥अत्र सर्वत्र तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः कल्पः । तदभा-  
वे तु तिथिरेव ग्राह्या । 'तिथिःशरीरं देवस्य तिथौनक्षत्रमाश्रितम्।तस्मात्तिथिं  
प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना'इति विद्यापतिलिखितवचनात् । 'तिथिनक्षत्र-  
योर्योगे द्वयेरेवानुपालनम्।योगाभावेतिथिर्ग्राह्यादेव्याःपूजनकर्मणि'इतितत्रैव  
देवलोक्तेष्व॥अत्र च पत्रीप्रवेशात्पूर्वद्युःसायंकाले षष्ठ्यभावेतत्पूर्वदिनेधिवा-  
सनं कार्यम्सायंकालेत्यन्तासत्वेत्वधिवासनलोपः'षष्ठ्यां सायंप्रकुर्वीतबिल्व-  
वृक्षेधिवासनम्'इति पूर्ववचनादिति कल्पतरुःसायंश्रुतिःफलातिशयमात्रार्था  
नतु कर्मलोप इत्याचार्यचूडामणिः ॥ अत्र क्रमः बिल्वसमीपं गत्वा देवीं  
बिल्वं च संपूज्य प्रार्थयेत् ॥ तत्र मन्त्रः'रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय  
च । अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा । अहमत्याश्रितः षष्ठ्यां  
सायाह्ने बोधयाम्यतः ॥ श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः । नेत-  
व्योसि समागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः'इति ॥ एवं देविमधिवास्य परदिने नि-  
मन्त्रितबिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजां कुर्यात् ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ लैंगे 'मूलाभावे



तु सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् । युग्माभ्यां नवबिल्वस्य फलाभ्यां शास्त्रिकां  
 तथा । तथैव प्रतिमां देव्याः स्नात्वाभ्युक्ष्य प्रवेशयेत् ॥ अत्र चोपवासपूजा-  
 दावौदयिकी सप्तमी ग्राह्या । नतु युग्मवाक्यात् पूर्वा 'युगाद्या वर्षवृद्धिश्च  
 सप्तमीपार्वतीप्रिया ॥ रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता' इति कृत्यतत्त्वा-  
 र्णवोदाहृतवचनात् ॥ 'भगवत्याः प्रवेशादि विसर्गांताश्च याः क्रियाः । तिथा-  
 वुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद्बुधः । इति तिथितत्त्वेनन्दकेश्वरपुराणाच्च ॥  
 दुर्गाभक्तितराङ्गिण्यामप्येवम् ॥ तत्रापि घटिकातो न्यूनत्वे परा न कार्याः ॥  
 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेरिति गौडाः ॥ दा-  
 क्षिणात्यास्तु पूर्ववचनमदृष्ट्वा युग्मवाक्यात् पूर्वा कुर्वन्ति ॥ पत्रिकापूजा च  
 पूर्वाह्णे एव कार्या नतु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वार्णवे उक्तं  
 पत्रिकास्तु—'रम्भा कवी हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ । अशोको मानवृ-  
 क्षश्च धान्यादि नव पत्रिकाः' इति तत्रैवोक्ताः ॥ अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्र  
 मुक्तं हेमाद्रौ ॥ प्रतिपदादिनवतिथिषु उपवासकरणासामर्थ्ये सप्तम्यादिदिन-  
 त्रये वा कुर्यात् ॥ तदाह धौम्यः—'आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रक-  
 म् । प्रतिपदादि क्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् । त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्त-  
 म्यादि यथाक्रमम् । अत एव हेमाद्रौ देवीपुराणे मङ्गलव्रते 'आश्विनेवाथ  
 वा माघे चैत्रे वा श्रावणेपि वा । कृष्णाष्टम्यादि कर्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरेः ।  
 यावत् शुक्लाष्टमी शक्र उपोष्या तु विधानतः । दानं होमो जपः पूजा  
 कन्या भोज्यास्तथान्वहं । महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये ।  
 पूजनीया विशेषेण वस्त्रैर्ग्रामपुरादिषु' ॥ इति मासचतुष्टयेभिधाय ॥  
 अन्यत्रापि—'अथवा नवरात्रं च सप्तमं च त्रिकं दिवा । एकभक्तेन  
 नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात्' इति ॥ 'पूजयेताश्विने शक्र याव-  
 च्छुक्लाष्टमी भवेत् । सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति शक्तो नास्त्यत्र संशयः' इत्युक्तं  
 दिवेत्येकरात्रमुक्तं । देवीपुराणे—'नवरात्रव्रते शक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकां व्रतं  
 चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम्' इति ॥ तत्रापि सप्तम्याः पूजने



पूर्वाक्तो निर्णयः ॥ अत्र तिथियौगपद्ये तन्त्रेणोपवासः ॥ तिथिद्वयनिमित्तं  
 पूजादिकं तु भेदेन ॥ अत्र विशेषो निर्णयामृते भाविष्ये—‘सप्तम्यां नवगेहानि  
 दारुजानि नवानि च । एवं वा वित्तभावेन कारयेत्सुसमाहितः । दुर्गागृहं  
 प्रकर्तव्यं चतुरस्रं सुशोभनं । तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तां समां शुभां ॥  
 तस्यां सिंहासनं क्षौमं कम्बलाजिनसंयुतम् ॥ तत्र दुर्गां प्रतिष्ठाप्य सर्वलक्ष-  
 णसंयुताम् ॥ भुजैश्चतुर्भां रुचिरैर्दशभिर्वा विभूषिताम् ॥ तप्तहाटकवर्णाभां  
 त्रिनेत्रां शशिशेखरां ॥ अनेककुसुमाकीर्णां कर्पदेन सुशोभिताम् ॥ नितम्बवि-  
 म्वसन्नद्धकिंकिणीकाणनादिनीम् ॥ शूलचक्रदण्डशक्तिवज्रचापासिधारिणीं ।  
 घण्टाक्षमालाकरकपानपात्रलसत्कराम् । तदग्रे छिन्नशिरसं माहिषं रुधिरा-  
 लुतम् ॥ निःसृतार्धतनुं कण्ठनाले चर्मासिधारिणम् । देवीधृतकरग्रीवं शूले-  
 नोरसिताडितम् ॥ नागपाशेन विक्षिप्तं हर्यक्षेणापि विद्रुतम् । वमद्गुधिरवक्त्रेण  
 धुन्वतोर्ध्वं सटानुषा ॥ सर्वतो मातृचक्रेण सेव्यमानां सुरैस्तथा’ इति । ‘तत्र  
 देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा ॥ मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गे शूले च  
 पूजयेत्’ ॥ वार्क्षी दारुमयी देवी ॥ मूर्तिस्थापने विशेषो दुर्गाभक्तितराङ्गिण्यां  
 देवोपुराणे ॥ ‘याम्यास्या शुभदा दुर्गा पूर्वास्या जयवर्धिनी । पश्चिमाभिमुखी  
 नित्यं न स्थाप्यासौम्यदिङ्मुखी’ ॥ प्रतिमाभावे विशेषस्तत्रैव—‘हैमराजतमृद्धा-  
 तुशैलचित्रार्पितापि वा । खड्गे शूलेर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥ यद्यस्या-  
 युधं प्रोक्तं तस्मिंस्तां प्रति पूजयेत् । देवी भक्त्यार्चिता पुंसां राज्यायुः-  
 सुतसौख्यदा’ ॥ कृत्यतत्त्वार्णवे कालिकापुराणे—‘लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं  
 मण्डलस्थां तथैव च । पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु  
 च ॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत् ॥  
 बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः ॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ।  
 भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ॥ भगलिङ्गक्रियाभिश्च प्रीणयेद्धरचंडि-  
 काम् ॥ परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ॥ तस्य क्रुद्धा भगवती  
 शापं दद्यात्सुदारुणम्’ । चित्रमृन्मयादौ स्नानायसंभवे तत्रैवोक्तम् ‘अ-



नितके स्थापिते खड्गे स्नापयेदर्पणेत्य वा' इति ॥ अथ सप्तमी-  
 सप्तमीपूजा पूजाविधिः । 'प्रतिपद्युक्तविधिना फलसंकीर्तनान्ते नवपत्रि-  
 कामृन्मयदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्ये इति संकल्प्य पूर्वनिमन्त्रितबिल्वस  
 मीपंगत्वा संपूज्य । 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इति पूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा 'बि-  
 ल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रिय । गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां  
 करोम्यहम् । शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो । गृहीत्वा तव शाखां  
 च पूज्या दुर्गेति च स्मृतिः ॥ उत्तिष्ठ पत्रिके देवी सर्वकल्याणहेतवे । पूजां गृहाण  
 सकलामस्माकं वरदा भव । मेरुमन्दरकैलासाहिमवच्छिखरे गिरौ । जातः  
 श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः' ॥ इति संप्राथम्यं ॥ 'ॐ हुं छिंधि फट् फ  
 ट्' । ॐ फट् स्वाहा' इति छित्वा संपूज्य 'ॐ चामुण्डे चलचल' इति वाद्यघोषेण  
 देवीं तां च गृहं प्रवेश्य ॥ 'आरोपितासि दुर्गे त्वं मृन्मयां श्रीफलेपि च ।  
 स्थिरा नितान्तं भूत्वा च गृहे त्वं कामदा भव' इति स्थिरीकृत्य रम्भादिपत्रि-  
 काः पंचगव्येन च पंचामृतेन च स्नापयित्वा वस्त्रेणावेष्ट्य स्थापयेत् । इतः  
 पूर्ववत्संकल्पं कृत्वा ऽक्षतानादाय देदीमावाहयेत् ॥ तत्र मन्त्रः । 'आवाह-  
 याम्यहं देवि मृन्मयां श्रीफले तथा । कैलासशिखरादेवि विंध्याद्रेहिमपर्व-  
 तात् ॥ आगत्य बिल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिं । स्थापितासि मया  
 दुर्गे पूजये त्वां प्रसीद मे । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ।  
 दुर्गे दुर्गेस्वरूपासि सुरतेजोमयेर्चिते । सदानन्दकरे देवी प्रसीद मम सिद्धये ।  
 एतेहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदो भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते  
 पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः ॥ पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे ।  
 दुर्गे देवि इहागच्छ सांनिध्यामिह कल्पय ॥ यज्ञभागान् गृहाण त्वं योगिनीको-  
 दिभिः सह' इति ततो मूलमन्त्रेण पाद्यादिगन्धान्तोपचारैः ॥ 'अमृतोद्भवं च  
 श्रीवृक्षं शंकरस्य सदाप्रियम् ॥ बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि' इति  
 बिल्वपत्रम्, 'ब्रह्माविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदाप्रियम् । तत्ते दुर्गे प्र  
 यच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये' इति द्रोणपुष्पं निवेद्य । धूपादिदक्षिणान्तां



पूजां मूलेन कृत्वा प्रार्थयेत् ' ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालि-  
 नि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते । कुंकुमेन समालम्ब्य चन्दनेन  
 विलेपिते । विल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेहं शरणं गतः । रूपं देहि यशो देहि  
 भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे' । 'सर्वमंगलमा-  
 ज्ञल्ये' इति च संप्रार्थ्य पत्रिकाः पूजयेत् ॥ कदल्यां ब्रह्माणीं । दाडिमे रक्त-  
 दन्तिकाम् । धान्ये लक्ष्मीम् । हरिद्रायां दुर्गाम् । माने चामुण्डाम् । कवौ  
 कालिकाम् । विल्वे शिवाम् । अशोके शोकरहिताम् । जयन्त्यां कार्तिकीं  
 चावाह्य संपूज्य दुर्गायै बलिं दद्यात् ॥ अत्र शस्त्रादिपूजा वक्ष्यते ॥ ततःस्तु-  
 तिं वदेत् । तदुक्तं शिवरहस्ये ' दुर्गां शिवां शांतिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः  
 प्रियाम् । सर्वलोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवाम् । मङ्गलां शोभनां शुद्धां  
 निष्कलां परमां कलाम् । विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥  
 सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभयापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा  
 उमाम् । विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् । योगिनीं  
 योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् । ईशानमातरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रि-  
 याम् । प्रणतोस्मि सदा दुर्गां संसारार्णवतारिणीम् ॥ य इदं पठते स्तोत्रं  
 शृणुयाद्वापि यो नरः । स मुक्तः सर्वपापैस्तु मोदते दुर्गया सह' ॥ अथ महा-  
 ष्टमी । सा च परयुता । 'शुक्लपक्षेष्टमी चैत्रशुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न कर्तव्या  
 कर्तव्या परसंयुता' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ मदनरत्नेस्मृतिसंग्रहे  
 महाष्टमीव्रतम् 'शरन्महाष्टमीपूजा नवमीसंयुता सदा । सप्तमीसंयुता नित्यं शोक  
 संतापकारिणी । जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी । इन्द्रेण निहतो  
 जम्भस्तस्माद्दानवपुंगवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी । वर्जनीया  
 प्रयत्नेन मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥ सप्तमीं शल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोपि वा ।  
 महाष्टमीं प्रकुर्वाणः नरकं प्रतिपद्यते । सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्ट-  
 मी भवेत् । तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम्' ॥ तथा—'पुत्रान्हन्ति प  
 शून्हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम् । हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी' ॥



तेन नात्र त्रिमुहूर्तवेधः। तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या। 'व्रतोपवासनियमे  
घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेः। गौडा अप्येवमाहुः। अतएवोक्तं भोज  
राजेन 'नच सप्तमी शल्यसमोपहता' इति ॥ इयं भौभेतिप्रशस्ता। 'अष्टम्यामुदि  
तेसूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत्। कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः' इति मद्-  
नरत्ने वचनात् ॥ 'सप्तमी शल्यसंविद्धा वर्जनीया सदाष्टमी ॥ स्तोकापि-  
सा महापुण्या यस्यांसूर्योदयो भवेत्' इति मदनरत्ने स्मृतिसमुच्चयवचना-  
त् ॥ 'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता' इति पाद्मवचनाच्च ॥ इयमेव मूल  
युक्ता चेन्महानवमीसंज्ञा ॥ आश्वयुक्शुक्लपक्षे याष्टमी मूलेन संयुता। सा महा

नवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा' इति हेमाद्रौ स्कांदात्।

महानवमी

मूलयुक्तापि सप्तमीयुता चेत्याज्यैवेत्युक्तं निर्णयामृते

दुर्गोत्सवे ॥ 'मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याऽष्टमी बुधैः' । लेशमात्रेण  
सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता' इति ॥ महाष्टमी पूर्वद्युः पूर्वा-  
ह्मव्यापित्वे पूर्वान्यथा परैवेति निर्णयदीपमतम् । एतच्च तुच्छत्वादु-  
पेक्ष्यम् ॥ रूपनारायणधृते देवीपुराणे—'सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु  
महाष्टमी। पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत्' यत्तु सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो  
याष्टमी भवेत् । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेहनि' इति ॥ विश्वरूपनि  
बन्धवचनं तदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम् । 'कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयि-  
त्वाष्टमीदिने । नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिःस्वनैः' इति देवीपुराणे ।  
तत्रापि पूजोक्तैरिति हेमाद्रौ निर्णयामृते चोक्तम् ॥ यानितु—'भद्रायां भद्र  
काल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया । तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी  
बुधैः' इति—यच्च मोहचूलात्तरे ब्राह्मे च—'आश्विनस्य सिताष्टम्यामर्धरात्रे तु  
पार्वती । भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता' इति तथा ॥ 'तत्राष्टम्यां  
भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी । प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनी कोटिभिः सह'  
इति ॥ यच्च मदनरत्ने—'महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी ॥  
सप्तम्यापि युता कार्या मूलेनतु विशेषतः' इति ॥ तानि परदिनेऽष्टम्यभावविषया-  
णीति मदनरत्ने उक्तम् ॥ यत्तु तत्रैव परदिनेष्टमीसत्त्वेपि पूर्वविद्धाविधायकं



वचनम् । 'यदाष्टमीं तु संप्राप्य ह्यस्तं याति दिवाकरः । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न  
 कुर्यादपरेहनि । दुर्भिक्षं तत्र जानीयान्नवम्यां यत्र पूज्यते' इति तत् परदिने दश-  
 म्यां नवम्यभावविषयम् । 'यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेहनि । तदाष्टमी-  
 प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप' इति तत्रैव स्मृतिसंग्रहोक्तेः ॥ 'उत्तरास्तिथयो  
 यत्र क्षयं यांति नराधिप । पूर्वाष्टमीं तदा कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत्' इति दुर्गो  
 त्सवोक्तेः इति मदनरत्ने ॥ वस्तुतस्तु इदं वचनद्वयं अष्टमीनवम्योः सूर्योदय-  
 द्वयसंबन्धपरम् ॥ 'अत एव नवमी च' इति चकारादष्टमीच ॥ तिथय इति बहु-  
 वचनादष्टमी नवमी दशम्युक्ता ॥ अन्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति दिक् ॥ यत्तु ।  
 'अहं भद्रा च भद्राहं नावयोरंतरं क्वचित् । सर्वसिद्धिं प्रदास्यामि भद्राया-  
 मर्चिताह्वहम्' इति देवीपुराणे तद्विष्टिकरणमध्ये पूजाविधानार्थम् । 'विष्टिं त्य-  
 क्त्वा महाष्टम्यां मम पूजां करोति यः । तस्य पूजाफलं न स्यात्तेनाहमवमानिता,  
 इति तत्रैवोक्तेरिति निर्णयामृते ॥ तथा कालिकापुराणे 'सप्तम्यां पात्रि-  
 कापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् । पूजा च जागरश्चैव नवम्यां  
 विधिवद्बालिः' इति ॥ अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः । 'उपवासं महाष्टम्यां  
 पुत्रवान्न समाचरेत् ॥ यथा तथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्' इति  
 तत्रैवोक्तेः ॥ रूपनारायणीये ब्राह्मे 'अतर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि  
 मानवैः । उपोषितैर्वस्त्रधूपमाल्यरत्नानुलेपनैः । पशुभिः पानकैर्हयै रात्रौ जाग-  
 रणेन च । दुर्गागृहे च शस्त्राणि पूजितव्यानि पंडितैः । वाद्यभांडानि चिह्नानि  
 कवचान्यायुधानि च, ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्ये ।  
 आश्वयुक्शुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता । सामहानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदु-  
 र्लभा । कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेष्टमीयुता ॥ मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानव-  
 मी स्मृता ॥ नवम्यां पूजिता देवी ददात्यभिमतं फलम् ॥ सा पुण्या सा पवित्रा  
 च सा धन्या सुखदायिनी । तस्यां सदा पूजनीया चामुंडा मुंडमालिनी, ॥  
 सदेत्युक्तेर्नित्यतापि । 'तस्यां ये ह्युपयुज्यन्ते प्राणिनो महिषादयः । सर्वे ते  
 स्वर्गंति यान्ति घृतां पापं न विद्यते । यावन्न चालयेद्वात्रं पशुस्तावन्न ह-



न्यते । न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः ॥ यथा संतुष्यते मेघैर्महिषैर्वि-  
 न्ध्यवासिनी ॥ एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभुक्तेन नक्ते-  
 न स्वशक्त्या याचितेन च । पूजनीया जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे । गृहेगृहे  
 भक्तिपरैर्ग्रामिणामे वनेवने । स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रै-  
 र्भक्तियुतैर्मल्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः । स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तदिधानमिदं शृणु ।  
 जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म कारये-  
 चावदष्टमी' इति लौहाभिसारिककर्मविधानं तत्रैवोक्तम् । 'प्रागुदक्प्रवणे  
 देशे पताकाभिरलंकृतम् । मण्डपं कारयेद्विव्यं नवसप्तकरं परम्, ॥ षोडशह-  
 स्तमित्यर्थः ॥ 'आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् । मेखलात्रय-  
 संयुक्तं योन्याश्वत्थदलाभया । राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च ॥  
 आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्यत्राधिवासयेत् । ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्ब-  
 रधरः शुचिः । ॐ कारपूर्वं कैर्मन्त्रैस्तलिङ्गैर्जुहुयाद्बृहत् ॥ शस्त्रास्त्रमन्त्रै-  
 र्हौतव्यं पायसं घृतसंयुतम् । हुतशेषं तुरंगाणां राजानमुपहारयेत् ॥ लौ-  
 हाभिसारिकं कर्म तेनैव ऋषिभिः स्मृतम् । घृतपल्ययनानश्वान् गजांश्च  
 समलंकृतान् । भ्रामयेन्नगरे नित्यं बन्दिघोषपुरःसरम् । प्रत्यहं नृपतिः  
 स्नात्वा संपूज्य पितृदेवताः ॥ पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यविलेपनैः ।  
 यस्याभिसरणाद्राज्ञोविजयः समुदाहृतः । पूजामन्त्रान् प्रवक्ष्यामि पुराणोक्ता-  
 नहं तव । यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशो बलम्' ॥ अथ  
 मन्त्राविष्णुधर्मोत्तरोक्ताः ॥ छत्रस्या 'यथाऽम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्ध-  
 राम् ॥ तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये' ॥ चामरस्या 'शशाङ्ककरसंकाश  
 क्षीरिण्डिण्डिरिषाण्डुराप्रोत्सारयाशु दुरितंचामरामरदुर्लभ, ॥ अश्वानां वृद्धयर्थं रेवं  
 तपूजनमहं करिष्ये । 'सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनंदन । शांतिं कुरु तुरंगाणां  
 रेवन्ताय नमोनमः' ॥ अनेन मन्त्रेण पूजा ॥ अथाश्वस्या 'गन्धर्वकुलजात-  
 स्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः । ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥  
 प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान् । तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां



तपसा तथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च । स्मर त्वं राजपुत्रं त्वं  
 कौस्तुभं च मणिं स्मर । यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा ।  
 भ्रूणहानृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः । सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्य-  
 न्ति दुष्कृतम् ॥ व्रजाश्व तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव ॥ निष्कृतो यदि गच्छे  
 था युद्धाध्वनि तुरंगम । रिपून्विजित्य समरे सह भ्रात्रा सुखी भव' इति ॥  
 अथ ध्वजस्य 'शक्रकेतोमहावीर्य श्यामवर्णार्चयाम्यहम् । पन्निराज नमस्तेस्तु  
 तथा नारायणध्वज । काश्यपेयारुणभातर्नागारे विष्णुवाहन । अप्रमेय दुरा-  
 धर्ष रणे देवारिसूदन । गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितो यतः । सारव-  
 न्त्यायुधान्यत्र रक्ष त्वं च रिपून् दह' ॥ अथ पताकायाः । 'हुतभुग्वस-  
 वो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ॥ नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणग्रहाः । प्रम-  
 थास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह । शक्रः सेनापतिः स्कन्दोवरुणश्चाश्रि-  
 तास्त्वयि । प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्य-  
 रिभिरायुधानि समंततः । पतंतूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा । हिरण्य  
 कशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा ॥ कालनेमिवधे यद्वद्यद्वित्रिपुरघातेन । शोभि-  
 तासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर । नीलान्ध्वेतानिमान् दृष्ट्वा नश्यंत्वाशु  
 नृपारयः ॥ व्याधिभिर्विविधैर्धोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः । पूतना रेवती  
 नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता । दहत्वाशु रिपून् सर्वान्पताके त्वं मयार्चिता' ।  
 अथ गजस्य । 'कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदंतौ च वासनः । सुप्रतीकोजिनो नील  
 एतेष्टौ देवयोनयः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः ॥ मंदो भद्रो मृगश्चैव  
 गजः संकीर्ण एव च ॥ वनेवने प्रसुप्तास्ते यूथानि सुमहांति च । पान्तु त्वां व-  
 सवो रुद्रा आदित्याः समरुद्धणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र स्वामिवत् प्रतिपाल्यता  
 म् । अवामुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज ॥ श्रीस्ते सोमाद्वलं विष्णो-  
 स्तेजः सूर्याज्जवोनीलात् ॥ स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात् पुरंदरात् ॥  
 युद्धे रक्षंतु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः । अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां  
 सर्वतः सदा' इति ॥ अथ खड्गमन्त्रः । 'असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरा-  
 सदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥ एतानि तव नामानि स्व-



यमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः । रोहिण्यश्च  
 शरीरं ते देवतं च जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ।  
 नीलज्जाम्बूतसंकाशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कशोदरः । भावशुद्धोर्मर्षणश्च अतितेजास्तथै-  
 व च । इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः । तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै  
 खड्गाय ते नमः' ॥ अथ छुरिकायाः 'सर्वायुधानां प्रथमं निर्मि-  
 तासि पिनाकिना । शूलायुधादिनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभं । चंडिकायाः प्र-  
 दत्तानि सर्वदुष्टनिवर्हिणी । तया विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ।  
 सर्वसत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाशुभनिवर्हिणी । छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं य-  
 च्छ नमोस्तुते' ॥ अथ कट्टारकपूजा ॥ 'रक्षांगानि गजानुरक्ष रक्ष वाजिध-  
 नानि च ॥ मम देहं सदा रक्ष कट्टारक नमोरनु ते' ॥ कट्टारको मध्यदे-  
 शे कटारीति प्रसिद्धा ॥ अथ धनुःपूजा 'सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसू-  
 दन । चाप मां समरे रक्ष साकं शरवैरिह ॥ धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहारा-  
 य हरेण च । त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम्' ॥ अथ कुंतपूजा ।  
 'प्रास पातय शत्रूंस्त्वमनया नाकमायया । गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च  
 रक्षताम्' ॥ अथ चर्मपूजा 'शर्मप्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोद्यमे ॥ र-  
 क्ष मां रक्षणीयोहं तापनेय नमोस्तुते' ॥ अथ कनकदण्ड मन्त्रः ॥ 'प्रोत्सार  
 णाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ।  
 यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयस्व रिपून् सर्वाङ्गहेमदंड न-  
 मोस्तुते' ॥ अथ दुंदुभिमन्त्रः 'दुंदुभे त्वं सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः । भ-  
 व भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्धनः ॥ यथा जीमूतघोषेण प्रहृष्यन्ति  
 च बर्हिणः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः ॥ यथा जी-  
 मूतशब्देन स्त्रीणां त्रासो भिजायतो । तथा तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे'  
 अथ शंखमंत्रः । 'पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मंगलानां च मङ्गलम् । विष्णुना  
 विधृतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव' ॥ अथ सिंहासनमंत्रः 'विजयो जयदो जे-  
 ता रिपुघाती शुभंकरः । दुःखहा धर्मदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ॥ एते



वै संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः। तेन सिंहासनेतित्वं देवैर्मन्त्रैश्च गीयसे ॥  
 त्वयि स्थितः शिवः शांतस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः । नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो  
 भव भूपतेः ॥ त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोस्तुते । तथैव कर्म-  
 चिह्नानि स्वानि पूज्यानि शिल्पिभिः ॥ लोहाभिसारिकं कर्म कृत्वैव मंत्र-  
 पूर्वकम् । नियमं कृत्वा तथाष्टम्यां पूर्वाह्णे स्नानमाचरेत् ॥ कुंकुमचंदनच-  
 म्पकचतुरामैः शैलपिष्टैश्च । चर्चितगात्रिं देवीं कुसुमैरभ्यर्चयेद्बहुभिः । कुमुदैः  
 सपद्मपुष्पैः सधूपदीपैः सनैवेद्यैः । मांसैर्बल्युपहारैर्मङ्गलशब्दैः समुच्छलितैः ।  
 विहितच्छत्रैर्यनैः स्यन्दनसितशस्त्रधारिजनलोकैः । तुष्टैः पश्वस्त्रादि च निवेद्यते  
 सर्वमेव भगवत्यै । दुर्गा सा पूजनीया च तद्दिनेद्रोणपुष्पकैः । ततः सङ्गं नम-  
 स्कृत्य शत्रूणां वधसिद्धये । इच्छेत विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः ।  
 पुनःपुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन् हृदये शिवाम् । सर्वं कृतेति कौरव्य अष्टम्यां  
 जागरं निशि । नटनर्तकगीतैश्च कारयेच्च महोत्सवम् । एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा  
 प्रभाते अरुणोदये । घातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकंधरान् । शतमर्धशतं वापि  
 तदर्घ्यं वा यथेच्छया । सुरासवधृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥ कापा-  
 लिकेभ्यस्तद्वेद्यं दास्यदासजने तथा । ततोपराह्णसमये नवम्यां वै रथे स्थिता-  
 म् ॥ भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा सशब्दवान् । कश्चिच्चोपोषितो वीरो  
 विधृतो न्येन खड्गवान् ॥ भूतेभ्यस्तु बलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं  
 सजलं चान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् । त्रींस्त्रीन्वारान्समूहेन दिग्विदिक्षु किरेद्वलि-  
 म् ॥ मंत्रश्च—‘बलिं गृह्णन्ति वमं देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ  
 रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः । असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । डा-  
 किन्यो यक्षवेतालायोगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागाविद्या  
 धरा नगाः ॥ दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शांति-  
 कर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः । मा विघ्नं मा च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ॥  
 सौम्या भवंतु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः’ इति । इति महाष्टमी ॥ महान-  
 वमी तु पूर्वयुता ग्राह्या । पूर्वोक्तवचनात् । ‘नवमी दुर्गाव्रते श्रावणी’ इति



महानवमी दीपिकोक्तेः । 'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्व-  
विद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्' इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेश्च ।  
भविष्येपि 'आश्वयुक्शुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता । सा महान-  
वमी नाम त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा' इति ॥ मूलमुपलक्षणम् । 'दूर्गापूजा तु नव-  
मी मूलाद्यृक्षत्रयान्विता । महती कीर्तिता तस्यां दुर्गा महिषमर्दिनी'  
इतिमदनरत्ने लैङ्गात् । अत्र पूजयेदित्यग्रे शेषः । यानि तु सा 'कार्योदयगा-  
मिन्यां तिथावुदयगामिन्याम्' इत्यादिप्रागुक्तानि । तानि नवमीभिन्नतिथि-  
पराणि । नवम्यां विशेषोक्तेः । वेधश्च मुहूर्तत्रयेणैव ज्ञेयः । यद्यपि हेमाद्रि-  
मते मुहूर्तद्वयात्मापि वेधोस्ति । तथापि सूर्योदय एव सः ॥ सायं तु त्रि-  
मुहूर्त एव । तदुक्तं दीपिकायां 'त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायं' इति ॥  
माधवोपि । 'सायं तूत्तरया तद्वत् न्यूनया नतु विद्ध्यते' इति ॥ तेन त्रि-  
मुहूर्तयोगे पूर्वा नवमी । पूर्वोक्तवचनात् । 'न कुर्यान्नवमी तात दशम्यां  
तु कदाचन' इति स्कान्दे परानिषेधाच्च ॥ त्रिमुहूर्तयोगाभावे तु निषिद्धापि  
परैव कार्येति निष्कर्षः ॥ यत्तु 'नवम्यां च जपं होमं समाप्य श्रवणेपि  
वा' इति संग्रहोक्तेः ॥ 'व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्वलिः' इति दे-  
वीपुराणाच्च ॥ नवम्यां होमबल्यादि विहितं तत्र 'आश्वयुक्शुक्लनवमी मुहूर्त  
वा कलायदि । सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः' इति  
सौरपुराणात् । 'सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि । बलिदानं प्रकर्त-  
व्यं तत्र देशे शुभावहम् ॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभङ्गो भवेन्नृप' इति  
मदनरत्ने देवीपुराणाच्च ॥ बल्यादौ परा कार्या ॥ उपवासादौ तु पूर्वे  
ति मदनरत्ने उक्तम् प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम् । यत्तु 'अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रना-  
शो भवेद्भुवम्' इति कालिकापुराणे । तत्संधिपूजापरम् । 'अष्टमीनवमीसिन्धौ  
तृतीया खलु कथ्यते' इति तत्रैव तदुक्तेः ॥ कामरूपनिबन्धे 'अष्टम्याः शेष  
दण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च । तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला' ।  
अष्टमीमात्रे भवत्येव । 'आश्विने पूजयित्वा तु अर्धरात्रेष्टमीषु च । घातयन्ति  
पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः' ॥ तथा 'कन्यासंस्थे रवावीशे शुक्लाष्ट-



म्यां प्रपूजयेत् । सोपवासो निशार्द्धं तु महाविभवविस्तरैः' ॥ तथा । 'पशु-  
घातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथा' इति । रूपनारायणीये देवोपुरा-  
णात् ॥ तत्रैव भविष्ये । 'तस्मादियं महापुण्या नवमी पापनाशिनी ।  
उपोष्या सुप्रयत्नेन सततं सर्वपार्थिवैः' ॥ निर्णयदीपे तु । महानवमी पर-  
दिनेपराह्णव्यापित्वे परा ॥ अन्यथा पूर्वा 'आवर्तनात् पूर्वकाले नवमी स्या-  
त् परेहनि ॥ दुर्गार्चा तत्र पूर्वद्युः पूर्वाह्णे त्वष्टमी यदि' इति धौम्यवचनादि-  
त्युक्तम् ॥ अस्य धातुशारदानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विमृश्यम् ॥ यानि तु  
'नन्दायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम् । भद्रायां गोकुलक्रीडा तत्र  
राज्यं विनश्यति' इति ॥ 'नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते । दशमीं  
वर्जयेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा' इति ॥ 'नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं  
दशासु च ॥ भद्रायांगोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते' ॥ इति ब्रह्मवैवर्तनारदा-  
दिवचनानि शुद्धाधिकनिषेधपराणि, इति मदनररत्ने तथा कालिकापुरा-  
णे । 'नवम्यां बलिदानं तु कर्तव्यं वै यथाविधि । जपं होमं च विधिवत्  
कुर्यात्तत्र विभूतये' ॥ केचित्तु 'पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्'  
इति पूर्वोक्तदेवीपुराणादष्टम्यां होममाहुः ॥ अन्ये तु द्विविधवाक्यवशादष्ट-  
म्यामारभ्य नवम्यां समापयन्ति ॥ समुच्चयस्तु युक्तः ॥ रुद्रया  
मले तु विकल्प उक्तः ॥ तत्तु निर्मूलं ॥ दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यादिगौड-  
ग्रन्थेष्वपि नवम्यां होम उक्तः ॥ होमे च विशेष उक्तो डामरतन्त्रे ॥  
'पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् । होमयोद्विधिवद्भक्त्या दशांशेन  
नृपोत्तम । रुद्राध्याये यथा होमं मन्त्रेणैकेन साधयेत् । तथा स्तोत्रजपे हो  
मं श्लोकैर्नैकेन साधयेत् ॥ यद्वा सप्तशतीजप्यहोममन्त्रो नवाक्षरः' । 'ऐं ह्रीं  
क्लीं चामुंडायै विच्चे इति नवाक्षरः' इति केचित् ॥ पूजोक्तो ग्राह्य इति तु  
युक्तम् ॥ रुद्रयामलेपि ॥ 'प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा । किंशु-  
कैः सर्पपैः पूगैर्लाजदूर्वाकुरैरपि ॥ यैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा । र-  
क्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः । प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च



क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च' इति। रहस्ये तु 'प्रतिश्लोकं  
च जुहुयात् पायसं तिलसर्पिषा' इत्युक्तम्। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां तु तिलैर्ज-  
यन्तीमन्त्रेण च होम उक्तः ॥ 'पुरश्चरणकार्ये तु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः' इति  
कालिकापुराणाद्विल्वपत्रैश्चेति स्मार्ताः ॥ तन्न ॥ अत्र मानाभावात्। अथ  
बलिदानम् बलिदानम् ॥ तत्राश्वमेधछागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरं प्रा-  
शस्त्यं फलविशेषश्चान्यतोवसेय इति दिक् ॥ बलिप्रकारस्तु  
देवीपुराणे- 'कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत्। द्रोणपुष्पैश्च वि-  
त्वाप्रजातीपुत्रागचंपकैः ॥ पञ्चाब्दं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम्।  
विधिवत् कालिकालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत्'। 'ॐ कालिकालि यज्ञे-  
श्वरि लोहदण्डायै नमः' इति मन्त्रः ॥ 'तदुत्थरुधिरं मांसं गृहीत्वा पूजनादिषु'।  
आदिशब्दात्। चरकीविदारिपापराक्षस्यः। नैऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिक  
मन्त्रितम्'। मन्त्रस्तु वक्ष्यते ॥ तथा- 'तस्याग्रतो नृपः स्नायात्कृत्वा शत्रुं तु  
पैष्टिकम्। खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात् स्कन्दविशाखयोः,। अशक्तौ ब्राह्म-  
णेन च कूष्माण्डादिभिर्बलिदानं कार्यम् ॥ तदुक्तं कालिकापुराणे- 'कू-  
ष्माण्डमिक्षुदण्डं च मांसं सारसमेव च। एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः  
सदा' ॥ रुद्रयामलेपि- 'छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम्।  
वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना' ॥ तथा- 'ब्राह्मणेन सदादेयं कूष्माण्डं  
बलिकर्मणि। श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत्' ॥ छेदे विकल्पः ॥  
'भाषात्रेण बलिर्देवो ब्राह्मणेन विजानता' ॥ कालिकापुराणे- 'उत्तराभि-  
मुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा। निरीक्ष्य साधकः पश्चादिसं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलि-  
रूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापाद्विनाशनम्'। चामुण्डाबलिरूपाय  
बले तुभ्यं नमोस्तु ते। यज्ञार्थं बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ अतस्त्वां  
घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः। ऐन्हीश्रीमिति मन्त्रेण तं बलिं मत्स्वरू-  
पिणम् ॥ चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि तस्य तु भैरव। रसना त्व



चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः । ह्रीं-ह्रींखड्गेतिमन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूज  
जयेत् । पूजयित्वा ततः खड्गं ओहुंफडिति मन्त्रकैः ॥ गृहीत्वा विमलं खड्गं  
छेदयेद्वलिमुत्तमम् । ॐ ह्रींऐं-ह्रींकौशिकीति रुधिरेणाप्यायतामिति ॥  
'बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः' ॥ मत्स्यसूक्ते । 'नवम्यां  
पूर्ववत् पूजा कर्तव्या भूतिमिच्छता । दक्षिणां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय  
निवेदयेत्' ॥ अथात्र प्रसङ्गाच्छतचण्डीविधानमुच्यते—रुद्रयामले ॥ 'शतच

चण्डीविधानम्  
ण्डीविधानं च प्रोच्यमानं शृणुष्व तत् । सर्वोपद्रवनाशार्थं  
शतचण्डीं समारभेत् । षोडशस्तंभसंयुक्तं मण्डलं पल्लवोज्ज्व  
लम् । वसुकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्याद्विभागतः । पक्षेष्टकचितां स्म्यामुच्छ्रा-  
ये हस्तसंमिताम् । तत्र वर्णरजोभिश्च कुर्यान्मण्डलकं शुभम् । पञ्चवर्ण-  
वितानं च किंकिणीजालमण्डितम् । आचार्येण समं विप्रान् वरयेद्दश  
सुव्रतान् ॥ ईशान्यां स्थापयेत् कुम्भं पूर्वोक्तविधिना चरेत् । वारुण्यां च  
प्रकर्तव्यं कुण्डं लक्षणलक्षितम् । मूर्तिं देव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन  
वै । तदर्धेन तदर्धेन तदर्धेन महामते । अष्टादशभुजां देवीं कुर्याद्वाष्टकराम  
पि । पट्टकूलयुगच्छत्रां देवीं मध्ये निधापयेत् ॥ देवीं संपूज्य विधिवज्जपं  
कुर्युर्दश द्विजाः । शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णवम् ॥ चण्डीं  
सप्तशतीं मध्ये संपुटोयमुदाहृतः । एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् ।  
रूपाणि क्रमशस्तद्वत्पूजनादिकमाचरेत् । पञ्चमीदिवसे प्रातर्होमं कुर्या  
द्विधानतः । गुडूचीं पायसं दूर्वां तिलान् शुक्लान्यवानपि । चण्डीपाठस्य  
होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः । होमं कुर्याद्ग्रहादिभ्यः समिदाज्यचरुन्  
क्रमात् । हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद्विप्रेभ्यो दक्षिणां क्रमात् । कपिलां गां नीलमणिं  
श्वेताश्वं छत्रचामरे । अभिषेकं ततः कुर्युर्यजमानस्य क्रतुविजः । एवं कृते मरेशान  
सर्वसिद्धिः प्रजायते' ॥ अथ सहस्रचण्डीसाचतत्रैवोक्ता—'सहस्रचण्डी विधिव  
सहस्रचण्डी च्छृणु विष्णो महामते । राज्यभंशे महोत्पाते जनमारे महाभये ।  
गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा । इत्यादिविविधे दुःखे



क्षयरोगादिजे भये । सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा कारयेत्तथा । जापकास्तु  
 शतंप्रोक्ता विशद्वस्तश्चमण्डपः । भोज्याः सहस्रं विशेषेन्द्रा गोशतं दक्षिणांदिशेत् ॥  
 गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च । सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम् ।  
 पञ्चनिष्कमिता मूर्तीः कर्तव्या वार्धमानतः । अष्टादशभुजा देवी सर्वा-  
 युधविभूषिता । अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं प्रभो । शतं वा  
 नियताहारः पयःपानेन वर्तयेत् । एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत् ॥  
 तस्य स्यात् कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा' इति ॥ एतद्वयं यद्यपि  
 महानिबन्धेषु नास्ति तथापि प्रचरद्रूपत्वादुक्तमिति दिक् ॥ वाराहीतंत्रे ।  
 'संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्सयामये तथा । जातिभंशे कुलोच्छेदेऽप्या-  
 युषो नाश आगते । वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये । तथैव  
 त्रिविधोत्पाते तथा चैवोपपातके । कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः संपद्यते शुभम् ।  
 श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथापरा । मनसा चिन्तितं देवि सिद्धये  
 दष्टोत्तराच्छतात् ॥ सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा ॥ भुक्त्वा  
 मनोरथान् कामान्नरोमोक्षमवाप्नुयात् । चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्धयं  
 न्ति सिद्धयः' ॥ इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः ॥ अथ नवरा-  
 त्रपारणानिर्णयः ॥ सा च दशम्यां कार्या ॥ 'आश्विने मासि  
 शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्चनवमी भवेत् । त्रिरात्रं  
 वापि कर्तव्यं सप्तम्यां हि यथाक्रमम्' इति हेमाद्रौ धौम्यवचनात् ॥ 'नवमी  
 तिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्' इति ॥ प्रागुक्तवचनैर्नवमीपर्यन्तं प्रधानभू-  
 तपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्चाङ्गत्वेन तत्पर्यन्तत्वात् ॥ आदिशब्देनोपवासोक्ते  
 पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रते नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च ॥ नच पारणान्तत्वेन त्रिरात्रत्वं ।  
 विष्णुत्रिरात्रादौ तथाप्रसक्तेः ॥ नचात्रोपवासे मानाभाव इति वाच्यम् ।  
 'एवं च विन्ध्यवासिन्या नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचिते-  
 न च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे' इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः  
 नवरात्रस्याख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च नन तिथिन्हासेऽष्टावप्युपवा-



सा भवन्तीति कथं समाख्या ॥ तेन कर्मविशेषे नवरात्रशब्दो रूढः अतए-  
 वोक्तं देवीपुराणे। 'तिथिवृद्धौ तिथिन्हासे नवरात्रमपार्थकम्' इति चेन्न तिथि-  
 न्हासेपि नवतिथीनामुपोष्यत्वान्नवरात्रत्वाक्षतेः ॥ एतेन रात्रीणांप्राधान्यात्  
 न्हासेअमामादायनवत्वमिति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ यत्तु देवीपुराणे । 'कन्या-  
 संस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथ वैकाशी नक्ताशी वा-  
 थवा वद' । इति व्रतचतुष्टयमुक्तं तल्लौहाभिसारिकविषयम् । तस्य 'जयाभि-  
 लाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् । लौहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्ट-  
 मी' इति भाविष्येऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः ॥ रूपनारायणेन तु नन्दादिव्रतप्रयोगं पृथ-  
 गेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् ॥ यदपि निर्णयदीपे 'आश्विने शुक्लपक्षे  
 तु नवरात्रमुपोषितः । नवम्यां पारणं कुर्यादशमीमिश्रिता न चेत् । दशमीमि-  
 श्रिता यत्र पारणे नवमी भवेत् । दुःखदारिद्र्यदा ज्ञेया तथा व्रतविनाशिनी' इति  
 ब्राह्मनाम्ना लिखितं वचनम् ॥ यच्च रुद्रयामले इति वदन्ति 'अष्टम्या सह  
 कार्या स्यान्नवमी पारणादिने । यो मोहादशमीवेधो नवम्यां चण्डिकां यजे-  
 त् ॥ पारणं च प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् । नवम्यां पारिता देवी कुल-  
 वृद्धिं प्रयच्छति ॥ दशम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति वै । तस्मात्तु पारणं  
 कुर्यान्नवम्यां विबुधाधिप' इत्यादीनि ॥ तानि यदि समूलानि तदा लौहाभिसारि-  
 कनन्दादिव्रतचतुष्टयविषयाणि ॥ तस्याऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक् ॥  
 अन्यथा महाष्टम्यां परविद्धायां ता(पा)रणाविधाने पूर्वनिबन्धैर्विरोधो दुर्वारः  
 स्यात् ॥ यानि तु कैश्चिल्लिखितानि नवम्यां पारणाविधायकानि वचनानि ता-  
 नि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि ॥ समूलत्वेपि यदा दिनद्वये नवमी, तदा  
 द्वितीयदिन उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा न किंतु नवमीमध्ये कार्येत्येव नेयानि  
 शिवरात्रिपारणावत् ॥ अत्र केचित्पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ तदतिक्रम्य पा  
 कुर्यादित्याहुः ॥ तन्मन्दम् ॥ 'काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वंतरा मृतसूतके । तत्र  
 काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्' इति माधवीये कौर्मोक्तेः ॥ 'व्रतयज्ञ-  
 विवाहेषु श्राद्धे होमेर्चने जपे । प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्' इति



विष्णुवचनाच्चशौचमध्येपि तत्कर्तव्यतावगतेः ॥ पारणांतत्वाद्ब्रतस्य ॥  
 प्रारम्भस्तु तेनैवोक्तः । 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो ब्रतसत्रयोः । नांदीमुख  
 विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ' इति ॥ रुद्रयामलेऽपि 'सूतके पारणं कुर्या-  
 न्नवम्यां होमपूर्वकम् । तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शाक्तितः' इति ॥  
 तदन्ते सूतकान्ते ॥ एवं स्त्रीभिरपि रजोदर्शनमध्ये कर्तव्यमेव पारणम् ।  
 'संप्रवृत्तेपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्' इति माधवीये ऋष्यशृङ्गव-  
 चनात् । द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् ॥ 'प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्राजो  
 भवेत् । न तत्रापि ब्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन' इति । तत्रैव सत्यव्रत-  
 वचनात् ॥ किंच । एकादश्यादौ पञ्चषाशौचपाते यासान्ते पारणापत्तिः ॥  
 मासोपवासान्ते पञ्चषाशौचपाते जीवनासंभवश्च ॥ यत्तु 'नियमस्था यदा  
 नारी प्रपश्येदन्तरा रजः । उपोष्यैव तु ता रात्रीः स्नात्वा शेषं चरेद्ब्रतम्' इ-  
 त्यङ्गिरोवचनम् यच्चहारीतवचनम् 'नियमस्था ब्रतस्था स्त्री रजःपश्येत् कथं  
 चन । त्रिरात्रं तु क्षिपेदूर्ध्वं ब्रतशेषं समापयेत्' ॥ तद्विधोपवासविषयम् ॥  
 तासां तत्र भोजननिषेधादिति केचित् ॥ वयं तु प्रागुक्तसत्यव्रतवचने दीर्घतप  
 सामिति विशेषणोपादानात् द्वादशीव्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयं  
 निषेधः । त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषु तु रजोमध्ये पारणा इति ब्रूमः ॥ आशौ-  
 चमध्ये सर्वापि पारणा भवति प्रागुक्तकौर्मवचनादिति सिद्धम् ॥ अथ चोप-  
 वासपारणानिर्णयः सर्वव्रतेषु बोद्धव्य इत्यलं भूयसा । दशम्यां देवीं विस-  
 र्जयेत् ॥ तदुक्तम् दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे ॥ 'ततः प्रातः पूज-

१-ब्राह्मणभोजनं भूयस्यादिदानं च सूतकान्ते इत्यर्थः ॥ रामचन्द्रभट्टास्तु-नव-  
 रात्रेहोमस्य पूजारूपत्वेन मुख्यत्वात्तस्य चानन्यसाध्यत्वेनाशौचेऽसंभवाद'नतुदानार्चनं  
 जपम्'इति निषेधात्तत्समाप्तिं विना च नियमरूपोपवाससमाप्त्यसंभवादाशौचान्ते होमा  
 दि कृत्वा पारणं कार्यम् । यैस्तु होमो न क्रियते, तेषां सूतकादिमध्ये पारणं भवेदित्या-  
 दुरिति टीका ॥ २ केचिदित्यरुचिः-निषेधस्य रागप्राप्तगोचरत्वेन वैधपारणागोचरत्वायो-  
 गात् । विधवाया भोजननिषेधादर्शनाच्चेतीति टीका ॥



दशमीनिर्णयः यित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम् । संप्रेषणं तु कर्तव्यं गीतवादि-

त्रनिःस्वनैः। रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि  
धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे । महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालि  
नि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते । इति संप्रार्थ्य देवीं तु ततः  
उत्थापयेद्बुधः । उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च । कुरुष्व मम  
कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह । गच्छगच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि  
चण्डिके । ब्रज स्रोतो जलं वृद्धयै स्थायीतां च जलेत्विह' इति जलं नीत्वा ।  
'दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते। संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय  
वै। इमां पूजां मया देवि यथा शक्त्योपपादिताम् । रक्षार्थं त्वं समादाय ब्रजस्व-  
विजयादशमी-स्थानमुत्तमम्' इति जले प्रवाहयेत् ॥ इयमेव विजयादशमी ॥

निर्णयः सा च द्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे पूर्वा ग्राह्या ॥ तदुक्तं हे-  
माद्रौ स्कान्दे 'दशम्यां तु नरैः सम्यक्पूजनीयाऽपराजिता । ऐशानीं  
दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः । या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्यापराजि-  
ता । क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः । नवमीशेषयुक्तायां दशम्या  
मपराजिता । ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी' ॥ तथा 'आश्विने शुक्ल-  
पक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः । एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्' इति ।  
यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः, परदिने चाल्पापि तद्योगिनी, तदा परै-  
व ॥ तथा च हेमाद्रौ व्रतकाण्डे कश्यपः 'उदये दशमी किञ्चित्संपूर्णैकाद-  
दशी यदि । श्रवणर्क्षे यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां  
काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः । उल्लंघयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः' इति ।  
कालेपराह्णे ॥ परदिनेऽपराह्णे श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव ॥ मदनरत्ने  
प्येवम् ज्योतिर्निबन्धे रत्नकोशे च नारदः 'ईषत्संध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदु-  
द्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः । इषस्य दशमी  
शुक्ला पूर्वविद्धा न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्ता राज्ञां पट्टाभिषेचने । सूर्यो-  
दये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां



विदुर्बुधाः । अत्रायं निर्गलितोर्थः ॥ अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः ॥ तत्रैव  
 पूजाद्युक्तेः ॥ प्रदोषे गौणः ॥ तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा प्रदोषव्याप्ते-  
 राधिक्रियात् ॥ दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा । अपराह्णव्याप्तेराधिक्रियात् ॥  
 इदं शुद्धतिथौ अन्यकाले श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः ॥ दिनद्वयेऽपराह्ण-  
 स्पर्शे तु पूर्वा ॥ तत्रापि परदिनेऽपराह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् ॥ अत्र वि-  
 शेषो भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये 'शमीयुक्तं जगन्नाथं भक्तानाम-  
 भयंकरम् । अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः' ॥ शमीमंत्रस्तु हेमाद्रौ  
 गोपथब्राह्मणे । 'अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं  
 धन्यां प्रपद्येहं शमीं शुभाम्' । तथा भविष्ये 'शमी शमयते पापं शमी लोहितकं  
 टका । धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी । करिष्यमाणयात्रायां यथाका-  
 लं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नं कर्त्तुं त्वं भव श्रीरामपूजिते' इति ॥ तथा 'गृहीत्वा सा-  
 क्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम् । गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति ।  
 ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह' इति ॥ अत्रैव बलिनीराजनमुक्तं  
 कृत्यरत्ने ॥ तत्र मंत्रः ॥ 'चतुरङ्गबलं मह्यं निररिष्टं व्रजत्विह । सर्वत्र विज-  
 योमेस्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि' इति ॥ गौडनिबन्धे ज्योतिषे ॥ 'कृत्वा नीराजनं  
 राजा बलवृद्धयै यथाक्रमम् । शोभनं स्वञ्जनं पश्येज्जलगो गोष्ठसंनिधौ' ॥ अस्य  
 आश्विनपौर्ण- फलानि शुभाशुभदेशाश्च तत्रैव ज्ञेयाः ॥ आश्विनपौर्णमासी  
 मासीर्निर्णयः परा ग्राह्या । 'सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमापौर्णमास्यौ परे'  
 इति दीपिकोक्तेः ॥ अत्र विशेषस्तिथितत्त्वे लैङ्गे । 'आश्विने पौर्णमास्यां तु  
 चरेज्जागरणं निशि ॥ कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये । कौमु-  
 द्यां पूजयेत्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम् । सुगंधिर्निशि सद्देष अक्षैर्जागरणं  
 चरेत्' ॥ तथा । 'निशीथे वरदा लक्ष्मीः कोजागतीति भाषिणी । तस्मै वित्तं  
 प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः' इति ॥ अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तमाश्वलाय-  
 नेन ॥ 'आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म' इति तच्छेषपर्वणि कार्यम् ॥ विकृति-  
 त्वात्तत्र पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दैवकर्मत्वात् । आश्रयणं तु पर्वणि कार्यम् ।



‘शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते’ इति शौनकोक्तेः ॥ तत्रापि शेषपर्वणि कार्यमिति प्रागुक्तम् ॥ तच्च ‘व्रीहिभिरिष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेत यवेभ्यो यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत व्रीहिभ्यः’ इति श्रुत्या दर्शपूर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमादर्शेष्ट्याः परं पौर्णमासेष्ट्याश्च प्राग्भवतीति हेमाद्र्यादयः ॥ ‘दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणं प्राक्पौर्णमासाच्चतत्’ इति दीपिकोक्तेश्च । तच्चाग्रयणं त्रेधा व्रीह्याग्रयणं यवाग्रयणं श्यामाकाग्रयणं चेति ॥ एषां कालः श्रुतौ ॥ ‘गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शदद्वसन्तयो यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वाप्तकालेनान्येन पुराणैर्वा’ इति ॥ आपस्तम्बोपि । ‘वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यधर्तु वेणुयवैः’ इति ॥ तत्रापि श्यामाकाग्रयणमनित्यम् इतरेतु अनाहिताग्नेर्नित्ये यवाग्रयणं च कार्यमिति स्मार्तवृत्तावुक्तत्वात् सूत्रे व्रीहियवदेवतासंबद्धानामत्र मन्त्राणामाम्नानाच्च । आहिताग्नेस्तु यवाग्रयणस्याप्यनित्यत्वम् । ‘अपिवा क्रिया यवेषु’ इति सूत्रात् । यद्वा व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रता । श्यामाकैस्तु प्रस्तरं कुर्यान्नाग्रयणम् । यदि वा तदपि समानतन्त्रमित्यादिनारायणवृत्तौ परिश्रमवतां सुलभमित्यलम् ॥ इदं च पर्वाभावे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रे कृत्तिकादिविशाखान्ते कार्यमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ बौधायनीये केशवस्वामिनाप्येवमुक्तम् ॥ परिशिष्टे—‘श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैश्चान्योन्यकालतः । प्राग्यष्टुं युज्यते वश्यं न ह्यत्राग्रयणात्ययः’ ॥ त्रिकाण्डमण्डनोप्येवम् । यदा त्वेतदाश्विनपौर्णमास्यां क्रियते तदैककालत्वादाश्वयुजीकर्मणोऽस्य च समानतन्त्रता भवति तदेतद्वृत्तिकृता ‘एकवर्हि-रिध्माज्य’ इति सूत्रे स्पष्टमुक्तम् ॥ अस्याकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां कात्यायनेन—‘नित्ययज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च । अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा । भोजने पतितान्नस्य चरुवैश्वानरो भवेत्’ । कारिकापि—‘अकृताग्रायणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः । वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा’ इति । ऋग्विधाने तु—‘समिन्द्रायामन्त्रं च वर्षे वर्षे जपेच्छतम् । आग्रयणं यदा न्यूनं तदा संपूर्णमिति तत्’ इत्युक्तम् ॥ एतच्चा-



पदि मलमासे कार्यमन्यथा नेति प्रागुक्तम् ॥ अन्योप्याहिताग्न्यादिविशेषः ॥  
 शौनकादेर्ज्ञेयः इत्यलं बहुना ॥ इत्याश्विनमासः ॥ अथ कार्तिकमासः ॥  
 तुलासंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्याः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् । अथ  
 कार्तिकस्नानम् कार्तिकस्नानम् ॥ तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृतिपादयोः ।  
 'तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च  
 महापातकनाशनम्' इति सौरमास उक्तः । प्राच्याश्चैतदेवाद्वियन्ते । दाक्षि-  
 णात्यास्तु—'आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्तिकस्य  
 व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः' इति पाद्मोक्तेः ॥ भार्गवार्चनेच—'प्रार-  
 भ्यैकादशीं शुक्लमाश्विनस्य तु मानवः । प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्तिक-  
 भास्करः' इति विष्णुरहस्योक्तेः ॥ हेमाद्रावादित्यपुराणे—'पूर्णआश्वयुजे  
 मासि पौर्णमास्यां समाहितः' इत्युक्ता—'मासं समग्रं परया च भक्त्या  
 समाप्यते कार्तिकपौर्णमास्याम्' इत्यन्तेभिधानाच्चाश्विनशुक्लैकादश्यां  
 पौर्णमास्यां वारभ्य कार्तिकशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यांवा समापयेदित्याहुः ।  
 मदनपारिजाते विष्णुः—'कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जिते-  
 द्रियः । जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते' ॥ अत्र देशविशे-  
 षः पाद्मे कार्तिकं प्रक्रम्य—'कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गंगायामपि तत्समः ॥  
 ततोधिकः पुष्करे स्यात् द्वारवत्यां च भार्गव । पुण्याः पुर्यश्च सप्तैवं मुनयो  
 मथुराधिका । दुर्लभः कार्तिको विप्रा मथुरायां नृणामिह । यत्रार्चितः  
 स्वकं रूपं भक्तेभ्यः संप्रयच्छति' इति । इदं च स्नानं काशीस्थपञ्चनदे  
 प्यतिप्रशस्तं । 'शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत्प्राप्यते फलम् । तत्कार्तिके  
 पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥ कार्तिके बिंदुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः ।  
 स्नास्यत्यनुदिने भानौ भानुजातस्य भीः कुतः' इत्यादि काशीखण्डोक्तेः ॥  
 भानुजो यमः । इदं च प्रातःस्नानं संध्यां च कृत्वा कार्यम् । तेन विने-  
 तरकर्मानधिकारादिति वर्धमानः । यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिः,  
 तथापि वचनबलादनुदितहोमवद्भविष्यति ॥ स्नानमंत्रश्च तत्रैव—'कार्तिकेऽ-



हं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन । प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥  
 इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायात् व्रती नरः' इति । अर्ध्यमन्त्रोपि तत्रैव ।  
 'व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम । गृहाणाढ्यं मया दत्तं दनुजै-  
 द्रनिषूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने। गृहाणाढ्यं मया दत्तं  
 राधया सहितो हरे ॥ इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्ध्यं मह्यं प्रयच्छति । सुवर्ण-  
 रत्नपुष्पांबुपूर्णशंखेन पुण्यदात् ॥ सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः'  
 इति। एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात् । 'वाराणस्यां पंचनदेऽत्र्यहं स्नातास्तु  
 कार्तिके । अग्नी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोतिनिर्मलाः' इति काशीखण्डोक्तेः ॥  
 अथ मालाधारणम् ॥ तत्र स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये—'निवेद्य केशवे मालां  
 तुलसीकाष्ठसंभवाम् । वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् । न जह्यात्तु-  
 लसीमालां धात्रीमालां विशेषतः । महापातकसंहर्त्री धर्मकामार्थदायिनीम्' ॥  
 विष्णुधर्मै—'स्पृशेत्तु यानि लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणाम् । तावद्वर्ष-  
 सहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् । मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्रीतुलसिसंभवम् ।  
 वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटि दिवं वसेत् । तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्ण  
 जनप्रिये । विभर्मि त्वामहंकण्ठे कुरुमां कृष्णवल्लभम् । एवं संप्राप्त्यर्थं विधिवन्मालां  
 कृष्णगलेऽर्पिताम् ॥ धारयेत्कार्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम्' इति । अत्र मूलं  
 चिन्त्यम् ॥ तथा काशीखण्डे 'कार्तिके मासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः ।  
 बिन्दुतीर्थकृतस्नानैस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः' ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंह  
 पुराणे । 'अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षेर्नरकं  
 नाश्रुते नरः । विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्तिके योर्चयेद्भक्त्या  
 वाजपेयफलं लभेत्' ॥ स्कान्दे कार्तिकमाहात्म्ये । 'मालतीमालया वि-  
 ष्णुः केतक्या चैव पूजितः । समासहस्रं सुप्रीतो भवेत्ते मधुसूदनः' ॥ पृथ्वी-  
 चन्द्रोदये पादौ 'कार्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेश्वरः । जन्मकोटिषु  
 विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे' ॥ तथा ॥ 'कार्तिके केशवे पूजा येषां नाम्ना सुतैः  
 कृता । तेनिर्भर्त्स्य रवेःपुत्रं वसन्ति त्रिदिवे सदा ॥ तुलसीदललक्षेण कार्तिकेयो



चयेद्धरिम् ॥ पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभतेफलम्' तथा स्कान्दे कार्ति-  
 कमाहात्म्ये ॥ 'धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात्पिण्डदानं महामुने । मुक्तिं प्रया-  
 न्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु ॥ धात्रीफलविलिप्तान्गो धात्रीफलविभूषितः ।  
 धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् । धात्रीच्छायां समाश्रित्य यो  
 चयेच्चक्रधारिणम् । पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः' ॥ तथा स्कान्दे  
 'कार्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्रीवृक्षोपशोभिते । वने दामोदरं विष्णुं चित्रान्नै-  
 स्तोषयेद्विभुम् । मूलेन पायसेनाथ होमं कुर्याद्विचक्षणः । ब्राह्मणान्भो-  
 जयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः' इति ॥ तथा कार्तिके द्विदलव्रतं प्रागुक्तं  
 'कार्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति । पादोपि कार्तिकमाहात्म्ये 'राजिकामाढकं  
 चैव नैवाद्यात् कार्तिकव्रती । द्विदलं तिलतैलं च तथान्यन्मतिदूषितम्' ॥  
 स्कान्देपि ॥ 'कार्तिके वर्जयेत्तद्वत्द्विदलं बहुबीजकम् । माषमुद्रमसूराश्च  
 चणकाश्च कुलित्थकाः । निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम् ।  
 नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्' ॥ अत्र केचिदुत्पत्तिसमये दल-  
 द्वयं यस्य भवति । तद्भूतपूर्वगत्या द्विदलमित्युच्यत इत्याहुः ॥ उदाहरन्ति  
 च । 'बीजमेव समुद्भूतं द्विदलं चाङ्गुरं विना । दृश्यते यत्र सस्येषु द्विदलं  
 तन्निगद्यते' इति अन्ये तु लक्षणायां मानाभावाद्वचनस्य निर्मूलत्वाद्द्विदला-  
 त्मकं यस्य स्वरूपं तदेव वर्जयेदित्याहुः ॥ तथा नारदीये 'कार्तिके वर्जयेत्तैलं  
 कार्तिके वर्जयेन्मधु । कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्तिके शुक्तसंधितं' । कांस्यं  
 तत्पात्रभोजनं । शुक्तं पर्युषितं । संधितं लवणशाकः । तत्रैव 'कार्तिके विष्णु-  
 मूर्त्यग्रे दीपदानादिवं व्रजेत्' ॥ तथा 'कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्म-  
 विमोचनी' । तथा 'कार्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यपरोऽथवा । एकान्तरो-  
 पवासी वा त्रिरात्रोपोषितोपि वा । षड् वा द्वादश पक्षे वा मासं वा वरवर्णिनि ।  
 एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन भैक्षेण व्रजेत परमं पदम्' ॥  
 अन्येपि नियमाः प्रागुक्ताः ॥ ग्राह्यमुक्तं स्कान्दे ॥ 'व्रीहयो यवगोधूमाः  
 प्रियंगुतिलशालयः । एते हि सात्विकाः प्रोक्ताः स्वर्गमोक्षफलप्रदाः' ॥ का-



शीखण्डे । 'ऊर्जे यवान्नमश्रीयाद्देवान्नमथ वा पुनः । वृताकं सूरणं चैव शु-  
कशिबीश्व बर्जयेत्' । पृथ्वीचन्द्रोदये पादौ । 'नोजो वन्ध्यो विधातव्यो  
व्रतिना केनचित् कचित्' ॥ तथा नारदीये 'अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं  
दामोदरप्रियम् । तिर्यग्योनिमवामोति नात्र कार्या विचारणा' ॥ अन्यान्यपि  
ताम्बूलतैलकेशकर्तनादिवर्जनसंकल्परूपाणि प्रागुक्तानि ॥ तथा कार्तिके आ-  
काशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे ॥ 'तुलायां तिलतैलेन सायंका-

आकाशदीपः ले समागते । आकाशदीपं योदद्यान्मासमेकं हरिं प्रति । महतीं

श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसंपदम्' इति ॥ तद्विधिश्च हेमाद्रावा-  
दित्यपुराणे ' दिवाकरेस्ताचलमौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणम् ॥ यूपारु-  
तिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि । यवाङ्गुलच्छिद्रयुतास्तुमध्येद्वि-  
हस्तदीर्घा अथ पट्टिकासु । कृत्वा चतस्रोऽष्टदलारुतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशा-  
नुसारी । तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ । निवेद्य  
धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज्ञे । प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृ-  
भ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः' ॥ इति । अपराकै त्वन्यो मन्त्र उक्तः ।

यथा । 'दामोदराय नमसि तुलायां लोलया सह ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमो-

नंताय वेधसे' ॥ इति कार्तिकरुक्मचतुर्थी करकचतुर्थी । सा

करकचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा तत्रैव पूजायाम्ना-

नात् ॥ कार्तिकरुक्मद्वादशी गोवत्ससंज्ञा । सा प्रदोषव्यापिनी

गोवत्सद्वादशी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा । युग्मवाक्यात् । 'वत्सपूजा वटश्चैव

कर्तव्या प्रथमेहनि' इति निर्णयामृतेऽभिधानाच्च ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने

भविष्ये 'सवत्सां तुल्यवर्णां च शीलिनीं गां पयस्विनीम् ॥ चंदना

दिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् । अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतै-

स्तिलैः । पादमूले तु दद्याद्द्वै मन्त्रेणानेन पाण्डवाक्षीरोदार्यवसंभूते सुरासुरम-

रुक्ते । सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोनमः ॥ ततो माषादिसंसिद्धान् वटका-

न्विनिवेदयेत् । सुराभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता । सर्वदेवमये ग्रासं



मया दत्तमिमं ग्रस । ततःसर्वमये देवि सर्वदेवैरलंकृते । मातर्ममाभिलषितं स-  
फलं कुरु नन्दिनि । इति प्रार्थयेत् ॥ तथा—‘तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिरा-  
गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत्’ । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—आश्विने  
कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथिषुक्तः सर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥ नी-  
राजयेयुर्देवास्तु विप्रान् गाश्च तुरंगमान् । ज्येष्ठाञ्छेष्ठाअघन्यांश्च मातृमुख्याश्च  
योषितः’ इति ॥ निर्णयामृते स्कान्दे । ‘कार्तिकस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां निशा  
मुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति’ ॥ मन्त्रस्तु । ‘मृत्युना पाशदण्डाभ्यां  
कालेन श्यामया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतां मम’ इति । कार्तिक-

कृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । तदुक्तं हे-  
अभ्यङ्गस्नानं माद्रौ निर्णयामृते च भविष्योत्तरे । ‘कार्तिके कृष्णपक्षे  
तु चतुर्दश्यामिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः’ । इनश्च-  
न्द्रः । मदनरत्ने ‘विभूदय’ इति पाठः ‘दिनोदय’ इति पाठात् सूर्योदयोत्तरं त्रि-  
मुहूर्ते स्नानं वदतां गौडानां तदनुसारिणां चाज्ञातैव । ‘पूर्वविद्धचतुर्दश्यां का-  
र्तिकस्य सिते तरे । पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः’ इति ॥ स्मृ-  
तिदर्पणेपि ‘चतुर्दशी चाश्वयुजश्च कृष्णास्वात्यर्थयुक्ता च भवेत् प्रभाते स्नानं  
समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकामैः’ इति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये-  
पादौ ‘आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विभूदये । तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरक-  
भीरुणा’ इति ‘कर्तव्यं मङ्गलस्नानं नरैर्निरयभीरुभिः’ इति कालादर्शपाठः । उभय-  
त्राश्वयुगित्यमावास्यान्तमासमभिप्रेत्योक्तम् । तथा—‘तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा  
दीपावल्याश्चतुर्दशी’ । प्राप्येति शेषः । ‘प्रातःस्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति’  
इति । दिनद्वयेपि चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेऽप्यरुणोदये संपूर्णे खण्डे वा दि-  
नद्वये चतुर्दशीसमत्वे च पूर्वदिनेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । ‘पूर्वविद्धचतुर्दश्याम्’ इति  
वचनात् । पूर्वदिने परदिन एव वा सत्त्वे सैव ग्राह्या । दिनद्वयेऽप्यसत्त्वे  
अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ ‘पक्षे प्रत्यूषसमये’ इत्युक्तेः । वक्ष्यमाणवचना-  
च्च । तदभावे तु चतुर्दशीन्हासं पूर्वैर्युः प्रवेश्य पूर्वेऽन्विह त्रयोदशीमध्य एवा-



भ्यङ्गंकुर्यादिति दिवोदासः ॥ केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति—  
 'तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् न्हासो वृद्धिः परेहनि । तावान् ग्राह्यः स पूर्वचुरदृ-  
 ष्टोपि स्वकर्मणि' इति। तन्मन्दम्। नहीदं वचनं पूर्वदिनस्यापूर्वं ग्राह्यत्वं विधत्ते  
 नक्तैकभक्तजन्माष्टम्यादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य  
 ग्राह्यत्वप्रसङ्गात् ॥ किंतु यत्रैकभक्तादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे वाक्यां  
 तरेण न्यायेन वा पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वमुक्तम्, तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि  
 तत्रैवानुष्ठानबोधकमिदं । नचात्र तदस्तीति यत्किंचिदेतत् । तेन चतु-  
 र्थयामगामिनी ग्राह्या । अतएव सर्वज्ञनारायणः—'तथा कृष्णचतुर्दश्या-  
 माश्विनेऽर्कोदयात्पुरा । यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते' इति  
 'मृगाङ्कोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् । दर्शो वा मंगलस्नानं दुःखशोक-  
 भयप्रदम्' इति कालादर्शो त्रयोदशीनिषेधाच्च । तेनायमर्थः । यथाग्रिहोत्रे  
 यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वम् । तथात्र चतुर्दशी-  
 चतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद्गुरुत्वमिति ॥ यदपि  
 दिवोदासीये—'त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी । रात्रिशेषे  
 त्वमावास्या तदाभ्यङ्गे त्रयोदशी' इति वचनं तद्धेमाद्रिनिर्णयामृताद्यलि-  
 खितत्वेन निर्मूलं । समूलत्वेपि चतुर्दश्याः सूर्योदयासंबन्धित्वरूपः क्षयोत्र  
 विवक्षितः सूर्योदयात् प्राक्समाप्तौ चन्द्रोदयकालसत्त्वे च तथैवाङ्गीकारात् ।  
 किंतु । अभ्यङ्गकालात् प्राक् समाप्तिरूपोऽत्र न्हासः क्षयशब्देन विवक्षितः  
 स चारुणोदयात् चतुर्थयामाद्वा प्राक् यदा न्हासस्तत्परमिदम् । अतएव सर्व  
 ज्ञनारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तं ॥ तथा चोदाहृतम्—'तथा कृष्णच-  
 तुर्दश्याम्' इति । ज्योतिर्निबन्धे नारदोपि । 'इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षय-  
 तिथावपि । ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् । कुर्यात्संलग्नमे-  
 तच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्' ॥ ये तु त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहुः तेषामाशयं न  
 विद्म इत्यलं भूयसा ॥ यदपि—'अरुणोदयतो न्यत्र रिक्तायां स्नातियो  
 नरः । तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः' इति दिवोदासीये



भविष्यवचनम् । तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेऽपि तत्रैव स्नातव्यमि-  
 त्येवंपरमिति सर्वं सिद्धं । चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदय इति तत्रैवोक्तम् ।  
 मदनरत्ने पादौ ॥ 'अपामार्गमथो तुर्वीप्रपुन्नाटमथापरम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये  
 तु नरकस्य क्षयाय वै' । प्रपुन्नाटश्चक्रमर्दः । मन्त्रस्तु—'सितालोष्ठसमायुक्त  
 सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्गं भ्राम्यमाणः पुनः पुनः' इति अस्यामेव  
 प्रदोषे दीपान् दद्यादित्युक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे—'ततः प्रदोषसमये दीपान्  
 दद्यान्मनोरमान् । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च' इति ॥ दिवोदासी  
 ये ब्राह्मे । 'अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः । यममार्गाधिकारेभ्यो  
 मुच्यते कार्तिके नरः' ॥ खण्डतिथौ तु पूर्वैर्हि प्रदोषे दीपान् दत्वा परेषुः  
 स्नायादिति दिवोदासीये उक्तं । अत्र नरकोद्देशेन चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानं  
 कार्यम् । तत्र मंत्रः । 'दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया । चतुर्वर्तिसमा  
 युक्तः सर्वपापापनुत्तये' ॥ तत्रैव लैंगे—'माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र  
 दिने नरः । प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते' ॥ अत्र यमतर्पण-  
 मुक्तं मदनपारिजाते वृद्धमनुना—'दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पण-  
 म्' ॥ मदनरत्ने ब्राह्मे—'अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च  
 तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च ।  
 वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च । औदुंबराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।  
 वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः' इति ॥ तर्पणप्रकारस्तु हेमाद्रौ 'एकैकेन  
 तिलैर्मिश्रान् दद्यात्रीं स्त्रीञ्जलाञ्जलीन् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्य  
 ति' । तथा मदनरत्ने स्कान्दे । 'दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समा-  
 हितः । देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः' । तथा । यज्ञोपवीतिनाथे  
 ति । इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभी-  
 ष्मयोः' इति पाप्मोक्तेः ॥ अत्र भीष्मतर्पणमप्युक्तं दिवोदासीये तत्प्रकारस्तु  
 कार्तिका- माघे वक्ष्यते ॥ इति नरकचतुर्दशी ॥ कार्तिकामावास्यायां प्रा-  
 मावास्या. तरभ्यंङ्गं कुर्यात् ॥ तदुक्तं कालादर्शे । 'प्रत्युष आश्वयुग्दर्शे क-



ताभ्यङ्गादिमङ्गलः । भक्त्या प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये' ॥ अस्य व्याख्याने आदिशब्दात्पञ्चत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः । तदुक्तं पुष्करपुराणे । 'स्वातीस्थिते रवाविन्दुर्यदि स्वातिगतो भवेत् । पञ्चत्वगुदकस्नायी कृताभ्यङ्गविधिर्नरः । नीराजितो महालक्ष्मीमर्चयन् श्रियमश्नुते' अश्वयुग्दर्श इति दर्शशब्दः प्रत्युषस्वातियुक्ततिथिपरः । तदुक्तं ब्राह्मे 'ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां तिथिषु स्वातिकक्षणे । मानवो मङ्गलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते' तत्रैव 'इषे भूते च दर्शे च कार्तिकप्रथमे दिने । यदा स्वाती तदाभ्यङ्गस्नानं कुर्यादित्योदये' । कश्यपसंहितायां तु दीपावलिदर्शं प्रक्रम्य 'इन्दुक्षेयपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये । तत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातःपापपनुत्तये' ॥ इति । स्वातीयोगं विनाऽप्यभ्यङ्ग उक्तः ॥ मात्स्ये 'दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता' ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये 'दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् । प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् । दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च' ॥ तत्रैवाभ्यङ्गमभिधाय 'एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः । दीपान् दत्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि । स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना' ॥ अयं प्रदोषव्यापी ग्राह्यः 'तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उत्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम्' इति ज्योतिषोक्तेः ॥ दिनद्वये सत्त्वे परः 'दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वयुः परेऽह्नि सुखदात्रिका' इति तिथितत्त्वे जोतिर्वचनात् ॥ दिवोदासीये तु प्रदोषस्य कर्मकालत्वात् । 'अर्धरात्रे भवत्येव लक्ष्मीराश्रमितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपैर्जाग्रन्नोत्सवाः । सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः' इति ब्राह्मोक्तेः । प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या एकैकव्याप्तौ परैव ॥ प्रदोषस्य मुख्यत्वादधरात्रेनुष्ठेयाभावाच्च । यस्तु 'अपराण्हे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः । प्रदोषसमये राजन् कर्तव्या दीपमालिका' इति क्रमः । स संपूर्णतिथावेव प्राप्तेरनुवादो न विधिः । तत्तत्कर्मकालव्याप्तेर्बलवत्त्वात् संपूर्णतिथौ प्राप्त्या खण्डतिथावप्राप्त्या



विध्यनुवादविरोधाच्चेत्युक्तं अत्रैव । दर्शे पररात्रेऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्तं मदनर  
 त्नेभविष्ये 'एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने । तावन्नगरनारीभिः शू-  
 कार्तिकशुक्ल- पंडिडिमवादनैः । निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात्' ।  
 प्रतिपत् कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनमुक्तं निर्णयामृते । अस्यामे-  
 व रात्रौ बलेः पूजोक्ता हेमाद्रौभविष्ये 'कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ।  
 पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके शुभे । बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः  
 पञ्चरङ्गकैः । गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् । लोकश्वा-  
 पि गृहस्यांतः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः । संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैस्तु  
 पूजयेत्' । मन्त्रास्तु पादौ 'बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववन्दित । इन्द्रशत्रो  
 ऽमराराते विष्णुसान्निध्यदो भव' इति ॥ तथा 'बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि  
 कुरुनन्दनानि तान्यक्षयाण्याहुर्ममैवं संप्रदर्शितम्' इति ॥ तदेतत् पूर्वविद्ध-  
 प्रतिपदि कर्तव्यं । 'पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्' इति हेमाद्रौ पा-  
 द्भोक्तेः । माधवोपि । 'बल्युत्सवं च पूर्वद्युरुपवासवदाचरेत्' इति । निर्ण-  
 यामृतेपि 'या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप । पूजनात्रीणि  
 वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः' इति । तथा 'भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै  
 विनश्यति' ॥ भद्रायां द्वितीयायां ॥ तथा 'प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु  
 गोर्चनं । क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्' इति ॥ तथा 'प्रदिपद्-  
 शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् । परविद्धेषु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः' इति  
 देवलवचनाच्च । एते च विधिप्रतिषेधाः । पूर्वदिने प्रतिपदः सायान्हव्यापि-  
 त्वे द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसंभवे च ज्ञेयाः । 'गवांक्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्ये-  
 त चन्द्रमाः । सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा' इति पुराणसमुच्चयात् ।  
 दिनद्वये सायान्हव्यापित्वे तु परैव ग्राह्या । 'वर्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्धत्रिया-  
 मिका । द्वितीयावृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते' इति । तथा । 'त्रियामगा द-  
 र्शतिथिर्भवेच्चेत्सार्धत्रियामा प्रतिपद्विवृद्धौ । दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे अ-  
 तोन्यथापूर्वयुते विधेये' इति पुराणसमुच्चयादिति निर्णयामृतकारः ॥ सार्ध



त्रियामिकेत्यनेन चंद्रदर्शनाभाव उक्तः । द्वितीयायाः पंचधा विभक्तदिनचतु-  
 र्थांशरूपापराणहव्याभावेव चंद्रदर्शनसंभवात् । वयं त्वेतद्वचनद्वयं पूर्वविद्धासंभ-  
 वे वेदितव्यमिति ब्रूमः ॥ दिनद्वये प्रतिपदः सायाह्नव्याह्नभावे तु पूर्वैव । रात्रौ  
 बलिपूजाविधानेन कर्मकालव्यापित्वात् । परदिने चंद्रोदये तन्निषेधादिति  
 दिक् । मदनरत्ने तु पूर्वविद्धायां गोक्रीडा ॥ नीराजनमंगलमालिके तूत्तरत्र  
 कार्ये 'कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानाद्वितयं भवेत् । नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गल-  
 मालिका । यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत् । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं  
 मंगलमालिकाम्' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ 'लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद्घटिकाद्वयम् ।  
 तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मंगलमालिका' इति भविष्योक्तेः । 'प्रातर्वा यदि ल-  
 भ्येत प्रतिपद् घटिका शुभा । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मंगलमालिकाम् ।  
 कार्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्याघटीद्वयम् । देशभंगभयान्नैव कुर्यान्मङ्गलमालि-  
 काम्' इति देवीपुराणाच्चेत्युक्तम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे ॥ बलिप्रति-  
 पदं प्रक्रम्य । 'तस्मिन्धूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः । तस्मिन् धूते जयो  
 यस्य तस्य संवत्सरं जयः । पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत् । दयिता-  
 भिश्च सहितैर्नया सा च भवेन्निशा' इति ॥ अत्र गोवर्धनपूजादि चोक्तं  
 हेमाद्रौ निर्णयामृते च स्कांदे 'प्रातर्गोवर्धनं पूज्य धूतं चापि समाचरेत् ।  
 भूषणीयास्तथागावः पूज्याश्वावाहदोहनाः' । गोवर्धनश्च गोमयेन कार्यश्चित्रेण वा ।  
 मंत्रस्तु 'गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारण । बहुबाहुकृतच्छाय गवांकोटि-  
 प्रदो भव' ॥ गोमंत्रस्तु 'लक्ष्मीया लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । धृतं वहति  
 यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु' ॥ तत्रैव स्कांदे । 'ततोऽपराणहसमये पूर्वस्यां  
 दिशि भारत । मार्गपालीं प्रबध्नीयात्तुंगे स्तंभेथ पादपे । कुशकाशमयीं  
 दिव्यां लंबकैर्बहुभिर्मुने । दर्शयित्वा गजानश्चान् सायमस्यास्तले नयेत् ।  
 कृतहोमे द्विजैर्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणा-  
 नेन सुव्रत । मार्गपालि नमस्तेस्तु सर्वलोकसुखप्रदे । विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरे-  
 हि व्रतस्य मे । नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् । राजानो राजपुत्राश्च



ब्राह्मणाः शूद्रजातयः । मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजःस्युःसुखान्विताः ॥  
तत्रैवादित्यपुराणे । 'कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकांसुदृढां नवाम् । तामेकतो  
राजपुत्रा हीनवर्णास्तथान्यतः । गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः ।

यमद्वितीया जयोत्र हीनजातीनां जयो राजस्तु वत्सरम्' इति यमाद्वि-

तीया तु प्रतिपद्युता ग्राह्येत्युक्तं निर्णयामृतादौ । यमद्वि-  
तीया मध्यान्हव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति हेमाद्रिः ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ  
स्कान्दे 'ऊर्जशुक्लद्वितीयायामपराणहेऽर्चयेद्यमम् । स्नानं कृत्वा भानुजायां य  
मलोकं न पश्यति' इति 'ऊर्जे शुक्ले द्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः वेष्टितः  
किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वाञ्छितं' ॥ तथा भविष्ये ॥ 'प्रथमा श्रावणे  
मासि तथा भाद्रपदेतरा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ।  
श्रावणे कलुषा नाम तथा भाद्रेचगीर्मला । आश्विने प्रेतसंचारा कार्ति-  
के याम्यका मता' इत्युक्ता प्रथमायां व्रतं द्वितीयायां सरस्वतीपूजातृतीयायां  
श्राद्धमुक्ता चतुर्थ्यामुक्तं 'कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिरा यमो य-  
मुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः । अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।  
अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टि-  
वर्द्धनं । दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः । स्वर्णालंकारवस्त्रान्नपूजासत्कार  
रभोजनैः । सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः' ॥ प्रतिपन्नाः मातृभ-  
गिन्य इति हेमाद्रिः । 'पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिरा मातुलस्य  
सुताहस्ताद्वितीयायां तथा नृपापितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयोः करात् ।  
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परं । सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं  
बलवर्धनम् । यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतिजगत्स्वसृदौ-  
हदेन । तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नसुखधान्यमनुत्तमं  
सः' ॥ गौडास्तु 'यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत् । अर्घ्यश्चात्र प्रदात-  
व्यो यमाय सहजद्वयैः' ॥ मन्त्रः 'एहोहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालो-  
कधराप्रवेश ॥ भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते' । भ्रातस्त



वानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभं ॥ प्रीतये यमराजस्य यमुनायां विशेषतः ॥  
ज्येष्ठाग्रजातेति वदेदिति स्मार्ताः ॥ इत्यन्नदानमित्यप्याहुः ॥ ब्रह्माण्डपु-  
राणेपि । 'या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ । अर्चयेच्चापि तांबू-  
लैर्न सा वैधव्यमामुयात् । भ्रातुरायुःक्षयो राजन् न भवेत्तत्र कर्हिचित्' इति ॥

कार्तिक शुक्लनवमी युगादिः सा पौर्वाण्हिकी ग्राह्या । शुक्लपक्ष-  
शु० ९ स्थत्वात् । अत्रापि पिण्डरहितं श्राद्धं कर्तव्यं । अन्यत्प्राप्तं ।  
विष्णुत्रिरात्रं अत्रैव विष्णुत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ पादौ । 'कार्तिके शुक्लनवमिवा-  
प्य विजितेन्द्रियः ॥ हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभु-  
म् । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयं । एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं  
का० शु० ११ विधिम्' इति ॥ कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतमुक्तं । ना-  
भीष्मपञ्चकं रदीये ॥ 'अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम् । कार्तिकस्या-  
मले पक्षे स्नात्वा सम्बन्धितव्रतः । एकादश्यां तु गृण्हीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम्' इति  
तद्विधिस्तु गोमयेन स्नात्वा मौनी पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्त्राप्य संपूज्य  
षायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा । ॐ नमो विष्णवे इति षडक्षरेण  
घृताक्तान् यवान् ब्रीहींश्चाष्टोत्तरशतं हुत्वा भूमौ स्वपेत् । एवं पंचदिनेषु कु-  
र्यात् ॥ विशेषस्त्वायेन्निहरेः पादौ कमलैः संपूज्य त्रिर्गोमयं प्राश्यम् ।  
द्वितीयेन्निह बिल्वपत्रैर्जानुनी संपूज्य गोमूत्रं । त्रयोदश्यां भृङ्गराजेन नाभिं  
संपूज्य क्षीरम् । चतुर्दश्यां करवीरैः स्कंधं संपूज्य दधि । पौर्णमास्यां हो-  
मान्ते लौहीं पापप्रतिमां खड्गचक्रहस्तां कृष्णवस्त्रेण वेष्टितां प्रस्थितिलोपरिस्थां  
कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः संपूज्य । 'यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि  
वा पुनः । तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापन्तव पूजनात्' इति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा  
कृष्णप्रतिमां च संपूज्य विप्राय दत्वा विप्रान् संभोज्य दक्षिणां दत्वा पञ्चग-  
व्यं प्राश्य पौर्णमास्यां नक्तं भुंजीतेति लघुनारदीये ॥ पञ्चगव्यप्राशनं षड-  
क्षरेणेति हेमाद्रिः । हेमाद्रौ भविष्ये तु शाकैर्मुन्यन्नैर्वा पञ्चाहं वर्तनमुक्तं ।  
अन्तेप्युक्तं । 'यद्भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशी प्रभृति पञ्चदशी नि-



रुद्धं। मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्ठं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा'  
 इति। तथा पादौ 'पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पञ्चसु । अहःस्वपि  
 तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत' । 'सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने ।  
 भीष्मायैतद्दाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे। वैद्याग्रपद्यगोत्राये'ति च। 'सव्येना-  
 का० शु० १२ नेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम्' इति। कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेव-  
 तीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं कार्यम् । तदुक्तं । 'आभाका-  
 सितपक्षेपु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे न हि भोक्तव्य द्वादशद्वादशीर्हरेत्' इति ।  
 यदा तु रेवतीयोगरहिता द्वादशी सर्वथा न लभ्यते, तदा रेवत्याश्वतुर्थपादं  
 वर्जयेत् । वचनं तु प्रागुक्तं ॥ लघुनारदीये 'कार्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा चै-  
 कादशीं नरः । प्रातर्दत्त्वा शुभान् कुम्भान् प्रयाति हरिमन्दिरम्' ॥ मदन-  
 रत्ने वाराहे । 'एकादशी सोमयुक्ता कार्तिके मासि भामिनि । उत्तराषाढसं  
 योगे अनन्ता सा प्रकीर्तिता । तस्यां यत् क्रियते भद्रे सर्वमानंत्यमश्नुते' ॥  
 अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे । 'एकादश्यां च शुक्लाया  
 कार्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः' इति  
 मदनरत्ने भविष्ये 'कार्तिकेशुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुता मन्त्रेणावेनरा-  
 जेन्द्र देवमुत्थापयेत्तद्विजः' ॥ रामार्चनचन्द्रिकादौ तु द्वादश्यामुक्तं 'पार-  
 णाहे पूर्वरात्रे घण्टादीन्वादयेन्मुहुः' इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । 'तत्रैव  
 देवदेवस्य स्नानं पूर्वं महद्भवेत् । महापूजां ततः कृत्वा देवमुत्थापयेत्सुधीः' ।  
 मन्त्रास्तु वाराहपुराणे उक्ताः ॥ ॐ 'ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्व-  
 न्दितवन्दनाङ्ग । बुद्धयस्व देवेश जगन्निवास मंत्रप्रभावेन सुखेन देव ॥ इयं तु  
 द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता । त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ।  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भ-  
 वेदिदं। उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधवागता मघा वियच्चैव निर्मलं निर्मल  
 दिशः। श्वारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव ॥ इदं विष्णुरिति प्रोक्तो मन्त्र  
 उत्थापने हरेः' इति ॥ एवं देवमुत्थाप्य तदये चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिं कुर्यात् ।



तदुक्तं भारते 'चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः । कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्' ॥ लघुनारदीये 'चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्तिके स्मृता' ॥ मन्त्रश्च निर्णयामृते सनत्कुमारेणोक्तः । 'इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो । न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन' इति ॥ अथ वाराहोक्तो बोधनीविधिः—एकादश्यां रात्रौ कुंभे घृतपात्रोपरि हैमं माषमितं मत्स्यं पंचामृतेन संस्नाप्य कुंकुमपीतवस्त्रयुगपद्वाद्यैः संपूज्य मत्स्यादिदशावतारान् संपूज्य जागरं कृत्वा प्रातर्देवमाचार्यं च वस्त्राद्यैः संपूज्य 'जगदादिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिस्मन् जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः' इति नत्वा दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति ॥ तथा ब्राह्मे । 'महातुर्यरवे रात्रौ भामयेत्स्यन्दने स्थितम् । उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम् । चतुरो वार्षिकान् मासान् नियमं यस्य यत्कृतम् । कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद् व्याज्जक्त्या सदक्षिणं' ॥ यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तद्द्रव्यं दद्यादित्यर्थः ॥ इदं शुक्रास्तादावपि कार्यं । आशौचे तु पूजामन्येन कारयेत् ॥ कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः सा पौर्वाण्हिकी ग्राह्या । अन्यत्प्रागुक्तम् । कार्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठसंज्ञा । सा विष्णुपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये । 'कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासस्तु संपूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः' इति । अस्यामेव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात्तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादिक्रियते तदारुणोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ तदुक्तं त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायां 'वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति । महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके । स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत्' इति ॥ तत्पूर्वदिने चोपवासः कार्यः । 'ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् । दण्डपाणेर्महाधाम्नि नवेऽस्मिन्कृतपारणः' इति तत्रैवोक्तेः ॥ शिवरहस्येपि पूजाजागरायुक्तम् 'ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वा स्नात्वा च भस्मना । संध्यां समाप्य विश्वेशं मामभ्यर्चयथा-



विधि । मद्भक्तान् भोजयामासुर्ऋषयो बुभुजुस्ततः' इति ॥ अत्र कार्तिकव्र-  
तोद्यापनं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये उक्तम् 'अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापन-  
विधिं शृणु । ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती । तुलस्या उपरिष्ठान्तु कु-  
र्यान्मण्डपिकां शुभाम् । तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च । तस्योपरिष्ठात्  
कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम् । पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया । रात्रौ जा-  
गरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमा-  
न् । त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । अतो देवा इति द्वाभ्यां  
जुहुयात्तिलपायसम् । ततो मां कपिलां दद्यात् पूजयेद्विधिवद्गुरुम्' इति ।  
कार्तिकी पौर्णमासी परा ग्राह्या । 'अमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः ।  
अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे । 'पुण्यामहाकार्तिकी स्वाज्जीवेन्द्रौः कृतिकासु च' ।  
तथा । 'आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति कचिद् । महती सा ति-  
थिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा । यदा तु याम्यं भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ कचि-  
द् । तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता । प्राजापत्यं यदा ऋक्षं  
तिथौ तस्यां नराधिप । सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा' इति ॥  
पाद्मे । 'विशाखासु यदा भानुः कृतिकासु च चन्द्रमाः । सयोगः पद्मको  
नाम पुष्करेष्वपि दुर्लभः । पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति । स  
हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्' ॥ यमः 'कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः  
सर्वपापैः प्रमुच्यते । माघ्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः' ॥ अ-  
स्यामेव सायंकाले मत्स्यावतारो जातः इत्युक्तं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये 'वरा-  
चूदत्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपी भवेत्ततः । तस्यांदत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृत-  
म्' इति ॥ अत्र त्रिपुरोत्सवउक्तो भार्गवार्चनदीपिकायां 'पौर्णमास्यां तु संध्या  
यां कर्तव्यं त्रिपुरोत्सवः । दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये । कीटाः पतङ्गा मश-  
काश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः ॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्यभागिनो भव-  
न्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः' ॥ अत्र वृषोत्सर्गोतिप्रशस्तः । तदुक्तं मात्स्ये । 'कार्ति-  
क्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृ



तम्' इति । अत्र कार्तिकेयदर्शनमुक्तं काशीखण्डे 'कार्तिक्यां कृत्तिकायोमे  
यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् । सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः' । इति श्री-  
कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे कार्तिकमासः ॥ वृश्चिके पूर्वाः  
षोडश घटिकाः पुण्याः शेषं प्राग्वत् । मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी कालाष्टमी सा च  
कालाष्टमी रात्रिव्यापिनी ग्राह्या ॥ 'मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसंनिधौ ।  
उपोष्य जागरं कुर्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते' इति काशीखण्डात् रात्रिव्रतत्वा  
वगतेः । 'रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्या संमुखी तिथिः' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ॥ दिन  
द्वयेशतौ रात्रिव्याप्तावुत्तरैव ॥ भैरवोत्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादिति केचित्  
तत्र । शिवरहस्ये मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात् । तथा च तत्रैव । 'नित्य-  
यात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ' इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेवज्ञाते उक्तं  
'तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः । आविरासीत्तदा लोकान् भीषयन्न-  
खिलानपि' इति ॥ अत्रोपवास एव प्रधानमित्युक्तं तत्रैव 'उपोषणस्याङ्गभू-  
तमर्घ्यदानमिह स्मृतम् । तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये' । संध्यायाम-  
पि पूजैवोक्ता । तेन मध्याह्नव्यापिनी युक्ता । दिनद्वयेशतः संपूर्णायां वा  
तद्व्याप्तौ पूर्वैव । पूर्वोक्तवचनात् । पारणा तु प्रातरेव 'यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां  
प्रातरेव हि पारणा' इति वचनात् । अत्र च कालभैरवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ  
'कृत्वा च विविधां पूजां महासंभारविस्तरैः । नरो मार्गसिताष्टम्यां वार्षिकं  
विघ्नमुत्सृजेत्' ॥ तथा 'तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः । विलोक्य  
कालराजानं निरयादुद्धरेत् पितृन्' इति इयं च कार्तिक्यनन्तरा गौणचान्द्रा

मार्ग० शु० ५ भिप्रायेण । मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता हेमाद्रौ  
नागपंचमी स्कान्दे । 'शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी ।  
स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी' इति । इयं नागपूजायां षष्ठीयुतैव  
ग्राह्या । 'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता  
नागा इतरा सचतुर्थिका' इति मदनरत्ने वचनात् । मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी  
चम्पाषष्ठी महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा । सोत्तरयुता ग्राह्या 'षण्मुन्यो'  
इति युग्मवाक्यात् । 'पूर्वाण्डे दैविकं कुर्यादि'ति वचनादस्य च



देवकर्मत्वात् । इयमेव योगविशेषेण चम्पेत्युच्यते । तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे  
 मल्लारिमाहात्म्ये 'मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता । रविवारेण संयुक्ता  
 चम्पेतीह प्रकीर्तिता' इति । 'विशाखाभौमयोगेन सा चम्पेतीह कीर्तिता' इति  
 मदनरत्ने पाठः । 'मार्गशीर्षमले पक्षे षष्ठ्या वारंऽशुमालिनः । शततारागते चन्द्रे  
 लिङ्गं स्यादृष्टिगोचरम्' इति । इयं च योगवशेन पूर्वा परा वा कार्या । च-  
 म्पाषष्ठी सप्तमीयुतेति दिवोदासः । इयमेव स्कन्दषष्ठी । 'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी  
 शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्' इति  
 भृगुक्तेः परेऽन्हि रात्रावाद्ययाममध्ये पारणासंभवे इदम् । अन्यथोत्तरैवेति  
 दिवोदासः । अब्दपर्यन्तषष्ठीषु । 'सेनाविदारक स्कन्द महासेन महाबल ॥ रुद्रो-  
 माग्निज षडङ्ग गङ्गागर्भं नमोस्तु ते' । इति राजतं स्कन्दं पूज्य विप्राय दद्यादि-  
 मार्ग० शु० १४ ति दिवोदासः ॥ मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचविमोचनी तीर्थं  
 श्राद्धं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैरुक्तम् । तस्य प्राप्तपैशाच्यस्व-  
 पित्राद्युद्देश्यकर्पावर्णत्वादपराह्व्यापिनी ग्राह्या । अज्ञातनामपिशाचाद्युद्देश्यक  
 त्वे त्वेकोद्दिष्टत्वात् मध्यान्हव्यापिनीति ॥ कुलधर्मव्रतादौ तूत्तरैव । 'चैत्र-  
 नभोगतेतरसिता स्यादूर्ध्वा' इति दीपिकोक्तेः ॥ मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्प-  
 दत्तजयन्ती तिः । तदुक्तं स्कान्दे सह्याद्रिखण्डे । 'मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽ-  
 न्हि सुनिर्मले । मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां यज्ञस्य वासरे ।  
 आनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् । तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा  
 अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम् । दत्तवान्स्वस्य पुत्रत्वादत्तात्रेय इतीश्वरः' ।  
 इति । इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति वृद्धाः ॥ मार्गशीर्षपौर्णिमानन्तराष्टमी  
 अष्टका ॥ एवं पौषादिमासत्रयेपि 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमी  
 ष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः 'एकस्यामष्टम्यां वै  
 कार्ये' ति हरदत्तः । क्वचित् पंचम्यप्युक्ता 'पौष्ठपद्यष्टका भूयः  
 पितृलोके भविष्यति' इति पाद्मवचनात् । तत् पूर्वसप्तमीषु पूर्वैर्युः ।  
 तत्परनवमीष्वन्वष्टकासु च श्राद्धमुक्तम् कालादर्शं 'मार्गशीर्षे च पौषे च



माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने। ऋष्णपक्षे च पूर्वयुरन्वष्टक्यं तथाष्टका' इति ॥ यत्तु विष्णुः  
 'अमावास्यास्तिष्ठोऽष्टकास्तिष्ठोऽन्वष्टकाः' इति । यच्च कौर्मे । 'अमावा-  
 स्याष्टकास्तिष्ठः पौषमासादिषु त्रिषु' इति । तच्चतुर्थ्यामनावश्यकत्वार्थं  
 'या चाप्यन्या चतुर्थी स्यात्तां च कुर्यात्प्रयत्नतः' इति वायुब्रह्माण्डपुराणात् ।  
 'श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते' इति विष्णुक्तेरिति शूलपाणिः । शाखा-  
 भेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् । वायुब्रह्माण्डयोः—'आद्यापूपैः सदा कार्या  
 मांसैरन्या सदा भवेत् । शाकैः कार्या तृतीयास्यादेशे द्रव्यगतो विधिः' । पौषादिः  
 क्रमः ॥ अन्वष्टका तु प्रागेव निर्णीता । तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या ।  
 'अथाच्छादनपर्यंतं श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्' इत्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्ण-  
 कालत्वाच्च पार्वणस्य । पूर्वयुरष्टकाश्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुरोधेन निर्णयः । अतएव  
 सूत्रम् । 'पूर्वयुः पितृभ्यो दद्यात्' । 'अपरेयुरन्वष्टक्यम्' इति च । अत्र  
 कामकालौ विश्वेदेवौ । इष्टिश्राद्धे ऋतुदक्षावष्टम्यां कामकालौ इति सायणीये  
 शङ्खोक्तेः । अत्र श्राद्धाकरणप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने । 'एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं  
 शतवारं तु तद्दिने । अन्वष्टक्यं यदा न्यूनं संपूर्णं याति सर्वथा' इति । अशक्तौ  
 त्वाश्वलायनः—'अथ श्वोभूतेष्टकाः । पशुना स्थालीपाकेन चाप्यनहुहो-  
 यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषामेष्टकेति नत्वेवानष्टकः स्यात्' इति ।  
 मार्गशीर्षादिषु मलमासे सति तत्राष्टका न कार्या । चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं  
 नारायणवृत्तौ । तथा काठकगृह्येपि 'महालयाष्टकश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्मयत् ।  
 स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले' इति ॥ मार्गादिरविवारेषु काम्यं व्रतमुक्तं  
 माघेरविवारव्रतम् हेमाद्रौ । तत्र भक्ष्याण्युक्तानि हंसे सौरधर्मे । 'पत्रत्रित्वं  
 तुलस्यास्त्रिफलमथ घृतं मार्गशीर्षादिभक्ष्यं मुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपलदधि त-  
 था दुग्धकं गोमयं च । त्रित्वं तोयाञ्जलीनां त्रिमरिचकमथो त्रिःपलाः सक्तव-

१—एवं चाश्वलायनभिन्नानां केषांचित्फाल्गुनाष्टम्यां सर्वासु सप्तमीषु श्राद्धाकर-  
 नेऽपि न दोषः 'स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं तु यः । कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मो-  
 तत्तस्य चेष्टितम्' इत्युक्तेरिति टीका ॥



स्युर्गौमूत्रं शर्करासद्धविरिति विधिना भानुवारे क्रमेण' इति ॥ इति श्रीकमलाकर-  
 भट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे मार्गशीर्षमासः समाप्तः ॥ धनुःसंक्रमे पराः  
 धनुःसंक्रातिः षोडश घटिकाः पुण्याः । अन्यत्प्राग्वत् । अत्रोत्सर्जननिर्णयो वक्त-  
 पौषाष्टमी व्योपाकर्मप्रसङ्गात् प्रागेवोक्तः । कल्पतरौ भविष्ये—'पौषे मासे यदा  
 देविशुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् । तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम् । मत्प्री-  
 तये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत्' । अत्रैव रोहिण्यार्द्रायोगे पुण्यतमत्वं तत्रैव  
 पौषैकादशी ज्ञेयं । पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः सा चोक्ता प्राक् पौषपौर्णिमानन्तराः  
 अर्धोदयः सप्तम्यष्टमीनवम्योष्टकाद्याः प्रागुक्ताः । पौषामावास्यायामर्धोदयो  
 योगविशेषः । तदुक्तं मदनरत्ने महाभारते । 'अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्  
 पुष्यमाघयोः । अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः' इति । पुष्यमाघ-  
 योर्मध्यवर्तिनी पौर्णमास्युत्तरामावास्थेत्यर्थ इति भट्टाः । मदनरत्ने पुष्यस्य  
 च माघस्य वेत्यर्थ उक्तः । तन्न । हेमाद्रिविरोधात् । तत्र हि माघ एवो-  
 क्तः । तथा । 'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन' इति । इदमर्थ-  
 मन्यनिबन्धेष्वभावाच्च निर्णयामृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव । तेन हेमाद्र्यादिमते रा-  
 त्रावर्धोदयो भवत्येव । केचित्तु । 'किञ्चिदूना महोदयः' इत्याहुस्तन्निर्मूलम् ।  
 हेमाद्रौ मदनरत्ने च स्कान्दे । 'माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदै-  
 वते । अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम्' । तत्रैव 'माघमासे क-  
 ष्णपक्षे पंचदश्यां रवेर्दिने । वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे' ।  
 अतं कुर्यादित्यग्रेऽन्वयः । तत्रैव 'ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णीः पलसंख्यया ।  
 प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तदर्धेन द्विजोत्तमा । सार्धं शतत्रयं शंभोर्द्रोणानां तिलपर्वतः ।  
 कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसंख्यया' । शंभुरत्र ब्रह्मा । 'शय्यात्रयं ततः  
 कुर्यादुपस्करसमन्वितम्' । तिलैर्होमं कृत्वा प्रतिमां दद्यादित्युक्तं स्कान्दे 'अ-  
 र्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् ॥ शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे

१—वस्तुतस्तु 'दिवैव योगः शस्तोऽयमुषः कालेऽपि वा यदि । न तु रात्रौ स विज्ञेयो नरै-  
 र्धर्मपरायणैः' इति नागरखण्डाद्वात्रौ योगो निर्मूल एवेति नव्या इति टीका ॥



भवेयुर्बलसंमिताः ॥ यत्किञ्चिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्' इति । अत्र दानविशेषो निर्णयामृते स्कान्दे । 'चतुःषष्टिपलं मुख्यममत्रं तत्र कारयेत् । चत्वारिंशत्पलं वाथ पचंविंशतिरेववा' । अमत्रं पात्रम् । तच्च कांस्यमयमित्युक्तं तत्रैव 'एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्' इति । तथा 'निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत् । पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम् । तदभावे तदर्धं वा तदर्धं वापि कारयेत् । भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वा षट्दलमुत्तमम् । अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः । वस्त्रादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्' । मंत्रस्तु 'सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतन्नयीमयम् । आपत्तेस्तारकं यस्मात्तद्ब्रूहाण द्विजोत्तम । समुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दातुश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वेदं दानमुत्तमम्' इति ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पौषमासः ॥

माघस्नानं अथमाघस्नानम् । तत्र विष्णुः 'तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत् । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्' इति सौरमास उक्तः ब्राह्मे तु सावन उक्तः 'एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत् । द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्' इति । पाद्मेपि 'पुण्यस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः । मासमात्रं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत् । त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः । माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्या धरोत्तम' इति । त्रिकालस्नानं मासोपवासविषयम् । निराहारइत्युक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदयेत्वन्यथोक्तम् । विष्णुः । 'दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे' इति । अत्र दर्शमिति शुक्लादिमुख्यचान्द्राभिप्रायेण । अयं तु पक्षो नेदानीं प्रचरति ॥ अत्राधिकारिणो भविष्ये । 'ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः । स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम्' ॥ पाद्मे । 'सर्वधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप' । ब्राह्मे 'उष्णोदकेन वा स्नानमशक्ते सति कुर्वते । दृढेषु सर्वगात्रेषु उष्णोदं न विशिष्यते' । विष्णवामृते गौडनिबन्धे स्कान्दे 'पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा । माघमासस्य तावद्धि



पूजा विष्णोर्विधीयते। पितृणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत् । ब्राह्मणो मूलकं  
भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् । अन्यथा याति नरकं क्षत्रविद्विशूद्र एवच । वर्जनीयं  
माघेमलमासे प्रयत्नेन मूलकं मदिरोपमम् ॥ यदा तु माघो मलमासो भवति तदा  
काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वये स्नानं तन्नियमाश्च कार्याः ।  
मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम् ।  
‘नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् । मलिने मासोपवासव्रतम्’  
इति । मासोपवासपदं चान्द्रायणादेरुपलक्षणं । स्नानारंभे च मन्त्रो विष्णुनोक्तः  
‘तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् । माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव  
माधव । ‘तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेतसि’ इति । प्रत्यहं मन्त्रश्च  
पाद्मे । दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य  
माघे पापविनाशनम् । मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव । स्नानेना  
नेन मे देव यथोक्तफलदो भवा इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसन्वितः’ इति ।  
प्रत्यहं सूर्यायार्घ्यम् । मन्त्रस्तु पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे । ‘सवित्रे प्रसवित्रे च  
परं धाम जले मम । त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा इति । स्नानका-  
लश्च सूर्योदयः । त्रिस्थलीसेतौ । ‘मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यभ्युदिते  
रवौ’ इति । ‘माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ’ इति च पाद्मवचनात् ।  
‘संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्रच्छति  
भास्करे । पुमीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशयः’ इति नारदीयोक्तेः । ‘यो  
माघमास्युषसि सूर्यकराभितप्ते स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे । उद्धृत्य सप्तपु-  
रुषान् पितृमातृवंश्यान्स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोसौ’ इति भविष्योत्तरवच-  
नाच्च । ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः । ‘अरुणोदये तु संप्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः ।  
माधवाग्निद्युगंध्यायन्यः स्नाति सुरपूजितः’ इति । तथा “अरुणोदयमारभ्य प्रातः  
कालावधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा । उत्तमं तु सनक्षत्रं म-  
ध्यमं लुप्ततारकम् । सवितर्युदिते भूप ततोहीनं प्रकीर्तितम्’ इति । तेनात्र शक्त्यपे-  
क्षया व्यवस्था । इदंच स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् । ‘काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गङ्गा



यमुनसंगमे।सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी । पश्चिमाभिमुखी गङ्गा  
 कालिंघा सह संगता।हन्ति कल्पकृतं पापं सा माघे नृपदुर्लभा' इत्यादिपाद्मा  
 दिवचनेभ्यः। विस्तरस्तु मत्पितामहकृतप्रयागसेतौ ज्ञेयः॥ब्राह्मे'यत्रकुत्रापि  
 यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः । करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद्वाङ्मज्जनम्'।  
 तथा समुद्रेप्यतिप्रशस्तं।तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे'माघे मासि चयः  
 स्नायान्नैरन्तर्येण भावतः।पौण्डरीकफलं तस्य दिवसेदिवसे भवेत्'। माघस्नानं  
 काम्यमेवेतिभट्टाः॥विष्ण्वादिवाक्येसदावश्यशब्दाच्चित्यत्वावगतेर्नित्यकाम्य  
 मिति तु युक्तम् मासपर्यन्तं स्नानासंभवे तु व्यहमेकाहं वा स्नायात्।'महामा-  
 र्घीं पुरस्कृत्य सस्मौ तत्र दिनत्रयम्'इति लिङ्गात् ।'अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि  
 स्नायादपि दिनत्रयम्।प्रयागे माघमासे तु व्यहं स्नातस्य यत्फलम्। नाश्वमेध  
 सहस्रेण तत्फलं लभते भुवि' इति पाद्मादिवचनात् । अत्र मकरसंक्रमो रथ-  
 सप्तमी माघी व्यहमित्येके । माघशुक्लदशम्यादीत्यन्ये । मकराद्यव्यह इत्य-  
 परे । माघमासाद्यव्यह इति केचित्।त्रयोदश्यादीति बहवः । 'महामार्घीं  
 पुरस्कृत्य सस्मौ तत्र दिनत्रयम्' इति पाद्मोक्तेः।एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किंचि-  
 द्दिनत्रयमिति भट्टाः॥तत्त्वं तु 'संदिग्धेषु वाक्यशेषात्'इति न्यायात्रयोदश्या  
 धेवेति प्रयागं विनापि पाद्मे 'अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रय-  
 म्'इति । माघस्नाने नियमास्तु नारदीये 'न वह्निं सेवयेत् स्नातो ह्यस्ना-  
 तोपि वरानने।होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥ अहन्यहनि दात-  
 व्यास्तिलाःशर्करयान्विताः ॥ त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थःशर्करान्वितः।  
 अमभ्यंगी वरारोहे सर्वमासं नयेद्वती' । तथा 'अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं  
 स्नाममाचरेत्।' पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः'॥तथा 'शंखचक्रधरंदेवं  
 माधवं नाम पूजयेत्।वह्निं हुत्वा विधानेनततस्त्वेकाशनो भवेत् । भूशय्याब्रह्म-  
 चर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् ॥ अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वेच्छा सर्वत्र क-  
 थ्यते' ॥ तथा 'तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥ तिलभुक् तिल-  
 दाता च षट् तिलाः पापनाशनाः' इति॥ प्रयागासंभवे काश्यां दशाश्वमेधो-



तत्स्थप्रयागतीर्थे स्नानमुक्तं काशीखण्डे काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्ना-  
 न्ति मानवाः । दशाश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद्भुवम्' इति ॥ स्नानोत्तरं  
 मदनपारिजाते विष्णुः 'काष्ठमौनान्नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् । अवश्यमेव  
 कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः' ॥ भविष्ये 'तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु  
 नित्यशः । ततःप्रज्वालेद्वह्निं सेवनार्थं द्विजन्मनाम् । एवं स्नानावसाने  
 तु भोज्यं देयमवारितम् । भोजयेद्विजदांपत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः । कम्ब-  
 लाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च । चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटा-  
 स्तथा । उपानहौ तथा गुप्तमोचकौ पापमोचकौ । अनेन विधिना दद्यान्मा-  
 धवः प्रीयतामिति' ॥ पाद्मे । 'भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम्' ॥  
 तथा 'अन्नं चैव यथाशक्त्या देयं माघे नराधिप । सुवर्णरक्तिकामात्रं दद्याद्वे  
 दविदे तथा' । माघान्ते तु विशेषो नारदीये । 'माघावसाने सुभगे षड्रसं भो-  
 जनं स्मृतम् । सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः । दंपत्योर्वाससी सूक्ष्मे  
 सप्तधान्यसमन्विते । त्रिंशत्तु मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः' इति । अत्र  
 'एकादशीविधानेन व्रतस्योद्यापनं तथा' इति । पूर्वोह्नि उपवासपूजनादि कृत्वा  
 परेऽह्नि तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतं होमं कृत्वा 'सवित्रे प्रसवित्रे च०' इतिपूर्वाक्तं  
 मन्त्रमुक्त्वा । 'दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तुते ॥ परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्ना-  
 नमुषःपते' इति समापयेदिति संक्षेपः ॥ मकरसंक्रान्तौ हेमाद्रिमते  
 मकरसंक्रान्तिः परतः चत्वारिंशद्घटिकाः पुण्याः 'त्रिंशत्कर्काटकेनाड्यो मक-  
 रे तु दशाधिकाः' इति ब्रह्मवैवर्तात् । माधवमते तु विंशतिः 'त्रिंशत् कर्काटके  
 पूर्वा मकरे विंशतिः परा' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ यदा तु सूर्यास्तात्पूर्वं संक्रान्ति-  
 भवति, तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः ॥ रात्रौ तु प्रदोषे निशीथेवा मकरसंक्र-  
 मे माधवमते द्वितीयदिन एव पुण्यम् । 'यद्यस्तमयबेलायां मकरं याति भास्क-  
 रः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेहनि' इति वृद्धगार्ग्यवचनात् । अस्तमयं  
 प्रदोषः । प्रदोषे पूर्वरात्रे ॥ 'कार्मुकं तु पारित्यज्यज्ञं संक्रमते रविः । प्रदोषे वार्ध-  
 रात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि' इति भविष्योक्तेश्च ॥ 'तदा भोगः परेऽहनि' इति



हेमाद्रौ । पाठः कालादर्शनिर्णयामृतमदनपारिजातादप्योयेवमूचुः ।  
 दाक्षिणात्याश्चैतदेवादियन्ते ॥ यत्तु हेमाद्रिणाद्यो वाशब्दो यथार्थं द्वितीय-  
 स्तथार्थं । यथा प्रदोषे पूर्वेषु स्तथार्धरात्रे परेऽह्नीत्युक्तम् । तस्मै नमोस्तु । तेन  
 परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति दिनद्वये पुण्यनिरासार्थमर्धरात्रग्रहणम् ।  
 हेमाद्रिस्मृत्यर्थसारानन्तभट्टादिमतेतु निशीथात् पूर्वं पश्चाच्च सक्रान्तौपूर्वं  
 दिने परदिने वा पुण्यं । 'धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वा-  
 परविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा । दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यत-  
 माः स्मृताः । उदयेपि तथा पंच दैवे पित्र्ये च कर्मणि' इति स्कान्दवच-  
 नात् । पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नाविषयम् । पूर्वोक्तवचोविरोधादि-  
 ति मदनरत्ने उक्तम् । 'षडशीतिमुखेऽतीते अतीते चोत्तरायणे' इत्यादिवि-  
 रोधाच्च ॥ तेन पूर्वैकवाक्यतयायमर्थः । रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि  
 उदये पंच नाड्यः पुण्याः, रात्रावपरभागे कर्कसंक्रमे पूर्वदिनान्ते पञ्च ना-  
 ड्य इति । एवं सर्वेषामविरोधः । मकरे सामान्येन परदिने पुण्यत्वेपि  
 पुण्यातिशयार्थमिदं । यत्तु देवल्यज्ञपाश्वौ । 'आसन्ने संक्रमं पुण्यं दिनार्धं  
 स्नानदानयोः । रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्यथ नो दिवा' इति ॥ अत्र मा-  
 धवः । अयने दिवा जाते तदर्थं पुण्यम् । कर्के पूर्वं मकरेन्त्यम् । एतन्म-  
 ध्यंदिनायतपरमिति ॥ हेमाद्रिस्तु रात्रौविषुवत्यासन्नदिनार्धं पुण्यम् । अ-  
 यने त्वासन्नदिनं पुण्यम् । दिने इति पाठे उभयत्र दिनार्धं पुण्यमित्याह ॥  
 एतदेवोक्तं दीपिकायाम् 'अथायनमधःपश्चान्निशीथाद्भवेद्यथासन्नमहस्तद-  
 र्धमथवापुण्यम्' इति ॥ तत्त्वं तु आसन्नसंक्रममित्यस्य विषुवत्येवान्वयः । अ-  
 यने रात्रौ सति दिने पुण्यं । कस्मिन्नित्यपेक्षायां कर्के पूर्वेऽह्नि मकरे परेऽह्नि  
 इति वाक्यान्तरवशादर्थे उच्यमाने न कोपि विरोधः । यत्त्वनन्तभट्टः 'अथ  
 संक्रमणं भानोर्निशीथात् प्राक् यदा भवेत् । अयनं विषुवं तत्र प्राग्दिना-  
 न्तिमनाडिकाः । पञ्च पुण्यतमाः पश्चान्निशीथाच्चेद्भवेत्तथा । आद्याः परदि-  
 नस्यापि तद्वदित्येष निर्णयः' इति ॥ अपराकर्केप्येवम् ॥ 'अस्तं गते यदा सूर्ये



ज्ञप्तिं याति दिवाकरः ॥ प्रदोषे वार्धरात्रे वा तदा पुण्यं दिनद्वयम्'इति बौ-  
 धायनवचनादिनद्वयं वा पुण्यकालः ॥ 'तदा पुण्यं दिनान्तरम्'इति मदनरत्ने  
 पाठः । गुर्जरप्राच्योदीच्यास्तिवदमेवाद्वयंते अत्रापि पूर्ववद्व्याख्येयम् । ति-  
 थितत्वादयो गौडग्रंथास्तु प्रदोषार्धरात्रिभिन्ने रात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने पर-  
 भागे च परदिने पुण्यमन्यसंक्रातिवत्, विशिष्य तयोर्निदशात् ॥ प्रदोषश्च  
 'प्रदोषोस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते'इति वत्सोक्तइत्याहुः ॥ तन्न । 'अस्तं  
 गते'इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः । अतः प्रदोषपदेन तद्विज्ञैव रात्रिरुच्यते । अत  
 एव 'यावन्नोदयते रविः'इति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्व-  
 दिनमुक्तं । वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा ॥ इह तु त्रिमुहूर्त एव प्रदोषः । मकरे  
 दानविशेषो हेमाद्रौ स्कांदे । 'धेनुं तिलमयीं राजन् दद्याद्यश्चोत्तरायणे । स  
 र्वाङ्गकामानवाप्नोति विन्दते परमं सुखम्' । विष्णुधर्मे । 'उत्तरे त्वयने विप्राव-  
 च्छदानं महत्फलम् । तिलपूर्णमनङ्गाहं दत्वा रोगैः प्रमुच्यते'इति ॥ शिवरह-  
 स्येपि । 'तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं शुभैः । तिला देयाश्च विप्रे-  
 भ्यः सर्वदैवोत्तरायणे । तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवग्रहे शुभाः' । कल्पतरौ  
 कालिकापुराणे । 'होमं तिलैः प्रकुर्वीत सर्वदैवोत्तरायणे । तान् यो देवाय  
 विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् । उत्तरायणमासाद्य नरः कस्मात्स शोचति' ।  
 तथा । मकरे रात्रावपिश्राद्धादिभवतीत्युक्तं प्राक् ॥ माघमायायोगविशेषोर्धोदयः  
 प्रागेवोक्तः । माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं हेमाद्रौ यमेन—'अनर्काभ्युदिते  
 माघकृ० १४ काले माघकृष्णचतुर्दशी । स्नातः संतर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते'  
 मा० शु० ४ इति ॥ माघशुक्लचतुर्थीतिलचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । 'माघशु  
 क्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः । ये त्वां दुष्टैर्चयिष्यन्ति ते चर्याः स्युरसुरदुहाम्'  
 इति काशीखण्डात् । 'माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन् काले उपोषितः ॥  
 अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत्'इति त्रिस्थलीसेतौ लैङ्गाच ॥  
 इयमेव कुन्दचतुर्थी सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । 'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्द-  
 पुष्पैः सदाशिवम् । संपूज्य यो हितः काशीं समाप्नोति श्रियं नरः'इति कालादर्शे



श्रीपञ्चमी कामाक्तेः । माघशुक्लपञ्चमी श्रीपञ्चमी । तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे 'मा-  
घशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्यच श्रियः ॥ पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कु-  
र्यात्समृद्धये' ॥ इयं माघवमते पूर्वा, हेमाद्रिमते परा ॥ चैत्रशुक्ले श्रीपञ्चमीति  
रथ ७ दिवोदासः ॥ माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी । सा अरुणोदयव्यापिनी ग्रा  
ह्या 'सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां  
स्नानं महाफलम्' इति चन्द्रिकायां विष्णुवचनात् । 'अरुणोदयवेलायां शुक्ला  
माघस्य सप्तमी । प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा' इति वचनाच्च ॥ यत्तु  
दिवोदासीये 'अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः । द्वादशी वत्सपूजायां सु-  
खदा प्राग्युता सदा' इति षष्ठीयुतत्वमुक्तम् । तद्यदा पूर्वेह्निघटिकाद्वयं षष्ठी-  
सप्तमी च परेद्युः क्षयवशादारुणोदयात् पूर्वं समाप्यते तत्परं ज्ञेयम् । तत्र ष-  
ष्ठ्यां सप्तमीक्षयं प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् । मदनरत्ने भविष्योत्तरे ।  
'माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । कुर्यात्स्नानार्घ्यदानाभ्यामायु-  
रारोग्यसंपदः' । अत्रविधिर्भविष्ये । 'स्नात्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्च-  
लं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्वा शिरसि दीपकम्' ॥ तथा जलं  
प्रक्रम्य । 'न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् । सौवर्णे राजते पात्रे  
भक्त्यालाबुमयेथ वा । तैलेन वर्तिर्दातव्या महारजनरञ्जिता' ॥ महारजनं कु-  
सुम्भम् । 'समाहितमना भूत्वा दत्वा शिरसि दीपकम् । भास्करं हृदये ध्या-  
त्वा इमं मंत्रमुदीरयेत् । नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय न-  
मस्तेस्तु हरिवास नमोस्तु ते । जले परिहरेद्दीपं ध्यात्वा संतर्प्य देवताः' इति ।  
'चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् । मध्ये शिवं सप्तर्णिकं प्रणवेन च सं-  
युतम्' । पूर्वादिदलेषु रविभानुविवस्वद्भास्करसवित्रर्कसहस्रकिरणसर्वात्मका

१ एवं माघशुक्लपञ्चम्यां रतिकामपूजादिर्वसन्तोत्सवः कार्यः 'माघमासे सुर-  
श्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ । रतिकामौ तु संपूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः ॥ दानानि च प्रदेया-  
नि तेन तुष्याति माधवः' इति पुराणसमुच्चयात् ॥ मध्याह्नः कर्मकालः पूजाव्रतत्वा  
दिति टीका ॥



नृ संपूज्य गृहं गच्छेदिति ॥ स्नानमन्त्रश्च काशीखण्डे 'यद्यज्जन्मकृतं पापं म-  
 या सप्तसु जन्मसु। तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥ एतज्ज-  
 न्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् । मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च  
 ये पुनः । इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याधिसमायुक्तं  
 हर माकरि सप्तमि । एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः । केश-  
 वादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत्' । दिवोदासीये मदनरत्ने च इक्षु-  
 दण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बदरीपत्राणि च शिरसि निधाय  
 पूर्वोक्तैर्मन्त्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमयापूपैः हैमं सूर्यं संपूज्य विप्राय दद्यात् ।  
 अर्घ्यमन्त्रो मदनरत्ने । 'सप्तसप्तिवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन । सप्तमीसहि-  
 तो देव गृहाणा धर्मं दिवाकर' । ततः । 'जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तस-  
 प्तिके । सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले' इति प्रार्थयेत् । सौरागमे 'अ-  
 र्कपत्रैः सबदेरैर्दूर्वाक्षतसचन्दनैः । अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्ट-  
 ये' । अत्र दानविशेषो मदनरत्ने भविष्ये । 'ताम्रपात्रे यथाशक्त्या मृन्मये  
 वाथ भक्तिमान् । स्थापयेत्तिलपिष्टं च सघृतं सगुडं तथा । काञ्चनं ताल-  
 कं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् । संच्छाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत्' ॥  
 दानमन्त्रस्तु 'आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च । दुष्टदौर्भाग्यदुःख-  
 ग्रं मया दत्तं तु तालकम्' ॥ तालकं कर्णाभरणमिति तत्रैवोक्तम् । दीप-  
 मात्रमिति हेमाद्रौ तत्रैव भविष्योत्तरे । 'एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च  
 हेमशतदीधितिना समेतम् । दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोसंगचक्रगति-  
 रेव महीं भुनक्ति' ॥ इयं मन्वादिरेपि । इयं च शुक्लपक्षस्थत्वात् पौर्वाहिकी  
 ग्राह्या ॥ यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादिश्राद्धं कुर्यात् ।  
 'मन्वादिकंपैतृकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥ माघशुक्ला  
 षष्ठी भीष्माष्टमी तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्रे । 'माघे मासि सिता-  
 ष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् श्राद्धं च ये नरः कुर्युस्ते स्युः  
 संततिभागिनः' इति । भारतेपि 'शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय



यो जलम् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति' इति धवलनिबन्धे स्मृतिः । 'अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्दद्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः' । सर्ववर्णोक्ते 'द्विजातय' इति संबोधनम् । तर्पणमन्त्रस्तत्रैव । 'भीष्मः शांतनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् । वैयाघ्रपद गोत्राय सांकृत्यप्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मिणे । वसू-  
नामवताराय शंतनोरात्मजाय च ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारि-  
णे' इति । एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति । 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः' इति पाद्मोक्तेरिति जीवत्पितृकनिर्णये पितृचरणैरुक्तं-  
म् ॥ एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीये । अत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं च नित्यम् ॥ 'ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम् । संवत्सर-  
कृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम' इति मदनरत्ने वचनात् । माघशुक्लाद्वादशी

भीष्मद्वादशी । त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति ।  
भीष्मद्वादशी साभीष्मद्वादशीत्येषा सर्वपापहरा शुभा' इति हेमाद्रौ पाद्म-

वचनात् । इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात् ॥ माघी पूर्णिमा परेत्युक्तं प्राक् ।

माघी<sup>१५</sup> तथा हेमाद्रौ ब्राह्मे । 'माघस्थयोश्च जीवेन्दोर्महामाघीति कथ्यते' ॥ तत्रैव ज्योतिषे 'मेषपृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च

गुरुचन्द्रमाः । भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता' ॥ तथा

भविष्ये 'वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः ॥ स्नानदानविही-

नास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन' ॥ तथा 'तिलपात्राणि देयानि कञ्चुकाः क-

म्बलास्तथा' इति ॥ माघपूर्णिमानन्तराष्टमी माघी अष्टका तन्निर्णयः, पूर्वद्युरन्व-

ष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः । मलमासे चैता न भवन्तीत्येतत्सर्वं मार्गशीर्षप्रकरणे-

ऽभिहितम् । तथा चतसृष्वष्टकास्वशक्तवेषा आवश्यकी । 'हेमन्तशिशिर-

१--माघशुक्ल द्वादशीति । माघशुक्लैकादशीत्यर्थः । वाक्ये द्वादशीपदस्यैकाद-  
श्वर्थत्वादिति टीका ॥



योश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः तथा 'मा  
 घाष्टकां प्रक्रम्य तामेकाष्टकेत्याचक्षते' इत्यापस्तम्बवचनाच्चेत्यादि प्रयोगपा  
 रिजाते ज्ञेयम्। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदेमाघ  
 कुम्भसंक्रांतिः मासः समाप्तः ॥ ॥ कुम्भे षोडश घटिकाः पुण्याः। शेषं प्राग्वत्।  
 सीताष्टमी फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां विशेषः कल्पतरौ। 'फाल्गुनस्य च मासस्य  
 कृष्णाष्टम्यां महीपते' इत्युपक्रम्य । 'जाता दाशरथेः पत्नी  
 तस्मिन्नहनि जानकी । उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा । रामपत्नी च  
 संपूज्या सीता जनकनन्दिनी' ॥ फाल्गुनकृष्णचतुर्दशी शिवरात्रिः। सा च  
 शिवरात्रिः केषुचिद्वचनेषु प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येत्युक्तं केषुचिन्निशीथव्या  
 पिनी। तत्राद्या माधवीये 'त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु ॥  
 भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत्' ॥ स्मृत्यन्तरेपि । 'प्रदोषव्यापिनी  
 ग्राह्या शिवरात्रिश्चतुर्दशी ॥ रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत्' ॥  
 अत्र प्रदोषो रात्रिः । उत्तरार्धं तस्या हेतुत्वोक्तेः । कामिकेपि  
 'आदित्यास्तमये काले अस्ति द्वेधा चतुर्दशी । तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा  
 भवेदुत्तमोत्तमा' इति ॥ द्वितीयापि तत्रैव नारदसंहितायां 'अर्धरात्रियुता यत्र  
 माघकृष्णचतुर्दशी ॥ शिवरात्रिव्रतं तत्र सोश्वमेधफलं लभेत्' ॥ स्मृत्यन्तरेपि  
 'भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा ॥ शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं  
 तथा' इति ॥ ईशानसंहितायाम् 'माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि ।  
 शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते  
 तिथिः' इति ॥ 'अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । तत्तिथावेव कुर्वी-  
 त शिवरात्रिव्रतं व्रती । नार्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी नैव । तत्र  
 व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानितः' । अर्धरात्रश्च द्वितीययामान्त्यतृतीययामाद्यवटी-  
 द्वयरूप इति माधवः वचनं तूक्तं प्राक् । एवं सति पूर्वद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव ॥  
 'त्रयोदशी यदा देवि दिनभक्तिप्रमाणतः ॥ जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा  
 चतुर्दशी' इति स्कान्दोक्तेः । दिनभुक्तिरस्तमयः । 'जयन्ती शिवरात्रिश्च



कार्ये भद्रजयान्विते' इतिस्कान्दाच्च ॥ दिनद्वये निशीथव्याप्तौ हेमाद्रिमतेपूर्वा,  
 'अर्धरात्रात्परस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः  
 शिवप्रियैः' इति पाद्मवचनात् ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ गौडा अप्येवमाहुः ॥  
 निर्णयामृते तु सर्वापि शिवरात्रिः प्रदोषव्यापिन्येव । अर्धरात्रवाक्यानि कैमु-  
 तिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तम् ॥ तन्न । अर्धरात्रस्य पूर्वं कर्मकाल-  
 त्वोक्तेः । परदिनप्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात्परैवेति तु माधवः । इदमेव  
 च युक्तं प्रतीमः परेद्युः प्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वद्युः संपूर्णत-  
 द्वाप्तौ च सत्यपि पूर्वद्युः संपूर्णव्याप्तेः पूर्वैव । 'व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु ल-  
 भ्यते या चतुर्दशी ॥ तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभिर्नरैः ॥ तदूर्ध्वा  
 धोनिता भूता सा कार्या व्रतिभिः सदा' इति माधवधृतेशानसंहितोक्तेः पूर्वद्यु  
 निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्येत्येकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव । जयायोगस्य प्राश-  
 स्त्यात् । तच्चोक्तं नागरखण्डे 'माघफाल्गुनयोर्मध्ये अस्मिता या चतुर्द-  
 शी ॥ अनङ्गेन समायुक्ता कर्तव्या सा सदा तिथिः' इति ॥ पाद्मे 'अ-  
 र्धरात्रात्परस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् ॥ पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरा-  
 त्रिः शिवप्रियैः' इति ॥ स्कान्देऽपि 'भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता म-  
 हानिशा ॥ शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा' इति 'महतामपि पापानां  
 दृष्टा वै निष्कृतिः परा ॥ न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम्' इति  
 स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च । यदा चतुर्दशी पूर्वद्युर्निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता  
 परेद्युश्च निशीथादवर्गिव समाप्ता तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात्परैव 'माघासिते  
 भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः ॥ जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्या-  
 च्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य' इतिवचनात् । एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे  
 निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्ववातेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः  
 दिनद्वयेप्रदोषव्याप्तौ निशीथेन निर्णयः एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन निर्णय इति ।  
 इयं च रविभौमसोमवारेषु शिवयोगे चातिप्रशस्ता । हेमाद्रौ तीर्थखण्डे  
 लैङ्गे 'फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः । कृत्तिवासेश्वरं लिंग-



मर्चयन्ति शिवं शुभे । ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम् ॥ शिवरा-  
त्रिपारणे तु विरुद्धवाक्यानि दृश्यन्ते ॥ स्कान्दे 'ऋणाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरा-  
त्रिश्चतुर्दशी' एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ जन्माष्टमी रोहिणी  
च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् इति ॥  
तिथिमध्येऽपि पारणं स्कान्दे उक्तं, उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् ।  
कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाथवा नवा । ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि  
सन्ति वै । संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते । तिथीनामेव सर्वासामुपवास  
व्रतादिषु ॥ तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम्' इति ॥ अत्र यामत्र  
यादर्वाक् चतुर्दशी समाप्तौ तदन्ते तदूर्ध्वगामिन्यां तु प्रातस्तिथिमध्य एवेति हे-  
माद्रिमाधवादयो व्यवस्थामाहुः ॥ तन्न । 'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र  
चोदितम् ॥ यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' इत्यादिसामान्यवच-  
नैरेव व्यवस्थासिद्धेरुभयविधवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः । कथमन्यथा स्कान्दे एव  
शून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्ये पारणविधानं घटते । तस्मात् 'विना शिवचतु-  
र्दशीम्' इति पर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याः सर्वप्रकारेषु तिथिमध्य एव पारणेतिब्रू-  
मः । शिष्टाचारोप्येवमेव । दीपिकायां तु रात्रावपि तिथ्यन्तएवोक्तम् । व्र-  
ततिथेरन्ते निशीथेपि वाऽश्रीयादिति ॥ मदनरत्नकालादर्शयोस्तु 'सा ह्यस्त  
मयपर्यन्तं व्यापिनी चेत्परेहनि । दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक्' इत्यु-  
क्तम् ॥ तन्न । तिथिमध्ये पारणविधानान्निषेधे फलायोगाच्च । तिथ्यन्तान-  
पेक्षणादोषाप्रसक्त्या चतुर्थपादासंगतेः । तेनेदं शिवरात्रिभिन्नव्रतपरं ज्ञेयम् ।  
इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं चातथाच माधवीयेस्कान्दे  
परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम् । न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुव-  
नेश्वरम् । जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः' इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात् ।  
'वर्षवर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता ॥ शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या  
प्रपूजयेत्' इति वीप्साश्रुतेः । 'अर्णवो यदि वा शुष्येत् क्षीयते हिमवानपि ॥  
चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्' इति वचनाच्च नित्यता । 'मम भक्त



स्तु यो देवि शिवरात्रिमुपोषकः । गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ।  
 सर्वान्भुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवामुयात्' इति स्कान्दात् । 'द्वादशाब्दि-  
 कमेतत्स्याच्चतुर्विंशाब्दिके तु वा' इति तत्रैवेशानसंहितावचनात्काम्यता ।  
 तत्रैव 'शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् । आचाण्डालमनुष्याणां भुक्ति-  
 मुक्तिप्रदायकम् ॥' अत्र जागरोपवासपूजाः समुदिताः व्रतं, न तु प्रत्येकम् ॥  
 समुदितानां फलसंबन्धात् ॥ यत्तु । 'अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्न  
 येत्' । तथा । अखंडितव्रतो यो हि शिवरात्रिमुपोषयत् ॥ सर्वान्कामान-  
 वाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ कश्चित् पुण्यविशेषेण व्रतहीनोपि यः पुमान् ॥ जा-  
 गरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत्' इत्यादिस्कादं तदनुकल्पत्वादशक्तपरम् ॥  
 माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु । शिवरात्रिशब्दस्य माघकृष्णचतुर्दश्यामेव रूढ-  
 त्वात् 'माघमासस्यशेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः  
 प्रकीर्तिता' इति हेमाद्रौ वचनाच्च ॥ नायं निर्णयस्तत्रेति रात्रौ यामचतुष्टये पूजा  
 विधानायस्मिन्दिने अधिका रात्रिव्याप्तिः सा ग्राह्या । साम्ये तु पूर्वे वेति हेमा-  
 द्वि रूचिवान् । वस्तुतस्तु प्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि 'सर्वकामप्रदं कृष्णचतुर्द-  
 श्यां शिवव्रतम्' इत्युपक्रम्य 'चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम्' इति हेमा-  
 द्रौ कालोत्तरे शिवरात्रिशब्दप्रयोगात् । कौण्डपायिनामयनाग्निहोत्रे नैत्यकाग्नि  
 होत्रधर्मा इव तद्धर्मप्राप्तिः स्यादेव ॥ अतः प्रदोषनिशीथोभयव्याप्त्यैव निर्णय इति  
 वयं प्रतीमः ॥ अस्यास्मिन् हेमाद्रौ स्कान्धे 'आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिने  
 पि वा । गृह्णीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषयेत्' तथा 'दीपोत्सवे तथा माघे  
 कृष्णा या तु चतुर्दशी । द्वादशैवपि मासेषु प्रकुर्यादिह जागरम् ॥ एवं द्वाषशवर्षे  
 षु द्वादशैव तपोधनान्' वरयेदिति शेषः । चतुर्दश वा विप्रान् आचार्यं च वृत्वा ।  
 'कुम्भोपरिन्यसेदेवमुमया सहितं शिवम् ॥ सौवर्णेप्यथ वा रौप्ये वृषभे संस्थितं  
 शुभे' इत्युक्तम् ॥ हैमीं मूर्तिं संपूज्य स्थिरं चरं वा लिंगं पञ्चामृतसहस्रशत-  
 पञ्चाशत्तदर्धान्यतरकुम्भैः संस्त्राप्य संपूज्य जागरं कृत्वा परेद्युस्तिलान् सहस्रं  
 शतं वा हुत्वा विप्रेभ्यो वस्त्राणि द्वादश गावश्च दत्वा आचार्याय धेनुं शय्यांच



दत्त्वा विप्रान्भोजयेदिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ माघमावास्या युगादिः ॥ तदुक्तम् । 'माघमासे त्वमावास्या' इति । अन्यत्प्राग्वत् ॥ तथान्योपि विशेषो विष्णुपुराणे—'माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ॥ ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ' इति ॥ वारुणं शत भिषक् । इदं च कुम्भादित्ये ज्ञेयमिति हेमाद्रिः ॥ भारते 'काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन् भवेत्तु भूपाल तदा पितृभ्यः ॥ इत्तं तिलान्नं प्रददाति तृप्तिं पर्वा युतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः' इति ॥ फाल्गुनपौर्णमासी होलिका । सा ज सायाह्न-

होलिकानिर्णयः

व्यापिनी ग्राह्या 'सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्ने क्रीडनं गवाम्' इति वचनादिति निर्णयामृते उक्तम् । ज्योतिर्निबन्धे तु—'प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा ॥ संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम् ॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा ॥ तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे' इति नारदवचनात् प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च भविष्ये—'अस्यां निशागमे पार्थ संरक्षयाः शिशवो गृहे ॥ गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे इत्यादिना तत्रैव तद्विधानाच्च । तेनेयं पूर्वविद्धा—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ॥ पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिर्वलेर्दिनम्' इति ब्रह्ममन्त्रह्रस्वैवर्तोकेश्व । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैवापूर्वदिने भद्रासत्त्वात्तत्र च होलिका निषेधात् । तदुक्तं निर्णयामृते मदनरत्ने च पुराणसमुच्चये—'भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै ॥ नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

१-ब्राह्मे 'फाल्गुनस्यापरे पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे ॥ जीवे धनुषि योगे च शोभने रवि वासरे । पुष्यक्षे यदि संपूर्णा गोविन्दद्वादशी मता' ॥ तिथितत्त्वे 'फाल्गुने शुक्लपक्षे स्यात्पुष्यक्षे द्वादशी यदि । गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी ॥ गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् । विनायासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात् ॥' अत्र श्रीगोविन्दसंपूज्योपवासंकुर्यात् 'उपोष्य च जगन्नाथं नमेच्छ्रीपुरुषोत्तमम्' इत्युक्तः । गङ्गास्नाने मन्त्रः—पाद्मे—'महापातकसंघानि यानि पापानि सन्ति वै । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि म हर जाह्नवि' । इतीति टीका ॥



प०२ ]

फाल्गुनमासनिर्णयः ।

२०९

तथा । भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ॥ श्रावणी नृपतिं हन्ति  
 ग्रामं दहति फाल्गुनी' ॥ तथा—'दिनार्धात् परतोपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा  
 यदि ॥ रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा' इति ॥ यदा तु पूर्वदिने च-  
 तुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने च क्षयवशात्सायाह्नात् प्रागेव पूर्णिमा समाप्य-  
 ते तदा पूर्वदिनसंपूर्ण रात्रौ भद्रासत्वात्तत्र च तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव  
 कुर्यात् । 'सार्धयामत्रयं वा स्यात् द्वितीयदिवसे यदा ॥ प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा  
 सा होलिका स्मृता ' इति भविष्यवचनादिती निर्णयामृतकारः ।  
 मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु—'वह्नौ वह्निं परित्यजेत्' इति भविष्ये । वह्नौ  
 होलिकायां वह्निं प्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः ॥ तदुक्तं भिन्नविषयमिति  
 तत्रैवोक्तम् । अन्ये तु तस्यां भद्रामुखं त्यक्तेत्यर्थः ॥ 'प्रदोषव्यापिनी  
 चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा ॥ भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदी-  
 पनम्' इति नारदवचनात् । 'निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः ॥ न  
 दिवा पूजयेद्दुष्टां पूजिता दुःखदा भवेत्' इति दिवोदासीये वचनात् ॥  
 'या मन्त्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः ॥ भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होली  
 मनीषिभिः' इति विद्याविनोदोपनिधानाच्च भद्रामुखं विहाय पूर्वदिन एव कार्ये-  
 त्याहुः । भद्रामुखं तु 'नाढ्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका' इति रत्नमालोक्तं  
 ज्ञेयम् ॥ शिष्टाचारोप्येवमेव । अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा ततोर्वाङ्निशि भद्रावर्ज-  
 पौर्णमास्यां होलिकादीपनम् । अथ परेऽह्नि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्ज  
 रात्रौ चतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या । ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वं  
 च दिवा होलानिषेधादिति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ । वस्तुतस्तु परदिने प्रदोषे  
 पौर्णमासीसत्त्वे कर्मकालस्पर्शे चतुर्थयामादिगौणकालग्रहणे मानाभावाद्भद्रा-  
 भावाच्च ग्रहणकाल एव होली कार्या । नच 'सर्वेषामेव वर्णानां सू-  
 तकं राहुदर्शने ॥ स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्' इति  
 निषेधात् कथं सूतके होलेति वाच्यम् ॥ तस्योत्तरार्धशेषत्वात् ।  
 पूजामन्त्रस्तु 'असृक्पाभयसंनतैः कृता त्वं होलि बालिशैः ॥ अ-



तस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव' इति ॥ यत्तु वार्तिककारैर्होलिका आचारप्राप्तेत्युक्तम् । तत्र हेमाद्र्याद्युदाहृतभविष्यवचनान्यसिद्धानी कृत्वा चिन्ता ज्ञेया । आत्यधिकरणवत् । हुताशिनी मलमासे न भवति ॥ इयं मन्वादिरपि । सा तु पौर्वाह्निकी ग्राह्या । मलमासे सति मन्वादिश्राद्धं मासद्वये कार्यमित्युक्तं प्राक् । कृत्यचिन्तामणौ ब्राह्मे 'नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥ चै-

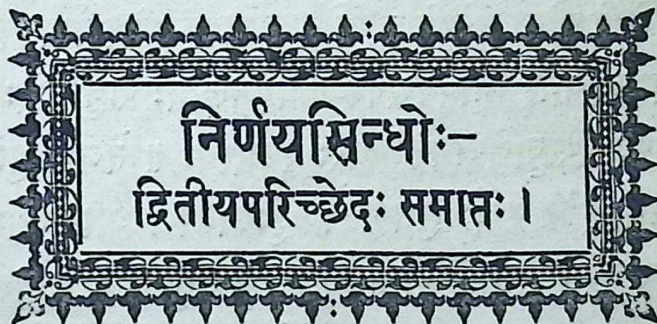
त्ररुष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः । सा चौदयिकी ग्राह्या । वसन्तोत्सव 'प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ' इति भविष्योक्तेः । दिनद्वये तथात्वे पूर्वा । 'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिं राज्ञे तथैव च ॥ पूर्वविद्धेव कर्त्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः' इति वृद्धवासिष्ठवचनात् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये 'चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपदिने । यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप' इति ॥ तथा 'प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ॥ कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥ वन्दयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये' ॥ मन्त्रश्च । 'वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव' इति ॥ अत्र चूतकुसुमप्राशनमुक्तं तत्रैव पुराणसमुच्चये 'वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते चासंप्राश्य चूतकुसुमं सहचन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोत्तमः सुखी स्यात्' मन्त्रस्तु 'चूतमग्न्यं वसन्तस्य माकन्द कुसुमं तव ॥ सचंदनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थ-

सिद्धये' इति ॥ चैत्रमावास्या मन्वादिः । सा चापराह्ण व्यापिनी ग्राह्या रुष्णपक्षस्थत्वात् ॥ इति फाल्गुनमासः समाप्तः । एवं निरूपितमिदं गहनं तु कालतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् ॥ तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोस्मि तेषु ॥ १ ॥ मया सद्वासद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं बाध्यवासितुमपि स्वल्पमतिना ॥ तदेवं यत्किञ्चिद्गदितमिह विख्यातमहिमा



प्रतापोयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्र  
गहनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता ॥ योत्र श्रमः  
किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोमुना तु सुकृती बुधरामकृष्णः ॥ ३ ॥

इति श्रीमन्नारायणभट्ट सुरिसुनुरामकृष्णभट्ट सुत दिनकरभट्टा-  
नुजभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ संवत्सरकृत्यनिरूपणं  
नाम द्वितीयपरिच्छेदः समाप्तः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥





श्रीः ।

## अथ निर्णयसिन्धौ ।

( तृतीयपरिच्छेदः )



श्रीगणेशायनमः ॥ अथ प्रकीर्णकनिर्णयः ॥ श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः ॥ निरूप्य तिथिकृत्यं तु प्रकीर्णं वक्तुमुद्यतः ॥ १ ॥ तत्रादौ संस्कारेषु गर्भाधानम् । तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणसंक्रमादिफलं तत्र शान्त्यादि च पितृकृतं भट्टकृतप्रयोगरत्ने ज्ञेयम् ॥ किञ्चित्तूच्यते । मदनरत्नेनारदः 'अमारिक्तष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि ॥ परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ संध्यासूपपुवे विष्ट्यामशुभं प्रथमार्तवम् ॥ रोगी पतिव्रतादुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी ॥ पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥ वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्रं शत्रुविवर्द्धनम् ॥ मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलार्द्धिवन्धुनाशनम् ॥ मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः ॥ तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात्' ॥ गर्गः 'सुभगा चैव दुःशीला बन्ध्या पुत्रसमान्विता ॥ धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसंतानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा ॥ दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी ॥ स्वकर्मनिरता हिंसा पुण्यपुत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधन्यासमन्विता । मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दक्षर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥ कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाघटाः ॥ राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे' गर्गः 'सुभगा श्वेतवस्त्रा स्यात् दृढवस्त्रा पतिव्रता ॥ क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा ॥ नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः ॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमामुयात् ॥ समाश्वेतकन्यकाश्चेति फलं स्यात् प्रथमार्तवे' ॥ अथ स्त्रीसंसर्गव

१ 'संमार्जनीकाष्ठतृणादिशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् ॥ तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेदृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात्' इति प्रथमे रजसि सर्वमिदमिति संस्कारमयुखे ।



ज्ञेयमाह वसिष्ठः 'प्रभूतदोषे यदिदृश्यते तत्पुष्पं तदा शान्तिकर्म कार्य-  
 म् ॥ विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमुत्तमेहि ॥ ज्योतिर्निबन्धे  
 वसिष्ठः 'आयतौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवारा रिक्तामार्का-  
 षष्ठयः पितृपरसदने रात्रिसंध्यापराह्णे ॥ मिश्रोऽग्रा मूलतीक्ष्णं विवरमनरुणा-  
 ल्पाधिकासंगराष्ट्रोत्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरन्नीलरक्ताम्बरं च ॥ आ-  
 यतौ दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला ॥ वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूल-  
 वती भवेत् ॥ गण्डे तु पुंश्चली नारी व्याघाते चात्मघातिनी ॥ वज्रे च स्वै-  
 रिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ परिधे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारि-  
 णी ॥ शेषाः शुभावहा योगा यथानामफलप्रदाः' ॥ शान्तिमाह प्रयोगपारिजाते  
 शौनकः 'सार्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनक ॥ पञ्चमेहि चतुर्थे  
 वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ द्रोणप्रमाणधान्येन ब्रीहिराशित्रयं भवेत् ॥ कुम्भत्रय-  
 न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादिवोष्टितम् ॥ सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव आप इत्यथ ॥  
 ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्रायत्र्या च ततः क्रमात् ॥ मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि  
 च हेम च ॥ उदुम्बरः कुशो दूर्वा राजीववटबिल्वकाः ॥ विष्णुक्रान्ताथ  
 तुलसी बर्हिषं शंखपुष्पिका ॥ शतावर्यश्वगन्धा च निर्गुण्डी सर्षपद्वयम् ॥  
 अपामार्गं पलाशश्च पनसो जीवकस्तथा ॥ प्रियंगवश्च गोधूमा ब्रीहयो ऽश्व-  
 त्थ एवच ॥ क्षीरं दधि च सर्पिश्च पद्मपत्रं तथोत्पलम् ॥ कुरण्टकत्रयं गुंजा  
 वचाभद्रकमुस्तकाः ॥ द्वात्रिंशदौषधानीह यथासंभवमाहरेत् ॥ मृत्तिकाश्चौ-  
 षधादीनि तन्मन्त्रेण क्षिपेत् क्रमात् ॥ कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं मृद्रेणुता-  
 म्रजम् ॥ भुवनेश्वरीं न्यसेत्तत्र इन्द्राणीं च पुरंदरम् ॥ जपेद्वायत्रीमाहोमाच्छ्री-  
 सूक्तं च जपेत्ततः ॥ स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भं ऋत्विगेको जपेदथ ॥ चत्वारि रुद्रसू-  
 क्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च ॥ संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया ॥ शन्न

१-प्रथमदिननिर्णयस्तु पारिजाते चतुर्विंशतिमते- 'पूर्वाशयोस्तु रात्रौ चेज्जननं मरणं  
 रजः । दृष्टं पूर्वदिनादित्वं तृतीये तूत्तरेहनि ॥ केचिद्विवोदिते सूर्ये जननं मरणं तथारजो  
 वा दृश्यते स्त्रीणां यस्याहस्तस्य शर्वरी । अपरे त्वर्धरात्रात्प्राग्मृतौ रजसि सूतकौ पूर्वमेव दिनं  
 प्रादुरुर्ध्वं चेदुत्तरेहनि' इति ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ इति संस्कारकौस्तुभः ॥



इन्द्राग्निसूक्तं च तत्रैव संस्पृशजपेत् ॥ कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं  
 समाचरेत् ॥ दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च ॥ तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकै-  
 का चाहुतिर्भवेत् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ गायत्र्यैव तु हो-  
 तव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः ॥ संतता-  
 माज्यधारान्तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥ अथाऽभिषेकं कुर्वीत प्रतिकुम्भास्थितो-  
 दकैः ॥ आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् ॥ इन्द्रो अङ्गत्वेनैव  
 पावमानैः क्रमेण तु ॥ उभयं शृण्वच्चैनं स्वस्तिदाविश एकया ॥ त्रैयम्बकेन  
 मन्त्रेण जातवेदस एकया ॥ समुद्रज्येष्ठा इत्यादि त्रायन्तां च त्रिभिः क्रमा-  
 त् ॥ इमा आपस्तृचेनैव देवस्यत्वेति मन्त्रतः ॥ मन्त्रेणाथ तमीशानं त्वमग्ने  
 रुद्र इत्यथ ॥ तमुष्टुहीति मन्त्रेण भुवनस्य पितरं तथा ॥ याते रुद्रेति मन्त्रेण  
 शिवसंकल्पमन्त्रतः ॥ इन्द्र त्वा वृषभं पञ्चमन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत् ॥ धेनुं  
 पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणम् ॥ सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने ॥  
 महाशान्तिं प्रजप्याथ ब्राह्मणान् भोजयेदथ ॥' नारदः—'तत्र शान्तिं प्रकु-  
 र्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः ॥ प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥ स्व-  
 र्णं गोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ॥ प्रकारान्तरं मदनरत्ने ज्ञेयं ॥ वि-  
 स्तरान्नोच्यते ॥ ग्रहणे रजोदर्शने तु जातकर्मप्रस्तावे शान्तिं वक्ष्यामः ॥  
 प्रथमतो विशेषः स्मृतिचन्द्रिकायां ॥ 'प्रथमतो तु पुष्पिण्याः पतिपुत्र-  
 वतीक्रियाः । अक्षतैरासनं कृत्वा तस्मिंस्तामुपवेशयेत् ॥ हरिद्रागन्धपु-  
 ष्पादीन्द्युस्ताम्बूलकं स्रजम् ॥ दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वासयेद्गृहे ॥  
 लवणापूपमुद्रादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्तितः' इति ॥ द्वितीयां घृतुषु तन्नियमा-

१ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्ना-  
 नान्न शुद्धयति ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित् ॥ अथवा मनसि ध्यात्वा  
 पतिं भानुं विलोकयेत् इति याज्ञवल्क्योपि ॥ मलवद्वाससा न संवदेत, न सहासीत, नास्या  
 अन्नमद्यात् ब्रह्महत्यायै ह्येषा, वर्णं प्रतिमुच्यस्ते, अथो खल्वाहः- अभ्यञ्जनं वाव स्त्रिय  
 अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यम्, काममन्यदित्यामलवद्वाससं संभवन्ति यस्ततो जायते सोऽभि



नाह मदनपारिजाते दक्षः॥ 'अजनाभ्यजने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम्॥ न कुर्यात्सार्त्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा' ॥ अत्रिरपि—'वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम् ॥ गन्धं माल्यं दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम् ॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिनापिवेत् ॥' मदनरत्ने हारीतः—'रजः-प्राप्ता चेदधःशयीत भूमौ कार्णायसे पाणौ मृन्मये वाश्नीयात्' इति॥ विष्णु धर्मे॥ 'आहारं गोरसानां च पुष्पालंकारधानम् ॥ अजनं कंकतं दन्ताः पीठ-शय्याधिरोहणम् ॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेच्च दिनत्रयम्॥' तथा प्रथमर्तोः पूर्वं स्त्रीगमनं न कार्यम् ॥ 'प्राग्रजोदर्शनात्पत्नी नेयाद्भृत्वा पतत्यधः ॥ व्यर्थी कारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्' इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः॥ तत्र ऋतौ गमनमाह याज्ञवल्क्यः—'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्' इति। अनृतावप्याह गौतमः—'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' इति॥ मनुः—'ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तु या ॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ मदनरत्ने देवलाः—'तस्मात्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत् ॥' तत्र तिथ्यादीनाह श्रीधरः—'षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा ॥ शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्कसितेन्दुजानाम्॥' उभयत्र पक्षद्वये ॥ आर्यो गुरुः ॥ सितः शुक्रः इन्दुजो बुधः ॥ 'विष्णुप्रजेशर-विमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभागिनिशेषकार्ये ॥ पूज्यानि षुष्यवसुशी-तकराश्विचित्रा दित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्ये' ॥ विष्णवादिदैव-त्यनक्षत्राण्युपक्रान्तानि रत्नमालायाम्—'भेशा दस्यमाग्निधातृशशिनःशर्वो

शस्तो, यामरण्ये तस्यै स्तेनः यां पराचीं तस्यै हीत मुख्यप्रगल्भाः । या स्नाति तस्या अप्सु मारुकः, या अभ्यङ्गे तस्यै दुश्चर्मा, याथ लिखते तस्यै खलतिरपस्मारी याङ्क्ते तस्यै काणः, या दतो धावते तस्यैऽश्यावदन्, या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणति तस्यै क्लीबः, या रज्जुं सृजति तस्या उद्वन्धुकः या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादकः, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः तिष्ठो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेत् अखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय, इति तैत्तिरीयसंहिता ॥



दितिर्वाक्पतिः कद्रूजाः पितरो भगोर्यमरवित्वष्टाहयामारुतः ॥ शक्राग्नी  
 त्वथ मित्र इन्द्रनिर्कृती तायं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोऽम्बुपादचरणा-  
 हिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥' उत्तराशब्देनोत्तरात्रयम् ॥ अत्र मूलस्य पूज्यत्वमुक्तम्  
 ॥ याज्ञवल्क्येन तु- 'एवं गच्छन् स्त्रियं क्षां मां मघां मूलं च वर्जयेत्'  
 इत्युक्तं ॥ तेन पूर्वत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र समासु पुत्रा विषमासु कन्येति  
 ज्ञेयं युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियो युग्मासु रात्रिषु इति हेमाद्रौ शंखोक्तेः ॥  
 तत्रप्युत्तरोत्तराः प्रशस्ताः तदाहापस्तम्बः ॥ 'तत्राप्युत्तराप्रशस्ता' इति ॥  
 तत्रैव व्यासः- 'रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः ॥ पञ्चम्यां पुत्रिणी  
 नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः ॥ सप्तम्यां सप्रजा योषिदष्टम्यामश्वरः पुमान् ।  
 नवम्यां सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः ॥ एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां  
 पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुतापापा वर्णसंकरकारिणी ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आ-  
 त्मवेदी दृढव्रतः ॥ प्रजापतिश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता ॥ आश्रयः सर्वभूता  
 नां षोडश्यां जायते पुमान्' इति ॥ अत्र चतुर्थेदिननिषेधेपि 'स्नातां चतुर्थे  
 दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः' इति भारतोक्तेः ॥ 'चतुर्थेहनि स्नातायां युग्मासु  
 वा गर्भं संदधानि' इति हारीतोक्तेर्विकल्पो ज्ञेयः ॥ तत्रापि 'स्नानं रजस्वलाया  
 स्तु चतुर्थेहनि शस्यते ॥ गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन' इत्याप-  
 स्तम्बोक्तेर्व्यवस्था ज्ञेया ॥ प्रभासखण्डे मरीचिः- 'शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेहि  
 स्नानेन स्त्री रजस्वला । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेहनि शुद्ध्यति' । श्रौतक-  
 र्ममध्ये रजस्वला चेत्तत्र चतुर्थ दिनेप्यधिकारः- 'अथ यदा त्रिरात्रिणी-  
 स्यादथैनामुपहूयेत्' इत्यापस्तम्बसूत्रात् 'चतुर्थेहनिगोमूत्रमिश्राभिरद्भिः स्नाता

१-क्षां लघ्वाहारादिना कृशामित्यर्थः । अतएव बृहस्पतिः पुंसयोराहारविशेषं निमि-  
 त्तमाह- 'स्त्रियाः शुक्राधिके स्त्री स्यात्पुमान् पुंसोधिके भवेत् । तस्माच्छुक्रविवृद्धय-  
 र्थं स्निग्धं भक्ष्यं च भक्षयेत् । लघ्वाहारां स्त्रियं कुंर्यादेवं संजयनेत्सुतम्' इति ॥  
 २ यदा युग्मास्वपि रात्रिषु शोणिताधिक्यं तदा ह्येव भवति पुरुषाकृतिः ॥ अयुग्मास्वपि  
 शुक्राधिक्ये पुमानेव ह्युपाकृतिः ॥ कालस्य निमित्तत्वात् शुक्रशोणितयोश्चोपादानकार-  
 णत्वेन प्राबल्यात्तस्मात्क्षामा कर्तव्येति मिताक्षरायाम् ॥ २ ॥



वासोयोक्त्रजालानि मन्त्रैर्धारयेत्' इति सोमेष्युक्तम् एवं सर्वत्र श्रौतकर्मणी  
 ति धूर्तस्वामिरामाण्डारादयः॥ अत्र सर्वासु युग्मासु गमनमावश्यकं युग्मा-  
 स्विति बहुवचननिर्देशादिति विज्ञानेश्वरः तच्चैकस्यां रात्रौ सकृदेव कार्यम् ॥  
 'सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षणं जनयेत्पुमान्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः इदंचतौ  
 गमनमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासंभवे श्राद्धैकादश्यादावपि कार्यम् ॥  
 'ब्रह्मचर्येव पर्वाण्यद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इतियाज्ञवल्क्योक्तेः ॥ व्याख्यातं  
 चेदं मिताक्षरायां यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यतौ गच्छतो न ब्रह्म-  
 चर्यस्खलन दोष इति ॥ पर्वाणीति बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति च ॥ मद्  
 नरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये 'दिवाजन्मदिने चैव न कुर्यान्मै-  
 थुनं व्रती ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोर्था न च पर्वसु' इति ॥ तदचतुर्वि-  
 षयम् ॥ ब्रह्मचर्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्' इति मनूक्तेः ॥ दर्शादौ  
 तु न भवत्येव पर्वणांपर्युदस्तत्वात् ॥ 'ऋतुकालं नियुक्तो वा नैव गच्छे-  
 त्स्रियं क्वचित् ॥ तत्रगच्छन्समामोति ह्यनिष्टफलमेव तु इति वृद्धमनूक्तेः श्राद्धे  
 ब्रह्मचर्यं नियतमित्युक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ एतत्सति संभवे ज्ञेयम् ॥  
 अनेकभार्यस्यर्चुयौगपद्ये हेमाद्रौ कश्यपः ॥ 'योगपद्ये तु तीर्थानां विवा-  
 हक्रमशो व्रजेत् ॥ रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोपि वा' इति ॥ ग्रहणमृ-  
 तुग्रहणं ॥ ऋग्विधाने 'विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती ॥

गर्भाधानं ततः कुर्यात्सुपुत्रौ जायतेध्रुवम् ॥ अगमने दोषमाह  
 ऋतावगमने.

पराशरः 'ऋतुस्त्रातां तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति । घो-  
 रायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥' अस्यापवादमाह मदनरत्ने व्यासः  
 'व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेपि नारीणां भ्रूणह-  
 त्या प्रमुच्यते । वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तामनपत्यामपुष्पिणीम् । कन्यां च बहु-  
 पुत्रां च वर्जयेन्मुच्यतेभयात् ।' वृद्धां गतरजस्कां । गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे  
 प्रायश्चित्तमाह पारिजाते आश्वलायनः ॥ गर्भाधानस्याकरणात्तस्यां जा-  
 तस्तु दुष्यति ॥ अकृत्वा गां द्विजे दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः ॥ गर्भाधानं च



मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम् ॥ 'उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतुजन्मसु ॥  
सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते' इतिज्योतिर्निबन्धे भृगूक्तेः ॥  
ऋतौ गमने पराशरः 'ऋतौ तु गर्भशंक्त्वास्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥  
अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपूरीषवत्' ॥ स्त्रीणां तु न स्नानं ॥  
'उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ ॥ शयनादुत्थिता नारी शुचिः  
स्यादशुचिः पुमान्' इतिवृद्धशातातपोक्तेः ॥ अत्र कश्चिद्विशेष उच्यते- तत्र

रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रिं त्रिभागं कृत्वा आद्यभागद्वयं  
ऋतौ स्त्रिया  
अस्पृश्यत्व-  
निर्णयः । चेत्पूर्वदिनं ग्राह्यं, परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ॥ यत्तु  
'प्रागर्द्धरात्रात्प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनम्' इत्युक्तं ॥ तत्र देशा  
चाराद्व्यवस्था ॥ तथा सप्तदशदिनपर्यन्तं पुनः रजोदृष्टौ

स्नानमात्रम् ॥ अष्टादशे एकरात्रं ॥ ऊनविंशे द्वयहः ॥ विंशतिप्रभृतित्रिरात्र-  
मिति तत एव ज्ञेयम् ॥ यत्तु 'चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते' इति ॥  
तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतम् ॥ एतच्च यस्या विंशतिदिनोत्तरं प्रायशो रजस्तत्रैव  
यस्यास्त्वावाक् प्रायशो रजोदर्शनं तत्रोक्तं स्मृत्यर्थसारे ॥ त्रयोदशदिनाद्धूर्ध्वं  
प्रायो रजोवतीनामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति ॥ एकादशदिने एकरात्रं ॥  
द्वादशे द्विरात्रं ऊर्ध्वं त्रिरात्रमिति प्रयोगपारिजातेष्येवं ॥ रोगजे तु  
तत्रैव विशेषः संग्रहे ॥ 'रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते ॥ नाशुचिस्तु  
भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम्' इति ॥ कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव ॥ 'साध्वा-  
चारान तावत्स्यात्स्नातापि स्त्री रजस्वला ॥ यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्त्त-  
ते' इति श्राद्धहेमाद्रौ शंखोक्तेः ॥ तत्रापि स्वकालेऽशुचिरेवेत्याह ऋष्यः

शृङ्गः ॥ 'रोगजे वर्त्तमानेपि काले निर्याति कालिकम् ॥ तस्मा-  
रजस्वला-  
परस्पर्शं कालेऽप्रमत्ता स्यादन्यथा संकरो भवेत् ॥ तथा 'रजस्व-  
लाया रजस्वलान्तरस्पर्शेऽकामतः स्नानं' ॥ कामत उपवास-

पञ्चगव्याशनं च ॥ असवर्णानां तु ब्राह्मण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे क्रमेण कृच्छ्रा-  
र्द्धपादोनकृच्छ्रकृच्छ्राणि, क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपादएव क्षत्रियादीनां हीनव-



र्णस्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः ॥ वैश्याश्शूद्रोः पूर्वया स्पर्शेऽहोरात्रं द्विरात्रं च ॥

एतच्च कामतः ॥ अकामतश्च प्राक्शुद्धेशनम् ॥ अकामत-  
चाण्डालादिस्पर्शे

श्चाण्डालादिस्पर्शेऽप्यनशनमेव प्राक्शुद्धेः ॥ कामतस्तु प्रथमे-

हि त्र्यहः द्वितीये द्व्यहस्तृतीय एकाहः ॥ श्वस्पर्शे तु द्व्यह एकाहो वा ॥

भुञ्जानायाश्चाण्डालादिस्पर्शे षड्रात्रम् ॥ उच्छिष्टयोः स्पर्शे तु कृच्छ्र इत्यादि

मिताक्षरायां ज्ञेयं ॥ स्मृत्यर्थसारे तु सर्वत्र बालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते

भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याम्नाय इति ॥ स्नानविधिं चाह पराशरः 'स्नाने नैमि-

त्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ॥ पात्रान्तारिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥

सिक्तगात्रा भवेदग्निः साङ्गोपाङ्ग कथंचन ॥ न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च

धारयेत्' ॥ अथ रजस्वलास्नानं दैवज्ञवल्लभः ॥ 'ब्रह्मानुराधा

रजस्वलास्नानम् श्विनसौम्यभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु ॥ विश्वार्यमर्क्षोत्तर

भाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः' ॥ ज्वरे तूशनाः 'ज्वराभिभूता या

नारी रजसा च परिप्लुता ॥ कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥

चतुर्थेहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् ॥ सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा

स्नात्वा पुनःस्पृशेत् ॥ दश द्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनःपुनः ॥ अन्ते च

वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा' इति ॥ इदं चातुरमात्रे ज्ञेयं ॥ 'आ-

तुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः' इति पराशरोक्तेः ॥ रजसोऽज्ञाने तु पराश-

रमाधवीये प्रजापतिः 'अविज्ञाते मले सा च मलवद्वसना यदि ॥ कृतं गृहेषु

दुष्टं स्याच्छुद्धिर्न स्यात्त्रिरात्रतः' ॥ देवजानीये कारिकायां 'उच्छिष्टा तु द्वि-

जातीनां रजः स्त्री यदि पश्यति ॥ उपवासमधोच्छिष्टे ऊर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षि

पेत् ॥ ॥ अथ पुंसवनम् ॥ प्रयोगपारिजाते जातूकर्ण्यः 'द्वि-

तीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् ॥ व्यक्ते गर्भे भवे-

त्कार्यं सीमन्तेन सहाथ वा ॥ 'बृहस्पतिः 'तृतीये मासि कर्त्तव्यं गृष्टेरन्य-

त्र शोभनम् ॥ गृष्टेश्वतुर्थेमासे तु षष्ठे मास्यथ वाष्टमे' ॥ सकृत्प्रसूता गृष्टिः ॥

एतेन प्रतिगर्भमपि भवतीति ज्ञायते ॥ बह्वकारिकापि 'कर्त्ता स्याद्देवर-

पुंसवनम्



स्तस्या यस्याः पत्युरसंभवः ॥ आवर्त्तत इदं कर्म प्रतिगर्भमिति स्थितिः ॥  
 ब्राह्मे 'गर्भाधानादिसंस्कर्त्ता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ अभावे स्वकुलीनः स्या-  
 द्वांधवोऽन्यत्र गोत्रजः' ॥ मदनरत्ने सत्यव्रतः ॥ 'मृतो देशान्तरगतो भर्त्ता  
 स्त्री यद्यसंस्कृता ॥ देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत्' ॥ हेमाद्रौ  
 यमः ॥ प्रथमे मासि द्वितीये वा यदा पुंनक्षत्रेण चंद्रमा युक्तः स्यादिति  
 वराहः 'हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः ॥ पुंसंज्ञकेषु कार्येष्वे-  
 तानि शुभानि धिष्यन्ति' ॥ अनूराधापि पुनक्षत्रं 'अनूराधान् हविषा वर्ध-  
 यन्तः' इति श्रुतेः ॥ गगौपि 'पुत्राम श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः ॥  
 अभिजित्पौष्ठाच्चैव अनूराधा तथाश्वयुक्' ॥ नृसिंहः ॥ 'रिक्तां पर्वं च नवमीं  
 त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः' ॥ ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः 'मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरि-  
 न्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य ॥ काकी च वन्ध्या भवतीह शुके स्त्री पुत्रलाभो  
 रविभौमजीवैः' ॥ अनवलोभनस्याप्ययमेव कालः ॥ दीपिकायां तु चतुर्थेऽ  
 नवलोभनम्' इत्युक्तं ॥ अथ सीमन्तः ॥ हेमाद्रौ वैजवापः  
 रजस्वलास्नानम् अथ सीमन्तोन्नयनम् ॥ चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे च इति ॥ व-  
 सिष्ठः ॥ 'चतुर्थे सप्तमे मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे' ॥ हेमाद्रौ शंखः ॥ 'गर्भस्प-  
 न्दने सीमन्तोन्नयनं, यावद्वा न प्रसवः' ॥ काष्णार्जिनिः ॥ 'गर्भलम्भन-  
 मारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा । सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छंखस्य वचनं यथा' ॥  
 मासश्चात्र सौरः सावनो वा ॥ कालविधाने ॥ 'चतुर्थषष्ठाष्टममासभाजि  
 सौरेण गर्भे प्रथमं विधेयं ॥ सीमंतकर्म द्विजभाभिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुबलिं  
 च कुर्यात्' ॥ वसिष्ठः ॥ 'चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यथ वाष्टमे ॥  
 ज्योतिर्निबन्धे नारदः ' अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे' ॥ काल  
 विधाने 'सीमन्ते तिष्यहस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पृक्षच्छिद्रं  
 च रिक्ता पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः' ॥ अदितिः पुनर्वसुः ॥ पक्ष-  
 छिद्रं चाह वसिष्ठः 'चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा ॥ षष्ठी च  
 द्वादशी चैव पक्षछिद्राह्वयः स्मृताः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः



भूता ५ ष्ट ८ मनु १४ तत्त्वां २५ क ९ दश १० शेषास्तु शोभनाः' ॥  
 कालनिर्णये ॥ 'शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् ॥ पौर्णमासीं प्र-  
 शंसन्ति केचित्सीमन्तकर्मणि' ॥ बृहस्पतिः ॥ 'पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चा-  
 न्त्यत्रिकं विना ॥ चतुर्दशीं चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभप्रदे' ॥ नारदः ॥ 'वि-  
 प्रक्षत्रिययोः कुर्याद्विवा सीमन्तकर्म तत् ॥ वैश्यशूद्रकयोरेतद्विवानिश्यपि केच-  
 न' ॥ वाराः पूर्वोक्ता एव ॥ एतच्च सकृदेव कार्यमिति विज्ञानेश्वरः । 'सकृच्च  
 संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता' इति देवलोक्तेः ॥ सकृत्प्रतिगर्भं वा कार्यमिति  
 हेमाद्रिः ॥ 'सकृच्च कृतसंस्कारा सीमन्तेन द्विजस्त्रियः ॥ यं यं गर्भं प्रसूयन्ते  
 स सर्वः संस्कृतो भवेत्' इति हारीतोक्तेः ॥ 'सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार  
 इष्यते ॥ केचिद्गर्भस्य संस्कारान् प्रतिगर्भं प्रयुज्जते' इति हेमाद्रौ विष्णुवच-  
 नाच्च ॥ स एव 'स्त्री यज्ञकृतसीमन्ता प्रसवेत्तु कथंचन ॥ गृहीतपुत्रा विधिव-  
 त्पुनः संस्कारमर्हति' ॥ सीमन्ते भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये धौ-  
 म्येन 'ब्रह्मौदने च सोमे च सीमतोन्नयने तथा ॥ जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा  
 चान्द्रायणं चरेत्' ॥ ऋग्विधाने तु 'अराइवेज्जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः ॥

सीमन्ते च यदा भुंक्ते मुच्यते किल्बिषात्तदा' इति ॥ अथ  
 गर्भिणी-  
 तत्पतिधर्माः गर्भिणीतत्पतिधर्माः ॥ वराहः 'सामिषमशनं यत्ना-  
 त्प्रमदा परिवर्जयेदतः प्रभृति' गृह्यकारिकायाम् ॥ "अङ्गार-  
 भस्मास्थिकपालचुल्लीशूर्पादिकेषूपविशेन्न नारी ॥ सोलूखलाढ्ये दृषदादिके  
 वा यन्त्रे तुषाढ्ये न तथोपविष्टा ॥ नो मार्जनीगोमयपिण्डकादौ कुर्यान्न वा-  
 रिण्यवगाहनं सा ॥ अङ्गारभूत्या न नखैर्लिखेत्क्षमां कर्लि वपुर्भङ्गमथो न  
 कुर्यात् ॥ नो मुक्तकेशी विवशाथ वा स्याद्भुंक्ते न संध्यावसरे न शेते ॥  
 नामङ्गलं वाचमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतले न यायात्' ॥ विष्णुधर्मोत्तरे  
 'कटुतीक्ष्णकषायाणि अत्युष्णलवणानि च ॥ आयासं च व्यवायं च गर्भि-  
 णी वर्जयेत्सदा' ॥ हेमाद्रौ कौण्डिन्यः 'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च  
 सर्वशः ॥ न जीवत्पितृकः कुर्याद्भुविर्णीपतिरेव च' ॥ मिताक्षरायाम् ॥



‘उदन्वतोऽभसि स्नानं नखकेशादिकर्त्तनम् ॥ अन्तर्वत्न्याः पतिः कुर्वन्न-  
 प्रजा जायते ध्रुवं’ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे ॥ ‘गयायां पिण्डदानस्य न क-  
 दाचिन्निराक्रिया’ ॥ अत्रकाले दानप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु  
 जीवत्पितृकगर्भिणीपत्याशौचादिनिमित्तस्य ॥ अग्निहोत्रे यावज्जीवत्कालप-  
 रत्वाभावात् ॥ अन्यथाशौचेपि गयायात्राश्राद्धं च स्यात् यत्र तु निमित्तसं-  
 योगस्यापवादो यथाशौचेऽग्निहोत्रादेः, यथा वा जीवत्पितृकस्य मातुर्गयान्व-  
 ष्टकादौ तत्र तदेव भवति नान्यदिति संक्षेपः ॥ प्रयोगपारिजाते कश्यपः  
 ‘गर्भिणी कुञ्जराश्वदिशैलहर्म्याधिरोहणम् ॥ व्यायामं शीघ्रगमनं शकटा  
 रोहणं त्यजेत् ॥ शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुकुटासनम् । व्यवसायं  
 दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत्’ ॥ मदनरत्ने स्कान्दे ‘हरिद्रां कुंकुमं  
 चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥ कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥  
 केशसंस्कारकवरीकरकर्णविभूषणम् ॥ भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेद्गर्भिणी  
 नहि’ ॥ बृहस्पतिः ॥ ‘चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणी यदा ॥  
 यात्रा नित्यं विवर्ज्या स्यादाषाढे तु विशेषतः’ ॥ याज्ञवल्क्यः ‘दौर्ह-  
 दस्याप्रदानेन गर्भा दोषमवाप्नुयात् ॥ वैरूप्यं मरणं चापि तस्मात्कार्यं प्रियं  
 स्त्रियाः’ ॥ दौर्हदं गर्भिणीप्रियं ॥ तत्रैवाश्वलायनः ‘वपनं मैथुनं तीर्थं  
 वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्द्ध्वं चान्यत्र वेदवित्’ ॥ श्राद्धं  
 तद्भोजनमिति प्रयोगपारिजातः ॥ कालविधाने मुहूर्त्तदीपिकायांच ॥  
 ‘क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धादि वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् ॥ उद्वा-  
 हमौपनयनं जलधेश्च गाहमायुःक्षयार्थमिति गर्भिणिकापतीनाम्’ ॥ रत्नसं-  
 ग्रहे गालवः ॥ ‘दहनं वपनं चैव चोलं वै गिरिरोहणम् ॥ नावआरोहणं  
 चैव वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ अव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्म-  
 सङ्गम् ॥ तस्यां तु यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं न कुर्यात् ॥  
 अव्यक्तगर्भा वनिता भवेन्मासत्रयात्परं ॥ षण्मासात्परतः सूतिर्नवमेरिष्टवा-



सूतिका- सिनी' । अथ सूतिकागृहप्रवेशः । गर्गः 'रोहिण्यैन्दवपौ-  
ष्णेषु स्वातीवरुणयोरपि । पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठात्र्युत्तरासु  
मृहप्रवेशः च । मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम्' ॥ एतच्च  
संभवे ॥ 'प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत्' इति वसिष्ठोक्तेः ॥  
तच्च नैर्ऋत्यां कार्यम् । 'वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम्'  
इति वसिष्ठोक्तेः ॥ विष्णुधर्मे 'दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशे  
षतः । वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः । मुसलेन

जातकर्म

तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च' इति ॥ अथ जातकर्म ॥

पारिजाते वसिष्ठः 'श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलंस्नानमा-  
चरेत्' ॥ मनुः 'प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते' । वर्द्धनं छेदनं ।  
हेमाद्रौ वैजवापः । 'जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवा-  
दतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे ॥ 'अ-  
छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि' ॥ पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते ॥  
तदाह तत्रैव । काष्णार्जिनिः 'प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
स्नात्वाऽनन्तरमात्मीयान् पितृन् श्राद्धेन तर्पयेत् ॥ एतच्च रात्रावपि कार्य-  
म् 'पुत्रजन्ममि यात्रायां शर्वर्या दत्तमक्षयम्' इति तत्रैव व्यासोक्तेः ॥  
वैजवापः 'जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते ॥ स्तनप्राशनतः  
पूर्वं नाभिकर्तनतोपि वा' ॥ एतेन नैमित्तिकमपीदं जातेष्टिवदाशौचान्ते कार्यं  
मिति शङ्का परास्ता । 'जाते कुमारे पितृणामामोदात्पुण्यं तदहः' इति हारी  
तोक्तेश्च । अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यमित्युक्तं ॥ पृथ्वीचन्द्रोदय आ-  
दित्यपुराणे 'जातश्राद्धे तु पक्वान्नं न दद्याद्बालणेष्वपि' इति ॥ हेमा-  
द्रिस्तु 'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन क-  
ल्याणान्यभिकामयन्' इति संवर्तोक्तेर्हेम्नैवेत्याह ॥ एतच्च जननाशौचे मर-  
णाशौचे च कार्यमित्याह मिताक्षरायां प्रजापतिः 'आशौचे तु समुत्पन्ने  
पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुं स्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति' ॥



केचित्तु 'मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशौचापगमे कार्यं  
जातकर्म यथाविधि' इति स्मृतिसंग्रहोक्तेराशौचान्ते कार्यमित्याहुः ॥ स्मृत्य-  
र्थसारेपि विकल्प उक्तः । 'मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेषु च । गुरौ शुक्रेथ-  
वाकेन्द्र जातकर्म च नाम च' ॥ मृदादिलक्षणमाह श्रीधरः ॥ 'रोहिण्युत्त-  
रभं स्थिरं गिरिशमूलेन्द्रोरगा दारुणं क्षिप्रं चाश्विदिनेशपुष्यमनलेन्द्राग्नी तु  
साधारणं । उग्रं पूर्वमघान्तकं मृदुगति त्वाष्ट्रान्त्यमैत्रं चरं विष्णुस्वानिशतो  
डवस्वदितयः कुर्युः स्वसंज्ञाफलम्' ॥ अत्र सर्वत्र जातकर्म नामकर्मादावुक्तं  
कालातिक्रमे नक्षत्रादिकं ज्ञेयम् । देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं  
यदि ॥ अनस्तगेज्येन्दुसिते तत्कार्यं चोत्तरायणो' इति मदनरत्ने नारदोक्ते  
बृहस्पतिरपि 'मुख्यालाभे विधिज्ञेन विधिश्चिन्त्योऽप्रमादतः ॥ नक्षत्रतिथि-  
लग्नानां विचार्यैव पुनः पुनः' ॥ सूतके संध्यादौ विशेषं वक्ष्यामः ॥ अथ

जन्मनि जन्मनि दुष्टकालाः ॥ तत्र गण्डान्तः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः  
दुष्टकाला पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः संधिनाडीद्वयं तथा ॥ गण्डान्तं मृ-  
त्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयो-  
र्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद्वटिकार्धं मृतिप्रदं ॥ सार्पेन्द्रपौष्णभे-  
ष्वन्त्यषोडशांशभसंधयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः' ॥  
रत्नमालायां 'पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्रक्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम्  
स्याद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकाले ष्वनिष्टम्' ॥ रत्नसंग्रहे  
नवनीतारिष्टे । 'सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ॥ वर्जयेद्दर्शनं स्ना-  
नं तच्च पाण्मासिकं भवेत् । तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लभे तु संधौ तन-  
यस्य नाशः ॥ सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धून् जीवन् पुनः स्याद्बहुवारणाश्वः' ॥  
अथैषां दानमुत्तरगाग्यै 'तिथिगण्डे त्वनडाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते । काश्वनं  
लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते  
॥ अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषाढे च काश्वनम् ॥ उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वा-  
षाढोद्भवस्य च । कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकरजां बुधः ॥



५०३ ]

जातकर्म ।

२२५

अथाश्लेषाफलम् ॥ 'मूर्द्धास्यनेत्रगलकांसयुगं च बाहू हृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः ॥ बाणाग्निनेत्रहुतभुक्श्रुतिनागरुद्रषणनन्दपञ्चाशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः ॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः कामक्रियारतिः । पितृभक्तो बली स्वन्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात्' ॥ अथ ज्येष्ठाफलं ब्रह्मयामले ॥ 'ज्येष्ठादौ जननी माता द्वितीये जननी पिता । तृतीये जननी भ्राता स्वयं माता चतुर्थके । आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभातरमष्टमे । नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके' इति ॥ अथ मूलफलं ॥ भल्लाटः ॥ 'अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम् । समाष्टकं पिताथ वा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ तदाद्यपादके पिता द्वितीयके जनन्यथ । धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥ प्रतीपमन्त्यपादतः फलं तदेव सार्पभे' । अभुक्तमूलं त्वाह वृद्धवसिष्ठः 'ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं शिशुं त्यजेत्' ॥ केचिज्ज्येष्ठान्त्यमूलाद्यं च पादमभुक्तमूलमाहुः ॥ कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तं 'मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः ॥ मातरं स्वं तृतीयोर्थान् सुहृदं तत्तुरीयजः ॥ फलं तदेव सार्पक्षे प्रतीपं त्वन्यपादतः' ॥ अथ मूलवृक्षः ॥ जयार्णवे ॥ 'मूलं स्तंभं त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा ॥ नन्दा बाणा रसा रुद्रा मूलेदः प्रकीर्तितः ॥ मूले मूलविनाशाय स्तम्भे हानिर्धनक्षयः । त्वचि भ्रातृविनाशाय शाखा मातृविनाशकृत् ॥ पत्रे सपरिवारः स्यात्पुष्पेषु नृपवल्लभः । फलेषु लभते राज्यं शिखायामल्पजीवितम्' ॥ अन्यत्र त्वन्यथोक्तं ॥ 'मूले सप्तघटीषु मूलहननं स्तम्भेष्टसु स्वक्षयं त्वग्निग्वन्धविनाशनं च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः ॥ पत्रैर्कैः सुकृती तु बाणकुसुमे मंत्री फले सागरे राजा वह्निशिखाल्पमायुरिति सन्मूलाङ्घ्रिपे स्यात्फलम्' ॥ भूपालवल्लभः ॥ 'वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युगमतुलाङ्गनान्त्ये ॥ पातालगं मेघधनुः कुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विविति संस्मरन्ति ॥ स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले



चेदनागमः । मर्त्यलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥ वसिष्ठः 'नैर्ऋ-  
त्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति ॥ तदन्यपादे जनितो  
निहन्ति तस्योत्क्रमेणाहिभवेकलत्रम् ॥ सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैव-  
ताराजनिता तु देवरम् ॥ पुरन्दरक्षं जनितः सुतस्तथा स्वस्याग्रजं हन्ति  
न पुत्रिता यदि' ॥ प्रयोगपारिजाते 'मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तद-  
ङ्गनाम् ॥ माहेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा' नृसिंहप्रसादे ॥ 'धवाग्र-  
जं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव पत्न्या भगिनीं पुमांश्च । द्विदैवजा देवरमाशु हन्या-  
द्भार्यानुजामाशु निहन्ति सूनुः ॥ पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् ।  
तथा भार्यास्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः ॥ कन्यका देवरं हन्ति विशा-  
खान्त्यसमुद्भवा । आद्यपादत्रये नैव आद्यभे तु पुमान् भवेत् ॥ न हन्या-  
द्देवरं कन्या तुलामिश्रा द्विदैवजा । तदक्षान्तोद्भवा वर्ज्या दुष्टा वृश्चिकपु-  
च्छवत् ॥ चित्राग्रधे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जा-  
तः पुत्रश्चोत्तराग्रे विधत्ते मातापित्रोर्भातरं बालनाशम् ॥ द्विमासंचोत्तरादोषः  
पुष्ये चैव त्रिमासकः । पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥ नवमासं  
तथाश्लेषा मूले चाष्टकवर्षकम् । ज्येष्ठा पञ्चदशमासि पुत्रदर्शनवर्जिता' ॥  
वसिष्ठः ॥ 'व्यतीपातेङ्गहानिः स्यात्परिवे मृत्युमादिशेत् ॥ वैधृतौ पितृहा-  
निः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत् ॥ मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ  
भवेत् । विकृताङ्गश्च हीनश्च संध्ययोरुभयोरपि ॥ पर्वण्यपि प्रसूतौ च  
सर्वारिष्टभयप्रदः । तद्वत्सदन्तजातश्चपादजातस्तथैव च ॥ विपरीतप्रसूतौ  
तु नाभिनालेन वेष्टितः । राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव स्वस्यापि च विनाशकः ॥ त-  
स्मान्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम्' ॥ गर्गः ॥ 'कृष्णां चतुर्दशीं  
षोढा कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् । द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये हन्ति मातरम् ॥ चतुर्थे  
मातुलं हन्ति पंचमे वंशनाशनं । षष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥  
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिकुर्याद्विधानतः' ॥ अथ पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषः ॥  
तत्र देवकीर्तिः ॥ 'यद्येकस्मिन् धिष्ये जायन्ते दुहितरोऽथ वा पुत्राः ॥



पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात्' ॥ गर्गः ॥ 'एकस्मिन्नेव नक्षत्रे  
 भात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितम्' ॥  
 शौनकः ॥ 'ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा  
 स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ इत्थं संजायते यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः' ॥  
 शान्तिस्तु ॥ 'तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ॥ सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं  
 चन्द्रं तु राजतम् ॥ राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः ॥ नागः ससिं ॥ त्रया-  
 णां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत्' ॥ आरुष्णेनाप्यायस्वस्वर्भानो-  
 रितिपूजामन्त्राः ॥ नक्षत्रदेवतायास्तन्मन्त्रेण । 'संपूज्य तु यजेत्सूर्यं समिद्धि  
 श्वार्कसम्भवेः ॥ चन्द्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वाभी राहुमेव च ॥ समिद्धिर्ब्रह्मवृक्षस्य  
 भेशाय जुहुयाद्बुधः ॥ आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः । पञ्च-  
 गव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चत्वक्पञ्चपल्लवैः । जलैरौषधिकल्कैश्च अभिषेकं समाचरे  
 त् । मन्त्रैर्वारुणसंभूतैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । इमंमेगङ्गे पुरतस्तत्त्वायामी-  
 तिमन्त्रकैः । यजमानस्ततो दद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयम्' इति ॥ मात्स्ये ॥  
 'अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्र-  
 सवकास्तथा ॥ अमानुषा अमुण्डाश्च अजातव्यजनास्तथा । हीनाङ्गा  
 अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरी-  
 सृपाः । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥ निर्वासयेत्तां  
 नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत्' ॥ पाद्मे 'उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशो-  
 र्द्विजाः । दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च तृतीये च  
 चतुर्थे पञ्चमे तथा । यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम् ॥ मातरं पितरं  
 वाथ स्वादेदात्मानमेव च । गजपृष्ठमतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद्विज ॥ तदभा-  
 वे तु धर्मज्ञ काञ्चने वा वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बाजैः पुष्पैः फलैस्त-  
 तः ॥ पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पू-  
 जयेत्तदनन्तरम् ॥ सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । भद्रासने नि-  
 वेश्यैनं मृद्धिर्मूलैः फलैस्तथा ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च । स्ना-



पयेत्पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥ पर्वतांश्च तथाख्यातान् देवदेवं च  
 केशवम् । एतेषामेव जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि ॥ ब्राह्मणानां तु दातव्या  
 ततःसंपूज्य दक्षिणा' ॥ ब्रह्मयामले ॥ 'प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरुर्ध्वं बालस्य चे-  
 द्रवेत् ॥ क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ सौवर्णं राजतं  
 वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा । दध्योदनेन संपूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे ॥  
 समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम् ॥ सालंकारं सवस्त्रं च शिशु-  
 मालिङ्ग्य सादरम्' ॥ तत्र मन्त्रः ॥ 'रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलंकुलम् ।  
 गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नांच  
 स्वमातरं । मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरंजीव मया सह ॥ एवं कृते विधाने तु  
 विघ्नः कोपि न जायते' इति ॥ अथ त्रिकशान्तिः शान्तिसर्वस्वे ॥ 'सुतत्रये  
 सुता चेतस्यात्तत्रये वा सुतो यदि । मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं मह-  
 द्रवेत् ॥ ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् । तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत  
 धित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने । आचार्य-  
 मृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतःकृताः  
 पूजयेद्धान्यराशिस्थं कलशोपरि शक्तितः ॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्भुद्रसं-  
 ख्यया । रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः ॥ द्विज एको जपे-  
 द्द्योमकाले शुचिसमाहितः । आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा । देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःस-  
 रम् ॥ ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्र भयामहे । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं  
 पूर्णाहुतिं ततः ॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् । हिरण्यं धेनुरेका  
 च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् ।  
 प्रतिमां गुरवे दत्वा उपस्कारसमन्वितः ॥ ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनाना-  
 थांश्च तर्पयेत् । एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते' इति ॥ अन्येषु  
 मूलाद्यृक्षेषु शान्त्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् ॥  
 ॥ मिताक्षरायां मार्कण्डेयः ॥ 'रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेष



तः ॥ रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च  
नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके' ॥ व्यासः  
'सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धि-  
जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा ॥ त्रिष्वेतेषु न कु-  
र्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि' ॥ अपराकैर्ब्राह्मे ॥ 'कन्याश्चतस्रो राकाद्या वातघ्नी  
चैव पञ्चमी । क्रीडनार्था च बालानां षष्ठी च शिशुरक्षिणी ॥ खड्गे तु पूजनी  
या वै वैश्वैर्वात्यैर्द्विजातिभिः' ॥ राकानुमतिः सिनीवालीकहूरिति चतस्रः

कन्या इत्यर्थः ॥ अथ दत्तकपरिग्रहविधिः ॥ पारि-  
दत्तकग्रह-  
णविधिः जाते शौनकः ॥ 'अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च ।

वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीयकम् ॥ बन्धूनन्त्रेन  
संभोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः । अन्वाधानादि यत्तत्र कृत्वा ज्योत्पवनान्त-  
कम् ॥ दातुः समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत् । दाने समर्थो दातास्मै  
येयज्ञेनेतिपञ्चभिः ॥ देवस्यत्वेतिमन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च । अङ्गादङ्गे-  
त्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्धनि ॥ गृहमध्ये तमाधाय चरुं हुत्वा विधानतः ॥  
यस्त्वाहदेत्यृचा चैव तुभ्यमग्नक्रचैकया ॥ सोमोदददित्येताभिः प्रत्यृचं पञ्च-  
भिस्तथा ॥ स्विष्टकृदादिहोमं च कृत्वा शेषं समापयेत्' ॥ सच ॥ 'ब्राह्म-  
णानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः ॥ तदभावेऽसपिण्डो वा अन्यत्र तु न कार-  
येत्' ॥ मिताक्षरादौ तु व्याहृतिभिराज्येनहोम उक्तः । स च होमोत्तरं जलपू-  
र्वकं देयः ॥ न वाङ्मात्रेण ॥ 'व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयादिति' वसिष्ठो-  
क्तेः । 'माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ॥ सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स  
ज्ञेयो दन्निमः सुतः' ॥ इतिमनूक्तेः ॥ तत्रैव वसिष्ठः ॥ 'नत्वेवैकं पुत्रं दद्या-  
त् प्रतिगृह्णीयाद्वा, न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा, अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः'  
इति ॥ इदंच भर्तृसत्त्वे अन्यथा 'दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दन्निमः  
स्मृतः' इति वत्सव्यासवचोविरोधः स्यात् ॥ दानं प्रतिग्रहोपलक्षणम् ॥  
यत्तु समन्त्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वात् ॥ व्याहृत्यादिमन्त्रपाठे च स्त्रीशूद्र



योरनधिकारात् । तयोर्दत्तकपुत्रो न भवत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरेणोक्तम्  
वाचस्पतिश्चैवमेवाह । तन्न । भर्तुर्नुज्ञयां स्त्रियां अपि प्रतिग्रहोक्तेः य  
द्यपि मेधातिथिना भार्यात्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तम् । स्त्रियाश्च  
होमासंभवस्तथापि व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादि कारयेदिति हरिनाथादयः ।  
संबन्धतत्त्वेऽप्येवं एवं शूद्रस्यापि ॥ 'स्त्रीशूद्रश्च सधर्माणम्' इति स्मृतेः ॥  
अतएव शूद्रकर्तृकहोमो विप्रद्वारैव पराशरेणोक्तेः । 'दक्षिणार्थं तु यो  
विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः । ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत्' ॥  
अत्र माधवाचार्यः ॥ यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिपु-  
ष्ट्यादिसिद्धये वैदिकैर्मन्त्रैर्जुहोति तस्य विप्रस्यैव दोषः ॥ शूद्रस्तु होमफलं  
लोभेति चेति व्याचक्षे ॥ दत्तके विशेषः कालिकापुराणे 'पितुर्गोत्रेण यः पुत्रः  
संस्कृतः पृथिवीपते । आचूडान्तं न पुत्रः सः पुत्रतां याति चान्यतः ॥ चूडो-  
पायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास  
उच्यते ॥ 'ऊर्ध्वं तु पञ्चमाद्वर्षान्न दत्ताद्याः सुता नृप ॥ गृहीत्वा पञ्चवर्षीयं  
पुत्रेष्टिं प्रथमं चरेत्' ॥ पञ्चमोर्ध्वं तु स्वदानेच्छोरेव दानं न चान्यथा 'विक्रयं  
चैव दानं च न नेयाः स्युरनिच्छवः ॥ दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योज  
येत्' इति हेमाद्रिमाधवधृतव्यासदक्षादिवचनात् ॥ यच्च याज्ञवल्क्यः ॥  
'स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते' इति ॥ तदूर्ध्वं स्वदानानिच्छुपुत्रपरम् ।  
तेन सर्वस्वदानेस्वदानेच्छुदारपुत्रदानं सिद्धम् ॥ यत्तु ॥ विश्वविदधिकरणं षष्ठे ।  
तत्र पुत्रादीनां ज्ञातित्वेन स्वशब्दवाच्यत्वात् पुत्रत्वेन दानमाशंका निराकृ-  
ता ॥ जन्यपुंस्त्वस्य दानेनानिष्पत्तेः । दासत्वेन दानं भवत्येव । तस्माद्य-  
थेष्टविनियोगार्हत्वं स्वत्वं भवत्येव ॥ पुत्रे स्वत्वाभावं वदन् पुत्रक्रयविक्रयादि  
शुनःशेषविक्रयादिश्रौतलिङ्गाद्दासक्रयविक्रयादिव्यवहारायोगात् मूर्ख एव ॥  
'यो नहिग्रभायारणः सुशेवोन्वोदर्यो मनसामंतवाउ' इति श्रुतौ ॥ दत्तकनि-  
षेधः ॥ सोऽप्यौरसातिशयार्थः ॥ अन्यथा शुनःशेषादिप्रतिग्रहश्रौतलिङ्गवि-  
रोधापत्तेः । 'उपेयां तत्र पुत्रताम्' इत्युक्तेः ॥ इदं च श्रौतलिङ्गं स्वयंदत्त-



क्रीतपरम् । न दत्तकपरं ॥ द्वादशविधपुत्रमध्ये ॥ ‘ दत्तात्मा तु स्वयंदत्तः’ ।  
‘ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः ’ । इति याज्ञवल्क्येन तयोर्दत्तकाद्रेदोक्तेः ॥  
तयोश्च ‘ दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ’ । इति कलौ निषेधात्तेन संस्कारोत्तरं  
स्वयंक्रीतो न भवति ॥ तदुत्तरं दत्तको न भवत्येवेतिसिद्धम् ॥ अथ

यमलयोः संस्कारक्रमार्थं ज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते ॥ मनुः ॥

यमलसंस्का-  
रे ज्येष्ठक-  
निष्ठत्वम्.

‘ पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः ॥ कथं तयोर्वि  
भागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥ सदृशः स्त्रीप्रजातानां  
पुत्राणामविशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्य

मुच्यते ’ ॥ तेन कनिष्ठायां पूर्वजात एव ज्येष्ठो न ज्येष्ठायां पश्चाज्जात इत्य-  
र्थः ॥ स एव श्राद्धाधिकारी ॥ ‘ जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् ।  
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता ’ ॥ देवलः ॥ ‘ यस्य जातस्य य-  
मयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम् ॥ संतानः पितरश्चैव तस्मिञ्ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठा-  
तम् ’ ॥ भागवते तु ‘ द्वौ तदा भवतो गर्भौ मूर्तिर्वैशविपर्ययात् ’ इत्युक्तेः प-  
श्चादुत्पन्नस्य ज्यैष्ठ्यमुक्तं ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ पूर्वमेव तु युक्तं गर्भाष्टम  
इत्यादौ विशेषनिर्देशे एव गर्भग्रहणं नान्यत्र ॥ अन्यथा तद्वैयर्थ्यात् ॥ अथ सूति  
कास्नानं ॥ ज्योतिषे ‘ करेन्द्रभाग्यानि लवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्चिध्रुवभेह्निपुंसा

सूतिकास्नानम्  
नामकर्म  
म् ॥ तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनि-  
न्द्राः’ ॥ अथ नामकर्म ॥ मदनरत्ने बृहस्पतिः ‘ द्वादशे दशमे  
वापि जन्मतोपि त्रयोदशे ॥ षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे व-

र्णतः क्रमात् ’ ॥ याज्ञवल्क्यः ‘ अहन्येकादशे नाम ’ ॥ हेमाद्रौ भविष्ये  
‘ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां मासि केचन । अष्टादशेऽहनि तथा वदन्त्यन्ये  
मनीषिणः ’ ॥ दशम्यामतीतायामिति ज्ञेयम् ॥ ‘ आशौचापगमे नामधेयम्’  
इति विष्णुक्तेः ॥ गृह्यपरिशिष्टेपि ‘ जननादशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे  
वा नामकरणम् ॥ व्युष्टेऽतीते ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः ॥ ‘ अमासंक्रान्ति-  
विष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ’ ॥ श्रीधरः ‘ ॥ मित्रादित्यमघोत्तराशताभिष-



कस्वातीधनिष्ठच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृतपुष्येषु राशौ स्थिरे ॥  
 छिद्रां पञ्चदशी विहाय नवमीं शुद्धेष्टमे भार्गवज्ञाचार्यामृतपादभागदिवसे ना-  
 मानि कुर्याच्छिशोः' ॥ मनुः ॥ 'शर्मन्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य  
 तु । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेभ्यसंयुतम्' ॥ मदनरत्ने नारदीये 'सूतकान्ते  
 नामकर्मविधेयं स्वकुलोचितम् । नाम पूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः' ॥  
 तत्रैव गार्ग्यः । 'मासनाम गुरोर्नामदद्याद्बालस्य वै पिता' ॥ स्मृतिसंग्रहे ॥  
 'कृष्णो नन्तोच्युतश्वक्री वैकुण्ठोथ जर्नादनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा  
 हरिः ॥ योगीशः पुंडरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात्' ॥ अत्र मार्गशीर्षादि-  
 श्वेत्रादिर्वा क्रम इति ॥ मदनरत्ने ॥ 'तन्मासनाम प्रथमं दद्यात्संबुध्य चैव हि ।  
 देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥ सर्वापणानां पुण्यानां चिह्नार्थं  
 योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥ राज-  
 प्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते' ॥ नाक्षत्रमपि नाम कार्यं ॥ 'अभिवा-  
 दनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात्' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥  
 कुलदेवतानाक्षत्रसंबद्धं पिता नाम कुर्यात् ॥ इति मदनरत्ने शंखोक्तेः ॥  
 तच्च नक्षत्रपादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं परिशिष्टे । 'तदक्षरादिकं नाम यस्मि  
 न्नाधिष्ण्ये यदक्षरम्' इति ॥ सुदर्शनभाष्ये तु 'रोरेममृज्येचिषु वृद्धिरादौ  
 णान्त्ये च वान्त्येश्रवशाश्वयुक्षु ॥ शेषेषु नाम्बोः कपरः स्वरोन्त्यः स्वाप्वो-  
 रदीर्घः सविसर्ग इष्टः' ॥ इत्युक्तम् ॥ णान्त्येति प्रोष्ठपदेत्यत्रादौ णात्परे च  
 वृद्धिः प्रौष्ठपाद इति ॥ अन्त्यमपभरणशब्दः श्रुतावुक्तः ॥ तत्र श्रवणादौ च  
 वादिवृद्धिः । अपभरण आपभरण इत्यादि ॥ मदनरत्ने वसिष्ठः 'जन्माहे द्वा-  
 दशाहे वा दशाहे वा विशेषतः । उत्तरारेवतीहस्तमूलपुण्याः सवारुणाः ॥ श्र-  
 वणादिति मैत्रं च स्वाती मृगशिरस्तथा ॥ प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नाम-

१-एवं च-रौहिणः, रैवतः, माघः, मार्गशीर्षः, ज्यैष्ठ्यः, चैत्रः, प्रौष्ठपादः, आपभरणः-  
 अपभरणः, श्रावणः, श्रवणः, शातभिषजः, शातभिषक्, आश्वयुजः, आश्वयुकः, अश्वयुकः,  
 श्रविष्ठः, फल्गुनः, अनुराधः, तिष्यः, आश्लेषः, हस्तः, विशाखः, आषाढः, कृत्तिकः, बहुलः,  
 आर्द्रकः, मूलकः, स्वातिः, पुनर्वसुः, इत्येवं सप्तविंशतिनक्षत्रनाम्ना सिद्धिरिति संस्कारकौ-  
 स्तुभावगतोर्थः ॥



दोलारोहः कर्मणि' ॥ अथ दोलारोहः ॥ पारिजाते बृहस्पतिः ॥  
 'दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेपि वा । षोडशे दिवसेवापि  
 द्वाविंशे दिवसेपि वा' । ज्योतिर्निबन्धे 'करत्रये वैष्णवरेवतीषु दितिद्वये वा-  
 श्विनकध्रुवेषु ॥ कुर्याच्छिशूनां नृपतेश्च तद्वदान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति' ॥  
 तत्रैव ॥ 'आन्दोलाशयने पुंसो द्वादशो दिवसः शुभः । त्रयोदशस्तु कन्यायाः

न नक्षत्रविचारणा ॥ अन्यस्मिन् दिवसे चेत्स्यात्तिर्यगास्ये  
 दुग्धपानम् प्रशस्यते' ॥ अथ दुग्धपानम् ॥ नृसिंहः ॥ 'एकत्रिंशद्दिने

चैव पयः शंखेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयरत्रिषु ॥ अथ

कर्णवेधः ॥ मदनरत्ने वसिष्ठश्रीधरौ ॥ 'मासे षष्ठे सप्तमे वाष्टमे  
 कर्णवेधः वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशेहि ॥ मध्येनाह्नः पूर्वभागे न

रात्रौ नक्षत्रं द्वे द्वे तिथी वर्जयित्वा ॥ 'अत्र जन्ममासो वर्ज्यः ॥ ज्योति  
 र्निबन्धे गर्गः 'मासे षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे मासि वत्सरे । कर्णवेधं प्रशंसन्तिपु  
 ष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये' । मदनरत्ने 'प्रथमे सप्तमे मासि अष्टमे दशमे थ वा ।  
 द्वादशे च तथा कुर्यात्कर्णवेधं शुभावहम्' ॥ हेमाद्रौ व्यासः 'कार्तिके  
 पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा । कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे  
 दिने' ॥ श्रीधरः ॥ 'हरिहयकरचित्रासौम्यपोष्णोत्तरार्यादितिवसुषु घटा-  
 लीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने । शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तराहिततिथिषु  
 शुद्धे नैधने कर्णवेधः' ॥ मदनरत्ने बृहस्पतिः ॥ 'द्वितिया दशमी षष्ठी सप्त-  
 मी च त्रयोदशी ॥ द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने । सौवर्णी  
 राजपुत्रस्य राजतीविप्रवैश्ययोः । शूद्रस्य चायसी सूची मध्यमाष्टाङ्गुलात्मि-  
 का' ॥ हेमाद्रौ देवलः ॥ 'कर्णरन्ध्रे रवेच्छाया न विशेषजन्मनः । तद्व-  
 ष्टा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः' ॥ शंखः ॥ 'अद्भुष्टमात्रं सुषिरौ कर्णौ

१-इदं च वाक्यं परिसंख्याविधया 'शिशोर्विवर्धनं कार्यं यावदाभरणक्षमम्' इति  
 संस्कारकौस्तुभोक्तविष्णुधर्मोक्तवाक्यतो यथेच्छाभरणानुकूल्येनांगुष्ठाधिकच्छिद्रनिरासा-  
 र्थम् । न तु विधयाऽगुष्ठमात्रच्छिद्रविध्यर्थम् । तथासति सूर्यच्छायाप्रवेशानुकूलच्छिद्र-  
 नियामक देवलवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः ॥



न भवतो यदि । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदासुरं भवेत् ॥ अथ  
 ताम्बूलभक्षणम् ॥ चण्डेश्वरः ॥ 'सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं  
 ताम्बूलभक्षणम् प्रथमं शिशोः ॥ कर्पूरादिकसंमिश्रं विलासाय हिताय च ।  
 मूलार्कचित्रकरतिष्यहरिन्द्रभेषु पौष्णे तथामृगशिरोदितिवासवेषु ॥ अर्केन्दु  
 जीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः' ॥ अथ निष्क्र-  
 मणं ज्योतिर्निबन्धे 'तृतीये वा चतुर्थे वा मासि निष्क्र-  
 मणं भवेत्' ॥ यमः ॥ 'ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य  
 दर्शनम् । चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम्' । अत्र 'सूर्येन्दोः कर्मणी  
 ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते' इति छन्दोगपरिशिष्टात् 'छन्दोगानां निष्क्रमणे  
 वृद्धिश्राद्धं नास्ती'तिकल्पतरुः ॥ व्यासः 'मैत्रे पुण्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेनुकूले  
 विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च ॥ कुर्यान्निष्क्रमणं शि-  
 शोर्बुधगुरौ शुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकि  
 ते' ॥ मदनरत्ने ॥ 'अन्नप्राशनकाले वा कुर्यान्निष्क्रमणक्रियाम्' ॥  
 विष्णुधर्मै 'दिगीशानां दिने तत्र तथा चन्द्रार्कयोर्द्विजैः । पूजनं वासुदेवस्य  
 गगनस्य च कारयेत् । बहिर्निष्क्रांसयेद्देहात् शंखपुण्याहनिस्वनैः ॥ चन्द्रार्कयो  
 र्दिगीशानां दिशां च गगनस्य च । निक्षेपार्थमिमं दध्नि ते मे रक्षन्तु सर्वदा ।  
 अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा । रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्रपु-  
 रोगमाः' ॥ माधवीये मार्कण्डेयः ॥ 'अग्रतोथ प्रविन्यस्य शिल्पभाण्डानि  
 सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद्बाल  
 स्ततो भाण्डं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति' इति ॥  
 अथोपवेशनम् ॥ प्रयोगपारिजाते पाद्मे विष्णुधर्मै च ।  
 उपवेशनम् 'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत् ॥ तत्र सर्वे ग्रहाः  
 शस्ता भौमोप्यत्र विशेषतः ॥ उत्तरात्रितयं सौम्य पुण्यक्ष शक्रदैवतम् । प्राजा  
 पत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम् ॥ वाराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा  
 द्विजम् ॥ रक्षैनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे ॥ आयुः प्रमाणं सकलं निक्षि



पस्व हरिप्रिये । अचिरादायुषस्त्वस्य ये केचित्परिपन्थिनः ॥ जीवितारोग्य-  
वित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् । वरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक् ॥  
अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता ॥ चराचराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्य-  
या ह्यसि ॥ कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ अथ  
अन्नप्राशनम्

अन्नप्राशनम् ॥ पारिजाते नारदः ॥ 'जन्मतो मासि षष्ठे  
स्यात्सौरेणान्नाशनं परम् । तदभावेष्टमे मासि नवमे दशमेपि वा ॥ द्वादशे वा-  
पि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परं । संवत्सरे वा संपूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः' ॥  
मदनरत्ने लौगाक्षिः 'षष्ठेन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा' इति । शंखः 'संवत्स-  
रेन्नप्राशनमर्धसंवत्सरे वा' इति ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः ॥ 'षष्ठे वाप्यष्टमे  
मासि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् ॥  
रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम् ॥ त्यक्तान्यतिथयः प्रोक्ताः सित-  
जीवज्ञवासराः । चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना' ॥ श्रीधरः ॥  
'आदित्यतिथ्यवसुसौम्यकरानिलाश्विचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः ।  
बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धे छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः ॥'  
वसिष्ठः ॥ 'बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ये ।  
शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहे सीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु ॥ मार्कण्डेयविष्णु-  
धर्मयोः ॥ 'ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं चन्द्राकौ च दिगीश्वरान् । भुवं दिशश्च संपू-  
ज्य हुत्वा बह्वौ तथा चरुम् ॥ देवतापुरतस्तस्य धान्युत्सङ्गतस्य च ।  
अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चनम् ॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पा

अब्दपूर्तिः  
यसं तु वा' इति ॥ अथाब्दपूर्तिं व्यवहारनिर्णये ॥ 'न-  
वाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम् । मार्कण्डेयनरोभक्त्या

पूजयेत्प्रयतस्तथा ॥ ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम् । प्र-  
ह्लादं च हनूमन्तं विभीषणमथार्चयेत् ॥ स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्रा-  
प्य संपूजयेन्नरः । षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षेवर्षे पुनः पुनः' ॥ तिथि  
तत्त्वे एतन्नामभिस्तिलहोमोप्युक्तः ॥ आदित्यपुराणे 'सर्वैश्च जन्मदिवसे



स्नातैर्मङ्गलवारिभिः । गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ स्वनक्षत्रं  
 च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात्कर्त्तव्यश्च महोत्सवः '  
 ॥ कृत्यचिन्तामणौ' ॥ गुडदुग्धतिलान्दद्याद्धस्ते ग्रन्थौ च बन्धयेत् ।  
 गुल्गुलं निम्बसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकम् ॥ संपूज्य भानुविघ्नेशौ महर्षिं  
 प्रार्थयेदिदम् । चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥ रूपवान्  
 पित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा । मार्कण्डेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पान्तजीवन  
 ॥ आयुरारोग्यसिद्धयर्थं प्रसीद भगवन् मुने । चिरजीवी यथा त्वं तु मु-  
 नीनां प्रवर दिज ॥ कुरुष्व मुनिर्शादूल तथा मां चिरजीविनम् ॥ मार्कण्डेय  
 महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्धयर्थमस्माकं वरदो भव ॥  
 सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ॥ मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायु-  
 र्विवृद्धये' इति पयः पिबेत् ॥ तिथितत्त्वे स्कान्दे ॥ 'खण्डनं नखकेशानां  
 मैथुनाध्वगमौ तथा । आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥ तत्रैव दीपि-  
 कायाम् । 'कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मतिथिर्भवेत् । अनृक्षयोगसं-  
 प्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ कृतान्तः शनिः ॥ तस्य सर्वौषधिस्लानं गुरुदे-  
 वाग्निपूजनम्' ॥ वृद्धमनुः ॥ 'मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।  
 अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा' ॥ अत्र जन्मतिथिरौदयिकी ग्राह्या  
 'युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया । रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियु-  
 ग्मता' इति कृत्यतत्त्वार्णवे वचनात् ॥ विशेषो मत्कृतशूद्रधर्मे ज्ञेयः ॥ अथ  
 कटिसूत्रं ॥ प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे 'प्रतिसंवत्सरन्तर्क्षे वक्ष्ये  
 नृणां विधिं परम् ॥ दत्त्वा गोभूहिरण्यादि तथा स्वर्णादिनिर्मि-  
 तम् ॥ बध्नीयात्कटिसूत्रं च वासः संगृह्य नूतनम् । दूर्वाङ्कुरैरथाज्येन चरुणा  
 वा पिनाकिनम् । आयुष्यहोमं कृत्वा च तर्पयेत् पितृदेवताः ॥' अथ चौलम् ॥  
 प्रयोगपारिजाते षड्गुरुशिष्यः 'जाताधिकाराजन्मादि तृतीये द्वे तु चौल-  
 कम् । आद्येन्द्रे कुर्वते केचित्पञ्चमेन्द्रे द्वितीयके ॥ उपनीत्यास  
 हैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः' ॥ बृहस्पतिः 'तृतीयेन्द्रे शिशोर्गर्भा

कटिसूत्रम्

चौलम्



जन्मतो वा विशेषतः । पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रियाः पुंसोपि वा समम् ॥ तत्रैव  
नारदः 'जन्मतस्तु तृतीयेन्द्रे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः ॥ पञ्चमे सप्तमे वापि जन्म  
तो मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशोपि वा' इति ॥ परिजाते  
बृहस्पतिः 'उत्तरायणगे सूर्ये विशेषात्सौम्यगोलके । शुक्लपक्षे शुभं प्रोक्तं  
कृष्णपक्षे शुभेतरत् । अशुभान्यत्रिभागः स्यात्कृष्णपक्षे त्रिधाकृते ॥ तत्रैव  
वसिष्ठः ॥ 'द्वित्रिपञ्चमसप्तम्यामेकादश्यां तथैव च ॥ दशम्यां च त्रयोदश्यां  
कार्यं क्षौरं विजानता' ॥ नृसिंहीये ॥ षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी च नवमी च  
चतुर्दशी । द्वादशी दर्शपूर्णे द्वे प्रतिपच्चैव निन्दिताः ॥ वसिष्ठः 'रेवरङ्गारकस्यैव  
सूर्यपुत्रस्य चैव हि निन्दिता दिवसाः क्षौरे शेषाः कार्यकराः स्मृताः' ॥ ज्योति  
र्निबन्धे बृहस्पतिः 'पापग्रहणां वारादौ विप्राणां शुभदं रवौ ॥ क्षत्रियाणां  
क्षमासूनौ विट्शूद्राणां शनौ शुभम् ॥ हस्ताश्वि विष्णु पौष्णाश्च श्रविष्ठादित्य-  
पुष्यभम् । सौम्यचित्रे नवक्षौरे उत्तमा नव तारकाः ॥ त्रीण्युतराणि वायव्यं  
रोहिणी वारुणं तथा । क्षौरे षण्मध्यमाः प्रोक्ताः शेषा द्वादश गर्हिताः ॥  
निधने जन्मनक्षत्रे वैनाशे चन्द्रमेष्टमे । विपत्करे वधे क्षौरं प्रत्यरे च विवर्जयेत् ॥  
अत्र लग्नशुद्धिरन्ये च योगाः ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयाः । अन्ये च विशेषाश्मश्रु  
कर्मनिर्णये पक्ष्यन्ते ॥ एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् ॥ तदाह  
ज्योतिर्निबन्धे मनदरत्ने च वृद्धगार्ग्यः ॥ 'पुत्रचूडाकृतौ माता यदि सा  
गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् ॥ अ-  
स्यापवादमाह तत्रैव ॥ नारदः ॥ 'सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् ॥  
पञ्चाब्दात् प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ यदि गर्भविपत्तिः  
स्याच्छिशोर्वा मरणे यदि । सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ॥  
बृहस्पतिः 'गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौरकर्म न कारयेत् ॥ ब्रताभिषेके  
एवं स्यात्कालो वेदव्रतेष्वपि' ॥ अभिषेकः समावर्तनम् ॥ 'गर्भिण्यामपि  
पञ्चमासपर्यन्तं न दोषः' ॥ इत्युक्तम् । मूहूर्तदीपिकायां गर्गेण । 'पञ्चम  
मासाद्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युः' इति । मदनरत्ने बृहस्पतिः । 'पुत्रचू



डाकृतौ माता गर्भिणी यदि वा भवेत् । विपद्यते गुरुस्तत्र दम्पती शिशुरब्धतः ॥  
 गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चैलकर्म तु ॥ पञ्चमा-  
 सादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ गर्गः ॥ 'ज्वरस्योत्पादनं यस्य लग्नं  
 तस्य न कारयेत् । दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ लग्नमिति  
 मङ्गलोपलक्षणम् ॥ ज्योतिर्गर्गः ॥ 'विवाहोत्सवयज्ञेषु माता यदि रजस्वला ।  
 तदा स मृत्युमाप्नोति पञ्चमं दिवसं विना' ॥ वसिष्ठः ॥ 'यस्य माङ्गलिकं  
 कार्यं तस्य माता रजस्वला' । अर्थं तदेव ॥ तत्रैव बृहस्पतिः ॥ 'प्राप्तम-  
 भ्युदयश्चाद्धं पुत्रसंस्कारकर्मणि । पत्नी रजस्वला चेस्स्यान्नकुर्यात्तत्पिता तदा ।  
 पितेति कर्तृमात्रोपलक्षणम् ॥ संकटे तु वाक्यसारे उक्तम् । 'अलाभे सुमुहूर्तस्य  
 रजोदोषे ह्युपस्थिते । श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मङ्गलमाचरेत्' । एतच्च  
 मण्डनोत्तरं न कार्यं 'न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः'  
 इति मदनरत्ने वसिष्ठोक्तेः ॥ तत्रैव कात्यायनः ॥ 'कुलेऋतुत्रयादवाङ्मण्ड-  
 नान्न तु मुण्डनम् ॥ प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् । तथा वृद्ध-  
 मनुः । 'एकमात्रजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृर्भदे  
 विधीयते' ॥ आशौचे तु संग्रहे ॥ 'संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कू-  
 ण्माण्डाभिघृतं हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम् । चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठा  
 दिकमाचरेत्' इति ॥ ज्योतिर्निबन्धे ॥ 'षष्ठेन्द्रे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे  
 तथैव च । अन्तर्वर्त्त्यां च जायायां नेष्यते मुण्डनं क्वचित् ॥ अ-  
 न्योपि विशेषो वक्ष्यते ॥ दीपिकायां ॥ 'न चूडाजन्मभाग्रेयदारुणेषुशनौ  
 कुजे ॥ प्रतिपद्भरिक्तासु विद्यारम्भस्तु पञ्चमे' ॥ प्रयोगरत्ने 'मध्ये शिरसि  
 चूडा स्याद्वासिष्ठानां तु दक्षिणे ॥ उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता' ॥  
 माधवीयेऽप्येवम् ॥ आपस्तम्बस्त्वाह । तूष्णीं केशान्विनयि यथर्षिं शिखा  
 निदधाति ॥ यथर्षिं प्रवरसंख्यया तासां मध्यशिखावर्जमुपनयने वपनं  
 कार्यं ॥ प्रतिदिशं प्रवपति इत्युपनयने तेनैवोक्तेः । रिक्तोवा एषो न पिहितो  
 यन्मुण्डस्तस्मै तदापिधानं यच्छिख' इति श्रुतेः ॥ विशिखो 'व्युप-



वीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्' इतिनिषेधाच्च । सत्रे तु वचनात्सशिखं वपन-  
मिति सुदर्शनभाष्ये उक्तं ॥ यत्तु ॥ 'कुमारा विशिखा इव' इति लिङ्गं त-  
च्छन्दोगपरम् ॥ अपराके मदनरत्ने च लौगाक्षिः 'दक्षिणतः कमुआ व-  
सिष्ठानामुभयतोत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः । पञ्चचूडा अङ्गिरसो वाजिमेके  
मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मं वेति । कमुआ शिखा । वाजिः के-  
शपङ्क्तिः । स्मृतिदर्पणे 'एका शिखा दक्षिणतो वसिष्ठगोत्रस्य पञ्चाङ्गि-  
रसो भृगोस्तु । नैका शिखा कश्यपगोत्रजानां शिखोभयत्रापि यथाकुलं च'  
एतच्छूद्रातिरिक्तविषयम् । 'शूद्रस्यानियताः केशवेशाः' इति वसिष्ठोक्तेः ।  
यत्तु पाद्मे 'न शिखी नोपवीती स्यान्नोचरेत्संस्कृतां गिरम्' इति शूद्रमुपक्र-  
म्योक्तम् । तदसच्छूद्रस्येति केचित् ॥ विकल्प इति तु युक्तं ॥ अतएव हा-  
रीतः 'स्त्रीशूद्रौ तु शिखां छित्वा क्रोधाद्वैराग्यतोपिवा । प्राजापत्यं प्रकुर्या  
तां निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् । एतत् परिग्रहपक्षे ॥ अत्र देशभेदाद्यवस्थेति  
दिक् ॥ ज्योतिर्निबन्धे ॥ 'नर्मदोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमन्त्राणि ॥ शुभकर्म  
न कुर्वीत निषेधो नास्तिदक्षिणे' । अत्र भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाध-  
वोये । 'निवृत्ते चूडहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा । चरेत्सांतपनं भुक्त्वा जात-  
कर्मणि चैव हि । अतोऽन्येषु तु संस्कारेषूपवासेन शुद्ध्यति' । एते संस्काराः  
स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः । होमस्तु समन्त्रकः ॥ इतिप्रयोगपारिजाते ॥ आश्व-  
लायनोपि 'होमकृत्यं तु पुंवत्स्यात्स्त्रीणां चूडाकृतावपि' इति ॥ मनुरपि  
'अमन्त्रका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः' इति । होमोऽप्यमन्त्रक इत्येके  
संस्काराः स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युरिति स्मृत्यर्थसारे । होमो नेति वृत्ति-  
कृत ॥ अथ विद्यारम्भः ॥ मदनरत्ने नृसिंहः ॥ 'अक्षर-

विद्यारम्भः

स्वीकृतिं कुर्यात् प्रातेपञ्चमहायने । उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भ  
मासं विवर्जयेत्' ॥ दीपिकायाम् ॥ 'वर्षे पर्जन्यके काले षष्ठीं रिक्तांशानि  
कुजं । अनध्यायान्विना नत्वा देवं ग्रन्थकृतं गुरुम्' ॥ श्रीधरः 'हस्तादि-  
त्यसमीरमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाराक्यंशदिनोदयादिरहितेराशौ



स्थिरे चोभये ॥ पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तांविहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशु-  
द्धभाजिं भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः ' ॥ विष्णुधर्मोत्तरे ॥ ' पूजयित्वा हरिं  
लक्ष्मीं तथा देवीं सरस्वतीं । स्वविद्यामूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥  
एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्वृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं

धनुर्विद्या चात्रपूजनम् ' इति । अथ धनुर्विद्या ॥ दीपिकायाम् ॥

गान्त्यभेषु । शनिशशिबुधवारे विष्णुबोधेपि पौषे सुसमयतिथियोगे चाप-

विद्याप्रदानं ॥ अथानुपनीतस्य विशेषः ॥ गौतमः ' प्रागु-  
अनुपनीतबाले पनयनात्कामचारवादभक्षाः ' इति । भक्षणं लशुनादेरपि इति

हरदत्तः ॥ अपराकै वृद्धशातातपः ' शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याच-  
मनं स्मृतम् । रजस्वलादिसंस्पर्शं स्नानमेव कुमारके । प्राक्चूडाकरणाद्बालः  
प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः । कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ' ॥ आ-

पस्तम्बोपि ' अन्नप्राशनात् प्रयतो भवत्यासंवत्सरादित्येके ' इति ॥ गौतमो  
पि ॥ ' न तदुपस्पर्शनादाशौचम् ' । तस्यानुपनीतस्य चाण्डालादिस्पृष्टस्यापिस्प

शान्न स्नानम् । इदं च षष्ठवर्षात्प्राक्ऊर्ध्वं तु स्नानं भवत्येव ' बालस्य प-  
ञ्चमाद्वर्षाद्रक्षार्थं शौचमाचरेत् ' इति स्मृतेः ॥ कामचारादिकेप्येवं । ' ऊनै-

कादशवर्षस्य पञ्चवर्षात् परस्य च । चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्ध्ये ।  
अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् ' इति स्मृतेरिति हरदत्तः । स्मृत्य

उपनयनम् र्थसारेप्येवं ॥ अथोपनयनम् ॥ आश्वलायनः ' गर्भाष्टमेष्टमे  
वाब्दे पञ्चमे सप्तमे पिवा । द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे

नृपः ' ॥ मनुः ॥ ' ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः  
षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोष्टमे ' ॥ विष्णुः ॥ ' षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य

सप्तमे । अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः ' ॥ आपस्तम्बः ॥ ग-  
र्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयति ' । बहुवचनं गर्भषष्ठगर्भसप्तमयोः प्राप्त्यर्थमिति सु-

दर्शनभाष्ये । केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते ॥ आपस्तम्बः ' अथ का



म्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्य-  
 काममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत् ॥ गौणकालमाह मनुः  
 'आ षोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आ द्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतु-  
 र्विंशतेर्विशः' ॥ ज्योतिर्निबन्धे ॥ 'अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरुर्ध्वमब्दतः ।  
 अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः' ॥ गर्गः ॥ 'विप्रं वसन्ते क्षितिपं नि-  
 दाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विदध्यात् ॥ माघादिशुक्लान्तिकपञ्चमासाः साध-  
 रणा वा सकलद्विजानाम्' ॥ हेमाद्रौ ज्योतिषे ॥ 'माघादिषु च मासेषु मौ-  
 ज्ञी पञ्चसु शस्यते' ॥ कालादर्शे वृद्धगार्ग्यः ॥ 'माघादिमासषट्के तु मेख-  
 लाबन्धनं मतम् ॥ चूडाकरणमन्नं च श्रावणादौ विवर्जयेत्' ॥ मैत्रेयसूत्रे-  
 पि ॥ 'वसन्तो ग्रीष्मः शरत् इत्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण माघादिषणमासा वा स-  
 र्ववर्णानामेतदुदगयनमनयोर्विकल्पः' इति ॥ अत्रेदं तत्त्वं नात्र वसन्तेनोत्त-  
 रायणस्य संकोचः । श्राद्धदर्शस्यापराह्णविधिनैवाधाने वसन्तादेः । कृत्तिका-  
 दिने च सायंप्रातर्विधिना यावज्जीवविधेरिव युक्तः । आययोः परस्परव्य-  
 भिचारान्नियमः । अंत्ये निमित्ते साङ्गकर्मोक्तेः कालापेक्षा । इह तूत्तराय-  
 णं विना वसन्तस्याभावान्नानियमः न वा निमित्तत्वं । नचैकं वृणीत इतिवद-  
 वयुत्यानुवादः । तद्वद्वाक्यभेदापरिहारात् ॥ उत्तरायणविधिवैयर्थ्यात्त्वनुक-  
 ल्पोयमिति । माघ आदिर्येषां पञ्चानां एवं षट् । पारिजाते बृहस्पतिः ॥  
 'झषचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः ॥ अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनया-  
 दिषु' । वृत्तज्ञते ॥ 'न जन्मधिष्ण्ये न च जन्ममासे न जन्मकालीयदिने  
 विदध्यात् । ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि' ॥  
 राजमार्तण्डः ॥ 'जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो ह्यष्टौ च गर्गो नियतं दशात्रिः ।  
 जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ता खलु जन्ममासि । जन्ममासे  
 तिथौ भे च विपरीतदले सति । कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः ।  
 जन्ममासनिषेधेपि दिनानि दश वर्जयेत् । आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्यु-  
 स्तिथयोपरे' ॥ ग्रन्थान्तरे ॥ 'व्रते जन्मत्रिस्वारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चना-



त्सकृत् । शुभोतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् । शुद्धिर्नैव गुरो-  
 र्यस्य वर्षे प्राप्तेष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् । जन्म-  
 भादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीन-  
 गते रवौ' ॥ नारदः ॥ 'बालस्य बलहीनोपि शान्त्या जीवो बलप्रदः ॥  
 यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते चोपनायनम्' । शान्तिश्चाग्रे वक्ष्यते ॥ ज्योतिर्नि-  
 बन्धे नृसिंहः ॥ 'तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी । पक्षयोरुभ-  
 योश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥ धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा ।  
 शुक्लत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा' ॥ टोडरानन्दे वसिष्ठः ॥ 'नैमित्ति-  
 कमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिनं । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि ।  
 प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे न पूर्वा परसंयुता' ॥ एतदतीतकालस्यार्तस्य बटोरुपन-  
 यनविषयम् । 'प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ ॥ चन्द्रे बलयुते  
 लग्नवर्षाणामपि लग्नघने' इति व्यासोक्तेरित्याहुः ॥ एवं सप्तम्यपि । तस्यागल-  
 ग्रहत्वोक्तेः ॥ बृहस्पतिः ॥ 'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना' ॥  
 तथा 'मिथुने संस्थिते भानौ ज्येष्ठमासो न दोषकृत्' ॥ मदनरत्ने नारदः ॥  
 'विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्ह-  
 ति' ॥ अपराह्णस्त्रिधाविभक्तदिनतृतीयांश इत्युक्तं तत्रैव । वसन्ते गलग्रहो  
 न दोषायेत्यर्थः ॥ नारदः ॥ 'कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिनत्रयम् ।  
 त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः' ॥ वसिष्ठः ॥ 'पापांशकगते चन्द्रे अ-  
 रिनीचस्थितेपि च । अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति । अनध्यायस्य  
 पुर्वेद्युस्तस्यैवापरेहनि । व्रतबन्धं विसर्गञ्च विद्यारम्भं न कारयेत्' ॥ रा-  
 जमार्त्तण्डः ॥ 'आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिद्ध्यति । गर्गादिमुनयः सर्वे  
 तमेवाहुर्गलग्रहम्' ॥ ज्योतिर्निबन्धे ॥ 'अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादि-  
 शु ॥ अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि' । सोपपदास्तु स्मृत्यर्थसारे ॥  
 'सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ॥ चतुर्थी द्वादशी माघे एताः  
 सोपपदाः स्मृताः' । एवं प्रदोषस्वरूपमाह गोभिलः ॥ 'षष्ठी च द्वादशी चैव



अर्धरात्रौ ननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया तु न यामिका' ॥ ज्योति-  
 निबन्धे व्यासः 'याचैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य ।  
 कृष्णे तृतीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः' ॥ अत्रापि कृष्णप्र-  
 तिपदज्ज्ञेयम् ॥ यत्तु बृहद्गार्ग्यः 'अनध्याये प्रकुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् ।  
 सप्तमी माघशुक्ले तु तृतीया चाक्षया तथा । बुधत्रयेन्दुवाराश्च शस्तानिव्रतबन्ध-  
 ने' इतितत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम् ॥ 'स्वाध्यायवियुजो घृत्ताः कृष्णप्रति-  
 पदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मता' इति तेनैवोक्तेरिति निर्णया-  
 मृतकालादर्शौ ॥ यद्यप्यथोपेतपूर्वस्येत्युक्त्वा अनिरुक्तं परिदानं कालश्चेत्या-  
 श्वलायनेन पुनरुपनयने कालानियम उक्तः । तथापि निमित्तान्तरमेव सः ।  
 तदानीमकरणे तु पूर्वोक्तकालो ज्ञेयः प्रतिवेदमुपनयने कालानियम इति तु यु-  
 क्तम् ॥ गर्गः 'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्रमोल्कापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि  
 वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयो दशाहानि वदन्ति केचित्' ॥ संकटे तु ॥ चण्डेश्वरः ॥ 'दाहे  
 दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च ॥ केतौ तथोल्कांशुकणप्र-  
 पाते त्र्यहं न कुर्याद्भ्रतमङ्गलानि' ॥ तत्रैव 'वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने  
 तथा । न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेपि च' ॥ हेमाद्रौ ज्योतिषे ॥ 'ह-  
 स्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु ॥ शस्ते तिथौ चन्द्र-  
 बलेन युक्ते कार्यौ द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः ॥ 'श्रे-  
 ष्ठान्त्यर्कत्रयान्त्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च ॥ विष्णुत्रयाश्विमित्राज्योनिभा  
 न्युपनायने' ॥ बृहस्पतिः ॥ 'त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे । त्वाष्ट्रे  
 सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम्' ॥ ज्योतिर्निबन्धे ॥ 'पूर्वाहस्तत्रये सर्प-  
 श्रुतिमूलेषु बह्वचाम् । यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः ॥ सामगानां  
 हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः । धनिष्ठादितिमैत्रार्कैष्विन्दुपौष्णेष्वाथर्वणाम्' ॥  
 राजमार्तण्डस्तु ॥ ब्राह्मणस्य पुनर्वसुं निषेधयति । 'ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्र-  
 हाद्वेषु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमहति' ॥ ज्योतिर्नि-  
 बन्धे नारदः ॥ 'सर्वेषां जीवशुकज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः ॥ चन्द्रार्कौ म-



ध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः ॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं  
 तथा ॥ शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते' ॥ शाखाधिपाश्च  
 रत्नसंग्रहे 'ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः । जीवसितौ  
 विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रे' इति ॥ पारिजाते बृहस्पतिः ॥ 'बृहचा  
 नां गुरोर्वारे यजुर्वेदजुषां बुधे । सामगानां धरासूनोरथर्वविदुषां रवेः' । अत्र  
 लग्नशुद्ध्यादि दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥ विस्तरभयान्नोच्यते ॥ लल्लः ॥ 'व्र-  
 तेहि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति ॥ तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं  
 तत्र विवर्जयेत्' ॥ ज्योतिर्निबन्धे ॥ 'नान्दीश्चाहं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वका-  
 लिकः । तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भनकारयेत्' । एतद्बृहचातिरिक्तानां ॥ तेषां तद्दिने  
 वेदारम्भाभावात् । अतस्तेषामुपनयनं न भवत्येव ॥ ऐतरेयोपनिषदि मृ-  
 गादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः ॥ तं विना वर्षादौ त्रिरात्रमनध्यायः इति वेदभाष्ये  
 उक्तम् । एतच्च प्रातस्तनिते । सायंस्तनिते तु दिवैव चरुं श्रपयित्वा सायंसं-  
 ध्योत्तरं होमं कुर्यात् । 'न संध्यागर्जिते काले न वृष्ट्युत्पातदूषिते । ब्र-  
 ह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वं चेन्न निवर्तते । ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं न दुष्यति' ।  
 इतिसंग्रहोक्तेः' इति ॥ प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः ॥ अत्र शान्तिरप्युक्ता नृसिं-  
 हप्रसादे । 'ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि ॥ तदा विघ्नकरं ज्ञेयं  
 बटोरध्ययनस्य तत् । तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । प्रधा-  
 नं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियजौ भवेत् । सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान्पठेत् प्रज्ञा-  
 विवृद्धये ॥ गायत्री चैव मन्त्रः स्यात् प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा । धेनुं सवत्सकां  
 दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं  
 चरेत्' । उपनयने चाधिकारिणः ॥ माधवीये वृद्धमनुनोक्ताः ॥ 'पिता पि-  
 तामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः । उपायनेधिकारी स्यात् पूर्वाभावे परः  
 परः ॥ प्रयोगरत्ने ॥ 'पितैवोपनयेत् पुत्रं तदभावे पितुः पिता । तदभा-  
 वे पितुर्भाता तदभावे तु सोदरः' ॥ पितेति विप्रपरं, न क्षत्रियादेः । तेषां  
 पुरोहित एव । उपनयनस्य दृष्टार्थत्वात् । तेषां चाध्यापनेऽनधिकारात् ।



अत्र पितृव्यस्य ज्येष्ठभात्रृभावेधिकारः । 'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भातृभिः पूर्वसंस्कृतैः' इत्याज्ञावल्क्योक्तेः ॥ तेनेदमविभक्तपरम् । पूर्वं तु विभक्तपरम् मातृ रजोदोषे तु प्रागुक्तम् । अथ षण्ढमूकादीनां विशेषः ॥ प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे ॥ 'ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः' । तस्माच्च षण्ढबधिरकुब्जवामनपङ्गुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये । ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् । मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित् प्रचक्षते । कर्मस्वनधिका राच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः ॥ तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा । संस्कारमन्त्रहोमादीन् करोत्याचार्य एव तु । उपनेयांश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः ॥ आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत् । कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ' इति ॥ स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ॥ कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्वं श्राद्धे निषेधश्च क्षेत्रजपुत्रविषयः ॥ अन्यस्य 'विन्नास्वेष विधिः स्मृतः' इतिवचनात् । अब्रह्मण्येनोपनयनाद्यप्राप्तेरित्यपरार्कः । उपनयनं च कुमारं भोजयित्वा कार्यम् । 'प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति' इति मदनपारिजाते गोभिलोक्तेः ॥ गायत्र्युपदेशश्चोत्तरतोम्नेः कार्यः । 'उत्तरेणाग्निमुपविशतः । प्राङ्मुख आचार्यः । प्रत्यङ्मुख इतरोऽधीहिभोः' इति सांख्यायनसूत्रोक्तेः ॥ यद्यपि कात्यायनेन 'अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोम्नेः प्रत्यङ्मुखाय' इत्युक्त्वा 'दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके इति विकल्पउक्तः' ॥ तथापि कात्यायनामेव सः । बहवृचानां तूत्तर एव वेदैक्यात् ॥ भिक्षायां विशेषमाह कात्यायनः ॥ 'मातरमेवाग्रे भिक्षेत' ॥ पराशरमाधवीये 'मात्तरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्' ॥

अथ संस्कारलोपे शौनकः ॥ 'आरभ्याधानमाचौलात् का-  
संस्कारलोपे लेतीते तु कर्मणाम् । व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम् । एतेष्वेकैकलोपे तु पादकच्छं समाचरेत् । चूडायामर्धकच्छं स्या



दापदि त्वेवमीरितम् ॥ अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत्' ॥ पारि-  
जाते कात्यायनः । 'लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते  
पश्चाद्भुतं कर्म समाचरेत्' ॥ स्मृत्यर्थसारे चैवं कारिकायां तु 'प्रायश्चित्ते कृ-  
तेतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम्' इत्युक्तम् । 'प्रायश्चित्ते कृतेपश्चादतीतमपि कर्म  
वै । कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः' इति त्रिकाण्डमण्डने तु  
'कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वैव विदध्यादुत्त-  
राणि तु' । तत्र सर्वेषां तन्त्रेण नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । देशकालकर्त्रैक्यात् ।  
'गणशः क्रियमाणानां मातृणां पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न  
पृथगादिषु' इति छन्दोगपरिशिष्टात् । एतद्ब्रह्मनामपत्यानां युगपत्संस्का-  
रकरणविषयमिति बोधदेवः । अतीतसंस्काराणां युगपत्करण इत्य-  
न्ये । तत्रापि चौलस्योपनत्या सहेतिपक्षे उपनीतिदिन एवानुष्ठानं न  
पूर्वदिने । सहत्वस्य दिवसैक्ये सन्निकृष्टतरत्वात् । वृद्धाचारोप्येवम् । उपनीति  
दिने मध्याह्नसंध्यामाह पारिजाते जैमिनिः 'यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्संध्या  
दिकं च न । ततो मध्याह्नसंध्यादिसर्वं कर्म समाचरेत्' इति ॥ ब्रह्म गायत्री  
यत्तु वचनम् 'उपायने तु कर्तव्यं सायंसंध्ये उपासनम् । आरभेद्ब्रह्मयज्ञं तु  
मध्याह्ने तु परेहनि' इति । तच्छाखान्तरविषयमिति पारिजातः । विक-  
ल्प इति युक्तं पश्यामः । उपनयनाग्निस्त्रिरात्रं धार्यः 'व्यहमेतमग्निं धारयन्ति'  
इत्यापस्तम्बोक्तेः । बौधायनसूत्रे तु सदा धारणमप्युक्तं 'उपनयनादिरग्नि-  
ष्टोमोपासनमित्याचक्षते । पाणिग्रहणादित्येके नित्योधार्योऽनुगतो निर्मन्थ्यः'  
इति । इदं जातारणिपक्षे । अन्यथा मन्थनासंभवात् । ब्रह्मयज्ञे विशेष-  
माह तत्रैव जैमिनिः । 'अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः । वेदस्थाने तु  
सावित्री गृह्येते तत्समासतः' इति । येषां तद्दिन एव वेदारंभस्तेषां नेदमिति दिक्  
अथ ब्रह्मचारिधर्माः ॥ याज्ञवल्क्यः ॥ मधुमासाञ्जनो-  
ब्रह्मचारिधर्माः च्छिष्टशुष्कस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करोलोकनाश्लीलपरिवादादि  
वर्जयेत्' ॥ मनुः ॥ 'अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्षणोरुपानच्छत्रधारणम्' वर्जयेदि



ति प्रकृतम् ॥ पारिजाते कौर्मै ॥ 'नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेदन्तधावनम् ॥ गुरु-  
च्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः' । एतन्निषिद्धमध्वादिविषयम् । अ-  
न्यस्य गुरुच्छिष्टस्य सर्वदा प्राप्तेः । 'स चेव्याधीयीत कामंगुरोरुच्छिष्टं भेष-  
जार्थं सर्वं प्राश्नीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । ज्येष्ठभ्रातुरित्यपि ज्ञेयम् । 'पितु-  
र्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यम्' इत्यापस्तम्बोक्तेः । गुरुपुत्रे तु स्मृत्य-  
न्तरे उक्तं 'गुरुवद्गुरुपुत्रः स्यादन्यत्रोच्छिष्टभोजनात्' ॥ प्रचेताः ॥ 'ताम्बू-  
लाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च  
विवर्जयेत्' ॥ यमः ॥ 'मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं क-  
टिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् । अग्नीन्धनं भैक्ष्यचर्यामधःशय्यां गुरोर्हि-  
तम्' । कुर्यादितिशेषः । मेखलामाहाश्चलायनः 'तेषां मेखला मौञ्जी  
ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्यावी वैशस्य' इति ॥ आचार्यः ॥ 'त्रिवृता मे-  
खला कार्या त्रिवारं स्यात्समा वृता । तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा  
पुनः' ॥ मनुः 'मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । त्रिवृ-  
ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चाभिरेव वा । मौञ्ज्यभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्त-  
कबल्वजैः' अत्र प्रवरसंख्यानियम इति वृद्धाः ॥ अथदण्डाः ॥ मनुः 'ब्रा-  
ह्मणो बैल्यपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ । पैप्यलोदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हति  
धर्मतः' । एषामभावे गौतमः ॥ 'यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासाप्रमाणः'  
इति । अजिनमाहाश्चलायनः 'अहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाजिनेन  
ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्' इति । यद्यप्यैण्यशब्देन मृगीचर्मैवो-  
च्यते 'एण्या ढञ्' इति पाणिनिस्मृतेः । 'ऐण्यमेण्याश्चर्मामेणस्यैणमुभेत्रि-  
षु' इति अमरकोशाच्च । तथापि 'रुष्णरुवस्तान्यजिनानि' इति शंखोक्तेः ।  
'सर्वेषां वा रौरवम्' इति यमोक्तेश्च मृगचर्मणा सह विकल्पो ज्ञेयः । वस्त्रा-  
जिनयोस्तु विकल्पः । 'कार्पासं वा विकृतम्' इति गौतमोक्तेः ॥ अथ  
यज्ञोपवीतम् ॥ मनुः 'कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृत्तं  
त्रिवृत् ॥' पारिजाते देवलः 'कार्पासक्षौमगोवालशणबल्व



तृणादिकम् । यथासंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ ‘शुचौ देशे शुचिः  
सूत्रं संहतांगुलिमूलके । आवर्त्य षण्णवत्या तत्रिगुणं कर्त्य यत्नतः ॥  
अबिलङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । अप्रदक्षिणमावृत्य सावि-  
त्र्यात्रिगुणाकृतम् । ततः प्रदक्षिणावर्त्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् । त्रिरावेष्ट्य  
दृढं बध्वा ब्रह्मविष्णुवीश्वरान्नमेत् ।’ तन्नवतन्तु कार्यं । ‘सावित्र्या त्रिगुणं  
कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत्’ इति तेनैवोक्तेः ॥ छन्दोगपरिशिष्टे ‘त्रिवृदूर्ध्व-  
वृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम् । त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते’ ।  
ऊर्ध्ववृतं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वावलितं ॥ भृगुः ॥ ‘वामावर्तवलितं त्रिगुणंकृत्वा  
दक्षिणावर्तवलितं त्रिगुणं कार्यं’ । स एकस्तन्तुरेवं त्रितन्तुकमित्यर्थः ॥ कात्या-  
यनः ‘पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दने कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नाति-  
लम्बं नचोच्छ्रितम्’ ॥ वसिष्ठः ॥ ‘नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः ॥  
तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः’ ॥ पारिजातेदेवलः ‘उपवीतं बटो-  
रेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एकमेवयतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः’ ॥ सएव  
‘बहूनि वायुष्कामस्य’ । तत्र मन्त्रमाह स एव ‘यज्ञोपवीतमिति वा व्याहृत्या  
वापि धारयेत्’ ॥ हेमाद्रौ ‘यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।  
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते’ ॥ देवलः ॥ ‘सावित्र्या दशकृत्वोद्भि-  
र्मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत् । विच्छिन्नं चाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत्’ ॥  
मनुः ‘मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृ-  
हीतान्यानि मन्त्रतः’ ॥ अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तं । मनुः ॥ ‘अकृत्वा भैक्ष्यचरण  
मसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत्’ । अमत्या  
आपदि त्यागे तु याज्ञवल्क्यः ‘भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः ।  
कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् । उपस्थानं ततः कुर्यात्समासि  
ञ्चन्त्यवेन तु । मन्त्रास्तु मिताक्षरायां ज्ञेयाः । सकल्लोपे तु ऋग्विधाने  
‘मानस्तोके जपन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये । अग्निकार्यं विना भुक्तौ न पापं  
ब्रह्मचारिणः । स्मृत्यर्थसारे तु संध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रं जपः ।



भिक्षालोपेऽष्टशतं । अश्वसे द्विगुणं । पुनः संस्कारश्चेत्युक्तं ॥ अपराकै सं-  
वर्तः ॥ 'यः संध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु  
जपेत्सनात्वा समाहितः' ॥ अग्निकार्यं संध्याद्वये कार्यम् । अग्निकार्यं ततः  
कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ सायमेव वा । 'सायमेव  
वाग्निमिन्धीतेत्येके' इति लौगाक्षिणोक्तेः ॥ पारिजाते वृद्धशातातपः । 'ब्र-  
ह्मचारी तु योश्चीयान्मधु मांसं तथैवच । प्राजापत्यं चरेत् कच्छं व्रतशेषं समा-  
पयेत् ॥ ऋग्विधाने 'तं वो धियाजपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये । ब्रह्मचारी  
स्वधर्मेषु न्यूनं चेत् पूर्णमेति तत्' ॥ स्त्रीसङ्गे तु मनुः 'अवकीर्णी तु कामेन  
गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाक विधानेन यजेद्वै निर्कृतिं निशि' । विस्तरस्तु  
मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥ उपवीतनाशे तु हारीतः 'मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्या  
हुतीर्हुत्वा पुनः प्रतीयात्' ॥ तत्रैव मरीचिः 'ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विष्मू-  
त्रे कुरुतेथ वा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति' ॥ मनुः 'भोशब्दं  
कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोभिवादने । आयुष्मान्भवसौम्येति वाच्यो विप्रोभिवा-  
दने । आकारश्चास्य नाम्नोन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः पुनः' । शर्मन्निति नका  
रात् पूर्व इत्यर्थः । अभिवादाने प्रत्यभिवादनादौ । विशेषः स्मृत्यर्थसारे  
पारिजातादौ ज्ञेयः ॥ यमः ॥ 'ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् ।

विनाशिष्यं च पुत्रं च दौहित्रं दुहितुः पतिः' ॥ अथ पुनरुपनयनं  
पारिजाते शातातपः ॥ 'लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा  
शुनम् ॥ उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासभीक्षीरभोजनात् ॥ उपायनं पुनः

कुर्यात्तप्तकच्छं चरेन्मुहुः' इति ॥ हेमाद्रौ वृद्धमनुः 'जीवन्यदि समाग-  
च्छेद्घृतकुम्भे निमज्ज्य च । उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत्' ।  
तत्रैव पाद्मे ॥ 'प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति । ' चन्द्रिकायां  
बौधायनः ॥ 'सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः । अङ्गवङ्गकलिङ्गां  
श्च गत्वा संस्कारमर्हति' ॥ हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे वृद्धगौतमः 'स्वर्मुष्ट्रञ्च  
महिषमनङ्गाहमजं तथा । वस्तमारुह्य मुखजः क्रोशे चान्द्रं विनिर्दिशेत्' ॥



मार्कण्डेयः ॥ खरमारुह्य विप्रस्तु योजनं यदि गच्छति । तप्तकृच्छ्रत्रयं  
 प्रोक्तं शरीरस्य विशोधनम् । पुनर्जन्म प्रकुर्वीत घृतगर्भविधानतः । मदनर-  
 त्ने मिताक्षरायां च स्नानमात्रमुक्तं ॥ मनुः ॥ ‘अज्ञानात्प्राश्य विष्णुमूत्रं सुरा-  
 संस्पृष्टमेव च ॥ पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः’ । मिताक्षरायां  
 पराङ्गारः ‘यःप्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्चगार्ह-  
 स्थ्यं चेच्चिकीर्षति’ सञ्चरेत्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च । जात  
 कर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ बौधायनसूत्रं ‘अथोप-  
 नीतस्य व्रतानि भवन्ति नान्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां न  
 स्त्रिया सह भुञ्जीत मधुमांसश्चाद्धसूतक्रान्तानि दशासंधिनीक्षीरं छत्राकनि-  
 र्यासौ विलापनं गणान्नं गणिकान्नमित्येतेषु पुनःसंस्कारः’ ॥ प्रतिषिद्धदेश-  
 गमतमित्येके । अथाप्युदारहन्ति ‘सौराष्ट्रसिंधुसौवीरमवन्तीं दक्षिणापथम् ॥  
 एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥ अथ पुनःसंस्कारं व्याख्यास्यामो-  
 देवयजनप्रभृत्यग्निमुखात् कृत्वा पालार्शीं समिधमाज्येनाऽङ्क्ताभ्याधाय वा-  
 चयति ॥ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः—कामाः स्वाहेति ॥ अथाव्रत्यप्रायश्चित्ते  
 जुहोति यन्म आत्मनो मिंदाभूत् पुनराग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्याम् । अथ पक्वा-  
 ज्जुहोति । ‘सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त—घृतेन स्वाहेति’ ।  
 अथाज्याहुतीरुपजुहोति ‘येन देवाः पवित्रेणेति तिसृभिः अनुच्छन्दसं  
 स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरदानात्’ अथापरमापरिधानात्कृत्वापालार्शीं  
 समिधमाधायथाव्रत्यप्रायश्चित्तेजुहोत्यथव्याहृतर्जुहोति । अथापरो ब्राह्मण  
 वचनादेव सावित्र्या शतकृत्वो घृतमभिमन्त्र्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भव-  
 ति । गुरोर्वाप्युच्छिष्टं भुञ्जीताथाप्युदाहरन्ति ॥ ‘वपनं दक्षिणादानं मेखला  
 दण्डमजिनभैक्ष्यचर्याव्रतानि च निवर्तन्ते पुनःसंस्कारकर्मणि’ इति ॥ आश्व-  
 लायनगृह्येपि ‘अथोपेतपूर्वस्येत्यादिना पुनःसंस्कार उक्तः तथा पित्रादि-  
 व्यतिरेकेण ब्रह्मचारिणः प्रेतकर्मकरणे पुनरुपनयनमित्यपराकर्मादयः ॥  
 त्रिस्थलीसेतौ ‘कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलङ्घनात् । गण्डकीबाहुतर-



णात् पुनःसंस्कारमर्हति'।गौडास्तु'करतोयाजलस्पर्शात्कर्मनाशाविलंघनात्  
इतिपठन्ति तन्न ॥ दानधर्मेषु करतोयास्नाने प्राशस्त्योक्तेः । ' करतोये  
सदानीरे सरिच्छ्रेष्ठेति विश्रुते ॥ आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे' ॥  
इतिस्मृतिदर्पणचन्द्रिकालिखितस्नानमन्त्राच्च ।पराशरः 'अजिनं मेखला  
दंडो भैक्ष्यचर्याव्रतानि च ॥ निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि' ।  
हरदत्तस्तु 'य एकं वेदमधित्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति तस्य पुनरुपनयनं ।  
तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम्' इत्याह । अन्ये नैतन्मन्यन्ते 'सर्वेभ्यो वै देवे-  
भ्यःसावित्र्यानूच्यते'इत्यापस्तम्बोक्तेः।तद्विधिः कारिकायां वेदान्तरमधी-  
त्यैव ऋग्वेदं ये त्वधीयते । उपनीतिरियं तेषामलंकरणवर्जिता । यद्वैतदुपनी-  
तस्य प्रायश्चित्तं यदा भवेत् । कृताकृतं च वपनं मेधाजननमेवच ॥ मे-  
धाजननसद्भावे व्रतचर्या भवेदिह । अनुप्रवचनीयश्च तदभावे द्वयं न हि  
परिदानं न कार्यं स्यान्निमित्तानन्तरं त्विदम् । पूर्वस्या वाचयेत्स्थाने  
तत्सवितुर्वृणीमहे'इति।यत्तु हारीतः 'द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्व-  
श्चातत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या' इति।  
'सद्योवधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहःकार्यः'इति॥तद्युगान्तरविषयम्'पुराकल्पेतु  
नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा '

इति यमोक्तेः॥अथानध्यायाः॥पारिजाते बृहस्पतिः॥

अनध्यायाः

'प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्याम्पर्वणोर्द्वयोः ॥ श्वेनध्यायेद्यशर्व-  
र्यां नाधीयीत कदाचन॥'नारदः 'अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरे । अनु-  
ध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ निर्णयामृते 'चातुर्मास्यद्वितीयासु  
मन्वादिषु युगादिषु।अनध्यायस्तु कर्तव्यो या च सोपपदा तिथिः॥ गर्गः 'शु-

१-वेदानामित्यनेन वेदाङ्गानां शास्त्राणां चाध्यापने न दोषः, अध्ययने तु वेदानाम-  
पि न दोषःइति सूच्यते।अन्यथा विवाहप्रकरणोक्ततत्तन्मन्त्रपाठस्य वधूकर्तृकस्यानुपपत्तेः।  
किंच 'यज्ञे कर्मणि पुनर्नापभाषन्ते' इति महाभाष्योक्त्या यज्ञकर्मण्यपशब्दभाषणनिषेधे  
पति ऋत्विगाद्युक्तसंस्कृतशब्दस्याबोधे सकलं कर्मैव अष्टं स्यात् ॥ वस्तुतस्तु अनेन  
वाक्येन नारीणामुपदेष्टृत्वं निषिध्यते नोपदेश्यत्वमिति ॥



चावूर्जतपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति  
मनीषिणः ॥ 'स्मृत्यर्थसारेपि 'आषाढीकार्तिकीफाल्गुनीसमीपस्थद्वितीयासु  
च' इति ॥ मनुः 'उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्व-  
होरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ' इति । उत्सर्गे तु 'मनूक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्या-  
न्यहस्य विकल्पः' इति विज्ञानेश्वरः । अष्टकाशब्देन सप्तम्यादित्रयं ज्ञेयं । 'ति-  
स्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके' इति गौतमोक्तेः । 'ऋत्वन्तास्विति सौरऋत्वन्तासु  
चान्द्रान्तस्य पर्वत्वेनैव निषेधसिद्धेः' इति सर्वज्ञनारायणः ॥ एते नित्याः । नैमि-  
त्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः 'व्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यत्विग्गुरुबन्धुषु । उ-  
पाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा । संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्का-  
निपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च । पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां  
राहुसूतके । ऋतुसंधिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च । पशुमण्डूकन-  
कुलश्वाहिमार्जारमूषकैः । कृतेन्तरेत्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये । 'ग्रहणे  
द्युनिशोक्तावपि ग्रस्तास्ते व्यहमित्युक्तं प्राक् ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'रात्रौ तु  
ग्रहे तिस्रो रात्रीः दिवाच व्यहम्' इत्युक्तम् । ऋतुः सौरः । भुक्त्वेत्युत्सव-  
विषयम् । 'उर्ध्वं भोजनादुत्सवे' इति गौतमोक्तेः । श्राद्धिकमहैकोद्दिष्टभिन्नं ।  
तत्र तु व्यहमिति मनुः ॥ स्मृत्यर्थसारे चैवं ॥ यत्तु 'पश्वाद्यन्तराये व्यहमुपवासो  
विप्रवासश्च' इति गौतमोक्तं तत् प्रथमाध्ययने ॥ याज्ञवल्क्यः 'श्वक्रोष्ट-  
गर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ॥ अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥  
देशेऽशुचावात्मनि च विद्युस्तनितसंप्लवे । भुक्त्वाद्रपाणिस्मभोन्तरर्धरात्रे-  
त्रिमारुते । पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे  
च शिष्टे च गृहमागते । खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे । सप्त-  
त्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः । बाणो वंशः । शततन्तुर्वीणि  
ति हरदत्तः । अमेध्याः सूतिकादयः । स्तनितं गर्जः । वर्षातो न्यत्र  
गर्जवृष्टिविद्युतां यौगपद्ये आकालिकः । वर्षासु तात्कालिक इति नारायणः ।  
संध्यागर्जे तु हारीतः । 'सायंसंध्यास्तनिते रात्रिः । प्रातः संध्यास्तनितेऽ



होरात्रं रात्रौ विद्युत्यपररात्र्यवधिः । 'विद्युति नक्तं चापररात्रात्' इति गौतमोक्तेः 'तृतीयदिनांशोत्तरं तु विद्युति सर्वरात्रम्' इत्याह स एव। त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति अर्धरात्रे मध्ययामद्वयमिति विज्ञानेश्वरः । मध्यदण्डचतुष्टय इति निर्णयामृते ॥ मनुः 'न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके । रुधिरे च स्नुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते' ॥ कौर्मै ॥ 'श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः' ॥ मनुः ॥ 'शयानः प्रौष्ठपादश्च कृत्वा चैवावसस्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नायमेव च' । प्रौष्ठपादः पादोपरिपाददाता ॥ आसनारूढपादो वेति हरदत्तः । सोपपदास्वपि प्रागुक्तं । स्मृत्यर्थसारे ॥ श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे शवदर्शने चाहोरात्रं । असपिण्डे गुरौ मृते त्रिरात्रं । आचार्ये उपाध्याये च पक्षिणी । आचार्यभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् । अग्न्युत्पाते गोविप्रमृतौ त्रिरात्रम् । अयने विषुवे च पक्षिणी । अकालवृष्टौ च। आरण्यमार्जारसर्पनकुलपञ्चनखादेरन्तरागमने त्रिरात्रम् । आरण्यश्वसृगालादिवानररजकादौ द्वादशरात्रम्। खरवराहोष्ट्रचाण्डालसूतिकोदक्याशवादौ मासम्। गोगवयाजानास्तिकादौ त्रिमासं। शशमेषश्वापाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतघ्रादावब्दमनध्यायः । शोभनदिने चानध्यायः । विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्यायः ॥ 'उदयेऽस्तमये चापि मुहूर्तत्रयगामि यत् । तद्दिनं तदहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः' ॥ केचिदाहुः । क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः तावदेव त्वनध्यायो तत्तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥ प्रदोषं त्वाह प्रजापतिः 'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडीका' ॥ निर्णयामृते गर्गः ॥ 'रात्रौ यामत्रयादवाक् सप्तमी वा त्रयोदशी ॥ प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः । रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते ॥ प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः' ॥ कौर्मै 'अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ॥



न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत्' ॥ शौनकः 'नित्ये जपे च का-  
म्ये च ऋतौ पारायणेपि च ॥ नानध्यायोस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः'।

इत्यनध्यायाः ॥ अथ महानाम्न्यादिव्रतम् ॥ श्रीधरः 'ति-  
महानाम्न्या-  
दिव्रतम् थिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत्सर्वमाख्यातं सगो-  
दानव्रतेषु च' ॥ एषां लोपे शौनकः 'व्रतानि विधिना कृत्वा

स्वशाखाध्ययनं चरेत् । अकृत्वाभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः । प्रत्येकं  
कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाज्याहुतीः शतम् । हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादि-  
त्याह शौनकः' ॥ स्मृत्यर्थे सारे तु 'त्रीन् षट् द्वादश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्र-

तं चरेत्' इत्युक्तम् । अथ समावर्तनम् । सुरेश्वरः 'भौ-  
समावर्तनम् महानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च

स्यात्समावर्तनक्रिया' ॥ बौधायनसूत्रे तु रोहिण्यां तिष्ये उत्तरयोः फाल्गु-  
न्योर्हस्ते चित्रायामैन्द्रे विशाखायां वा स्नायात् इत्युक्तम् ॥ वसिष्ठः 'स्नानं  
माध्याह्नकाले तु होरायां कारयेच्छुभम् । पूर्वाह्णे तदभावे तु कुर्यात्स्नानं  
यथाविधि' ॥ 'सर्व ऋतवो विवाहस्य' इति सूत्रात् यदा दक्षिणायने विवाह-  
स्तदा समावर्तनमपि तत्रैव । अन्यथोदगयने समावर्तने 'अनाश्रमी न निष्ठेत'  
इति विरोधः स्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये । एतच्च ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं  
कृत्वा कार्यम् । तदाह बौधायनः 'शौचं संध्यादर्धभिक्षाग्निकार्यराहित्यकौ-  
पीनोपवीतमेखलादण्डाजिनधारणे दिवास्वापच्छत्रपादुकास्त्रग्विधारणाङ्गोद्व-  
र्तनानुलेपनाञ्जनधूतनृत्यगीतवाद्याभिरतौ ब्रह्मचारी कृच्छ्रत्रयश्चरेत् । महा-  
व्याहृतिहोमं पाहित्रयोदशहोमं च कुर्यात् । समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रि-  
रात्रमाशौचं कार्यम् ॥ 'आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते  
तूदकं दत्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इति मन्त्रोक्तेः । आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञा-  
नेश्वरः । ब्रह्मचर्ये यदि कश्चिन्न मृतस्तदा त्रिरात्रमध्ये विवाहः कार्योऽन्य-  
था नेति सिद्ध्यति । जनने तु सत्यपि न त्रिरात्रम् । तत्रातिक्रान्तशौचा-  
भावादुदकं दत्वेति वचनाच्चेतिदिक् । तत्रापि विकल्पः । पितर्यपि मृते नैषां



दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यान्न्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ।  
 इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ स्नातकव्रतान्याह व्यासः 'यज्ञोपवीतद्वितयं सो  
 दकं च कमण्डलुम् । छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च  
 कुण्डले वेदः कृतकेशनखः शुचिः' । वेदो दर्भबटुः ॥ मनुः ॥ 'उपानहौ च  
 वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च' । अ-  
 न्यान्यपि बह्वृचगृह्यस्मृत्यादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ अथ छुरिका-  
 बन्धः  
 बन्धः ज्योतिर्निबन्धे ॥ नारदः ॥ 'छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृ  
 प्राणां प्राकरग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे । जीवे शुके  
 च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे' ॥  
 संग्रहे 'शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ  
 कार्यं भौमदिनं विना' ॥ अथ विवाहः ॥ याज्ञवल्क्यः 'अ-  
 विवाहः  
 विपुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यांस्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकां का-  
 न्तामसपिण्डां यवीयसीम् । अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजम्' । 'लक्ष-  
 ण्यां बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम् । बाह्यानि काशीखण्डादौ प्रसिद्धानि ॥ आ-  
 न्तराण्याश्चलायनोक्तानि 'अष्टौ पिण्डान्कृत्वा' इत्यादीनि ॥ मनुः 'अस-  
 पिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि  
 मैथुने' ॥ दत्त्रिममातुर्गृहीता अपिसपिण्डासगोत्रा ॥ तत्कुलनिवृत्तये चका-  
 रान्मातुरगोत्रादत्तस्य पितुर्जनककुले पितुरसगोत्रापि सपिण्डत्वान्निषि-  
 द्धेत्यन्यश्चकार ॥ असपिण्डां सापिण्ड्यचरहिताम् । तच्चैकश-  
 सापिण्ड्यम्  
 रीरावयवान्वयेन भवति । एकस्य हि पितुर्मातुर्वा शरीरस्या  
 वयवाः पुत्रपौत्रादिषु साक्षात्परस्परया वा शुक्रशोणितादिरूपेणानुस्यूता यद्यपि  
 पत्न्याः पत्या सह भ्रातृपत्नीनां च परस्परं नैतत्संभवति । तथापि आधारत्वेनै

१—ऋषीणामियमार्षी, आर्षी गोत्रा पृथ्वी येषु ग्रामेषु ते आर्षगोत्राः, समाना आर्ष-  
 गोत्रा येषां तानि समानार्षगोत्राणि कुलानि, तत्र जाता समानार्षगोत्रजा, तद्विनाम्  
 समानार्षगोत्रजामित्यर्थः ॥ गोत्रप्रवराध्यायप्रसिद्धगोत्रस्यैवग्रहणेऽत्रार्षपदं व्यर्थं स्यात् ।



कशरीरावयवान्वयोस्त्येव । 'अस्थिभिः अस्थीनि' इति मन्त्रलिङ्गात् । एकस्य हि पितृशरीरस्यावयवाः पुत्रद्वारा तास्वाहिता इति मदनरत्ने पारिजातविज्ञानेश्वरादयः वाचस्पतिशुद्धिविवेकशूलपाण्यातिगौडमैथिलादयोप्येवम् ॥ श्रुतावपि 'एतत्षाट्कौशिकंशरीरं । त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतोऽस्थिस्त्रायुमज्जानः पितृतस्त्वङ्मासरुधिराणि मातृतः' इति ॥ 'प्रजामनु प्रजायसे' इति च । चन्द्रिकारार्कमेधातिथिमाधवादयस्तु एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यम् । 'लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' इति मास्योक्तेः ॥ न च पितृव्यादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । तत्कर्तृकश्राद्धे देवतैक्येन तत्सत्त्वात् । देवदत्तकर्तृकश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्ये यः कश्चिदन्यकर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशति तेषां सापिण्ड्यम् । 'तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे सहाधिकारित्वेन तदन्वयात् । 'एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके' इति स्मृतेश्च । श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात्तस्य सापिण्ड्यनिमित्तत्वेमानाभावात् । न च मातुलादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । मातामहरूपदेवतैक्यात् ननु गुरुशिष्यादेरपि श्राद्धदेवतात्वात्सपिण्डत्वं स्यात् । किं बहुना 'सर्वाभावेतु नृपतिः कारयेत्तस्यरिक्थतः' इति मार्कण्डेयपुराणाद्राज्ञोपिश्राद्धकर्तृत्वात्सापिण्ड्यप्रसङ्गः सत्यम् । 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमातृतः पितृतस्तथा' इति याज्ञवल्क्यः वचनेन मातापितृसम्बन्ध एव तत्सत्त्वात् । उर्ध्वं सापिण्ड्यं निर्वर्तत इति शेषः ॥ ननु पञ्चमत्वाद्यत्र नियम्यते न मातृतः इत्यादिवाक्यमेतत् ॥ मैवं । मातृकुले पञ्चमत्वस्य पितृकुले सप्तमत्वस्य च बोधने तुल्यत्वात् पौरुषेयत्वाददोष इति चेत् । तुल्यमन्यत्रापि । अन्यकर्तृके राज्ञस्तत्पितृणां वा देवतात्वाभावाच्च किंच । अवयवान्वयपक्षे यथा योगरूढ्या परिहारस्तथेहापि तेन मातृकुले पितृकुले चैकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यमित्याहुः तेनैकस्य पित्रादयः षट् पुत्रादयश्च षट्सपिण्डा भवन्ति । अत्र केचिदुभयतः सपिण्ड्यनिवृत्तावेवोद्वाहो नान्यथा इत्याहुः । शुद्धचिन्तामणिवाचस्पतिहरिदत्तादयस्तु



सगोत्रत्ववत्सापिण्ड्यस्य सप्रतियोगिकत्वेन संयोगवदुभयनिरूप्यत्वात् एकतो निवृत्तावन्यतो निवृत्तेरावश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमो वरो मूलपुरुषमारभ्य द्वितीयातृतीयादिकां कन्यामुद्वहेदित्याहुः ॥ शिष्टसातु न वधूवरयोः स्वतः सापिण्ड्यं किंतु कूटस्थसंततित्वात्तत्सापिण्ड्येनैव ॥ अतोष्टमवरं प्रति कन्याया असापिण्ड्येपि कन्यायाः कूटस्थेन सापिण्ड्यात्तत्संततिस्थत्वाद्द्वरस्तां प्रति सापिण्ड एवेत्यविवाहः । सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोः प्रतियोगिभेदेनाविरोधादित्याहुः ॥ इदमेव च युक्तं । आशौचप्येवं सापिण्ड्यं ज्ञेयम् । यत्र तु मध्ये विच्छिन्नमपि सापिण्ड्यं मण्डूकप्लुतिवत्पुनरनुवर्तते ॥ यथा कूटस्था-  
 त्पञ्चम्योः कन्ययोः पुत्रौ तत्र निवृत्तिः । तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्तत्रापि न सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोर्दोषः ॥ संबन्धिभेदात् । तेन तत्र न विवाहः । अत्र कूटस्थामरभ्य गणना कार्या । तदुक्तं 'वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः । पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निवर्तते' इति । कूटस्थो मूलपुरुषः । विश्वरूपनिबन्धे 'एवमुक्तप्रकारेण पितृबन्धुषु सप्तमात् । ऊर्ध्वमेव विवाह्यत्वं पञ्चमान्मातृबन्धुतः । संतानो भियते यस्मात् पूर्वजादुभयत्र च । तमादाय गणेद्धिमान्वरं यावच्च कन्यकाम्' । स्मृति-  
 तत्त्वे नारदः 'आसप्तमात् पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा' । अत्र बन्धुभ्य इति पञ्चमीनिर्देशात् । पितुः पितृष्वसृपुत्रात्सप्तमीं मातुः पितृष्वसृपुत्राच्च पञ्चमीमपि त्यजेत् । एवमन्यबन्धुषु ज्ञेयम् । तत्रापि त्रिगोत्रात्ययेर्वागपि विवाहं कुर्यात् । वक्ष्यमाणवचनात् त्रिगोत्रगणना च मातामहगोत्रापेक्षया । नतु स्वापेक्षया । अन्यथा पितुः पितामहदुहितुर्दौहित्रीपुत्री परिणेत्या स्यात् वध्वा मातामहगोत्रापेक्षया तु त्रिगोत्रान्तर्गतेनविवाहप्रसङ्ग इतिसंबन्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः । संबन्धविवेके शूलपाणिरप्याह पञ्चमात्सप्तमाच्चार्वागपि त्रिगोत्रान्तरिता विवाह्या । 'असंबद्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा । सा विवाह्या द्विजातीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या' इतिबृहन्मनूक्तेः । 'सन्निकर्षेपि कर्तव्यं त्रिगोत्रात्परतो



यदि' इतिदेवलोक्तेष्वेति। एतच्च दाक्षिणात्या न मन्यन्ते ॥ यत्तु वसिष्ठः 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा' इति ॥ यच्च विष्णुपुराणम् 'पञ्चमीं मातृ पक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् । गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्याप्येन विधिना नृप' इति तत्पञ्चमीं सप्तमीमतीत्येति व्याख्येयम् 'पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकीक्रिया क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः' इत्यपरार्कमरीचिवचनात् हार लतायां शंखलिखितौ 'सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी। पिण्डश्चोद कदानं च आशौचञ्च तदानुगम्' । गोत्रं सन्तानम् । आशौचं तानभिव्याप्यगच्छ तीत्यर्थः ॥ शुद्धिविवेके शुद्धिचिन्तामणौ च ब्राह्मे 'सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी। सपिण्डता ततः पश्चात्समानोदकधर्मता । ततः कालवशात्तत्र वि- स्मृतौ नामगोत्रतः । समानोदकसंज्ञा तु तावन्मात्रापि नश्यति' । सप्तोर्ध्व त्रयः सोदकाः । ततो गोत्रजाः ॥ तत्रैव ब्राह्मे 'अविभक्तधनास्त्वेते सपिण्डाः परिकीर्तिताः' ॥ तेन विभक्तधनाभावे विभक्तः सपिण्डो धनहारी नान्यथा इत्यर्थः । तेन विवाहे आशौचे धनग्रहणे च त्रिधा सापिण्ड्यम् ॥ यत्तु 'पञ्चमीं मा- तृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतस्त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतो वा' इति पैठीनसिस्मृतौ त्रीनित्यनुकल्प इति माधवोक्तेः 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा । द- शाभिः पुरुषैः ख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् । उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् ॥ पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः । सप्तमीञ्च तथा षष्ठीं पञ्च मीं च तदैव च । एवमुद्वहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः । तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राहपाराशर्योङ्गिरा यमः' ॥ यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् । नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते' इति च तुर्विंशतिमत्तात् 'चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमोपि वा । पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पञ्चमीम्' इति पराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापि पञ्चम्यादिपरिणयनं कार्यमिति प्रतीयते ॥ अत्र हि तदभावे इति स्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम् तत्र यथाश्रुतं ज्ञेयम् ॥ पूर्वोक्तमरीचिवचो विरोधात् । वस्तुनि विकल्पासंभवात् । 'पञ्चमात्सप्तमाङ्गीनां यः कन्यामुद्वहेद्विजः । गुरुमल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैव-



मुद्रहन्' इतिविष्णुक्तेः। पराशरस्य मूलाभावाच्च । तस्मान्मदनपारिजाता-  
द्युक्तदिशा दत्तकसापत्नसम्बन्धाद्यनुप्रवेशे ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिसापिण्डवि-  
षये वा पूर्वोक्तानि नेयानि । नत्वनुकल्प इति भ्रमितव्यम् । यत्तु स्मृतिचन्द्रि-  
कामाधवादय आहुः 'तृतीये संगच्छावहै, चतुर्थे संगच्छावहै' इतिशतप-  
थश्रुतेः । 'तृतां जहुर्मातुस्स्येवयोषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपामिव' इति। गर्भे नु  
नौ जनिता दम्पतीकविति च मन्त्रवर्णात् 'मातृष्वसृसुतां केचित्पितृष्वसृ-  
सुतां तथा । विवहन्ति कचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्डताम्' इति शाता-  
तपोक्तेश्च मातुलकन्योद्वाहोपि कार्यः 'यद्यपि पितृष्वसृकन्योद्वाहोपि प्रा-  
प्तस्तथाप्यस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु' इतिनिषेधाद्वचनान्तरेण  
तदुद्वाहस्याविधानाच्च न कार्यः । अयं तु दाक्षिणात्यशिष्टाचारात्कार्यं  
इति । नचपूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता । मानान्तरेणासिद्धौ 'उपरि हि दे-  
वेभ्यो धारयति' इतिवदनुवादानुपपत्त्या विधिकल्पनात् ॥ यत्तु शातातपः  
'मातुलस्य सुतामूढा मातृगोत्रां तथैव च ॥ समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रा-  
यणं चरेत्' ॥ यच्च मनुः ॥ 'पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्त्रीयां मातुरेव च । मा-  
तुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् । एतास्तिष्ठस्तु भार्यार्थे नोपय-  
च्छेत् बुद्धिमान्' ॥ यच्च व्यासः ॥ 'मातुः सपिण्डायत्नेन वर्जनीया द्विजाति-  
भिः' इति तद्गान्धर्वादिविवाहोद्वाहमातृविषयम् तत्र पितृगोत्रानिवृत्तेः ।  
अत एव मार्कण्डेयपुराणम् । 'गान्धर्वादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्'  
इति ॥ ब्राह्मादिविवाहे तु परिणयेवैवेति ॥ भट्टसोमेश्वरोपि तृतीयेध्याये  
वाक्यपादे मातुलकन्योद्वाहमुदाहृत्य स्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्य वार्तिक-  
बाधोक्तावपि पूर्वोक्तश्रौतलिङ्गबलीयस्त्वादस्य कर्तव्यतामाह ॥ तदेतदत्त-  
कस्य पालकदत्तममातृसोदरकन्याविषयत्वेनासवर्णमातुलकन्याविषयत्वेन  
युगान्तरपरत्वेन चोपपन्नमपि अविचारितरमणीयं यथा तथास्तु ।



तथापि कलौ तावन्निषिद्धमेव । ' गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो  
 गोवधस्तथा' इत्यादिपुराणात् ॥ माधवीये ॥ बौधायनोप्यस्य निन्दामाह  
 'पञ्चधाविप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरत ऊर्णाविक्रयोनुपेतेनस्त्रिया च सहभोजनं  
 पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसृदुहितृपरिणयनमिति' । अथोत्तरतःसीधुपानादि  
 कमुक्त्वा इतरइतरस्मिन्कुर्वन्नुदुष्यति इतरइतरस्मिन्निति भट्टसोमेश्वरे-  
 णापि स्मृतिविरुद्धानां मातुलकन्योद्वाहादीनामस्माद्वचनादप्रामाण्यमित्युक्तम्  
 बृहस्पतिरपि 'उदूह्यते दाक्षिण्यात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः । मत्स्यादाश्च  
 नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियाः । उत्तरे मद्यपाश्चैव स्पृश्या नृणां रजस्वलाः '  
 इत्यनाचारत्वमाह ॥ अतएव हेमाद्रौ मात्स्ये कर्णाटकादीनां तत्कारिणां श्राद्धे  
 निषेधः ॥ बोपदेवेनापि लिखितं ब्राह्मणम् 'यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषली-  
 पतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम्' इति । तस्मान्मातृतः  
 पञ्च पितृतः सप्त त्यक्तवोद्वहेदिति सिद्धम् ॥ संबन्धविवेके सुमन्तुः ॥ 'ब्राह्म-  
 णानामेकपिण्डस्वधानामादशमाद्धर्मविच्छित्तिर्भवति । आसप्तमादिकथवि-  
 च्छित्तिर्भवति । आतृतीयात्पिण्डविच्छित्तिरन्यथा । पिण्डशौचक्रियाविच्छे-  
 दाद्ब्रह्मतुल्यो भवति' । अस्यार्थमाह शूलपाणिः जीवत्पित्रादित्रिकस्यवृद्ध-  
 प्रपितामहादयस्त्रयः श्राद्धदेवतात्वात्पिण्डभाजो भवन्ति । तदूर्ध्वं त्रयो  
 नवपुरुषपर्यन्ता लेपभाजः । श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्ड्य-  
 निवृत्तिः । दशमादित्युलक्षणं । तेन पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यन्तं पितु-  
 जीवने चाष्टपुरुषपर्यन्तं सापिण्ड्यमिति ज्ञेयम् ॥ अपुत्रधनग्रहणे संहिनि-

१-कलावपि येषां कुले देशे अनुकल्पत्वेन सापिण्ड्यसंकोचः परम्परया समागतः,  
 तेषां तादृशसंकोचेन विवाहे न दोषः । अस्ति च भार्यात्वोत्पत्तिः । अन्येषां तैः सह व्य-  
 वहारे नैव दोषः ॥ हेमाद्र्यादौ श्राद्धनिषेधोपि स्वकुलदेशे परम्परयाऽनागतसापिण्ड्य  
 संकोचेन कृतविवाहविषय एवेति बोध्यम् इति संस्कारकौस्तुभः ॥ ग्रन्थकर्तुराशयस्तु  
 परम्पराशब्दोपादानेन पितृपितामहादिभिः सर्वैर्मातुलकन्यैव परिणीता इति व्याख्यान-  
 संभवेप्रथमं तदाचारप्रवर्तके प्रत्यवायं को निवारयिता मध्येऽकस्मान्मातुलकन्याया अ-  
 परिणये परम्परोच्छेद इति ॥ २-निरामिषश्राद्धनिन्दाप्रदर्शकेनानेन वाक्येनापि क  
 लिभिन्नयुगेष्वपिमातुलकन्योद्ग्रहणं निषिध्यते ॥



ताभावे सप्तपुरुषपर्यन्तमधिकारः । धनग्राहिणमारभ्य तृतीयः पौत्रः तदूर्ध्वं  
 श्राद्धविच्छेदः । अन्यथा धनहारित्वेऽपुत्रश्राद्धाकरणे ब्रह्महत्येत्यर्थः ।  
 आतृतीयादित्यनूढकन्याविषयम् ॥ 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी वि-  
 ज्ञायते' इति वसिष्ठोक्तेः । एतच्चाशौचविषयं सापिण्ड्यं न तु विवाहादौ  
 तत्र पूर्वोक्तवचनैः ॥ पञ्चमत्वसप्तमत्वनियमादिति मेधातिथिप्रमुखा दा-  
 क्षिणात्याः । वाग्दानोत्तरमेतदिति ॥ शुद्धिविवेकः ॥ मातृकुलविषयं का-  
 नीनकन्यकाविषयं चैतत् । अन्यथा 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं  
 साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः' इति कौ-  
 र्मेण विरोधः स्यादिति रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिति गौडग्रन्थाः ॥ युक्तं  
 चैतत् । अन्यथा कन्योत्पत्तौ पुरुषत्रयपर्यन्तमेव सूतकं स्यान्नोर्ध्वं ।  
 सापत्नमातामहकुले त्वाह मिताक्षरायां शंखः 'यद्येकजाता बहवः पृथक्  
 क्षेत्राः पृथक्जनाः । एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्तते त्रिषु' । पृथ-  
 क्क्षेत्राः भिन्नजातीयस्त्रीषु जाताः, पृथक्जनाः सजातीयभिन्नमातृषु जाताः ।  
 अत्र त्रिपुरुषं सापिण्ड्यमिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ पृथ्वोचन्द्रोदये सा-  
 पिण्ड्यदीपिकायां चैवम् ॥ मदनपारिजाते तु पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमात्रजाः  
 पृथक्जनाः भिन्नजातीयाः । एतद्विजातीयसापत्नमातृकुले चतुःपुरुषं सा-  
 पिण्ड्यं । 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा' इति वसिष्ठोक्तेः । स-  
 प्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयं चेत्युक्तम् ॥ त-  
 त्सर्वकपोलकल्पितत्वात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च निर्मूलम् ॥ 'पितृपत्न्यः सर्वा  
 मातरः' इत्युक्ता सुमन्तुना 'तदपत्यानि भागिन्यानि' इति पृथङ्निषेधाच्च ।  
 अन्यथा सापिण्ड्यत्वेन निषेधात् सपत्नमातुलत्वादिनिर्देशो व्यर्थः । अतएव  
 तेन स्मृतिकौमुद्यां सवर्णसापत्नमातामहकुलपरत्वेन तथैव शंखवचनं व्या-  
 ख्यातम् । तेन वासिष्ठं 'पञ्चमीं सप्तमीं मतीत्य' इति व्याख्येयम् । तस्मात्-  
 प्राच्येव । व्याख्या युक्ता ॥ प्रयोगरत्ने भट्टैः स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु च  
 सपत्नमातामहकुले यावदुक्तं वाचनिकमेव सापिण्ड्यमुक्तम् ॥ यथाह सुमन्तुः



‘मातृपितृसंबन्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति । आपञ्चमादन्येषां पितृपत्न्यः  
 सर्वा मातरस्तद्भातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्गृहितरश्च भगिन्य-  
 स्तदपत्यानि भागिनेयानि । अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरे-  
 तदेव’ इति । आपञ्चमादिति मातृकुले त्रिगोत्रान्तरितविषयं वेति प्राच्याः  
 मात्स्ये ‘समानप्रवरा चैव शिष्यसंततिरेव च । ब्रह्मदातुर्गुरोश्चैव संततिः  
 प्रतिषिध्यते’ ॥ तद्भगिन्यो मातृष्वसार इति तु आकरे न पठितम् । क्वचि-  
 द्दचनादविवाहः ॥ यथा गृह्यपरिशिष्टे ‘अविरुद्धसंबन्धामुपगच्छेत’ इत्युक्त्वा  
 विरुद्धसंबन्धः स्वयमेवोक्तः । ‘यथा भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नीस्वसा च’  
 इति ॥ बौधायनः ‘मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ॥ पितृव्य-  
 पत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्’ अतो मातृष्वसुः सापत्नपुत्रकन्या-  
 प्यविवाह्या । ‘सापत्नमातृकुलजाम्’ इति मदनपारिजातोक्तेरिति केचित् ।  
 केचित्तु ‘ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः’ इति मनूकेस्तत्पत्न्या मातृत्वात्तत्पितुर्मा-  
 तामहत्वात् । ज्येष्ठभ्रातृपत्नी भगिनी न विवाह्या ॥ तथा ‘उत्पादकब्रह्मदा-  
 त्तोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता’ इति मनूकेर्गुरुणा त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं सखापि नि-  
 र्वाप्यः । अतस्तेषां कन्या नोद्वाह्याः । ‘गायत्र्या उपदेष्टुश्च कन्यां नैवोद्व-  
 हेद्विजः । गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्संतत्यापि नेष्यते ॥ पुरुषत्रयपर्यन्तं  
 भ्रात्रादेर्नैतदिष्यते । वाक्सम्बन्धकृतानां तु स्नेहसम्बन्धभागिनाम् । विवा-  
 होत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते’ इति वचनाच्चेत्याहुः । तत्र मूलं चि-  
 न्त्यम् ॥ दत्तकविषये तूच्यते ॥ तत्र गौतमः ॥ ‘ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो  
 बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः’ ॥ पञ्चमादिति बन्धुग्रहणान्न दत्तकमात्रपरमिदम्  
 किन्तु सन्तानेपि । एतत्क्षेत्रजादिसर्वद्वयामुप्यायणपरमिति हरदत्तः ॥ अत्र  
 स्मृतिचन्द्रिका ‘नियोगाय उत्पादयति तस्माद्बीजिनोप्यूर्ध्वं सप्तमादित्यर्थः’  
 इति । दत्तकस्य जनकविषयमेतदिति सापिण्ड्यमीमांसायाम् ॥ तेन दत्तकस्य  
 जनककुले साप्तपौरुषं जननीकुले पञ्चपौरुषं सापिण्ड्यम् । ‘दत्तक्रीतादिपुत्रा  
 णां बीजवसुः सापिण्डता । सप्तमी पञ्चमी चैव गोत्रित्वं पालकस्य च’ इति



बृहन्मनूक्तेः । 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेश्च । पालकपितृकुले तु पञ्चपुरुषं, तथा चापराकैपैठीनसिः 'त्रीन्मातृतः पञ्चपितृतः पुरुषानतीत्योद्वहेत्' इति । एतत्स एव व्याचख्यौ दत्तकादीन्पुत्रान्पितृपक्षतो निवृत्तपिण्डगोत्रार्थेयान्प्रत्येतदुच्यते पञ्च पितृत इति नान्यान्प्रतीति ॥ यत्तु वृद्धगौतमः ॥ 'स्वगोत्रेषु कृता ये स्युर्दत्तक्रीतादयः सुताः । विधिना गोत्रमायान्ति न सापिण्ड्यं विधीयते' ॥ यच्च वसिष्ठः 'अन्यशाखोद्भवो दत्तः पुत्रश्चैवोपनायितः । स्वगोत्रेण स्वशाखोक्तविधिना स्यात्स्वशाखभाक्' इति । यच्च नारदः 'धर्मार्थं वर्धिताः पुत्रास्तत्तद्गोत्रेण पुत्रवत् । अंशपिण्डविभागित्वं तेषु केवलमीरितम्' । तत्पालककुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यं न इत्येवंपरं, नतु सर्वथा सापिण्ड्यनिषेधपरमिति सापिण्ड्यमीमांसायाम् ॥ मदनपारिजातादपि दत्तकानुप्रवेशेऽल्पं सापिण्ड्यं प्रतिभाति ॥ तथाहि तेन त्रीनतीत्येत्युदाहृत्ययस्य माता दत्तपुत्री प्रतिगृहीता पुत्रीकृता तस्याः प्रतिगृहीतृकुले त्रीनतीत्येति ॥ पञ्च पितृतः इति यस्य दत्तपुत्रः पिता तस्य दत्तस्य यज्जनककुलं तद्विषयमित्युक्तम् ॥ वस्तुतस्तु पूर्ववचसां महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भादपरार्कादिलेखनाभावात् । पूर्वोक्तव्यवस्थायाश्च प्रातिभज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतल्लिखितं तेषामेव शोभते । मम तु पालककुले एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपं साप्तपौरुषमेव सापिण्ड्यम् ॥ 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्जनककुलेपि तावदेव 'त्रीन्मातृतः' इत्यादि तु सवर्णसापत्नमातृकुलपरम् । 'यथेकजाता बहवः' इति शांखैकवाक्यत्वादिति युक्तं प्रतिभाति । अतएवास्य द्वयामुप्यायणत्वं हेमाद्रिप्रवरमञ्जरीवृत्तिकृन्नारायणादिभिरुक्तम् । भट्टसोमेश्वरेणापि 'पृथायाः कुन्तिभोजस्य पालककन्यात्वेपि ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुबीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्दत्तमायाः पृथायाः जनकस्य शूरसेनस्यकुलेपि साप्तपौरुषम् पालककुलेपि तावदेव सापिण्ड्यमुक्तमपि वा कारणग्रहणे इत्यत्र सापिण्ड्यदीपिकायां तु दत्तक्रीतादीनां जनकगोत्रेणोपनयने कृते जनककुले साप्तपौरुषं सापिण्ड्यम् । पालकमातापितृकुले त्रिपुरुषम् । पिण्डनिर्वापान्निर्वाप्यलक्षणम् त्रिपुरुषं सापि



ण्ड्यम् । पालकगोत्रेणोपनयने तत्कुले सातपौरुषमित्युक्तम् ॥ तन्न । 'चूडो-  
पायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास-  
उच्यते' इति कालिकापुराणादुपनयनोत्तरं दत्तकनिषेधात् । त्रिपुरुषमित्यत्रा-  
पि मूलं मृग्यमित्यलम् बहुना । मातापितृद्वारकसापिण्ड्यवतीनां कन्यानामि-  
यं संख्या रामवाजपेयिनोक्ताः 'उद्बोदुःपितरौ पितृश्वपितरौ तज्जन्मरुदम्पती  
द्वंद्वं तस्य चतुष्कमष्ट च ततोऽप्यस्य क्रमात् षोडश ॥ वंशारम्भकदम्पतीप्रमि-  
तिरित्यासप्तकक्षं रदा एकैकान्वयकन्यकाः पितृकुले त्वासप्तकक्षं ब्रुवे ॥  
यद्यप्येकस्य बहवः सुताः स्युस्तदपीह तु । सम्बन्धसाम्यादेकैकगणितेत्यव-  
धार्यताम् ॥ एकस्मान्मिथुनात्सुतोऽथ दुहिता द्वंद्वद्वयं तद्व्यात्तस्माद्वंद्वचतुष्क-  
मष्ट च ततोऽतः षोडशाऽतो रदाः ॥ यावत्सप्तमकक्षमग्निक्रतवः कन्या इहैकान्व-  
ये ता दन्तैर्गुणिता रसैकसदृशो वंशे सपिण्डाः पितुः ॥ मातुर्जन्मददम्पतीच  
मिथुनद्वंद्वतयोः सागरास्तस्याः पञ्चमकक्षमष्टमिति रित्येकान्वयः पुंसुते ।  
द्वन्द्वाद्वन्द्वयुगं भनोब्धय इतोऽष्टौ पञ्चकक्षं शरक्षोण्यः सप्तगुणाः शराभवि-  
धवो मातुः सपिण्डाः कुले ॥ कुलद्वयस्य कन्यकायुतामिथः सपिण्डकाः । हि  
मांशुद्वयधरादृशो विवाहकर्मवर्जिताः' इति । एतच्च सर्ववर्णसाधारणम् । सर्वत्र  
सापिण्ड्यसद्भावादिति विज्ञानेश्वरोक्तेः । 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमातृतः पितृतः  
क्रमात् । सपिण्डता निर्वर्तत सर्ववर्णेष्वयं विधिः' इति हरनाथधृतदेवलवच-  
नाच्च ॥ सम्बन्धतत्त्वे सुमन्तुः 'पितृष्वसृसुतां मातृष्वसृसुतां मातुलसुतां मातृ  
सगोत्रां समानार्षेयीं विवाह्य चान्द्रायणं चरेत्परित्यज्यैनां मातृवद्विभृयात्'  
इतिदिक् । ऋषेरिदमार्षं प्रवरः । गोत्रं प्रसिद्धम् । समाने आर्षे गोत्रे यस्य त-  
स्माज्जाता या न भवति ताम् ॥ अथ संक्षेपेण गोत्रप्रवरनि-  
र्णयः । तौ च भिन्नौ निषेधे निमित्तम् । 'सगोत्राय दुहितरं  
न प्रयच्छेत्' इति आपस्तम्बोक्तेः । 'असमानप्रवरैर्विवा-  
हः' इति गौतमोक्तेश्च । तत्र गोत्रलक्षणमाह प्रवरपञ्जर्या बौधायनः 'वि-

गोत्रप्रवर-  
निर्णयः



श्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः।अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः ।  
सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रम् ' इति । यद्यपि केवलभार्गवे-  
ष्वार्ष्टिषेणादिषुकेवलाङ्गिरसेषुच हरितादिषुच नैतत् भृग्वङ्गिरसोरुक्तेष्वनन्त-  
र्गतेः ॥ तथाप्यत्रेष्टापत्तिरेवेति केचित् । अतएव स्मृत्यर्थसारे। प्रवरैक्यादेवात्रा  
विवाह उक्तः ॥ यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम् । तेषां सप्तर्षित्वेन  
तदपत्यत्वाभावात् ॥ तथापि तत्पूर्वभाविसिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् ।  
अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद्गोत्रम् । अत्र विशेषोऽस्मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयः  
प्रवरास्तु प्रवर्णानि प्रवराः । कल्पकारा हि वासिष्ठेतिहोतावसिष्ठवदित्यध्वर्यु-  
रित्यादिना येषां प्रवरणमामनन्ति ते प्रवराः । तच्च वरणं यद्यपि कचिदृश्य-  
ते । तथापि पूर्ववदृषिभेदो द्रष्टव्यः । अन्यथा तेषां व्यार्षे ये एकार्षे इत्यादि  
निर्देशानुपपत्तेः ॥ अन्ये तु तद्गोत्राणां व्यार्षेय इति भेदमाहुरितिदिक् ॥ त-  
त्वंतु गोत्रभूतस्य पितृपितामहप्रपितामहा एव प्रवराः । 'पितैवाग्रेथ पुत्रोथ  
पौत्रः' इतिज्ञातपथश्रुतेः । 'परं परम्प्रथमम्' इत्याश्वलायनोक्तेश्च । अत्रविशे-  
षमाह बौधायनः 'एक एव ऋषिवर्यात्प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्व  
मन्यत्र भृग्वङ्गिरसां गणात् ' इति ॥ स्मृत्यर्थसारे ' प्रीयमाणा तया वापि  
सत्तया वानुवर्तनम् । एकस्य दृश्वते यत्र तद्गोत्रं तस्य कथ्यते' । भृग्वङ्गि-  
रोगणेषु तु माधवीये स्मृत्यन्तरे 'पञ्चार्षे त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः  
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेव शेषेष्वेकोपि वारयेत्' । शेषगोत्रेषु एकोपि समानः प्रवरोवि-  
वाहं वारयेदित्यर्थः । बौधायनोपि 'भृग्वङ्गिरसावधिकृत्य द्व्यार्षेयसन्निपाते  
विवाहस्त्र्यार्षेयसन्निपाते विवाहः पञ्चार्षेयाणाम् ' इति । भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि  
जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादेवावि-  
वाहइतिदिक् ॥ अथ गोत्राणि प्रवराश्चोच्यन्ते ॥ तत्र बौधायनः 'गोत्रा-  
णांतु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात्' ।  
तत्र सप्त भृगवः । वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवा वैन्यः शुनका  
इति । वत्सानां भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वजामदग्न्येति । भार्गवौर्वजामदग्न्ये-



तिवा । भार्गवच्यावनाप्रवानेतिवा ॥ विद्वानां पञ्च भार्गवच्यावनाप्रवानौर्व-  
 बैदेति भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा ॥ एतौ द्वौ जामदग्न्यसंज्ञौ ॥ आर्ष्टिषेणा-  
 नां भार्गवच्यावनाप्रवानार्ष्टिषेणानूपेति । भार्गवार्ष्टिषेणानूपेतिवा । एषां त्रया-  
 णां परस्परमविवाहः ॥ वात्स्यानाम् भार्गवच्यावनाप्रवानेति ॥ वत्सपुरोध-  
 सयोः पञ्च । भार्गवच्यावनाप्रवानवात्सपौरोधसेति ॥ वैजवनिमतिथयोः  
 पञ्च भार्गवच्यावनाप्रवानवैजवनैमतिथेति एते त्रयः क्वचित् । एषामपि  
 पूर्वैरविवाहः अत्र तत्तद्गणस्था ऋषयोन्यश्च विशेषो मत्कृते प्रवरदर्पणे  
 ज्ञेयः ॥ यस्काणाम् भार्गववैतहव्यसावेतसेति ॥ मित्रयुवानाम्  
 भार्गववाध्वश्चदिवोदासेति । भार्गवच्यावनदिवोदासेतिवा वाध्वश्चेत्येको वा ।  
 वैन्यानां भार्गववैन्यपार्थेति । एत एवश्यैताः । शुनकानां शुनकेतिवा  
 गार्त्समदेतिद्वौ वा । भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेतित्रयो वा । वेदविश्वज्योतिषां  
 भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति ॥ शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति । एतौ द्वौ  
 क्वचित् । यस्कादीनां स्वगणं त्यक्त्वा सर्वैर्विवाहः ॥ तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे, य-  
 स्का मित्रयुवा वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः । स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे  
 विवहेयुः परावरैः ' इति । अथाङ्गिरसः । ते गौतमाः भरद्वाजाः केवलाङ्गि-  
 रसश्चेतित्रिधा । अत्रगौतमा दश । आयास्याः । शरद्वन्ताः । कौमण्डाः दीर्घ-  
 तमसः । औशनसः । करेणुपालेयः राहूगणाः । सोमराजकाः । वाम-  
 देवाः बृहदुक्थाश्चेति ॥ तत्रायास्यानाम् आङ्गिरसायास्यगौतमेति शर-  
 द्वन्तानाम् आङ्गिरसगौतमशरद्वन्तेति ॥ कौमण्डानाम् आङ्गिरसौतथ्यकाक्षी-  
 वन्तगौतमकौमण्डेतिवा ॥ आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा ।  
 आङ्गिरसौतथ्यागौतमौशिजकाक्षीवतेतिवा । आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेति  
 त्रयो वा ॥ दीर्घतमसाम् आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति आ-  
 ङ्गिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा ॥ औशनसाम् आङ्गिरसगौतमौशन-  
 सेति त्रयः । करेणुपालानाम् आङ्गिरसगौतमकरेणुपालेति त्रयः ॥ रा-  
 हूगणानाम् आङ्गिरसराहूगणगौतमेति ॥ सोमराजकानाम् आङ्गिरससो-



मराजकगौतमेति ॥ वामदेवानाम् । आङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति ॥ बृहदु  
 कथानाम् । आङ्गिरसबार्हदुकथगौतमेति । आङ्गिरसवामदेवबार्हदुकथे-  
 तिवा । उतथ्यानाम् आङ्गिरसौतथ्यगौतमेति । औशिजानामाङ्गिरसौशिजका-  
 क्षीवतेत्यापस्तम्बः । आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति कात्यायनः  
 एतौ द्वौ कचित् ॥ रघुवानाम् । आङ्गिरसराघुवगौतमेतिकेचित् । तत्र  
 मूलं चिन्त्यम् । एषांसर्वेषाङ्गौतमानामविवाहः । अथ भरद्वाजाः ।  
 ते चत्वारः । भरद्वाजा गर्गा ऋक्षाः कपय इति ॥ भरद्वाजा  
 नामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः । गर्गाणामाङ्गिरसबार्हस्पत्य  
 भारद्वाजसैन्यगार्ग्येति पञ्च । आङ्गिरससैन्यगार्ग्येतिवा ॥ अन्त्ययो-  
 र्व्यत्ययो वा ॥ भारद्वाजगार्ग्यसैन्येतिवा । गर्गभेदानाम् । आङ्गिरसतैत्तिर-  
 कापिभुवेति । ऋक्षाणांकपिलानांचाङ्गिरसबार्हस्पत्यभरद्वाजवान्दनमात-  
 वचसेति पञ्च । आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा ॥ कपिलानामा-  
 ङ्गिरसामहीयवोऋक्षयसेति । आत्मभुवाम् आङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यम-  
 न्त्रवरात्मभुवेति पञ्च । अयं कचित् । भरद्वाजानां सर्वेषामविवाहः ॥ अथ  
 केवलाङ्गिरसः ॥ हारितानां आङ्गिरसांबरीषयौवनाश्वेति । आद्योमान्धा-  
 तावा । कुत्सानाम् । आङ्गिरसमान्धातृकौत्सेति । कण्वानामाङ्गिरसज-  
 मीढकाण्वेति । आङ्गिरसघोरकाण्वेति वा ॥ रथीतराणामाङ्गिरसवैरूप-  
 राथीतरेति ॥ आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा । अष्टादंष्ट्रपार्षदश्ववैरूपेति वा ।  
 अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । मुद्गलानामाङ्गिरसभाम्यश्वमौद्गल्येति । आद्यस्ता-  
 क्षर्यो वा । आङ्गिरसताविमौद्गल्येति वा । विष्णुवृद्धानामाङ्गिरसपौरुकुत्सत्रा-  
 सदस्यवेति । एषां स्वगणं विहाय सर्वैर्विवाहो भवति । हरितकुत्सयोस्तु न  
 भवति ॥ अथात्रयः ॥ ते चत्वारः । आत्रेयाः । वाङ्मतकाः । गविष्ठिराः ।  
 मुद्गला इति । आद्यानामात्रेयार्चनानसश्यावाश्वेति । वाङ्मतकानां आत्रेया-  
 र्चनानशवाङ्मतकेति ॥ धनंजयानाम् आत्रेयार्चनानशधानञ्जयेति कचित् ॥  
 गविष्ठिराणामात्रेयार्चनानशगविष्ठिरेति । आत्रेयगविष्ठिरपौर्वातिथेति वा ॥



मुद्गलानामात्रेयाचनानशपौर्वातिथेति । वामरथ्यसुमङ्गलवैजवापानामात्रेयार्चनानशातिथेति । आत्रेयार्चनानशगाविष्ठिरेतिवा । सुमङ्गलानाम् अत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति केचित् ॥ अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाम् । आत्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति । अत्रीणांसर्वेषामविवाहः ॥ अथ विश्वामित्राः ॥ ते दश ॥ कुशिकाः । लोहिताः । रौक्षकाः । कामायनाः । कताः । धनंजयाः । अघमर्षणाः । पूरणाः । इन्द्रकौशिका इति । कुशिकानां विश्वामित्रदेवरातौदलेति । लोहितानां विश्वामित्राष्टकलौहितेति । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा । विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा । रौक्षकाणां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेतिवा । कामकायनानां वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति वा । अजानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति । वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति वा ॥ अघमर्षणानां वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति ॥ पूरणानां वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ वा वैश्वामित्रदेवरातपूरणेति वा । इन्द्रकौशिकानां वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेतिद्वौ ॥ धनञ्जयानां विश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानंजयेति । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेतिवा ॥ क्षीकतानां वैश्वामित्रकात्यालेति । एते बोधायनोक्ताः रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति । रेणूनां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति । वेणूनां वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ॥ जह्नुनां वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति ॥ आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति उदवेणूनां वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति । एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः । अन्यैस्त्वन्येपि षड्गुणा उक्ताः । तेऽन्यत्र मत्कृतौ ज्ञेयाः । एषां विश्वामित्राणामविवाहः ॥ अथ कश्यपाः । ते पञ्च । निधुवाः । कश्यपाः । शाण्डिलाः । रैशाः । लौगाक्षयश्च । निधुवाणां काश्यपावत्सारनैधुवेति । काश्यपानां काश्यपावत्सारसितेति ॥ रेभाणां कश्यपावत्सारैभ्येति । शाण्डिलानां काश्यपशाण्डिल्येति । अन्त्यस्थाने देवलो वा, सितो वा । शाण्डिलासितदेवलेति वा । कश्यपासितदेवलेति वा अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । देवलासितेति द्वौ वा ॥ लौगाक्षीन्वक्ष्यामः । एषाङ्कश्यपानामविवाहः ॥ अथ वसिष्ठाः ते पञ्च वसिष्ठाः । कुण्डिनाः ।



उपमन्यवः । पराशराः । जातूकर्ण्यश्चेति । वसिष्ठानां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्व-  
 स्विति । वासिष्ठेत्येको वा । कुण्डिनानां वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति । उपमन्यू-  
 नां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वसव्येति । वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा । आद्ययो-  
 र्व्यत्ययो वा । पराशराणां वासिष्ठशाक्यपाराशर्येति । जातूकर्ण्यानां वासिष्ठात्रि-  
 जातूकर्ण्येति । वासिष्ठानां सर्वेषामविवाहः । अन्त्यस्यात्रिभिश्च । अथागस्त्याः ।  
 ते चत्वारः । इध्मवाहाः । साम्भवाहाः । सोमवाहाः । यज्ञवाहाश्चेति ।  
 आद्यानां आगस्त्यदाढ्यच्युतैध्मवाहेति । आगस्त्येत्येको वा । सोमवा-  
 हानां आगस्त्यदाढ्यच्युतसोमवाहेति ॥ साम्भवाहानां साम्भवाहोन्त्यः । यज्ञ-  
 वाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः । आद्यौ पूर्वोक्तावेव । सारवाहानां तदन्तास्त्रयः  
 दर्भवाहानां तदन्तास्त्रयः । अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति ॥ पूर्ण-  
 मासानां । आगस्त्यपौर्णमासपारणेति ॥ हिमोदकानाम् आगस्त्यहैमचर्चिहैमो-  
 दकेति । पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति ॥ एते षट् कचित् । अग-  
 स्तीनां सर्वेषामविवाहः ॥ अथ द्विगोत्राः । शौङ्गशैशिरीणां । आङ्गिरसबा-  
 र्हस्पत्यभारद्वाजकात्याक्षीलेति पञ्चाकात्याक्षीलयोः स्थाने शौङ्गशैशिरी वा ।  
 आङ्गिरसकात्याक्षीलेति त्रयो वा एषां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः । एवं  
 कपिलानां कतानां च संकृतिपूतिमाषादीनां आङ्गिरसगौरिवीतसांकृत्येति ।  
 शाक्त्यगौरिवीतसाङ्कृत्येति वा एषां स्वगणस्थैर्वसिष्ठैः शौङ्गशैशिरैर्लौगाक्षिभि-  
 श्चाविवाहः । कश्यपैरपीति प्रयोगपारिजाते । लौगाक्षीणां काश्यपा वत्सा-  
 र्वासिष्ठेति । काश्यपावत्सारासितेति वा । एते हर्वसिष्ठा नक्तं कश्यपाः । एषां  
 वसिष्ठैः कश्यपैः संकृताद्यैश्चाविवाहः । देवरातस्य जामदग्न्यैर्विश्वामित्रै-  
 श्चाविवाह इति प्रयोगपारिजाते ॥ तदयुक्तम् । बह्वचश्रुतौ । 'यथैवाङ्गि-  
 रसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् । आङ्गिरसो जन्मनास्याजीगर्तिः श्रुतः कविः' इत्य-  
 ङ्गिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदग्न्यत्वस्मृतेर्बाधात् । तेन प्रत्यक्षश्रुत्या हरिवं-  
 शादिस्मृतेश्च बाधात् । तेन द्वौ देवरातौ । एक आङ्गिरसः श्रुत्युक्तः । अन्यो  
 भार्गवः तयोः कल्पभेदेऽप्याङ्गिरसेन देवरातेन जामदग्न्यैर्भवत्येव विवाहः । भा-



र्गवेण तु नेति तत्त्वम् । धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः । जातूक-  
 र्ण्यानां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः । एवं दत्तक्रीतकृत्रिमस्वयन्दत्तपुत्रिकापु-  
 त्रादीनाम् उत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरा वज्र्या इति प्रवरमञ्जरीनारा-  
 यणवृत्तिप्रयोगपारिजातादयः ॥ अत्र सर्वत्रोपपत्तयः; मूलं च मत्कृते प्र-  
 वरदर्पणे ज्ञेयमिति दिक् ॥ क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसि-  
 द्धान्तः । यद्यपि बहुचर्परिशिष्टे कपिभरद्वाजयोर्विवाह उक्तः । तथापि 'भ-  
 रद्वाजाश्च कपयो गर्गा रौक्षायणा इति । चत्वारोपि भरद्वाजगोत्रैकयान्त्रान्व-  
 युर्मिथः । कपिगर्गभरद्वाजा मिथो रौक्षायणा द्विजाः । नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्प्र-  
 वरैकयाच कुत्रचित्' इति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति प्रवर-  
 मञ्जरी यद्यपीदमुक्तम् । तथापि भृग्वङ्गिरोगणेषु भवत्येव । तथा बहुचर्प-  
 रिशिष्टे बौधायनः । 'एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते ॥ तावत्समान-  
 गोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात्' ॥ माधवीये स्मृत्यन्तरे 'पञ्चानां तु त्रिसामा-  
 न्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत्' इति देशा-  
 चाराच्च ॥ सोप्याभीरदेशे प्रसिद्धः । चतुर्विंशतिमते 'यस्तु देशानुरूपेण कु-  
 लमार्गेण चोद्वहेत् ॥ नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते' इतिदिक् ॥  
 तथाच भृगुः 'यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेपि वा । यो यत्र विहितो ध-  
 र्मस्तं धर्मन विचालयेत्' इति । पुनश्चतुर्विंशतिमते 'यस्मिन् देशे य आ-  
 चारः पारम्पर्यक्रमागतः ॥ वर्णानां किल सर्वेषां सदाचारः स उच्यते' ॥ स्व-  
 गोत्राद्यज्ञाने तु सत्याषाढः । अथाज्ञानबन्धोः पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वे-  
 ति' ॥ 'आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् । दत्त्वात्मानं तु कस्मैचि-  
 त्तद्रोत्रप्रवरो भवेत्' ॥ 'यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जामदग्निजः । विवाहं च  
 न तेनैव गोत्रेण तु समाचरेत्' इति कश्चित् । दिवोदासीयेपि 'स्वगोत्रप्रव-  
 राज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत्' । अथ मातृगोत्रनिर्णयः । शातातपः 'मातु-  
 लस्य सुतामूढा मातृगोत्रान्तथैव चासमानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्'  
 यद्यपि 'सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि । जन्मनाम्नोरविज्ञातेप्युद्वा-



हेदविशङ्कितः' इतिव्यासोक्तेरज्ञातनामत्वेन सगोत्रत्वदोषस्तथापि नेदं कलौ प्रवर्तते ॥ 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा' इतिकलिर्वर्जत्वोक्तेः इदं मातृगोत्रवर्जनं माध्यन्दिनीयानामेव । 'मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामपुत्रा याश्च' इति सत्याषाढोक्तेरिति कश्चिन्महाराष्ट्रकल्पितम् । तन्निर्मूलम् । अन्यथा गुर्जरादेः कातीयस्य कुतो न निषेधः । अतएव प्रवरमञ्जरिकारः 'दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां मातृगोत्रं वर्ज्यम्' इति ॥ यत्तु गुर्जरादीनां माध्यन्दिनीयानामप्याचरणाच्च 'एकस्मिन् प्रवरे तुल्ये मातृगोत्रे वर-स्यच ॥ तमुद्वाहं न कुर्वीत सा कन्या भगिनी स्मृता' इति मातृकुलेप्रवर चिंतनमुक्तम् । तदासुरादिविवाहोदापरमिति दिक् ॥ विस्तरस्तु ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयः । सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे 'इत्थं सगोत्रसं बन्धविवाहविषये स्थिते ॥ 'यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तांकन्यामूढोपगच्छति ।

गुरुतल्पव्रताच्छुध्येद्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् ॥ भोगतस्तां परि  
सगोत्रविवाहे  
प्रायश्चित्तम्  
त्यज पालयेज्जननीमिव । अज्ञानादैन्दवैः शुद्धयेन्निभिर्गर्भस्तु  
कश्यपः' । एवं सापिण्डयेपि । 'सपिण्डापत्यदारेषु प्राण

त्यागो विधीयते' इति बृहद्यमोक्तेः । तिथितत्त्वे बौधायनः । 'सपिण्डां स  
गोत्रां चेदमत्योपयच्छेन्मातृवदेनां विभृयात्' ॥ कन्याविवा

कन्याविवा  
हकालः  
हकाल उक्तो ज्योतिर्निबन्धे 'षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या  
वर्षद्वयं यतः । सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथाऽनलः' ।

राजमार्त्तण्डः 'अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत् । तस्माद्गर्भा  
न्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता' ॥ 'मासत्रयाद्धर्मयुग्मवर्षे युग्मेपि मासत्र  
यमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयः स्त्रीजनिजन्ममासा  
त्' । पराशरमाधवीये तु 'जन्मतो गर्भाधानाद्वा पञ्चमाब्दात् परं शुभम् ।

१-व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम् । पयोधरैस्तु गंधर्वा रजसाम्निः  
प्रकीर्तितः ॥ तस्मादव्यञ्जनेपेतामरजामपयोधराम् । अभुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका तु  
प्रशस्यते ॥ इति तु गृह्यसंग्रहे उक्तम् ॥ 'तुरीयस्ते मनुष्यजाः इति' श्रुतिविरुद्धम् ॥



कुमारीवरणंदानं मेखलाबन्धनं तथा' इत्युक्तम् । सव्वन्धतत्त्वे यमः 'कन्या  
द्वादशवर्षाणि या प्रदत्ता वसेद्बृहे । ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरये-  
त्स्वयम्' ॥ भारते 'त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्या विन्देत नग्निकाम् । दशवर्षो  
ऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वरः । अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता स-  
कृत्' ॥ तत्रैव 'सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः । कन्यायाः शस्यते  
राजन्नन्यथा धर्मगर्हितः' । राजमार्तण्डः 'राहुग्रस्ते तथा शुद्धे पितृणां  
प्राणसंशये । अतिप्रौढा च या कन्या चन्द्रलग्नबलेन तु' । चकारादतिबाला ।  
प्राणसंशय इत्युक्तेः । मनुः 'त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां कृत्वा द्वादशवार्षिकीम् ।  
द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षावा धर्मे सीदति सत्वरः' । यद्यपि 'विवाहस्त्वष्टवर्षायाः क-  
न्यायाः शस्यते बुधैः' इतिसंवर्तोक्तेः 'अतऊर्ध्वं रजस्वला' इत्यादेश्व दशव-  
षादूर्ध्वं विवाहो निषिद्धः । तथापि दातुरभावे द्वादशषोडशाब्दे ज्ञेये 'त्रीणि  
वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्' इति पराशरमाधवीये बोधायनो  
क्तेश्च ॥ मनुः—'स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि पारिवर्जयेत् । हीनक्रियं निःपु-  
रुषन्निश्छन्दोरोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्चित्रिकुष्ठिकुलानि च ।  
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषण  
नामिकाम्' । यमः 'तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्' । तथा  
मूलजादीनां फलं प्रागुक्तम् । तथा वर्णवश्यग्रहमैत्र्यादिघटितविचारो ज्यो-  
तिर्विद्भ्यो ज्ञेयः । विस्तरात्तु नोच्यते । अथ गुर्वर्कबलं ज्यो-  
तिर्निबन्धे गर्गः 'स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम् ॥  
तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठं इति गर्गेण भाषितम् । जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया  
शुभदो गुरुः । विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः' ॥ देवलः 'नष्टा-  
त्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधवा सुभगा विपुत्रा । स्वामि  
प्रियाविगतपुत्रधवा धनाढ्यावन्ध्याभवेत्सुरगुरौक्रमशोभिजन्मा' ॥ बृहस्पतिः  
'झषचापकुलीरस्थो जीवोप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपन-  
यादिषु' ॥ लल्लुः 'द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टमे तृतीयेच । प्राप्ते पाणि-



ग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति' ॥ गर्गः 'सर्वत्रापि शुभं दद्याद्वादशाब्दात् परं गुरुः । पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥ सप्तमात् पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि । अशुभोपि शुभं दद्याच्छुभक्रक्षेषु किं पुनः । रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत् । अष्टमेपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् । अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता । कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतोबला ॥ अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ॥ दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्व

ला' ॥ अथ बृहस्पतिशान्तिः ॥ शौनकः— 'कन्यकोद्वा-  
हकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते ॥ ब्राह्मणस्योपनयने गुरोर्वि-  
धिरुदाहृतः ॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ईशान्यां धवलं कुम्भं  
धान्योपरि निधाय च ॥ दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान् ॥ मांसी  
गुडूच्यपामार्गी विडंगी शंखिनी वचा ॥ सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिशता-  
वरी ॥ बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च ॥ कृत्वाज्यभागपर्यन्तं स्व-  
शाखोक्तविधानतः ॥ ग्रहोक्तमण्डलेभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ॥ देवपूजोत्तरे  
काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम् ॥ अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम् ॥  
यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः ॥ अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं  
समापयेत् ॥ पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् ॥ कुम्भाभिमन्त्रणोक्तै-  
श्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः ॥ प्रतिमाकुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत् ॥ ब्राह्म-

जान् भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः' ॥ इति बृहस्पतिशा-  
सिंहस्थगुरौ न्तिः ॥ शौनकः— 'गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारणे  
गुरौ ॥ नष्टे शशिनि शुके वा बाले वृद्धेथ वा गुरौ ॥ पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शरद्व  
धिकमासके ॥ केतूद्रमे निरंशेर्के सिंहस्थेमरमन्त्रिणि ॥ विवाहव्रतयात्रादि-  
पुरहर्म्यगृहादिकम् ॥ क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत्' ॥ मदनपारि-  
जाते ज्योतिःसागरे— 'बाले शुके वृद्धे शुके वृद्धे जीवे नष्टे जीवे ॥ बाले

१—अप्राप्तरजसा गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी । अव्यञ्जिता भवेत्कन्या कुचहीना तु  
नग्निका' इति गृह्यसंग्रहोक्तमपि बोध्यम् ॥



जीवेजीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये ॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येतिचा  
 रणे ॥ वापीकूपविवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ सिंहस्थं मकरस्थञ्च  
 गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥ लल्लुः—‘अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैव चेत् पु  
 नः ॥ लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः’ ॥ सिंहस्थगुरोरपवादमाह प-  
 राशरः—‘गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहःसिंहगे गुरौ ॥ मघास्थे सर्वदेशेषु तथा  
 मीनगते रवौ’ ॥ वसिष्ठोपि—‘विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु ॥  
 भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्यादक्षिणे तथा ॥ विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थेज्ये  
 न दुष्यति’ ॥ कन्यादातृक्रममाह याज्ञवल्क्यः—‘पिता पिता-  
 कन्यादातारः महो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ॥ कन्याप्रदः पूर्वनाशे  
 प्रकृतिस्थः परः परः॥अप्रयच्छन् समामोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ ॥ गम्यं त्वभा  
 वे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम्’ ॥ भ्रातृणां संस्कृतानामेवाधिकारमाह स  
 ष्व याज्ञवल्क्यः—‘असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः ॥ भ-  
 गिन्यश्च निजादंशादृत्वांशं तु तुरीयकम्’ ॥ अत्र चकारेण पूर्वसंस्कृतै-  
 रित्यस्यानुवृत्तेर्विवाहपर्याप्तद्वयदाने स्वांशसमांशचतुर्थभागदाने वा संस्कृतग्र  
 हणं व्यर्थं स्यात्, अतः कर्तृनियमोयम् । तेनानुपनीतभ्रातृमात्रादिसत्त्वे मा-  
 त्रादेरेवाधिकारो न भ्रातुरित्यक्तं संबन्धतत्त्वादौ । कन्यास्वयं वरे मातुर्दातृत्वे  
 च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम् । तत्र च स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वा  
 ऽन्यब्राह्मणद्वारा कारयेदिति प्रयोगपारिजाते । वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे  
 स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् न माता । ‘पुत्रेषु विद्यामानेषु नान्यं वै का-  
 कारयेत्त्वधाम्’ इति निषेधात् । उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति  
 पृथ्वीचन्द्रोदये । माधवीयेऽपरार्के च नारदः ‘पिता दद्यात्स्वयं  
 कन्यां भ्राता वानुमते पितुः ॥ मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्त-  
 था ॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते ॥ तस्यामप्रकृतिस्थायां क-

१ इदं तु ‘लिङ्गविशेषनिर्देशात्पुंयुक्तमैतिशायनः’ इति पूर्वपक्षे ‘जातिं तु बादरायणोऽ  
 विशेषात् । तस्मात्कृमपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्’ इति सिद्धान्तसूत्रविरुद्धम् ॥



न्यां दद्युः स्वजातयः॥ सकुल्यः पितृपक्षीयो बान्धवो मातृवंशजः'॥ मदनपा-  
 रिजाते कात्यायनः—'स्वयमेवौरसीं दद्यात्पित्रभावे स्वबान्धवः॥ मातामह-  
 स्ततो न्यां हि माता वा धर्मजां सुताम्'॥ ततो न्यामौरसीभिन्नां धर्मजानियोगात्  
 क्षेत्रजां मातामहो माता मातुलो वा दद्यात् । तेनौरसीदाने पितृबन्धुषु सत्सु  
 मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिं विना॥ अस्यापवादस्तत्रैव 'दीर्घप्रवासयुक्ते-  
 षु पौगण्डेषु च बन्धुषु॥ माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम्'॥ मनुः—'यदा  
 तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत्'॥ परकीयकन्यादाने विशेषो मद-  
 नरत्ने स्कान्दे—'आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम्॥ धर्मेण वि-  
 धिना दानमसगोत्रेपि युज्यते'॥ अत्र प्रकृतिग्रहणादप्रकृतिस्थेन कृतमकृतमे-  
 व । 'स्वतन्त्रो यदि तत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्याद-  
 स्वातन्त्र्यस्य हेतुतः' इत्यपराकै नारदोक्तेः । यदि तु सप्तपदीविवाहहोमादि-  
 प्रधानं जातं तदङ्गवैकल्येपि नावृत्तिर्विवाहस्य । गौडा अप्येवमाहुः । तत्रैव  
 मरीचिः—'गौरीं ददन्नाकपृष्ठे वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् ॥ कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं  
 रौरवं तु रजस्वलाम्'॥ अथ मासनिर्णयः ॥ तत्र जन्ममासे  
 विवाहे मास- विशेषः प्रागुक्तः । ज्योतिःप्रकाशे व्यासः—'माघफाल्गुनवै-  
 निर्णयः शाखे यद्यूढा मार्गशीर्षके॥ ज्येष्ठे वाषाढमासे च सुभगा तिक्तसं-  
 युता ॥ श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्रपदे तथा॥ चैत्राश्वयुक्कार्तिकेषु यति  
 वैधव्यतां लघु '॥ नारदः—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः ॥  
 कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे'॥ वसिष्ठः—'पौषेपि कुर्यान्मकर  
 स्थितेकै चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात् ॥ प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वद-  
 न्ति गर्गा मिथुनस्थितेकै'॥ आचार्यचूडामणौ ज्योतिर्गर्गराजमार्तण्डौ—'मा  
 ङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च ॥ दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जि-  
 ताः'॥ आपस्तम्बः—'सर्वकृतवोविवाहस्य। शैशिरौ मासौ परिहाय्योत्तमं च नैदा  
 यम्'। अ. माघफाल्गुनाषाढवर्जा नव मासा मुख्यः कालः' इति सुदर्शनभाष्ये-  
 षड्विलायां ब्रह्मतीर्थैश्चोक्तम् । बौधायनसूत्रेपि—'सर्वमासा विवाहस्य



शुचितपस्तस्यवर्जम्' इत्येके तेन पूर्वोत्तरौ शिशिरसवन्धिनौ मासौ पौष  
 चैत्रौ विहाय इति॥ निर्णयामृतव्याख्यानं मौख्यकृतमित्युपेक्ष्यम् । निशि चे  
 त्सर्वेषु द्वादशस्वपि मासेषूद्वहेदितिकालादर्शः। येतु ज्योतिषे माघादिविधयस्ते  
 गृह्यसूत्राणां द्विजपरत्वेन प्राबल्याच्छूद्रादिपराः । ज्योतिषे—'वात्स्यो व-  
 र्षमनूनमिच्छति तथा रैभ्योयनं चोत्तरं श्रीवासन्तमृतुं विहाय मुनयो माण्ड-  
 व्यशिष्या जगुः ॥ चैत्रं प्रोज्झ्य पराशरः परिणयेत्पौषं च दौर्भाग्यदं ह्याषा-  
 दादिचतुष्टयं न निनदं कैश्चित् प्रदिष्टं बुधैः' ॥ चण्डेस्वरः—' मार्गे मासि  
 तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् ॥ ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोस्तु यत्नेन परिवर्जयेत् ॥  
 कृतिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत् ॥ उत्सवादिषु कार्येषु  
 दिनानि दश वर्जयेत् ' ॥ रत्नकोशे—' जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्म-  
 मासे शुभं त्यजेत् ॥ ज्येष्ठे मास्याद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि ' ॥  
 पराशरः—' अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि ॥ व्यत्ययो वा त-  
 योस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः ' ॥ मिहिरः—' ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया वि-  
 वाहो न प्रशस्यते ॥ तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते ॥ द्वौ ज्ये-  
 ष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्येष्ठं शुभावहम् ॥ ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्व-  
 संमतम् ' ॥ यत्तु ' सार्वकालमेकं विवाहम् ' इति, तदासुरादिविवाहविषयम् ।  
 ' धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु ' इति गृह्यपरिशिष्टात् ॥ रत्नमा-  
 लायामप्येवं ॥ तेनासुरादयो माघचैत्रादिनिषिद्धकालेष्वपि भवन्ति मासाः  
 सौराः । ' सौरो मासो विवाहादौ ' इत्युक्तेः । ' ज्ञषो न निन्द्यो यदि फा-  
 ल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः ' इति त्वपवादः ॥ अथ दशदोषाः ।  
 व्यवहारोच्चये—' वेधश्च लज्जा च तथैव पातः खर्जूरवेधो दशयोगचक्रम् ॥  
 यतिश्च जामित्रमुपग्रहश्च बाणाख्यवज्रे च दशैव दोषाः ' ॥ एषां लक्षणं ज्यो-  
 तिषे ज्ञेयम् ॥ अतिचारगे गुरौ तु वसिष्ठः—' अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तर  
 म् ॥ विवाहादिषु कार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ' ॥ रत्नमालायाम्—' एक  
 पञ्चनवयुग्मषड्दशत्रीणिसप्तचतुरष्टलाभगः ॥ द्वादशाजवृषभादिराशितो घात



चन्द्र इति कीर्तितो बुधैः । ॥ नारदः—‘भूवाणनन्दहस्ताश्च रसदिग्वह्निशैल-  
जाः ॥ वेदा वसुशिवादित्या घातचन्द्रो यथाक्रमम् ॥ यात्रायां युद्धकार्येषु  
घातचन्द्रं विवर्जयेत् ॥ विवाहे सर्वमाङ्गल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥ घातच-  
न्द्रो नैव चिन्त्य इति पाराशरोब्रवीत् ’ ज्योतिर्निबन्धे—विवाहचौलव्रत-  
बन्धयज्ञे पट्टाभिषेके च तथैव राज्ञाम् ॥ सीमन्तयात्रासु तथैव जाते नो  
चिन्तनीयः खलु घातचन्द्रः’ ॥ नारदः—‘अकालजा भवेयुश्चेद्विद्युन्नीहारवृ-  
ष्टयः ॥ प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापापाध्वनयो यदि ॥ दोषाय मङ्गले नूनं न दोषा-  
यैव कालजाः’ ॥ अकालवृष्टिस्वरूपमाह लल्लः—‘पौषादिचतुरो मासाःप्रो-  
क्तावृष्टिरकालजा’इति ॥ शार्ङ्गधरः—‘निर्घाते क्षितिचलने ग्रहयुद्धे रा-  
हुदर्शने चैव ॥ आपञ्चदिनात्कन्या परिणीता नाशमुपयाति ॥ उल्कापाते-  
न्द्रचापप्रबलघनरजोधूमनिर्घातविद्युद्वाष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्याज्य-  
मेवैकरात्रम् ॥ दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनोभ्रान्तबुद्धौ चौले  
मौञ्जीनिबन्धे परिणयनविधौ सर्वदात्याज्यमेव’ । ज्योतिःप्रकाशे—अर्वाक्षो  
दशनाढ्यःसंक्रान्तेःपुण्यदाःपरतः ॥ उपनयनव्रतयात्रापरिणयनादौ विवर्ज्या-  
स्ताः’ ॥ गर्गः—‘दिग्दाहे दिनमेकं च गृहे सप्तदिनानि तु ॥ भूकम्पे च  
समुत्पन्ने व्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च ॥  
वज्रपाते चैकदिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ दर्शनादर्शनाद्राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्य-  
जेत् ॥ यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत्’ ॥ अस्यापवादोऽद्भुतसागरे—  
‘अथ दिवसत्रयमध्येमृदु पानीयं यदा भवति ॥ उत्पातदोषशमनं तदैव संप्राहुरा-  
चार्याः’ ॥ संबन्धतत्त्वे—‘भूकम्पादेर्न दोषोस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते तति’ ॥ अथापा-

रिहार्ये कन्यावैधव्ययोगे विशेष उच्यते मार्कण्डेयपुराणे—  
दुष्टयोगे कु-  
म्भविवाहः ‘बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः ॥ कृत्वा लग्नं ततःप-

श्वात्कन्योद्वाह्येति चापरे’ ॥ अत्र पुनर्दोषाभाव उक्तो विधानस्व-  
ण्डे—‘स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमाविष्णुरूपिणी ॥ तथा सह विवाहे तु पुनर्भू-  
त्वं न जायते’ ॥ सूर्यारुणसंवादे—‘विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते ॥



विवाहोक्ते च तांकन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥ सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः ॥ कुङ्कुमालंकृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे ॥ ततःकुम्भं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये ॥ ततोभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः' ॥ कुम्भप्रार्थना तत्रैव'वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय ॥ पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः ॥ ततोऽलंकारवस्त्राढ्यां वराय प्रतिपादयेत्' ॥ इति कुम्भविवाहः ॥ मूर्तिदानमपि तत्रैवोक्तम् ॥ 'ब्राह्मणं साधुमामन्य संपूज्य विविधार्षणैः ॥ तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ॥ शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तभक्त्याथ वा पुनः ॥ निर्मितां रुचिरां शंखगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥ दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम् ॥ सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥ यन्मया प्राचि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम् ॥ विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥ प्राप्यमानं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् ॥ वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय शुभलब्धये ॥ बहुसौभाग्यलब्धये च महाविष्णोरिमां तनुम् ॥ सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज ॥ अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं प्रजपेदिति ॥ एवमस्त्विति तस्योक्तिं गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं दाता मृगीदृशः' ॥ अन्येष्वश्वत्थविवाहवृक्षसेच-

प्रतिकूलादि

नादयस्तत्रैव ज्ञेयाः । विस्तरभयान्नोच्यते ॥ अथ प्रतिकूलादि ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—'कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित् ॥ तदा न मङ्गलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात्' ॥ ज्योतिर्मैधातिथिः—'वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेऽप्यथ कन्यकायाः ॥ मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः' ॥ मङ्गलं विवाहः । स्मृतिचन्द्रिकायाम्—'कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्मर्त्यस्य गोत्रिणः ॥ तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम्' ॥ भृगुः—'वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः ॥ तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदो यतः' ॥ शौनकः—'वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः ॥ एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही ॥ पितृव्यस्त्री-



सुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् ॥  
 अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत् ॥ माण्डव्यः—‘वाग्दानानन्तरं मा  
 ता पिता भ्राता विपद्यते ॥ विवाहो नैव कर्तव्यः स्ववंशस्थितिमिच्छता’ ॥  
 संकटे तु मेधातिथिः—‘वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः ॥ त  
 दा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत्’ ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—‘पितुरब्दम  
 शौचं स्यात्तदर्थं मातुरेव च ॥ मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्थं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अ  
 न्येषां तु सपिण्डानामाशौचं मासमीरितं ॥ तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लयं  
 विधीयते’ ॥ ज्योतिःप्रकाशे—‘प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परः ॥  
 शान्तिं विधाय गां दत्वा वाग्दानादि चरेत् पुनः’ ॥ शान्तिं विनायकशान्तिम् ।  
 तथा च मेधातिथिः—‘संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना ॥ शान्ति-  
 रुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्’ इति ॥ ‘प्रतिकूले न कर्तव्यो ग  
 च्छेद्यावदतुत्रयम् ॥ प्रतिकूलेपि कर्तव्यमित्याहुर्बहुविष्टवे ॥ प्रतिकूले सपि  
 ण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत्’ ॥ ज्योतिःसारे—‘दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे चपित्रोर्वा  
 प्राणसंशये ॥ प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते’ ॥ मेधातिथिः—  
 ‘पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम् ॥ प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डनमु  
 ण्डने ॥ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् ॥ आचतुर्थं ततः पुंसि प  
 ञ्चमे शुभदं भवेत्’ ॥ अथ रजोदोषे निर्णयः । माधवीये—  
 रजोदोषः ‘प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला ॥ निवृत्तिस्त-  
 स्य कर्तव्या सहत्वश्रुतिचोदनात्’ ॥ आरम्भात् नान्दीश्राद्धात् । ‘नान्दीमुखं  
 विवाहादौ’ इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः । मेधातिथिः—‘चौले च व्रत-  
 बन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि ॥ भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥  
 वधूवरान्यतमर्योर्जननी चेद्रजस्वला ॥ तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनु  
 रब्रवीत्’ ॥ वृद्धमनुः—‘विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ॥ तदा न  
 मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः’ ॥ गर्गः—‘यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता  
 यदि रजस्वला ॥ तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः’ ॥ नान्दीश्राद्धो-



त्तरं रजोदोषे तु कपर्दिकारिकासु 'सूतिकोदक्ययोः शुद्धयै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् ॥ हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् ॥ प्रत्यृचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत् ' इति सूतकादिसंकटे तु—कुष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा पयस्विनीं गां च दत्वा विवाहादि कुर्यात् इति च प्रागुक्तम्।  
 एकत्रमङ्गलम्

अथैकक्रियानिर्णयः । ज्योतिर्निबन्धे वृद्धमनुः—'एकमातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः ॥ न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ' ॥ एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं मातृभेदाभावात् । नारदः—'पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रिविवाहो न ऋतुत्रये ॥ न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मण्डनादपि मुण्डनं ॥ वराहः—'विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि ॥ असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ' ॥ मदनरत्ने वसिष्ठः—'न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् ॥ न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गात्रैकतायां यदि नाब्दभेदः ॥ एकोदरभातृविवाहकृत्यं स्वसुर्न पाणिग्रहणं विधेयम्। षण्मासमध्ये मुनयः समूचुर्न मण्डनं मुण्डनतोपिकार्यम्' एतदपवादस्तत्रैव । 'ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम्। तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते'। सारावल्याम्—'फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने ॥ भेदादब्दस्य कुर्वीतनर्तुत्रयविलंघनम्' ॥ संहिताप्रदीपे—ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुःसमार्धं ॥ अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं च वधूः प्रवेश्या स्वगृहं च नादौ' मदनरत्ने वसिष्ठः—'द्विशोभनं त्वेकगृहेपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु ॥ आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेथवाचार्यविभेदतो वा ॥ एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत् ॥ भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोब्रवीत्' ॥ ज्योतिर्निबन्धे कात्यायनः—'कुले ऋतुत्रयादवाङ् मुण्डनान्न तु मण्डनम् ॥ प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलयत्रम् ॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु ॥ लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः ॥ मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्ग



लम् ॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम् ॥ मौञ्जी चोभयतः कार्या  
यतो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥ अभिन्नवत्सरेपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत् ॥ अभेदे तु  
विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे' ॥ संकटे तु कपर्दिकारिकासु वराहमिहि-  
रश्च'उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्र्यन्तरस्योद्बहनं कदाचित् ॥ यावच्चतुर्थं  
दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्बहनं विदध्यात्' ॥ कश्यपः— 'मौञ्जीबन्धस्त-  
थोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेपि वा ॥ पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत विभक्तानां न दोषकृत्' ॥  
ज्योतिर्निबन्धे— 'विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात् ॥  
वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात्' ॥ तथा— 'विवा-  
हमध्ये यदि चेत्क्षयाहस्तत्र स्वमुख्याः पितरो न यान्ति ॥ वृत्ते विवाहे परतस्तु  
कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्नैर्दूषयन्ति' ॥ 'स्वधाभिः' इति श्रुतेश्च ॥ मासिकविषये  
कालहेमाद्रौ शाक्यायने— 'प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा ॥ अ-  
पकृष्यापि कुर्वीत कर्तुर्नान्दीमुखं द्विजः' ॥ वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाह तत्रैवो-  
ज्ञानाः— 'वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् ॥ स श्राद्धी नरके घोरे  
पितृभिः सह मज्जति' इति ॥ मेधातिथिः— 'प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्यु-  
दयक्रियाम् ॥ आचतुर्थे ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्' ॥ स्मृत्यन्तरे—  
'सपिण्डीकरणादवर्गापकृष्यकृतान्यपि ॥ पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्धुत्तरनिषेधनात्' ॥  
स्मृतिसारावल्याम्— 'भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृष्वसृयुगे तथा ॥ एकस्मिन्म-  
ण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम्' ॥ सोदरविषयमेतत् ॥ यमः— 'एकोदर-  
प्रसूतानामेकस्मिन् वासरे पुनः ॥ विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम्' ॥  
गार्ग्यः— 'भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृष्वसृयुगे तथा ॥ न कुर्यान्मङ्गलं किञ्चिदेकस्मि-  
न्मण्डपेहनि ॥ एकस्मिन्वासरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः ॥ क्षौरं चैव विवाहं  
च मौञ्जीबन्धनमेव च' ॥ ज्योतिर्विवरणे— 'एकोदरयो रेकदिनोद्बहने भवेन्ना-  
शः ॥ नद्यन्तर एकदिने केप्याहुः संकटे शुभम् ॥ ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य

१ 'चौलात्प्राक् परतश्च' इति टीका । २—'दूषयेत्ताम्' इत्यपि पाठः । ३—वृद्ध्युत्तरं तु  
प्रेतकर्माणि लुप्यन्ते । मनःसमाधानाय तु रुद्रैकादशिनीपूजादिकमाचरन्ति इति टीका ॥



नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात् ॥ नारीविवाहात्तदहेपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमा-  
 दुरार्याः' ॥ भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह मेधातिथिः 'पृथङ्मातृ-  
 जयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे ॥ एकस्मिन्मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा ॥  
 पुष्पपट्टिकयोः कार्यदर्शनं न शिरस्थयोः ॥ भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी  
 भवेत्' ॥ यमयोस्तु विशेषः । भट्टकारिकायाम्— 'एकस्मिन्वत्सरे चै-  
 कवासरे मण्डपे तथा ॥ कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भात्रोर्यमलजातयोः' ॥ ज्यो-  
 तिर्निबन्धे नारदः—'प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् ॥ नैवैकज-  
 न्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥ नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् ॥  
 नैकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोरेकजन्ययोः ॥ न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदा-  
 चन' इति ॥ कन्याया रजोदर्शने तु अपरार्के संवर्तः 'माता  
 चैव पिता चैव ज्येष्ठभाता तथैव च ॥ त्रयस्ते नरकं यान्ति  
 दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्' ॥ हारीतः— 'पितुर्गेहे तु या क-  
 न्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥ सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः' ॥  
 देवलात्रिकश्रुपाः पूर्वार्धं तदेव । 'भूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली  
 स्मृता ॥ यस्तां समुद्बहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अश्राद्धेयमपांक्तेयं  
 तं विद्यावृषलीपतिम्' ॥ माधवीये बौधायनः—'त्रीणि वर्षाण्युतुमती काङ्क्षेत  
 पितृशासनम्' ॥ विष्णुः—'ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयं वरम्' ॥ अत्र  
 वरस्य दोषाभावमाह यमः—'कन्या द्वादश वर्षाणि याप्रदत्ता वसेद्गृहे ॥ भू-  
 णहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयं ॥ एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत्क-  
 दाचन ॥ नतु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायंभुवोब्रवीत्' ॥ मनुः—'अलंकारं  
 नाददीत पितृदत्तं स्वयंवरे ॥ पितृदत्तं मातृदत्तं स्तेयी स्याद्यदि संहरेत्' ॥ वरं  
 प्रत्याह—'पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ॥ सहि स्वाम्यादति-  
 क्रामेदृतूनां प्रतिबोधनात्' ॥ अत्र प्रायश्चित्तमुक्तमाश्वलायनेन— 'कन्यामृतु-

१—उभाभ्यां भगिनीभ्यां शिरःस्थपुष्पपट्टिकादर्शनं न कार्यम् । एतावता परस्परवर-  
 शिरःस्थपुष्पपट्टिकादर्शनं परस्परकन्ययोर्निषिद्धमिति लभ्यते ॥ इति टीका ॥



मतीं शुद्धां कृतवानिष्कृतिमात्मनः । शुद्धिं च कारयित्वा तामुद्वहेदनुशंस्यधीः ॥  
 पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः ॥ दानावधि गृहे यत्नात् पाल-  
 येच्च रजोवतीम् ॥ दद्यात्तद्वतुसंख्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि ॥ दातव्यैका-  
 पि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥ दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिःस्वः सदाक्षि-  
 णम् ॥ तस्यातीततुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥ उपोष्य त्रिदिनं कन्यां रात्रौ  
 पीत्वा गवां पयः ॥ अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् ॥ तामुद्वहन्वर-  
 श्वापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद्विजः ' इति ॥ मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः— 'वि-  
 वाहे वितते यज्ञे होमकाल उपस्थिते ॥ कन्यामृतमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति  
 याज्ञिकाः ॥ स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि ॥ युञ्जानामाहु-  
 तिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ' ॥ बौधायनसूत्रम्— 'अथ यदि कन्योपसाद्य-  
 माना चोह्यमाना वा रजस्वला स्यात्तामनुमन्त्रयेत् । पुमांसौ मित्रावरुणौ  
 पुमांसावश्विनावुभौ ॥ पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमांसं च दधात्वियम् ' इति ॥  
 अथ द्वादशरात्रमलंकृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथ शुद्धां कृत्वा विवहेत् । अत्र गान्ध-

विवाहभेदाः  
 वाद्यष्टौ विवाहास्तव्यवस्थां चाकरे ज्ञेया । मनुः— 'षडानुपू-  
 र्ण्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् ॥ विदूश्शूद्रयोस्तु तानेव-

विद्याद्धर्म्यनिराक्षसान् ' ॥ चतुरः—आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचान् तान् रा-  
 क्षसवर्ज्यान् वैश्यशूद्रयोः स एव—' आसुरं वैश्यशूद्रयोः ' ॥ हेमाद्रौ पैठीन-  
 सिः—'राक्षसो वैश्यस्य पैशाचः शूद्रस्य' । प्रचेताः—'पैशाचोसंस्कृतप्रसूतानां  
 प्रतिलोमजानां च ' मनुः—'राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः ' ॥  
 क्षत्रियादेः संकेटे पैशाचमाह माधवीये वत्सः—'सर्वोपायैरसाध्या स्यात्सुक-  
 न्या पुरुषस्य या ॥ चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहःस्थिता' ॥ गान्ध-  
 र्वादिविवाहेष्वप्युदकपूर्वकं दानमाह ॥ तत्रैव यमः—'नोदकेन नवा वाचा क-  
 न्यायाः पतिरुच्यते ॥ पाणिग्रहणसंस्कारात्पातित्वं सप्तमे पदे ' पराशर-

१ इतः प्रभृति गर्हित इत्यन्तः पाठो लिखितपुस्तके कुत्रचिन्नास्ति । टीकायां तु व्या-  
 ख्यायते । २ उक्तविवाहासंभवे इति टीका । ३ पैशाचेनापीति तात्पर्यम् इति टीका ॥



माधवीये देवलोपि—‘गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः ॥ कर्तव्य-  
 श्व त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्निसाक्षिकः’ ॥ त्रैवर्णोक्तेर्गान्धर्वादौ विप्रवर्जमाधि-  
 कार उक्तः । तत्रैव परिशिष्टे—‘गान्धर्वासुरपैशाचा विवाहा राक्षसश्च यः ॥ पूर्वं  
 परिश्रयस्तेषु पश्चाद्धोमो विधीयते’ अतो होमादावकृते भार्यात्वाभावाद्द-  
 रान्तराय देया ॥ तथाच तत्रैव वसिष्ठबोधायनौ—‘बलादपहता कन्या म-  
 न्त्रैर्यदि न संस्कृता ॥ अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा’ इति ॥  
 (अत्र मन्त्रसंस्काराभावेऽन्यस्मै दानस्य सर्वविवाहेषु साम्याद्वलादपहारे रा-  
 क्षसपैशाचयोर्विशेषवचनं व्यर्थं तेन तयोर्यदि न संस्कृतासंस्कृतावेत्यावृत्य क-  
 न्यानुमत्यभावेऽन्यस्मै देयेतिव्याख्येयम् ) ॥ मदनपारिजाते नारदः—‘पा-  
 णिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणं ॥ तेषां च निष्ठा विज्ञेया विद्वद्भिः स-  
 तमे पदे’ स्मृतिचन्द्रिकायामपराकै चैवम् ॥ आशौचे तु याज्ञवल्क्यः—  
 ‘दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविष्टवे ॥ आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं  
 विधीयते’ ॥ केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तं—‘दातुः प्रतिगृहीतुश्च कन्या-  
 दाने च नो भवेत् ॥ विवाहविष्णोः कन्याया लाजहोमादिकर्मणि’ इति ॥  
 ‘व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ॥ आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु  
 सूतकम्’ इति विष्णुवचनाच्च । प्रारम्भस्तेनैवोक्तः—‘प्रारम्भो वरणं यज्ञे संक-  
 ल्पो व्रतसत्रयोः ॥ नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया’ इति ॥ वर-  
 णमिति मधुपर्कपरं । ‘गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः ॥ पश्चादशौचे  
 पतिते न भवेदिति निश्चयः’ इति ब्राह्मोक्तेः ॥ मधुपर्कात्पूर्वं तु भवत्येवाशौचमि-  
 नान्दीमुखावधिः ति शुद्धिविवेकः । रामाण्डारभाष्येऽप्येवम् । नान्दीमुखावधिश्च  
 स्मृत्यन्तरे—‘एकविंशत्यहर्ह्यज्ञे विवाहे दश वासराः ॥ त्रिष-  
 ट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते’ ॥ आरम्भाभावेऽपि लग्नान्तराभावे ग-

१—‘न चात्र सर्वविवाहेष्वेव संस्काराभावेऽन्यस्मै दानस्य साम्याद्वलादपहारे राक्षसपैशा-  
 चयोरिति विशेषोपादानं व्यर्थमिति केचित् । मैवम् ‘मन्त्रैर्यदि न संस्कृता’ इति मन्त्रा-  
 वृत्यादिनार्थोपगमात् कन्यानुमत्यभावेऽन्यस्मै दातव्येति व्याख्यानात्’ इति टीकापाठः ॥  
 २ वरस्य ‘विष्णुं जामातरं मन्ये’ इत्यादित्यपुराणात् ॥



अन्तरासूतके द्यविष्णुः—‘न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपि’ इति ॥  
 अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः—‘अनारब्ध-  
 विशुद्धयर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् ॥ गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुध्यति  
 सूतकी’ ॥ संग्रहेपि—‘संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते ॥ कूष्माण्डीभिर्घृतं  
 हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम् ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् ॥  
 यदैव सूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया’ ॥ अज्ञादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते—  
 ‘विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके ॥ परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः’  
 परैरसगोत्रैः । ‘भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरामृतसूतके ॥ अन्यगेहोदकाचान्ताः  
 सर्वे तु शुचयः स्मृताः’ ॥ एतदशौचात्पूर्वमपृथक्कृतान्नविषयं ॥ तत्र शेषमन्नं  
 त्याज्यमित्यर्थः । पृथक्कृतेषु तु बृहस्पतिराह—‘विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्त-  
 रामृतसूतके ॥ पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः’ इति ॥  
 धर्मार्थविवाहः धर्मार्थं विवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते—‘ज्ञात्वा स्ववित्त-  
 सामर्थ्यादिकं चोद्वाहयेद्विजम् ॥ तेनाप्याप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम्’ ॥  
 अपराकैर्दक्षः—‘मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ॥ यः स्थापयति  
 तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते’ ॥ मदनरत्ने भविष्ये—‘विवाहादिक्रियाकाले  
 तत्क्रियासिद्धिकारणम् ॥ यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं लभेत्’ ॥

कन्यागृहे भोजननिषेधोऽपि तत्रैव ‘अप्रजायां तु कन्यायां न भूञ्जी-  
 जननिषेधः । त कदाचन ॥ दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचति’ ॥ अ-

पराकैर्आदित्यपुराणे—‘विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य कोपं न  
 कारयेत् ॥ अप्रजायां तु कन्यायां नाश्रीयान्तस्य वै गृहे ॥ ब्रह्मदेयां न वै क-  
 न्यां दत्वाश्रीयान्तकदाचन ॥ अथ भुञ्जीत मोहाच्चेत्पूयाशे नरके वसेत्’ ॥  
 तत्रैव कश्यपः—‘अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा ॥ शस्तं त-  
 न्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा’ ॥ यन्त्रनिर्मुक्तं नूतनम् ॥ विवाहमध्ये

१ ‘अन्यदा तु दोष एव’ नाश्रीयद्भार्ययासार्द्धम्’ इति मनुवचनात् । इति टीकागाम् ।



स्त्रिया सह भोजनेपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे गालवः-‘वि-  
वाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले ॥ असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं  
द्विजन्मभिः ॥ एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम् ॥ विवाहे पथि या-  
त्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् ॥ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं  
चरेत्’ ॥ मिताक्षरायामप्येवम् ॥ रत्नमालायां-‘मूलमैत्रमृगरोहिणी-  
करैः पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः ॥ भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनवि-  
धिर्विधीयते’ ॥ अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ज्योतिषे-‘विपत्तारे गुडं  
दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम् ॥ प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागं दद्यान्निजन्मसु ॥  
चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तन्दुलांश्च ॥ धान्यं च  
दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं प्रदेयम्’ ॥ विवाहमण्डपमाह व-  
सिष्ठः-‘षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्दारोपशोभितम् ॥ मण्डपं तोरणैर्युक्तं  
तत्रवेदिं प्रकल्पयेत् ॥ अष्टहस्तं तु रचयेन्मण्डपं वा द्विषट्करं’ ॥ दैवज्ञम-  
नोहरः-‘चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् ॥  
हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम्’ ॥ हेमाद्रौ  
व्यासः-‘कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णक्राद्यखिलम् ॥ तत्संबन्धिगता  
गतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात्’ ॥ यवारकं ‘चिकसा’ इति प्रसिद्धम् ॥ ‘वैवाहिके  
तु दिवसे शुभे वाथ तिथौ शुभे ॥ चतुर्थिकं प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा’ ॥  
वेदिमाह नारदः-‘हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्यां समन्ततः ॥ स्तम्भै-  
श्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णां वामभागे तु सद्मनि ॥ समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानैरति-  
शोभिताम् ॥ प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भहंसशुकादिभिः ॥ एवंविधामारु-  
रुक्षेन्मिथुनं साग्विवेदिकाम्’ इति ॥ सप्तार्षिमते-‘मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो  
गृहमानतः ॥ कार्यः षोडशहस्तो वा द्वयूनहस्तो दशावधि ॥ स्तम्भैश्चतुर्भि-  
रेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता’ ॥ हस्तो वध्वाः सोपानं पश्चिमतः उपरिभागे  
उक्तपरिमाणाद्भिन्नम् । अथ मृदाहरणं, ज्योतिर्निबन्धे नारदः-‘कर्तव्यम-  
ङ्गलेष्वादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेपि वा । तृतीये



बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये ॥ सम्यग्गृहाण्यलंकृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥  
 सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् ॥ तत्र मृत्तिकतां श्लक्ष्णांगृहीत्वा  
 पुनरागतः । मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत् ॥ अनेकबीजसंयु-  
 क्तां तोयपुष्पोपशोभिताम् ॥ शौनकः—‘आधानं गर्भसंस्कारं जात-  
 कर्म च नाम च ॥ हित्वान्यत्र विधातव्यं मङ्गलेङ्कुरवापनम्’ ॥ बृहस्पतिः—  
 ‘आन्त्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम्’ ॥ तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं  
 च कार्यम् । ज्योतिःप्रकाशः—‘चतुर्थो मण्डपः श्रेष्ठः सप्तमः पञ्चमस्तथा ॥ न-  
 वमैकादशौ श्रेष्ठौ नेष्टौ षष्ठतृतीयकौ ॥ विवाहभे स्त्रोदये वा कन्यावरणमा-  
 चरेत्’ ॥ वरस्यापि वरणमाह चण्डेश्वरः—‘उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि

विविधानि च ॥ देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा’

वाग्दानोत्तरं-  
 वरमरणे

इति ॥ वाग्दानोत्तरं वरमरणे ऽपरार्कस्मृतिचन्द्रिकायां

वसिष्ठः—‘अद्भिर्वाचा च दत्तायां प्रियेतोर्ध्वं वरो यदि ॥

नच मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा’ ॥ यत्तु नारदः—‘उद्वा-  
 हितापि सा कन्या नचेत्संप्राप्तमैथुना ॥ पुनःसंस्कारमर्हेत् यथा कन्या  
 तथैव सा’ इति ॥ यच्च कात्यायनः—‘वरो यद्यन्यजातीयः पतितः  
 कृत्रिब एवच । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपि वा ॥ ऊढापि  
 देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा’ इति ॥ इदं कलौ निषिद्धम् ‘देवरेण  
 सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते’ इत्यादिपुराणे कलौ निषेधात् । दत्ताशब्द  
 ऊढापरः ‘ऊढायाः पुनरुद्वाहम्’ इति हेमाद्रावुक्तेः । अत एव सगोत्रा-  
 सपिंडादिविवाहेपि—‘भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव’ इत्युक्तम् ॥ दे-  
 शान्तरगमने तु कात्यायनः—‘वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत् पुरुषो यदा ॥  
 ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम्’ ॥ अपरार्कै नारदोपि—‘प्रति-

१ अष्टहस्तमारभ्य विंशतिहस्तान्ताः सप्त, पञ्चविंशतिहस्तः, पञ्चाशद्विंशतिहस्तः, शत-  
 हस्तः, सहस्रहस्तश्चेत्येकादश मण्डपाः । चतुर्थश्चतुर्दशहस्तः । आद्यौ द्वौ, अष्टमश्च न  
 विहिता न निषिद्धाः । इति टीका ॥



गृह्य तु यः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत् ॥ त्रीनृतून्समतिक्रम्य कन्याऽन्यं  
 वरयेद्वरम् ॥ शुल्कदाने तु मनुवसिष्ठौ—‘कन्यायां दत्तशुल्कायां प्रियते यदि  
 शुल्कदः ॥ देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते’ ॥ चन्द्रिकायां कात्या-  
 यनः—‘प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा ॥ धार्या सा वर्षमेकं तु  
 देयान्यस्मै विधानतः ॥ अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै । पूर्वा-  
 गतश्च सर्वेषां लभेतायवरस्तु ताम् ॥ पश्चाद्वरेण यद्वत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः ।  
 अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्’ ॥ याज्ञवल्क्यः—‘सकृत् प्रदीयते  
 कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् । दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्’ ॥  
 पूर्वस्य दोषसत्त्वे इदमिति विज्ञानेश्वरः । संबन्धतत्त्वे वसिष्ठः—‘कुलशील-  
 विहीनस्य पश्चाद्धि पतितस्य च ॥ अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधा-  
 रिणाम् ॥ दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च’ ॥ मनुः—‘षण्ढा-  
 न्धबधिरादीनां विवाहोस्ति यथोचितम् ॥ विवाहसंभवे तेषां कनिष्ठो  
 विवहेत्तदा ॥ पितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतेषु च ॥ विवाहाधानयज्ञादौ  
 परिवेदो न दूषणम्’ ॥ अन्यद्वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते इति दिक् । अत्र ना  
 न्दीश्राद्धे विशेषं तदधिकारिविशेषं चाग्रे वक्ष्यामः । इदं चाद्यविवाहे पिता  
 कुर्याद्वितीयादौ वर एव । ‘नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः ॥  
 अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्’ इति स्मृतेः ॥ त्रिकाण्डमण्ड  
 नोपि—‘पित्रोस्तु जीवतोः कुर्यात्पुनः पाणिग्रहं यदा ॥ पितुर्नान्दीमुखं श्राद्धं  
 नोक्तं तस्य मनीषिभिः’ ॥ रेणुकाकारिका—‘उक्तकाले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्-  
 न्दीमुखं पिता ॥ देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्र गत्वा भवेदिदम्’ ॥ लग्नघटीस्थापन  
 माह नारदः—‘षडङ्गुलमितोत्सेधं द्वादशाङ्गुलमायतम् ॥ कुर्यात्पातालवत्ताम्र-  
 पात्रं तद्दशभिः पलैः ॥ ताम्रपात्रे जलैः पूर्णं मृत्पात्रे वाथवा शुभे ॥ मण्डलार्धो-  
 दयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिक्षिपेत्’ ॥ तत्र मन्त्रः—‘मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा  
 निर्मितं पुरा । भव भवाय दंपत्योः कालसाधनकारणम्’ इति ॥ वरस्य



मधुपर्कः

मधुपर्कमाह याज्ञवल्क्यः 'प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातका-  
चार्यपार्थिवाः ॥ प्रियो विवाहश्च तथा यज्ञं प्रत्युन्विजः  
पुनः' ॥ अत्र विशेषो गृह्यपरिशिष्टे—'वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखागृह्यचो  
दितः ॥ मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेपि दातारि' । अत्र वरदातृशब्दौ  
ऋत्विगाद्युपलक्षणम् । तदाहुः—'अर्च्यशाखया मधुपर्कः' इति । 'अर्च्यस्य  
यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया मधुपर्कः' इति याज्ञिकाः । जयन्तस्तु 'वरणव-  
त्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्कः' इत्याह । तत्तु नाद्रियन्ते वृद्धाः । अत्र  
'पञ्चाशता भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः' इत्यादिगृह्यपरिशिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं  
मधुपर्कादिविधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः । कन्यादाने प्रपितामहपूर्वकमित्युक्तं स्मृ-  
त्यर्थसारे—'नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् ॥ नाम संकीर्तये-  
द्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम्' ॥ नान्दीमुखे इति बह्वृचाद्यतिरिक्तविषयम् ॥  
गृह्यपरिशिष्टे पित्राद्यानुलोम्याम्नानात् । व्यासः—'भुक्त्वा समुद्रहेतुकन्यां  
सावित्रीग्रहणं तथा ॥ उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु' ॥ भुक्त्वेति  
मधुपर्कं वैधभोजनपरम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे—'कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो वि-  
धीयते ॥ प्रत्यङ्मुखो वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः' ॥ मदनरत्नेऋष्यशृङ्गः—  
'वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् ॥ नाम संकीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैव मे-  
वहि ॥ तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् ॥ मधुपर्कार्चितायैनां  
तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् ॥  
गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं  
दत्तां विप्र समाश्रय ॥ भूमिं गां चैव दासीं च वासांसि च स्वशक्तितः ॥ म-  
हिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि ॥ ततः स्वगृह्याविधिना होमाद्यं कर्म  
कारयेत् ॥ यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि च ॥ एतत्कन्यादानं त्रिः-

- १-निशीथोत्तरं कन्यादाने तु दात्रा भोजनं कार्यम् । तस्य परदिनत्वात् इति टीका ॥  
२-भोजनान्तरकल्पने मानाभावात् । भुक्त्वापीत्यर्थः । तेन लौकिकभोजनस्याभोज-  
नस्य च लाभः ॥ इति टीका ॥



कार्यमिति शौनकः । गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषमाहाश्वलायनः— ‘अर्धरात्रे व्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि ॥ गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः’ इति ॥ औपासनहोमे विशेषमाह शौनकः— ‘यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति ॥ उपक्रम्योत्तरस्याहः सायं परिचरेदमुम्’ ॥ यदि रात्रौ नव नाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भ

देवकोत्था-  
पनम्

इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ अथ देवकोत्थापनं ॥ ‘समे च दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः ॥ षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ’ निर्णयदीपे गार्ग्यः— ‘नान्दीश्राद्धे कृते पश्चा-

द्यावन्मातृविसर्जनम् ॥ दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्ये स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च ॥ ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम् ॥ उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च ॥ नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि’ ॥ बृहस्पतिः— ‘तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविषुवे ॥ नगरग्रामदाहे च स्पृष्ट्वा स्पृष्टिर्न दुष्यति’ ॥ योगियाज्ञवल्क्यः— ‘न स्नायादुत्सवेतीते मङ्गलं विनिवर्त्य च ॥ अनुव्रज्य सुहृदन्धून् च यित्वेष्टदेवताम्’ ॥ ज्योतिषे— ‘स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम् ॥ अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम् ॥ मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेन च ॥ जीर्णभाण्डादिन त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥ ऊर्ध्वं विवाहात् पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात् ॥ आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥ अश्वज्जे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि ॥ माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम्’ ॥ ज्योतिर्निबन्धे—

विवाहप्रथम-  
वर्षवर्ज्या मासाः

‘उद्वाहात् प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ॥ पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत्’ ॥ निबन्धे— ‘विवाहात् प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके ॥ न सा भर्तुर्गृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा’ ॥ हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे— ‘विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्थं तदर्धकम् ॥ पिण्डदानं मृदा स्नानं



प० ३ ]

विवाहः—द्विरागमननिर्णयः ।

२९१

न कुर्यात्तिलतर्पणम् ' ॥ तथा अर्घ्यं पूर्ववत् । ' सपिण्डा नैव कुर्वीरन्न-  
द्भिः स्नानमृतत्रये ॥ तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयज्ञे महालये ॥ कृतो-

वधूप्रवेशः  
द्राहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ' ॥ अथवधूप्रवेशः ।  
जयतुङ्गे— ' मार्गशीर्षे तथा माघे माघवे ज्येष्ठसंज्ञके ॥ सुप्र-

शस्ते भवेद्देश्मप्रवेशो नवयोषिताम् ' ॥ नारदः— ' आरभ्योद्वाहदिवसात् षष्ठे  
वाप्यष्टमे दिने ॥ वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेथ समे दिने ' ॥ संग्रहे— ' विवाह-  
मारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवासरान्तात् ॥ ऊर्ध्वं ततोऽब्दे युजि पञ्च  
मान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति ' ॥ नारदः— ' समे वर्षे समे मासि यदि  
नारी गृहं व्रजेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ' ॥ प्रयो-  
गरत्ने तु— ' वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेथ वाह्नि ॥ द्वितीयके वा  
थ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुःखदः स्यात् ' इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥  
वृद्धवसिष्ठोपि— ' षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः ॥ प-  
ञ्चाङ्गसंशुद्धदिनं विनापि विधावसद्गोचरगेपि कार्यः ' ॥ लल्लः— ' स्वभुवन-  
पुरवेशे देशानां विष्टवे तथोद्वाहे ॥ नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा ना-  
स्ति ' ॥ माण्डव्यः— ' नित्ययाने गृहेर्जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु ॥ वधूप्रवेशे मा-  
ङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ' ॥ ज्योतिःप्रकाशः— ' वामे शुके नवोढायाः  
मुखं हानिश्च दक्षिणे ॥ धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरः स्थिते ॥ नवोढा-  
यास्तु वैधव्यं यदुक्तं संमुखे भृगौ ॥ तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे ॥  
पूर्वतोभ्युदिते शुके प्रयायादक्षिणापरे ॥ पश्चादभ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्तरे  
दिशौ ' ॥ व्यवहारतत्त्वे— ' पौष्णात्कराच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये  
मूलमघोत्तरासु ॥ पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च श-  
स्तः ' ॥ गर्गः— ' व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि ॥ श्राद्धं विना  
शुभं नैव प्राप्तकालेपि मानवः ' ॥ तथा ' अमासंक्रान्तिविष्टयादौ प्राप्तका-

द्विरागमनम्

लेपि नाचरेत् ' इति ॥ अथ द्विरागमनम् ॥ ऋक्षोच्चये  
' माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ गुर्वादित्यवि-



शुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः' ॥ बादरायणः—'नीहारांशुदिनोत्तरा-  
दितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनीशुक्रे भास्करवायुविष्णुवरुणत्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ ॥  
कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्नोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दिने नव-  
वधूवेश्मप्रवेशःशुभः' ॥ अथपुनर्विवाहः । श्रीधरीये—' पुनर्वि-  
दंपत्योः पुन-  
र्विवाहः—  
वाहं वक्ष्यामि दंपत्योः शुभवृद्धिदम् ॥ लग्नेदुलग्नयोर्दोषे ग्रह  
तारादिसंभवे ॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टरोगादिसंभवे ॥ वि-  
वाहे चापि दंपत्योराशौचादिसमुद्भवे ॥ तस्य दोषस्य शांत्यर्थं पुनर्वैवा-  
ह्यमिष्यते' ॥ याज्ञवल्क्यः 'सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थदन्यप्रियं-  
वदा ॥ स्त्रीप्रसूश्वाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा' ॥ मनुः—' वन्ध्याष्टमे धि-  
वेत्तव्या दशमे तु मृतप्रजा ॥ एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी' ॥  
संग्रहे तु—'अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् ॥ मृतप्रजां पञ्चदशे  
सद्यस्त्वप्रियवादिनीम्' ॥ याज्ञवल्क्यः—' एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यो  
लब्धुं य इच्छति ॥ समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां व्रजेत् ॥ आज्ञासं-  
पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् ॥ त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भ-  
रणं स्त्रियाः' मनुः—'अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् ॥ सा  
सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ' इति ॥ हेमाद्रौ कात्यायनः—  
'अग्निशिष्टादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया ॥ कारयेत्तद्वहुत्वं चेज्ज्येष्ठया  
गर्हिता न चेत्' इति ॥ याज्ञवल्क्यः—'सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं  
न कारयेत् ॥ सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा' ॥ द्वितीयविवा  
हहोमेषिमाह कात्यायनः—'सदारोऽन्यान्पुनर्द्रारानुद्बोदुं कारणान्तरात् ॥  
यदीच्छेदग्निमान्कर्तुं क होमोस्य विधीयते ॥ स्वाग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके  
न कदाचन' ॥ त्रिकाण्डमण्डनोपि—'आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामु  
द्बोधेयदि ॥ तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेग्निमान्' ॥ सुदर्शनभाष्येतु—

१—अन्नवस्त्रादि । २—'अस्मिन्पक्षे पुनर्गृहप्रवेशनीयहोमो न भवति तस्य गृह्यत्वसि-  
द्ध्यर्थत्वात् तस्य च सिद्धत्वात्' इति टीका ॥



‘द्वितीयविवाहोमो लौकिक एव न पूर्वोपासने’ इत्युक्तम् । इदं चासंभवे तत्र चाग्निद्वयसंसर्गः कार्यस्तदाहाशौनकः—‘अथाग्योर्गृह्ययोर्योगं सपत्नीभेद-  
जातयोः । सहाधिकारसिद्धयर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥ अरोगामुद्वेहक-  
न्यां धर्मलोपभयात्स्वयं ॥ कृते तत्र विवाहे च व्रतान्ते तु परेहनि ॥ पृथ-  
क्स्थण्डिलयोरग्निं समाधाय यथाविधि ॥ तत्रकृत्वाज्यभागान्तमन्वाधा-  
नादिकं ततः जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौ तयान्वारब्ध आहुतिः ॥ अग्निमीळेपु-  
रोहितं सूक्तेन नवर्चेन तु ॥ समिधैर्न समारोप्य अयं ते योनिरित्यृचा ॥  
प्रत्यवरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ निधाय तम् ॥ आज्यभागान्ततन्त्रादिकृत्वारभ्य  
तदादितः ॥ समन्वारब्ध एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद्घृतम् ॥ चतुर्गृहीतमे-  
ताभिर्ऋग्भिः षड्भिर्ऋथाक्रमम् ॥ अग्नावग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निः समिध्यते ॥ अ-  
स्तीदमितितिसृभिः पाहिनोअग्न एकया ॥ ततः स्विष्टकृदारभ्य होमशेषं समा-  
पयेत् ॥ गोयुगं दक्षिणा देया श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ पत्न्योरेका यदि मृता  
दग्ध्वा तेनैव तां पुनः ॥ आदधीतान्यया सार्द्धमाधानविधिना गृही’ इति ॥  
बोधायनसूत्रे तु—‘अथ यदि गृहस्थो द्वे भार्ये विदेत कथं तत्र कुर्यादिति  
यस्मिन्काले विदेतोभावशीपरिचरेदपराग्निमुपसमाधायपरिस्तीर्यज्यं विलाप्य  
स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहित्वाऽन्वारब्धायां जुहोति नमस्तक्षेरादाव्यधायै त्वास्व  
धायै त्वामानइंद्राभिमतस्त्वदृष्टारिष्ठां स एव ब्रह्मन्नेवेदसुस्वाहेत्यथाऽयं ते  
योनिक्रत्विय इति समिधि समारोपयेत् । पूर्वाग्निमुपसमाधायाजुह्वान उ-  
द्बुध्यस्वाग्न इति समिधमाधाय परिस्तीर्य स्रुचि चतुर्गृहीत्वा द्वयोर्भार्ययो-  
रन्वारब्धयोर्यजमानोभिमृशति ब्रह्मा ब्रह्मण इत्येतेन सूक्तेनैकं चतुर्गृहीतं जुहो-  
त्यग्निमुखान् कृत्वा पक्वां जुहोति संमितं संकल्पेथामिति पुरोनुवाक्यामनूचाग्ने  
पुरीष्वे इति याज्यया जुहोति पुरीष्यमस्तमित्यन्तादनुवाकस्य स्विष्टकृत्  
प्रभृतिसिद्धमाधेनुवरदानादथाग्नेणाग्निं दर्भस्तम्बे हुतं शेषं निदधाति ब्रह्मज-

१-औपासनासंभवे । २-तत्र चेति । देशान्तरेऽग्न्यासंनिधौ वा लौकिके विवाहोमं गृह  
प्रवेशनीयहोमं च कुर्यात् । तत्रच कालान्तरेऽग्निद्वयसंसर्गः कार्य इत्यर्थः इति टीका ॥



ज्ञानं, पिताविराजामितिद्वाभ्यां संसर्गविधिः कार्यः । द्वितीयादिविवाहे काल उक्तः संग्रहे—‘प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च ॥ विषमेऽयुग-  
वत्सरे शुभो युगलं चापि मृतिप्रदो भवेत्’ ॥ तृतीयविवाहे  
तृतीयविवा.  
हेनिषेधः निषेधो मात्स्ये—‘उद्बहेद्रतिसिद्धयर्थं तृतीयां न कदाचन ॥  
मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानुषीम् ॥ नश्यत्येव न संदेहो  
गर्गस्य वचनं यथा’ ॥ इति संग्रहे—‘तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवे  
त् ॥ चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्बहेत्’ ॥ तद्विधिस्तु—‘रविश्चन्योर्हस्ते वा  
वरः संकल्प्य स्वास्तिवाचनं नान्दीश्राद्धं कृत्वाचार्यं बृत्वा आकृष्णेनेति छाया  
युतं सूर्यमर्कं संपूज्य गुडौदनं दत्वा वस्त्रेण तन्तुभिरावेष्टय । ‘त्रिलोकवासि-  
न्नुसमाश्व छायायासहितो रवे ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु’ इति  
संप्रार्थ्य जलेन त्रिःसिञ्चेत् । ‘मम प्रीतिकरा येयं मया सृष्टा पुरातनी ॥ अर्कजा  
ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥ नमस्ते मङ्गले देवि नमः सवितुरात्मने ॥  
त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं मे इहागता ॥ अर्कं त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहि-  
ताय च ॥ वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं  
मृत्युं चाशु विनाशय’ इति ॥ ततः आचार्यः ‘काश्यपगोत्रामादित्यप्रपौत्रीं  
सवितुः पौत्रीं मम पुत्रीमर्ककन्याममुकगोत्राय वराय दास्ये’ इति वाग्दानं  
कृत्वा वरस्य मधुपर्कं कृत्वाऽन्तःपटं धृत्वा स्वस्तिन इति सूक्तं जप्त्वा पूर्व  
वत्कन्यां दत्त्वा ‘अर्ककन्यामिमामित्यूहेन कन्यादानमंत्रमुक्त्वा दक्षिणां दद्या-  
त् । ततो गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेतिमन्त्रेण कंकणं बध्वाऽर्कस्य चतु  
र्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्याधारान्ते संगोभिरिति बृहस्पतये  
यस्मै त्वा कामकामायेत्यृचाऽग्नये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिराज्यं हुत्वाचा-  
र्याय गोयुगं दत्वा । ‘मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥ अर्का-  
ऽपत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षंतुमर्हसि’ इति नमेत् इतिदिक् ॥ इति निर्णय-  
सिन्धौविवाहः ॥ रत्नमालायाम्—‘प्राजापत्ये पूषभे सद्भिदैवे पुष्ये ज्ये-  
ष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु ॥ अश्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेपि चित्रादित्ये कीर्तितं



गर्गमुख्यैः' ॥ आश्वलायनः—' अग्न्याधेयं कृत्तिकासु रोहिण्यां मृगशिरसि फल्गुनीषु विशाखयोरुत्तरयोः प्रौष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्वसन्ते पर्वणि ब्राह्मण आदधीत ग्रीष्मवर्षाशरत्सु क्षत्रियवैश्योपक्रुष्टा यस्मिन्कस्मिंश्चिद्वतावादधीत सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम्' । सोमाधाने ऋत्वाद्यनालोचनमार्तपरम् । 'अथो खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्य विधिः' इति 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रं तदेतदार्तस्यातिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य भवति' इति बौधायनोक्तेरिति । मदनरत्नेवृद्धगार्ग्यः—' पुष्याग्नेय्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवेन्दुभेषु ॥ कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मोष्मान्तेष्वेव विप्रादिवर्णाः' ॥ कालादर्शौ—'अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावप्युत्तरायणे ॥ उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः ॥ सोमं च पशुबन्धं च सर्वाश्च विकृतीरपि ॥ सौम्यायने यथाकालं विदध्युर्गृहमेधिनः' ॥ अत्र विशेषः पूर्वमुक्तः । अग्निहोत्रकाल उक्तश्छन्दोगपरिशिष्टे—'उदितेनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥ सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः' ॥ एषां स्वरूपं तत्रैव 'रात्रेस्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ तथा प्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले ॥ रविर्यावन्न दृश्येत सययाध्युषितं च तत् ॥ रेखामात्रं प्रदृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः ॥ उदितं तद्विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत्' ॥ आश्वलायनः—' उपोदयं व्युषितउदिते वा' । सायं तु स एव 'अस्तमिते होमः' इति । गौणकालमाह स एव—'प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः' इति । छन्दोगपरिशिष्टे—'यावत्सम्यङ्न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः ॥ नच लोहितिमापैति तावत्सायं तु हूयते' ॥ औपासनेप्येवम् । तस्य 'अग्निहोत्रेण प्रादुष्करणहोमकलौ व्याख्यातौ' इत्याश्वलायनोक्तेः । अथावसथ्याधानम् ॥ पारस्करः—'आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेषाम्' इति । दायाद्यकालो विभाग-

१—'पशुनिर्गृहपशुभिन्नः तस्य 'पशुना संवसरे प्रावृषि' इति कात्यायनेन वर्षासु विधानात् इति टीका ॥



कालः । मदनरत्ने व्यासः—‘अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना ॥  
 पितर्युपरते तेन गृहीतव्यः प्रयत्नतः ॥ यो ऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति म  
 न्यते ॥ अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः’ ॥ ज्येष्ठभ्रातरि पि  
 तरि वा साग्नौ कनिष्ठस्य पुत्रस्य वा ऽन्यभावेपि न दोषः । तदाह तत्रैव गा-  
 र्ग्यः—‘पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीविकः ॥ ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा  
 न दुष्येताग्निना विना’ ॥ गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह सत्यव्रतः—  
 गृहस्थस्या <sup>ध्ययनम्</sup> ‘अनधीत्य द्विजो वेदं स्नात्वोद्वाह्य यथा तथा ॥ अधीते ब्रह्मच  
 र्येण सांगं वेदं गुरोर्गृहे’ ॥ इदं चाधानं ज्येष्ठे कृताधाने न  
 कार्यम् । ‘दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः  
 परिवित्तिस्तु पूर्वजः’ इति मनुशातातपोक्तेः । स्मार्तेऽप्येवम् । ‘सोदर्ये तिष्ठ  
 ति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसंग्रहम् ॥ आवसथ्यं तथाधानं पतितस्तु तथा भवेत्’  
 इति तत्रैव गार्ग्योक्तेः ॥ आज्ञायां त्वदोषमाह सुमन्तुः—‘ज्येष्ठो भ्राता यदा  
 तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत् ॥ अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा’ ॥  
 वृद्धवसिष्ठः—‘अग्रजस्तु यदाऽनग्निरादध्यादनुजः कथम् ॥ अग्रजानुमतं  
 कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि’ ॥ हारीतः—‘सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं  
 भवेत् ॥ दारैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नेज्यया’ ॥ अधिकारिणोपि भ्रा  
 तुरनुज्ञया कुर्यादिति मदनपरिजातः ॥ विवाहस्त्वनुज्ञयापि नेत्यर्थः ॥ सोद  
 रोक्तेरसोदराणां सापत्नदत्तकार्दीनां न दोषः । दत्तकस्यापि सोदरविवाहाभावे  
 दोष एव ॥ तदाह हेमाद्रौ वसिष्ठः—‘पितृव्यपुत्रान् सापत्नान् परनारीसुतां  
 स्तथा ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगेन दोषः परिवेदने’ ॥ परनारीसुताः दत्तकादयः ।  
 देशान्तरे विशेषमाह स एव—‘अष्टौ दश द्वादश वर्षाणि वा ज्येष्ठभ्रातरमनिवि  
 ष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्ती भवति’ इति । क्लीवादावप्यदोषमाह कात्यायनः—  
 ‘देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान् ॥ वेश्यानिष्ठांश्च पतितशूद्रतुल्यातिरो  
 गिणः ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनखञ्जकान् ॥ अतिवृद्धानभार्याश्च कृ  
 पिसक्ताऽपस्य च । धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोकारिणस्तथा ॥ कुटिलोन्मत्त



चोरांश्च परिषिद्धं दुष्यति' ॥ आशार्कैपि— 'उन्मत्तः किल्बिषी कुष्ठी  
प्रतितः क्लीब एव वा ॥ राजयक्षमामयावी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम्' ॥  
एवं ज्येष्ठे छिन्नहस्तादावपि न परिवेत्तुत्वम् ॥ तदाह त्रिकाण्डमण्डनः—  
'दर्शोष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसंग्रहम् ॥ अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथ-  
मे स्थितम् ॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति ॥ 'क्षेत्रजादानी-  
जाने विद्यमानेपि सोदरे ॥ नाधिकारविधातोस्ति भिन्नोदर्येपि चौरसे ॥ पंग्व-  
न्धमूकबधिरपतितोन्माददूषणे ॥ संन्यस्तच्छिन्नहस्तादौ यद्वाषण्डादिदूषणे ॥  
जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम्' इति । 'आरोहतं दशतं शक्रीर्मम'  
इत्याधाने मन्त्रवर्णाच्च ॥ शक्रीरंगुलीः । तन्त्ररत्नेषुक्तम् 'अंगवैकल्यात्  
पूर्वमाहिताग्नित्वेऽधिक्रियेतैव नित्येषु आधानं तु न कुर्यात्तस्य नैमित्तिकत्वा-  
त्' इति । एवं चतुरंगुलेपि षडंगुलकाणविवर्णादेस्त्वस्त्येवाधिकारः । एकाद-  
शसु दशान्तर्गतेः । 'शरीरकाश्यं वा विप्रतिषिद्धम्' इति हिरण्यकेशिसूत्रे  
कर्माशक्तिहेतोरेवांगवैकल्यस्य निषेधात् ॥ अतएव द्राह्यायणसूत्रे 'याज्यश्च  
प्रथमैस्त्रिभिर्गुणैः' इति न्यूनाङ्गस्याप्यधिकार उक्तः । अपरार्के उशनाः—  
'पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित् ॥ तपोग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः प-  
रिवेदने' ॥ पितुराज्ञायामप्यदोषमाह मदन रत्नेसुमन्तुः 'पित्रा यस्य तु नाधानं  
कथं पुत्रस्तु कारयेत् ॥ अग्निहोत्रेधिकारोऽस्ति शङ्खस्य वचनं यथा' ॥ इति  
नाधानं कृतमित्यर्थः । एतदाज्ञायामेवेति हेमाद्रिः । यत्तु— 'पितुः सत्यप्यनुज्ञानेनाद-

अथ शूद्रसं-  
स्काराः

धीतकदाचन' इति ॥ तत्सत्यधिकारे ज्ञेयम् । अथ शूद्रसंस्का-  
राः ॥ यमः— 'शूद्रोप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः ॥  
न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः' ॥ छन्दसा मन्त्रे-

- १—अन्यत्र कुतो नाधिकार इति चेत् । आधानं हि नैमित्तिकं 'तत्रारोहतं दशतं  
शक्रीर्मम' इति मन्त्रे दशांगुलिभिररणग्रहणमुक्तं तद्वाधप्रसंगात् । इति टीका ।  
२—अनीजाने यागमकुर्वाने क्षेत्रजादौ ज्येष्ठे ऽनीजाने विद्यमाने जीवति एकमातृकतया  
सोदरे तत्कनिष्ठभ्रातरि नाधिकारविधातोस्तीत्यन्वयः । इति टीका ॥



ण । व्यासोपि—‘गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ॥ नामक्रिया निष्क्रमोन्नप्राशनं वपनक्रिया ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भाक्रियाविधिः ॥ केशान्तस्नानमुद्राहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोडश स्मृताः ’ इत्युक्त्वाह ‘नवैताः कर्ण वेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः ॥ विवाहे मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश ’ इति ॥ मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु—‘गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ॥ कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुंगवाः’ इत्युक्त्वा ‘जातकर्मादिकाः कुर्यात् क्रियाः षोडश चापराः’ इत्यत्र ‘स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाहाः षट् । शूद्राणां तु षडेते पञ्चमहायज्ञाश्चेत्येकादशे’त्युक्तम् । रूपनारायणहरिहरभाष्ययोरप्येवम् । शार्ङ्गधरस्तु—‘द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि ॥ पञ्चैव मिश्रजातीनां संस्काराः कुलधर्मतः ॥ वेदव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम्’ । द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाममन्त्रतः इत्याह । अपरार्कस्तु ‘गर्भाधानमृतौ पुं-

१—‘वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः ’ इत्युक्तेर्विवाह एवोपनयनस्थानीयः । अतस्तद्दिन एव ‘पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्’ पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया’ इति वचनात् ‘अहतेन वसनेन पतिः परिदध्यात् या अकृन्तन्नित्येतयर्चा, परिधत्त धत्त वाससेति च प्रावृत्तां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन् जपेत्—‘सोमो ददद्गन्धर्वायेति ’ इति गोभिलगृह्यतः यज्ञोपवीतधारणं वसिष्ठस्मृतावेकविंशेऽध्याये तत्तत्प्रायश्चित्तार्थं स्त्रीणामपि गायत्रीजपहोमविधानस्यान्यथानुपपत्त्या गायत्र्यङ्गीकारं पतिरेव कारयेत् ‘पुराकल्पे तु नारीणां मौजीवन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्र्या वचनं तथा’ इति वचनेनापि णि जर्थभूतप्रयोजकत्वस्यास्मिन्कल्पे निषेधेपि धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वरूपप्रयोज्यत्वस्यानिषेधात् ॥ ततश्च यथावकाशं पतिरेव स्वशाखावेदं पाठयेत् अत एव ‘जातेस्त्रीविषयात्’—इति सूत्रभाष्ये जातिलक्षणकथनावसरे कथितस्य ‘अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची च जातिवाचकः’ इत्यर्थकस्य ‘गोत्रं च चरणैः सह’ इति वार्तिकस्य कठौ बहुची अध्वर्युः इत्युदाहरणानि वेदाध्ययनमन्तरानुपपन्नानि संगच्छन्ते । अत एव तत्तद्यागेऽपि यजमानपत्न्यास्तत्तन्मन्त्रपाठः । याज्ञे कर्मण्यपशब्दभाषणस्य निषिद्धत्वेन संस्कृतेनैव यज्ञगतैर्वक्तव्यतया तत्तदुक्तेतिकर्तव्यताज्ञानस्य व्याकरणाध्ययनमन्तरानुपपन्नत्वेन व्याकरणमप्यध्यापयेत् । ‘नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञो ह भिति ब्रूयास्त्रियः सर्वास्तथैव च’ । इति मनूक्तौ संस्कृताज्ञातृत्वेनैव सिद्धौ ‘स्त्रियः सर्वाः’ इति विध्यन्तरस्यानुपपत्त्या संस्कृतज्ञा अप्याचार्यपत्नीरपि तथैव ब्रूयादिति मेधातिथिव्याख्यानमेव वरम् ॥



सः' इत्यत्राह 'एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् न द्विजातिमात्रपरम् । तथासत्युपनयनं विधाय वाच्यं स्यादिति । तेन तन्मतेष्टौ भवन्ति । ब्राह्मे तु 'विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोपि लभतां सदा' इत्युक्तम् । अत्र सदसच्छूद्रगोचरत्वेन देशभेदाद्वयवस्था ॥ यत्तु मनुः— 'न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति' इति ॥ तदर्थमाह मेधातिथिः— 'यत्सामान्यतो निषिद्धं स्तेयानृतादि न तदतिक्रमेऽस्य पापं यथा द्विजानाम् । उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हति' इति ते च तूष्णीं कार्याः । 'शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ वेदमन्त्रस्वधास्वाहा वषट्कारादिभिर्विना' इति व्यासोक्तेः । 'अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते' इति मरीच्युक्तेश्चादयं परिभाषा सर्वार्था तेन शूद्रधर्मेषु सर्वत्र विप्रेण मन्त्रः पठनीयः । सोपि पौराण एवेति शूलपाणिः । एवं स्त्रीणामपीति दिक् । इति रामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृतेर्निर्णयसिन्धौसंस्कारनिर्णयः ॥ ॥

अथ शुद्धकालाः ॥ तत्र जलाशयस्य ॥ वाराहः 'हस्ते चाम्बु अथशुद्धकालाः पौष्णकेशवमघामित्रोत्तरारोहिणीदेवेज्येषु च शुक्रसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके ॥ रिक्तां छिद्रतिथिं विहाय वृषभे नके कुलीरे घटे मीने कूपतडागकर्म मुनयःशंसन्ति शुद्धेष्टमे ॥ हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः ॥ शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः' ॥ हेमाद्रौ भविष्ये— 'तस्मिन्सलिलसंपूर्णे कार्तिके तु विशेषतः ॥ मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीति चोत्तरायणे ॥ न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम्' ॥ दीपिकापि— 'मार्तण्डेन्दूदुशुद्धौमुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्ले मूलाषाढोत्तराश्वि श्रवणगुरुकरे पौष्णशुक्राज्यचन्द्रे ॥ मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदन १ ३ रवि १ २ तिथौ सद्वितीयातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठाज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने' वराहः— 'आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः ॥ नित्यं स करोति भयं दाहं

१—स्वस्वजात्युक्तं कर्म स्वस्वजातीयस्त्रीणामिति निष्कर्षः । सर्वासामपि स्त्रीणां शूद्रसमानत्वे कठीत्यादिसिद्धयर्थं 'जातेरस्त्रीविषयात्' इति सूत्रोपादानमेव व्यर्थस्यात् 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति सूत्रेण तु शूद्रायामपि कठीति प्रयोगापत्तिः । तत्कृतपाकस्य शूद्रकृतपाकस्येव दैवे पित्र्ये च कर्मण्यनुप्रयोगापत्तेश्च ॥



च समानसं प्रायः ॥ नैर्ऋत्ये बालभयं वनिताक्षयं च वायव्ये ॥ दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा  
 शेषास्तु शुभावहाः कूपाः ॥ वास्तुशास्त्रे- 'भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुरंधीनाशं  
 मृत्युं संपदं शत्रुबाधाम् ॥ किञ्चित्सौख्यं शंभुकोणादि कुर्यात्कूपो मध्ये-  
 गेहमर्थक्षयं च' ॥ उत्सर्गविधिश्चोक्तो बह्वचपरिशिष्टे 'अथातो वापीकूपतडा-  
 गयज्ञं व्याख्यास्यामः ॥ पुण्ये ह्ययुदकसमीपेऽग्निं समाधाय वारुणं चरुं श्रपयि  
 त्वाज्यभागान्ते आज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ समुद्रज्येष्ठेति प्रत्यृचं ततो हविषाष्टौ  
 तत्वायामीति पञ्च त्वं नो अग्ने इति द्वे इमं मे वरुणेति च स्विष्टकृतं नवमम् ।  
 मार्जनान्ते धेनुं तारयेत् । अवतीर्यमाणामनुमन्त्रयेत्' । 'इदं सलिलं पवित्रं कुरु  
 ष्व शुद्धाः पूना अमृताः सन्तु नित्यम् ॥ मां तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोका  
 लोकं तरतेतीर्यते चे'ति पुच्छाग्ने न्वारब्ध उत्तीर्यापो अस्मान्मातरः शुन्ध्यं त्वित्य  
 थापराजितायां दिश्युपस्थापयेत्सूयवसाद्भगवतीति हिंक्रतं चेद्धिंक्रण्वतीत्यलं  
 कृतां विप्राय दद्यादितरां नाशक्त्या दक्षिणां तत उत्सृजेद्देवपितृमनुष्याः प्रीयन्ता  
 मिति ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत' इति ॥ विस्तरस्तु मात्स्योक्ते  
 ऽस्मत्कृते जलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः । कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष उक्तो भविष्ये  
 'सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम् ॥ कुशाग्नेणापि राजेन्द्र न स्पृष्टव्यम  
 संस्कृतं' ॥ तथा 'वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतं ॥ अपेयं तद्भवेत्सर्वं  
 पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्' ॥ अथ वृक्षारोपणं । चण्डेश्वरः ।  
 आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरंगमवा-  
 रुणाश्च ॥ एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमि  
 होपदिशंति धीराः' ॥ अथ मूर्तिप्रतिष्ठा ॥ वसिष्ठः- 'हस्तत्रये  
 मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु ॥ तिस्रोत्तराधातृ-  
 शशांकभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् ॥ मात्स्ये- 'चैत्रे वा फाल्गुने  
 वापि ज्येष्ठे वा माघे तथा ॥ माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्' ॥  
 नारदस्तु चैत्रं निषेधयति 'विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु' इति ।  
 तेनात्र विकल्पः । अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तविषयः ।

अथ वृक्षारोप-  
णम्

अथ मूर्तिप्रतिष्ठा



‘माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत्’ इति विष्णुधर्मोक्तेरिति हेमाद्रिः  
 मात्स्ये—‘दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता ॥ द्वितीयायां धनोपेता  
 तृतीयायां धनप्रदा ॥ चतुर्थ्यानाशमाप्नोति यमस्य स्यात्सुखावहा ॥ वि-  
 नायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा ॥ पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा  
 भवेत् ॥ षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी ॥ अष्टम्यां धान्यबहु  
 ला नवम्यां च विनश्यति ॥ भद्रकाल्याः कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये ॥ धर्म  
 वृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ ॥ एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां  
 सर्वकामदा ॥ त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति ॥ कृष्णपक्षे पञ्च-  
 दश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् ॥ पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकारी भवेत् ॥  
 आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा  
 तथा ॥ हस्तोश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा ॥ अनूराधा तथा स्वाती  
 प्रतिष्ठासु प्रशस्यते’ ॥ श्रीपतिः—‘रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनी-  
 वासवानूराधैन्दवजविभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् ॥ पुष्यश्रुत्यभिजि-  
 त्मुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां  
 शुभम् ॥ गणपरिवृद्धरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रथमफणिसरस्वत्यादिकानां च पौ-  
 ण्णे ॥ श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं  
 च स्थिरेषु ॥ तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा दृढा च ॥  
 आनन्दकृतकल्पविनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा’ ॥ माधवीयैवैस्वा-  
 नसः—‘मातृभौरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः ॥ महिषासुरहन्त्यश्च स्थाप्या  
 वै दक्षिणायने’ ॥ वैशब्देप्यर्थेलिङ्गप्रतिष्ठायां विशेषः हेमाद्रौ लक्षणसमु-  
 ज्ञये—‘उत्तराशागते भानौ लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥ दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रि-  
 वर्षार्द्धे भयावहम् ॥ स्वगृहे स्थापनं नेष्टं तस्माद्वै दक्षिणायने ॥ स्थापनं  
 तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रयो ॥ प्रावृषि स्थापितं लिङ्गं भवेद्भरदयोगदम् ॥

१-मुक्तिकामानां दक्षिणायने न दोषः ‘श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम् ।  
 दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः’ ॥ इति वचनात् । इति टीका ।



हेमन्ते ज्ञानदं चैव लिङ्गस्यारोपणं मतम्' ॥ रत्नावल्याम्- 'माघफाल्गु-  
नवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु ॥ मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम्' ॥ वि-  
ष्णुरप्याह । तत्रैवैखानसः 'मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा ॥  
मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च ॥ वृषे वाप्यश्वयुज्मासेश्रावणेमा-  
सि वा भवेत्' ॥ बौधायनसूत्रे विष्णुप्रतिष्ठासुपक्रम्य 'द्वदश्यां श्रोणायां वा  
यानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणि' इति । कृत्तिकादिविशाखान्तेष्वित्यर्थः ।  
सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे- 'माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने  
शुभदा भवेत् ॥ लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे वरसंयुता ॥ आज्ञायुता  
सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा ॥ श्रावणे धनहीना स्यात्प्रौष्ठपादे विन-  
श्यति ॥ आश्विने नाशमाप्नोति वह्निना कार्तिके तथा । सौम्ये सौभाग्य-  
मतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ॥ दोषान्विताधिमासे स्यात्कर्तुरात्मन एव च' इति ॥  
अत्र श्रावणाश्विनयोर्निषेधो मार्गशीर्षविधिश्च विष्णुव्यतिरिक्तविषयः  
पूर्वोक्तवचनादिति हेमाद्रिः ॥ माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः ॥ शिवव्यतिरिक्तवि-  
षयः, तत्र तस्योक्तेः ॥ देवीस्थापने तत्रैव विशेषो देवीपुराणे 'देव्या माघे-  
श्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा' ॥ तथा- 'न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोत्र  
कारणम् ॥ सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे निशेषतः' ॥ अन्यश्चात्रविचारो  
हेमाद्रौ ज्ञेयः । नारदः- 'हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् ॥  
द्वियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिषुः' ॥ अत्राधिकारिण उक्ताः कृत्य-  
कल्पतरौ देवीपुराणे 'वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा ॥ ब्रह्मा  
तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ॥ चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठा-  
प्यः सुखार्थिभिः ॥ भैरवोपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥ मातरः  
सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः ॥ लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य  
तु यजेत्सदा' ॥ शिवसर्वस्वे भविष्ये- 'यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादि मां

१- 'अत्रहीनो दहेद्राष्टं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजम् । श्रद्धाविहीनः कर्तारं नास्ति यज्ञसमो  
रिषुः' । इत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । इति टीका ॥



जगत्पतिम् ॥ ब्रह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः ॥ तस्य प्रीतः  
 प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमान् ॥ तिथितत्त्वे स्कान्दे—‘शूद्रः कर्माणि  
 यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये ॥ तस्याहमर्चा गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषि-  
 ते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते ॥ एवं दिनेदिने देवं पूजयेदम्बिका  
 पतिम् ॥ संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् ॥ नमोन्तेन शिवेनैव स्त्री-  
 णां पूजा विधीयते ॥ एतच्च पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गपूजाविषयम् ॥ या-  
 नितु त्रिस्थलीसेतौ नारदीये—‘यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः ॥  
 न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ न मेघः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा ह-  
 रिमेव वा ॥ स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम् ॥ पाखण्डपूजितं लि-  
 ङ्गं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत् ॥ आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते ॥  
 योषिर्द्विः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेतु यः ॥ स कोटिकुलसंयुक्तमाकल्पं  
 रौरवं वसेत्’ इत्यादीनि ॥ तानि नूतनस्थापितलिङ्गादिविषयाणि ॥ ‘यदा  
 प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि ॥ तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न सं-  
 स्पृशेत्’ इति तत्रैवोक्तेः ॥ प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः ‘स्त्रीणा-  
 मनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर ॥ स्पर्शने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शं-  
 करस्य वा ॥ यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः ॥ इहैवात्यन्तदुः-  
 खानि पश्यत्यामुष्मिके किमु ॥ शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि  
 वा ॥ केशवं वा शिवंवापि स्पृष्ट्वानरकमश्नुते’ इति बृहन्नारदीयस्कान्दोक्तेरिति  
 त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः । चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्णवादिप्रति-  
 ष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति युक्तं पश्यामः ॥ तत्रैव गौतमः—‘शिवार्चनं स-  
 दाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः’ ॥ वाचस्पतिमतम्—‘प्राक्पश्चिमोदगास्य-  
 स्तु प्रातःसायंनिशासुच’ इति ॥ प्रयोगपारिजाते गृह्यपरिशिष्टे—‘प्रति-  
 माः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखोयजेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः’ । एतच्च स्थिरप्रतिमावि-  
 १--शिवरात्रिहरितालिकादिषु स्त्रीणामपि पूजाविधानात् ‘जातिं तु बादरायणो विशेषात्’  
 इति मीमांसासूत्रविरोधाच्च स्त्रीपराजितविद्वत्प्रतिज्ञाप्राम्यम् । ‘द्विधाकृत्वात्मनो देहमर्धेन  
 पुरुषाभिवत् । अर्धेन नारी’ इति मनुवाक्यतः स्त्रीपुंसयोः साम्यप्रतिपादनात् ॥



प्रतिमाः

षयं । अन्यत्र चलाचासु ॥ अथ प्रतिमाः भार्गवार्चनदीपि-  
कायां भविष्ये--'सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथाभवे

तु ॥ पाषाणधातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी तथा' ॥ रीतिः पित्तलम् । शुद्ध-  
दारुमयी वापि देवताचर्या प्रशस्यते ॥ अंगुष्ठपर्वादरभ्य वितस्ति यावदेव तु ॥  
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः' ॥ पञ्चरात्रे तु--'मृदारुलाक्षागो-  
मेदमधूच्छिष्टमयी न तु' इतिनिषेध उक्तः ॥ भागवते 'शली दारुमयी लौही  
लेप्यालेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता' ॥  
काष्ठं मधुकस्यैव । 'तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे ॥ कृत्वा तत्प्रति-  
मां चैव प्रतिष्ठाविधिनार्चयेत्' इतिवराहोक्तेः ॥ देवीपुराणे--'सप्तांगुलं  
समारभ्य यावच्च द्वादशांगुलम् ॥ गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादेवाधिका शुभा'  
तिथितत्त्वे कालिकापुराणे--'प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपा-  
णिना ॥ प्राणप्रतिष्ठां कुर्वति तस्य देवस्य वा हरेः ॥ अन्येषामपि देवानां  
प्रतिमासु च पार्थिव ॥ प्राणप्रतिष्ठाकर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ वासुदेव-  
स्य बीजेन तद्विष्णोरित्यनेन च ॥ तथैव हृदयेगुष्ठं दत्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ॥  
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेपि समाचरेत् ॥ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै  
प्राणाः क्षरन्तु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कञ्चन' ॥ हयशीर्षप-  
ञ्चरात्रे--'अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशयनात् ॥ आभिरूप्याच्च बिम्बा-  
नां देवः सान्निध्यमृच्छति' ॥ प्रयोगपारिजाते व्यासः--'प्रतिमापट्य-  
न्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् ॥ कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम्' ॥  
लिङ्गे विशेषस्तिथितत्त्वे भविष्ये--'मृद्रस्मगोशकृत्पिष्टताम्रकांस्यमयं  
तथा ॥ कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि ॥ वार्षं वित्तप्रदं लिङ्गं  
स्फाटिकं सर्वकामदम् ॥ कृत्वा पूजय विप्रेन्द्र लप्स्यसे वाञ्छितं फलम्' ॥  
तत्रैव कालकौमुद्यांस्कान्दे--'अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः ॥ कुर्वी  
तांगुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समाचरेत् ॥ अक्षोऽशीर्तिर्गुञ्जाः' गुञ्जाः पञ्चाल्यमा-  
पकः ॥ ते षोडशाक्षः कर्षोऽसी' इत्यमरकोशात् । प्रयोगपारिजाते क्रिया-



सारे--'नवाष्टसप्तांगुलिकं लिङ्गं श्रेष्ठमिहोच्यते ॥ षट्पञ्चकचतुर्मानं मध्यमं  
त्रिविधं स्मृतम् ॥ त्रिद्वयेकांगुलिमानं यत्रिविधं तत्कनीयसम् ॥ एवं नव-

विधं प्रोक्तं चरलिङ्गं यथाक्रमम्' ॥ अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः ॥

पञ्चसूत्री

गौतमीयतन्त्रे--'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमोमतः ॥

परिधिस्तत्र गुणितस्तद्वत्पीठं व्यवस्थितम् ॥ प्रवालिका तथैव स्यात्पञ्च-  
सूत्रविनिर्णयः' ॥ अत्रेदन्तत्वम् । लिङ्गमस्तकविस्तारं लिङ्गोच्चतासमं कृत्वा-  
तत्रिगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं कृत्वा तत्समं वृत्तं चतुरस्रं वा पीठं विस्ता-  
रमधश्चोर्ध्वं च कुर्यात् ॥ पीठोच्चता तु लिङ्गोच्चतातो द्विगुणा पीठमध्ये लि-  
ङ्गाद्विगुणस्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कण्ठं कृत्वा तस्योर्ध्वं अधश्च समं वप्र-  
द्वयं त्रयं वा कृत्वा लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन पीठोपरि बाह्यमेखलां कृत्वा तद-  
न्तःसंलग्नतत्समं स्वातं कृत्वा पीठाद्वहिल्लिङ्गसमदीर्घां पीठार्धदीर्घां वा मूले-  
दैर्घ्यसमविस्तारां तृतीयांशेन मध्ये स्वातां पीठवत्समेखलां प्रणालिकां कुर्या-  
दिति । अत्र मूलं सिद्धान्तशेखरे शैवागमे च ज्ञेयम् ॥ तिथितत्त्वे ब्रा-  
ह्मे--'सर्वत्रैव प्रशस्तोब्जः शिवसूर्यार्चनं विना' ॥ तत्रैव वाराहपाद्मयोः--  
'गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा ॥ द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्य-  
द्वयं तथा ॥ शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेव च ॥ द्वौ शंखौ नार्चयेच्चैव  
भग्नान्च प्रतिमां तथा ॥ नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं तथा ॥ गृहेग्निद-  
ग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुंधरे ॥ एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्बृही ॥  
शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं नहि ॥ विषमा नैव पूज्यास्तु विषमे-  
ष्वेक एव हि ॥ शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका ॥ खण्डितास्फु-  
टिता वापि शालग्रामशिला शुभा' ॥ वाराहे--'दद्याद्भक्त्या यो देवि शाल-  
ग्रामशिलां नरः ॥ सुवर्णसहितां दिव्यां पृथ्वीदानफलं लभेत्' ॥ तत्रैव--'यः

१--'पञ्चसूत्रविधानं च कुर्याल्लिङ्गे शुभावहम्' इति वचनात्पञ्चसूत्रमावश्यकम् । 'प-  
ञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत्। यथाकथंचिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेत्' इति च  
सिद्धान्तशेखरे । इति टीका ॥



पुनः पूजयेद्रक्त्या शालग्रामशिलाशतम् ॥ तत्फलं नैव शक्नोहं वक्तुं वर्ष-  
 शतैरपि ॥ देविपुराणे—‘ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते ॥  
 स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ’ ॥ अविभक्तानामपृथग्देवपूजा-  
 माह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः—‘पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजा-  
 तिनाम् ॥ अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत् पृथक्’ ॥ तत्रैव विष्णुध-  
 र्मे—‘शालग्रामशिलां वापि चक्रांकितशिलां तथा ॥ ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं  
 क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ’ ॥ इदं स्पर्शसहितपूजाविषयम् । ‘शूद्रो वानुपनीतो वा  
 स्त्रियो वा पतितोपि वा ॥ केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ब्राह्म-  
 ण्यपि हरं विष्णुं न स्पृशेच्छ्रेय इच्छती ॥ सनाथा मृतनाथा वा तस्या ना-  
 स्तीह निष्कृतिः ॥ स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर ॥ स्पर्शने नाधि-  
 कारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च’ इति स्कान्दात् ॥ स्पर्शरहिता तु तयोर्भव-  
 त्येव । ‘शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुंधरे ॥ स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्प-

१—‘कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता।प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोःपुत्र  
 हितैषिणी॥साक्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा!अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्ग-  
 ला’ ॥ ‘मयार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाःसुरो रगाः’ ( १०२ सर्गे ४३ )  
 इति‘संध्याकालमनाःश्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थं वरवर्णिनी’  
 ( ३५२सर्ग४९ ) इति च रामायणदर्शनेन,कादम्बर्याख्यायिकायामपि महाश्वेतावर्णने‘अथ  
 स्त्रीणायां क्षपायांभगवतींसंध्यामुपास्य शिलातलोपविष्टायां पवित्राण्यघमर्षणानि जपन्त्यां  
 महाश्वेतायां, परिसमाप्तजपा तु महाश्वेता’ इत्यादिदर्शनेन, ‘भीमोद्भवापि कृतदैवतभक्ति  
 पूजा’ इति नैषधीयचरितदर्शनेन स्त्रीणामपि विष्ण्वादिपूजने दोषाभावस्य सिद्धत्वेनास्यापि  
 श्लोकस्य ‘या सनाथा मृतनाथा वा ब्राह्मण्यपि श्रेय इच्छती सती हरं विष्णुं वा न स्पृशेत्-  
 तस्या इह निष्कृतिर्नास्ति’इत्यस्यार्थस्याश्रयणेन न कोपि विरोधः।पूर्वोत्तरवाक्येषु स्त्रीणा-  
 मित्यस्यानुपनीतानामित्येतद्विशेष्यत्वेन न तद्विरोधः।एवं च रामायणाद्येकवाक्यतया स्त्री-  
 णामधिकाराभावसूचकवाक्येषुप्रामाणिकत्वेस्त्रीपदमनुपनीतस्त्रीपरमेवव्याख्येयम्‘यत्रास्ति  
 वेदे नच यत्पुराणे रामायणे भारतसागरे वा । मन्वादिशास्त्रेषु च यद्वि नोक्तं तत्रास्ति ना-  
 स्तीति न तेन कार्यम्’इत्यभियुक्तोक्त्या वेदगृह्यरामायणादिविरुद्धस्य धर्मत्वाभावेनाधुनि  
 कषण्डितमन्यकृतस्य स्त्रीणां वेदाद्यध्ययनाद्यनधिकारित्वसूचकवचनस्य न धर्मनिर्णये उप-  
 योगः । इति दिक् ॥



शार्धिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन ॥ स्वपते नरके  
 घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदिभक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुंधरे ॥ दूरादे-  
 वास्पृशन्पूजां कारयेत्सुसमाहितः' इति वाराहोक्तेः ॥ शालग्रामशिलामात्रे नि-  
 बन्धो न प्रतिमादौ । 'सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः ॥ लिङ्गान्य-  
 पितु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च ' इति तत्रैवोक्तेः । 'चत्वारो ब्राह्मणैः  
 पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः ॥ वैश्यैर्द्वावेव सम्पूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः' इ-  
 ति स्कांदात् ॥ अन्ये तु दीक्षितविषयत्वेन व्यवस्थामाहुः ॥ विष्णुधर्मे-  
 'तयोरसंभवेर्चा वै सा चेह नवधा स्मृता ॥ रत्नजा हेमजा चैव राजती ता-  
 म्रजा तथा ॥ रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा द्रुमजा तथा ॥ अधमाधमा च  
 विज्ञेया मृन्मया प्रतिमा च या ' ॥ एषां फलानि तत्रैव ज्ञेयानि ।  
 'नाचर्या गृहेऽश्मजा मूर्तिश्चतुरंगुलतोधिका ॥ नवितस्त्यधिका धातुसंभवा-  
 श्रेय इच्छता ॥ एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता ॥ उत्तमा सा तु  
 विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा' तत्रैव पाद्मे शालग्रामं प्रक्रम्य-- 'तत्राप्यामलकी  
 तुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत् ॥ यथायथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु मह-  
 त्फलम् ' ॥ तथा-- 'यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्धं लिङ्गमुच्यते ॥ शिवनाभिरिति  
 ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ' ॥ तत्रैव -- 'शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता  
 यत्र कुत्रचित् ॥ वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम् ॥ यो मृत-  
 स्तत्समीपे तु मृतोवा नीयतेन्तिकम् ॥ स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं नचा-  
 न्यथा ' ॥ तत्रैव-- 'चक्राङ्कमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत् ॥ चक्राङ्क-  
 मिथुनात्सार्द्धं शालग्रामं प्रपूजयेत् ' ॥ तत्रैव वाराहे-- 'भ्लेच्छदेशे शुचौ वापि  
 चक्राङ्को यत्र तिष्ठति ॥ योजनानां तथा त्रीणि मम क्षेत्र वसुंधरे ' ॥ तत्रैव  
 शालग्रामं प्रक्रम्य 'क्रयक्रीता परिज्ञेया मध्यमा याचिताऽधमा' ॥ प्रयोगपा-  
 रिजाते वाराहे-- 'एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता ॥ उत्तमा सा तु विज्ञेया  
 गुरुदत्तापि तत्समा' ॥ अथ पार्थिवपूजा नन्दीपुराणे--  
 'आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सु-



स्त्री ॥ वरमिष्टं लभेद्विद्धं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥ तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं  
 सर्वार्थसाधकम् ' ॥ तत्रैव—' गोभूहिरण्यवस्त्रादिवलिपुष्पनिवेदने ॥ ज्ञेयो  
 नमः शिवायेतिमन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ सर्वमन्त्राधिकश्चायमोंकारायः षड-  
 क्षरः ' ॥ भविष्ये—'मूर्तयोष्टौशिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः ॥ आग्नेय्यन्ताः  
 प्रपूज्यास्तु वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ' ॥ अत्र 'न प्राचीमग्रतः शंभोरिति' रुद्र  
 यामले निषेधात् नान्तरालं प्राची किंतु प्रसिद्धैर्व । तिथितत्त्वे देवीपुराणे—  
 'मृदाहरणसंघट्टे प्रतिष्ठाह्वानमेव च ॥ स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम् ॥  
 हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक् ॥ शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति  
 क्रमः ' ॥ स्कान्दे—'शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत् ' । तत्रैव  
 भविष्ये—'धत्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः ॥ स गोलक्षफलं प्राप्य  
 शिवलोके महीयते' योगिनीतन्त्रे—' शिवागारे मल्लकं च सूर्यागारे च श-  
 ङ्खकम् ॥ दुर्गागारे वंशवाद्यं मधूरीं न च वादयेत् ' ॥ श्राद्धहेमाद्रौ स्कान्दे  
 'स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं वाससा आप्लुतः शुचिः' ॥ प्रयोगपारिजाते क्रि-  
 यासारे—' मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् ॥ अंगुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां  
 निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ अशून्यम-  
 स्तकं लिङ्गं सदा कुर्वीत पूजकः' ॥ शूलपाणौ लैङ्गे—' वरं प्राणपरित्यागः शिर-  
 सो वापि कर्तनम् ॥ नचैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥ सूतके मृतके  
 चैव न त्याज्यं शिवपूजनम् ' तिथितत्त्वे लैङ्गे ' विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना  
 रुद्राक्षमालया ॥ पूजितोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि  
 कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ' ॥ रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये—' ए-  
 कवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ अवध्यत्वं प्रतिस्रोतो वह्निस्तम्भं  
 करोति च ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्बोवधाद्यघनाशकत् ॥ त्रिवक्त्रो ह्यग्निज

१—' देवाग्ने स्वस्य वाप्यग्ने प्राची प्रोक्ता गुरुक्रमैः' इत्यपि द्रष्टव्यामीति टीका । २—'प्रा-  
 च्यैशान्यादिक्रमेण वामावर्तेन' आग्नेय्यन्ताः इत्युक्तेः । इति टीका ॥



न्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ॥  
 पञ्चवक्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि  
 नाशयेत् ॥ सप्तवक्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः ॥ एकादशमुखो रुद्रो ना-  
 नायज्ञफलप्रदः । द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः । त्रयोदशमुखः कामः  
 सर्वकामफलप्रदः ॥ चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः' इति ॥ तथा 'वि-  
 ना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ॥ स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्रा  
 श्वतुर्दश ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ॥ रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां  
 मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत्' ॥ यद्वा  
 ॐ अघोर ॐ ह्रीं अघोरतर ॐ ह्रीं ह्रीं नमस्ते रुद्ररूपह्यै स्वाहा, अनेना-  
 भिमन्त्र्य धारयेत् । तथा—'अष्टोत्तरशतं कार्या चतुः पञ्चाशदेव वा ॥ स-  
 त्तविंशतिमाना वा ततो हीनाधमाः स्मृताः' प्रजापतिः—'मोक्षार्थी पञ्च-  
 विंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् ॥ पुत्रार्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ॥  
 सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ॥ यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं  
 भवेत् ॥ यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सन्मुखम् ॥ तस्य प्रीतो भवेद्भु-  
 द्रः स्वपदं च प्रयच्छति' इति पदार्थादर्शो बोपदेवः—'रुद्राक्षान्कण्ठदेशे  
 दशनपारिमितान्मस्तके विंशतीद्वे षट्षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादशद्वा  
 दशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगलकृते एकमेकं शिखायां वक्ष्यस्यष्टाधिकं  
 यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः' ॥ हेमाद्रौ शिवधर्मे—'स्नानं  
 पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः ॥ पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तित  
 म् ॥ पञ्चविंशत्पलं लिङ्गे अभ्यङ्गं कारयेदथ ॥ शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रो-  
 क्तं पलशतेन च ॥ तावता मधुना चैव दद्यात् चैव ततः पुनः ॥ तावतैव च  
 क्षीरेण गव्येनैव भवेत्ततः ॥ भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैक्षवेण च ॥ रसेन  
 कारयेत्स्नानं भक्त्याचोष्णांबुना ततः' ॥ विष्णवादौ तु स्कान्दे—'क्षीरा-  
 दशगुणं दद्यात् घृतेनैव दशोत्तरम् ॥ घृतादशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा' ।



ब्राह्मे—‘देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यङ्गक्षमा भवेत् ॥ पलानि तत्र देयानि  
 श्रद्धया पञ्चविंशतिः’ ॥ इदं क्रोडीकृताभिप्रायेण । तत्रैव संग्रहे—‘विष्णु-  
 क्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् ॥ पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डे-  
 श्वराय तु’ ॥ पञ्चायतनसंनिवेशमाह बोपदेवः पदार्थादर्शश्च—‘शंभौ मध्य  
 गते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शंकरेभास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः  
 स्थापिताः ॥ देव्यां विष्णुहरेभक्त्रवयोलम्बोदरेजेश्वरेनाम्बाः शंकरभाग-  
 तोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः’ ॥ शंकरभागत ईशानकोणादारभ्यप्रदाक्षिण  
 मित्यर्थः । अत्र दिक्स्वरूपमुक्तं प्रयोगपारिजातेमन्त्रशास्त्रे—‘देवस्य मुख  
 मारभ्य दिशंप्राचीं प्रकल्पयेत् ॥ तदादि परिवाराणामङ्गाद्यावरणास्थितिः’ ॥  
 तत्र क्रमः पाद्मे—‘रविर्विनायकश्चण्डी ईशोविष्णुस्तु पञ्चमः ॥ अनुक्रमेण  
 पूज्यन्ते व्युत्क्रमेतुमहद्भयम्’ ॥ तथा—‘पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता विच  
 केशवादिमूर्तयः क्षणैः’ ॥ अथकेशवादिमूर्तयः । बोपदेवः—‘केविगोवादा-  
 पुहपप्रजाच्युक्रममात्रिना ॥ बाधोनृहसानिश्चीपाशाच्चगे विगपे  
 चपे’ ॥ अत्रकेविगवित्याद्यैः केशवविष्णवादिचतुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयन्ते ।  
 शात्शंखत् चगेचक्रगदे ज्ञेये इत्यर्थः । शिष्टेभुजे पद्मं त्वर्थतः सिद्धम् ॥ अत्र द-  
 क्षिणाधः करक्रमेण ज्ञेयम् । ‘दक्षिणोऽधःकरक्रमात्’ इति हेमाद्रौ वचनात् ।  
 तेन हेमाद्रिणा संवादः । विशब्देन विपरीतं गचे इत्यर्थः । अत्रापिशादि-  
 त्यनुवृत्तिः । शंखाद्गदाचक्रे इत्यर्थः । गपे इत्यत्रापिशादनुवर्तते । शंखा-  
 द्गदापद्मे इत्यर्थः विपरीते पद्मगदेइत्यत्रापि शंखाज्ज्ञेये । चपे चक्रपद्मे । शं-  
 खाच्चक्रपद्मे इत्यर्थः । वि इत्यत्रापि पद्मचक्रे इति । तेन चक्रगदे इत्यष्टौ

१—शंभौ मध्यगते सति विष्णुसूर्यगणेशदेव्यः, विष्णौ मध्यगे शिवगणेशसूर्यदेव्यः  
 सूर्य मध्यगे शिवगणेशविष्णुदेव्यः, देव्यां मध्यगायां विष्णुहरगणेशसूर्यः, गणेशे मध्यगेवि-  
 ष्णुशिवसूर्याम्बाः प्रादक्षिण्यक्रमेणैशानमारभ्यस्थापनीया इत्यर्थः ॥ २—अस्यार्थस्तु हेमा-  
 दिस्थमूलावलोकनतो व्यक्तो भविष्यति ॥



मूर्तयः । गणे इत्यष्टौ मूर्तयः । चपे इत्यत्र च अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।

अथ बौधायनसूत्रम् 'त्रैविक्रमीं चानुस्मृत्य लिङ्गार्चाप्रतिष्ठो-  
लिङ्गार्चाप्रतिष्ठा च्यते । यजमानः पूर्वोक्तकाले पूर्वयुः दशद्वादशषोडशान्यतर  
हस्तं मण्डपं कृत्वाग्नेये हस्तमात्रं चतुरस्रं कुण्डस्थण्डिलं वा पूर्वतो हस्तमा-  
त्रावेदीं नैर्ऋते वास्तुमण्डलमध्ये वेदीं तदुपरि सर्वतोभद्रं कृत्वा प्राणानाय-  
म्यास्यां मूर्तौ देवस्य सान्निध्यसिद्धयर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्धयक्ष-  
य्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये इतिसंकल्प्य । गणेशपूजापुण्याहवा-  
चनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि कृत्वाचार्यं चतुरक्रत्विवजश्च वृत्वा वस्त्राद्यैः  
पूजयेत् । अथाचार्यः । यदत्र संस्थितमिति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति  
कुशोदकेन भूमिं प्रोक्ष्य । देवा आयांतु, यातुधाना अपयान्तु । विष्णो  
देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वाऽस्मत्कृततुलापद्धतिमार्गेण मण्डपप्रति-  
ष्ठांकृत्वाऽकृत्वा वा पूर्वरात्रौ हिरण्योपधानं देवं पञ्चगव्याहिरण्ययवदूर्वाश्च  
त्थपलाशपर्णैरापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः पवमानः सुवर्चन  
इत्यनुवाकेनाभिषिच्य व्याहृतिभिरिदं विष्णुरिति फलयवदूर्वाः समर्प्य रक्षो-  
हणमिति हस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य । अवतेहेड उदुत्तममिति ज-  
लेधिवासयेत्' । इदं बौधायनोक्तम् ततश्चललिङ्गार्चायां वा अत्राग्निं प्रति-

१-शंखचक्रगदेताब्जैः केशवः सूर्यसप्रभः । इतो युतः । कंजकम्बु चक्रगदायुतो विष्णु  
रविप्रभः । गदाब्जशंखचक्रेतो गोविन्दो भास्करद्युतिः । वामनोऽरिगदापद्मशंखेतो रविसु-  
प्रभः । दामोदरः शंखगदापद्मचक्री रविप्रभः ॥ पद्मशंखगदाचक्रसूर्याभः पुरुषोत्तमः । सा-  
रिपद्मशंखगदो हृषीकेशोऽर्कसुप्रभः । उद्यदर्कनिभोपेन्द्रो गदाचक्राब्जशंखयुक् । मधुसू-  
रविप्रभः शंखगदाब्जारिधरो विभुः । जनार्दनश्चक्रशंखगदाब्जेतो रविप्रभः । सूर्याभोऽच्युत-  
नामाऽब्जचक्रशंखगदायुधः । उद्यदर्कनिभः कृष्णो गदापद्मारिशंखभृद् । सशंखाब्जगदाः  
चक्रः सूर्याभो मधुसूदनः । माधवश्चक्रशंखाब्जगदेतो रविसुप्रभः । त्रिविक्रमो गदाचक्रशंख-  
पद्मो रविप्रभः । नारायणः साब्जगदाशंखचक्रो रविप्रभः । शंखचक्रपद्मगदो वासुदेवो  
रविद्युतिः । रविप्रायो गदाशंखचक्राब्जेतो ह्यधोक्षजः । नृसिंहः सूर्यभः पद्मगदाशंखा-  
रिसंयुतः । सारिपद्मगदाशंखो हरिः प्रोद्यद्गविप्रभः । शंखाब्जारिगदी सूर्यप्रभः संकर्षणो  
विभुः । अनिरुद्धो गदाशंखपद्मचक्री रविप्रभः । श्रीधरोऽरिगदाशंखपद्मेतोर्कसमद्युतिः ।  
ब्रह्माभः साब्जचक्रगदाशंखोऽब्जसंयुतः । इति । इति टीका ॥



षाप्य गोक्षीरनीवारचरुं कृत्वा विष्णुश्चेत्कृत्स्नमपि श्रपयित्वाज्यभागान्ते  
 पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्धिः आज्येन चरुणा तिलैर्वा प्रत्येकम-  
 ष्टाविंशतिमष्टौ वाहुतीर्लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिभ्यो हुत्वा स्थाप्य देवमन्त्रेण  
 पूर्वोक्तसमित्तिलनैवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा हुत्वा अग्निर्यजु  
 र्भिरित्यनुवाकेन दशाहुतीर्जुहुयात् । प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवं पादनाभिशिरःसु  
 स्पृशेत् । आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भे संपातान्नयेत् । तेषां मन्त्राः ।  
 इन्द्रायेन्दो इतीन्द्रस्य । स्योनेति पृथिवीमूर्तेः । अघोरेभ्य इति तत्पतेः स-  
 र्वस्य । अग्न आयाहीत्यग्नेः । अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः । नमः शर्वाय च  
 पशुपतये चेति पशुपतेः । यमाय सोमं यमस्य । असिहिवीरिति यजमान-  
 मूर्तेः स्तुहि श्रुतं तत्पतेः उग्रस्य । अमुन्वन्तन्निर्कतेः । आकृष्णेन सूर्य-  
 मूर्तेः ॥ यो रुद्रो अग्नौ इति तत्पतेरुद्रस्य ॥ इमं मे वरुणस्य । शंनो देवी  
 जलमूर्तेः । नमो भवायेति भवस्य । आनो नियुद्गिरिति वायोः । वात  
 आवातु वायुमूर्तेः । तमीशानं तत्पतेरीशानस्य । आप्यायस्वेति कुबेर-  
 स्य । वयं सोमेति सोममूर्तेः । तत्पुरुषाय महादेवस्य । अभित्त्वा ईशा-  
 नस्य । आदित्प्रत्नस्येत्याकाशस्य ॥ नम उग्राय चेति तत्पतेर्भीमस्य ॥  
 ततो देवस्य पादौ स्पृशेत् । एवं द्वितीये हुत्वा नाभिं तृतीये मध्यं चतुर्थे  
 उरः पञ्चमे शिरः स्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायं संपातजलेन देवं अभिषिञ्चेत् ।  
 ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्यार्चां शोधयेत् । स्थिरलिङ्गार्चादौ तु ने-  
 दानीमग्निस्थापनहोमादि कार्यम् । ततो देवं नत्वा । ‘स्वागतं देवदेवेश विश्वरूप  
 नमोस्तु ते । शुद्धेपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम्’ । इति संप्रार्थ्य । उत्ति-  
 ष्ठब्रह्मणस्पते इति सक्कृत्विगुत्थाप्य पूर्वमकृतेभ्युत्तारणे अधुना वा कार्यम्  
 ‘अग्निः सप्तिम्’ इति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत् । एवमष्टस  
 सहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पठन्जलं पातयेत् । ततोर्चां द्वादशवारं मृदा  
 जलेन च प्रक्षाल्य मन्त्रवत्पञ्चगव्यं कृत्वा ‘पयः पृथिव्यामावोराजानम्’  
 इति च । ‘संस्नाप्यायस्व, दधिकाष्णः, तेजोसि, मधुवाता, आर्य-



गौरिति पञ्चामृतैः संस्त्राप्य । लिङ्गं चेत् 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' इत्यष्टाभिः संस्त्राप्य । घृतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गन्धं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सपल्लवैः चतुर्भिः कुम्भैरापोहिष्ठेति त्रिभिः 'आकलशेषु' इति च प्रत्येकं 'समुद्रज्येष्ठा' इति चतुर्भिः 'आकलशेषु' इति च मिलितैः संस्त्राप्यौदुम्बरादिपीठैर्चामुपवेश्य पारितोऽष्टदिक्षु सजलकुम्भान् संस्थाप्य तेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वा ये सप्तमृदः द्वितीये पुष्करपर्णशमीविकंकताश्मन्तकत्वचः पल्लवांश्च, तृतीयादिषु सप्तधान्यं पञ्चरत्नफलपुष्पाणि कुशदूर्वागोरोचनसम्पातोदकगन्धफलसवौषधीः क्षिप्त्वा । क्रमेण 'आपोहिष्ठा' इति तिसृभिः, 'हिरण्यवर्णाः' इति चतुर्भिः । पवमानानुवाकेन चाभिषिच्यैककुम्भे शमीपलाशवटखदिरवित्वा श्वत्थविकंकतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वा । 'अश्वत्थेवः' इत्यभिषिच्य पञ्चरत्नोदकेन 'हिरण्यावर्णाः'—इति संस्त्राप्य वाससी दत्त्वा । उपवीतादि दीपान्तं कृत्वा 'हिरण्यगर्भः' । 'य आत्मदा' । 'यः प्राणतः' । 'यस्येमे' । 'येन द्यौः' । 'यं क्रन्दसी' । 'आपोहयन्' । 'यश्चिदापो' । इत्यष्टौ पिष्टदीपान् दत्त्वा । सुवर्णशलाकया तैजसपात्रस्थं मधुघृतं च गृहीत्वा 'चित्रं देवानां' 'तेजोसि' इति मन्त्राभ्यां— 'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः ॥ हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः' इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत् । 'अञ्जन्ति त्वा' इत्यञ्जनेन मधुना वाङ्क्ता तु 'देवस्य त्वा' इति मध्वाज्यशर्कराभिरङ्क्ता तेनैवाञ्जनेन पुनरञ्जयेत् । अत्रानज्मीतिशेषः । स्थिरलिङ्गे तु स्वर्णसूच्या गन्धेन । 'ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायो माप्रियाय नमः' इत्यङ्त्वाञ्जनादिनाञ्जयेत् ॥ तत आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत् ॥ ततः कर्ता आचार्याय गामृत्विगभ्यश्च दक्षिणां दद्यात् ॥ अथाचार्यः प्रत्यूचमादौ प्रणवं वदन् पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा ॥ वंशपात्रे पञ्चवर्णोदनेन देवस्य नीराजनं कारयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात् । मन्त्रस्तु 'ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायो मादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः' । शिवमगर्हितं



कर्मास्तु स्वाहेति ॥ अश्वत्थपर्णेभूतेभ्यो नम इति । केचिदेतद्रात्रौ स्थिरप्रति-  
 ष्ठायामिच्छन्ति । अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत् । मध्ये ब्रह्माणम् ।  
 पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिलोकपालान् ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु वसून् । रुद्रान् । आ-  
 दित्यान् । अश्विनौ । विश्वान्देवान् । पितॄन् । नागान् । स्कन्दवृषौ । ब्र-  
 ह्मेशानाद्यन्तरालेषु दक्षविष्णुदुर्गास्वधाकारमृत्युरोगान् । समुद्रान् सरितः  
 मरुतः गणाधिपं चेति । मध्ये एव पृथिवीं मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य । प्रा-  
 गादि वज्रं, शक्तिं, दण्डं, खड्गं, पाशं, अङ्कुशं, गदां, शूलं, । तद्वाह्ये गौत-  
 मं, भरद्वाजं, विश्वामित्रं, कश्यपं, जमदग्निं, वसिष्ठं, अत्रिं, अरुंधतीं च ।  
 तद्वाह्ये नवग्रहान् । तद्वाह्ये ऐंशीं, कौमारीं, ब्राह्मीं, वाराहीं, चामुण्डां, वै-  
 ण्णवीं, माहेश्वरीं, वैनायकीमिति । एता नामभिरावाह्य संपूज्य । अर्चायां देवं  
 तन्मन्त्रेणावाह्य । मण्डलमध्येर्चा सुप्रतिष्ठो भवेति निवेश्य संपूज्य । वह्नौ मण्ड-  
 लदेवतानां नामभिस्त्रिलाज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा शय्यायां देवमाराध्य पुरुष  
 सूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात् । तद्यथा—पुरुषात्मने नमः ॥  
 प्राणात्मने नमः ॥ प्रकृतितत्त्वाय ॥ बुद्धितत्त्वाय ॥ अहंकारतत्त्वाय ॥ मनस्तत्त्वाय ॥  
 इतिसर्वांगे ॥ प्रकृतितत्त्वाय ॥ बुद्धितत्त्वाय ॥ हृदि ॥ शब्दतत्त्वाय ॥ शि-  
 रसि ॥ स्पर्शतत्त्वाय ॥ त्वाचि ॥ रूपतत्त्वाय ॥ हृदि ॥ एवं रसगन्धश्रोत्रत्वक्च-  
 क्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदे-  
 हतत्वानि विन्यसेत् ॥ ततः पुरुषसूक्तस्याद्यमृगद्वयं करयोः ॥ तदुत्तरं जा-  
 न्वोः ॥ तदुत्तरं कट्योः ॥ ‘तं यज्ञम्’ इति तिस्रः नाभिहृत्कण्ठेषु ‘तस्मा-  
 दश्वा’ इति द्वयं बाह्वोः ॥ ‘ब्राह्मणोऽस्य’ इति द्वयं नासयोः ॥ ‘नाभ्या’ इ-  
 ति द्वयमक्षयोः ॥ अन्त्यां शिरसि ॥ केचित्तत्त्वन्यासमन्यथैवाहुः । पुरुषप्रकृ-  
 तिमहदहंकारतत्त्वानि । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणि । आकाशवायुतेजो-  
 पृथिवीश्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनस्तत्त्वानीति । के-  
 चिदेतानि स्थिरलिङ्गादावेवेच्छन्ति । ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं  
 स्वापायत्वा मण्डलशय्ययोरन्तराले न गन्तव्यमिति प्रैषं दत्त्वा मण्डलदेवता  
 भ्यो नामभिः पायसेन चरुणा वा बलिं दद्यात् । नीवारचरुशेषेण दिग्बलि-



म् । नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाम् । स्थिरलिङ्गार्चादौ त्वयं विशेषः 'अग्निस्थापन-  
होमवज्र्यं सर्वं पूर्ववत् कृत्वा इदानीमग्निस्थापनं कृत्वा पूर्वोक्तहोमं कुर्यात् ॥  
नात्र नैवारश्वरुः विष्णुश्चेत्पूर्वोक्तहोमं कृत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा  
इदंविणुरिति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा 'विष्णोर्नुकम्' इति नाभिं स्पृ-  
ष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा । 'अतो देवेति' शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा पुरु-  
षसूक्तेन सर्वाङ्गं स्पृशेत् । स्थिरलिङ्गं चेदग्निस्थापनादि पूर्वोक्तसमिदाज्यति-  
लाहुतीर्हुत्वा । 'या त इषुः' इत्यनुवाकान्तं 'द्रोणे' 'सहस्राणि' इत्यनुवाकाभ्यां च  
प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा 'सर्वो वै रुद्रः' इति मूलं स्पृशेत् । पुनस्ता एव हुत्वा 'कद्रुद्राय  
इति मध्यं । पुनस्ता एव हुत्वा । 'नमो हिरण्यवाहवे' इत्यग्रम् । पुनस्ता एव हुत्वा  
सर्वरुद्रेण सर्वाङ्गं स्पृशेत् । ततो 'धामन्त' इति पूर्णाहुतिं जुहुयान्नवा एवमधिवा-  
सनं कृत्वा परेद्युः सद्यो वा पीठिकां स्नापयित्वा 'महीमूषु' इत्यावाह्य । 'अदिति  
र्यौः' इति स्तुत्वा । 'ह्रीं नमः' इति संपूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा । 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्प  
ते' इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्वा । पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा 'उदुत्यम्'  
इत्युत्थाप्य 'कनिकदत्' इति सूक्तेन विष्णुं 'सद्योजातम्' इति पञ्चानुवाकै-  
र्लिङ्गं गृहं प्रवेश्य पीठिकायां इन्द्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरूप्य-  
वृषमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशला-  
कामन्तरितां कृत्वा 'ॐ सुलग्ने प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इत्युक्त्वा 'अतो देवा' इति  
विष्णुं रुद्रेण च लिङ्गं स्थापयेत् । ततः प्राणप्रतिष्ठा । चला र्चादौ त्वधिवा-  
सनान्ते परेद्युः 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां  
स्तुत्वा घृते व्रीहिचरुं कृत्वा तद्देवतामन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात् ।  
अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वे स्वाहा । अनु-  
मत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा ।  
अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नयेन्नदाय स्वाहा । अग्नयेन्नपतये  
स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सर्वेभ्यो  
देवेभ्यः स्वाहा । भूर्भुवः स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृते इति । ततः 'सप्त ते' पुनस्त्वे



त्याभ्यां पूर्णाहुतिः । ततः आचार्यो 'या ओषधीः' इति सर्वौषधीःसमर्प्य । संपातोदकं देवमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य तेनैवाभिषिञ्चेत् । ततः उत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य । 'विश्वतश्चक्षुः' इत्युपस्थाय देवं ध्यात्वा जपेत् । ब्रह्मणे नमः । एवं विष्णवे रुद्राय० । इंद्रादीनष्टौ वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्योऽश्विभ्यां मरुद्भ्यः कुबेराय गङ्गादिमहानदीभ्योऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरये सर्वेशाय विश्वेभ्यो देवभ्यो ब्रह्मणे नमइति । ततः संपातोदकेन यजमानमभिषिच्य । देवं ध्यात्वा 'प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इति पुष्पाञ्जलिं निवेद्य सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं करचरणाद्यवयविनं शंखचक्राद्यायुधवन्तं निजवाहनाद्युपेतं निजहृत्कमलेऽवस्थितं सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं 'परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गमय' इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलावागतं विभाव्याऽर्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । यथा प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुःसामानि च्छन्दांसि । क्रियामयवपुः । प्राणाख्या देवता । आंवीजम् । क्रौं शक्तिः । प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः । ततः ऋष्यादीन् क्रमेण शिरोमुखहृदयगुह्यपादेषु विन्यस्य । ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आंहृदयाय नमः । ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरेसे स्वाहा ॐ टं ठं डं ढं णं उं । श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायैवषट् । ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐकवचाय हुम् । ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अघ्रायफट् । एवं आत्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् । ओं आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः । ओं आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः । ओं आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि । ॐ आं ह्रीं क्रौं अं यं रं लं वं शं षं सं हं सः । देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहेति । ततोऽर्चाहृद्यद्गुष्ठं दत्वा जपेत् 'अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्ष



रन्तु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कच्चन' इति । ततः प्रणवेन संरुध्य  
सजीवं ध्यात्वा ॥ 'ध्रुवा द्यौः' इति तृचं जप्त्वा कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च  
जप्त्वा पुरुषसूक्तेनोपस्थाय पादनाभिश्चिरः स्पृष्ट्वा । 'इहैवैधि' इति त्रिजपेत्  
ततः कर्ता 'स्वागतं देवदेवेश मद्राग्यात्त्वमिहागतः ॥ प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बल-  
वत्परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शुभाय नः ॥ सांनिध्यं तु  
सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिधातिनः ॥  
तावत्त्वयात्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया ॥ भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्व दे-  
हिनाम् ॥ येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ॥ तेन रूपेण देवेश स्वार्चा-  
यां सन्निधौ भव' इति नमेत् । एतदन्तं सर्वदेवानां समानम् । देवमन्त्रश्च  
मूलमन्त्रो वैदिको वा ग्राह्यः । अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चा वा ॐ भूः पुरुष-  
मावाहयामि । ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ भू-  
भुवः सुवः पुरुषमावाहयामीत्यावाह्य । प्रणवेनासनं दत्त्वा तेनैव दूर्वाश्यामाक  
विष्णुक्रान्तापद्ममिश्रं पाद्यम् । 'इमा आपः शिवतमाः पूताः पूततमा मेध्या  
मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रति गृह्णातु भग-  
वान् महाविष्णुर्विष्णवे नमः' इति पाद्यम् । भगवान् महादेवो रुद्राय नम इति  
लिङ्गे । इमा आपः आचमनीयास्ता जुषतामित्याचमनीयम् । अर्घ्या इत्य  
र्घ्यम् । ततो वेदमन्त्रैः संस्त्राप्य 'इदं विष्णुः' इति विष्णौ । 'नमो अस्तु नील-  
ग्रीवाय' इति लिङ्गे प्रतिसरं विस्रस्य । 'इमे गन्धाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धै-  
रलंकृताः ॥ पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः' ॥ पूता इत्यादि पूर्ववत्  
इति गन्धम् । 'इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः' ॥ पूता इत्यादि-  
माल्यम् । 'इमे पुष्पाः शुभा' इत्यादि पुष्पम् । 'वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो  
धूप उत्तमः ॥ आग्नेयः सर्वदेवानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम्' ॥ प्रतिगृह्णात्वित्या-  
दि धूपम् । 'ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियः ॥ प्रभाकरः सर्व-  
भूतानां दीपोयं प्रतिगृह्यताम्' ॥ इति दीपं दत्त्वा । 'विष्णो संकर्षण वासु  
देव प्रद्युम्नानिरुद्ध पुरुषोत्तमाधोक्षज नृसिंहाच्युतजनार्दनोपेन्द्रहरिश्चीकृष्णेति



द्वादशनामभिः केशवादिद्वादशनामभिर्वा पुष्पाणि समर्प्य ॥ तैरेव तर्पणं कृत्वा ।  
पायसगुडौदनचित्रौदनानि । ‘पवित्रं ते विततम्’ इति नैवेद्यकसरं पूर्वोक्तनाम  
भिर्हुत्वा तेनैव शार्ङ्गिणे श्रियै सरस्वत्यै विष्णवे इति हुत्वा । ‘विष्णोर्नुकं  
वीर्याणि’ ‘तदस्य प्रियमभिपाथो’ ‘प्रतद्विष्णुस्तवतेवीर्येण’ । ‘परोमात्रया  
तन्वावृधान’ । ‘विचक्रमे पृथिवीमेष एतां०’ । ‘त्रिदैवः पृथिवीमेष एतां’ ।  
इति द्वादशनामभिश्चामुष्मै स्वाहेति जुहुयात् । लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा । भवा  
य० देवाय० शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० उग्राय० भीमाय०  
महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा । तैरेव तर्पणं कृत्वा । ‘पवित्रं’ ते इति  
पायसं गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः कसरं हुत्वा । ‘भगस्य देवस्य  
पत्न्यै स्वाहा’ इत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा । ‘भवस्य देवस्य सुताय स्वाहे-  
त्याद्यैर्हरिद्रौदनं हुत्वा’ । ‘त्र्यम्बकं यजामहे०’ । ‘मानो महान्तमुत मानो०’ ।  
‘मानस्तोके तमये०’ । ‘आरात्तेगोघ्नमुतपुरुषघ्ने०’ । ‘विकिरिदविलोहित० ।  
‘सहस्राणि सहस्रशो’ इति द्वादश एतैर्हुत्वा । ‘शिवाय शंकराय सहमानाय  
शितिकण्ठाय कपर्दिने ताम्राय अरुणाय अपगुरमाणाय हिरण्यबाहवे स-  
र्पिजराय बभ्रुशाय हिरण्याय’ इति च जुहुयात् । ततः स्विष्टकृदादिहो-  
मशेषं समाप्य । पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा बलिं दद्यात् । मन्त्र-  
स्तु—‘त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे ॥ त्व-  
मेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन् प्रतिगृण्हीष्व हव्यं’ इति । लिङ्गे तु  
नारायणपदे रुद्रं शिवमिति वदेत् । ततोऽश्वत्थपर्णे भूर्भुवःस्वरोमिति हुतशेषं  
निधाय प्रदक्षिणीकृत्य विश्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः इति नत्वा आचार्याय  
शतं तदर्धतदर्धं द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्त्वा ऋत्विग्भ्योपि दक्षिणां दत्त्वा शतं  
द्वादश ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः ॥ प्रासादमात्रे नूतने तु मात्स्योक्तज-  
लाशयप्रतिष्ठाविधिमेव कुर्यात् ॥ गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि तु न भवति द्वा-  
रलोपात् । वारुणहोमस्थाने चास्तुहोमः । अन्यत्तद्वदेव । इति भट्टकमला-



पुनःप्रतिष्ठा करकृतौ लिङ्गार्चाप्रतिष्ठाविधिः ॥ ॥ अथ पुनःप्रतिष्ठा  
 तामधिकृत्य हयशीर्षपञ्चरात्रे- 'चाण्डालमयसंस्पर्शदू-  
 षिता वह्निनाथवा ॥ अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता' ॥ संस्कार्येतिशे-  
 षः । पदार्थादर्शब्राह्मे- 'खण्डिते स्फुटिते दग्धे भष्टे मानविवर्जिते ॥ याम-  
 हीने पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते ॥  
 दशस्वेतेषु नो चक्रुःसन्निधानं दिवौकसः' ॥ यागः पूजा । पशुर्गर्दभादिः ।  
 पञ्चरात्रे- 'खण्डितास्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा ॥ तस्मात्समुद्धरेत्तां  
 तु पूर्वोक्तविधिना नरः' ॥ अर्चाभङ्गादावुपवासः कार्यः- 'न राज्ञो विष्टुवेश्मी-  
 यात्सुरार्चाविष्टुवे तथा' इति विष्णुधर्मोक्तेः । सिद्धान्तशेखरे- 'चौरच-  
 ण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति ॥ शवाद्युपहते चैव प्रतिष्ठां पुनरा-  
 चरेत्' पञ्चरात्रे- 'अङ्गादङ्गादिसंधाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥ जलाधि-  
 वासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम्' ॥ शुद्धिविवेके विष्णुः- 'द्रव्यवत् कृत-  
 शौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनेन शुद्धिः' इति । अर्चाः प्रतिमाः । त-  
 द्रव्यस्य ताम्रादेरुक्तशौचं कृत्वा पुनःप्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारे-  
 प्येवम् । तद्विधिवैधायनसूत्रे- 'पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वमेकरात्रं द्विरात्र-  
 मेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्तकाले  
 पुण्याहं वाचयित्वा युग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा निशायां जलाधिवासं कृत्वा  
 श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः स्नापयित्वाऽन्यं कलशं शुद्धोदके  
 नापूर्यतस्मिन्नवरत्नानि प्रक्षिप्य तं कलशं तत्तद्रायत्र्याष्टसहस्रमष्टशतम-  
 ष्टाविंशतिवारं वाभिमन्त्र्य तेनोदकेन देवं स्नापयेत्तत्तः शुद्धोदकेन स्नापयेदष्ट-  
 सहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च ततः पुष्पाणि दत्त्वा  
 यथासंभवमर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्' इति । बुद्धिपूर्वं तु विच्छेदे पूर्वोक्तां  
 प्रतिष्ठां पुनः कुर्यात् । पूर्वोक्तविष्णुवचनात् । इदं मलमासशुक्रास्तादावपि  
 कार्यमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च देवार्चाप्रासादभेदने तु शूलपाणौ का-  
 इयपः- 'वापीकूपारामसेतुसभातडागवप्रदेवतायतनभेदने प्रायश्चित्तं चतस्र



आज्याहुतीर्जुह्यात् । इदं विष्णुर्मानस्तोके विष्णोः कर्माणि पादोस्येति  
यांदेवतामुत्सादयति तस्यै देवतायै ब्राह्मणान् भोजयेत् ' इति । शंखलिखि-  
तौ ' प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपातभङ्गेषु तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्ट-  
शतं च निपातितानाम् ' इति । समुत्थानं प्रतिक्रिया प्रतिसंस्कारः पुनः प्र-  
जीर्णोद्धारः । अष्टशतं पणा दंडश्चेत्यर्थः अथजीर्णोद्धारः-- स-  
च लिङ्गादौ दग्धे भग्ने चलिते वा कार्यः । अयं चानादिसिद्ध-  
प्रतिष्ठितलिङ्गादौ भङ्गादिदुष्टेऽपि न कार्यः । तत्र तु महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिवि-  
क्रमः । कर्त्तामुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये इत्युक्त्वा पुण्याहं वाचयित्वा  
अचार्यमृत्विजश्च वृत्वा । लिङ्गे ॐ व्यापकेश्वरहृदयाय नमः ॐ व्यापकेश्वरशि-  
रसे स्वाहेत्येवं षडङ्गं कृत्वा घोरमन्त्रं शतं जप्त्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघोरेण घृत  
सर्षपैः सहस्रं हुत्वा इन्द्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्वा जीर्णदेवं प्रणवेन संपूज्य  
ब्रह्मादि मण्डलदेवतानां होमं पूर्वोक्तं कृत्वा देवं प्रार्थयेत् । ' जीर्णभग्नमिदं  
चैव सर्वदोषावहं नृणाम् ॥ अस्योद्धारं कृते शांतिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता  
त्वया ॥ जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम् ॥ तदधस्तिष्ठतां देव प्र-  
हरामि तवाज्ञया ' इति ततः क्षीराज्यमधुदूर्वाभिः समिद्धिश्चाष्टोत्तरस-  
हस्रं शतं वा देवमन्त्रेण हुत्वाऽङ्गानां दशांशेन लिङ्गचालनार्थं सहस्रं शतं  
वा पायसेन हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत् । ' लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् ॥  
यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्र स्थाने च या विद्या  
सर्वविद्येश्वरैर्युता ॥ शिवेन सह संतिष्ठ ' इति मन्त्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत् ।  
ततोऽस्त्रमन्त्रितेन खनित्रेण खात्वा लिङ्गमादाय नद्यादौ वामदेवेन लिङ्गं प्रण-  
वेन मूर्तिं क्षिपेत् । दारुजं तु मधुनाऽभ्यज्याघोरेण दहेत् । हेमरत्नादिमयं तु  
दग्धं चलितं वा पुनस्तत्रैव स्थापयेत् । ततः शान्त्यै अघोरेण तिलैः सहस्रं  
हुत्वा प्रार्थयेत् । ' भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ॥ जीर्णलिङ्गसमुद्धारः  
कृतस्तवाज्ञया मया ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले ॥ प्राय-  
श्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं



यदि ॥ तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर' इति । ततो यजमानः प्रार्थयेत् 'गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः ॥ शान्तिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जायतामिदम्' ॥ मूर्तौ तु विशेषः—'त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्माययत्यसौ ॥ वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥ वसन्केशसहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् ॥ यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम्' इति ॥ ततो नवां मूर्तिं लिङ्गं वा कृतवोक्तविधिना स्थापयेत् । मूलं त्वग्निपुराणे स्प-

तुलसीग्रहणम्

ष्टम् । इतिजीर्णोद्धारः ॥ अथतुलसीग्रहणम् । देवयाज्ञि कुरुते स्मृतिसारे—'वैधृतौ च व्यतीपातेभौमभार्गवभानुषु ।

पर्वद्वयेच संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये ॥ तुलसीये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः' ॥ विष्णुधर्मोत्तरे—'रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना ॥ जीवितस्य विनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मवित्' ॥ तथा—'संक्रान्तावर्कषक्षान्ते द्वादश्यां निशिसन्ध्ययोः ॥ यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिस्तकम्' ॥ पाद्मे—'द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्तिके ॥ लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान्' ॥ रुद्रयामले—'द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यवचयस्तथा ॥ विष्णोश्चैव दिवास्नानं वर्जनीयं सदाबुधैः' ॥ विष्णुधर्मै—'न छिन्वात्तुलसीं विप्रो द्वादश्यां वैष्णवः कश्चित् ॥ देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थे समिधां तथा ॥ इन्दुक्षुये न दुष्येत गवार्थेद्रुतृणस्यच' ॥ ग्रहणमन्त्रस्तु पाद्मे—'तुलस्यमृतजन्मासि सदात्वं केशवप्रिये ॥ केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने' इति ॥ पारिजाते दक्षः—'समित्पुष्पकुशा-

पुष्पादेःप-  
र्युषितत्वम्

दीनां द्वितीयः प्रहरो मतः' ॥ अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वम् । भार्गवार्चने भविष्ये—'प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ॥ तुलस्या बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥ न पर्युषितदो

षोस्ति मालाकारगृहेपि च' ॥ बृहन्नारदीये—'वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्' ॥ तत्रैव पाद्मे—'तुलसी पर्युषिता नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि ॥ पद्मे पञ्चदिनात्याज्यं



शेषं पर्युषितं विदुः । ॥ स्कान्दे—‘पालाशं दिनमेकं तु पंकजं च दिनत्रयम् ॥  
 पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ’ ॥ पदार्थादर्शो वोपदेवस्त्वन्य-  
 थाह—‘बिल्वापामार्गजातीतुलसिशमिशताकेतकीभृङ्गदूर्वामन्दाभोजाहिदर्भा  
 मुनितिलतगरब्रह्मकह्लारमल्लयः ॥ चम्पाश्वारातिकुम्भीदमनमरुबकाबिल्वतो-  
 हानिशस्तास्त्रिंश ३० त्र्ये ३ का १ र्य ६ रीदशो १ १ दधि ४ निधि ९ वसु ८  
 भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् ’ ॥ अस्यार्थः—शता शतावरी । मन्दः  
 मन्दारः । अहिर्नागकेशरः । मुनिरगस्त्यः । अश्वारातिः करवीरः । कुम्भी  
 पाटलेति कैदेवनिघण्टुः । अरयः षट् । ईशा एकादश । उदधयश्चत्वारः ।  
 निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूः एकः । यमो द्वौ । बिल्वमारभ्याऽहिपर्यन्तं ग-  
 णयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादिगणयेदित्यर्थः । एतद्दिनोत्तरं पर्युषितानी-  
 त्यर्थः । टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य—‘तस्य माला भगवतः परमप्री-  
 तिकारिणी ॥ शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति क्वचित् ’ ॥ तिथित-  
 त्वे मात्स्ये—‘बिल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदले ॥ कह्लारं तुलसीं  
 चैव पत्रं च मुनिपुष्पकम् ॥ एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा’ ॥  
 स्मृतिसारावल्याम्—‘जलजानां च सर्वेषां पत्राणामहतस्य च ॥ कुशपुष्पस्य  
 रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥ न पर्युषितदोषोस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि ॥ मुकुलै-  
 र्नाचयेद्देवं पंकजैर्जलजैर्विना’ ॥ अथ शिवनिर्माल्यनिर्णयः ॥  
 शिवनिर्मा-  
 ल्यनिर्णयः सिद्धान्तशेखरे—‘धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् ॥  
 विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ अन्यदन्नादि  
 पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम् ॥ दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभक्तं तु सर्वशः ॥  
 आचार्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम् ॥ घनस्य भक्षणे तेषां पादोनं  
 लक्षमीरितम् ॥ निर्माल्ये भक्षिते लक्षपादतः शुद्धिरीरिता ॥ दानं च भक्षण-  
 समं तदर्धं तदुपेक्षणे ॥ अकामाद्भक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः ॥ ब्रह्म-  
 पञ्चकसाहस्रं धर्मेण सहितं ततः ॥ कामतो भक्षणे दीक्षा प्रायश्चित्तं नचान्य-  
 तः ॥ निर्माल्यलंघने घोरं प्रजपेद्युतं ततः ॥ स्पर्शश्च लंघनसमो विक्रयो भ-



क्षणेन च' ॥ स्मृत्यर्थसारेपि—'शैवसौरनिर्माल्ये नैवेद्यभक्षणे चान्द्रम्, अभ्यासे द्विगुणं, मत्याभ्यासे प्रतपनम् ॥ अन्यनिर्माल्येप्यनापद्येवमिति । इदं च ज्योतिर्लिङ्गाद्यतिरिक्तविषयम् । तथाच पुरुषार्थप्रबोधेभविष्ये 'ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमः ॥ तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तत्तच्छ्रु-  
कम् ॥ शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि ॥ रसलिङ्गे तथापि च सुप्र-  
सिद्धप्रतिष्ठिते ॥ हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते ॥ शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते' ॥ तथा—'बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदिस्थिते चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणं । लिङ्गे स्वयंभुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मि-  
ते ॥ सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत् ॥ यत्र चण्डाधिकारोस्ति त-  
द्भोक्तव्यं न मानवेः ॥ चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तिः' त्रैवि-  
क्रम्याम्—'बाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ॥ प्रतिमासु च स-  
र्वासु न चण्डोधिकृतो भवेत्' अत्र 'ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धा-  
रयेत् ॥ तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते' ॥ इतिस्कान्दादशुचिना न-  
ग्राह्यं शिवनिर्माल्यम् । किंतुस्नात्वेतिस्मार्ताः । अनुपनीतेन ग्राह्यमिति श्रीद-  
त्तः । शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्यमिति शैवाः । तिथितत्त्वे हेमाद्रौ परिशिष्टे—  
'अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति  
पवित्रताम्' ॥ पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण च निवेदितमित्यर्थः । शिवपुराणे  
'ये वीरभद्रशमिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः ॥ शंभोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न  
दीक्षिताः ॥ तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम्' ॥ काशीखण्डे—'जल-  
स्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः ॥ एष जालंधरो बन्धः समस्तसुखवल्लभः'  
तथा—'स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गरूपनोदकम् ॥ त्रिःपिबेत्रिविधं  
पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥ लिङ्गरूपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूढ्यभिषेचनम् ॥ ग-  
ङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः' । इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषय-  
मिति केचित् । काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्गविषयम् । काशीखण्डेरत्ने-



कृषिनिर्णयः

श्वराख्याने तथैवदर्शनादित्यन्ये ॥ अथ कृषिः । राजमार्तण्डः-  
 'ऋक्षेषूत्तरपौष्णवैष्णवमघामूलानुराधाश्विनीप्राजापत्यकरद्विदै-  
 वतगुरुप्रालेयपादेषु च ॥ निर्दोषैर्वृषभैर्हलैश्च सुमनोमालाभिरभ्यर्चितैर्दत्त्वा  
 क्षेत्रपतेर्बलिं हलधरः क्षेत्रं ततः कर्षयेत् ॥ प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्ड  
 तिथ्याश्विनी पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषक्स्वाती विशाखा तथा ॥ जीवा-  
 र्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने लग्ने च सौम्योदये सस्यानां वपने तथैव लग्ने शस्ता  
 स्तथा रोपणे ' चण्डेश्वरः--' हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये ॥  
 स्थिरलग्ने गुरोर्वारे बीजं धार्यं ज्ञशुक्रयोः ' ॥ 'अधनदाय सर्वलोकहिताय  
 देहि मे धान्यं स्वाहा ॥ लेखयित्वा इमं मन्त्रं धान्यागारे निधापयेत् ॥ सस्य-  
 वृद्धिं परां कुर्यात्पूजितं प्रतिपूजयेत् ॥ दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनमभिन-  
 वासु नारीषु ॥ व्ययमपि सस्यधनानां न बुधा बुधवासरे कुर्युः ॥ शनिवारे

वस्त्रनिर्णयः

च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः' ॥ अथ वस्त्रम् ।  
 श्रीपतिः--'रोहिणी च करपञ्चकेश्विभे ज्युत्तरासु च पुनर्वसुद्वये-  
 ॥ रेवती च वसुदैवते च भे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥ जीर्णं रवौ सतत  
 मम्बुभिरार्द्रमिन्दा भौमे शुचे बुधदिने तु भवेद्धनाय ॥ ज्ञानाय मन्त्रिणि भृ-  
 गौ प्रियसंगमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥ रोहिणीगुरुपुनर्वसु-  
 त्तरे या विभर्ति नववस्त्रभूषणे । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वा-

अलंकारवल्या-

दिनिर्णयः

रुणपि या' ॥ अथालंकारवल्यादि । दैवज्ञवल्लभः--'नास  
 त्यपूषवसुभिः करपञ्चके न मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारे ॥  
 मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति  
 सिद्धयै' ॥ ज्योतिर्निबन्धे--'हस्तानुराधमृगपूषधनिष्ठयुक्तचित्रोत्तरासु च  
 पुनर्वसुरोहिणीषु ॥ लग्ने स्थिरे रविसुतेन्दुजजीववारेहेमादिधारणविधिः कथितो  
 नराणाम्' ॥ तत्रैव श्रीपतिः--'पौष्णाश्विनीवसुकरादिषु पञ्चकेषु कौसुम्भ-  
 हेममणिविद्रुमकाचशंखाः ॥ नार्या धृता सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादि  
 तिरुष्वसुखाय भर्तुः' ॥ तत्रैव--'शंखादिवरत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु च ॥



सूचीकर्म रोहिण्यां नैव गृह्णीत भर्तुर्जीवितकांक्षिणी ' ॥ अथ सूचो-  
 कर्म । ' वासवादितिभत्वाष्ट्रमैत्रचन्द्राश्विनीषु च ॥ सूचीक-  
 र्मतनुत्राणमेभिर्कक्षैः प्रशस्यते ' ॥ अथ शय्या ॥ ' हस्तादिति  
 ब्रह्मगुरुत्तराणि पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभानि ॥ वारेषु जीवे-  
 न्दुसितेन्दुजानां शय्यासनारम्भणमुत्तमं स्यात् ' ॥ अथ  
 शस्त्रधारणम् ॥ ' पुष्ये चादितिचित्रपद्मतनये शक्रोत्तरारे  
 वती स्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे ॥ कुम्भे कीटगृहे  
 वृषे मृगपतौ चेन्दौ शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तलु-  
 रिका धार्या नृपाणां हिताः ' ॥ अथ स्वामिसेवा ।  
 चण्डेश्वरः—'रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसुवारुणयोरपि ॥ सेवेत स्वामिनं  
 भृत्यःशुभवारोदये तथा ' ॥ ज्योतिर्निबन्धे—' दासीदासादिभृत्यानां  
 कुर्यात्संग्रहणं बुधैः ॥ स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे मन्दवारे विशेषतः ' ॥ अथ  
 गजाश्वदोला ॥ स एव—' पौष्णप्रजेशादितिभद्रयानि हस्ता  
 दिषट्कश्रवणोत्तराणि ॥ दोलादिमातङ्गतुरंगमाणामारोहणे-  
 भीष्टफलप्रदानि ' ॥ अथ नृत्यम् ' हस्तः पुष्यो वासवं रोहिणी  
 च ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्व ॥ पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्वक-  
 वर्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ' ॥ अथ राजदर्शनम् ।  
 श्रीपतिः—' मृगाश्विपुष्पश्रवणश्रविष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूषभा-  
 नि ॥ मैत्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ' ॥ अथ  
 क्रयविक्रय  
 निर्णयः क्रयविक्रयौ । भाद्रद्वयत्रिदशमन्त्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतु-  
 रंगमरेवतीषु ॥ सारङ्गपाणिरजनीकरमैत्रभेषु लाभः सदैव भव-  
 तिक्रयविक्रयाभ्याम् ' ॥ वस्त्रे तु ' चित्राशतभिषा स्वाती रे-  
 वती चाश्विनी शुभा ॥ श्रवणश्च तथाप्रोक्ता वस्त्राणां क्रयणे शुभाः ' ॥ अथ  
 सेतुनिर्णयः सेतुः ' स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्ने शुभे दिने ॥ सेतूनां ब-  
 न्धनं कार्यं ध्रुवभे चार्कजीवयोः ' ॥ अथ पशुकृत्यम् ।



श्रीपतिः—‘चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमी-  
 पशुकृत्य-  
 निर्णयः षु ॥ स्थानप्रवेशो गमनं विदध्यात्पुमान्पशूनां न कदाचिदे-  
 व’ ॥ चण्डेश्वरः—‘हस्तमूलविशाखासु रेवत्यां श्रवणे तथा ॥  
 मैत्रे च वारुणे श्रेष्ठं पशुक्रयणमुच्यते ॥ पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेषु इ-  
 न्द्राग्निवाजिवसुवारुणशंकरेषु ॥ एतेषु गोमहिषदन्तितुरंगमादिनानाप्रकारपशु-  
 जातिगतिः प्रशस्ता’ ॥ अथ गजदन्तच्छेदः ॥ ज्योतिर्नि-  
 गजदन्तच्छेदः बन्धे—‘त्वाष्ट्रे वैष्णव अश्विन्यामादित्ये वसुदैवते ॥ दन्तिनां  
 निक्षेपनिर्णयः शुभदं कर्म पुण्ये हस्ते च कर्तनम्’ अथ निक्षेपः । ‘भरणीत्रीणि  
 पूर्वाणि आर्द्रालेषा मघा तथा ॥ चित्रा ज्येष्ठा विशाखा च मूलं  
 मृगपुनर्वसू ॥ एभिर्दत्तं प्रयुक्तं च यद्यन्निक्षिप्यते धनम् ॥ पृष्ठतो धावमानस्य  
 ऋणमोक्षः निर्धनो नोपपद्यते’ ॥ अथ ऋणमोक्षः । श्रीधरः—‘वा-  
 गीशमन्ददिवसांशकलत्रयुक्ते रिक्तासुमन्ददिवसे कुलिकोदये  
 च ॥ मैत्रद्वितीयपदमैत्रमुहूर्तयुक्ते राश्युद्धमे च ऋणमोक्षमुशान्तिं सन्तः’ ॥  
 राजमुद्रानिर्णयः अथ राजमुद्रा । ‘मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्र  
 वर्जम् । वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा हि  
 नौकानिर्णयः राज्ञाम्’ ॥ अथ नौः । चण्डेश्वरः । ‘पौष्णाश्विनीतुरगवा-  
 रुणमित्रचित्राशीतोष्णरश्मिवसवोनलवंत्यमूनि ॥ वारे च जीव-  
 भृगुनन्दनके प्रशस्ते नौकादिसंघटनवाहनमेषु कुर्यात्’ ॥ अथ  
 भोगनिर्णयः भोगः । ‘गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषु स्यात् ॥  
 इमश्रुक्र्म स्वात्युत्तरासु कुर्याच्छयनासनभोगभोगादि’ ॥ अथ इम-  
 श्रुक्र्म । श्रीपतिः—‘पुण्ये पौष्णे चाश्विनीष्वेदवे च शाक्रे  
 हस्ताये त्रिकेभ्योदित्याः ॥ क्षौरं कार्यं वैष्णवादित्रये च मुक्त्वा भौमादित्य-  
 पातङ्गिवारान् ॥ न स्नातभुक्तोत्कटभूषितानामभ्यक्तयात्रासमरोत्सुकानाम् ॥  
 क्षौरं विदध्यान्निशि संध्ययोर्वा जिजीविषूणां नवमे न चाह्नि’ त्रिस्थलीसेतौ  
 वृद्धगार्ग्यः—‘रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि ॥ श्राद्धाहःप्रतिपद्रिकाभद्राः



क्षौरेषु वर्जयेत् ' ॥ गार्ग्यः— 'षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा ॥ आसु सन्निहितं पापं त्रिषु तैले भगे क्षुरे ' ॥ राजमार्तण्डः— 'देवकार्येपितुः श्राद्धे रवेरंशपरिक्षये ॥ क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ' ॥ बृहस्पतिः— 'राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् ॥ श्मश्रुलोमनखच्छेदो नास्ति कालविशोधनम् ' ॥ तथा— 'क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ॥ पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तं च तीर्थके ' ॥ केचित्तूत्तरार्धमन्यथा पठन्ति 'मुण्डनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते ' ॥ नारदः 'नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे ॥ उद्वाहेखिलवारक्षे तिथिषु क्षौरमिष्टदम् ' ॥ भारते— प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयति समाहितः ॥ उदङ्मुखो वाथ भूत्वा तथायुर्विन्दते महत् ' ॥ अपराके— 'उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः ॥ केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥ दक्षिणं कर्णमारभ्य धर्मार्थं पापसंक्षये ॥ शिखाये नवसंस्कारे शिखायन्तं शिरो वपेत् ' ॥ यतीनां तु विशेषो निगमे— 'कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वाप-

येत् ' इति ॥ अन्येपि विधिप्रतिषेधाः प्रागुक्ताः ॥ अथेन्धनसंग्रहः— 'ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुवि-

ष्णुविशाखयुक्ते ॥ वारे कुजार्कभृगुनन्दनसोमजानां श्रेष्ठेन्धनस्य करणं भ-

वति प्रशस्तम् ' ॥ अथ नवान्नम् । श्रीपतिः— 'रेवती-  
नवान्नम् श्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्मतः पृथगति द्वितये च ॥ ज्युत्तरेषु गदि

नवभोजनपात्रं तं पृथुकानां प्राशनं नवनवान्नविधानम् ' ॥ अथ नव-  
भोजनपात्रम् । ज्योतिर्निबन्धे— 'भोज्यपात्रं सुधासिन्धौ

घटयेद्वा समाहरेत् । तत्रान्नप्राशनप्रोक्ते काले भोजनमाचरेत् ' ॥ अथ

१--अत्र निषेधे सत्यपीत्युपादानात्प्रायश्चित्ततीर्थयो रात्रावपि क्षौरम् । निमित्तं तु दिने एव 'श्वस्तनी वपनाक्रिया' इत्युक्तेः ॥ इति टीका । २--निषिद्धादिने क्षौरे कृते पुनस्तदोष शान्त्यर्थं विहितकाले कार्यमित्याह गर्गः । -- 'निषिद्धेषु च कालेषु क्षौरकर्म यदा भवेत् । तदोषशान्तये क्षिप्रं कुर्यात्तच्च शुभे दिने' इति । 'आनर्तोऽहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोऽदितिर्दितिः श्रीशः । क्षौरे स्मरणादिषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः ' इति ॥ इति टीका ॥



नवपर्णफलादिभक्षणम् । चण्डेश्वरः- 'मूलाश्विमैत्रक-  
 नवपर्णफला रतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णोत्तरैन्दवपुनर्वसुवासवेषु ॥ वारेषु  
 दिभक्षणम् भूमितनयार्कजवारवर्ज ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं हिताय' ॥ अथ  
 होमे आहुतिपातः । ज्योतिषे 'तरणिविद्वृगुभास्करिच-  
 होमाहुतिपात न्द्रमाः कुजसुरेज्यविधुंतुदकेतवः ॥ रविभतो दिनभं गणये-  
 त्क्रमात् प्रतिखगं त्रितयं त्रितयं न्यसेत् ॥ दिनकरार्कितमः कुजकेतवो  
 द्रुतभुजेन शुभास्त्वितरे शुभाः ॥ हवनचक्रमिदं प्रविलोक्यतां हवनकर्मणि  
 सर्वसमृद्धये' ॥ अत्र शान्तिरुक्ता विष्णुधर्मे- 'क्रूरग्रहमुखे चैव संजाते  
 हवने शुभे ॥ शान्तिं विधाय गां दद्याद्वाह्मणाय कुटुम्बिने । आयसीं प्रतिमां कृत्वा  
 निक्षिपेत्तामधोमुखीम् ॥ गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः ॥ स्वस्थां नि-  
 धाय संपूज्य तत्र होमो विधीयते' ॥ अत्रापवादः क्रियासारे- 'नित्ये  
 ज्वरादौफलम् नैमित्तिके दुर्गाहोमादौ न विचारयेत्' अथ ज्वरादौ फलम् ।  
 श्रीपतिः- 'स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासु शाके रोगोत्पत्तिर्जायते  
 यस्य पुंसः ॥ तद्वैषज्यव्यापृतो निष्प्रयत्नः स्याद्गुग्धाब्धेर्लब्धजन्मापि  
 वैद्यः ॥ व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णे समैत्रे प्राणत्राणं जायते तस्य कृच्छ्रात् ॥  
 वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद्विशत्या स्याद्वासराणां मघासु ॥ पक्षाद्धस्ते वा-  
 सवे सद्दिदैवे मूलाश्विन्योरग्निधिष्ये नवाहात् ॥ याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे  
 च नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात् ॥ आहिर्बुध्न्ये तिष्यसंज्ञे यमाख्ये प्रा-  
 जापत्यादित्ययोः सप्तरात्रात् ॥ रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निःसंदिग्धं  
 जल्पितं गर्गमुख्यैः' ॥ ज्योतिषे- 'एकाहो निधनं दशाहमनिलाद्वाणा  
 वियत्पर्वताः सप्ताङ्गा विलयश्च मासयुगुलं मासो मृतिः पक्षकः ॥ द्वौ  
 मासावथ विंशतिर्दश निशाः पक्षान्तपक्षा नखा मासौ पक्षदशान्तपक्षक-  
 कुभः पीडादिनान्यश्विभात्' ॥ दैवज्ञः- 'उरगवरुणरौद्रा वासवेन्द्रत्रि-  
 पूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः ॥ तिथिषु नवमिषष्टीद्वादशी वा च  
 तुर्थी भवति मरणयोगो रोगिणां कालहेतुः' ॥ अत्र कुम्भे हैमी नक्षत्रदेवता-



प्रतिमां संपूज्य द्वादशदलेषु संकर्षणादिद्वादशमूर्तीर्द्वादशादित्यान् वा संपूज्य  
दूर्वासमितिलक्ष्मीराज्यैर्गायत्र्या तद्देवतायै अष्टोत्तरशतं हुत्वा दध्योदनं बलिं  
दत्त्वाचार्याय गां प्रतिमां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति संक्षेपः । विशेषस्तु व्रत

भेषजम्

हेमाद्रौ पदार्थादर्शौ च ज्ञेयः ॥ अथ भेषजं चण्डेश्वरः -

‘मूलानुराधमृगतिष्यपुनर्वसौ च पौष्णाश्विनीश्रवणशुक्रकरत्र-  
येच ॥ वारेषु वाक्पतिदिनेषु सितेदुशस्ते भेषज्यभक्षणममीषु हितं नराणा-

अथारोग्य-

स्नानम्

म्’ ॥ अथारोग्यस्नानम् । श्रीपतिः-‘ इन्दोर्वारे भार्गवे च

ध्रुवेषु सार्पादित्यस्वातियुक्तेषु भेषु ॥ पित्र्ये चान्ते वापि कुर्या-  
त्कदाचिन्नैव स्नानं रोगनिर्मुक्तजन्तुः ॥ चरे विलम्बे रविभौ-

मवारि रिक्ते तिथौ स्याद्बहुले च पक्षे ॥ विष्ण्ये चरे रोगनिपीडितानां स्नानं

दन्तधावनम्

नराणां निरुजत्वकारि’ ॥ अथ दन्तधावनम् । पृथ्वीचन्द्रो-

दये विष्णुः-‘ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ नवम्यां  
भानुवारि च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत्’ ॥ नारदः-‘ चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीसंक्र-

मणेषु च ॥ नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ श्राद्धे यज्ञे च नि-

यमे तथा प्रोषितभर्तृका ॥ व्यतीपाते च संक्रान्त्यां नन्दाभूताष्टपर्वसु ॥ तैलं

क्षौरं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत्’ ॥ वसिष्ठः-‘ शन्यर्कशुक्रवारिषु कु-

जाहे व्रतवासरे ॥ जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत्’ ॥ हेमाद्रौ

स्कान्दे-‘ अभ्यङ्गे जलधिस्नाने दन्तधावनमैथुने ॥ जाते च निधने चैव त-

त्कालव्यापिनी तिथिः’ ॥ संवर्तः-‘ रवौ विवाह आशौचे वर्जयेद्दन्तधावनम्’ ॥

व्यासः-‘ अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ ॥ अपां द्वादशग-

ण्डूपैर्विदध्याद्दन्तधावनम्’ ॥ अथामलकस्नानम् । व्यासः-

आमलक-

स्नानम्

‘श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः ॥ सप्तमीं नवमीं

चैव पर्वकालं विवर्जयेत् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकै-

१-‘ तृणपर्णैः सदा कुर्यादलाभे द्वादशीं विना’ इति वाक्यसारोक्तवचनात् ‘अपां  
द्वादश-’ इत्यादि एकादशीविषयमिति केचित् ॥ इति टीका ॥



स्त्यजेत् ॥ 'ऋतुः—' षष्ठी च सप्तमी चैव नवमी च त्रयोदशी ॥ संक्रान्तौ  
रविवारे च स्नानमामलकैस्त्यजेत्' ॥ यत्तु—' नवमी दशमी चैव तृतीया च  
त्रयोदशी ॥ प्रतिपद्वादशी कृष्णा स्नानं तासु विवर्जयेत्' ॥ यच्च 'दर्श  
स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोः सुजीवतोः ॥ पुत्रः कुर्वन्निराचष्टे पित्रोरुन्नतिजी  
विते' ॥ इति कण्वयमाद्यैः स्नानमात्रं निषिद्धम् । तद्भोगार्थस्नानपरम् । न नित्य

नैमित्तिकपरमिति हेमाद्रिः ॥ अथ तैलस्नाननिषेधः कात्या-  
तैलस्नान-  
निषेधः यनः—' पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ ॥

तैलेनाभ्यज्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते' ॥ गर्गः—' पञ्चदश्यां  
चतुर्दश्यामष्टम्यां रविसंक्रमे ॥ द्वादश्यां सप्तमीषष्ठ्योस्तैलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥  
न च कुर्यात्तृतीयायां त्रयोदश्यां तिथौ तथा ॥ शाश्वतीं गतिमन्विच्छन् द-  
शम्यामपि पण्डितः' ॥ तत्रैवायुर्वेदे—' षष्ठ्यां दिनक्षयेष्टम्यामेकादश्यां च प-  
र्वसु ॥ द्वादश्यां च चतुर्दश्यां पञ्चम्यां प्रतिपत्तिथौ ॥ व्रते श्राद्धदिने जन्म-  
त्रितये श्रवणार्द्रयोः ॥ ज्येष्ठोत्तराफाल्गुनीषु व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ विष्टि-  
योगे च संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु ॥ नाभ्यङ्गं तत्र बालाणां वृद्धानां तु न  
दोषकृत्' इति ॥ व्यवहारतत्त्वे—' संक्रान्तिभद्राव्यतिपातवैधृतिषष्ठ्यष्ट-  
मीपर्वसु नार्कभूसुते ॥ स्नाने द्वितीया दशमी च गर्हिताः षष्ठ्याद्यमाद्या रद-  
धावनेऽधमाः' ॥ अस्यापवादमाह तत्रैव प्रचेताः—' सार्षपं गन्धतैलं च यत्तै  
लं पुष्पवासितं ॥ अन्यद्द्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन' ॥ आयुर्वेदे—  
' निषिद्धतिथिवारक्षग्रहणेष्वपि रात्रिषु ॥ किञ्चिद्गोघृतयुक्तं वा विप्रपादरजो-  
न्वितम् ॥ भानौ दूर्वान्वितं भौमे भूयुक्तं पुष्पयुग्गुरौ ॥ सर्वेषां सर्वदा तैलम-  
भ्यङ्गेषु न दुष्यति' ॥ मंगलेष्वप्यदोषः । ' मांगल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्वो-  
त्सवेषु च ॥ स्नेहपात्रसमायुक्तं मध्याह्नात्प्राक्तदिष्यते' ॥ इति मदनपारि-  
जाते कात्यायनोक्तेः । हेमाद्रौ बृहन्मनुः—' तैलाभ्यङ्गो नार्कवारे न भौमे  
नो संक्रान्तौ वैधृतौ विष्टिषष्ठ्योः ॥ पर्वस्वष्टम्यां च नेष्टः स इष्टः प्रोक्तान्मुक्त्वा  
वासरे सूर्यसूनोः' ॥ तिलस्नाननिषेधस्तु षट्त्रिंशन्मते 'तथासप्तम्यमावास्या-



संक्रान्तिग्रहजन्मसु ॥ धनपुत्रकलत्रार्थी तिलपिष्टं न संस्पृशेत्' ॥ अथ  
 गृहारम्भः । ज्योतिर्निबन्धे बादरायणः— 'वैशाखे फाल्गुने  
 गृहारम्भः पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके ॥ सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भार-  
 म्भः प्रशस्यते' ॥ नारदः— 'सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ॥  
 मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः' ॥ अत्र वृषसिंहवृश्चिकाः वैशाख-  
 श्रावणकार्तिकाः सौराज्ज्ञेया इति कालादर्शः । तत्रैव कारणतन्त्रे— 'स्थि-  
 रमासे स्थिरे राशौ स्थिरेशे नववेश्मनाम् ॥ कुर्वीतस्थापनंशंकोःशंभुस्थापन-  
 मेववा' ॥ कार्तिकनिषेधस्तुलापरः । 'कुम्भे माघेपि सर्वेषां मन्दिराणामुपक्रम-  
 म् ॥ महर्षयः प्रशंसन्ति धान्यागारं विहाय च' ॥ निषेधो धान्यगृहपरः ।  
 'पाकभोजनशालादौ मार्गशीर्षश्च फाल्गुनः ॥ रथ्यागेहमठादौ च सहस्यः  
 शुचिरेव तु' ॥ पौषाषाढनिषेधस्तु प्रधानगृहपरः । 'न प्रधानगृहारम्भ  
 कुर्यात्पौषे शुचावपि' इति तत्रैवोक्तेः । ज्योतिस्तत्त्वे— 'पूर्वापरास्यं तु  
 नभोन्त्यपौषे याम्योत्तरास्यं सहसि द्वितीये ॥ कार्यं गृहं जीवबुधर्क्षगार्क नी-  
 चास्तगौ जीवसितौ च हित्वा' ॥ रत्नमालायां— 'कर्कनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के  
 पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ॥ तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि व-  
 दन्ति' ॥ दैवज्ञवल्लभः— 'शोकं धान्यं पञ्चतां निःपशुत्वं स्वाप्तिं नैःस्वं  
 संगरं भृत्यनाशम् ॥ स्वश्रीप्राप्तिं वह्निभीतिं च लक्ष्मीं कुर्युश्चैत्राद्या गृहारम्भ-  
 काले' ॥ गर्गः— 'अ्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्पे मैत्रे करत्रये ॥ धनिष्ठाद्वितये  
 पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ रोहिण्यां श्रावणत्रये दितियुगे हस्तत्रये मूलके  
 रेवत्युत्तरफाल्गुनी पुरगमे मैत्रोत्तराषाढयोः ॥ शस्तं वास्तु कुजार्कवर्जितदिने  
 गोकुम्भासिंहे मुखे कन्यायां मिथुने नभःशुचिसहोराधार्कजे फाल्गुने' ॥ का-  
 लादर्शे सनत्कुमारः— 'आदित्यभौमवर्जं तु सर्वं वाराः शुभप्रदाः' ॥ वास्तु-  
 शास्त्रे— 'मार्गशीर्षे तथा पौषे वैशाखे श्रावणे तथा ॥ फाल्गुने च कृतं वेश्म-  
 सर्वसंपत्प्रदं भवेत् ॥ कार्तिके माघमासे च चैत्रे ज्येष्ठे तथाश्विने ॥ मास्या-  
 षाढे भाद्रपदे न कुर्यात्सर्वथा गृहम् ॥ द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी



तथा ॥ त्रयोदशी च दशमी पूर्णा चैकादशी तथा ॥ वेशमारम्भे शुभाय स्यु-  
विशेषाच्छुक्लपक्षगाः ' ॥ व्यवहारसारे— 'शिलान्यासः प्रकर्तव्यो गृहाणां  
श्रवणे मृगे ॥ पौष्णे हस्ते च रोहिण्यां पुष्याश्विन्युत्तरात्रये' ॥ वास्तुप्रदीपे—  
'अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् ॥ तिर्यङ्मुखैर्द्वारक-  
पाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैश्च ' ॥ लल्लः— 'स्नानं च पाकं शयनं च भो-  
ज्यं गजालयं वाजिगृहं धनस्य ॥ देवस्य पूर्वादिदिशि क्रमेण मध्ये सभा भूप  
निवेशनाय ' ॥ शिल्पशास्त्रे— 'कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शंभुकोणे  
शिखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनमकरे ईशखातं वदन्ति ॥ कुम्भे  
मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं खातवायव्यकोणे चाग्नेः कोणे मुखं वै  
वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ' ॥ तत्त्वचिंतामणौ—'यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां  
द्वात्रिंशद्वस्ततोधिकम् ॥ न तत्र चिंतयेद्धीमान्गुणानायव्ययादिकान्' ॥ राज-  
मार्तण्डः—'आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत् ॥ शिलान्यासादि  
नो कुर्यात्तथागारपुरातने ' ॥ व्यवहारतत्त्वे—' निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानु-  
कूले शुभे दिने ॥ तृणकाष्ठगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ' ॥ चण्डेश्वरः—  
'पूर्णादि त्वष्टमीं यावत् पूर्वास्यं वर्जयेद्बृहम् ॥ उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्या  
दिचतुर्दशीम् ॥ अमावास्याष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत् ॥ नवम्यादौ  
तथा याम्यं यावत्कृष्णचतुर्दशी ॥ ध्रुवं दृष्ट्वाथवा स्मृत्वा कर्तव्यं वास्तुरोपण  
म् ॥ सायाह्ने वर्जदिवसे रात्रौ त्यक्त्वा महानिशाम् ' ॥ वराहः—'दक्षिणपूर्वे  
कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमाम् ॥ शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं  
समुत्थाप्याः' ॥ कालादुर्ज्ञे वास्तुशास्त्रे—'खाते चैव शिलान्यासे वृषचक्रं  
प्रशस्यते' ॥ तच्चोक्तं शान्तिरत्ने—'चतुर्हस्तप्रमाणं तु खात्वा गतं समन्त-  
तः ॥ कुम्भोदकैः सेचयेयुः शान्तिपाठपुरःसरम् ॥ तत ईशानदिग्भागे साक्षतं  
रत्नपञ्चकम् ॥ साज्यं कुम्भं स्थिरं मुक्त्वा वास्तुपूजनपूर्वकम् ॥ कुम्भोपरि



गृहप्रवेशः शिलान्यासः कर्तव्यस्तदनन्तरम् ॥ अथ गृहप्रवेशः ॥

बृहस्पतिः—‘नन्दायां दक्षिणं द्वारं भद्रायां पश्चिमेन तु ॥  
जयायामुत्तरद्वारं पूर्णायांपूर्वतो विशेत्’ ॥ वसिष्ठः—‘कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो  
वामतोऽकं विप्रान् पूज्यानघतः पूर्णकुम्भम् ॥ हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः  
स्त्रीभिः स्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेच्च’ ॥ व्यवहारतत्त्वे—‘सौम्यायने श्रावणमार्ग-  
पौषे जन्मर्क्षलग्नोपचयोदयेशे ॥ वामं गतेर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेद्वेश्म  
भकूटशुद्धम्’ ॥ वास्तुशास्त्रे—‘लग्नात्प्रागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियो-  
जयेत् ॥ एकमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामं विचिन्तयेत्’ ॥ वसिष्ठः—‘चन्द्र-  
जार्यसितवासरेषु च श्रीकरं सुतमहार्थलाभदम् ॥ सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं  
किं तु चौरभयमत्र निर्दिशेत्’ ॥ रत्नकोशे—‘पुष्ये धनिष्ठा मृगवारुणेषु  
स्वायंभुवर्क्षे त्रिषु चोत्तरासु ॥ अक्षीणचन्द्रे शुभदे नृपस्य तिथावरिक्ते च  
गृहप्रवेशः’ ॥ नारदः—‘प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ॥ मा-  
घफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥ अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् ।  
गृहं न प्रविशेद्धीमानापदामाकरोहि तत्’ ॥ ज्येष्ठः क्षुद्रगृहपरः । वृद्धगार्ग्यः  
‘भानोश्च भौमस्य विहाय वारौ शूलादियोगानशुभान्नवापि । रिक्ता तिथि-  
श्चापि मृदुभुवर्क्षे सौम्यायने च प्रविशेद्ब्रूहाणि’ ॥ रत्नमालायाम्—‘त्वाष्ट्रमि-  
त्रशशिपुष्यदैवतान्यामनन्ति मुनयो मृदून्यथ ॥ मैत्रगे हरति भूषणाम्बरोद्गीत-  
मङ्गलविधानमेषु च’ ॥ रोहिण्युत्तरात्रयं च ध्रुवाणि । प्रवेशश्च वास्तुपूजां कृत्वा  
कार्यः । ‘जीर्णोद्दारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने ॥ नवप्रासादभवने प्रासाद-  
परिवर्तने ॥ द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च ॥ वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव  
विचक्षणः’ ॥ इति मात्स्योक्तेः । तत्रैव—‘कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकु-  
म्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ॥ दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो  
माङ्गल्यशान्तिनिलयं स्वगृहं विशेच्च ॥ गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कु-  
र्यात्प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः ॥ संतर्पयद्विजवरानथ भक्ष्यभो-



कलिवर्ज्यानि ज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सुरूपम्' ॥ अथ कलिव  
 ज्य्यानि । बृहन्नारदीये-- 'समुद्रयातुः स्वीकारः कमण्डलु-  
 विधारणम् ॥ द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥ देवराच्च सुतोत्पत्ति  
 र्मधुपर्के च गोर्वधः ॥ मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः  
 कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ॥ दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ रहः  
 प्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः ॥ इमान्धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनी  
 षिणः' ॥ कमण्डलुः--'सोदकं च कमण्डलुम्' इत्युक्तः मृन्मयो वा ।  
 दत्ताऊढा 'ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा ॥ कलौ पञ्च न कुर्वी-  
 न भ्रातृजायां कमण्डलुम्' ॥ इति हेमाद्रौ वचनात् । ऊढायाः परपुरुष-  
 संयोगादते देयेति केचन इत्यादिभिर्विवाह्यतोक्ता ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-  
 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ॥ नराश्वमेधो मयं च कलौ  
 वर्ज्यं द्विजातिभिः' ॥ गोत्राद्रोत्रजायाः पितृष्वसुः मातृसपिण्डात्मातुलात्त  
 त्कन्याया विवाहः कलौ न कार्यः । तेन यानि तद्विधायकानि तानि यु-  
 गान्तरविषयाणि । तथा व्यासः--'तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृत-  
 स्तथा ॥ शुल्केन चोद्वहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः' ॥ इति कलौ त-  
 न्निन्दामाह ॥ मातृतस्तृतीयां मातुलकन्यामित्यर्थः उक्तं चैतत्प्राक् । 'मयं  
 स्त्रीभ्यश्च सुरामाचामम्' इत्यादिना विहितमपि वर्ज्यं । हेमाद्रौ आदित्यपु-  
 राणे--'विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनम् ॥ बालायाः क्षतयोन्यास्तु  
 वरेणान्येन संस्कृतिः ॥ कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः ॥ आत-  
 तायिद्विजाश्रयाणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधि-  
 तस्यापिसंग्रहः ॥ सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमण्डलुविधारणम् ॥ महाप्रस्थानगमनं

१ 'यस्तु कार्तयुगो धर्मो न कर्तव्यः कलौ युगे । पापप्रयुक्ताश्च सदा कलौ नार्यो नरास्त-  
 था' इत्यादिपुराणवचनेन यद्यपि कृतयुगसंबन्धि धर्मसामान्यं निषिद्धं तथापि सर्वस्य तस्य  
 निषेद्धमशक्यत्वाद्विशेषानाह इति टीका । एतच्च अवैध रागप्राप्ते समुद्रयाने एव । शंखो-  
 द्दारादितीर्थे यात्राविधिनान्तरीयकं समुद्रयानम् । अतो दोषाभावात् प्रायश्चित्तमित्यन्यत्र  
 विस्तरः । इति टीका ॥ २-- नचैतद्युग एवार्जुनादीनां कथं मातुलकन्यापरिणय इति वाच्य-  
 म् । 'विहितान्यापि--' इत्यग्रिमवाक्यात् । इति टीका ॥



गोसंज्ञातिश्च गोसवे ॥ सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः ॥ अग्निहो-  
 त्रहवन्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः ॥ वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष्यमयसङ्कोचनं तथा ॥  
 प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणान्तिकम् ॥ संसर्गदोषः स्तेयान्यमहापात-  
 कनिष्कृतिः ' ॥ संसर्गदोषः 'तत्संसर्गीचपञ्चमः' । इत्युक्तः । स्तेयं च तदन्या  
 निमहापातकानि ब्रह्महत्यासुरापानगुरुतल्पानि त्रीणि । तेषां कामकृतानां मरणा-  
 न्तिकं प्रायश्चित्तं विप्राणां कलौ नेत्यर्थः । मरणान्तिके हि जातिवधनिमित्तं द्वाद-  
 शाब्दद्विगुणं ब्रह्मवधनिमित्तं च द्विगुणं भवति । तच्चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः' इति  
 निषिद्धम् । नचात्महत्याविधिना तद्वाधः तेन ह्यात्महत्यानिमित्तस्यैव बाधो न  
 जातिवधनिमित्तस्याभिन्नविषयत्वात् । संसर्गिणस्तु कामतोपि व्रतस्यैवोक्तेर्न  
 मरणान्तिकम् । नापि स्तेये तत्र राज्ञो वधकर्तृत्वात् । तेन तयोर्मरणान्त-  
 कत्वाभात् । तयोरेव निष्कृतिर्नान्येषां त्रयाणाम् युगान्तरे तु कलौ निषेध-  
 बलात् प्रवृत्तिः । एतद्विप्रपरं न क्षत्रियादेः । तदुक्तं 'विप्राणां मरणान्तिकम्'  
 इति । विशेषोऽस्मत्कृते प्रायश्चित्तरत्ने ज्ञेयः । 'वरातिथिपितृभ्यश्चपशूपा-  
 करणक्रिया ॥ दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ सवर्णान्यङ्गनादुष्टैः संसर्गः  
 शोधितैरपि ॥ अयोनौ संग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः ॥ परोद्देशान्यसंत्या-  
 ग उद्दिष्टस्यापि वर्जनम् ॥ प्रतिमाभ्यर्चनार्थाय संकल्पश्च सधर्मकः ॥ अ-  
 स्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च ॥ शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं  
 तथा ॥ षड्भक्तानशने चान्नहरणं हीनकर्मणः' ॥ माधवीये पृथ्वीच-  
 न्द्रोदये च शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् ॥ भोज्यान्नता गृह-  
 स्थस्य तीर्थसेवातिदूरतः ॥ शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिशीलता ॥ आपहृ-  
 त्तिर्द्विजाश्याणामश्वस्तनिकता तथा ॥ प्रजार्थं तु द्विजाश्याणां प्रजारणिप-  
 रिग्रहः ॥ ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखान्निधमनक्रिया ॥ बलात्कारादिदुष्टस्त्री-  
 संग्रहो विधिचोदितः ॥ यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥ नवोदके  
 दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता ॥ ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि  
 च ॥ भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणे तथा ॥ गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराच-  
 मनक्रिया ॥ पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दण्डकल्पनम् ॥ यतेः सायं गृहस्थत्वं  
 च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः ॥ निवर्ति



तानि विद्धद्विर्व्यवस्थापूर्वकं बुधैः' ॥ सुराग्रहणस्य तत्कर्तुःसंग्रहो व्यवहार-  
कः ॥ नच मद्यं चेति सामान्येन निषिद्धस्याऽनेनोपसंहार इति वाच्यम् । नि-  
षिद्धस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षत्वात् । 'नहिंस्यात्' इत्यस्य 'न  
ब्राह्मणं हन्यात्' इत्यनेनोपसंहारे हिंसान्तरस्यादोषत्वापत्तेश्च निरूपितं चैत-  
द्धेमाद्रिणाऽन्यत्रेत्युपरम्यते । सुराग्रहस्योद्देश्यस्यसौत्रामणिविशेषणाविवक्ष-  
यावाजपेयेपि निषेधः । सौत्रामण्यां तु 'पयोग्रहा वा स्युः' इत्यापस्तम्बो-  
क्तेर्वैकल्पिकपयोग्रहैरप्यधिकारः । वाजपेये तु तत्प्राप्तौ मानाभावात्सो-  
मसुरयोः सहत्यागेनांशे सुराद्रव्यत्वात्तत्प्रत्यक्षतया यागनामत्वेन तां विना  
संज्ञायोगात् कलौ नाधिकार इति युक्तं प्रतीमः ॥ त्रिकाण्डमण्डनादि-  
लिखनं तु निर्मूलमनाकरं च । वृत्तेति 'एकाहाद्वल्लणः शुद्धयेद्योगिवेदसम-  
न्वितः' इति उक्तः । आद्यस्याशौचस्य संकोचो 'नतस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्नि-  
पतनादृते' इत्युक्तस्य प्रायश्चित्तस्य विधानं उपदेशः । 'कलौ कर्तैव लिप्यते'  
इति व्यासोक्तेः । पतितसंसर्गे दोषसत्त्वेपि पातित्यं नेत्यर्थः । अन्यथा 'संसर्गः  
शोधितैरपि' इति विरोधापत्तेः । स्तेयभिन्ने महापापे रहस्यकृते प्रायश्चित्तं  
नेत्यर्थः । 'सवर्णान्या असवर्णा क्षत्रियादिस्तया दुष्टे अयोनौ शिष्यादौ 'च-  
तसस्तु प्रारित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च याः' इत्युक्तस्त्यागः । परोद्देशेन  
ब्राह्मणाद्यर्थं आत्मत्यागः । यद्वा परोद्देशात्मत्यागो गोदानं 'मनसा पात्रमुद्दि-  
श्य' इत्युक्तम् । उद्दिष्टस्य त्यक्तस्य वर्जनम् ॥ 'प्रतिग्रहसमर्थोपि' इ-

वेतनग्रहणेन  
प्रवीमापूजा

त्युक्तम् । वेतनग्रहणेन प्रतिमापूजा । 'स्वाशौचकाला-  
द्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागतः' इत्युक्तः स्पर्शः । षडि-  
ति । 'उपोषितस्त्र्यहं स्थित्वा धान्यमब्राह्मणाद्धरेत्' इ-

त्युक्तमन्नचौर्यम् । आपदि छात्रादिवृत्तिः । 'मुखेनैव धमेदग्निम्' इत्युक्तं ध-  
मनम् । 'दशाहेनैव शुद्धयेत भूमिष्ठं च नवोदकम्' इत्युक्तो दशाहः । 'गुरवे  
तु वरं दत्वा' इत्युक्ता दक्षिणा । शूद्रेषु दासगोपाले तु । 'कन्दूपकं स्नेहपकं  
यच्च दुग्धेन पाचितम् ॥ एतान्नशूद्रान्यभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत्' इत्यप-  
राकैः सुमन्तूक्ता शूद्रस्य पाकक्रिया ॥ 'पितापुत्रविवादे तु साक्षिणां त्रिपणो  
दमः' इत्युक्तः । सायंगृहत्वं 'विधूमेसन्नमुसले' इत्युक्तम् । पृथ्वीचन्द्रेण तु-



‘अटन्ति वसुधां विषाः पृथिवीदर्शनाय च ॥ अनिकेता ह्यनाहारा यत्र सा-  
यंगृहास्तु ते’ इति विष्णुपुराणोक्तो निषिद्धः। तेन ज्ञातशीलपान्थादेः श्राद्धादौ  
विनियोगो न कार्यः कलावित्यर्थ उक्तः । एतानि वर्ज्यानीत्यर्थः । निगमः--  
‘अग्निहोत्रं गवालम्बं सन्यासं पलपैतृकम् ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च  
विवर्जयेत् ॥’ अग्निहोत्रं तदर्थमाधानम् ॥ एतच्च सर्वाधानपरम् । ‘अर्धाधानं  
स्मृतौ श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तु पृथक्कृतिः ॥ सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगा-  
श्रया’ इति लौगाक्षिवचनादिति स्मृतिचन्द्रिकायाम् ॥ एतेन ‘चत्वार्यब्द  
सहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च । कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिश्रहः ॥  
संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता’ इति व्यासवचनं व्याख्यातम् ।  
सर्वाधानेपि विशेषमाह देवलः । ‘यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते ॥  
संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे’ इति ॥ अत्र पूर्वयुगाश्रितेति लौ-  
गाक्षिवाक्ये पूर्वयुगानि कृतादीनीत्येकोऽर्थः । अन्येतु युगस्य पूर्वं कलेः पूर्वं  
भागः । ‘सच चत्वार्यब्दसहस्राणि’ इति पूर्वोक्तवाक्याच्चतुश्चत्वारिंशच्छतवर्षा-  
वच्छिन्नः ॥ तस्मिन् भागे सर्वाधानं कार्यम् । तदुत्तरे तु यावद्वर्णविभागो-  
स्तीतिवाक्यात् वर्णविभागपर्यन्तमर्धाधानमित्याहुः । संन्यासस्त्रिदण्डः ॥  
इति कलिवर्ज्यानि समाप्ता ॥

इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकर-  
भट्टकृते निर्णयसिधौ तृतीयपरिच्छेदे पूर्वार्द्धे समाप्तम् ॥

१ कलौ गंगां विहाय न कोपि मुक्तिहेतुः । तथाच भविष्ये- ‘कलौ कलुषचित्तानां पापद्र  
व्यरतात्मनाम् । विधिहीनक्रियाणां च गतिर्गंगां विना नहि । सैवेह शरणं गंगा पतितत्रा-  
णनोद्यता । संसारार्णवमग्नानां भूतानां शरणार्थिनाम् । नान्यः शरणदः कश्चिदुपायो विद्यते  
क्वचित् । विना गङ्गां धर्ममयीं शरण्यां सर्वदेहिनाम् । महापातकसंहर्त्रीं सर्वसर्वार्थसा-  
धिकाम् । अनाश्रित्य तु वै गङ्गां मुक्तिमिच्छति यः कलौ । सूर्यद्रष्टुमिवोद्युक्तो जात्यन्ध  
सदृशस्तु सः’ । इत्याद्यनेकवाक्यैः कलौ गंगास्थितेर्निर्बाधतया ‘दशवर्षसहस्राणि वि-  
ष्णुस्तिष्ठति मेदिनीम् । तदर्थं जाह्नवीतोयं तदर्थं ग्रामदेवताः’ इति वाक्यं ‘अन्तिमे  
कलौ’ इति वाराहपुराणसंवादतोऽन्तिमकलिपरमेव । प्रतिकलियुगं गमनस्य प्रतिकृ-  
तयुगमागमनस्य कुत्राप्यनुल्लेखादधुनापि तत्सिद्धयनुपपत्तेश्चातस्मादष्टाविंशतितमेऽस्मि-  
न्कलियुगे एव श्रीगंगाया भूलोकतो गमनं वदन्तस्तु पण्डितमन्या एवेति दिक् ॥



श्रीः ।

## अथ तृतीयपरिच्छेदे उत्तरार्द्धप्रारम्भः ।

श्राद्धप्रकरणप्रारम्भ्यते ।

श्राद्धनिर्णयः

श्रीगणेशायनमः ॥ अथ श्राद्धनिर्णयः ॥ नानानिबन्धवैमत्य-  
भ्रान्तचित्तोद्दिधीर्षया ॥ कमलाकरसंज्ञेन क्रियते श्राद्धनिर्णयः ॥  
तत्स्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये मरीचिः—‘प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्-  
प्रियमात्मनः ॥ श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्’ ॥ ब्राह्मण-  
स्वीकारान्तश्चतुर्थ्यन्तपदोपनीतपित्राद्युद्देश्यकस्त्यागः श्राद्धमित्यर्थः । तत्र  
यद्यपि होमपिण्डभोजनानि प्रधानानीति हेमाद्रिः । ‘होमश्च पिण्डदानं च  
तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥ श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम्’ इति  
श्रीधरश्च । तथापि कचिद्विशेषं वक्ष्यामः । निमित्तभेदे भोजनस्य पिण्डानां  
वा निषेधो न प्राधान्यं निरुणाद्धि । असोमयाजिनो दधिपयोयागवत् ॥ यच्च  
शूलपाणिः—‘नित्यश्राद्धमदैवं स्यादद्वयपिण्डविवर्जितम्’ इति ॥ हारी-  
तीये नित्यश्राद्धमघादौ पिण्डनिषेधोस्ति नच प्राप्तिं विना सः । नचातिदेशं  
विना प्राप्तिः । नचाङ्गत्वेन विनातिदेशः । प्रधानस्यानतिदेशात् । सप्तमे उप-  
कारकत्वेनातिदेशोक्तेः । तेन भोजनं प्रधानं—पिण्डोङ्गम् । पिण्डदानमात्रवि-  
धिस्त्वङ्गभूतात् कर्मान्तरमेव प्रकरणान्तरन्यायादिति ॥ तन्न । ‘जातश्राद्धे

१ ‘ब्राह्मणस्वीकारान्त इति त्वशुद्धम् । पिण्डदानस्यातथात्वेनाप्राधान्यापत्तेः । इष्टा-  
पत्तौ पिण्डानां निषेधो न प्राधान्यं निरुणाद्धीति ग्रन्थासंगतेः । उपनीतत्वं च देवतात्वव्य-  
ञ्जकमात्रम् । नतु लक्षणघटकं व्यर्थत्वात् । मृतोद्देश्यकत्वं विवक्षितम् । जीवच्छ्राद्धे देवश्राद्धे  
च श्राद्धपदं गौणं कुण्डपाय्यग्रिहोत्रवत्’ इति टीका । २—‘कौण्डपायिनामयन उपसद्भिश्च-  
रित्वा मासमाग्रिहोत्रं जुहोति’ इत्यत्र जहोतिना दूरस्थस्यापि कर्मण उपस्थित्या अनु-  
वादेन मासादिरूपगुणविधिः । उपादेयवदनुपादेयस्यापि तादृशकर्मानुवादे बाधकाभा-  
वादिति प्राप्ते सर्वस्य प्रवर्तकस्य विधेर्धात्वर्थनिष्ठत्वेन कृतिविषयत्वरूपमुपादेयत्वम् ।  
एवं च मासस्यानुपादेयत्वाद्धात्वर्थ एवोपादेयत्वम् । तत्सामानाधिकरण्याच्च विधेयत्वम्  
इति विहितस्य विधानायोगाद्भेदः । प्रकृतेऽपि पुनर्विधानाद्भेद इत्यर्थः इति टीका ॥



न दद्यात् पक्वान्नं ब्रह्मण्येष्वपि ॥ न एकं भोजयेद्विजान् सच्छूद्रोपि कदा-  
 चन ' इत्याद्यैर्जातश्राद्धशूद्रश्राद्धादौ भोजनस्य निषेधेनाङ्गत्वापत्तेः—'न तौ  
 पशौ करोति' इतिवदुपजीव्यविरोधेन विकल्पापत्तेश्च ॥ तेन श्राद्धशब्दाभि-  
 धेयत्वेनोभयप्राप्तौ निषेधः पर्युदासो वा 'दीक्षितो न ददाति न जुहोति नासो-  
 मयाजी सन्नयेत्' इतिवदिति तत्त्वम् ॥ धर्मप्रदीपेपि । 'यजुषां पिण्डदानं  
 तु बहुचानां द्विजार्चनम् ॥ श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम्' ॥ तच्च  
 'पितृन् यजेत्, पितृभ्यो दद्यात्' इत्युभयप्रयोगदर्शनाद्यागदानोभयात्मकम् ।  
 'पितरो देवता' इतिपित्रुद्देश्यकत्वाद्यागतं विप्रपेक्षया च दानत्वमित्यविरु-  
 द्धम् । एतेन नायं यागः । देवतोद्देशेन त्यागो यागः यागोद्देश्या च देवते-  
 त्यात्माश्रयादिति गौडमतमपास्तं ॥ वैधशब्दविशेषोद्देश्यत्वस्य तस्येदमिति  
 स्वत्वारोपप्रतियोगित्वस्य वा देवतात्वात् । तत्रैव सुमन्तुः—'श्राद्धात्परतरं  
 नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्' ॥ आदित्यपुराणे—'न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा  
 मनसि यो नरः ॥ श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते' ॥—तद्देदानाह  
 विश्वामित्रः—'नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् ॥ पार्वणं  
 चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमम् ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं  
 स्मृतम् ॥ यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम्' इति ॥ एषां लक्ष-  
 णानि भविष्ये—'अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् ॥ वैश्वदेव  
 विहीनं तदशक्ताबुदकेन तु ॥ एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥ त-  
 दप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान् भोजयेद्विजान् ॥ कामाय विहितं काम्यमभिप्रेतार्थं  
 सिद्धये ॥ वृद्धौ यत् क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ॥ गन्धोदकतिलैर्युक्तं  
 कुर्यात् पात्रचतुष्टयम् ॥ अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ ये समाना

१—आज्यभागौ । २—पिण्डदानादेरनंगत्वेन । ३—पिण्डदानमात्रप्राधान्यवादिनां नि-  
 षिद्धपर्युदस्तपिण्डदानके, विप्रभोजनमात्रप्राधान्यवादिनां निषिद्धपर्युदस्तविप्रभोजनके  
 प्रधानासत्त्वादंगमात्रमनुष्ठेयं स्यादत उभयप्राधान्यसिद्धिस्तद्वादिनां प्रोक्तानिष्टाप्रसक्तेरि-  
 त्यर्थः । ४—'देशे काले च पात्रे च श्राद्धया विधिना च यत् । पितृनुद्दिश्य विप्रभ्यो  
 दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्' इति वचनात् इति टीका ॥



इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् ॥ नित्येन तुल्यशेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि' एतदुभयमेव स्त्रियाः । तेन स्त्रीकर्तृकं स्त्रीसंप्रदानकं चेत्युभयनियम इति कल्पतरुः ॥ 'अमावास्यां यत् क्रियते तत् पार्वणमिति स्मृतम् । क्रियते वा पर्वणि यत्तत् पार्वणमिति स्थितिः ' ॥ अत्र पर्व 'चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पौर्णिमा ॥ पर्वण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रमणं तथा' इति विष्णुपुराणोक्तं संक्रान्त्यादि ॥ 'गोष्ठ्यां यत् क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते ॥ बहूनां विदुषां संपत्सुखार्थं पितृतृप्तये ॥ क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु भोजनम् ॥ शुद्धयर्थमिति यत् प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥ निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ॥ ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमेव च ॥ देवानुद्दिश्य यच्छ्राद्धं तत्तु दैविकमुच्यते ॥ गच्छन् देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ॥ यन्नार्थमिति तत् प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः ॥ शरीरोपचये श्राद्धमर्थोपचय एव च ॥ पुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयमौपचायिकमुच्यते' ॥ गोष्ठ्यां श्राद्धकर्तृसमुदाये संभूयसामग्री-संपादनेन श्राद्धमित्यर्थः । युगपत्तीर्थादिप्राप्तौ विदुषां श्राद्धसंपदा सुखार्थं मित्रपाकाशक्तौ बहुपितृकश्राद्धमेकः कुर्यादिति कल्पतरुः शङ्खधरश्च । शुद्धिश्राद्धं प्रायश्चित्ताङ्गमिति मैथिलः ॥ अत्र पार्वणैकोद्दिष्टवृद्धिसपिण्डीकर-

श्राद्धदेशाः  
णात्मकं चतुर्विधमेव मुख्यम् ॥ तस्यैवायं प्रपञ्चः ॥ अथ श्राद्धदेशाः । मनुः 'शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् ॥

दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे- 'दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेपि वा ॥ भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः' । तत्रैव प्रभासखण्डे- 'तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतः शुभे' ॥ भारते- 'तस्य देशाः कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा सरस्वती ॥ प्रभासं पुष्करं चेति तेषु श्राद्धं महाफलम्' ॥ स्कान्दे- 'तुलसीकाननच्छाया यत्र यत्र भवेद्विज ॥

१ 'स्त्रिया अपि' इति स्त्रीशब्दः षष्ठ्यन्तश्चतुर्थ्यन्तश्चेत्याशयः इति टीका ॥

२-दक्षिणतो निम्नम् । ३-स्वतो दक्षिणाप्रवणत्वासत्त्वे खननात्तत्संपादनार्थम् । ४-भूसंस्कारो मार्जनादि । तथा च याज्ञवल्क्यः-- 'भूशुद्धिर्मार्जनाद्वाहात्कालाद्भोक्रमणात्तथा । सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहे मार्जनलेपनात्' इति टीका ॥



तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितृणां तृप्तिहेतवे' ॥ माधवीये श्राद्धोपक्रमे व्यासः—  
 'महोदधौ प्रयागे च काश्यां च कुरुजाङ्गले' ॥ शङ्खः—'गङ्गायमुनयोस्तीरे पयो-  
 ण्यमरकण्डके ॥ नर्मदाबाहुदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये ॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च  
 नैमिषे पुष्करे तथा ॥ सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥ अपि जा-  
 येत सोस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः ॥ गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्स-  
 माहितः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाश्वमेधेन  
 नीलं वा वृषमुत्सृजेत्' ॥ आदित्यपुराणे—'पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं  
 गयाशिरः ॥ महानद्याः पश्चिमेन यावद्दृग्धेश्वरो गिरिः ॥ उत्तरे ब्रह्मयूपस्य या-  
 वदक्षिणमानसम् ॥ एतद्गयाशिरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्' इति ॥ शूलपाणौ  
 बृहस्पतिः—'गङ्गायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा ॥ गयाशीर्षेऽक्षयवटे  
 पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च ॥ दृष्ट्वैतानि  
 पितृंश्चार्चन् वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥' त्रिस्थलीसेतौ वायवीये 'शमीपत्र  
 प्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्' ॥  
 सप्तगोत्राणि तु—'पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा ॥ पितृमातृ-  
 ण्वसाचैव सप्त गोत्राणि वै विदुः' इति ॥ एषां गोत्राणामेकोत्तरशतं कुलं पु-  
 रुषा इत्यर्थः । ते चोक्तास्तत्रैव—'तत्त्वानि विंशतिनृपा द्वादशैकादशा दश ॥  
 अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम्' ॥ तत्त्वानि चतुर्विंशतिः । ते च  
 द्वादश पूर्वाः । द्वादशपराः । एवमग्रेपि । प्रयोगपरिजाते पाद्मे—'शालग्राम-  
 मयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् ॥ वाराणस्यां यवाधिक्यं समंताद्योजन-  
 त्रयम्' ॥ तथा—'यत्किञ्चित्पैतृकं कुर्यात्सपिण्डं वा तदन्तिके ॥ विष्णु-  
 लोकं स गच्छेत्तु लभते शाश्वतं पदम्' ॥ तत्रैव वाराहे—'चक्राङ्कस्य तु  
 सान्निध्ये यत् कर्म क्रियते नरैः ॥ स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतां व्रजे-  
 त्' ॥ अथ निषिद्धदेशाः पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—'त्रि-  
 शंकोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षि-  
 णेन तु कीकटान् ॥ देशैश्च शंकवो नाम श्राद्धकर्मणि वर्जितः' ॥ वायवीये—



‘प्रणष्टाश्रमधर्माश्च देशा वर्ज्याः प्रयत्नतः’ ॥ यमः--‘रुक्षं कृमिहतं क्लिन्नं  
 संकीर्णानिष्टगन्धिकं॥देशं त्वनिष्टशब्दं च वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि’ ॥ तत्रैव शं  
 खः--‘गोगजाश्वादिजुष्टेषु कृत्रिमायां तथा भुवि । न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पा-  
 रक्यासु च भूमिषु’ ॥ यमः--‘परकीयप्रदेशेषु पितॄणां निर्वपेत्तुयः॥ तद्भूमिस्वा  
 मिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते’ ॥ ब्राह्मभारतयोरपि ‘परकीयगृहे यस्तु स्वा  
 न्नं पितॄस्तर्पयेद्यदि ॥ तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥ अग्रभागं  
 ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यं च जीवितम्’ ॥ श्राद्धार्हणामग्रभागश्राद्धं--तदनर्हणां  
 शूद्राणां तु मूल्यमिति केचित् षोडशीपिण्डे बान्धवानामपि पिण्डोक्तेः ‘ये  
 स्वान्धवा बान्धवावा’ इत्यादितर्पणबाधापत्तेश्चानामगोत्रपूर्वश्राद्धनिषेधो नान्य  
 चेति गौडाः। विप्रासुतस्य शूद्रापुत्रश्राद्धनिषेधो नान्यत्र । अन्नदानं चान्नत्या  
 गात्पूर्वं कार्यमिति मैथिलाः॥तत्र । अग्रभागस्य श्राद्धपरत्वे मानाभावात् अ-  
 न्नदाने निषेधाभावात् ॥ त्यागात्पूर्वं करणेऽनङ्गेन व्यवधानापत्तेः । अङ्गत्वे  
 च मानाभावात् । इदं च स्वाम्यनुज्ञाभावे॥तदुक्तं तत्रैव ब्राह्मे । ‘स्वनुल्लिप्तेषु  
 गृहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च॥श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु नोच्यते॥ किरातेषु  
 कलिङ्गेषु कौकणेषु खसेष्वपि॥सिन्धोरुत्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे॥पूर्वेण  
 करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते’ ॥ इदं काम्यविषयं । ह्यन्यथा तत्रत्यानां  
 सर्वश्राद्धाकारणापत्तेः ॥ नर्मदादक्षिणेऽपवादःस्कान्दे--‘सह्यस्य चोद्भवो यत्र  
 यत्र गोदावरी नदी ॥ पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोतिपावनः’ ॥ परकी-  
 यत्वापवादः-आदित्यपुराणे--‘अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीराणि यानि  
 च ॥ सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥ वनानि गिरयो नद्यस्ती-  
 र्थान्यायतनानि च ॥ देवखाताश्च गर्तश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते’ ॥ स्मृ-  
 तिसारे--‘नैकवासा नच द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन ॥ श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न  
 कुर्यादशुचिः कचित्’ ॥ दिवोदासीये--‘म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां



विप्रवर्जितः ॥ न श्राद्धमाचरेद्विद्वान्नचाकाशे कथंचन ॥ अथ  
 श्राद्धकालः श्राद्धकालाः ॥ ते च संक्रान्तियुगादिमहालययादयः । प्रायेण  
 परिच्छेदद्वये उक्ता एव । केचित्तूच्यन्ते । पृथ्वीचन्द्रोदये  
 वृद्धपराशरः—‘श्राद्धं वृद्धावचन्द्रेभ्यश्छायाग्रहणसंक्रमे ॥ नवोदके नवान्ने च  
 नवच्छन्ने तथागृहे ॥ नचैक्ष्वेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्वपि ॥ पितरः स्पृ-  
 ह्यन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च ॥ इति ज्ञातातपपाठः । नवोदके नवकूपवा-  
 प्यादाविति केचित् । वर्षोपक्रमे आर्द्राप्रवेश इति गौडाः । नवान्नश्राद्धे  
 विशेषो ज्योतिषे—‘ज्येष्ठार्षार्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके ॥ नवान्नभोज-  
 नश्राद्धं जन्मचन्द्रतिथौ न च ॥ आश्लेषाकृतिकाज्येष्ठामूलाजपदगेषु च ॥  
 गुरुभौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवोदनम् ॥ तत्रैव—‘वृश्चिके शुक्लपक्षे तु  
 नवान्नं शस्यते बुधैः ॥ अतः कृष्णपक्षे नेति गौडाः । मैथिलास्तु—‘अकृ-  
 ताग्रयणं चैव धान्यजातं नरोत्तम’ इति वराहोक्तेः प्रतिधान्यं श्राद्धमाहुः । तन्न ।  
 जातपदस्य श्राद्धयोग्यसमूहपरत्वात् । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः—‘ग्रहोपरागे च  
 सुते च जाते पित्र्ये गयायामयनद्वये च ॥ नित्यं च शङ्खे च तथैव पक्षे  
 दत्तं भवेन्निष्कसहस्रतुल्यम् ॥ शङ्खः प्राहुरमावास्यां क्षीणचन्द्रां द्विजोत्तमाः ॥  
 अष्टकासु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं तथाऽक्षयम् ॥ तत्रैव शंखः—‘यदा विष्टि-  
 र्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च ॥ पद्मकं नाम तत् प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुण-  
 म् ॥ याज्ञवल्क्यः—‘अमावास्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ॥  
 द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः ॥ व्यतीपातोग्रच्छाया ग्रहणं चन्द्र-  
 सूर्ययोः । श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥ कृष्णपक्षः  
 सर्वोपि । ‘शाकेनापरपक्षं नातिक्रमेत मासि मासि वाऽशनम् ॥ इ-  
 ति श्रुतेः ‘ऊर्ध्वं वा चतुर्थ्या यदहः संपद्यते ऋतेचतुर्दशीम् ॥ इति कात्या-  
 यनोक्तेः ‘मासिमासि कार्यमपरपक्षस्यापराण्हः श्रेयान् ॥ इत्यापस्तंबोक्तेश्च  
 वीप्सया सर्वकृष्णपक्षेषु नित्यम् । तेनोपसंहारान्महालयपरत्वं परास्तम् ।  
 अत्र प्रत्यहं १ पञ्चम्यादि २ यदहः संपत्तिर्वा ३ इति त्रयः पक्षाः । यदैकदिने श्राद्धं  
 तदा दार्श पृथगेव । याज्ञवल्क्येनामावास्यायाः पृथङ्निर्देशात् ॥ ॥ एतेन



कृष्णपक्षे यदहःसम्पद्यते अमावास्यायां तु विशेषेण इति निगमोक्तेर्गुणोऽपर-  
 पक्षश्राद्धस्यामावास्येति शूलपाणिमतमप्यपास्तम् ॥ 'अशक्तौ दर्शेनापि मा-  
 सिश्राद्धसिद्धिः इति नारायणवृत्तिः निरग्निकानां कस्मिंश्चिद्दिने । आहिताग्नेस्तु  
 दर्शेणैव । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः' इति मनूक्तेः । सर्वकृष्णपक्षाश-  
 क्तौ मात्स्ये—'अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥ कन्याकुम्भवृषस्थर्के  
 कृष्णपक्षे च सर्वदा' ॥ कर्कोपि—'आहिताग्नेः संवत्सरे त्रिःश्राद्धनियमः' इति ।  
 देवलः—'अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत् ॥ द्विश्चतुर्वा यथाश्राद्धं  
 मासेमासे दिनेदिने' ॥ कृष्णपक्षेष्वपि महालयस्य श्रेष्ठत्वम् । तच्चोक्तं प्राक् ॥  
 व्यतीपाते विशेषमाह हेमाद्रौ शङ्खः—'फलं लक्षघ्नमुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्य-  
 ते ॥ पतने शतकोट्यस्तु पाते वै दत्तमक्षयम्' ॥ ज्योतिःशास्त्रे—'द्वाविं-  
 शतिस्तथोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः ॥ पतने दशनाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः'  
 अन्त्यौ च द्वौ व्यतीपातौ प्रागुक्तौ । हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—'यदा च श्रोत्रि-  
 योभ्येति गृहं वेदविदग्निचित् ॥ तेनैकेनापि कर्तव्यं श्राद्धं च विषुवच्छुभम्' ॥ इदं  
 चापिण्डं कार्यमिति हेमाद्रिः । एतज्जीवत्पितृकोपि कुर्यात् । 'उद्वाहे पुत्रज-  
 नने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे ॥ तीर्थे ब्राह्मण आयाते षड्वेते जीवतः पितुः'  
 इति मैयत्राणीयपरिशिष्टोक्तेः । तिथिविशेषे फलविशेषो यज्ञवल्क्येनो-  
 क्तः । 'कन्यांकन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि ॥ द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं  
 द्विशफैकशफास्तथा ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरौप्ये सकुप्यके ॥ ज्ञा-  
 तिश्चैष्ट्यं सर्वकामानामोति श्राद्धदः सदा ॥ प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा  
 चतुर्दशीम्' ॥ एताः कृष्णपक्षस्था एव । महालये तु फलभूमेति पृथ्वीच-  
 न्द्रोदयः । पौर्णमास्यां हेमाद्रौ पितामहः—'अमावास्यां व्यतीपाते  
 पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ विद्वान्श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते' ॥ एतन्मा-  
 ध्यादिपरम् । 'व्रीहिपाके च कर्तव्यं यवपाके च पार्थिव ॥ पौर्णमासी  
 तथा माघी श्रावणी च नृपोत्तम ॥ श्रौष्ठपद्यामतीतायां तथारुष्णत्रयोद-  
 शी ॥ एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः' इति विष्णुधर्मोक्तेः ।



विष्णुः—‘माघी प्रौष्ठपयूध्वं कृष्णा त्रयोदशी’ इति । अत्र माघी पौर्ण-  
मासीति कल्पतरुः ॥ ‘श्रावणयूध्वमपि माघयोगसंभवात्रयोदशीविशेष-  
णम्’ इति गौडाः ॥ नक्षत्रेष्वपि याज्ञवल्क्यः—‘स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौ-  
र्यं क्षेत्रं बलं तथा ॥ पुत्राञ्छैष्ठ्यं च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ॥  
प्रवृत्तचक्रतां वापि वाणिज्यप्रभृतीनापि ॥ अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां  
गतिम् ॥ धनं वेदान्भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्यजाविकं ॥ अश्वानायुश्च विधि-  
वधः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥ कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामान्प्राप्नुयादिमान् ॥  
फलन्तराण्यपि महाभारते कौर्मादेर्ज्ञेयानि । माधवीये मरिचिः—‘कृत्ति-  
कादिषु ऋक्षेषु श्राद्धे यत्फलमीरितम् ॥ विष्कम्भादिषु योगेषु तदेव फलमि-  
ष्यते’ ॥ बृहस्पतिः ‘आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणां च पराजयम् ॥ स  
र्वान्कामान्प्रियां विद्यां धनमायुर्यथाक्रमम् ॥ सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्ध-  
कृत्कृते फलम् ॥ बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकृत्कृते फलम्’ ॥ अन्यानि च ष  
ण्णवतिश्राद्धादीनि प्रागुक्तानि । मार्कण्डेयपुराणे—‘श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा  
दुःस्वप्नदर्शने ॥ जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥ अथ श्राद्धा-

धिकारिणः ॥ चन्द्रिकायां सुमन्तुः—‘मातुः पितुः प्रकुर्वीत-  
श्राद्धाधिका  
रिनिर्णयः  
संस्थितस्यौरसः सुतः ॥ पैतृमेधिकसंस्कारं मन्त्रपूर्वकमा-  
दितः’ ॥ तत्रैव हेमाद्रौ श्राद्धः—‘पितुः पुत्रेण कर्तव्याः पिण्ड-  
दानोदकक्रियाः ॥ पुत्राभावे तु पत्नी सौत्तदभावे तु सोदरः’ ॥ अत्र यद्यपि  
पुत्रपदं क्षेत्रजादिद्वादशविधपुत्रपरम् । ते च द्वादशपुत्रा याज्ञवल्क्येनोक्ताः—  
‘औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः ॥ क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणे-  
तरेण वा ॥ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः ॥ कर्त्तव्यः कन्य-  
काजातो मातामहसुतः स्मृतः ॥ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवस्तथा ॥  
दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृ-  
त्रिमः स्यात्स्वयंकृतः ॥ दत्तान्मातुः स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोदजः ॥ उ-

१—‘आहतः’ इति पाठे श्राद्धबीजभूता श्राद्धा बोध्या ॥



त्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत्सुतः । पिण्डदोशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः  
 परः' इति ॥ तथापि 'दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः' इति हेमाद्रावादित्य  
 पुराणे कलावितरेषां पुत्रत्वनिषेधादौरसदत्तकपरमेव ॥ यद्यपि 'पिण्डदोशह  
 रश्चैषां पूर्वाभावे परःपरः' इति याज्ञवल्क्योक्तेरौरसाभावे दत्तकप्राप्तिः,  
 तथाप्यौरसाभावे पौत्रः, तदभावे प्रपौत्रः, तदभावे दत्तकादयः इति ज्ञेयं  
 'पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति  
 विष्टपम्' इति जीमूतवाहनधृतवसिष्ठहारीतशंखलिखितोक्तेः 'लोका-  
 नन्त्यं दिवः प्राप्तिं पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च 'पुत्रः पौत्रश्च तत्पु-  
 त्रः पुत्रिकापुत्र एव चापत्नी भ्राता च तज्जश्च पिता माता स्नुषा तथा । भगिनी  
 भागिनेयश्च सपिण्डः सोदकस्तथा ॥ असंनिधाने पूर्वेषामन्तरे पिण्डदाः स्मृ-  
 ताः' इति स्मृतिसंग्रहे 'प्रपौत्रानन्तरं पुत्रिकापुत्रोक्तेस्तत्समत्वाच्च दत्तक-  
 स्य' यद्यपि बृहस्पतिना—'पुत्रश्च पुत्रिकापुत्रः स्वर्गप्राप्तिकरावुभौ' इति  
 च पिण्डदाने च समानौ परिकीर्तितौ' इति पौत्रसाम्यमुक्तम् । याज्ञवल्क्येन  
 च—'औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः' इति औरससाम्यम् । तथा-  
 पि—'लोके राजसमोमन्त्री' इत्यादौ किञ्चिद्भूयूने समशब्दप्रयोगात् । गौणमुख्य  
 योः साम्ययोगाच्च स्तुत्यर्थं तत् न तु समविकल्पः' इति भमितव्यम् । 'पुत्रः  
 पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसंततिः । सपिण्डसंस्मृतिर्वापि क्रियार्हा नृप जा-  
 यते । तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः । मातृपक्षसपिण्डेन सम्बन्धो यो  
 जलेन वा । कुलद्वयेपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप । तत्संघातगतै-  
 र्वापि तद्विक्थात्कारयेन्नृप' इति विष्णुपुराणाच्चेति प्रपौत्रानन्तरं दत्तकादय  
 इति पृथ्वीचन्द्रमदनरत्नकालादर्शादयः । मदनपारिजातेप्येवम् । बोप  
 देवरुद्रधरादयस्तु—'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम्' इति सुम-  
 न्तूक्तौ 'पितामहः पितुः पश्चात्पश्चत्वं यदि गच्छति ॥ पौत्रेणैकादशा-  
 हादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः' इति  
 च्छन्दोगपरिशिष्टे च पुत्रशब्दस्य द्वादशविधसुतपरत्वात् 'पूर्वाभावे परःपरः



इत्यस्यानन्यपरत्वाच्च दत्तकाद्यभावे पौत्रदीनामप्यधिकारः इत्याहुः । त-  
 द्गौणमुख्ययोः साम्यायोगादत्तके सति पौत्रस्यांशहरत्वस्याप्यभावापत्तेः पुत्रप-  
 दस्यैरसमात्रपरत्वाच्चिन्त्यम् । अत एव निषेधादुपनीतपौत्रसत्त्वेऽप्यनुपनीतपु-  
 त्रस्यैवाधिकारः ॥ 'औरसश्चानुपनीतोपि कुर्यात्' इत्याह पृथ्वीचन्द्रोदये सुम-  
 न्तुः—'श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः ॥ व्रतस्थो वाव्रतस्थो वा  
 एक एव भवेद्यदि' ॥ वृद्धमनुः—'कुर्यादनुपनीतोपि श्राद्धमेको हि यः सुतः ॥  
 पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयाद्ब्रह्मणस्य सः' ॥ एको मुख्य औरस इत्यर्थः ॥  
 मनुः—'न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिवन्धनात् । नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म  
 स्वधानिनयनादते' ॥ ब्रह्म वेदः ॥ सुमन्तुरपि—नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म यावन्मौ-  
 ञ्जी निबध्यते । मन्त्राननुपनीतोपि पठेदेवैक औरसः' ॥ अयं मन्त्रपाठः त्रिव-  
 र्षकृतचूडस्यैव 'अनुपेतोपि कुर्वीत मन्त्रवत्पैतृमेधिकम् । यद्यसौ कृत-  
 चूडः स्याद्यदि स्याच्च त्रिवत्सरः' इतिसुमन्तूक्तेः ॥ यत्तु व्याघ्रः—'कृतचूड-  
 स्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च । स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत्' इति ।  
 यच्च स्मृतिसंग्रहे—'कृतचूडोऽनुपेतश्च पित्रोः श्राद्धं समाचरेत् । उदाहरेत्स्वधा-  
 कारं न तु वेदाक्षराण्यसौ' इति । तत् प्रथमवर्षचूडाविषयमिति माधवमदनरत्न  
 पृथ्वीचन्द्राः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वं मन्त्रवत्त्वस्य विकल्प इति चन्द्रिका बोप्पदेवश्च ।  
 दत्तकादिपरो निषेध इति वयम् ॥ मदनरत्ने स्कान्दे—'यज्ञेषु मन्त्रवत्कर्म  
 पत्नी कुर्याद्यथा नृप ॥ तथोर्ध्वदैहिकं कर्म कुर्यात्सा धर्मसंस्कृता' ॥ अशक्तौ  
 तु कात्यायनः—'असंस्कृते तु पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम् ॥ कर्तव्य-  
 मितरत्सर्वं कारयेदन्यमेव हि' ॥ पुत्रश्च न जन्मतोधिकारी । किंतु वर्षोत्तरभि-  
 त्याह कालादर्शः 'चौलादाद्यान्दिकादर्वाङ्नि कुर्यात्पैतृमेधिकम् । पुत्रश्चोत्प-  
 त्तिमात्रेण संस्कुर्यादृणमोचनात् । पितरं नान्दिकाच्चौलात्पैतृमैधेन कर्मणा' ॥  
 एतच्चौरसस्यैव । दत्तकादीनां तूपनीतानामेवाधिकार इति कालादर्शः । पृ-

१-ऋणमोचनस्य हेतुत्वम् अध्ययनतो वसतीतिवत् । २ आ आन्दिकात् इति छेदः  
 प्रथमवर्षीयचौलादिनेति तदर्थः इति टीका ।



श्वीचन्द्रोदयेपि स्कान्दे- 'पित्रोरनुपनीतोपि विदध्यादौरसः सुतः । औ-  
 र्वदैहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः' इति ॥ अन्यत्रापि दर्शमहाल-  
 यादावनुपनीतस्याधिकारोस्माभिः पूर्वमुक्तः । प्रपौत्राभावे दत्तकादय एकादश  
 पुत्राः । तदभावे भर्तुः पत्नी तस्याश्च सः । 'अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती  
 व्रते स्थिता ॥ पत्न्येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च' इति वृद्धमनूक्तेः  
 'भार्यापिण्डं पतिर्दद्याद्भर्त्रे भार्या तथैव च । श्वश्रादेश्च स्नुषा चैव तदभावे  
 सपिण्डकाः' इति ॥ 'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे तु सोदरः' इति च  
 हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ॥ पृथ्वीचन्द्रस्तु- 'कानीनगूढसहजपुनर्भूतनयाश्च ये ॥  
 पत्न्यभावे विकुर्युस्ते अप्रशस्ताः स्मृता हि ते' इति स्मृतिसंग्रहात् पत्न्य-  
 भावे कानीनादय इत्याह । पत्युरपि सपत्नीपुत्रे सति नाधिकारः । 'पितृप-  
 त्न्यः सर्वा मातरः' इति सुमन्तूक्तेः 'विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्वदैहि-  
 कम् । तदभावे सपत्नीजः क्षेत्रजायाः स्मृतास्तथा ॥ तेषामभावे तु पतिस्तदभावे  
 सपिण्डकाः' इति मदनरत्ने कात्यायनोक्तेश्च ॥ 'बह्वीनामेकपत्नीनामेष एव  
 विधिः स्मृतः ॥ एका चेत् पुत्रिणी तासां सर्वासां पिण्डदस्तु सः' इति बृह-  
 स्पतिवचनाच्च ॥ अपराकैप्येवम् ॥ तेन यच्छुद्धिविवेके उक्तं सत्यपि सपत्नी  
 पुत्रे पत्युरेवाधिकारः' इति । तन्निरस्तम् । यच्च तत्रैव कात्यायनः- 'न  
 भार्यायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि कचित्' ॥ यच्च विष्णुपुराणम्- 'कुल-  
 द्वयेपि चोत्सन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप' इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणम्-  
 'सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम्' इति ॥ तदासुरादिविवाहोदावि-  
 षयम् ॥ 'धर्म्यैर्विवाहैरूढा या सा पत्नी परिकीर्तिता ॥ क्रैयक्रीता तु या नारी

१ अत्र द्वावुपन्यासौ 'न भार्यायाः--' इत्याद्यः 'कुलद्वयेपि च' इति द्वितीयः । त-  
 त्र प्रथमतो द्वितीयं निरस्यति- तदासुरेत्यादि । अयं भावः- स्त्रीपदद्वयं न पत्नीपरम् अ-  
 मन्त्रकम् इत्यनेन विरोधात् । पत्न्याः समन्त्रकर्माभिानात् । पुत्राभावे पत्नीविधानेन सर्वा-  
 भावे विधानासम्भवाच्च । किंतु तदन्योदापरम् । एवंच 'कुलद्वयेपि चोत्सन्ने--' इति मा-  
 तुलाद्यभावे बान्धवान्ताभावे वा ऽस्या निवेशो युक्त इति । एतेन मन्त्रवक्तृक्रियाकर्त्री पत्नी,  
 तदभावेऽमन्त्रकक्रियाकर्त्र्य एता इत्यपाकृतम् इति टीका । २ 'कन्यामुपयच्छेत इति वि-  
 धिसत्त्वेपि क्रय एव यज्ञसंयोगादिविघटक इति न भुजिष्यायाः पत्नीत्वमित्यर्थ इति टीका ॥



न सा पत्न्यभिधीयते । न सा दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां मुनयो विदुः । इति माधवीये शातातपोक्तेः ॥ यत्तु शूद्धिरत्नाकरः शूलपाणिश्च—‘अपुत्रस्य च या पुत्री सापि पिण्डप्रदा भवेत् ॥ तस्यपिण्डान् दशैकं वा एकाहेनैव निक्षिपेत्’ इतिजाबालोक्तेः ‘भर्तुर्धनहरा पत्नी तां विना दुहिता स्मृता ॥ अङ्गादङ्गात्संभवति पुत्रवदुहिता नृणाम्’ इति बृहस्पतिना दुहितुर्धनहारित्वोक्तेः श्व पुत्राभावे कन्या तदभावे सपत्नीपुत्रः’ इत्याहतुः । तत्पूर्वविरोधात् ‘मातुर्दुहितरः शेषमृणंताभ्यक्तनेवये’ इतिदुहितुर्मातृधनग्राहित्वेन पुत्रस्य तच्छ्राद्धानधिकारापत्तेश्चोपेक्ष्यम् । वचनं तु भ्रातृपुत्राद्यभावविषयम् ॥ पत्न्यभावे अविभक्तस्य सोदरः पूर्वोक्तशङ्खवचनात् । विभक्तस्य तु दुहिता—धनहारित्वात् पूर्वोक्तजाबालवचनाच्च । तत्राप्यूढानूढसमवाये ऊदैव । ‘दुहिता पुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तु संस्कृता ॥ आशौचमुदकं पिण्डमेकोद्दिष्टं सदा तयोः इति भरद्वाजोक्तेः ॥ तदभावे दौहित्रः धनहारित्वात् । ‘मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदैहिकम् ॥ कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भक्ष्यते व्रतात्’ इतिचन्द्रिकायां वृद्धमनूक्तेः । ‘यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात्क्रियां नृप ॥ उदकाद्यां महाबाहो दौहित्रोपि तथार्हति’ इत्यपराकैर्भविष्योक्तेश्च । एतद्धनहारिणः आवश्यकं नान्यस्येत्याह तत्रैव स्कान्दे—‘श्राद्धं मातामहानां तु अवश्यं धनहारिणा ॥ दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यै कर्तव्यं पूर्वमुत्तरम्’ इति । तेन दौहित्रोत्रपुत्रीकृत इति देवयाज्ञिकोक्तिः परास्ता ॥ अत्र पत्नीदौहित्रसमवायेऽशहर्त्वात्पत्न्येव कुर्यात् । दौहित्रभ्रातृपुत्रसत्त्वे विभक्तस्य दौहित्रः, अविभागे भ्रातृपुत्रः । भ्रातृतत्पुत्रसत्त्वे कनिष्ठश्चेत् भ्रातैव । ज्येष्ठश्चेत्तत्पुत्रः कुर्यादिति दाक्षिणात्यग्रन्थाः । हारलतादौ तु—‘भ्रातुर्भाता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न

१—‘न भार्यायाः पतिः—’ इत्यादि पूर्वोपन्यासे ‘आसुरादिविवाहोदापरम्’ इति परिहारोऽसंगतः, तस्यामपि मृतायां पत्युरेवाधिकारादित्याशंक्य समाधत्ते—वचनं त्विति ‘भार्यापिण्डं पतिर्दद्यात्’ इति वचनं त्वित्यर्थः । भ्रातृपुत्रेति । तथाच पुत्रीकृतभ्रातृपुत्रसत्त्वे ‘न भार्याया—’ इति निषेधः । यद्वा पुत्रीकृतेति नाध्यहार्यम् । वचनं पुत्रीपिण्डदानवचनं भ्रातृपुत्राभावे भ्रातृपुत्रादिनृपान्ताभावे इत्यर्थः इति टीका ॥



विद्यते । तस्य भ्रातृसुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहोदरः' इति ब्राह्मोकेः 'पत्नी  
 कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः' इतिकौर्माच्च ज्येष्ठभातैव कुर्यान्न तत्पु-  
 त्रः ॥ यत्तु 'नानुजस्य तथाग्रजः' इति तत् कनिष्ठभ्रातृसत्त्वविषयम् ॥ यच्च  
 मनुः—'सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत् ॥ सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण  
 पुत्रिणो मनुरब्रवीत्' इति । तत्सहोदराभावविषयमित्युक्तम् । एतेन पुत्रत्वातिदेशो  
 यम् । अतस्तस्मिन् सति एकादश पुत्राः प्रतिनिधयो न कार्याः । स एव पिण्डदो-  
 शहरश्चेति ॥ अत्रापि वाचस्पतिमनुटीकाकल्पतरुरत्नाकरादयः परास्ताः ॥  
 'द्वादशविधपुत्राभावे पत्नीदुहितरः' इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च । तस्मादत्तकपुत्रप्रशं-  
 सेयमिति विज्ञानेश्वरः । अविभक्तविषयं वा ॥ मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे—'पुत्रः कु-  
 र्यात्पितुः श्राद्धं पत्नी च तदसंनिधौ । धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राता च तत्सुतः ॥  
 भ्रात्रोः सहोदरो भ्राता कुर्याद्वाहादि तत्सुतः ॥ ततस्त्वसोदरो भ्राता तदभावे च  
 तत्सुतः' इति ॥ भ्रातृपुत्राभावे क्रमेण पितृस्नुषास्वसृत्तपुत्रादयः धनहारि-  
 त्वात् ॥ भगिनी तत्सुतयोर्विशेषमाह मदनरत्ने कात्यायनः—'अनुजा अग्रजा  
 वापि भ्रातुः कुर्वीत संस्क्रियाम् ॥ ततः स्वसोदरास्तद्वत्क्रमेण तनयस्तयोः ॥  
 अपराकैः काष्णाजिनिः 'पुत्रः शिष्योथवा पत्नी पिता भ्राता स्नुषा गुरुः ॥  
 स्त्रीहारी धनहारी च कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ॥ 'मार्कण्डेयपुराणे—'पुत्रो'  
 भ्राता च तत्पुत्रः पत्नी माता तथा पिता ॥ वित्ताभावेऽपि शिष्यश्च कुर्वीर-  
 त्रौर्ध्वदैहिकम्' ॥ तेन धनहारी एतद्विज्ञ इतिकालादर्शः ॥ अत्र पाठक्र-  
 मो न विवक्षितः पूर्ववाक्येष्वथ तत्तत्शब्दादिभिः श्रौतक्रमोक्तेः 'अथ  
 जिह्वाया अथ वक्षसः' इतिवत् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः—'स्नुषास्वस्त्री-  
 यतत्पुत्रज्ञातिसंबन्धिवान्धवाः ॥ पुत्राभावे तु कुर्वीरसपिण्डान्तं यथाविधि ॥  
 मार्कण्डेयपुराणे—'पुत्रायुत्सन्नबन्धोश्च सखापि श्वशुरस्य च ॥ जामाता  
 स्नेहवत्कुर्यादखिलं पैतृमेधिकम् ॥ 'चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—'मातु-  
 लो भगिनेयश्च स्वस्त्रीयो मातुलस्य च ॥ श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामह-  
 स्य च ॥ एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितुस्तथा ॥ श्राद्धमेषां तु कर्त्त-



व्यमिति वेदविदो विदुः' शुद्धिविवेके पृथ्वाचन्द्रोदये च ब्राह्मे—'दत्तानां चाप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता ॥ चतुर्थेहनि तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः ॥ दत्ता वाग्दताः ॥ मातामहानां दौहित्राःकुर्वन्त्यहनि चापरे ॥ तेपि तेषां प्रकुर्वन्ति द्वितीयेहनि सर्वदा ॥ जामातुः श्वशुराश्चकुस्तेषां तेपि च संयताः ॥ मित्राणां तदपत्यानां श्रोत्रियाणां गुरोस्तथा ॥ भागिनेयसुतानां च सर्वेषां त्वपरेहनि ॥ राजाऽसति सपिण्डे तु निरपत्ये पुरोहितः ॥ मन्त्री वा तदशौचं तु पुरा चीर्त्वा करोति सः' ॥ अत्र द्वितीयाहादौ श्राद्धविधानमस्थिसंचयनपरम् ॥ कालादृशौ—'दाहादि मन्त्रवत्पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः ॥ तदभावे तु पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकामुतः ॥ दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव च ॥ पिता माता स्नुषा चैव स्वसा तत्पुत्र एव च ॥ सपिण्डः सोदको मातुः सपिण्डश्च सहोदकः । स्त्री च शिष्यर्त्विगाचार्या जामाता च सखापि वा ॥ उत्सन्नबन्धोरिक्थेन कारयेदवनीपतिः ॥ गौतमः—पुत्राभावे सपिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च द्युः । तदभावे ऋत्विगाचार्यौ' ॥ यत्तु चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः—'प्रीत्या श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम्' इति तत्सर्वर्णविषयम् ॥ 'ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्म किंचन ॥ कामालोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्' इति ब्राह्मोक्तेः 'न ब्राह्मणेन कर्त्तव्यं शूद्रस्याप्यौर्ध्वदैहिकं । शूद्रेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात्कचित्' इति पारस्करोक्तेश्च ॥ पारशव ऊढशूद्रापुत्रः ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ सर्वत्र पुत्रादेः सर्वस्याभावे पत्न्यादेरधिकार उक्तः ॥ तत्राभावोऽसन्निधिर्नाशश्चोच्यते ॥ अतएव पूर्वत्र 'असन्निधाने पूर्वेषाम्' इत्युक्तम् । तत्रासन्निधौ पत्न्यादेः सर्वाधिकारे प्राप्ते प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपि चिरादपि । एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्य विधिवत्क्रियाः ॥ ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्' इत्याद्यैर्देशान्तरेऽर्पवादात्पुत्रनाशे एव पत्न्यादेः सपिण्डनादाधिकारः । असंनिधौ तु

१-यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् । स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः इत्युक्तलक्षणः २—'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्' इत्यादेः 'पितुः पुत्रेण कर्त्तव्याः पिण्डदानोदकक्रियाः' इत्यादेशे सामान्यशास्त्रस्य सपिण्डनविषये बाधं विनाऽगतेरिति भावः ।



तत्पूर्वमेव नोर्ध्वम् ॥ अतोऽनधिकारिणा भ्रात्रादिना कृतमप्यकृतमेवेति पु-  
नरावर्तनीयम् । मासिकापकर्षोप्यावर्तनीयः ॥ एकादशाहमासिकानि नावर्त-  
न्ते । 'तज्ज्यायसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः' इतिवदावृत्तिविधानाभा-  
वादिति केचित् ॥ तन्न ॥ अस्य निर्मूलत्वात् । अतस्तदपि कनिष्ठकृतमावर्तते ।  
वृद्धिश्रौतपिण्डपितृयज्ञार्थं तु कृतं नावर्तते । 'नासपिड्याऽग्निमानूपुत्रः पि-  
तृयज्ञं समाचरेत् । न पार्वणं नाभ्युदयं कुर्वन्न लभते फलम् ' इतिवृद्ध्यु-  
त्तरनिषेधनादिति ॥ 'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा' इत्यादिहारीतादिवचोभ्यःक-  
निष्ठादेरप्यधिकारात् । यथात्र ज्येष्ठकर्तृकत्वबाधः, तथा पुत्रकर्तृकत्वस्या-  
पि बाधः । सपिण्डने तु बहु वक्तव्यं तन्निर्णये वक्ष्यामः ॥ अधिकारवि-  
शेषेण क्रियाव्यवस्थोक्ता विष्णुपुराणे--'पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चै-  
वोत्तराः क्रियाः ॥ त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येतास्तासां भेदान् शृणुष्व मे ॥ आ-  
दाहाद्वाद्वादशाहमध्यं याः स्युः क्रिया नृप । ताः पूर्वा मध्यमा मासिमास्ये-  
कोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥ प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु । क्रियन्ते याः क्रियाः  
पुत्र प्रोच्यन्ते तानृपोत्तराः । पितृमातृसपिण्डैश्च समानसालिलैस्तथा । तत्सं-  
घातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिणा ॥ पूर्वा मध्याश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चो-  
त्तराः । दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥ मृताहनि तु कर्तव्याः  
स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ' । दौहित्रतत्पुत्रयोर्धनहारिणोरिदं ॥ एवमन्यस्य  
धनहर्तुः 'यश्चार्थहरः स पिण्डदायी' इत्यापस्तम्बोक्तेः ॥ 'प्रेतस्य प्रेतका-  
र्याणि अकृत्वा धनहारकः ॥ वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्रतं प्रयतश्चरेत्' इति पृ-  
थ्वीचन्द्रोदये व्याघ्रपादोक्तेः ॥ मदनरत्ने स्कान्देपि--'मलमेतन्मनुष्याणां  
द्रविणं यत्प्रकीर्तितम्' इत्युक्त्वा 'ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृतिः पावनी

१-अधिकारभ्रमेण करणस्थले वास्तवोऽधिकारी तथाविधान्येवावर्तयेत्, नतु प्रेतशब्दं त्यजे-  
दित्यर्थः । २--'श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम् । श्राद्धानि षोडशादत्त्वा न तु  
कुर्यात्सपिण्डनम्' इति समानकर्तृत्वान्वयव्यतिरेकस्मरणान्मासिकापकर्षावृत्तिकथनाद-  
पि सपिण्डनावृत्तौ प्रेतशब्दत्यागो नास्तीति लभ्यते इति टीका ॥



परा । आदेहपतनात्तस्य कुर्यात्पिण्डोदकक्रियाम् ' इत्युक्तम् ॥ क्रियानि-  
बन्धे कात्यायनः—'न च माता न च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम् । नाग्रजश्च  
तथा भ्राता भ्रातृणां तु कनीयसाम्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये बौधायनः—'पित्रा  
श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां तु कथंचन ॥ भ्रात्रा चैव न कर्तव्यं भ्रातृणां च कनीय-  
साम् ॥ यदि स्नेहेन कुर्यात्तां सपिण्डीकरणं विना ॥ गयायां तु विशेषेण ज्या-  
यानपि समाचरेत्' ॥ अन्याभावे पित्रादिरपि कुर्यात् ॥ 'उत्सन्नबान्धवं प्रेतं पित-  
भ्राताथवाग्रजः । जननी चापि संस्क्रुयान्महदेनोन्यथा भवेत्' ॥ इति सुमन्तूक्तेः  
ब्रह्मचारिणां तु शुद्धिविवेके पृथ्वीचन्द्रोदये च ब्राह्मे— 'असमाप्तव्रत-  
स्यापि कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः ॥ श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोति सः' ॥  
श्राद्धं मासिकाब्दिकादि सर्वं कार्यमित्यर्थः ॥ नत्विति निषेधोऽन्यसत्त्वे ॥  
यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे 'न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वयं क्वचित् ॥ न दी-  
क्षणात्परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति क-  
र्हिचित् ॥ आशौचं कर्मणोन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्' ॥ यच्च या-  
ज्ञवल्क्यः—'न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा' इति तदप्यन्यसत्त्वे ॥  
अन्याभावे तु ब्रह्मचारिणापि कार्यं पूर्वोक्तवृद्धमनुवचनात् ॥ 'आचार्य-  
पित्रुपाध्यायान्निर्हत्यापि व्रती व्रती ॥ संकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह सं-  
वसेत्' इति तेनैवाक्तेः ॥ 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मा-  
तापित्रोः' इति विसिष्टोक्तेः ॥ अत्राशौचमेकाहं वक्ष्यामः ॥ प्रागुपनयनान्मृ-  
तस्य तु पञ्चवर्षोत्तरसपिण्डीकरणवर्ज्यं षोडशश्राद्धादि सर्वं कार्यमित्युक्तं  
देवजानीये ॥ 'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्र-  
चेतोवचनाच्च एतच्चाग्रे वक्ष्यामः ॥ अविभक्तानां विशेषमाह पृथ्वीचन्द्रो-  
दये मरीचिः 'बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः ॥ सर्वेषां तु मतं कृ-  
त्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्' ॥  
ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः । तेन ये ब्रह्मचर्यपरान्नवर्जनाद-  
यः फलसंस्काराः, ते सर्वेषां भवन्तीति सिद्धम् ॥ संसृष्टिनामप्येवम् तुल्य-  
त्वात् ॥ विभक्तानां विशेषमाहोशनाः—'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि



च षोडश ॥ एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि ' ॥ लघुहारीतः—  
 ' सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश ॥ पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथ-  
 ग्द्रव्या अपि क्वचित् ॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वं कुर्युः पृथक्पृथक्' ॥  
 मदनरत्ने—' विभक्तास्तु पृथक्कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम् ॥ एकेनैवाविभक्तेषु  
 कृते सर्वैस्तु तत्कृतम्' ॥ एतेनाब्दिकादिष्वविभक्तानामनियम इति वदन् शूल  
 पाणिः परास्तः ॥ दत्तकस्तु जनकस्य पुत्राद्यभावे दद्यान्न तत्सत्त्वे ॥ ' गो-  
 त्ररिक्थे जनयितुर्न भजेद्दत्त्रिमः सुतः ॥ गोत्ररिक्थोनुगः पिण्डो व्यपैति ददतः  
 स्वधा' इति मनूक्तेः ॥ इदं जनकस्य पुत्रसत्त्वविषयम् एतच्च प्रवरमञ्जरीं  
 कात्यायनलोगाक्षिभ्यां स्पष्टमुक्तम् ॥ ' अथ ये दत्तकक्रीतकृत्रिमपुत्रि-  
 कापुत्राः परपरिग्रहेणानार्षेया जातास्ते द्व्यामुष्यायणा भवन्ति ॥ यथा 'शौ-  
 क्तशैशिरीणां यानि चान्यान्येवं समुत्पत्तीनि कुलानि भवन्ति ' इत्यादिना  
 द्वयोः पित्रोः प्रवरानुक्तवोक्तम् । ' अथ यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्या-  
 द्द्वयं हरेयुः पिण्डं चैभ्यस्त्रिपुरुषं दद्युर्यद्युभयोर्न स्यादुभाभ्यामेव दद्युरेकस्मिन्  
 श्राद्धे पृथगुद्दिश्यैकपिण्डे द्वावनुकीर्तयेत्परिगृहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीया  
 त्वपुरुषात्' इति ॥ हेमाद्रौ काष्णार्जिनिः—' यावन्तः पितृवर्ज्याः स्यु-  
 स्तावद्भिर्दत्तकादयः ॥ प्रेतानां योजनं कुर्युः स्वकीयैः पितृभिः सह ॥ द्वाभ्यां  
 सहाथ तत्पुत्राः पौत्रास्त्वेकेन तत्समम् ॥ चतुर्थपुरुषे छन्दस्तस्मादेषा त्रिपू-  
 र्षी ॥ साधारणेषु कालेषु विशेषो नास्ति वर्गिणाम् ॥ मृताहे त्वेकमुद्दिश्य  
 कुर्युः श्राद्धं यथाविधि' इति ॥ अस्यार्थमाह हेमाद्रिः—दत्तकादयः जन-  
 कपालकयोःकुले प्रेतानां स्ववर्गीयैः सपिण्डनं कुर्युः । दत्तकानां पुत्रास्तु पि-  
 तुर्दत्तकस्य पितृभ्यां जनकपालकाभ्यां स्वपितामहाभ्यां सपिण्डनं कुर्युः ॥  
 तेषां पौत्राः स्वपितरं दत्तकेन पितामहेन तज्जनकेन च सपिण्डयेयुः । चतु-  
 र्थोपि तत्कुलस्थ एव । तेषां प्रपौत्रस्तु दत्तकस्य प्रपितामहस्य पालककुलस्थं  
 चतुर्थं योजयेन्नवा ॥ छन्द इच्छा दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पुत्रोः पिताम-  
 हयोः प्रपितामहयोर्वा श्राद्धं देयम् । तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक्पिण्डदानं  
 द्वयोरुद्देशेनैको वेति । अत्र केचित्—आवयोरयमिति परिभाष्य यो दत्तस्व-



स्येदं द्वयोः पित्रोः श्राद्धम् । यस्तुत्परिभाष्य दत्तः स गृहीतुरेव स पालका-  
 यैव दद्यादित्याहुः ॥ अत्र मूलं त एव प्रष्टव्याः ॥ वस्तुतस्तु जनकस्य पुत्रप-  
 त्न्यायभावे दत्तको द्वयोर्दद्यादन्यथा पालकायैव प्रागुक्तकात्यायनवचनात् ।  
 मानवीयमप्येतद्विषयमेव । गोत्रं तु श्राद्धे पालकस्यैव । विवाहादौ तूभयोरि-  
 त्यादि मत्कृतप्रवरदर्पणेज्ञेयम् । यस्तुमूल्यक्रीतायां परभार्यायां दास्यां चो-  
 त्पन्नः स बीजिन एव दद्यात् । मूल्यं विना स्वयमुपनतायां तु क्षेत्रिण एव ॥  
 तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये कौर्मै-‘अनियोगात्सुतो यस्तु शुल्कतो जायते त्विह ॥  
 प्रदद्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा’ इति ॥ क्षेत्रजादेर्विशेषस्तु कलौ  
 तदभावाच्चोच्यत इति दिक् ॥ जारजानां विशेषमाहापरार्के नारदः-‘जायंते  
 त्वनियुक्तायामेकेन बहुभिस्तथा ॥ अरिक्थभाजस्ते सर्वे बीजिनामेव ते  
 सुताः ॥ दद्युस्ते बीजिने पिण्डं माता चेच्छुल्कतो हता ॥ अशुल्कोपहतायां  
 तु पिण्डदा वोदुरेव ते’ ॥ धर्मार्थं श्राद्धाकरणे फलमाह चन्द्रिकायां शाता-  
 तपः-‘प्रीत्या श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम् ॥ एवं कुर्वन्नरः सम्य-  
 ङ्महतीं श्रियमाप्नुयात्’ ॥ गयायामपि तत्रैव ब्रह्मवैवर्ते-‘आत्मजो वा  
 थवान्योपि गयाशीर्षे यदा तदा ॥ यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शा-  
 श्वतम्’ ॥ एतच्च यदा फलभृमार्थिना द्विस्त्रिर्वा क्रियते तदा प्रेतशिला-  
 श्राद्धवर्ज्यं कुर्यात्, तस्य प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्, तस्य च जातत्वादिति  
 केचित् । वस्तुतस्तु संन्यासिश्राद्धवदत्रापि सर्वं कार्यम् । साङ्गेधिका-  
 रादिति युक्तं प्रतीमः ॥ संन्यस्तपित्रादिस्तु पितः पित्रादिभ्यः सर्वश्रा-  
 द्धेषु दद्यादित्युक्तं प्राक् । वक्ष्यते च जीवत्पितृकश्राद्धे । अत्र स्त्रीशूद्रा-  
 णां श्राद्धं मन्त्रवर्ज्यं तूष्णीं भवति । ‘स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुत-

१ आवयोरयमिति संविदः काप्यनुक्तेस्तां विनापि गृहीतस्य द्वयामुप्यायणत्वमेव । तेन  
 चामावास्यादौ जनकप्रतिग्रहीत्रोरुद्देशेन श्राद्धद्वयमेकं वा कार्यम् । तत्पुत्रेण तु दत्तकस्य  
 तज्जनकप्रतिग्रहीतृभ्यां द्वाभ्यामपि सह सपिण्डनपार्वणश्राद्धादि । एवं तत्पुत्रादिभिरपीति ।

२-‘तत्राप्यपत्यपदमधिकार्युपलक्षणम् । पौत्रादिसत्त्वे रिक्थग्रहणासंभवात् । यद्यप्याहत्य-  
 जनकौर्ध्वदेहिकं न स्मर्यते, तथापि रिक्थादानमेव तदधिकारलम्भकम्’ इति टीका ॥



स्यच ॥ प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युस्तथैव तत्' इति हेमाद्रौ मरीचिवच  
नात्सिद्धम् ॥ 'अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः ॥ अमन्त्रस्य तु शू-  
द्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते' इति ब्राह्मोक्तेश्च ॥ गृह्यते संबध्यते । अस्य श्रा-  
द्धप्रकरणे पाठेपि परिभाषात्वाच्च प्रकरणेन संकोचो युक्तः । तेन शूद्रस्य स्ना-  
नदानादावपि विप्रेण मन्त्रपाठः कार्यः । अमन्त्रश्चेति विशेषणात् । स्त्रिया  
अपीति शूलपाणिः । यत्तु तेनोक्तं मन्त्रजन्यनियमादृष्टासिद्धिस्तु नमस्कारेण  
अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः इति गौतमोक्तेरिति तन्न । दृष्टद्वारैव हि त-  
त्प्राप्तिर्न स्वातन्त्र्येण । अन्यथा नखविपूतेष्ववघातजन्यादृष्टार्थं सोपि क्रि-  
येतेति किञ्चिदेतत् ॥ तेन 'पितृणां नामगोत्रतः' इत्यादौ यत्र द्विजानामपि  
नाममन्त्र उक्तः तत्र प्रतिप्रसवमात्रार्थं युक्तम् न तिलावपनादावपि ॥ अत्र  
केचित् । वैदिकमन्त्रो विप्रस्य, पौराणस्तु शूद्रैः पठनीयः । 'न हि वेदेष्व-  
धीकारः क्वचिच्छूद्रस्य विद्यते । पुराणेष्वधिकारो मे दर्शितो ब्राह्मणैरिह' इति  
तत्रैव पाद्मोक्तेरित्याहुः गौडाप्येवम् । तन्न ॥ 'नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं  
वृषलस्य तु सन्निधौ' इतिकौर्मै पुराणनिषेधेन वेदस्य दूरापास्तत्वात् ।  
'अध्येतव्यं ब्राह्मणेन वैश्येन क्षत्रियेण च ॥ श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं क-  
दाचन ॥ श्रौतं स्मार्तं च वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम ॥ तस्माच्छूद्रैर्विना वि-  
प्र न श्रोतव्यं कदाचन' इति तत्रैव पुराणाधिकारे भविष्योक्तेश्च ॥ एतेन 'ना-  
ध्येतव्यम्' इति निषेधो मन्त्रेतरपुराणपरः इति श्रीदत्तादिमतमपास्तम् । तेन  
पौराणमन्त्राणामेव विप्रेण पाठो न वैदिकानामिति सिद्धम् । द्विर्जस्त्रियस्तु सं

१-वस्तुतस्तु द्विजस्त्रीणां कारणे मन्त्रपठनाप्रसक्तेः 'ते च-' इत्याद्यमन्त्रकत्वं व्य-  
र्थम् । अतः करणपक्षोपि वाच्यः । तत्रापि वेदश्रवणेऽधिकारात्समन्त्रकत्वकथनं पाठबो-  
धनेनैवार्थवत् । कारणपक्षस्त्वशक्तपरः । इति टीका । वस्तुतस्तु पूर्वोत्तरमीमांसयोः शू-  
द्राणां वेदोच्चारणश्रवणानधिकारबोधनवत्स्त्रीणामनाधिकारबोधनस्याभावात् 'जातिं तु  
बादरायणोऽविशेषात् । तस्मात्कृयपि प्रतीयेत-' इति पूर्वमीमांसासूत्रेण प्रत्युत स्त्रीणां वै-  
दिककर्मणि पुंस इवाधिकारबोधनः शूद्रायामपि 'कठी बह्वृची अध्वर्युः' इत्यादिप्रयोग-  
वारणाय 'पुंयोगादारुण्यायाम्' इत्यनेन ङीपोऽनभिधानात् जातिलक्षणस्य संपत्तये तत्तच्छा-  
खावेदाध्ययनस्यावश्यकत्वेणाभीष्टेयप्रभृतीनां श्रुतत्वेन वत्पसूत्रेषु विहितस्य यजमान-  
पत्न्यास्तत्तन्मन्त्रपाठस्यान्यथानुपपत्त्या च चिन्त्यमेतत् ।



कल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं ब्राह्मणद्वारा कारयेयुरिति प्रयोग  
 पारिजातः । अतएव स्त्रीणामित्यकृतविवाहस्त्रीपरमिति हेमाद्रिराह ॥ अनु-  
 पनीतस्तु 'वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं स्वयमेव कुर्यात्' इत्युक्तं प्राक् । यत्तु 'प्राक् द्वि-  
 जाश्च व्रतादेशात्' इति तदशक्तविषयमचूडविषयं वा इति दिक् ॥ शूद्रस्य तु स  
 दामश्राद्धमेव ॥ 'सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः ।  
 पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्येपि—'एवं शूद्रोपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा ॥  
 नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवत्सदा' ॥ तत्रैव वृद्धपराशरः—'आमान्नेन तु  
 शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम् ॥ कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीनाशयेदथ' ॥  
 स एव 'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते' ॥ हेमाद्रौ भविष्ये—'ध-  
 र्मेप्सवस्तु धर्मज्ञा यदि शूद्राः प्रकुर्वते ॥ अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधी-  
 यते ॥ आवाहनादि कर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु ॥ देवानां देवनाम्ना तु पि-  
 तृणां नामगोत्रतः ॥ पिण्डादीन्निर्वपेद्दीरं नामतो गोत्रतस्तथा' । शूद्राणां  
 गोत्राभावेपि काश्यपं गोत्रं ज्ञेयम् ॥ 'तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इति  
 श्रुतेः ॥ 'गोत्रनाशे तु काश्यपः' इति व्याघ्रपादोक्तेः हेमाद्रिः ॥ एवमन्य-  
 त्र गोत्राज्ञाने तर्पणादिषु च ज्ञेयम् । तत्रैव भविष्ये—'शूद्रस्तु गृहपाकेन न  
 पिण्डान्निर्वपेत्तथा ॥ सक्तुमूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम्' ॥ गौत-  
 मः—'अनुमतोस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति । 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्य-  
 यं नमस्कारमन्त्र इति केचित् ॥ विज्ञानेश्वरोप्येवमाह ॥ हेमाद्रिस्तु—'शू-  
 द्रोप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः' इति मात्स्ये मन्त्रनिषेधान्नममन्त्रे-  
 णेत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे 'राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः ॥  
 व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत्' ॥ यत्तु भारते राजधर्मेषु—  
 'यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरवर्बराः ॥ शकास्तुषाराः कंकाश्च  
 पल्लवाश्चान्धमद्रकाः ॥' इत्युक्त्वा 'ब्रह्मक्षेत्रे प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मान-  
 वाः । कथं धर्माश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः' ॥ इति चोक्त्वा 'वेदधर्म-  
 क्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते । पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च ।



दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत्सदा' ॥ तथादक्षिणाः सर्वयज्ञानां  
दातव्या भूतिमिच्छता ॥ पाकयज्ञा महार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभिः' इति  
श्लेच्छादीनां श्राद्धविधानम् । तदपि सजातीयभोजनद्रव्यदानादिपरं न तु  
श्राद्धपरमिति ॥ ॥ इति श्रीनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मज  
कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्राद्धाधिकरिनिर्णयः ॥ ॥

श्राद्धपितर

अथ पितरः ॥ हेमाद्रौ मात्स्यदेवलौ—' नामगोत्रं पितॄणां  
तु प्रापकं हव्यकव्ययोः ॥ अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्य  
वस्थिताः ॥ नाममन्त्रास्तदादेशा भवान्तरगतानपि ॥ प्राणिनः प्रीणयन्त्येव  
तदाहारत्वमागतान् ॥ देवो यदि पिता जातः शुभकर्मनुयोगतः ॥ तस्यान्न-  
ममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥ गांधर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् ॥  
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति ॥ पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथा मिष  
म् ॥ दनुजत्वे तथा मयं प्रेतत्वे रुधिरोदकम् ॥ मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगकरं  
भवेत्' ॥ अत्र पित्रादिशब्दैर्जनकादीनामेव देवतात्वमुच्यते, न वस्वादीना-  
म् ॥ 'असावेवत्त इति यजमानस्य पित्रे' इति ज्ञातपथश्रुतेः ॥ 'यस्य पिता प्रेतः  
स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय' इति विष्ण्वादिस्मृतेश्च ॥ यत्तु मनुदेवलौ  
'वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः ॥ प्रपितामहास्तथादित्याः  
श्रुतिरेषा सनातनी' ॥ यच्च याज्ञवल्क्यः—'वसुरुद्रादितिसुताः पितरः  
श्राद्धदेवताः' इति तदभेदज्ञानार्थम् ॥ यानि तु हेमाद्रौ नन्दिपुराणे—  
'विष्णुः पितास्य जगतो दिव्यो यज्ञः स एव च ॥ ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहं  
च प्रपितामहः' इति । यच्च भविष्ये—' अनिरुद्धः स्वयं ज्ञेयः प्रद्युम्नश्च पि-  
ता स्मृतः ॥ संकर्षणस्तज्जनको वासुदेवस्तु तत्पिता' ॥ स्वयं कर्ता । य-  
त्तु तत्रैव—'प्रथमो वरुणो ज्ञेयः प्राजापत्यस्तथापरः ॥ तृतीयोऽग्निः स्मृतः  
पिण्डो ह्येष पिण्डविधिः स्मृतः' ॥ यच्च मनुः—'सोमपानामविप्राणां  
क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः' ॥  
यच्चादित्यपुराणे—' मासाश्च पितरो ज्ञेया क्रतवश्च पितामहाः ॥ संवत्स-



रः प्रजानां च सुष्टेकः प्रापितामहः' ॥ यच्च नंदिपुराणे— 'अग्निष्वात्ता ब्राह्मणानां पितरः परिकीर्तिताः ॥ राज्ञां बर्हिषदो नाम विशां काव्याः प्रकीर्तिताः ॥ सुकालिनस्तु शूद्राणां व्यायामा म्लेच्छान्त्यजातिषु' ॥ अत्रावाहनादिषु पित्रादयः समुच्चयेन विकल्पेन वा यथाचारं तत्तद्देवतारूपेण वाच्याः इति हेमाद्र्यादयः । हेमाद्रौ ब्राह्मे— 'पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम् ॥ मातामह्यं न कुरुते पितृहास प्रजायते' ॥ धौम्यः— 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम् ॥ अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत्' ॥ अस्यापवादमाह कात्यायनः— 'कर्षूसमन्वितं मुक्ता तथायं श्राद्धषोडशम् । प्रत्याब्दिकं तु शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः' ॥ कर्षूसमन्वितं सपिण्डीकरणम् । दर्शादौ सपत्नीकानामेव देवतात्वम् ॥ 'स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुङ्क्ते सुधासमम् ॥ पितामही च स्वेनैव तथैव सपितामही' इति तत्रैवोक्तेः चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते— 'क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया ॥ केचिदिच्छन्ति नारीणां पृथक् श्राद्धे महर्षयः ॥ अन्तष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि ॥ अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह' इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ अस्य निर्मूलतां वदन्तो गौडास्त्वज्ञा एव ॥ अत्र भाग इत्यध्याहारः ॥ अन्यथा सपतिकायै मात्रै इति प्रयोगापत्तेः । अत्र मातृशब्दो जनन्यामेव मुख्यः । तेन सपत्नीमातृभ्यो न दद्यात् । एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादय एवोच्यन्ते इति तत्सपत्नीभ्यो न देयम्' इति हेमाद्रिः । 'कारुण्येन तु महालयादौ देयम्' इति स एव ॥

विश्वेदेवाः अथ विश्वेदेवाः ॥ हेमाद्रौ शङ्खबृहस्पती— 'इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू ॥ नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धूरिलौचनौ पुरुरदार्वौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ' ॥ तत्रैव 'उत्पत्तिं नाम चैतषां न विदुर्ये द्विजातयः ॥ अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥ ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते' इति ॥ 'इष्टिश्राद्धं प्रति रुचिः' इत्युक्तम् इति कल्पतरुः । आधानादि-



कर्माङ्गमित्यन्ये । नैमित्तिकमेकोद्दिष्टम् । ‘एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमि-  
 त्तिकमुच्यते’ इतिभविष्योक्तेः । एतद्यद्यपि ‘एकोद्दिष्टं देवहीनम्’ इति  
 तत्र विश्वेदेवनिषेधस्तथापि नवश्राद्धे द्वादशमासिके च कामकालौ ज्ञेयौ ।  
 नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षडृतून् । अतःपरं पुराणं वै त्रिविधं श्राद्धमु-  
 च्यते ॥ यस्मिन्नेव पुराणे वा विश्वेदेवा न लेभिरे ॥ आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं वृ-  
 षलं मन्त्रवर्जितम्’ इति बह्वचपरिशिष्टात् । एतच्च बह्वचानामेव,  
 तेषामेवोक्तेः । अन्येषां तु ‘नात्र विश्वेदेवाः’ इति कात्यानोक्तेस्त-  
 न्निषेध एवेति पृथ्वीचन्द्रोदयः । अन्ये तु नैमित्तिकं सपिण्डीकरणमाहुः ।  
 भविष्ये यद्यप्येकोद्दिष्टं तच्छब्देनोक्तं, तथापि ‘तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान्भो-  
 जयेद्द्विजान्’ इति तत्रैव विश्वेदेवनिषेधात् । यद्यपि सपिण्डीकरणेशत एको-  
 द्दिष्टत्वं तथापि ‘सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं नियोजयेत्’ इति वचनात्तत्पर-  
 त्वम् । हेमाद्रावादित्यपुराणे—‘विश्वेदेवौ क्रतुर्दक्षः सर्वास्विष्टिषु कीर्तितौ ॥  
 नित्ये नान्दीमुखे श्राद्धे वसुसत्यौ चपैतृके ॥ नवान्नलम्भने देवौ कामकालौ  
 सदैव हि ॥ अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरुरवार्द्रवौ चैव  
 विश्वेदेवौ तु पार्वणे’ ॥ कचिद्विश्वेदेवापवादमाह हेमाद्रौ शातातपः—‘नि-  
 त्यं श्राद्धमदैवं स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च ॥ मातुः श्राद्धं च युग्मैः स्यादैदं  
 प्राङ्मुखैः पृथक् ॥ योजयेद्देवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यत्नतः’ ॥ नान्दी-  
 श्राद्धे भिन्नप्रयोगपक्षे मातुः श्राद्धमदैवमिति हेमाद्रिः । अथ  
 उत्तमविप्र निर्णयः विप्राः ॥ ते चोत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधाः । तत्राद्याः ।  
 अत्रमदीयाः श्लोकाः । ‘त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुश्च बह्वचोप्याथ-  
 वर्णो याजुषसामगौ च ॥ षडङ्गविच्च त्रिसुपर्णवेत्ताऽप्यथर्वशीर्णोऽध्वयने  
 रतश्च । शतायुवेदार्थविदौ प्रवक्ता स्याद्ब्रह्मचारी च तथाग्निचिच ॥ सीदद्वृत्तिः  
 सत्यवाक्पूरुषैः स्वैर्मातापित्रोः पञ्चाभिःख्यातवंशः ॥ पत्नीयुक्तो ज्येष्ठसामा

१—लिखितपुस्तके ऽयं पाठो नोपलभ्यते २—नित्येति आवश्यकेत्यर्थः । इति टीका ।  
 ३—नवान्नशब्दस्य नैमित्तिकमात्रोपलक्षणतया राहूपरागादेरपि ग्रहः इतितु हेमाद्रिः ॥



पुराणवेत्ता पुत्री चेतिहासेष्वभिज्ञः ॥ योगी भिक्षुः सामगो ब्रह्मवेत्ता प-  
श्चाग्निश्च श्रोत्रियस्तत्सुतो वा ॥ शंभुध्यायी श्रीशपादाब्जसेवी पान्थश्चैते तूत्तमाः  
संप्रदिष्टाः ॥ भिक्षुर्योगी पान्थ एते त्वलभ्या भाग्याल्लब्धाश्चेत्तदा भोजनीयाः ।  
श्राद्धे विप्रेषूपविष्टेषु पश्चात्संप्राप्ताश्चेद्विप्रपङ्क्तौ तु भोज्याः । अत्रमूलं हेमाद्रौ  
ज्ञेयम् ॥ तत्रैव नारदः—‘यो वै यतीननादृत्य भोजयेदितरान् द्विजान् ॥ विजान-  
न्वसतो ग्रामे कव्यं तद्याति राक्षसान्’ ॥ दीपकलिकायां दक्षः—‘विना मांसे-  
न मधुना विनादक्षिणयाशिषा ॥ परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु’ ॥  
एतच्च ज्ञानिविषयम् । ‘त्रिणाचिकेतस्त्रिसुपर्णो यजुर्वेदैकदेशौ तद्व्रतेन तद-  
ध्यायिनौ च यस्य सप्त पूर्वे सोमपाः त्रिसुपर्ण’ इति वोपदेवः । सत्रिमधुर्गवे-  
दैकदेशस्तदध्यायी ॥ केचिन्नाचिकेतं चयनं त्रिःकृतवानित्यर्थमाहुः तद्धेमाद्रि-  
विरुद्धम् ॥ हेमाद्रौ गौतमः—‘युवभ्यो दानं प्रथमं पितृवयसः’ इत्येके । मात्स्ये  
मनुः—‘यश्च व्याकुरुते वाचं यश्च मीमांसते ऽध्वरम् ॥ सामस्वराविधिज्ञश्च पंक्ति-  
पावनपावनः’ ॥ कौर्मे—‘असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च ॥ असं-  
बन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः श्राद्धसिद्धये’ ॥ गारुडे—‘श्राद्धेषु विनियोज्या-  
स्ते ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ये यो निगोत्रमन्त्रान्तेषासि संबन्धवर्जिताः’ ॥  
मनुः—‘न मित्रं भोजयेच्छ्राद्धे धनैः कार्योस्य संग्रहः ॥ नारिं न मित्रं यं  
विद्यात्तं तु श्राद्धे निमन्त्रयेत्’ ॥ द्वयोर्भात्रोः श्राद्धे भोजनं निषिद्धम् ।  
‘पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् ॥ सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परि-

मध्यमविप्र-  
निर्णयः

वर्जयेत्’ इति श्राद्धदीपकलिकायां जातूकर्ण्योक्तेः ॥ अथ  
मध्यमाः । हेमाद्रौ कौर्मगार्ग्यौ—‘नैकगोत्रे हविर्दद्याद्यथा  
कन्या तथा हविः ॥ अभावे ह्यन्यगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भो-  
जयेत्’ ॥ अत्र केचित्स्वशाखीयान् मुख्यानाहुः पठन्ति च । ‘निमन्त्रयीत  
पूर्वेद्युः स्वशाखीयान् द्विजोत्तमान् ॥ स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निम-

१--योनि संबन्धा मातुलादयः गोत्रसंबन्धाः सपिण्डादयः, मन्त्रसंबन्धाः धेदाद्यध्याप-  
काः, अन्तेवासिसंबन्धाः शिल्पशास्त्राद्युपाध्यायाः । इति टीका ॥



न्त्रयेत्' इति ॥ इदं तु निर्मलत्वाद्धेमाद्रिणादूषितत्वाच्चोपेक्ष्यम् । मनुरपि  
 'यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं वा  
 समाप्तिगम् ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ॥ पितृणां तस्य तृ-  
 त्तिः स्याच्छ्राश्वती सातपौरुषी' ॥ अत्र मामकाः श्लोकाः ॥ "मातामहो मा-  
 तुलभागिनेयदौहित्रजामातृगुरुस्वशिष्याः ॥ ऋत्विक् च याज्यश्वशुरौ स्वबन्धु-  
 श्याला गुणाढ्यास्त्वनुकल्पभूताः" ॥ बन्धवो मातृष्वसृपितृष्वसृमातुलपुत्रा  
 इति बोपदेवः । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ सगुणस्वस्त्रीयाद्यतिक्रमे दोष एव ।  
 'सप्त पूर्वान् सप्त परान् पुरुषानात्मना सह ॥ अतिक्रम्य द्विजानेतान्नरके पा-  
 तयेत् स्वर्ग ॥ संबन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा ॥ भागिनेयं वि-  
 शेषेण तथा बन्धुं स्वगाधिप' इति मदनरत्ने भविष्योक्तेः । अत एव याज्ञव-  
 ल्क्यः "ब्राह्मणप्रतिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे' इति गुण्यतिक्रमे दशपणं दण्ड-  
 माह ॥ आसन्नमात्रपरमिदम् । मूर्खेतु न दोषः । ' ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति  
 मूर्खे चैव विवर्जिते ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि हूयते' इतिकात्या-  
 यनोक्तेः ॥ विप्रस्यापि दोषः । 'अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवाति दारुवत्'  
 इति मनूक्तेः अपराकै अत्रिः—' षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योर्वागश्राद्धेयास्तु गो-  
 त्रिणः ॥ षड्भ्यस्तु परतो भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि' ॥ एतच्च ब्राह्म-  
 णालाभे अपिशब्दात् ॥ असंभवे हेमाद्रौ गौतमः—' शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च  
 भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवतः' । आपस्तम्बः—' ब्राह्मणान् भोजयेद्योनिगो-  
 त्रमन्त्रान्तेवास्यसंबन्धिनः । गुणहान्यां तु परेषां समुदितः सोदर्योपि भोज-  
 यितव्यः' । एतेनान्तेवासिनो व्याख्याताः इति । अत्र विशेषमाहात्रिः—  
 'पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाथ सपिण्डकः ॥ न परस्परमर्ध्याः स्युर्न  
 श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥ ऋत्विक्पुत्रादयोप्येते सकुल्या ब्राह्मणाः स्मृताः ॥  
 वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः ॥ सगोत्रा न नियोक्तव्याः स्त्रियश्चैव

१ मात्रपदं कृत्स्नार्थं । तेन मुख्यानुकल्पयोग्यहः ॥



विशेषतः' इति ॥ अथ वर्ज्याः ॥ अत्र मामकाः श्लोकाः ॥  
वर्ज्यविप्रनिर्णयः

“वर्ज्यान् प्रवक्ष्ये त्वथ रोगिवैरिहीनाधिकाङ्गान् कितवान् कृतज्ञान् ॥ नक्षत्रशास्त्रेण च जीवमानान् भेषज्यवृत्त्यापि च राजभृत्यान् ॥ संगीतकायस्थकुसीदवृत्त्या वेदक्रमेणापि कवित्वत्त्या ॥ देवार्चनेनापि च जीवमानान् स्वाध्यायदारागिसुताक्षकाणान् ॥ दुर्बालस्वल्वाटकुनख्यधर्मि-  
नटांश्च पौनर्भवकृष्णदन्तान् ॥ अगारदाही गरदः समुद्रयात्री च कुण्डाशयथ कूटकारी ॥ बालांश्च योध्यापयते स्वपुत्रादवाप्तविद्यस्त्वथ कुण्डगोलौ ॥ अग्नेदिधिष्वाः पतिरस्त्रकर्ता सोमकयी तैलिककेकराक्षौ । युद्धाचार्यः पक्षिणां पोषकश्च स्रोतोभेत्ता वृक्षसंरोपकश्च ॥ मेषाणां वा माहिषाणां च पुष्ट्या स्वीयस्त्रीषु प्रहितैर्यश्च जारैः ॥ जीवत्यधेनुश्च दत्तानुयोगात् द्रव्यप्राप्त्या वेदमुद्धाटयन्तः ॥ ग्रामयाजिपशुकेशविक्रयिस्तेन शिल्पिपितृवादकारकान् ॥ अर्थकामरतशूद्रयाजकश्मश्रुहीनजटिमुण्डिनिर्घृणान् । यस्य चैव गृहिणी रजस्वला स्वार्थपाककरशापदायकान् ॥ क्लीबकुष्ठयति विलोहितेक्षणान् कुब्जवामनमृषाभिशापिनः ॥ पुत्रहीनमथ कूटसाक्षिणं प्रेतहारिकमयाज्ययाजकम् ॥ स्वात्मदातृपरिवेत्तयाजकस्तेन हिंसकमुखान् विवर्जयेत्” ॥ अत्र मूलं हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च ज्ञेयम् । भारते दानधर्मेषु श्राद्धवर्ज्यविप्राधिकारे 'कितवो भूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः ॥ ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायकः सर्वविक्रयी ॥ सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः ॥ पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति ॥ पर्वकारश्च सूची च मित्रधुक् पारदारिकः ॥ अव्रतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च ॥ श्वभिश्च यः परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च ॥ परिवित्तिस्तथा स्तेनो दुश्कर्मा गुरुतल्पगः ॥ कुशीलको देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ ईदृशा ब्राह्मणा ज्ञेया अपांकेया युधिष्ठिर' ॥ तथा—' ऋणकर्ता च यो राजन्यश्च वार्धुषिको नरः' ॥ काण्डपृष्ठः—स्वशाखां त्यक्त्वा परशाखयोपनीतस्तदध्यायी च । क्षत्रियवैश्यवृत्तौ नारदस्तु—' तस्यामेव तु यो वृत्तौ ब्राह्मणो वसते



रसात् । काण्डपृष्ठश्च्युतो मार्गात्सोपांक्षेयः प्रकीर्तितः' ॥ इत्याह । हारीतः  
 'शूद्रापुत्राः स्वयंदत्ता ये चैते क्रीतकाः सुताः ॥ ते सर्वे मनुना प्रोक्ताः का-  
 ण्डपृष्ठान् संशयः' ॥ अन्येपि हेमाद्रौ मात्स्ये—'त्रिशंकून्बर्बरानन्धान्-  
 चीनद्रविडकौडूणान् ॥ कर्णाटकांस्तथाभीरान्कालिङ्गांश्च विवर्जयेत्' ॥  
 तत्रैव सौरपुराणे—'अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च सौराष्ट्रान्गुर्जरांस्तथा ॥ आभी-  
 रान्कौकणांश्चैव द्राविडान्दाक्षिणायनान् ॥ आवन्त्यान्मागधांश्चैव ब्राह्म-  
 णांस्तु विवर्जयेत्' ॥ चन्द्रिकायां यमः—'काणाःकुब्जाश्च षण्ढाश्च कृतघ्ना  
 गुरुतल्पगाः ॥ मानकूटास्तुलाकूटाःशिल्पिनो ग्रामयाजकाः॥राजभृत्यान्ध-  
 बधिरमूकखल्वाटपङ्गवः ॥ वणिजो मधुहर्तारो गरदा वनदाहकाः ॥ समया-  
 नां च भेत्तारः प्रदाने ये निवारकाः ॥ प्रव्रज्योपनिवृत्ताश्च तथा प्रव्रजिताश्च  
 ये ॥ यश्च प्रव्रजिताज्जातः प्रव्रज्यावसितश्च यः ॥ अवकीर्णी च वीरघ्नो गुरुघ्नःपि-  
 तृदूषकः' ॥ श्राद्धकाशिकायांकात्यायनः—'द्विर्नग्नःकीलदुश्चर्माशुक्लोतिक-  
 पिलस्तथा ॥ छिन्नोष्ठश्छिन्नलिङ्गश्च नैव केतनमर्हति' ॥ द्विर्नग्नः पित्रोर्वशे त्रिपु-  
 रुषं विच्छिन्नवेदाग्निः ॥ हेमाद्रौ मरीचिः—'अविद्धकर्णः कृष्णश्च लम्ब-  
 कर्णस्तथैव च । वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः श्राद्धकर्मणि' ॥ ब्राह्मे—'मू-  
 कश्च पूतिनासश्च छिन्नाङ्गश्चाधिकाङ्गुलिः ॥ गलरोगी च गडुमान् स्फुटि-  
 ताङ्गश्च सज्वरः ॥ षण्ढतूवरमन्दांश्च श्राद्धेष्वेतान्विवर्जयेत्' ॥ लम्बकर्णं  
 चाह तत्रैव गोभिलः—'हनुमूलादधः कर्णौ लम्बौ तु परिकीर्तितौ ॥ द्व्य-  
 ङ्गुलौ त्र्यङ्गुलौ शस्ताविति शातातपोब्रवीत्' ॥ चन्द्रिकायां यमः—'द्व्य-  
 ङ्गुलातीतकर्णस्य भुञ्जते पितरो न तु' । षण्ढश्चात्र चन्द्रिकोक्तः सप्तविधो  
 ग्राह्यः । यथा 'षण्ढको वातजः षण्ढः पण्डः क्लीबो नपुंसकः ॥ कीलकश्चे-  
 ति सप्तैवं क्लीबभेदाः प्रकीर्तिताः' ॥ पराशरमाधवीये तु चतुर्दशविध उ-  
 क्ताः । तेषां स्वरूपाणि तत्रैव ज्ञेयानि । चन्द्रिकायां शातातपः—'अग्नि-  
 शोमादिभिर्नैवेयं यजन्त्यल्पदक्षिणैः ॥ तेषामन्नं न भोक्तव्यमपाङ्गुलास्ते प्रकीर्ति-  
 ताः' एतच्च शक्तौ सत्याम् ॥ अपरार्के भारते—'अवती कितवः स्तेनः प्रा-



णिविक्रयकोपि वा ॥ पश्चाच्चेत्पीतवान् सोमं स निकेतनमर्हति' ॥ श्राद्धदी-  
 पकालिकायां यमः-- 'अपत्नीकश्च वर्ज्यः स्यात्सपत्नीकोप्यनग्निकः' ॥  
 तत्रैवाश्वलायनः-- 'प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः ॥ जीवना-  
 र्थं परास्थानि धृत्वा तीर्थं प्रयाति यः ॥ मातापित्रोर्विना सोपि पतितः परि-  
 कीर्तितः' ॥ तत्रैव जातूकर्ण्यः-- 'यत्र मातुलचोद्वाही यत्र वा वृषलीप-  
 तिः ॥ श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥ पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ  
 निरग्निं गुर्विणीपतिम् ॥ सगोत्रप्रवरं चैव श्राद्धेषु परिवर्जयेत्' ॥ बृहन्नार-  
 दीये-- 'श्राद्धं चक्रं मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा ॥ स शूद्रवद्वाह्निकार्यः  
 सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ शंखचक्राद्यंकनं च गीतनृत्यादिकं तथा ॥ एकजा-  
 तेरयं धर्मो न जातु स्यात्तद्विजन्मनः' ॥ तेन ये तप्तमुद्रादिविधयस्ते शूद्र-  
 विषयाः इति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये-- 'शिवकेशवयोरंकान् शूलचक्रादिका-  
 न् द्विजः ॥ न धारयेत् मतिमान् वैदिके वर्त्मनि स्थितः' इत्याश्वलायनोक्तेश्वा-  
 नृत्यं चोदराद्यर्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी । अन्येपि निषिद्धा निबन्धेषु  
 ज्ञेया इति दिक् ॥ अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्वर्ज्यानां निषेधे सिद्धे  
 पुनर्वर्ज्यपरिगणनं निषिद्धवर्ज्यनिर्गुणप्राप्त्यर्थमिति विज्ञानेश्वरः ॥ कुष्ठिका-  
 णादेरपवादो हेमाद्रौ वसिष्ठः-- 'अपि चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूष-  
 णैः ॥ अदृष्यं तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः' ॥ कचिद्विप्राणां जातिमात्रेण  
 ग्राह्यत्वमुक्तम् ॥ चन्द्रिकायामग्नेये-- 'यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचि-  
 त्कालपर्ययात् ॥ तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्राह्मणान् प्रकल्पिताः ॥ ब्राह्मणाः कृत-  
 संस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः ॥ अमानुषा गयाविप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पि-  
 ताः ॥ तेषु तुष्टेषु संतुष्टाः पितृभिः सह देवताः' । तत्रैव-- 'न विचार्य कुलं शीलं  
 विद्या च तप एव च ॥ पूजितैस्तैस्तु सन्तुष्टा देवाः सपितृगुह्यकाः' ॥ गयायां  
 निर्गुणा अपि ते एव भोज्या इति हेमाद्रौ ॥ अक्षय्यवदश्राद्ध एव तन्नियमो ना-  
 न्यत्रेति त्रिस्थलीसितौ पितामहचरणाः । पृथ्वीचन्द्रोदयेपि पात्रे--  
 'तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन ॥ अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुर



ब्रवीत्' ॥ स्कान्देपि— 'ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः' ॥  
 मनुः— 'न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥ पित्र्येः कर्मणि तु प्राप्ते  
 परीक्षेत प्रयत्नतः' ॥ असंभवपरमेतदिति मेधातिथिः । हेमाद्रौ व्यासः—  
 'गायत्रीसारमात्रोपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ॥ नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्व-  
 विक्रयी ॥ काणाः कूटाश्च कुब्जाश्च दरिद्रा व्याधितास्तथा ॥ सर्वे श्राद्धे

श्राद्धे मित्र-  
 निमन्त्रणम्

नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारगैः' ॥ अथ विप्रनिमन्त्रणम् ॥  
 चन्द्रिकायां वाराहे-- 'वस्त्रशौचादि कर्तव्यं श्वः कर्तास्मीति  
 जानता ॥ स्थानोपलेपनं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ दन्त

काष्ठं च विसृजेद्वृक्षचारी शुचिर्भवेत्' ॥ तत्रैव प्रचेताः-- 'दक्षिणं चरणं विप्रः  
 सव्यं वै क्षत्रियस्तथा ॥ पादावादाय वैश्यो द्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वकम्' ॥ बृ-  
 हस्पतिः-- 'उपवीती ततो भूत्या देवार्थं तु द्विजोत्तमान् ॥ अपसव्येन पित्र्ये  
 थ स्वयं शिष्योथवा सुतः' ॥ प्रचेताः-- 'सवर्णं प्रेषयेदाप्तं द्विजानां तु नि-  
 मन्त्रणे' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे-- 'राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्र-  
 हवर्तिनः ॥ व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत्' ॥ चन्द्रिकायां यमः ॥  
 'अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् ॥ तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन  
 निमन्त्रितम्' ॥ तत्रैव पैठीनसिः-- 'सप्त पञ्चद्वौ वा श्रोत्रियान्निमन्त्रयेत्' ॥  
 आश्वलायनसूत्रेपि-- 'एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रीन्वा वृद्धौ फलभूय-  
 स्त्वं' ॥ द्वाविति वृद्धिश्राद्धे ॥ गौतमः-- 'नवावरान् भोजयेद्युजो वा  
 यथोत्साहम्' ॥ याज्ञवल्क्यः-- 'द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव  
 वा । मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्' ॥ दीपकलिकायां परा-  
 शरः-- 'संपत्तावर्थपात्रानामेकैकस्य त्रयस्त्रयः ॥ पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ता-  
 श्वत्वारो वैश्वदेविके' ॥ वृद्धयाज्ञवल्क्यः-- 'दशैकं पञ्च वा विप्रान् पार्व-

१-मिश्रणं च दैविक एव 'काणादीन्भोजयेद्दैवे श्राद्धदानं तु वर्जयेत्' । इति सौम-  
 न्त्वात् एवं चादूष्यतावाक्यमपि दैविक एव । इति टीका २-दक्षिणचरणरूपशो जानु-  
 देशे कार्यः । 'दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मयात्र निमन्त्रितः' इति मात्स्यात् । इति टीका ॥



णे विनियोजयेत्' ॥ अत्र वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादीनामेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन् पञ्च सप्त नव वोपवेशयेदिति निक्षुण्णोर्थः ॥ मनुः— 'द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनैकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम् ॥ पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये शातातपः— 'द्वौ दैवैथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥ पित्र्ये तूदङ्मुखं स्त्रींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान्' ॥ अत्यशक्तौ हेमाद्रौ देवलः— 'एकेनापि हि विप्रेण षट्पिण्डं श्राद्धमाचरेत् ॥ षडध्यान् दद्यात्तत्र षड्भ्यो दद्यात्तथा हविः' ॥ गोभिलः— 'यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत् । ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते' ॥ अत्र वैश्वदेवे विशेषमाह तत्रैव वसिष्ठः— 'यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ॥ अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च ॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥ प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे' ॥ एतच्च सपिण्डीकरणवर्ज्यं ज्ञेयम् ॥ 'नैवेवैकं सर्वेषां काममनाद्ये' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ अस्यार्थ उक्तो नारायणवृत्तौ—आद्यं सपिण्डीकरणं तद्वर्ज्येषु श्राद्धेषु कामं त्रयाणामेकं भोजयेत् ॥ सपिण्डीकरणे तु नियतं त्रिभिर्भवितव्यमिति ॥ अनाद्ये पार्वणवर्जिते वा । अभोजने आमहेमश्राद्धादौ वा । अन्नाभावे चेति व्याख्यान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् । कारिकापि— 'दैवे पित्र्येऽथैवैकं सपिण्डीकरणं विना' इति ॥ अत्रैकविप्रेसाग्रेविशेषमाह पृथ्वीचन्द्रोदयेप्रचेताः— 'एकस्मिन् ब्राह्मणे दैवे साग्रेरग्निर्भवेत्सदा ॥ अनग्नेः कुशमुष्टिः स्याच्छ्राद्धकर्मणिसर्वदा' ॥ सर्वथा विप्रालाभे तत्रैव हेमाद्रौ च सत्यव्रतः— 'निधाय दर्भनिचयमासनेषु समाहितः ॥ प्रैषानुप्रेषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत्' ॥ 'अत्र प्राप्त्यभावात्सत्रे इव ऋत्विक्कार्यं यजमानविधौ न दक्षिणा' इतिकेचित् । तन्न । अदृष्टार्थायाः दक्षिणायाः प्राप्तेः । 'सर्वं तत्रिजटे तुभ्यं यच्च श्राद्धमदक्षि-

१ दैवपित्र्ययोरैकैकब्राह्मणनिमन्त्रणं चेत्यर्थः । २ अत्र वृत्तिः— 'एकैकमुभयत्र वा' इति मनूक्तपक्षस्यायं निषेधः । तं कुर्वता मनूक्तमन्यदनुज्ञातं भवति । इति टीका ॥



णम् ' इतिपाद्मात् ॥ ' विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेदक्षिणार्धहरो भवेत् ॥ स्वयं चे-  
 दुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ' इति छन्दोगपरिशिष्टाच्च ॥ एवं यतिश्राद्धे  
 पि कात्यायनः—' यज्ञवस्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भवटौ तथा ॥ दर्भसंख्या न  
 विहिता विष्टरास्तरणेषु च' ॥ मातृश्राद्धे तु विप्रालाभे सुवासिन्योपि भोज-  
 नीया इत्याहापराकैवृद्धवसिष्ठः—' मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूजयेदपि ॥  
 पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः ' इति ॥ अष्टाविति वृद्धिश्रा-  
 द्दविषयम् ॥ पाद्मे उत्तरखण्डे—' सकृदभ्यर्चितं लिङ्गं शालग्रामशिलां च यः ॥  
 पीठे संस्थापयित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः ॥ पितरस्तस्य तिष्ठन्ति कल्पकोटि-  
 शतं दिवि' ॥ चन्द्रिकायां मातृस्ये—' पठन्निमन्य नियमान् श्रावयेत्पैतृ-  
 कान्बुधः ॥ अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ॥ भवितव्यं भवद्भिश्च  
 मया च श्राद्धकारिणा' ॥ यत्तु मनुः—' सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोध-  
 विवर्जितैः ॥ भवितव्यं भवद्भिर्नः श्रोभूते श्राद्धकर्मणि ' इति तत्पूर्वेद्युर्निम-  
 न्त्रणपरं न तदहः ॥ तत्रैव देवलः—' असंभवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्र-  
 येत् ॥ अज्ञातीनसमानार्थानियुग्मानात्मशक्तितः' ॥ कात्यायनः—' अनिन्द्ये

श्राद्धकर्तृभो-  
 कृतनियमाः

नामन्त्रितो नापक्रामेत्केतनं गृह्य शक्तः' अथ श्राद्धकर्तृ-  
 भोक्तृनियमाः ॥ तत्र निमन्त्रितविप्रत्यागेऽपराकै यमः—' के-  
 तनं कारयित्वा तु योतिपातयति द्विजम् ॥ ब्रह्महत्यामवामो-

ति शूद्रयोनौ च जायते ॥ आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत् ॥  
 अतिरुच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु जायते' ॥ प्रमादात्त्यागे तु हारीतः—' प्र-  
 मादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाधैनं प्रयत्नतः ॥ तर्पयित्वा यथान्यायं सर्वं तत्  
 फलमश्नुते' ॥ प्रमादाभावे तु नारायणः—' एकस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणो

१ अनिन्द्येन भोज्यान्नेन नापक्रामेत् न नाभ्युपगच्छेत् किंतु अभ्युपगच्छेदेव । के-  
 तनं गृहीत्वा शक्तश्चेत् अनिन्द्येनामन्त्रितेन शक्तेन न प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति  
 गौतमः । तेन निन्द्येनामन्त्रणे भोक्तुमसामर्थ्यं च प्रत्याख्येयमिति गम्यते । इदमन्यफल  
 लिप्सूनां परान्नभोजनाभ्यनुज्ञामात्रम् ' कामं प्रतिश्रवस्तेषामनिन्द्यामन्त्रणे कृते ' इति  
 देवलोक्तेः । तत्र परान्नभोजनेऽल्पो दोषः नतु दोषसामान्याभावः । तत्रापदि द्रुपदाजपः  
 आपदाधिक्ये मनस्तापः इति टीका ।



नियतः शुचिः ॥ यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ यमः—  
 'आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति ॥ नरकाणां शतं गत्वा चांडाले-  
 ष्वभिजायते ॥ तत्रैव देवलः—'पूर्वं निमन्त्रितोऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम् ॥  
 भुक्ताहारोथवा भुङ्क्ते सुकृतं तस्य नश्यति ॥ यदि विप्रो विलम्बते तदोक्तमा-  
 दित्यपुराणे—'आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्याद्विप्रः कदाचन ॥ देवतानां पितॄणां  
 च दातुरन्नस्य चैव हि ॥ चिरकारी भवेद्बोही पच्यते नरकाग्निना ॥ पृथ्वी-  
 चन्द्रोदये यमः—'निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः ॥ भवन्ति  
 पितरस्तस्य तं मांसं पांसुभोजनाः ॥ आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे हिंसां वै कुरुते  
 द्विजः ॥ पितरस्तस्य तं मांसं भवन्ति रुधिराशनाः ॥ आमन्त्रितस्तु यो विप्रो  
 भारमुद्वहते द्विजः ॥ पितरस्तस्य तं मांसं भवन्ति स्वेदभोजनाः ॥ निमन्त्रितस्तु यो  
 विप्रः प्रकुर्यात्कलहं यदि ॥ पितरस्तस्य तं मांसं भवन्ति मलभोजनाः ॥  
 शंखः—'निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धं मैथुनं सेवते द्विजः ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भु-  
 क्त्वा च युक्तः स्यान्महत्तैनसा ॥ मैथुनं कृतावपि निषिद्धम् । 'ऋतुकाले  
 नियुक्तो वा नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् ॥ तत्र गच्छन्नवाप्नोति ह्यनिष्ठानि  
 फलानितु' इति तत्र माधवीये च वृद्धमनूक्तेः ॥ 'श्राद्धं करिष्यन् कृत्वा  
 वा भुक्त्वा वापि निमन्त्रितः ॥ उपोष्य च तथा भुक्त्वा नोपेयाच्च कृतावपि ॥  
 भोक्ष्यन् करिष्यन् श्वः श्राद्धं पूर्वरात्रौ प्रयत्नतः ॥ व्यवायं भोजनं चापि  
 कृतावपि विवर्जयेत्' इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेश्च ॥ विज्ञानेश्वरेण तु—श्राद्धे  
 ऋतौ गच्छतोपि न दोष इत्युक्तं तत्त्वगतिकगतित्वे ज्ञेयम् ॥ बृहस्पतिः—  
 'द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह ॥ अन्यथा वर्तमानौ तु स्या-  
 तां निरयगामिनौ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् ॥ श्राद्धकृच्छ्राद्ध-  
 भुक्चैव सर्वमेतद्विवर्जयेत् ॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैवच' ॥

१—आहूतोपि श्राद्धकालातिक्रमं करोति न सीमानमतिक्रामेच्छाद्द्वार्यं वै निमन्त्रितः ।  
 पर्यटन्सीममध्ये तु न कदाचित्प्रदुष्यति । इति ब्रह्माण्डात्सीमः परस्तान्न गन्तव्यम् ।  
 इति टीका ॥



यत्तु श्राद्धकारिकायां पुराणसमुच्चये-‘कृत्वा तुरुधिरस्त्रावं न विद्वान्  
 श्राद्धमाचरेत् ॥ एकं द्वे त्रीणि वा विद्वान्दिनानि परिवर्जयेत्’ इति तन्नि-  
 र्मूलम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये यमः-‘पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ॥  
 संध्यां प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभोक्ताऽष्ट वर्जयेत्’ ॥ इति संध्यानिषेधः प्राय-  
 श्वित्तात्पूर्वं ज्ञेयः ॥ यथाहोशनाः-‘दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या  
 श्राद्धभुक् द्विजः ॥ ततः संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि’ ॥ गौडास्तु-  
 ‘सायं संध्यां परान्नं च छेदनं च वनस्पतेः ॥ अमावास्यां न कुर्वीत रात्रि-  
 भोजनमेवच ॥ द्यूतं च कलहं चैव सायं संध्यां दिवाशयं ॥ श्राद्धकर्ता च  
 भोक्ता च पुनर्भुक्तिं च वर्जयेत्’ इति कामधेनौ वराहाद्युक्तेः ॥ श्राद्धकर्तु-  
 रपि सायंसंध्यानिषेधमाहुः ॥ शिष्टास्तु निर्मूलत्वमाहुः ॥ होमनिषेधस्तु स्व-  
 विषयः ॥ ‘सूतके च प्रवासे च अशक्तौ श्राद्धभोजने ॥ एवमादिनिमित्तेषु  
 हावयेन्न तु हापयेत्’ इति छंदोगपरिशिष्टात् ॥ तत्रैवादित्यपुराणे-‘नि-  
 मन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम्’ ॥ चन्द्रिकायां प्रचेताः-‘श्रा-  
 द्धभुक् प्रातरुत्थाय प्रकुर्यादन्तधावनम् ॥ श्राद्धकर्ता न कुर्वीत दन्तानां धा-  
 वनं बुधः’ ॥ हेमाद्रौ जाबालिः-‘दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गमभोजनम् ॥  
 रत्योषधपरान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत्’ ॥ इति विष्णुरहस्ये-  
 ‘श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् ॥ गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य  
 विशुद्ध्यति ॥ पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् ॥ दानप्रतिग्रहौ होमं श्राद्धभु-  
 क्त्वष्टवर्जयेत्’ ॥ सोमोत्पत्तौ-‘वनस्पतिगते सोमे यस्तु हिंस्याद्वनस्पतिम् ॥  
 घोरायाम्भूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः’ ॥ एतद्विहितेध्मादिव्यातिरेकेण ।  
 ‘वनस्पतिगते सोमे मन्थानं यस्तु कारयेत् ॥ गावस्तस्य प्रणश्यन्ति चिरका-  
 लमुपस्थिताः’ ॥ वनस्पतिगतस्वरूपमाह पृथ्वीचन्द्रोदये व्यासः-‘त्रिमुहूर्तं  
 वसेदर्के त्रिमुहूर्तं वसेज्जले ॥ त्रिमुहूर्तं वसेद्रोषु त्रिमुहूर्तं वनस्पतौ’ ॥ कलि-  
 कायां वृद्धमनुः-‘निमन्त्र्य विप्रांस्तदहर्वर्जयेन्मैथुनं क्षुरम् ॥ प्रमत्ततां च  
 स्वाध्यायं क्रोधाशौचे तथानृतम्’ ॥ केचिन्निमन्त्रणात्पूर्वं शुद्ध्यर्थं पूर्वोहि



क्षौरं कुर्वन्ति तत्र मूलं मृग्यम् ॥ मरीचिः—‘षष्ठ्यां पर्वसु पक्षादौ रिक्ता-  
भद्रातिथिष्वपि ॥ पाते श्राद्धे व्रताहे च क्षौरं वर्ज्यं निशासुच ’ ॥ यदा क-  
र्तुरशक्त्या तत्पुत्रशिष्यादिः श्राद्धं करोति तदा कर्त्रा प्रतिनिधिना च प्रागुक्त-  
नियमाः कार्याः ‘न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनवकाशतः ॥ श्राद्धं शि-  
ष्येण पुत्रेण तदान्येनापि कारयेत् ॥ नियमानाचरेत्सोऽपि नियतांश्च वसुंधरे ॥  
यजमानोऽपि तान्सर्वानाचरेत्सुसमाहितः’ इति हेमाद्रौ वाराहोक्तेः ॥ त्रि-  
यस्तु पादौ—‘मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च ॥ हसते वदते  
चैव निराशाः पितरो गताः ’ ॥ आश्वलायनः—‘श्राद्धेहि भोजयेद्वास्तौ न  
बालानपि यत्नतः ॥ प्राक्पिण्डदानाद्गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम् ’ ॥ वास्तौ  
गृहे ॥ अथ श्राद्धवस्तूनि ॥ तत्रादौ कुशाः ॥ पृथ्वोचन्द्रो  
श्राद्धवस्तूनि दये दक्षः—‘समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः पारिकीर्तितः ’ ॥  
अष्टधाभक्तदिने द्वितीयो भागइत्यर्थः ॥ तत्रैव यमः—‘समूलस्तु भवेदर्धः  
पितॄणां श्राद्धकर्मणि ॥ मूलेन लोकान्जयति शक्रस्य सुमहात्मनः ’ ॥  
व्यासः—‘तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानिचित् ॥ तानि स्युर्द्विगु-  
णैर्दर्भैः सप्तपत्रैर्विशेषतः ’ ॥ शालंकायनः—‘सपिण्डीकरणं यावद्द्विगुणै-  
रपितृक्रिया ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ’ ॥ शङ्खः—‘अनन्तः  
र्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेवच ॥ प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्रकुत्रचित् ॥  
हारीतः—पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्भिर्दर्भपिञ्जुलैः ॥ एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे  
वर्णे यथाक्रमम् ’ ॥ स्मृत्यर्थसारे—‘सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं त्रि-  
न्थितं नवम् ’ ॥ रत्नावल्याम्—‘द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद्बुधः ’ ॥  
हेमाद्रौ स्कान्दे—‘अनामिकाधृता दर्भा ह्येकानामिकयापि वा ॥ द्वाभ्या-  
मनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ’ ॥ पवित्राभावे तु तत्रैव सुमन्तुः—‘स-

१--दर्भकुशयोर्भेदमाह कौशिकः—‘सप्तपत्राः शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसू-  
ताः स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः । समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञि-  
ताः ’ । इति टीका ॥



मूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे ॥ सव्ये चैव तथा त्रीनैव विभृया-  
त्सर्वकर्मसु ' ॥ बौधायनः—' हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासनेपि तथैव च ' ॥ द-  
र्भग्रहणे मन्त्रमाह शङ्खः—' विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ॥ नुद स-  
र्वाणि पापानि दर्भं स्वस्तिकरो भव ' ॥ स्मृत्यर्थसारे—' हुंफट्कारेण म-  
न्त्रेण सकृच्छिन्वा समुद्धरेत् ' ॥ भारद्वाजः—' प्रेतक्रियार्थं पित्रर्थमभिचा-  
रार्थमेव च ॥ दक्षिणाभिमुखश्छिन्वात्प्राचीनावीतिको द्विजः ' ॥ कुशाभा-  
वेऽपराकैः सुमन्तुः—' कुशः काशः शरो गुन्द्रो यवा दूर्वाऽथ बल्वजाः ॥  
गोकेशमुञ्जकुन्दाश्च पूर्वाभावे परः परः ' ॥ काशादौ विशेषमाह शङ्खः—  
' काशहस्तस्तु नाचामेत्कदाचिद्विधिशङ्खया ॥ प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाह-  
स्तस्तथैव च ' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—' मासिमास्युद्धृता दर्भा मासि मा-  
स्येव चोदिताः ' ॥ षट्त्रिंशन्मते—' मासेन स्यादमावास्या दर्भो ग्राह्यो न-  
वः स्मृतः ' ॥ गृह्यपरिशिष्टे—' ये च पिण्डाश्रिता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पण-  
म् ॥ अमेध्याशुचिलिप्ताये तेषां त्यागो विधीयते ' ॥ लघुहारीतः—' पथि  
दर्भाश्रितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ॥ स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिव-  
र्जयेत् ॥ ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे ॥ हता मूत्रपुरीषाभ्यां  
तेषां त्यागो विधीयते ' ॥ हेमाद्रौ—' अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्म-  
कानि च ॥ हेमात्मकपवित्रस्य हेकां नार्हन्ति वै कलाम् ' ॥  
श्राद्धहविर्निर्णयः  
अथ हविः ॥ हेमाद्रौ प्रचेताः—' कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः  
स्युर्यवशालयः ॥ महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥ कृष्णाः श्वेताश्च  
लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि ' ॥ महायवा वेणुजीजं । मधूलिका याव-  
नाला इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च ॥ भारते—' वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षय्यं  
मनुरब्रवीत् ॥ सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितृन् ' ॥ चन्द्रिकायां  
देवलः—' इष्टापूर्ते मृताहे च दर्शवृद्धयष्टकासु च ॥ पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु देयं

१—महायवव्रीहियवौ यवप्रभेदौ । 'महायवा वेणुबीजम्' इति पाठस्तु न माधवानुम-  
त्त इति टीका ॥



नैव कुभोजनम् ॥ 'सायणीये-अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्रविवर्जितम् ॥ तैल-  
पक्वेन रहितं कृतमप्यकृतं भवेत्' ॥ हेमाद्रावत्रिः- 'अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतम-  
प्यकृतं भवेत्' ॥ तत्रैव ब्राह्मे- 'यवैर्व्रीहितिलैर्मषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा ॥ संतर्पयेत्  
पितृन्मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः ॥ नीवारैर्हरिश्यामाकैः प्रियंगुभिरथार्चयेत्' ॥  
हेमाद्रौ काष्णार्जिनिः- 'यदिष्टं जीवतश्वासीत्तदद्यात्तस्य यत्नतः ॥ स तृ-  
तो दुस्तरं मार्गं ततो याति न संशयः' ॥ कलिकायामाश्वलायनः- 'क-  
दल्यादिफलैः शस्तैर्मूलैरार्द्रादिकैरपि ॥ गोरसैर्मधुना दध्ना श्राद्धे संतर्पयेत्पि-  
तृन् ॥ कदल्याप्रफलादीनि श्राद्धे संपादयेत्सुधीः' ॥ हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रो-  
दये च मार्कण्डेयः- 'गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि ॥ श्राद्धेषु दत्तै-  
प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः ॥ विदार्या च भरुण्डैश्च तिलैः शृङ्गाटकैस्तथा ॥  
कञ्चुकैश्च तथा कन्दैः कर्कन्धूबदरैरपि ॥ पालेवतैरारुकैश्चाप्यक्षोटैः पनसैस्त-  
था ॥ काकोल्या क्षीरकाकोल्या तथा पिण्डालकैः शुभैः ॥ लाजाभिश्च स-  
धानाभिस्त्र्यपुसैश्चारुचिर्भटैः ॥ सर्षपाराजकाशाभ्यामिद्गुदै राजजम्बुभिः ॥ प्रि-  
यालामलकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्च तिलण्टकैः ॥ वेत्राङ्गुरैस्तालकंदैश्चक्रिकाक्षीरि-  
कावचैः ॥ लोचैः समोचैर्लकुचैस्तथा वै बीजपूरकैः ॥ कुंजातकैः पद्मफलै-  
र्भक्ष्यभोज्यैश्च संस्कृतैः ॥ रागखाण्डवचोष्यैश्च त्रिजातकसमन्वितैः ॥ दत्तैस्तु  
मासं प्रीयन्ते श्राद्धेषु पितरो नृणाम्' ॥ एषां कोशहेमाद्रादिव्याख्यावैयकाय-  
नुसारेण मध्यदेशभाषयानामान्युच्यन्ते । सतीनैः कलायैः ॥ 'कलायस्तु सती  
नकः' इत्यमरः । बटूरीतिप्रसिद्धः ॥ विदार्या तत्कंदेन । भरुण्डं जलजं  
मखाणा इति श्राद्धमञ्जर्याम् । भूकूष्माण्डमित्यन्ये । शृङ्गाटकं सिंघाडा ।  
कञ्चुकः कंचनारः । कंदः सूरणः 'अर्शोन्नः सूरणः कंदः' इत्यमरः । कर्कधूः  
वन्यं सूक्ष्मं बदरं पालेवतं कोशातकी । आरुकं अरुई । अक्षोटं अखरोटः ।  
काकोलीक्षीरकाकोल्या गौडेभ्यः प्रसिद्धौ ॥ पिण्डालकं सुथनी । महाराष्ट्राणां मो-  
हलकंद इति प्रसिद्धम् । त्रपुसादयस्त्रयः कर्कटीभेदाः । चिर्भटं खर्बुजम् । स-  
र्षपा इति दीर्घश्छान्दसः । प्रियालं चिरौजी । फल्गु उदुम्बरम् । तिलण्टकं पटो-



लकम् । तालकन्दः कन्दविशेषः । चक्रिका तिन्तिणी बिंबा । क्षीरिका खीरि  
 णी । मोचं कदलीफलम् । लकुचं वडहरम् । मुञ्जातकं गौडदेशे प्रसिद्धम् ।  
 पद्मफलं गङ्गा ॥ रागखाण्डवः 'पिप्पलीशुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूषस्तु खाण्डवः ।  
 रागखाण्डवतां याति शर्करासंयुतं तु तत्' इत्युक्तः पानविशेषः ॥ त्रिजातं  
 लवङ्गैलापत्रकाणि ॥ मदनरत्ने कौर्मै—' कालशाकं च वास्तूकं  
 मूलकं कृष्णनालिका' ॥ प्रशस्तानीतिशेषः ॥ हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये  
 च वायुपुराणे—' कालशाकं महाशाकं द्रोणशाकं तथार्द्रकम् ॥ विल्वाम-  
 लकमृद्धीकापनसाम्रातदाडिमम् ॥ चव्यं पालिवटाक्षोटं खर्जूरं च कसेरु-  
 कम् ॥ कोविदारश्च कंदश्च पटोलं बृहतीफलम् ॥ पिप्पली मरिचं चैव एला  
 शुण्ठी च सैन्धवम् ॥ शर्करागुडकर्पूरबदरीद्रोणपत्रकम्' ॥ तथा ॥  
 'मधुकं रामठं चैव कर्पूरं गुडमेव च ॥ श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं  
 तथा' ॥ रामठं हिङ्गुः ॥ 'कसेरुः कोविदारश्च तालकन्दस्तथा विसम् ॥ त-  
 मालं शतकन्दश्च मध्वालुः शीतकन्दकम् ॥ कालेयं कालशाकं च सुनिषण्णं  
 सुवर्चलम् ॥ मांसं शाकं दधि क्षीरं चाम्बुवेत्रांकुरस्तथा ॥ कट्फलं कौङ्कणीद्रा  
 क्षा लकुचं मोचमेव च ॥ अलाबुं ग्रीवकं चारं कर्कन्धुर्मधुसाह्वयम् ॥ वैक-  
 ङ्कतं नारिकेलं शृङ्गाटकपरुषकम् ॥ पिप्पलीमरिचं चैव पटोलं बृहतीफलम् ॥  
 एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च ॥ नागरं चार्द्रकं देयं दीर्घमूलक  
 मेव च' इति ॥ तथा—' शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमक्षयाः' ॥ द्रोण-  
 शाकं 'गूम' इति । प्रसिद्धम् । मृद्धी द्राक्षा । आम्रातं आंबाडा इति प्रसिद्धो  
 वृक्षः । तत्फलं च पालिवन्तं जम्बीरम् । पालिआलमिति गौडप्रसिद्धं वा । खर्जूरं ख  
 जूर इति प्रसिद्धम् । कसेरुः जलजः कन्दः । कोविदारः कञ्चनारसदृशः ।  
 तालकन्दः तालमूली । विसं भसीडम् । शतकन्दः शतावरी । शालुकं सेरुकी  
 तिप्रसिद्धम् । कालेयं करालसंज्ञः शाकः । दारुहरिद्रावेति पृथ्वीचन्द्रोदयः ।  
 सुनिषण्णं कर्कटी । सुदृशं सुलटीया इति गौडप्रसिद्धं । सुवर्चलं शाकविशेषः ।  
 कट्फलं श्रीपर्णीवृक्षफलम् । कौङ्कणी अम्लरसा द्राक्षा । तिन्दुकं डिण्डिमिति



कैदेवः तिन्दुफलं वा । ग्रीवकं फलविशेषः । चारं क्षुद्रतालम् । मधुसाह्वयं  
मधूकपृष्णं फलं वा वैकङ्कतं चैत्रीतिगौडाख्यातम् । पुरुषकंपरुसमितिप्रसिद्ध-  
म् । नागरं शुण्ठी । पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे—‘आम्रमाप्रातकंवित्वंदादिमं बीज-  
पुरकम् ॥ प्राचीनामलकं क्षीरं नालिकेरं परुषकम् । नारङ्गकं चखर्जूरं द्राक्षानी-  
लकपित्थकम् ॥ एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः’ ॥ मात्स्ये—  
‘अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् ॥ मांसं प्रीणाति सर्वान्वै पितृ-  
नित्याह केशवः’ ॥ याज्ञवल्क्यः—‘हविष्यान्नेन वै मांसं पायसेन तु  
वत्सरम् ॥ मत्स्यहारिणकौरभशाकुनच्छागपार्वतैः ॥ ऐणरौरववाराहशा-  
शैर्मांसैर्यथाक्रमम् ॥ मांसवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥ खड्गा-  
मिषं महाशल्यं मधु मुन्यन्नमेव च ॥ लोहामिषं कालशकं मांसं वाधी-  
णसस्यच’ ॥ निगमः—‘त्रिःपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ॥  
वाधीणसं तु तं प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि’ ॥ वाधीणसो जरच्छाग  
इति मेधातिथिः ॥ कात्यायनः ‘छागोर्लभेषानालभ्य शेषाणि  
क्रीत्वा लब्ध्वा वा स्वयं मृतानां वाहत्य पचेत्’ ॥ कौर्मै—‘क्रीत्वा  
लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहत्य वा द्विजः ॥ दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन  
तदस्याक्षय्यमुच्यते’ ॥ दत्तस्य मांसस्याभक्षणे दोषमाह मनुः—‘नि  
युक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतां याति सं-  
भवानेकाविंशतिम्’ ॥ अत्र बहुषु वचनेषु श्राद्धे मांसमधुनोः प्राशस्त्योक्तेः ॥  
‘विना मांसेन यच्छ्राद्धं कृतमप्यलृतं भवेत्’ । इति हेमाद्रौ देवलोक्तेः ।  
‘यच्छ्राद्धं मधुना हीनं तद्रसैः सकलैरपि ॥ मिष्टान्नैरपि संयुक्तं पितृणां नैव  
तृप्तये ॥ अणुमात्रमपिश्राद्धे यदि न स्याच्च माक्षिकम् ॥ नामापि कीर्तनीयं स्यात्  
पितृणां प्रीतये ततः’ इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेश्च मांसमधुनोः श्राद्धे नियतत्वं  
गम्यते गौडनिबन्धे मात्स्ये—‘मध्वभावे गुडो देयः क्षीरस्य च तथा  
दधि ॥ न लभ्यते घृतं यत्र कुर्यात्घृतवतीजपम्’ ॥ श्राद्धकलिकायां



नागरखण्डे—‘कथंचिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु ॥ पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना’ ॥ बृहत्पराशरस्तुसांसं निषेधति ‘यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसैस्तर्पयते पितॄन् ॥ स विद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥ क्षिप्त्वा कूपे यथा कंचिद्बाल आदातुमिच्छति ॥ पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृतथा’ ॥ सएव—‘सर्वथान्नं यदा न स्यात्तदैवामिषमाश्रयेत् ॥ ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तच्च श्वादिहतं यदि’ ॥ भागवतेपि—‘नद्यादामिषं श्राद्धे नचाद्याद्धर्मतत्त्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुर्हिसया’ ॥ तथेतिशेषः ॥ अत्रकेचित् । ‘मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः ॥ मधुप्रदानं शूद्रस्य सर्वेषां वा विरोधि यत्’ इतिहेमाद्रौ पुलस्त्योक्त्या व्यवस्थामाहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—‘अक्षता गोपशुश्वैव श्राद्धे मांसं तथा मधु ॥ देवराच्च सुतोत्पतिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्’ इतिनिगमोक्तेः ॥ ‘वराऽतिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणाक्रिया’ इतिकलिवर्ज्येषु हेमाद्रावादित्यपुराणात् ॥ बृहन्नारदीये—‘मांसदानं यथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा’ इत्युक्त्वा ‘इमान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः’ इति बृहन्नारदीयेभिधानाच्च मांसविधिःकलिव्यतिरिक्तविषयः ॥ कलौ मांसनिषेधानां च देशाचाराद्व्यवस्था ॥ तथाच बृहन्नारदीये । श्राद्धं प्रकृत्य । ‘यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा । देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्नरैः ॥ अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबाहिष्कृतः’ इति ॥ ‘यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविधे नगरेपि वा ॥ यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं विचारयेत्’ इतिभृगूक्तेश्चेत्याहुः । तत्र ॥ होलाकाधिकरणन्यायेनदेशविशेषव्यवस्थाषकपदकल्पनायो-

१-आहुरित्यस्वरसः । एवमपि काम्यमांसदानवारणं न स्यात् ‘सप्तदश वैश्यस्यसामिधेन्यः’ इत्यस्य ‘वैश्यस्य सप्तदशैव सामिधेन्यः’ इति वचनार्थमुपेत्य तस्य नित्यपरत्वं संभवाद्वैश्यं प्रति काम्यैकविंशतिसामिधेन्यनुवचनस्यसिद्धान्तितत्वात् । अत एव विज्ञानेश्वरेण मुन्यन्नं नीवारादियच्छ्राद्धयोग्यमुक्तंतद्ब्राह्मणस्य प्रधानंसमयफलदम् । एवमप्रेपि । एतन्नयव्यतिरिक्तं यदिरोधि अप्रतिषिद्धंतद्विहितंतत्सर्वेषांप्रधानमित्यव्यवस्थयैबव्याख्यातमितीति टीका ॥ २-मतान्तरमाह-कलाविति ॥



गात् । निरूपितं च तत् पितामहचरणैर्मांसमीमांसायाम् इति दिक् ॥  
 मनुः--‘संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ॥ वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्ति-  
 र्द्वादशवार्षिकी । त्रिःपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ॥ वाध्रीणसंतुतं  
 प्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि ’ ॥ क्षीरादौ विशेषमाह हेमाद्रौ सुमन्तुः--‘पयो  
 दधि घृतं चैव गवां श्राद्धेषु पावनम् ॥ महिषीणां घृतं प्राहुः श्रेष्ठं न तु  
 पयः कचित् ’ ॥ याज्ञवल्क्यः--‘सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत् ॥  
 औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम् ’ । हेमाद्रौ हारीतः--‘नवसूतायाः  
 सप्तरात्रादित्येके दशरात्रादित्यपरे, मांसे नो पेयूषं भवतीति धर्मविदः’ ॥ एतद्रजो-  
 भावपरम् । देवलः--‘अजाविमहिषीणां तु पयः श्राद्धेषु वर्जयेत् । विकाराः  
 पयसश्चैव माहिषं तु घृतं हितम् ’ ॥ तत्रैव ब्राह्मे--‘माहिषं चामरं मार्ग-  
 माविकैकशफोद्भवम् । स्त्रैणमौष्ट्रं पाचितं च दधि क्षीरं त्यजेत् घृतम् ॥ स-  
 गुडं मरिचाक्तं तु तथा पर्युषितं दधि । दीर्णं तक्रमपेतं च नष्टास्वादं च  
 फेनवत् ’ ॥ माहिषापवादोऽपराकै ब्राह्मे--‘देयं तक्रं तु सद्यस्कं नवनी-  
 तादनुद्धृतम् ॥ आरण्यमाहिषीक्षीरं शर्करास्रुतिसंयुतम् ॥ मध्वक्तं तुहिनं चैव  
 दद्यात्तदमृतं यतः’ ॥ स्त्रुतिःक्षीरशरः । श्राद्धकौमुद्यां चैवम् ॥ यद्यपि या-  
 ज्ञवल्क्येन--‘अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् । अस्नेहा अपि  
 गोधूमयवगोरसविक्रियाः’ इति पर्युषितं दध्यादि भोज्यमुक्तम् तथापि गुड-  
 मरीचाक्तस्य पर्युषितदोषोत्रोच्यत इति हेमाद्रिः ॥ तत्रैव ब्राह्मे--‘काल-  
 शाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा ॥ शाकमारण्यकं चैव दद्याच्छ्राद्धेषु  
 नित्यशः’ ॥ तन्दुलीयं सूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रिः ॥ महाराष्ट्राणां माठ इति प्रसिद्धम् ।  
 आरण्यकं फांजीचूचादि । तत्रैव ‘दाडिमं मागधीं चैव नागरार्द्रकतिन्तिणीः ।  
 आम्रातकं जीरकं च कुबरं चैव योजयेत् ’ ॥ मागधी पिप्पली । नागरं

१-होलाकादि कचिद्देशे क्रियते, कचित्तु नेति देशविशेषव्यवस्थापकपदकल्पनया-  
 ज्ञाचार इति सिद्धान्तः मांसे देशविशेषव्यवस्थापि युगान्तर एव कलिनिषेधस्य जाग-  
 रूकत्वात् ‘समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्भवेत्’ इति वचनादिति दिगर्थः । इति टीका ॥  
 २-‘पेयूषं पीयूषोऽभिनवं पयः’ इति कोशः ॥



शुण्ठी । कुवरं कुस्तुंबरं धनिया इति प्रसिद्धम् ॥ वायवीये-‘अगस्त्यस्य शिखास्ताम्राः काषायाः सर्व एव च ’ । शिखा नवपल्लवाः । प्रभासखण्डे-‘आरामस्य तु सीमन्ताः कलापाः सर्व एव च ’ । सीमन्ताः नवपल्लवाः । कौर्मे-‘तमालं शतकन्दं च मध्वालुं शीतकन्दली’ । मध्वालुः मोहलकन्दः । शीत-  
 कन्दलीरातालु इति प्रसिद्धम् ॥ अथ वर्ज्यं ॥ मार्कण्डेयपुराणे-  
 श्राद्धे वर्ज्यं हविः ‘यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् । अन्यायकन्या-  
 शुल्कार्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् । पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्ता यच्चाप्युपाहृत-  
 म्’ । चन्द्रोदये शङ्खः-‘भूस्तृणं शिरसा शिग्रूपालङ्कीमृचुकं तथा । कूष्माण्डालाबुवातार्किकोविदारांश्च वर्जयेत् । पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूल-  
 कम । कृतं च लवणं सर्वं वंशात्रं च विवर्जयेत् ॥ राजमाषान्मसूरांश्च कोद्रवान्  
 कोरदूषकान् । लोहितान्बृक्षानिर्यासान्श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्’ ॥ भूस्तृणं काश्मी-  
 रदेशे प्रसिद्धम् । सुरसा निर्गुण्डीति माधवः ॥ तुलसीति पृथ्वीचन्द्रोदयः । सांच  
 भक्ष्यत्वेन निषिद्धा न पुष्पत्वेनेति गौडाः ॥ पालंकी पालक इति प्रसिद्धा । मृ-  
 चुकं जलजः शाकः । समुकम् इति पाठे खदिरशाक इति हेमाद्रिः । मरी-  
 चान्यार्द्राणीति हेमाद्रिः । कृतं लवणं सांभरभिन्नम् । ‘सैन्धवं लवणं चैव  
 तथा मानससम्भवम्’ । ‘यच्च सामुद्रिकं भवेत्’ इति शूलपाणौ पाठः । ‘पवित्रे  
 परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः’ इति वायवीयोक्तेः मानसं साम्भरम् । य-  
 च्छु भविष्यम्-‘तर्जन्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ’ इति । तत्र  
 क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धं निषिद्धम् ॥ ‘भुक्ता तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने  
 वसेत्’ इति ब्राह्मोक्तेरिति शूलपाणिः । क्षीरलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रं  
 लवणं निषिद्धमिति वाचस्पतिः ॥ राजमाषाः स्तरा इति प्रसिद्धाः । कोरदू-  
 षकः चणकोद्रवः । चन्द्रिकायां शङ्खः-‘पिण्डालकं च तुण्डीरं करमर्दं  
 च नालिकं । कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे दत्वा व्रजत्यधः’ पिण्डालकं

१-‘तुलसीगन्धमाग्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः’  
 इति पुराणात् ॥ इति टीका ॥



महाराष्ट्रेषु पेण्डरमिति प्रसिद्धम् । तुण्डीरं बिम्बीफलमिति कैदेवः । करमर्दं करवन्दमिति प्रसिद्धम् । तत्रैव विडालोच्छिष्टमाघातं श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् । कूष्माण्डं माहिषीक्षीरमाढक्यो राजसर्षपाः ॥ चणका राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः ॥ वृद्धपराशरः—‘करीरफलपुष्पाणि विडङ्गमरिचानि च । जम्भारिकासजम्बीरा सुपक्वं बीजपूरकम् ॥ जम्बवलाबूनि पिप्पल्यः पटोलं पिण्डमूलकम् । मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्त्वा पतत्यधः’ ॥ जम्बूः सूक्ष्मा । माधवीये चतुर्विंशतिमते—‘यावनालान्कुलित्थांश्च वर्जयन्ति विपश्चितः’ ॥ यावनाला जोंधला । अत्र यानि चणकादीनि विहितनिषिद्धानि तेषां विकल्पः । अन्यथा ‘श्यामाकैश्चणकैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियंगुभिः । गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मसं प्रीणयते पितृन्’ इति । ‘गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि’ इति हेमाद्रौ कौर्मविष्णुधर्मादिविरोधः स्यात् ॥ पिप्पलीमरिचादेस्तु प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यद्रव्यमिश्रस्य ‘सौवीरतिकैर्लवणादिभिस्तु पाकस्य सिद्धिर्महतीहयैस्तु । तद्बीजपूरान्मरिचादियोगात्सिद्धं प्रदेयं न तु दुष्यतीह’ इति पृथ्वीन्चद्रोदये वृद्धपराशरोक्तेः ॥ तत्रैव ‘दातुश्च यस्मिन्मनसोभिलाषः श्रद्धा भवेद्यत्र च दीयमाने । श्राद्धेषु देयं विधिवत्तदेव तद्वत्तमक्षय्यामिति ब्रुवन्ति’ ॥ एतन्निषिद्धेतरविषयम् ॥ चन्द्रिकायाम्—‘रूष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि । न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गमाषांस्तथैव च’ ॥ मात्स्ये—‘मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः । पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्रादरूषकाः । न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा । कोद्रवोद्धारवरककपित्थमधुकातसी ॥ एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः श्राद्धमिच्छता’ ॥ निष्पावाः वल्लाः । यत्तु मार्कण्डेयः—‘प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः’ इति तत्र निष्पावः श्वेतशिम्बीति दानसागरे श्राद्धप्रकाशे चोक्तम् ॥ बिल्वं च रक्तं निषिद्धं ॥ ‘जम्बीरं रक्तबिल्वं च शालस्यापि फलं त्यजेत्’ इति ब्राह्मोक्तेः ॥ ‘पारिभद्रो निम्बतरुः’ इत्यमरः ॥ रक्तमन्दारइति हेमाद्रिः ॥ आटरूषो वासा तत्पुष्पम् उद्धारः काञ्चनारः । मधुकं ज्येष्ठा म-



ध्वाति चन्द्रिका । चरका वनमुद्राः हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—‘आसनाखण्डमन्त्राद्यं  
पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जङ्गमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् । द्विःस्विन्नं  
परिदग्धं च तथैवाग्रावलेहितम् । शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम् ॥  
पिण्याकं मथितं चैव तथापि लवणं च यत् ॥ सिद्धाः कृताश्च ये भक्ष्याः प्र-  
त्यक्षलवणीकृताः । वाससा चावभूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि’ ॥ द्विःस्विन्नं  
यत्सकृत्पाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते, तद्वर्ज्यम् ॥  
यत्तु तिक्तशकान्नविकारादि द्विःपाकेनैव भक्षणार्हं, तन्न निषिद्धम् ॥ अ-  
ग्रावलेहितमास्वादितपूर्वं पर्युषितस्य सदा निषेधेऽपि पुनर्वचनम् ‘अपूषाश्च  
करम्भाश्च धाना वटकसक्तवः । शाकं मांसं मसूरं च सूपं कृसरमेव च । य-  
वागूः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम् । सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुष्कं चेत्परि-  
वर्जयेत्’ इति माधवीये यमोक्तवटकादेरपि पर्युषितस्य निषेधार्थमिति च-  
न्द्रिकादयः ॥ वर्ज्येषु विश्वामित्रः—‘कपित्थं कुरुकं चैव नारिकेलं च पै-  
त्तिकम् । जम्बूफलादि पक्वं च पिण्याकं तन्दुलीयकम्’ ॥ हेमाद्रौ षट्-  
त्रिंशन्मते—‘वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथैव च’ ॥ मर्कटकाः  
लाका इति प्रसिद्धाः ॥ पैठीनसिः—‘वृन्ताकं नलिकापोतकुसुम्भाश्मन्तकानि  
च । शाकानामभक्ष्याः’ इति । पोतं पोई इति प्रसिद्धम् । मार्कण्डेयः—‘व-  
र्ज्याश्वाभिषवा नित्यं शतपुष्पा गवेधुकाः । जम्बीरकं फलं वर्ज्यं कोविदा-  
राश्च नित्यशः’ ॥ अभिषवः शुक्ला इति चन्द्रिका । संधानकमिति पृथ्वी-  
चन्द्रः । शतपुष्पा ओंवा इति प्रसिद्धम् ॥ शाठ्यायनः—‘मारिषं नालिका  
चैव रक्ता या च कलम्बिका । असुरान्नमिदं सर्वं पितृणां नोपतिष्ठते ॥ मारिषं  
मध्यदेशे मरुसा इति, महाराष्ट्रेषु राजगिरा इति च प्रसिद्धम् ॥ कलम्बि-  
का वेण्वाकृतिपत्रा ॥ तत्रैव ‘गान्धारिकापटोलानि श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्’ ॥  
गान्धारिका तन्दुलीयमिति चन्द्रिका । जवासाख्या दुरालभा’ इति कैदेवः ॥  
भारते—‘हिङ्गुद्रव्येषु शाकेषु अलाबुं लशुनं तथा । कुकुण्डकान्यलाबूनि कृ-  
ष्णं लवणमेव च’ । पुनरलाबुग्रहणमुभयालाबुनिषेधार्थमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥



प० ३ ]

श्राद्धेजलनिर्णयः ।

३८१

कुक्कुण्डकं वर्तुलछत्राकम् ॥ तत्रैव 'कुस्तुम्बुरुं कलिङ्गोत्थं वर्जयेदाम्लवेतसम्' । हेमाद्रौ ब्राह्मे—'वार्ताकं पञ्चशिम्बं च लोमशानि फलानि च । कलिङ्गं रक्तचारं च वीणाकं घृतचारकम् ॥ कपालं काचमारीचे करञ्जं पिण्डमूलकम् ॥ गृञ्जनं चुलिकां चैव गाजरं जीवकं तथा' ॥ वृन्ताकं श्वेतं । 'कण्डूरां श्वेतवृन्ताकं कूष्माण्डं च विवर्जयेत्' इतिदेवलोक्तेः ॥ तेन कृष्णस्य निषेध इति चन्द्रिकामाधवौ ॥ वस्तुतस्तु सदा श्वेतनिषेधात् पुनः श्राद्धे निषेधो व्यर्थः तेन भक्ष्यस्य कृष्णवृन्ताकस्यापि निषेधार्थमिदमिति वयम् ॥ कण्डूरा कपिकच्छूः । कुंभाण्डं वृत्तालाम्बुः । पञ्चशिम्बं बल्लमसूरराजभाषमटकुलित्थाः । लोमशानि कपित्थानि । रक्तचारं लोहितचारफलम् वीणाकं कृष्णदीर्घकर्कटी । घृतचारकं चिरस्थितचारफलम् । चारोलीति प्रसिद्धम् । कपालं नारिकेलम् । काचं कचूवृक्षफलम् । मारीचं आर्द्रमरीचानि । गृञ्जनं पलाण्डुभेदः पश्चिमदिशि प्रसिद्धः ॥ नतु गाजरम् । तस्य पृथगुक्तेः हेमाद्रिणा तु गृञ्जनं गाजरमेवोक्तम् ॥ गौडश्राद्धकौमुद्यामप्येवं तच्चिन्त्यम् ॥ चुक्रिका चिरकालशुक्लं पानकम् ॥ चन्द्रिकायां हारीतः—'न वटपुक्षोदुम्बरशेलुदधित्थनीपमातुलिङ्गानि भक्षयेत्' ॥ शेलुः भोकरसंज्ञः । दधित्थं कपित्थं स्मृतिसारे—'क्षीरे तु लवणं दत्त्वा उच्छिष्टेऽपि च यत् घृतम् ॥ स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम्' ॥ गौडनिबन्धसागरे स्मृतिः—'नारिकेरोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना' ॥ 'ताम्रपात्रे घृतं मांसं पञ्चगव्यं घृतेतरत् । आमिषं तु गवां मांसं दधिमद्यं पयो रजः ॥ द्रव्यांतरयुतं मांसं पयसा संयुतं दधि । पयोऽनुद्धृतसारं च ताम्रपात्रे न दुष्यति' ॥ अथ जलम् ॥ याज्ञवल्क्यः ॥ 'शुचि गोतृभिरुक्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्' । वर्ज्यं जलमुक्तं हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—'दुर्गन्धि फेनिलं क्षारं पङ्क्तिं

श्राद्धेजल-  
निर्णयः

१—सच 'वर्जयेद्गृञ्जनं श्राद्धे काञ्जिकां पिण्डमूलकम् । करञ्जं येऽपि चान्ये वै रसमन्धोत्कटास्तथा' इति वाक्ये हरिद्रक्तवर्णः इति माधवः । 'गृञ्जनं लघुनानुकारी सूक्ष्म नालः कंदभेदः' इति विज्ञानेश्वरः । 'गन्धाकातिरसैस्तुल्यं गृञ्जनं तु पलाण्डुना । सूक्ष्मनालाग्रपत्रत्वाद्भिद्यतेऽसौ पलाण्डुतः' इति वाग्भटटीकावचनं च तत्र मानम्' इति टीका ॥



पल्लवलोदकम् । न भवेद्यत्र गोतृभिर्नक्तं यच्चाप्युपाहतम् ॥ यन्न सर्वार्थ-  
 मुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् ॥ तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव श्राद्धकर्म-  
 णि' ॥ निपानो जलाशयः । शुद्धितत्त्वे शब्दः—'स्नानमाचमनं दानं  
 देवतापितृतर्पणम् । शूद्रोदकैर्न कुर्वीत तथामध्यादिनिःसृतैः ।' हेमाद्रावा-  
 दित्यपुराणे— 'चिरं पर्युषितं वापि शूद्रस्पृष्टमथापिवा ॥ जान्हव्याः  
 स्नानदानादौ पुनात्येव सदा पयः' कात्यायनः—'अपो निशि न गृण्हीयान्न  
 पिबेच्च कदाचन । उद्धृत्याग्निमुपर्यग्रेधाग्नी धाम्न इतरियेत्' ॥ रजोदोषे  
 तु प्रागुक्तं नारदीये— 'त्यजेत्पर्युषितं पुष्पं त्यजेत्पर्युषितं जलम् । न  
 त्यजेज्जान्हवीतोयं तुलसीं बिल्वपद्मकम्' ॥ अन्यान्यपि पृथ्वीचन्द्रोदये  
 मात्स्ये—'मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः । रौप्यं दर्भास्तिला  
 गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः ।  
 अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतुपा इति विश्रुताः' ॥ ब्राह्मे 'यतिस्त्रिदण्डः करुणा  
 राजतं पात्रमेव च । दौहित्रं कुतुपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा' ॥ श-  
 स्तानीति शेषः ॥ दौहित्रं खड्गपात्रमिति कल्पतरुः । अपरार्कं स्मृत्यन्तरे ॥  
 'अपत्यं दुहितुश्चैव खड्गपात्रं तथैव च । घृतं च कपिलाया गोदौहित्रमिति  
 कीर्तितम्' ॥ ब्रह्माण्डे—'अमावास्यागते सोमे या तु खादति गौस्तृणम् । तस्या  
 गौर्यद्भवेत् क्षीरं तदौहित्रमुदाहतम्' ॥ स्मृतिसंग्रहे—'उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं  
 वान्तं च मृतकर्पटम् । श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिलाः' ॥ उच्छिष्टं  
 वत्सस्य दुग्धमित्यर्थः ॥ शिवनिर्माल्यं गङ्गोदकम् । वान्तं मधु । मृतकर्पटं तसरी  
 पट्टम् । तिलेष्वपस्तम्बः—'अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्ट  
 फलितास्तथा । ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिला-  
 स्तिलाः' ॥ अभावे ग्राम्याः ॥ 'गौराः कृष्णास्तथारण्यास्तथैव त्रिविधास्ति-  
 लाः' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ अथ वर्ज्यानि चन्द्रिकायां ॥ यमः—  
 'कुक्कुटो विड्वराहश्च काकश्चाथ विडालकः । वृषलीपतिश्च

तिलनिर्णयः

श्राद्धवर्ज्यानि

१—'जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा वनोद्भवाः । जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृ-  
 ष्टोत्पादिताश्च ये' इति सत्यव्रतः । इति टीका ॥



वृषलः षण्ढो वीरा रजस्वला ॥ एते तु श्राद्धकाले वै वर्जनीयाः प्रयत्न-  
 तः ॥ खञ्जः काणः कुणिः श्वित्री दातुः प्रेष्यकरस्तथा । न्यूनाङ्गोप्यतिरिक्ता-  
 ङ्गस्तमप्यपनयेत्ततः ॥ वायवीये—‘अन्नं पश्येयुरेते तु यदि वै हव्यकव्ययोः ।  
 उत्सृष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः’ ॥ सुमन्तुः—‘चाण्डालादिवी-  
 क्षितमन्नमभोज्यमन्यत्र मृद्गस्महिरण्योदकस्पर्शात्’ ॥ तत्रैव जमदग्निः—‘शु-  
 द्धवत्योथ कूष्माण्ड्यः पावमान्यस्तरत्समाः । पूतेन वारिणा दधैरन्नदोषमपानु-  
 दत्’ ॥ चन्द्रोदये—‘पादुकोपानहौ छत्रं चित्ररक्तांबरं तथा । रक्तपुष्पं  
 च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत्’ ॥ निर्णयदीपे—‘घण्टानिनादो हयसं-  
 निधानं शम्बूकशङ्खं कदलीदलं च । उन्मत्तजात्यर्कहयारिजानि श्राद्धस्य वै-  
 गुण्यकराण्यमूनि’ ॥ हयारिजं महिषीक्षीरादि ॥ अथ श्रा-  
 द्धदिनकृत्यनिर्णयः श्राद्धदिनकृत्यम् ॥ चन्द्रोदये उशनाः—‘गोमयोदकैर्भूमि-  
 भाजनशौचं कुर्यात्’ ॥ पराशरः—‘काञ्जिकं दधि तक्रं  
 च शृतं वाशृतमेव च । पूर्वमेव न दातव्यमेकोद्दिष्टेथ पार्वणे’ ॥ हेमाद्रौ प-  
 राशरः—‘गृह्याग्निशिशुदेवानां ब्रह्मचारितपस्विनाम् । तावन्न दीयते किं-  
 चिद्यावत्पिण्डान्न निर्वपेत्’ ॥ कौर्मै—‘तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेद-  
 जात्’ ॥ तत्रैव देवलः—‘तथैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सहाम्बरः ।  
 आरभेत नवैः पात्रैरन्नारम्भं च बान्धवैः’ ॥ अत्रात्मनेपदात्स्वयमेव पाकः का-  
 र्यः ॥ अशक्तौ पत्न्या तदभावे बान्धवैः ॥ ‘ततस्तु निपपाचाशु सीता ज-  
 नकनन्दिनी’ इति पाद्मलिङ्गादिति हेमाद्रिः ॥ श्राद्धदीपकलिकायामाश्व-  
 लायनः—‘समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः ॥ कृतोपकारिभिश्चैव पा-  
 ककार्यं प्रशस्यते’ ॥ व्यासः—‘गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रय-  
 त्ततः । निष्पन्नेषु च पाकेषु पुनः स्नानं समाचरेत्’ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये  
 ब्राह्मे—‘रजस्वलां च पाखण्डां पुंश्चलीं पतितां तथा । त्यजेच्छूद्रां तथा  
 बन्ध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ॥ व्यङ्गकर्णी चतुर्थाहः स्नातामपि रज-

१--महानसादिभूमिः । २--काञ्जिकं तु निषिद्धमेव । ३ प्रातर्होमं विना ॥



स्वलाम् । वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थममातृपितृवंशजाम् ' ॥ मातृपितृवंशज-  
भिन्नां त्यजेदित्यर्थः ॥ स्मृतिसारे- ' न पाकं कारयेत्पुत्रीमन्यां वा-  
प्यन्यगोत्रजाम् । मृतवन्ध्यां च गर्भघ्नीं गर्भिणीं चैव दुर्मुखीम् ' ॥ पाकभा-  
ण्डानि तु हेमाद्रौ नागरखण्डे- 'सौवर्णान्यथ सौम्याणि कांस्यताम्रोद्भवानि  
च । मार्त्तिकयान्यपि भव्यानि नूतनानि दृढानि च ' ॥ तत्रैव आदित्यपुराणे-  
' पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम् । स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्व-  
पि वा द्विजः ॥ अच्छिद्रेष्वविलिप्तेषु तथानुपहतेषु च । नायसेषु न भिन्नेषु  
दूषितेष्वपि कर्हिचित् ॥ पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु क्वचित् ' ॥  
वायुपुराणे- ' न कदाचित्पचेदन्नमयःस्थालीषु पैतृकम् । अयसो दर्श-  
नादेव पितरोपि द्रवन्ति हि ॥ कालायसं विशेषेण निन्दन्ति पितृकर्म-  
णि ॥ फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि तु ॥ महानसेपि शस्त्राणि  
तेषामेव हि सन्निधिः । इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥ श्रा-  
द्धदेशे तु विदुषा पितृणां तृप्तिमिच्छता । महानसेपि युक्तानामपि कार्यं  
न दर्शनम् ' ॥ तत्रैव । ' पचमानस्तु भाण्डेषु भक्त्या ताम्रमयेषु च ।  
समुद्धरति वै घोरात् पितृन् दुःखमहार्णवात् ॥ तैजसानामभावे तु पिठरे मृ-  
न्मयेपि च । नवे शुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्रर्थमादरात् ' ॥ तत्रैवादित्यपु-  
राणे- ' पक्वान्नस्थापनार्थं तु शस्यन्ते दारुजान्यपि । दर्व्यादीनपि कार्या-  
णि यज्ञियैरपि दारुभिः ' ॥ यमः- ' विवाहे प्रेतकार्ये च मातापित्रोः क्षये-  
हनि । नवभाण्डानि कुर्वीत यज्ञकाले विशेषतः ' ॥ अथ पा-  
काग्निः ॥ हेमाद्रौ प्रजापतिः- ' औपासनेनान्नसिद्धिरग्नौ कर-  
णमेव च ' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेद्गिराः- ' शालाग्रौ तु पचेदन्नं  
लौकिके वापि नित्यशः । यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते ' ॥ मनुः-

श्राद्धपाकाग्नि-  
निर्णयः

१ कृतप्रायश्चित्तामपि । २-अस्य ' इति केचित् ' इत्यत्रान्वयः । ३-येषां सूत्रे  
औपासानाग्नौ नित्यः पाकः तेषां श्राद्धपाकेऽपि तत्रैवेत्यर्थः ॥



वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहि-  
कीं द्विजः' ॥ श्राद्धस्य गृह्यत्वं चोक्तमपराकैण ॥ अत्र विशेषः कर्मप्रदीपे—  
' प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात् । शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं  
समाचरेत् ॥ पाकान्तेऽग्निं तमाहृत्य गृह्याग्नौ तु पुनःक्षिपेत् । ततोऽस्मिन्वैश्व-  
देवादि कर्म कुर्यादतन्द्रितः' ॥ तदभावे लौकिके 'ततः पचेयुरन्नानि निर्वा-  
पानन्तरं शनैः । वैवाहिकेऽग्नौ वाप्यत्र लौकिके वापि संयतः' इति कलिकायां  
संग्रहोक्तेः ॥ पित्रर्थं निर्वापं कृत्वेत्यर्थः ॥ अतएव हेमाद्रौ वायुपुराणे—'पि-  
त्रर्थं निर्वपेद्भूमौ कूर्चे वा दर्भसंस्कृते' ॥ तत्रैव पद्ममातस्ययोः—'अग्निमान्निर्व-  
पेत्पैत्रं चरुं वा सममुष्टिभिः । पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्य-  
सेत्' ॥ चरुग्रहणान्नशाकादाविति हेमाद्रिः ॥ पिण्डपितृयज्ञार्थपाकविषयो-  
यं निर्वाप इति तु युक्तम् ॥ अयं चेतरेषामग्निः ॥ आश्वलायनानां तु 'गुरु-  
णाभिर्मृता अन्यतो वापैक्षीयमाणा अमावास्यायां शान्तिकर्मकुर्वीरन्' इत्या-  
दिसूत्रेण पचनाग्नेरत्यागमुक्त्वा 'इहैवायमितरो जातवेदः' । इत्यर्धर्चेन 'शमी-  
मयीभ्यामरणिभ्यामग्निमन्थेत्स पचनाग्निर्भवति' इति सूत्रे वृत्तौ चोक्तेः पच-  
नाग्नावेव पाकः ॥ बौधायनेनाप्युक्तम् 'आहतपचनाग्निमौपासनं वाभिप्र-  
व्रजन्ति' इति ॥ स्मार्ताग्नौ पाकस्त्वन्यशाखाविषय इति केचित् ॥ वस्तु-  
तस्तु पूर्वोक्तस्य सर्वाधानविषयत्वं युक्तम् ॥ शिष्टाचारेपि न पचनो ह-  
श्यते ॥ अण्डविलायामपि सर्वाधानपक्षे वैश्वदेवश्राद्धं च पचने कुर्यात् अं-

१-गृह्यकारैरुक्तमष्टकापार्वणश्राद्धहोमादि गृह्याग्निसाध्यं गृह्यम् । नच गृहं शाला  
तत्रोक्तं वास्तुकर्ममात्रं गृह्यम्, नत्वष्टकाहोमादीति वाच्यम् । तावन्मात्रगृहे माना-  
भावात् वचनवैयर्थ्यात् । नापि गृहं दाराः तत्रोक्तं गृह्यमिति वाच्यम् । गृहीत्यने-  
न गतत्वात् । पञ्चयज्ञविधानं गृही कुर्यादिति योजना, नतु वैवाहिकेऽग्नौ पञ्चयज्ञविधानं  
कुर्यादिति, वैश्वदेवस्य गृह्यकर्मत्वेन तत्राग्निसंबन्धस्य सिद्धेः । पञ्चानामनाग्निसाध्य  
त्वाच्च । आन्वाहिकीं नित्यां पक्तिं पाकं च तदग्नौ कुर्यात् । तदग्निपाकश्च वैश्वदेवार्थः 'शा-  
लाग्नौ तु पचेदन्नम्' इति पूर्वोक्ताङ्गिरोवाक्यात् । वैश्वदेवशेषेण च भोजनं कार्यम् ॥ इति  
टीका ॥ २-अपध्याता । ३-पुत्रपशुहिरण्यादिभिरपक्षीयमाणा । ४-तथाच लौकिका-  
ग्नावेव श्राद्धपाक इति भावः ॥



न्यथौपासने इत्युक्तम् ॥ अशौकरणं तु प्रयोगपारिजातादिभिराब्दिकादि-  
सर्वश्राद्धेषु पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गोक्तैर्लौकिके पचने वा पाके कृतेपि गृह्याशौ-  
पकचरुणैव कार्यमिति प्रतिभाति ॥ मदनरत्नेष्वेवम् ॥ विधुरोत्सन्नाभ्यादे-  
स्तु पृष्ठोदिविविधानेनाग्निसंपादनमित्युक्तम् हरिहरभाष्ये इति पाकाग्निः ॥

श्राद्धकृत्य-  
निर्णयः

चन्द्रिकायां मार्कण्डेयः—‘अह्नः षट्सु मुहूर्तेषु गतेषु प्र-  
यतान्द्विजान् । प्रत्येकं प्रेषयेत्तेषां प्रदायामलकोदकम्’ ॥ दे-  
वलः—‘ततो निवृत्ते मध्याह्ने कृत्तरोमनखान्द्विजान् । अभि-

गम्य यथान्यायं प्रयच्छेदन्तधावनम् ॥ तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथ-  
ग्विधम् । पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदेविकपूर्वकम्’ ॥ औदुम्बरैस्ताम्रमयैः । ‘अत्र  
क्षौरामलकस्नानादि निषिद्धतिथ्यादिव्यतिरिक्तविषयम्’ इति हेमाद्रिर्मा-  
धवश्च ॥ यत्तु चन्द्रिकायां प्रचेताः—‘तैलमुद्वर्तनं स्नानं दद्यात्पूर्वाह्ण एव च ।  
श्राद्धभुग्भ्यो नखश्मश्रुच्छेदनं तु न कारयेत्’ इति तन्निषिद्धतिथ्यादिविषय-  
म् ॥ निषिद्धतिथ्यादितु प्रागुक्तम् ॥ अभ्यङ्गे तु कलिकायां कात्यायनः—  
‘तैलमुद्वर्तने देयं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । तैरभ्यङ्गश्च कर्तव्यो वर्ज्यकालं न  
चिन्तयेत्’ ॥ अपरार्के प्रचेताः—‘स्नातोधिकारी भवति दैवे पित्र्ये च  
कर्मणि ॥ श्राद्धरुच्छुक्लवासाः स्यान्मौनी च विजितेन्द्रियः’ ॥ हेमाद्रौ जावा-  
लिः—‘ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् । रत्यौषधं पराक्षानि श्राद्ध-  
कर्ता विवर्जयेत्’ ॥ वस्त्रे विशेषमाह तत्रैव भृगुः—‘नग्नः स्यान्मलवद्वासा  
नग्नः कौपीनकेवलः । द्विकच्छोनुत्तरीयश्च अकच्छोऽवस्त्र एव च । नग्नः  
काषायवासाः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटः स्मृतः । नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो रक्तपटः  
स्मृतः ॥ नग्नस्तु स्निग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा’ ॥ ततः कर्ता ऊर्ध्वपु-  
ण्ड्रं कुर्यात् ॥ ‘जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि । तत्सर्वं नश्य-  
ति क्षिप्रमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्’ इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ ‘यज्ञो दानं जपो  
होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च । वृथा भवति विप्रेन्द्र ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्’



इति बृहन्नारदीयात् ॥ ‘ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यात् दैवे पित्र्ये च कर्मणि’  
 इति वृद्धपराशरोक्तेष्व ॥ अन्येतु ॥ ‘ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमो वि-  
 धिः । श्राद्धकाले तु संप्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्त्यजेत् ॥ वामहस्ते च दर्भा-  
 स्तु गृहे रङ्गावलं तथा । ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः’  
 इति संग्रहोक्तेः ॥ ‘ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापि वा । श्राद्धकर्ता न  
 कुर्वीत यावत्पिण्डान्न निर्वपेत्’ इति विश्वप्रकाशे वचनाच्च न कार्यमित्या-  
 हुः ॥ अत्राचाराद्वचनस्था ॥ अतएव बृहन्नारदीये—‘ऊर्ध्वपुण्ड्रं च तुलसीं  
 श्राद्धे नेच्छन्ति केचन’ इति ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिर्विप्रविषयः ॥ निषेधः कर्तृपर  
 इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ यत्तु हेमाद्रौ देवलः—‘ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं  
 तथैव च ॥ निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्’ इति तद्ग्रन्थेन त्रि-  
 पुण्ड्रविषयम् ॥ ‘प्राक्पिण्डदानाद्ग्रन्थाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम्’ इत्याश्व-  
 लायनोक्तेः ॥ पुण्ड्रं वर्तुलमित्यपराकै मदनरत्ने च ॥ पृथ्वीचन्द्रस्तु  
 पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रम् ‘ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् । निराशाः  
 पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम्’ इति बृहत्पराशरोक्तेः ॥ भोक्तुस्ति-  
 र्यग्लेपो भवत्येव ॥ ‘वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यु-  
 र्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः’ इति व्यासोक्तिरित्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये  
 ब्राह्मे—‘सदर्भेण तु हस्तेन यः कुर्यात्तिलकं बुधः । आचम्य स विशुद्धयेत्  
 दर्भत्यागेन चैव हि’ ॥ श्राद्धारम्भकालमाहापराकै गौतमः—‘आरभ्य कु-  
 तुपे श्राद्धे कुर्यादारोहणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रोहिणं तु न लंघये-  
 त्’ ॥ एतदेकोद्दिष्टे ॥ पार्वणे तूक्तं मात्स्ये—‘ऊर्ध्वं मूर्हूर्तात्कुतुपाद्यन्मूर्हूर्तच-  
 तुष्टयम् । मूर्हूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते’ ॥ तथा ‘मध्याह्ने सर्वदा  
 यस्मान्मन्दीभवति भास्करः । तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते’ ॥

अथ श्राद्धपरिभाषा ॥ चन्द्रिकायां कात्यायनः—‘द-  
 क्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा । पातयेदितरं जानुं पि-  
 तृन्परिचरन्सदा’ । बौधायनः—‘प्रदक्षिणं तु देवानां पितृ-

श्राद्धपरिभा-  
 षानिर्णयः



णामप्रदक्षिणम् । देवानामृजवो दर्भाः पितॄणां द्विगुणास्तथा । पृथ्वीचन्द्रोदये शङ्खः—‘आवाहनार्घ्यसंकल्पे पिण्डदानान्नदानयोः ॥ पिण्डाभ्यञ्जनकाले तु तथैवाञ्जनकर्मणि । अक्षय्यासनयोःपाद्ये गोत्रं नाम प्रकाशयेत्’ ॥ तत्रैव परिशिष्टे—‘क्षणे च पिण्डदाने च गन्धधूपाक्षये तथा । संकल्पे चासने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा । अन्नार्घ्यदानाद्यन्तेषु गोत्रं नाम च कीर्तयेत्’ ॥ कलिकायां संग्रहे—‘आसनावाहने पाद्ये अन्नदाने तथैव च । अक्षय्ये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत्’ ॥ मात्स्ये—‘सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयाद्गोत्रं नाम तथैव च । पश्चाद्रूपं विजानीयात् क्रम एष सनातनः’ ॥ तत्रैव ‘सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता । सकारः कुतुपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत्’ ॥ यथा काश्यपसगोत्रेति ॥ ‘पराशरसगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः । भिक्षोः पञ्चाशिखस्याहं शिष्यः परमधार्मिकः’ इति मोक्षधर्मेषु प्रयोगाच्च ॥ तेन गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वाच्छाखाभेदाद्व्यवस्थेति शूलपाणिः ॥ एतदेषामाम्नातं तेषामेव ॥ हेमाद्रौ बृहत्प्रचेताः—‘गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्मणि । गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्त एवं दाता न मुह्यति ॥ सर्वत्रैव पितुः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि । पितुरक्षय्यकाले तु पित्रे संकल्पने तथा ॥ शर्मन्नर्घ्यादिके कार्यं शर्मा तर्पणकर्मणि ॥ शर्मणोऽक्षय्यकाले तु पितॄणां दत्तमक्षयम्’ ॥ स्वरान्तं संबुद्धयन्तमिति हेमाद्रिः तत्रैव चन्द्रिकायां च स्मृत्यन्तरे—‘गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते । यस्मादाह श्रुतिः सर्वाप्रजाः काश्यपसम्भवाः’ यत्तु सत्याषाढः—‘अथाज्ञातबन्धोः पुरोहितगोत्रेणाचार्यगोत्रेण वेति तद्वैवाहपरम् ॥ नामोच्चारणे विशेषमाह हेमाद्रौ बौधायनः—‘शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मातं क्षत्रियस्य तु । गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः’ ॥ पित्रादिनामाज्ञाने तत्रैव—‘पृथिवीवत्पितावाच्यस्तत्पिताचान्तं रिक्षवत् । अभिधानापरिज्ञाने दिविषत्प्रपितामहः ॥ पित्रादीनां नाम यदापुत्रैर्न ज्ञायते तदा’ ॥ आपस्तम्बसूत्रेऽप्येवम् ॥ एतदन्यशाखापरम् ॥ आश्वलायनानान्तूक्तं तत्सूत्रे—‘यदि नामान्यविद्वांस्तत्पितृपितामहप्रपितामहे-



ति ब्रूयात् ' ॥ तत्कारिकापि—' नामानि चेन्न जानीयात्तेत्यादि वदेत्क्र  
मात् ' ॥ तत्तेतिसम्बन्धमात्रपरम् ॥ तेन पितृव्यादावपि तथेति गौडाः ॥ स्त्री  
णां दान्तं नाम ज्ञेयम् ॥ 'दान्तं नाम स्त्रीणाम्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गो-  
भिलोक्तेः ॥ केचिद्देवीशब्दान्तमाहुः ॥ अन्येतु देवी दा इति द्वयोः समुच्चय-  
माहुः ॥ हेमाद्रौ नारायणः—'विभक्तिभिस्तु यत्किञ्चिद्दीयते पितृदैवते ।  
तत्सर्वं सफलं ज्ञेयं विपरीतं निरर्थकम् ' ॥ चन्द्रिकास्मृत्यर्थसारयोश्च  
नारदीये—' अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने तथा । अन्नदाने चतुर्थी  
स्याच्छेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः ' ॥ यत्तु व्यासः—' चतुर्थी चासने नित्यं सं-  
कल्पे च विधीयते । प्रथमा तर्पणे प्रोक्ता सम्बुद्धिमपरे जगुः ' इति ॥ अत्र  
शाखाभेदाद्वयवस्थेति हेमाद्रिः ॥ हेमाद्रौ भृगुः—'अर्ध्यावनेजनं पिण्डमन्नं  
प्रत्यवनेजनम् । सम्बुद्धिं सत्र कुर्वीत शेषे षष्ठी विधीयते' ॥ तत्रैव मातुर्विशे-  
षो नागरखण्डे—' मातर्भात्रे तथा मातुरासने कल्पने क्षणे । गोत्रे गोत्रायै गो-  
त्रायाः प्रथमाया विभक्तयः ' ॥ हेमाद्रौ प्रभासखण्डे—' यज्ञोपवीतिना  
कार्यं दैवं कर्म प्रदक्षिणम् । प्राचीनावीतिना कार्यं पितृकर्माप्रदक्षिणम् ' ॥  
अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेस्तुत्तरीयेणैव सव्यापसव्ये ज्ञेये ॥ तस्योपवीतस्थानीयत्वा-  
त् ॥ 'अपसव्यं क्रमाद्वस्त्रं कृत्वा कश्चित्सगोत्रजः' इति ब्राह्मणेति वाच-  
स्पतिः ॥ यत्तु केचित् 'सदोपवीतिना भाव्यम्' इत्यस्य पुरुषार्थत्वात् ॥  
प्राचीनावीतिकालेप्युपवीतान्तरेण तत्कार्यमेवेति । तत्र ॥ विशेषेण बाधात् ॥  
जमदग्निः—'सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम् । आह्वानं स्वा-  
गतं चाध्यं विना च परिवेषणम् ॥ विसर्जनं सौमनस्यमाशिषांप्रार्थनं तथा ॥  
विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वतिवाचनकं विना ॥ पितृनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीति-

- १—' विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ' इति कर्मार्थत्वोक्तेरिति भावः ।  
२—शूद्रस्य ' न शिखी नोपवीति स्यान्नोच्चरेत्संस्कृतां गिरम् ' इति निषेधेपि कर्मार्थमुपवी-  
तमावश्यकम् ' विशिखो व्युपवीतश्च ' इति वचनादित्यर्थः । ३—'वस्त्रं कृत्वा' इति-  
विशेषणेत्यर्थः । ' नोपवीती स्यात् ' इति सामान्यतः कर्मार्थपुरुषार्थोपवीतनिषेधात्तदप्रा-  
प्तौ अपूर्वमुत्तरीयापसव्यं बोध्यते इति तु द्रष्टव्यमिति टीका ॥



ना सदा ' ॥ हेमाद्रौ संग्रहे—' आदौ विप्राग्निशौचांतेभ्यर्चने विकिरे कृते ।  
 पिण्डानप्यर्चयित्वा च विसर्ज्य ब्राह्मणांस्तथा ॥ आचामेच्छाद्धकर्ता च स्था-  
 नेष्वेतेषु सप्तसु । आद्यन्तयोर्द्विराचामेच्छेषेषु तु सकृत्सकृत् ' ॥ तत्रैव ॥  
 'श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचार्चनान्तयोः । विकिरे पिण्डदाने च षट्स्वाच्च  
 मनमिष्यते' ॥ आश्वलायनः—' दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान् । न  
 कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात् ' ॥ एतन्नित्यवर्ज्यमिति बोपदेवः ।  
 इदं विष्णुभिन्नदेवपरम् ॥ 'विष्णोर्निवेदिताग्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् । पि-  
 तृभ्यश्वापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते ॥ पितृशेषं तु यो दद्याद्धरये परमात्म-  
 ने । रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः' । इति स्कान्दात् ॥ 'पितरःसर्वे  
 मनुष्या विष्णुनाशितमश्नन्ति' इतिश्रुतेः ॥ 'यःश्राद्धकालेहरिभुक्तशेषंददातिभ-  
 क्ष्यापितृदेवतानाम् । तेनैव पिण्डांस्तुलसीविमिश्रानाकल्पकोटिं पितरस्तु तृप्ताः'  
 इति ब्राह्मोक्तेश्चेति श्रीधरस्वामिनृसिंहपरिचर्यादयः ॥ एतत्सर्वं निबन्ध-  
 विरोधान्निर्मूलम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे— 'श्राद्धानि तु समभ्य-  
 र्च्य नृवाराहं जनार्दनम् ' ॥ शिवपुराणे— 'पूजयित्वा शिवं भक्त्या पितृ-  
 श्राद्धं प्रकल्पयेत् ' ॥ पूर्वनिषेधस्तु विहितभिन्नपरः ॥ तथा हेमाद्रौ— 'दै-  
 व्यर्चादक्षिणाङ्गादिः पादजान्वंसमूर्धनि । शिरोंसजानुपादेषु वामाङ्गादि च  
 पैतृकम् ' ॥ कालिकायां स्मृत्यन्तरे— 'श्राद्धारम्भे तु ये दर्भाः पादशौचे  
 विसर्जयेत् । अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत् ॥ मार्जनादौ तु  
 ये दर्भाः पिण्डोत्थाने विसर्जयेत् । उत्थानादौ तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्ज-  
 येत् ॥ प्रार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत् ' ॥ ऊहमाह विष्णुः—  
 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शे-  
 षाणां मन्त्रवर्जितम् ' ॥ यथान्यायमिति यत्र बहुवचनान्तः पितृशब्द-  
 स्तत्र सर्वपितृवाचित्वात्त्रोहः ॥ तत्रापि ' शुन्धन्तां पितरः ' इत्यत्रोह  
 एव । सर्वपितृवाचित्वे उत्तरमन्त्रद्वयवैयर्थ्यात् ॥ बहुवचनं तु नोह्यते ॥ प्र-



कृतावसमर्थत्वात्पाशानितिवत् ॥ ऋगन्ते च नोहः ॥ तस्माद्वचं नोहेदिति  
निषेधात् ॥ ऐकोद्दिष्टेप्येवम् ॥ प्रेतैकोद्दिष्टे तु 'एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे' इति  
विष्णुकेरुहः ॥ अत्र बहुवचनस्याप्यूहो वचनात् ॥ बृद्ध्यादौ तु विशेषं  
वक्ष्यामः ॥ शेषाणामिति पितृव्याद्येकोद्दिष्टे आवाहनादिमन्त्रवर्ज्यं कार्यमि  
ति कल्पतरुः ॥ ऊहयोग्यपितृपदवान्मन्त्र एव तत्र न प्रयोज्यः ॥ न तूहः ।  
नापि पितृपदरहितः प्रयोज्य इति शूलपाणिः ॥ अर्थान्तरं चोक्तं प्राक् ॥  
बहुवचकारिकापि—'अर्घ्यप्रदानमन्त्रे तु मात्रादिपदमावपेत् । शुन्धन्तामिति  
पित्रादौ मात्रादिपदमावपेत्' ॥ 'मातृश्राद्धे पिण्डदाने' 'ये च त्वामन्त्रानु' इत्य-  
त्र नोह इति वृत्तिकृत् ॥ तथा । 'मातुःश्राद्धेप्यनूहेन कुर्यात्पिण्डानुम-  
न्त्रणम् । दशदानमुपस्थानं तद्वत्कार्यमिति स्थितिः ॥ प्रवाहणमनूहेन तद्व-  
त्प्राशनमिष्यते' ॥ तथा 'आयन्तुनस्तिलोसीतिउशन्तस्त्वेति यानि तु ॥ अनूह्यः  
पितृशब्दोत्र पितृसामान्यवाचकः' ॥ आपस्तम्बानां तु वक्ष्यते ॥ हेमाद्रौ  
मार्कण्डेयः—'स्नातः स्नातान्समाहूतान्स्वागतेनार्चयेत् पृथक्' ॥ कलि-  
कायां नारदीये—'प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां प्रगृह्य च । दद्याद्वै  
ब्रह्मदण्डार्थं हिरण्यं कुशमेव च' ॥ तत्रैव संग्रहे—'तिथिवारादिकं ज्ञात्वा  
संकल्प्य च यथाविधि । प्राचीनावीतिना कार्यं सर्वं संकल्पनादिकम् ॥  
सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रे तथैवच । वस्वादिरूपतां चापि स्वपितृणामनु-  
क्रमात्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये नारदीये—'श्राद्धार्थं समनुप्राप्तान्विप्रान्भूयो  
निमन्त्रयेत्' ॥ आपस्तम्बस्तु 'पूर्वेद्युर्निमन्त्रणं परेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्र  
णम्' इत्याह ॥ यूयं मया निमन्त्रणीया इति निवेदनरूपं आद्यम् ॥  
तद्विधिमाह शौनकः—'गृहीत्वामुकसंज्ञस्यामुकगोत्रस्य चामुके । श्राद्धे

१—प्रकृत्यर्थसमवेतार्थकबहुवचनस्य विकृतावविकृतस्यैव प्रयोग इति पाशाधिकरणसि  
द्धान्त इति भावः इति टीका । २—पुराणैकोद्दिष्टे सर्वपितृवाचिनःपितृशब्दस्य नोहः 'पितृश  
ब्दं न युज्जीत' इत्याश्वलायनेन पितृशब्दस्य निवर्तितत्वादित्यर्थः । ३ पितृशब्दस्येति  
शेषः । तस्योह इति षदेन संबन्धः ॥



तु वैश्वदेवार्थं करणीयःक्षणस्त्वया ॥ इत्येवं श्राद्धकृद्ब्रूयादोतथेति वदेत्तु  
 सः । श्राद्धस्य कर्ता स ब्रूयात्तं प्राप्नोतु भवानिति ॥ स वदेत्प्राप्तवानी-  
 ति इतरस्तं प्रति द्विजः' ॥ दैवे पार्वणे पुरुरर्वाद्रवौ वाच्यौ ॥ 'पित्रादेरप्यने  
 नैव वृणीत विधिना द्विजान्' । ततः कर्ता बह्वचोऽनाहिताग्निः पिण्डपितृ-  
 यज्ञं परिस्तरणादीध्माधानान्तं कुर्यात् । 'अर्धाधानिनोप्येवम्' इति प्रयोगपारि-  
 जाते परिशिष्टे च ॥ भाष्यकारमते आब्दिकेप्येवम् ॥ वृत्तिकारमतेनेदम् ।  
 हेमाद्रौ शम्भुः—'सम्मार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले ॥ उदक्पुवमुदी-  
 च्यं स्यादक्षिणं दक्षिणापुवम्' ॥ व्याघ्रः—'उत्तरेक्षतसंयुक्तान्पूर्वाग्रान्विन्य  
 सेत्कुशान् । दक्षिणे दक्षिणाग्रास्तु सतिलान्विन्यसेत्कुशान्' ॥ तत्रैव बौ-  
 धायनः—'चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम् ॥ कर्तव्यमानुपूर्व्येण  
 ब्राह्मणादिषु मण्डलम्' ॥ तत्रैव लौगाक्षिः—'हस्तद्वयमितं कार्यं वैश्वदे-  
 विकमण्डलम् ॥ दक्षिणे च चतुर्हस्तं पितृणामग्निशोधने' ॥ कलिकायांसंग्रहे  
 तु—'प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥ त्यक्त्वा षडंगुलं तस्माद-  
 क्षिणे वर्तुलं तथा' इत्युक्तम् ॥ स्मृत्यन्तरे—'गर्तः पञ्चांगुलो विप्रे जानु-  
 मात्रो महीभुजि । प्रादेशमात्रो वैश्ये च साधिकः स तु शूद्रे ॥ तिर्यगूर्ध्व-  
 प्रमाणेन व्याख्यातो दैवपित्र्ययोः । चतुरस्रं वर्तुलं च कथितं गर्तलक्षण-  
 म् ॥ पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान् । तिष्ठन्नेत्क्षालनं कुर्यान्नि-  
 राशाः पितरो गताः' इति तत्समूलत्वे मण्डलाग्रे पृथक् ज्ञेयम् ॥ तत्र  
 गोमये हेमाद्रौ भृगुः—'अत्यन्तजीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः । आ-  
 ताया नवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत्' ॥ मात्स्ये—'अक्षताभिः सपुष्पा-  
 भिस्तदभ्यर्चापसव्यवत् । विप्राणां क्षालयेत्पादानभिवन्य पुनः पुनः ॥ प्र-  
 त्यङ्मुखः स्थितः कुर्याद्विप्रपादाभिषेचनम्' ॥ तत्रैव भविष्ये 'प्रक्षालयेद्वि-  
 प्रपादान् शन्नोदेवीरिति त्वृचा' । पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धवसिष्ठः—'न कुश-  
 ग्रन्थिहस्तस्तु पायं दद्याद्विचक्षणः' ॥ कलिकायां संग्रहे—'ततः प्रक्षालये-



त्पादौ भार्यास्त्रावितवारिणा' ॥ तथा—'श्राद्धकाले यदा पत्नी वामे नीर-  
प्रदा भवेत् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते' ॥ तत्रैव 'नाथः प्रक्षाल-  
येत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु' ॥ पाद्यानन्तरमर्घ्यमपि दद्यादिति हेमाद्रिः ॥  
तत्रैव लौगाक्षिः—'मण्डलादुत्तरे देशे दद्यादामचनीयकम्' ॥ तत्रैव 'विधा-  
य क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते । स्वयं चापि द्विराचामेद्विधिज्ञः श्रद्धया-  
न्वितः' ॥ हेमाद्रौ नारदीये—'यत्राचमनवारीणि पादप्रक्षालनोदकैः ।  
संगच्छन्ते बुधाः श्राद्धमासुरं तत्प्रचक्षते' ॥ हेमाद्रौ व्यासः—'सव्येनैवासनं  
धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करम् ॥ व्याहृतीभिः समस्ताभिरासनेषूपवेशयेत् ॥  
'समाध्वम्' इति चैवोक्त्वा दक्षिणं जानु संस्पृशन् । 'आस्यताम्' इति  
तान्ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि' ॥ हेमाद्रौ शातातपः—'द्वौ दैवैथर्वणौ विप्रौ  
प्राङ्मुखावुपवेशयेत् । पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रीश्च बहुचाध्वर्युसामगान्' ॥ याज्ञ-  
वल्क्यः—'द्वौ दैवे प्राक्त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा' ॥ यत्तु हेमाद्रौ हा-  
रीतः—'दक्षिणाग्रदर्भे प्राङ्मुखान् भोजयेत्, उदङ्मुखानित्येके' इति तन्मैत्रा-  
यणीयविषयम् ॥ 'प्राङ्मुखान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके' इति तत्परिशि-  
ष्टात् विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ माधवीये यमः—'भिक्षुको ब्रह्मचारी वा  
भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टेष्वनुप्राप्तः कौमं तमभिभोजयेत्' ॥ कौर्मै—'भति  
थिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रचक्षते' । विप्रनियमो माधवीये—'पवित्रा-  
णयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः ॥ उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयन्तः परस्पर्-  
रम्' ॥ तत्रासनानि पृथ्वीचन्द्रोदये यमः—'आसनं कुतुपं दद्यादितरद्वा  
पवित्रकम्' ॥ हेमाद्रौ चमत्कारखण्डे—'पितृणां घटितं हैमं राजतं वापि  
चासनम् ॥ येन ताम्रमयं दत्तमासनं पितृकर्मणि ॥ स वै दिव्यासनारूढो न हि  
प्रच्यवते दिवः' ॥ हेमाद्रौ नागरखण्डे—'अयः शंकुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेश-  
ने' ॥ कलिकायां संग्रहे—'क्षौमं दुकूलं नैपालमाविकं दारुजं तथा ॥ तार्णं

१—'सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः स्थिता । विप्रपादक्षालने च अभिषेके च वामतः' ॥  
इति वचनस्यापवादः ॥ २—तदनिच्छायां न दोषः ॥ इति टीका ॥



पार्णं वृसीं चैव विष्टरादि च विन्यसेत् ॥ अग्निदग्धान्यायसानि भक्षानि च  
 विवर्जयेत् ' ॥ हेमाद्रौ छागलेयः—' पश्चाद्गागादुपक्रम्य प्राच्यां पंक्तिर्यथा  
 भवेत् ॥ दक्षिणासंस्थिता ह्येषा पितृणां श्राद्धकर्मणि ' ॥ पुलस्त्यः—' श्री-  
 पर्णी वारुणी क्षीरी जम्बुकाम्रकदम्बकम् । सप्तमं बाकुलं पठिं पितृणां द-  
 क्षमक्षयम् ' ॥ संग्रहे—' शमी च काश्मरी शेलुः कदम्बो वारुणस्तथा । प-  
 श्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा ' ॥ कारिका—' द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ  
 पित्र्ये त्रीन्विप्रानुदगाननान् ' ॥ पैठीनसिः—' कुतुपः श्राद्धवेलायां श्रोत्रियो  
 यदि दृश्यते ' ॥ आश्वलायनः—' नीवीवासोदशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धये-  
 त् ' ॥ वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु—' दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कशत्रयम् ' ॥  
 यस्तु कातीयम्—' नीवी कार्या दशागुनिर्वामकुक्षौ कुशैः सह ' इति तद्वृद्धि  
 श्राद्धे ' पितृणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके ' इति स्मृत्यन्तरात् ॥  
 वामे दक्षिणे वेत्याचाराद्व्यवस्थेति मदनपारिजाते ॥ आचार्यः—' प्राणा  
 यामत्रयं कृत्वा गायत्रीस्मरणं तथा । श्राद्धं कर्तास्मीति वदेद्विप्रैर्वाच्यं कुरु-  
 ष्व च ' ॥ ब्राह्मे—' ततस्तिलान्गृहे तस्मिन् विकिरेच्चाप्रदक्षिणम् । श्रद्धया पर  
 या युक्तो जपेदपहता इति ' ॥ स्मृत्यर्थसारे—' अपहता इति तिलान्विकीर्य  
 उदीरतामित्युचा प्रोक्षेत् ' ॥ पराशरः—' तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च  
 प्रयत्नतः प्रोक्षयेदन्नजातं तु शुद्धद्रव्यादिशुद्धये ' ॥ हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—' श्राद्ध-  
 भूमौ गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम् । वस्वादींश्च पितॄन् ध्यात्वानतः श्राद्धं  
 प्रवर्तते ॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ॥ नमः स्वाहायै स्वधायै  
 नित्यमेव नमोनमः ॥ आदिमध्यावसानेषु त्रिरावृत्तं जपेद्बुधः । पितरः क्षिप्रमायां  
 ति राक्षसाः प्रव्रवन्ति च ' ॥ तत्रैवस्कान्दे—' तिला रक्षन्त्वसुरान् दर्भा रक्षन्तु  
 राक्षसान् । पङ्क्तिं वै श्रोत्रियो रक्षेदतिथिः सर्वरक्षकः ' ॥ वसिष्ठः—' शुद्धं वतीभिः  
 कूष्माण्डीभिः पावमानीभिश्च पाकादि प्रोक्षयेत् ' ॥ अथ देवार्चा ॥ तत्र प्रत्यु-  
 पचारमायन्तयोरपो दद्यादित्युक्तं वृत्तौ स्मृत्यर्थसारे च ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे—  
 ' आसनेष्वासनं यद्याद्वामे वा दक्षिणेपि वा । पितृकर्मणि वामे च दैवे द-



द्यातु दक्षिणे' ॥ प्रचेताः— 'आसनेष्ववासनं दद्यान्नतु पाणौ कदाचन । ध-  
र्मोसीत्यथ मन्त्रेण गृण्हीयुस्ते तु तान्कुशान्' ॥ धर्मोसीति मंत्रोऽन्यत्र  
द्रष्टव्यः ॥ गालवः— 'दर्शनादाय हस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणे करे ।  
दैवे क्षणः क्रियतां तु निरंगुष्ठं करं ततः ॥ ओंतथेति द्विजा ब्रूयुस्ते  
प्राप्नोतु भवान् इति ॥ कर्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्नवानीति वै वदेत्' ॥  
पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये— 'यवैर्देभ्यश्च विश्वेषां देवानामिदमासनम् । द-  
त्वेति भूयो दद्याद्वै दैवे क्षण इति क्षणम्' ॥ 'तच्चैषष्ठ्या चतुर्थ्या वा का-  
र्यम्' इति स एव ॥ 'ततोर्घ्यं कल्पयेत्' इति मन्वाद्ययः ॥ शौनकजयन्ता-  
भ्यामर्घ्यरहितस्य देवार्चनस्योक्तेः ॥ 'आश्वलायनानां दैवेऽर्घ्यदानं न' इति बो-  
पदेवस्तत्र ॥ परिशिष्टप्रयोगपारिजातविरोधात् ॥ वृद्धिश्राद्धे तु दैवेऽर्घ्यं  
दद्यात् ॥ 'दैवेभ्योपि पृथग्दद्यादिहार्घ्यं श्रुतिचोदनात्' इति शौनको-  
क्तेः ॥ अथार्घ्यपात्रम् पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्यपाद्मयोः—  
अर्घ्यपात्रार्घ्य-  
निर्णयः 'पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः । जलजं वापि कुर्वीत  
तथा सागरसंभवम्' ॥ ब्राह्मे— 'सौवर्णताम्ररौप्याश्मस्फा-  
टिकं शंखशुक्तयः । भिन्नान्यपि हि योज्यानि पात्राणि पितृकर्मणि' ॥  
हेमाद्रौप्रजापतिः— 'सौवर्णं राजतं ताम्रं खाङ्गं मणिमयं तथा । यज्ञियं  
च समं वापि अर्घ्यार्थं पूरयेद्बुधः' ॥ अत्र विप्रैकत्वद्वित्वचतुष्टादावर्घ्य-  
पात्रे द्वे एव ॥ मानवसूत्रे तु 'द्वे वैश्वदेविके त्रीणि पित्र्ये एकैकमुभयत्र  
च' इत्युक्तम् । तदेकविप्रपरं पात्रालाभपरं चेति हेमाद्रिः ॥ मदन-  
रत्ने तु दैवे एकपात्रमुक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेपि 'पैत्रिकपात्राणि द्वे द्वे  
वैश्वदेविके' इति बृहत्पराशरोक्तेर्दे एवेत्याह ॥ बहुचानां तु दैवे विप्रद्वि-  
त्वेऽप्येकमर्घ्यपात्रमर्धशो दद्यादित्युक्तं परिशिष्टे प्रयोगपारिजाते च क-  
लिकायां हारीतः— 'दत्तमक्षय्यतां याति खाङ्गेनार्घ्यं तु यत्कृतम्' ॥  
वृद्धमनुः— 'मृन्मयं दारुजं पात्रमयः पात्रं च यद्भवेत् । राजतं दैविके कार्ये



शिलापात्रं च वर्जयेत् ' ॥ पुराणसमुच्चये—' मृत्स्नाभवं तथा कांस्यमार-  
कं जतुसंभवम् । त्रपुसीसलोहभवं सदा पात्रं विवर्जयेत् ' ॥ तत्रैव—' अ-  
ष्टाङ्गुलं भवेत्पात्रं पितृणां राजतं शुभम् । दशाङ्गुलं तु देवानां सौवर्णं शक्तिः  
कृतम् ॥ स्थापयेदर्घ्यपात्रे द्वे न्युब्जे तत्र कुशोपरि । द्वे द्वे पवित्रे विधिवत्पा-  
त्रयोश्चोपरि क्षिपेत् ' ॥ यज्ञपार्थः—' पवित्रेस्थेति मन्त्रेण पवित्रे छेदयेत्तु  
ते । ओषधीमन्तरे कृत्वा अङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वणोः । स्फ्येन काष्ठेन लोहेन न मृ-  
न्मयनखादिभिः ' ॥ वसिष्ठः—' तूष्णीं प्रोक्ष्याम्भसा पात्रे कुर्यादूर्ध्वं विले-  
ततः । पूरयेत्पात्रयुग्मं तु कृत्वोपरि पवित्रके ' ॥ वृद्धपराशरः—' पात्रद्वयम-  
थार्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुनः । प्राङ्मुखो मरतीर्थेन शन्नो देव्युदकं क्षिपेत् ॥  
यवोसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम् ' ॥ मानवसूत्रे—' सुमनसः प्र-  
क्षिप्योत्पूययवान्प्रक्षिप्य ' इति ॥ यवोसीति मन्त्रः पाद्वे—' यवोसि धा-  
न्यराजो वा वारुणो मधुमिश्रितः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृ-  
तः ' ॥ 'राजो वा वारुणो मधुसंयुतः ' इति परिशिष्टपाठः । गोभिलेन तु  
'यवोसि सोमदैवत्यः' इति तिलमन्त्रोऽत्र स्वाहायुक्तः उक्तः ॥ हेमाद्रौ यमः—  
'यवहस्तस्ततो देवान् विज्ञाप्यावाहनं प्रति । आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास  
इत्यृचा ' वृद्धपराशरः—' ततः सव्यकरं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि । देवा-  
नावाहयिष्येहमिति वाचमुदीरयेत् ॥ आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास आगतः ॥  
विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ' ॥ श्राद्धविशेषे विश्वेदेवानामज्ञाने  
हेमाद्रौ बृहस्पतिः—' उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्यैद्विजातयः । अयमुच्चा-  
रणीयस्तैर्मन्त्रः श्रद्धासमन्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥  
ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ' ॥ इदं चावाहनमर्घ्यपात्रासाद-  
नात्प्राक् हेमाद्रिणा कृतम् ॥ तत्र कातीयैः प्राकार्यं तथैव तत्सूत्रात् ॥ अ-  
न्यैस्तदुत्तरम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये शंखः—' सयवं पुष्पमादाय चरणादिशि-  
रोन्तकम् । अर्चतेत्यर्चनं कुर्यादन्तरे चोदकं तथा ' । पित्र्ये तु मूर्द्धादिपा-  
दान्तम्, ' पादप्रभूतिमूर्द्धान्तं दैविके पूजनं भवेत् । शिरःप्रभूतिपादान्तं न-



वामे इति पैतृके' इति मदनरत्ने प्रचेतसोक्तेः ॥ कलिकायां संग्रहे—'तिष्ठन्  
 कृताञ्जलिर्भूत्वा पठेन्मन्त्रं समाहितः । विश्वेदेवाः शृणुतइत्यागच्छत्वपरं  
 ततः' । हेमाद्रौ जातूकर्ण्यः—'ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्त-  
 मान् । तदग्रे चार्घ्यपात्रं तु स्वाहाघ्या इति विन्यसेत्' ॥ गार्ग्यः—'दत्त्वा  
 हस्ते पवित्रं च कृत्वा पूजां च पादतः । या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं  
 विनिक्षिपेत्' ॥ संग्रहे—'विश्वेदेवा इदं वोर्घ्यमिति दानं समादिशेत्' । त-  
 दन्ते स्वाहा नम इति वाच्यम् ॥ 'या दिव्या इति मन्त्रेण स्वाहाकारं नमो-  
 न्तकम्' इति हेमाद्रौ नागरखण्डात् ॥ आथर्वणसूत्रन्तु—'पाद्यमर्घ्यमा-  
 चमनीयमिति द्विजकरे निनयेत्' इत्यस्यैव त्रयमुक्तम् ॥ गभस्तिः—'अर्घ्यं  
 च पिण्डदानं च स्वस्त्यक्षय्ये तथैव च । गन्धपुष्पादिकं सर्वं हस्तेनैव तु दाप-  
 येत्' ॥ प्रतिविप्रं यादिव्येत्यावृत्तिः ॥ बहुचानां त्वनेन दत्तार्घ्यानुमन्त्र-  
 णम् ॥ ततः पात्रं दक्षिणे देवेभ्यः स्थानमसीति न्युब्जमुत्तानं वा कार्यमिति  
 गारुडे उक्तम् ॥ एतदापस्तम्बानां नियतमन्येषां न ॥ हेमाद्रौ विष्णुधर्म-  
 'गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रैश्चाप्यथ भूषणैः । अर्चयेद्वाहणान् शक्त्या श्रद्धा-  
 नः समाहितः' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये मार्कण्डेयः—'चन्दनागरकर्पूरकुंकुमानि  
 प्रदापयेत्' ॥ विष्णुः—'चन्दनकुंकुमकर्पूरागरुपद्मकान्यनुलेपनाय' इति ॥  
 व्यासः—'अपवित्रकरो गन्धैर्गन्धद्वारेति पूजयेत्' । कलिकायां स्मृतिः—  
 'गन्धद्वारेति वै गन्धमायने ते च पुष्पकम् । धूरसीत्यमुना धूपमुद्दीप्यस्वेति  
 दीपकम् ॥ युवं वस्त्राणि मन्त्रेण वस्त्रं दद्यात्प्रयत्नतः । आसने स्वासनं ब्रूया-  
 दर्घ्येस्त्वर्घ्यं द्विजोत्तमः ॥ सुगन्धिश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः ॥ सु-  
 ज्योतिश्चैव दीपे तु स्वाच्छादनमिति क्रमः' ॥ विप्राणां गन्धेन वर्तुलं त्रिपु-  
 ण्डं वा न कार्यम् । हेमाद्रौ देवलः—'ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे मालां  
 तथैव च । निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्' ॥ पुण्ड्रकं वर्तुलमि-  
 त्यपराकं मदनरत्ने च—'पुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वर्तुलधर्मचन्द्रं च' ॥ ऊर्ध्वं च तिलकं  
 कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्वै पित्र्ये च कर्मणि ।



निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम्' इति वृद्धपराशरोक्तेस्तिर्यग्ले-  
 पो भवत्येव ॥ 'वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूर्ध्वपूण्ड्रं  
 वा धारयेत्तु प्रयत्नतः' इति व्यासोक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ यत्तु बृहन्नारदीये—  
 'ऊर्ध्वपूण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन' इति तत्कर्तृपरम् ॥ हेमाद्रौ  
 ब्राह्मे—'पूतिकं मृगनाभिं च रोचनं रक्तचन्दनम् । कालेयकं तूग्रगन्धं तु-  
 रुष्कं चापि वर्जयेत्' ॥ कस्तूर्यां विकल्प इति हेमाद्रिः ॥ वृद्धशाततपः—  
 'पवित्रं तु करे कृत्वा यः समालभते द्विजान् । राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं नि-  
 राशैः पितृभिर्गतेः' ॥ पुष्पं तु ब्राह्मे—'जातीचम्पकलोध्राश्च मल्लिका बाणव-  
 र्बरी ॥ चूताशोकाटरूषं च तुलसीशतपत्रकम् ॥ कुब्जकं तगरं चैव भृङ्गमार-  
 ण्यकेतकी । यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धे योग्यानि भो द्विजाः ॥ कमलं कुमुदं  
 पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः । इन्दीवरं कोकनदं कङ्कारं च निवेदयेत्' ॥ हेमाद्रौ  
 वायुभविष्ययोः—'सुकुमारैः किसलयैर्यवदूर्वाकुरैरपि । संपूजनीयाः पितरः  
 श्रेयस्कामेन सर्वदा' ॥ स्कान्दे—'जातिश्च सर्वा दातव्या मल्लिका श्वेतयूथिका ।  
 जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चम्पकम्' ॥ तत्रैव वृद्धमनुः—'न नियुक्तः  
 शिखावर्ज्यं माल्यं शिरसि धारयेत्' । वर्ज्यानि पृथ्वी-  
 चन्द्रोदये भविष्ये—'केतकीं तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च  
 वर्जयेत् । द्रोणं च करवीरं च धतूरं किंशुकं तथा' ॥ माध-  
 वीये स्मृत्यर्थसारे तुलसी निषिद्धा ॥ तुलसीनिषेधो निर्मूल इति हेमाद्रिः ॥  
 समूलत्वेपि पिण्डपरः ॥ 'तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरुडा  
 रूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः' इति प्रयोगपारिजाते पाद्मोक्तेरिति बोपदेवः ॥  
 वृद्धपराशरः—'न जातीकुसुमैर्विद्वान्बिल्वपत्रैश्च नार्चयेत् । जपादिकुसुमं  
 झिण्टी रूपिकासकुरण्टिका ॥ पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः' ॥  
 हेमाद्रौ शङ्खः—'उग्रगन्धीन्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च । पुष्पाणि वर्ज-  
 नीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ जलोद्भवानि देवानि रक्तान्यपि विशेषतः' ॥ अ-  
 द्भिराः—'न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम्' इति जात्यां विकल्प इति



हेमाद्रिः ॥ निषेधः पिण्डविषयः 'कुन्दं शंभौ च नो दद्यान्नोन्मत्तं गरुडध्वजे।  
 पिण्डे जातीं च नो दद्यादेवीमर्केण नार्चयेत्' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरिति  
 बोधदेवः ॥ स्मृतिसारे—'आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसी शतपत्रिका । चम्पकं  
 तिलपुष्पं च षडेते पितृवल्लभाः ॥ केतकीं करवीरं च बकुलं कुन्दकं तथा ।  
 पाटलां चैव जातीं च श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत्' ॥ केचित्पिण्डे तुलसीमाहुः  
 'पितृपिण्डार्चनश्राद्धे यैः कृतं तुलसीदलैः । प्रीणिताः पितरस्तैस्तु यावच्च-  
 न्द्रार्कमेदिनी' इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥ धूपस्तत्रैव विष्णुधर्मे—'धूपस्त  
 गुगुलुदैस्तथा चन्दनसारजः । अगरुश्च सकर्पूरस्तुरुष्कस्तक्कतैश्च अन् ॥  
 विष्णुः—'वृत्तमधुयुक्तं गुग्गुलुं श्रीखण्डदेवदारुसरलादि दद्यात्' इति ॥  
 तत्रैव देवलः—'ये हि प्राण्यङ्गजा धूपा हस्तवार्ताहतायश्च तस्मै ते श्राद्धे  
 नियोक्तव्या ये च केचोऽग्रगन्धयः ॥ घृतं न केवलं दद्याद्घृष्टं ॥ गुग्गुलुम्' ॥  
 दीपमाह विष्णुः—'घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन च ॥ वाः । वसामेदोद्भवं  
 दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत्' ॥ वस्त्रं ब्राह्मे—'कौशयं ॥ कार्पासं दुकूलमहत  
 तथा । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानामोति चोत्तमम्' ॥ हेमाद्रौ ब्रह्मवै-  
 वर्ते—'यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानतः पितृभ्यो वस्त्रदानस्य फलं  
 तेनाश्रुतेऽखिलम्' ॥ तत्रैव पाद्मे—'निष्कृत्वा यथाशक्ति वस्त्राभावे प्र-  
 दीयते' । अन्यान्यपि च देयानि ॥ तत्रैव कालिकापुराणे—'धात्वादिनि-  
 र्मिता रम्या दीपिकाः क्षकर्मणि । पितृनुद्दिश्य यो द-  
 द्यात्स भवेद्भ्राजनं हि ॥ यो धूपपात्रदानं तु पात्रमारार्ति-  
 कस्य च । दद्यात्त्रिभ्यः प्रयतस्तस्य स्वर्गेऽक्षया गतिः' ॥  
 विष्णुधर्मे—'यः कञ्चुकं शोष्णीषं पितृभ्यः प्रतिपादयेत् । ज्व-  
 रोद्भवानि दुःखानि स कदापि पश्यति ॥ स्त्रीणां श्राद्धे तु सिन्दूरं दद्या-  
 त्' ॥ निष्पादयः स्त्रीभ्यो ये ते स्युः सौभाग्यसंयुताः' ॥  
 व्यजाने

श्राद्धेदेय  
निर्णयः

१-कस्तूर्यादयः । द्वितीयजनादिनादेयः 'धूमस्य व्यजनेनैव धूपेनाङ्गं विधुष्य  
 ' इत्यस्येहापि प्रत्ययः । इति टीका ॥



हेमाद्रावादित्यपुराणे ॥ 'न कृष्णवर्णं दातव्यं नापि कार्पाससंभवम् । पितृभ्यो नापि मलिनं नोपयुक्तं कदाचन ॥ न छिद्रितं नापदशं न धौतं कारुणापि च' । कार्पासनिषेधोन्यसंभवे ॥ तत्रैव 'पितृन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद्यज्ञोपवीतकम् । यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम्' ॥ एतद्यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेऽपि देयमिति हेमाद्रिः- ॥ तत्रैव नृसिंहपुराणे- 'कमण्डलुं ताम्रमयं श्राद्धेषु प्रददाति यः ॥ काष्ठेन निर्मितं वापि नारिकेलमथापि वा ॥ दद्यात् कृष्णं कण्डलुं श्राद्धे स श्रीमानभिजायते ॥ यो मृत्तिकाविरचितान् श्राद्धेषु च घञ्जत्रान् ॥ प्रदद्यात्करकान्वापि सोऽक्षयं विंदते सुखम्' ॥ तत्रैव ॥ उदात्तानि भुक्तिपात्रं कमण्डलुम् । शयनासनयानानि दर्पणव्यजनानि पानचोकरुतं गन्धांस्ताम्बूलं दीपंचामरम् । पितृभ्यो यः प्रयच्छेत्तु विचित्रं वै' ॥ सौरपुराणे ॥ 'चामरं तालवृन्तं च श्वेतच्छत्रं च ण्डलोकं स जगामेतानि भूमिपालो भवेदिह' ॥ तत्रैव नन्दिपुराणे- दर्पणम् । दत्त्वा कृष्णं पृथाशक्तिं हिरण्यमाः ॥ केयूरहारकटकमुद्रिकाकु- 'अलंकाराः प्रदातव्यं प्रदेयाः स्युरलंकारास्तु योषिताम् । मञ्जीरमेख- ण्डलादयः' । तथा 'स्त्रीभिः आदर्शव्यजनच्छत्रशयनासनपादुकाः ॥ म- लादामकर्णिकाकंकणादयः । अङ्गारधानिकाः शीते योगपट्टाश्च ह- नोज्ञाः पट्टवासाश्च सुगन्धाश्चैव कम्बलाः ॥ कर्पूरादेश्च भाण्डानि द्रव्यः ॥ कटिसूत्राणि रौप्याणि चाणि पतद्ग्राहांस्तथैव चातथाञ्जनश- ताम्बूलायतनं तथा ॥ भोजनाधारस्तु यः सम्यक् सोऽश्वमेधफलं लभेत्' ॥ लाकाश्च केशानां च प्रसाधनम् ॥ एतान् च निर्मितम् । दत्त्वा भोजनपा- स्कान्दे- 'सौवर्णं राजतं वापि कांस्येनान्दीकृतास्तु ये केचित्सवयं वा त्रंतु सम्राट् भवति भूतले' ॥ वामनपुराणे नरः ॥ पितरतस्य गच्छन्ति यदि वा परैः । येन केनाप्युपायेन यस्तान्मं श्राद्धं वासो दत्त्वा विधान- शाश्वतं पदमव्ययम्' ॥ पराशरः- 'वाचयेत् च ॥ तत्र पित्र्ये अ- तः नारदीय- 'देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृन्वाचयेत् । 'तत्रा- सनायशेषमर्चनकाण्डे वैश्वदेविकं ज्ञेयम् ॥ वा



द्विगुणभुग्नाः कुशाः ॥ अत्रावाहनमासनात्पूर्वं वाद्यैरुत्तरं वायौक-  
रणोत्तरं वेति स्मृतिषु पक्षा उक्ताः ॥ एषां शाखाभेदेन व्यवस्था ॥ द्वि-  
तीयपक्ष एव बहुसंमतः ॥ तत्रार्घ्यमाहाश्वलायनः—‘तैजसाश्ममयमृन्मयेषु  
त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेष्वपः प्रसिच्य शं नो देवीरित्यनुमन्य  
तिलानावपति । तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः । प्रत्नवाद्भिः प्रत्तः स्वध  
या पितृनिर्माळोकान् प्रीणयाहि नः स्वधानमः’ इति ॥ अश्ममयं स्फाटिका-  
दि ॥ मृन्मयं हस्तकृतमेव ‘कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं दैविकं न तत् ॥  
तदेव हस्तघटितं दैविकं केवलं तथा’ इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ अन्यान्य-  
पि पात्राणि पूर्वमुक्तानि ॥ मनुः—‘अन्नाभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मणो  
भवेत् । पात्राण्यासादयेत्रीणि नतु ब्राह्मणसंख्यया’ ॥ दत्तकादेः कर्तुर्हि पि-  
तृत्वादावपि वचनात् ॥ त्रीण्येव पात्राणीति हरिहरः ॥ माधवीये वैज-  
वापः—‘अर्घ्ये पितृणां त्रीण्येव कुर्यात्पात्राणि धर्मवित् ॥ एकस्मिन्वा ब-  
हुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि’ ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ अत्रानुमन्त्रणं सकृत् ॥  
तिलोसीत्यस्य प्रतिपात्रमावृत्तिः पितृशब्दस्यानूहश्चेति वृत्तिकृत् ॥ दर्भश्च  
त्रिगुणं पवित्रम् ॥ ‘तिस्रः तिस्रः शलकास्तु पितृपात्रेषु पार्वणे । एकोद्दिष्टे  
शलकैकां निधायोदकमाहरेत्’ इति हेमाद्रौ चतुर्विंशतिमतात् ॥ तत्रैव  
विष्णुः—‘दक्षिणाग्रदर्भेषु दक्षिणापवर्गचमसेषु पवित्रान्तर्हितेष्वप आसिञ्चे-  
च्छन्नो देवीति मन्त्रेण जलसेचनं बह्वचभिन्नविषयम्’ ॥ अत्रास्मिन्पक्षे प्र-  
तिपात्रं मन्त्रावृत्तिः ॥ कारिकायाम्—‘गन्धपुष्पाणि चैतेषु पात्रेषु प्रक्षि-  
पेदथ’ ॥ ब्राह्मे—‘जलं क्षीरं दधि घृतं तिलतण्डुलसर्षपान् । कुशाग्रमधुपुष्पाणि  
दत्त्वाचामेत्ततः स्वयम्’ ॥ जातूकर्ण्यः—‘ततोर्घ्यपात्रसंपात्तिं वाचयित्वा  
द्विजोत्तमान् ॥ तदग्रे चार्घ्यपात्राणि स्वधार्या इति विन्यसेत्’ ॥ ततस्ति-  
लहस्तो विप्रसव्यजानौ दक्षिणकरं न्यस्यावाहनं पृच्छेत् ॥ अत्र गोत्रस-  
म्बन्धनामानि द्वितीयान्तत्वं च प्रागुक्तम् ॥ वैजवापगृह्ये—‘तिष्ठन्पितृ-  
नावाहयिष्याभीत्यामन्य’ ॥ कौर्मै—‘अपसव्यं ततः कृत्वा पितृणां दक्षि-



णामुखः । आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेतृचा बुधः ॥ आवाह्य तदनुज्ञा-  
तो जपेदायन्तुनस्ततः ' अत्र सव्यस्यापि प्रागुक्तेर्विकल्पः ॥ अत्रायमन्त्रा-  
वृत्त्याऽस्मत्पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरुपमावाहयामीत्युक्ता मूर्धादि-  
पादान्तं तिलान्विकीर्यायन्तुन इति सर्वान्ते सकृज्जपेत् ' इति निबन्धाः ॥  
अत्रोपवेशनसंवेशनपाद्याध्याचमनीयान्यपि हेमाद्रिणोक्तानि तान्यथर्ववे-  
दिनां नियतानि नान्येषाम् ॥ तेषां च प्रपितामहादिपित्रन्तं प्रातिलोम्येन  
सर्वः प्रयोगः ॥ वाराहे- 'गन्धपुष्पार्चनं कृत्वा दद्याद्धस्ते तिलोदक-  
म्' ॥ गार्ग्यः- ' शिरस्तः पादतो वापि सम्यगभ्यर्चयेत्ततः ' ॥ 'ततः स्व-  
धाध्या इति पितृपितामहादिविप्राग्रे प्रत्येकं निवेदयेत् ' इति कारिकायां  
वृत्तौ च ॥ आश्वलायनः- ' प्रसव्येनेतरपाण्यङ्गुष्ठान्तरेणोपवीतित्वाह-  
क्षिणेन वा सव्योपगृहीतेन पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अर्घ्यं प्रपितामहेदं ते  
अर्घ्यमित्यपूर्वं ताः प्रतिग्राहयिष्यन् सकृत्सकृत्स्वधाअर्घ्या इति प्रसृष्टा अ-  
नुमन्त्रयात् ' ॥ 'या दिव्या आपः पृथिवी संबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पा  
र्थिवीर्याः ॥ हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु' ॥ अर्घ्या-  
दि प्राग्गन्धादेर्यज्ञोपवीतमेव ॥ अर्घ्यदानात् प्रागन्या अपो दद्यात् ॥ यद्य-  
प्यत्र सव्येन दक्षिणेन वाध्वं दद्यादित्युक्तं तथापि दक्षिणेनेत्यभिमतोर्थः ॥  
कारिकायां वृत्तौ चैवम् ॥ 'पित्रादेस्त्रिभिः पात्रैर्दद्यात् ॥ पितुः स्थाने वि-  
प्रत्रयं चेदेकमर्घ्यं विभज्य दद्यात् ॥ त्रयाणां स्वधा अर्घ्या इति सकृन्निवे-  
दनम् ॥ एवं पैतामहादावपि ॥ अन्यजलदानमर्घ्यमन्त्राश्च प्रतिविप्रमावर्त-  
न्ते ॥ तेषु गन्धादौ च प्रतिविप्रं पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा ॥ पि-  
त्रादित्रयाणामेकविप्रपक्षे त्रिभिः पात्रैरेकस्यैवाध्वं दद्यात् ' इतिवृत्तिः । का-  
रिकापि- ' स्वधाऽर्घ्या इत्यपोर्घ्यास्ता उपवीती निवेदयेत् ॥ निवेदनात्

१-अत्रोपवीतित्वादिहेतुवशादध्वमारभ्योपवीतलाभे उत्तरावधिमाह-इति टीका ।

२-सव्यपाणेः शिष्टविगर्हितत्वादिति भावः । ३-यथा पित्र्यस्य पात्रस्य सकृन्निवेदनं तथा  
पैतामहादिपात्रस्येत्यर्थः । तथा 'सत्यमेव सकृत् सकृत्' इति वीप्सासार्थक्यम् ।  
पात्रभेदेन सकृन्निवेदनं न ब्राह्मणभेदेनेति भावः ॥



प्राक्प्राचीनावीतमेवेत्यर्थः ॥ 'अर्घ्यं सशेषमादाय दक्षिणेन तु पाणिना।सव्य-  
हस्तगृहीतेन निनयेत् पितृतीर्थतः ॥ दत्त्वा दत्त्वा निनीतास्ता यादिव्यार्चा-  
नुमन्त्रयेत्' ॥ यत्तु—'यादिव्या इतिमंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्' इति ।  
यच्च वाराहे—'तिलाम्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं द्विजः' इति । यच्च  
व्यासः—'गोत्रसंबन्धनामानि पितृणामनुकीर्तयन् । एकैकस्य तु विप्रस्य  
अर्घ्यपात्रं विनिक्षिपेत्' इति तद्वहृचातिरिक्तविषयम् ॥ तत आचामेत् ॥ एवं  
मातामहेष्वपि ॥ आश्वलायनः—'संस्त्रवान् समवनीय ताभिरद्भिः पुत्रकामो  
मुखमनक्ति' । संस्त्रवशेषः । 'संस्त्रवोहि परिशिष्टो भवति' इति ज्ञातपथश्रुतेः ॥  
केचित्तु हस्तगलिताम्बु वदन्ति ॥ समवनीयान्त्ये द्वे पात्रे पितृपात्रं आसि-  
च्येति वृत्तिः ॥ 'प्रथमे पात्रे संस्त्रवान् समवनीय' इति कातीयसूत्राच्च ॥ ब्राह्मे  
तु प्रतिविम्बावलोकनमुक्तम् ॥ स्कान्दे त्वायुः कामस्य नेत्रासेचनमुक्तम् ॥  
विप्रैः प्राङ्मुखस्य कर्तुरभिषेकः कार्य इति केचित् । आश्वलायनः—'नोद्धरेत्  
प्रथमं पात्रं पितृणामर्घ्यपातितम् । आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोब्रवीत्'  
'यावद्विप्रविसर्जनम्' इति तुर्यपादे यमीयः पाठः ॥ अत्रवृत्तिः—'पितृपात्रं स-  
मवनयनदेशान्न चालयेदाश्राद्धसमाप्तेः । यस्मात्तत्र तृतीयपात्रेणावृताः' इति ॥  
यद्वा 'प्रथमपात्रमेव न्यग्बिलं कुर्यात्' इति ॥ कामाभावेपीदमेव शेषप्रतिपाद-  
नं ॥ हेमाद्रौ कौर्मै—'संस्त्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः । पितृभ्यः  
स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं निधापयेत्' ॥ शूलपाणौ यमस्तु—'पैतृकं प्रथमं  
पात्रं तस्मै पैतामहं न्यसेत् । प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत्' इत्या-  
ह ॥ अथ 'संस्त्रवानानीय तृतीयेनाच्छाद्य न्युब्जीकुर्यात्' इति सर्वैकवाक्य-  
तयार्थः इति केचित् ॥ अत्रिः—'गन्धादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेनापिधापयेत् ।  
पितृभ्यः स्थानमसीति शुचौ देशेर्चित्तर्चयेत्' ॥ अर्चनं न्युब्जीकृतेपि तुल्यं ॥  
'न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ सर्वविप्रोत्तरतो न्यसेदि-

१-समवनीयेत्यस्य व्याख्यानमन्त्ये इति । २ अर्घ्यपातितमित्यादिः पितृणामर्घ्य-  
शेषा आपो यस्मिन्नेकीकृता एवभूतं पात्रमित्यर्थः ॥



ति हेमाद्रिकल्पतः ॥ विप्रवामे इति हलायुधः ॥ कर्तुर्वामे इति शूलपाणिः ॥  
 'उत्तानं विवृत्तं वापि पितृपात्रं तु तद्भवेत्' इत्युशनसोक्तेन्युब्जतैव साधुः ॥  
 मातामहादिसंस्त्रवानपि पितृपात्र एव गृहीत्वा प्रयाजवत्तन्त्रेण न्युब्जी  
 कुर्यात् इति शूलपाणिः ॥ एकोद्दिष्टे तूहेन न्युब्जतेति पितृभक्तौ श्रीद-  
 त्तः यमोपि- 'स्पृष्टमुत्तानमन्यत्र नीतमुद्घाटितं तथा ॥ पात्रं दृष्ट्वा व्रज-  
 न्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च' ॥ वैश्वदेवे उत्तानमिति मदनपारिजातः ॥  
 बैजवापः- 'तस्योपरि कुशान् दत्त्वा प्रदद्याद्देवपूर्वकम् ॥ गन्धपुष्पाणि धूपं  
 च दीपं वस्त्रोपवीतके' ॥ अत्र गन्धोद्देवे पित्र्ये च पदार्थानुसमयस्य याज्ञ-  
 वल्क्योक्तकाण्डानुसमयेन विकल्पो ज्ञेयः ॥ बह्वृचानां तु सूत्रे दैवानुक्तेः  
 काण्डानुसमय एव ॥ अत्र प्राचीनावीती नामगोत्रसंबुद्ध्यायुक्तं प्राक् ॥ अ-  
 न्यद्देववत्तदन्ते आचमनं च ॥ हेमाद्रौ कालिकापुराणे- 'निर्वर्त्य ब्राह्म-  
 णादेशात् क्रियामेवं यथाविधि । भाजनानि ततो दद्याद्दस्तशौचं पुनः क्रमा-  
 त्' ॥ आदेशात्पात्राणि दद्यादित्यन्वयः ॥ तेन तत्रापि प्रश्नानुज्ञे ज्ञेये । त-  
 त्रैव ब्राह्मे- 'मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्वर्यैः शुभैः । गौरमृत्तिकया  
 वापि भस्मना गोमयेन वा' ॥ भृगुः- 'भस्मना वारिणा वापि कारयेन्मण्डलं  
 ततः । चतुःकोणं द्विजाश्वस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य तु । मण्डलाकृति वैश्यस्य  
 शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम्' ॥ बह्वृचपरिशिष्टे तु- 'दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वृत्तं  
 मण्डलं कृत्वा क्रमेण सयवान् सतिलांश्च दर्भान् दद्यात्' इत्युक्तम् ॥ मा-  
 र्केण्डेयः- 'यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूरा ये चैव राक्षसाः । हरन्ति रसमन्यस्य  
 मण्डलेन विवर्जितम्' ॥ हेमाद्रौ हारीतः- 'भूमावेव निदध्यान्नोपरि पा-  
 त्राणि' इति ॥ तानि च हेमाद्रावत्रिराह- 'भोजने हैमरौप्याणि दैवे पित्र्ये  
 यथाक्रमम्' ॥ हारीतः 'राजतपर्णताम्रकांस्यपात्राणि भोजने' इति ॥ त-  
 त्रैव वाराहे- 'सौवर्णानीह रौप्याणि कांस्यानि तदसम्भवे । अन्यान्यपि हि  
 कार्याणि दारुजान्यपि जानता ॥ नायसान्यपि कार्याणि पैतलानि नतु क-  
 चित् । नच सीसमयानीह शस्यन्ते त्रपुजान्यपि' ॥ अत्रिः- 'पञ्चाशत्पलिकं



कांस्यं द्व्यधिकं भोजनाय वै । गृहस्थैस्तु सदा कार्यमभावे हेमरौप्ययोः ॥  
 पालशेभ्यो विना न स्युः पर्णपात्राणि भोजने ' ॥ पृथ्वीचन्द्रस्तु--' कांस्य-  
 पात्रे हविर्दष्टा निराशाः पितरो गताः' इति ब्राह्मोक्तेः कांस्यपात्रनिषेधमाह ॥  
 ओषदेवस्तु स्मृतिसंग्रहमुदाजहार--' श्राद्धे पलाशपात्राणि मधुकौदुम्बराणि  
 च । पारिकाकुटजप्लक्षककचानि क्रमाज्जगुः ॥ कदलीचूतपनसजम्बुपुत्राग-  
 चम्पकाः । अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि' ॥ इति ॥ हेमाद्रौ  
 तु कदलीपात्रनिषेधमाहाङ्गिराः--' न जातीकुसुमानि दद्यान् कदलीपात्रम् '  
 इति ॥ क्रतुः--' असुराणां कुले जाता स्मृता पूर्वपरिग्रहे । तस्या दर्शनमा-  
 त्रेण निराशाः पितरो गताः' ॥ एवं पात्राण्यासाद्य भस्ममर्यादां कृत्वा वि-  
 प्रहस्तशोधनं कुर्यात् ॥ तत्र पिशङ्ग रक्षाणो इति मन्त्रद्वयं केचित्पठन्ति ॥  
 मात्स्ये--' अकृत्वा भस्ममर्यादां यः कुर्यात्पाणिशोधनम् । आसुरं तद्भवे-  
 च्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते' ॥ तत्रैव ब्रह्माण्डे--' प्रक्षाल्य हस्तपात्रादि पश्चा-  
 दद्विविधानवत् ॥ प्रक्षालनजलं दध्मैस्तिलैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ' ॥ मण्डलोपरीति  
 हेमाद्रिः--अथाग्नौकरणम् ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः--' आ-  
 हिताग्निस्तु जुहुयादक्षिणाग्नौ समाहितः । अनाहिताग्निश्चौप-  
 सदे अग्न्याभावे द्विजेप्सु वा ' ॥ वायवीये--' आहत्य दक्षि-  
 णाग्निं तु होमार्थं वै प्रयत्नतः । अग्न्यर्थं लौकिके वापि जुहुयात् कर्मसिद्धये' ॥  
 आहिताग्निः सर्वाधानी ॥ अर्धाधानी तु गृह्य एवेति चन्द्रिकापरार्कमिता-  
 क्षरामाधवादयः ॥ तस्यापि दक्षिणाग्नौ लौकिको गृह्य इति हेमाद्रिः  
 कल्पतरुश्च ॥ आद्यपक्ष एव तु युक्तो बहुसम्मतश्च ॥ यद्यपि स्मार्तमग्नौक-  
 रणं श्रौते दक्षिणाग्नौ न युक्तं तथापि वचनाद्भवतीति हेमाद्रिचन्द्रिकादयः ॥  
 इदं दर्शश्राद्ध एव ॥ आब्दिकादिषु तु सर्वाधानी पाणौ अर्धाधानी गृह्ये कु-  
 र्यादिति हेमाद्रिर्माधवादयश्च ॥ ' पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः ।  
 पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः ' इति लौगाक्ष्यादिभिः क्रमोक्ते-

अग्नौकरण-  
निर्णयः



विंहतदक्षिणाग्निसत्त्वात् ॥ अतएवात्र वचने साग्निक आहिताग्निरुक्तो हे-  
माद्रिणा ॥ एतदापस्तम्बादीनामेव ॥ आश्वलायनस्याहिताग्नेः पाणा-  
वेवेति वृत्तिः ॥ अर्धाधानिनो गृह्ये एव व्यतिषङ्गेणेति प्रयोगपारिजाते प-  
रिशिष्टे च ॥ बोपदेवस्त्वाह होमशब्दः पिण्डपितृयज्ञपरः ॥ 'पितृयज्ञे तु  
जुहुयाद्दक्षिणाग्नौ समाहितः । श्राद्धे त्वौपासनाग्नौ तु निरग्निलौकिकेनले ॥  
अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । सन्धायाग्निं ततः कुर्याद्धोममाग्निं समु-  
त्सृजेत्' इति त्रिकाण्डमण्डनोक्तेः ॥ श्राद्धे गृह्याग्नावेवेति लौकिकाग्न्या  
दिविधानं च तैत्तिरीयादिविषयम् ॥ बहुचस्य त्वनग्रेरपि पाणिहोम एव ।  
अग्निपाणी विना सूत्रे विधानान्तरानुक्तेः ॥ 'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणा-  
वेवोपपादयेत्' इति मनूक्तेश्च ॥ वृत्तावप्येवम् ॥ क्वचित्साग्रेरपि पाणि-  
होम उक्तो गृह्यपरिशिष्टे ॥ 'अन्वष्टक्यं च पूर्वद्युर्मासि मास्यथ पार्वणम् ।  
काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥ चतुर्ष्वधेषु चाग्नीनां वह्नौ होमे वि-  
धीयते । पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि' इति ॥ एकोद्दिष्टं सपिण्डी-  
करणं शुद्धे तन्निषेधात् ॥ बहुचभाष्यकारास्तु सर्वैकोद्दिष्टेषु पाणिहोम  
माहुः ॥ इदं बहुचानामेव ॥ अत्रेदं तत्त्वम् । 'स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थ  
मुद्धृत्य' इति सूत्रे नात्रापूर्वः स्थालीपाकश्चोद्यते ॥ सर्वश्राद्धेषु प्रसङ्गात्तेना-  
नुवादोयम् इति वृत्तिकारोक्तेः ॥ पार्वणे आर्थिकस्यानङ्गस्य व्यतिषङ्गस्य  
वार्त्तिकादिष्वनतिदेशादर्धाधानिनोपि पाणिहोम एवेति वृत्तिस्वरसः ॥ एवं मा-  
सिकादावपि ॥ 'षोडशे मासिके श्राद्धे सपिण्डीकरणे तथा । पाणावेव तु हो  
तव्यमन्यत्राग्नौ तु हूयते' इति बोपदेवोदाहृतवचनाच्च ॥ भाष्यकारमते तु-सत्रे  
स्थालीपाकेनेतिकरणत्वान्नित्यवच्छ्रवणाच्च पार्वणे साङ्गम् ततः काम्यादिषु  
तदभावे कार्यस्य पिण्डदानस्याप्यभावः ॥ एतदेवानुसृत्य विहृतावपि वार्षि-  
कादौ व्यतिषङ्ग उक्तः प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च ॥ तेनैतन्मतेऽधाधानिनो-

- १-अनग्नित्वं त्रेधा भार्यापरिग्रहाभावात्, तदुत्तरकालिकाग्न्यस्वीकारात् स्वीकृतोच्छेदात् ।  
२-यदि व्यतिषङ्गोऽतिदिश्येत, तदागं स्यान्न त्वंगमतो नातिदिश्यत इत्यर्थः ॥



श्रावेव ॥ वस्तुतस्तु 'स्थालीपाके सहशाखया प्रस्तरं प्रहरति' इतिवत्सभा-  
 वमात्रश्रुतेः । पत्नीवते त्वष्टुरुपलक्षणमिव नाङ्गत्वम् ॥ तत्त्वे वा नाङ्गानुरोधेन  
 प्रथमभूतपिण्डदानत्यागो युक्तः ॥ तेन व्यतिषङ्गाभावेऽप्यग्नौ होमो भवति  
 इति बोधदेवः ॥ अनाहिताग्नेर्गृह्याग्निमतस्तु सर्वमतेश्रावेव ॥ वार्षिकादौ वृत्ति  
 मते व्यतिषङ्गो न अन्यमते त्वस्ति ॥ अत्र यथाचारमनुष्ठेयम् ॥ आश्व-  
 लायनः—'उद्धृत्य घृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौ करिष्ये । करवै करवाणीति वा  
 प्रत्यनुज्ञा । क्रियतां कुरुष्व कुर्वित्यथाग्नौ जुहोति यथोक्तं पुरस्तात्' इति ॥  
 व्यतिषङ्गपक्षे इदमिति वृत्तिः ॥ करवै करवाणीत्यत्राग्नौ वित्यनुषङ्गः पुरस्तात्  
 पिण्डपितृयज्ञे ॥ तच्चैवम् । 'मेक्षणेनावदायावदानसंपदा जुहुयात्सोमाय पि-  
 तृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वंधा नमः इति स्वाहाकारेण वाग्निं पूर्वं  
 यज्ञोपवीती मेक्षणमनुप्रहृत्य' इति ॥ अवदानसंपदा उपस्तरणाद्यपेक्षयेत्यर्थः ॥  
 व्यतिषङ्गपक्षे अतिप्रणीतेयं होमोन्यथामुख्ये 'अतिप्रणीतेग्राविधममुपसमा-  
 धाय' इति बह्वचपरिशिष्टात् ॥ केचित्तस्य रक्षोनिबर्हणार्थत्वान्मुख्ये वद-  
 न्ति ॥ तदेतद्विरोधाच्चिन्त्यम् ॥ प्रयोगपारिजातेऽप्येवम् ॥ शौनकः—'स्वा-  
 हाकारेण होमे तु भवेद्यज्ञोपवीतवान् । तत्र प्रागग्नये हुत्वा पश्चात्सोमाय हू-  
 यते ॥ अग्नौ यज्ञोपवीत्येव प्रक्षिपेन्मेक्षणं बतः' ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—'अग्नौ-  
 करणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना । अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन  
 च' ॥ कातीयानां त्वपसव्यमेव पिण्डपितृयज्ञवद्धत्वा इति सर्वातिदेशात् ॥  
 सव्यं तु छन्दोगपरम् ॥ गोभिलेनैतदुत्तरमेवापसव्योक्तेः ॥ 'छन्दोगा जुहुयुः  
 सव्येनापसव्येन याजुषाः' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेश्च ॥ अथ पाणिहोमः ॥ आ-  
 श्वलायनः—'अभ्यनुज्ञायां पाणिष्वेव' इति ॥ पिण्डपितृयज्ञकल्पाभावेना-  
 ग्न्यभावे काम्यादिष्वित्यर्थः ॥ तेन बह्वचानामेकोद्दिष्टे पाणिहोमो भवत्येव ॥  
 निषेधोऽन्यपरः ॥ पाणिष्विति बहुवचनात्सर्वविप्रपाणिषु होम इति वृत्तिः ॥  
 एवं मातामहेपि ॥ शौनकोपि—'सर्वेषामुपविष्टानां विप्राणामथ पाणिषु ।  
 विभज्य जुहुयात्सर्वं सोमायेत्यादिमन्त्रतः' ॥ यत्तु हेमाद्रौ कात्यायनः—



‘ पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्धन्यस्तस्य पाणावनशिकः ॥ हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत् ’ इति बह्वृचातिरिक्तानाम् ॥ यत्तु तत्रैव मात्स्ये—‘ अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ वाथ जलेपि वा ॥ अजकर्णेऽथकर्णे वा गोष्ठे वाथ शिलान्तिके ’ इति तत्तीर्थश्राद्धविषयम् ॥ ‘ तद्यदापां समीपे स्याच्छ्राद्धं ज्ञेयो विधिस्तदा ’ इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः ॥ निर्जले त्वजकर्णादौ ॥ यत्तु चन्द्रोदये यमः—‘ देवविप्रकरेऽनग्निः कृत्वाग्नौकरणं द्विजः ’ इति तदभार्यपरम् ॥ ‘ अपत्नीको यदा विप्रः श्राद्धं कुर्वीत पार्वणम् ॥ पित्र्यविप्रैरनुज्ञातो विश्वेदेवेषु हूयते ’ ॥ इति तत्रैव कात्यायनोक्तेः ॥ हूयते इति छान्दसो व्यत्ययः ॥ हेमाद्रौ वायवीये—‘ विधुरो दैविके कुर्याच्छेषं पित्र्ये निवेदयेत् ’ । दैवविप्रानेकत्वे तत्रैव—‘ विश्वेदेवे यदैकस्मिन् भवेयुद्वर्यादयो द्विजाः ॥ तदैकपाणौ होतव्यं स्याद्विधिर्विहितस्तदा ’ ॥ सोप्यायः ‘ प्रथमं वा नियम्येत् ’ इति न्यायात् । तेन मृतभार्यस्य दैवे होमः ॥ अनुपनीतब्रह्मचार्यादिस्तु पित्र्ये ॥ ‘ अग्न्याभावः स्मृतस्तावद्यावद्भार्या न विन्दति ’ इति हेमाद्रौ जातूकर्ण्योक्तेः ॥ सभार्यनष्टाग्रेरपि पित्र्यविप्रकरे इति पृथ्वीचन्द्रः ॥ उपवीतित्वेन दैवे होमः प्राचीनावीतेन पित्र्ये ॥ यद्वा सर्वत्र दैवपित्र्यकरणोर्विकल्पः इति हेमाद्रौ मदनरत्ने पारिजाते च ॥ यदा तु पितृमातामहयोर्दैवपित्र्यविप्रभेदः, तदा भेदेन पाणिहोम इत्यपरार्कचन्द्रिकादयः ॥ यदा तु दैवं तन्त्रं तदा तन्त्रेण सकृदेव पाणिहोम इति केचित् ॥ हेमाद्रिस्तु—‘ मातामहस्य भेदपि कुर्यात्तन्त्रेण साग्निकः ’ इतिकातीयस्मृतैर्भेदमाह ॥ एवं पित्र्येपि ॥ माधवीयेप्येवम् ॥ एवं साग्रेरपि विदेशादौ पाणिहोमो ज्ञेयः ॥ यत्तु कर्केणाग्निं विना श्राद्धमेव नास्तीत्युक्तम्, तत्सपिण्डीकरणवार्षिकायकरणापत्तयर्त्तिकचिदेव ॥ यत्तु बृहन्नारदीये—‘ अनग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते । भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद्विजाः ॥ क्षयाहदिवसे प्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि । तथैव भ्रातरः स्युश्चेल्लोकिकाग्नाविति स्थितिः ॥ औपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते । यद्यग्नौ जहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ॥



औपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति सत्तमाः ॥ पाणावेव तु होतव्यमिति  
 नैतत्समञ्जसम्' इति तद्ब्रह्मानादरादुपेक्ष्यम् ॥ हेमाद्रौ यमः—'अग्नौकर-  
 णवत्तत्र होमो विप्रकरे भवेत् । पर्युक्ष्य दर्शानास्तीर्य यतो ह्यग्निसमो  
 द्विजः ' ॥ मेषक्षणेन करेण वा होमः मेषक्षणप्रहरणं नेति वृत्तिः ॥  
 स्मृतिरत्नावल्याम्—'नानुज्ञा पाणिहोमे स्यान्न स्तः पर्यूहनोक्षणे। नानुज्ञेतमद्या  
 दिति च न स्यातामिधमेषक्षणे' ॥ कर्काचार्योप्येवमाह। माधवीये चन्द्रिका-  
 यां चानुज्ञादि सर्वं भवतीत्युक्तम् ॥ पाणिहोमे प्रश्नाद्याहापराकै शौनकः  
 'अनग्निश्चेदाज्यं गृहीत्वा भवत्स्वेवाग्नौकरणम्' इति पूर्ववत्तथास्तु' इति ॥  
 आश्वलायनः—'यदि पाणिष्वाचान्तेष्वन्यदन्नमनुदिशत्यन्नमन्ने सृष्टं दत्त-  
 मध्रुवम्' इति ॥ पाणौ हुतं पात्रे निधाय विप्रैराचम्य भोजनार्थमन्ने परि-  
 विष्टे हुतशेषं पात्रेषु दद्यादित्यर्थः ॥ सृष्टं प्रभूतं ॥ नैमित्तिकं चेदमाचमनं न  
 हुतभक्षणनिमित्तम् ॥ 'अन्नं पाणितले दत्तं पूर्वमश्नन्त्यबुद्धयः । पितरस्तेन  
 तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते ॥ यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम् ।  
 एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते' इति च बह्वचपरिशिष्टात् ॥ हे-  
 माद्रावप्याचमने हेत्वर्थवाद उक्तः 'पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः' इति ॥ भाष्ये  
 त्वाचान्तेषु भक्षितेषु चमु भक्षणे इति भक्षणोत्तरं च नाचमनमग्निसाम्यात्। पूर्व-  
 निषेधस्तु सपिण्डीकरणे ज्ञेयः ददाति चोदितत्वात्। तत्त्वत्र जुहोति चोदितत्वादि  
 त्युक्तम् ॥ नत्वेतद्बहुसंमतम् ॥ यत्तु बौधायनेन—'तस्मिंस्तु प्राशिते दद्याद्यदन्नं-  
 प्रकृतं भवेत्' इति भक्षणमुक्तं, तत्तच्छाखीयानामेवेति हेमाद्रिः तत्रैव ।  
 यमः—'पित्र्यं पाणिहुताच्छेषं पितृपात्रेषु निक्षिपेत् । अग्नौकरणशेषं तु न द-  
 द्याद्वैश्वदेविके' ॥ एतदग्निहोमेपि समं ॥ तथा कर्कस्तु सूत्रे हुतशेषं दत्त्वेत्य

१ पाणिहोमनिमित्तकमित्यर्थः। तिनाग्नौ होमपक्षे तन्न कार्यं निमित्ताभावात्। २ तथाचा-  
 भ्यवहार्यस्यगौणस्यसंयोगादाचमनम्, तच्च वाचनिकमेव, अशुचित्वाभावादित्यर्थः ।  
 ३--तदुक्तम्—'अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्। यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभि-  
 रुच्यते।' इति । ४--'अन्नं पाणितले दत्तम्' । इति । ५--'अग्नौकरणशेषेण यदन्नमभिधा-  
 रयेत् ।' इति पूर्वार्धम् ॥



विशेषात्सर्वविषेषु दद्यादित्याह ॥ तत्रैव वृद्धवसिष्ठः—‘ पित्र्यविप्रकरे हुत्वा  
 शेषं पात्रेषु निक्षिपेत् । पिण्डेभ्यः क्षेपयेत्किञ्चिन्न दद्याद्वैश्वदेविके’ ॥ अ-  
 थापस्तम्बानां सूत्रे—‘उद्ग्रियतामग्नौ च क्रियतामित्यामन्त्रयते ॥ काम-  
 मुद्ग्रियतां काममग्नौ च क्रियतामित्यतिसृष्ट उद्धरेज्जुहुयाच्च’ ॥ नष्टाग्निविधुरा-  
 देर्विशेषो बृहन्नारदीये—‘ नष्टाग्निर्दूरभार्यश्च पार्वणे समुपस्थिते ॥ संधाया-  
 ग्निं ततो होमं कृत्वा तं विसृजेत्पुनः’ ॥ अयाश्चेति तत्कालेग्नं संधाय हुत्वा  
 त्यजेत् इत्यर्थः । एतदापस्तम्बानामेव ॥ पाणिहोमस्तु छन्दोगादीनाम् ॥  
 विश्वप्रकाशेऽपि—‘साग्निरौपासनेनाग्निरग्नौ कुर्वीत लौकिके ॥ पाणौ होमं  
 प्रशंसन्ति नत्वापस्तम्बशास्त्रिणाम्’ ॥ स्नातका विधुरा वा स्युर्यदि वा  
 ब्रह्मचारिणः । अग्नौ करणहोमं तु कुर्युस्ते लौकिकेनले ॥ अयाश्वाग्ने मनो  
 ज्योतिरुद्बुध्य व्याहर्तुर्हनेत्’ ॥ ततोनुज्ञातोर्गोधनाद्याज्यभागान्ते यन्मे मा-  
 तेत्याद्यैर्जुहुयात् ॥ तत्र सप्तान्नाहुतयः षडाज्यस्येति त्रयोदश ॥ व्यत्ययो वा-  
 यथा—‘यन्मे माता प्रलुलोभ तन्मे रेतःपिता वृद्धां यास्तिष्ठन्तीति द्वाभ्याममु-  
 ष्मेस्वाहेति पितुर्नाम्ना द्वौ होमौ ॥ यन्मे पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतःपिताम  
 होवृद्धामन्तर्दधे इति तन्नाम्ना पितामहाय द्वौ ॥ यन्मे प्रपितामही प्रलुलोभ तन्मे  
 रेतः प्रपितामहो वृद्धामन्तर्दधे ऋतुभिरिति तन्नाम्ना प्रपितामहाय द्वौ’ ॥ मात-  
 महेषु तूहः—‘ यन्मे मातामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातामहो वृद्धाम् ॥ आ-  
 न्यं मातामहाद्वृद्धमित्यादौ ॥ यन्मे मातुः पितामही प्रलुलोभ तन्मे रेतो मातुः  
 पितामहो वृद्धाम् ॥ अन्यं मातुःपितामहाद्वृद्धम् ॥ यन्मे मातुःप्रपितामही प्रलु-  
 लोभतन्मे रेतोमातुःप्रपितामहोवृद्धाम् ॥ अन्यंमातुःप्रपितामहाद्वृद्धं सर्वत्राप्य-  
 मुष्या इत्यत्र डेन्तं तन्नाम योज्यम् ॥ तद् गृह्यसंग्रहे—‘योज्यः पित्रादिशब्दा-  
 नां स्थानेमातामहादिकः । अन्नहोमे तथा स्पर्शे जलपिण्डादिदानके ॥ यन्मे मा-  
 तामहीत्यादि तत्रोदाहरणं भवेत्’ । ततो येकेचेत्येकान्नाहुतिः ॥ ततःस्वाहा पित्र्ये  
 इत्याद्यैराज्यं हुत्वा स्विष्टकृतं हुत्वा सर्वभक्ष्यं किञ्चिदादायोदगुष्णं भस्मापोह्य  
 तत्र तूष्णीं स्वाहाकारेण जुहोति ॥ परिषेचनान्तं स्थालीपाकवत् ॥ अयमग्नौ-



करणहोमो मासिकश्राद्ध एव ॥ 'तच्च स्मार्ताश्रयभावे न कार्यम्' इति केचित् ॥  
 कार्यमेवेति बहवः ॥ अतएव सर्वाधानिनो होमवज्र्यं मासिकश्राद्धमुक्तं सु-  
 दर्शनभाष्ये ॥ महालये तद्वदित्येके ॥ प्रकरणान्तरत्वात् ॥ कर्मान्तरत्वेन  
 स्मार्तपार्वणवत्कार्यम् इति त्वस्मद्गुरवः ॥ आन्दिकादिषु तु स्मार्तपार्वण-  
 विधिरेव ॥ एवं मातृवार्षिकादिषु ॥ मासि श्राद्धविकृतावष्टकायां मातृश्राद्धे  
 वैकृतहोमेन प्राकृतहोमबाधः ॥ 'अन्वष्टकासु मातृश्राद्धं न' इति भाष्ये ॥ त-  
 त्रापि श्राद्धान्तरवत् ॥ क्रियमाणे तु यन्मे मातेत्यादौ गुणत्वेपि मातृप्राधान्यं  
 विवक्षितं ॥ 'मासि श्राद्धेन कल्पो व्याख्यातः' इति सूत्रात् ॥ 'आग्नेय्येव  
 मनोताकार्यम्' इतिवचनादग्निशब्दस्यैव वैकृतदेवताभिधायित्वम् ॥ तेना-  
 मुष्या इत्यत्र 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्याम्' इत्याद्यूहः कार्यः ॥ 'तच्च मासि श्राद्धं  
 जीपत्पित्रादीनां व्युत्क्रममृतपित्रादीनां च कार्यम्' इत्युक्तं सुदर्शनभाष्ये ॥  
 तत्प्रकारस्तु वक्ष्यते ॥ मातापित्रोर्द्वित्वादौ तु नोहः ॥ 'तस्माद्वचं नोहेत्'  
 इति निषेधात् ॥ प्रकृतावूहाभावाच्च पत्नीं सन्नह्येतिवत् ॥ उपदेशिमते तूहः ॥  
 यथा 'यन्मे मातरौ प्रलुलोभतुश्चरत्यावननुव्रते' इत्याद्यस्मत्पितृकृतमासिक-  
 श्राद्धनिर्णयेज्ञेयम् इति दिक् ॥ अन्यत्प्राग्वत् ॥ अथ परि-  
 परिवेषणम्  
 वेषणम् ॥ तच्चोपवीत्येवाज्येन देवपूर्वं 'आमासुपक्कम्' इति  
 पात्राण्युपस्तीर्य कुर्यात् इति हेमाद्रिः ॥ भारते दानधर्मेपि—'आज्याहुतिं  
 विना नैव यत्किञ्चित् परिविष्यते । दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः' ॥  
 तत्रैव शौनकः—'विधिना देवपूर्वं तु परिवेषणमाचरेत्' ॥ तत्रैव धर्मः—  
 'फलस्यानन्तता प्रोक्ता स्वयं च परिवेषणे' ॥ तत्रैव वायुभविष्ययोः—  
 'भार्यया श्राद्धकाले तु प्रशस्तं परिवेषणम्' ॥ ब्रह्माण्डे—'नापवित्रेण नैकेन  
 हस्तेन न विना कुशम् । नायसेनायसेनैव श्राद्धे तु परिवेषयेत्' ॥ वसिष्ठः—  
 'आयसेन तु पात्रेण यदन्नं संप्रदीयते । भोक्ता विष्टासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं  
 व्रजेत्' ॥ पैठीनसिः—'सीसकायसरीतीपात्राण्ययज्ञियानि' तत्रैव हारीतः—



‘सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण वा । दत्तमक्षय्यतां याति फल्गुपात्रेण वा पुनः’ ॥ काष्णाजिनिः-‘दर्व्या देयं घृतं चान्नं समस्तव्यञ्जनानि च । उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन’ ॥ यमः-‘पंचयां विषमदातुश्च निष्कृतिर्नैव विद्यते’ । पृथ्वीचन्द्रोदये पराशरः-‘सर्वदा च तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः ॥ भोज्यपात्रे तिलान्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः’ ॥ चन्द्रिकायां वृद्धशातातपः-‘हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणव्यञ्जनादयः । पितृणां नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम्’ ॥ घृतपात्रे विशेषो ग्रन्थान्तरे-‘ओदने पस्मान्ने च पात्रमासाद्य मुग्धधीः । घृतेन पूरयेत्पात्रं तद्घृतं रुधिरं भवेत्’ ॥ धृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे इति मदनरत्ने ॥ संग्रहे-‘हस्तदत्तं तु नाश्रीयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् । अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते’ ॥ पात्रालम्भनमुक्तं चतुर्विंशतिमते-‘उत्तानं दक्षिणं सव्यं नीचपात्राण्युपस्पृशेत्’ ॥ याज्ञवल्क्यः-‘दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रम् इति पात्राभिमन्त्रणम् । कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजांगुष्ठं निवेशयेत्’ ॥ बौधायनः-‘विप्रांगुष्ठेनानखेनानुदिशति’ पृथिवी ते पात्रं धौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतंऽमृतं जुहोमि ॥ ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा मे पितृणां क्षेष्टा अत्रामुष्मिल्लोके’ इति ॥ अथ जुहोम्यग्रे स्वाहाशब्दः कातीयसूत्रे उक्तः ॥ पैत्रे स्वधाशब्दः ॥ अंगुष्ठे विशेषमाह हेमाद्रौ धौम्यः-‘परिवृत्य नवांगुष्ठं द्विजःस्थाने निवेशयेत्’ ॥ तथा ‘उत्तानेन तु हस्तेन द्विजांगुष्ठनिवेशनम् । यः करोति द्विजो मोहात्तद्वै रक्षांसि भुञ्जते’ ॥ तत्रैव यमः-‘विष्णोर्हव्यं च कव्यं च ब्रूयाद्रक्षस्व च क्रमात्’ ॥ दैवे पित्र्ये चेत्यर्थः ॥ तत्रैवात्रिः-‘सम्बन्धनामगोत्राणि इदमन्नं ततः स्वधा । पितृक्रमादुदीर्येति स्वसत्तां विनिवर्तयेत् ॥ हस्तेनाभुक्तमन्नाद्यमिदमन्नमुदीरयेत्’ । अत्र ‘अन्नदाने चतुर्थी स्यात्’ इत्यादिविशेषाः पूर्वमुक्ताः ॥ अत्र पूर्वोक्तमन्त्रान्ते पुरुरवार्वसंज्ञका विश्वेदेवा देवता इदमन्नं सपरिकरं हव्यम् अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थं दत्तं दास्यमानं चातृप्तेः । गयेयं

१-काकोदुम्बरीका । २-‘तस्मादन्तरितं कुर्यात्पार्णेनाथ तृणेन वा ।’ इत्युत्तरत्र शेषः ॥



भूः गदाधरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्म सौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवटच्छायास्थम् अ-  
मुकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नममृतं रूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वा-  
हा नमो नमः ' इति बह्वचपरिशिष्टहेमाद्र्याद्यनुमतः प्रयोगः ॥ एवं पित्र्ये  
अमुकगोत्र वसुरुपादि तत्तन्नाम ज्ञेयम् ॥ ततो 'ये देवास' इति दैवे, 'ये-  
चेह पितरः' इति पित्र्ये केचिज्जपन्ति ॥ ततोऽच्छिद्रं वाचयेत् । तत्रैव  
प्रचेताः—'आपोशनकरे विप्रे संकल्प्याच्छिद्रभाषणात् । निराशाः पितरो  
यान्ति देवैः सह न संशयः' ॥ पारस्करः—'संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्री-  
मधुमज्जपः । निवेद्यापोशनं श्राद्धे जुषप्रैषोथ भोजनम्' ॥ निवेद्येति ब्र-  
ह्मार्पणं कृत्वेत्यर्थः । अतएव बृहन्नारदीयेऽन्नत्यागमुक्तवोक्तम् 'दत्तं हविश्च  
तत्कर्म विष्णवे वै समर्पयेत्' इति ॥ यत्तु कृत्यरत्ने काष्णाजिनिः—'अप-  
सव्येन कर्तव्यं पितृकृत्यमशेषतः ॥ अन्नदानादृते सर्वमेवं मातामहेष्वपि' ॥  
तच्च 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः, 'हरिर्दाता हरिर्भोक्ता, 'चतुर्भिश्च' इति केचि-  
त्पठन्ति ॥ धर्मप्रदीपे—'ततोन्नं पितृदेवेभ्यः संकल्प्य च यथाविधि । दत्तं  
यद्दास्यमानं च आतृप्तेर्न ममेति च' ॥ तथा 'श्राद्धीयान्नस्य संकल्पो भू-  
मावेव प्रदीयते ॥ हस्तेषु दीयमानं तु पितृणां नोपतिष्ठते ॥ वैश्वदेवस्य वामे  
तु पितृपात्रस्य दक्षिणे । संकल्पोदकदाने स्यान्नित्यश्राद्धे यथारुचि' ॥ प्रचे-  
ताः—'आपोशनं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिजपेदथ । मधुवाता इति तृचं म-  
ध्वित्येतत्त्रिकं तथा' ॥ मिताक्षरायां पारस्करः—'संकल्प्य पितृदेवेभ्यः  
सावित्रीमधुमज्जपः । श्राद्धं निवेद्यापोशनं जुषप्रैषोथ भोजनम् ॥ गायत्रीं त्रिः  
सकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । मधुवाता इति तृचं मध्वित्येतत्त्रिकं  
तथा' ॥ याज्ञवल्क्यः—'सव्याहृतिं च गायत्रीं मधुवाता इति तृचम् । ज-  
प्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरं स्तेपि वाग्यताः' ॥ यथासुखं जुषध्वमिति वाच्य-  
म् ॥ अत्रिः—'असंकल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यद्युपस्पृशेत् । अभोज्यं तद्भवे-  
दन्नं पितृणां नोपतिष्ठते ॥ अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत्' ॥ आ-  
पोशने विशेषमाह स्मृतिसमुच्चये—'आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत् ।



दक्षभागे तु यः कुर्यात्सोमपानसमं भवेत् ' ॥ तथा 'पुनरापूर्यापोशनं सुरा-  
 पानसमं भवेत् ॥ ' हेमाद्रावत्रिः- 'दत्ते वाप्यथवाऽदत्ते भूमौ यो निक्षिपे-  
 द्दलिम् । तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतैः' ॥ केचिदाज्येन कु-  
 र्वन्ति, तन्न 'पायसेन तथाज्येन माषान्नेन तथैव च । न कुर्यद्दलिदानं तु  
 ओदनेन प्रकल्पयेत् ' इति स्मृतिसारे निषेधात् ॥ शङ्खः- 'श्राद्धे नियु-  
 क्तान् भुञ्जानान्न पृच्छेद्यवणादिषु । उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र-  
 संशयः ' ॥ कात्यायनः- 'अश्ववत्सु जपेत्सव्याहृतिकां गायत्रीं सरुत्तन्नि-  
 र्वा रक्षोघ्नीः पौरुषं सूक्तमप्रतिरथम् ' इति ॥ हेमाद्रौ सौरपुराणे- ' ऐन्द्रं  
 च पौरुषं सूक्तं श्रावयेद्ब्राह्मणांस्ततः ' ॥ मात्स्यपाद्मयोः- ' ब्रह्मविष्णवर्क-  
 रुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च । इन्द्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्ति-  
 तः ॥ मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत् प्रीतिकारि च यत्पुनः । अभावे सर्वविद्यानां गा-  
 यत्रीजपमाचरेत् ' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे- 'वीणां वंशध्वनिं चाथ विप्रे  
 भ्यः संनिवेदयेत् ॥ जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा ॥ त्रिमधुस्त्रिसु-  
 पर्णं च पावमानीर्यजूंषि च' ॥ हेमाद्रावत्रिः- 'हुंकारेणापि यो ब्रूयाद्धस्ता-  
 द्वापि वदेद्गुणान् । भूतलाच्चोद्धरेत्पात्रं मुञ्चेद्धस्तेन वा पिबेत् ॥ प्रौढपादो  
 बहिःकच्छो बहिर्जानुकरोपि वा । अंगुष्ठेन विनाश्नाति मुखशब्देन वा पुनः ॥  
 पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् । खादितार्थात् पुनः खादेन्मोदकानि  
 फलानि च ॥ मुखेन वा धमेदन्नं निष्ठीवेद्भ्राजनेपि वा । इत्थमश्वन् द्विजः श्राद्धं  
 हत्वा गच्छत्यधोगतिम् ' ॥ जाबालिः- 'इष्टमुष्णं हविष्यं च दद्यादन्नं श-  
 नैश्शनैः' ॥ वृद्धशातातपः- 'अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितम् ।  
 न याचते द्विजो मूढः स भवेत् पितृघातकः ' ॥ यत्तु यमः- 'श्राद्धे द्विजो  
 नैव दद्यान्न याचेन्नैव दापयेत्' इति तदसम्पादितवस्तुविषयमिति हेमाद्रिः ॥

१ बलिदाने त्वन्नमालभ्य त्रिःसावित्रीजपः प्रायश्चित्तम्-इति नागोजीभट्टः।इति टीका ।

२-स्वास्तिवाचनानन्तरमदोषमाह वसिष्ठः- 'हविर्गुणा न वक्तव्या यावन्न पितृतर्पणम् ।  
 पितृभिस्तर्पितैः पश्चादक्तव्यं शोभनं हविः ' इति ॥



हारीतः—‘ऊर्ध्वपाणिश्च विहसन् सक्रोधो विस्मयान्वितः । भुग्रपृष्ठश्च य-  
 दुद्धे न तत्प्रीणाति वै पितृन्’ ॥ प्रचेताः—‘न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्चानोन्नं  
 कदाचन । न पादौ न शिरो बस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत्’ ॥ शङ्खः—‘श्रां-  
 दपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गाय-  
 त्र्यष्टशतं जपेत्’ ॥ उशनाः—‘भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात् प्राज्ञः कथंचन ॥  
 अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात्सक्तुभ्य एव च’ ॥ ब्राह्मे—‘नचाश्रु पातये-  
 ज्जातु न शुष्कां गिरमरीयेत् ॥ नचोद्वीक्षेत भुञ्जानान्नच कुर्वीत मत्सरम्’ ॥  
 यमः—‘स्वाध्यायं श्रावयेत्सम्यग्धर्मशास्त्राणि चैव हि’ ॥ प्रचेताः—‘भु-  
 ञ्जानेषु त विप्रेषु ऋग्यजुःसामलक्षणम् । जपेदभिमुखो भूत्वा पित्र्यं चैव वि-  
 शेषतः ॥ यजूंषि चैव रुद्रं च राक्षोग्नीर्कच एवच’ । राक्षोग्नीः कृष्णुष्व र-  
 क्षोहणमित्याद्याः ॥ तत्रैव निगमः ॥ ‘भुञ्जत्सु जपेत्पावमानीरुदीरतामध्व-  
 न्नवतीश्व’ ॥ अन्नवत्यः पितुंनुस्तोषमिति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये भरद्वाजः—  
 ‘भुञ्जानेषु तु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् । पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं  
 नियोजयेत्’ । क्षणपाद्यादिसत्त्वेदित्यर्थः ॥ विप्रवमने तत्रैव दक्षः—‘निमन्त्रि-  
 तस्तु यः श्राद्धे भोजने मुखनिःसृते । तदैव होमं कुर्वीत स्वाग्नौ विप्रः समा-  
 हितः ॥ प्राणादिपञ्चाभिर्मन्त्रैर्यावद्वात्रिशसंख्यया ॥ ब्राह्मणस्तु ततःकृत्वा  
 घृतप्राशनमाचरेत्’ ॥ ऋग्विधाने तु—‘इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा  
 भवेत् । अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं सम्पूर्णमेव हि’ इत्युक्तम् ॥ अग्न्यादि-  
 भिरिति लौकिकेकाग्निस्थापनचरुनिर्वापाज्यभागान्ते ग्रामगोत्रपूर्वमग्नौ पितृना-  
 बाह्य संपूजमान्त्यागं कृत्वा प्राणादिभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुनेदित्यर्थः ॥ भोजनेन  
 पुनःश्राद्धेन ॥ तेन होमःपुनःश्राद्धं चेतिपक्षद्वयमुक्तम् ॥ सूक्तजपस्तूभयानुगतः ॥

१—उच्छिष्टेन परिवेषृस्पर्शे मरीचिः—‘उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तो नरो यदि ।  
 भूमौ निधाय तद्द्रव्यमाचान्तोभ्युक्षणाच्छुचिः’ ॥ शुचिःपुनः परिवेषणमित्यर्थः ॥ २—प्राणाय  
 स्व.हा इति पञ्चभिर्नैः क्रमेणषड्वारं हुत्वा प्राणापानमन्त्राभ्यां जुहुयादित्यर्थः ॥



स्मृतिसंग्रहे-‘ प्राधान्यं पिण्डदानस्य भोजनस्य तदङ्गता । अतो भुक्ति-  
 याहानौ श्राद्धावृत्तिं न मन्वते । पिण्डदानोत्तरं वान्तौ होम एव नावृत्तिः ’ ॥  
 पिण्डदानात् प्राग्वान्तौ तद्दिने उपवासं कृत्वा परेषु पुनः श्राद्धं कार्यमित्य-  
 र्थः ॥ तत्रैव-‘ श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमते यदि ॥ लौकि-  
 काग्नौ प्रतिष्ठाप्य अर्चयेच्च हुताशनम् ’ ॥ तथा ॥ ‘ एक एव यदा विप्रो  
 भोजने छर्दितो यदि । तदैवार्घ्यं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि ’ ॥ द्विती-  
 यपक्षे ऋग्विधाने-‘ भोजनोपक्रमादूर्ध्वं प्रक्रमात् पूर्वतो यदि ॥ श्राद्धविघ्ने  
 पुनः कार्यं जपहोमौ न तृप्तिदौ ’ ॥ स्मृतिसंग्रहे-‘ अकृते पिण्डदाने तु भुञ्जा-  
 नो ब्राह्मणो वमेत् । पुनःपाकात् कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ’ ॥ पिण्डदानं  
 श्राद्धं-‘ अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्तदा । पुनःपाकं प्रकुर्वीत श्रा-  
 द्धं कुर्याद्यथाविधि ’ इति तत्रैवाक्तेः ॥ तथा ‘ पित्रर्थानां त्रयाणां च पिता च  
 वमते यदि । तद्दिने चोपवासः स्यात्पुनः श्राद्धं परेऽहनि ॥ वमने वा विरेके वा  
 तद्दिनं परिवर्जयेत् ’ ॥ एषु वचनेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ इदं मासिकाब्दिकविष-  
 यम् ॥ दर्शादौ तु वान्तावामेन तदैव कार्यम् ॥ ‘ श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामाम-  
 श्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ’ इति मरीचिस्मृ-  
 तेः ॥ श्राद्धे पिण्डदानमेव प्रधानमिति कर्काचार्याः ॥ तन्मते दक्षोक्तो होम  
 एव नावृत्तिः ॥ विप्रभोजनमिति मेधातिथिः ॥ भोजनपिण्डदानाग्नौकरणानी-  
 ति कपर्दिधूर्तस्वामिहेमाद्र्यादयः ॥ श्राद्धस्य होमदानोभयरूपत्वात्संपूर्णदाना-  
 भावाद्भोजनस्याङ्गत्वेपि सोमवमते इति युक्तम् ॥ तन्मते पूर्वोक्तो निर्णयः ।  
 अन्नत्यागमात्रं प्रधानम् । भोजनं तु प्रतिपत्तिरूपमङ्गमतो वान्तौ तद्दानेपि  
 नावृत्तिरिति गौडमैथिल्यादयः ॥ नैमित्तिकविधानमिति युक्तं प्रतीमः ॥ अत्रेदं

१-भोजनस्य पिण्डदानाङ्गताकथनं न तदयुःपादनार्थम्, किंतु अंगवत्तल्लोपे पुनस्तत्कर-  
 णं नास्तीति सर्वसिद्ध्यन्यायप्रापणार्थम् । इति टीका ॥ २-‘ एतद्वचनानां निर्मूलत्वेपि  
 अग्न्यादिभिर्भोजनेन ’ इत्यृग्विधानाद्धोमः पुनः श्राद्धं चेति पक्षद्वयं प्रामादि ( णि ) कमे  
 व इति टीका ३ । ऋग्विधाने होमः पुनः श्राद्धं चेति पक्षद्वयमुक्तम् तदचवस्थापयति ॥



तत्त्वम् । वैश्वदेविकस्य वमने होम एव नावृत्तिः । अङ्गत्वात् । तच्च रक्षार्थ-  
त्वात् 'इष्टिश्चाद्धे क्रतूदक्षौ' इत्यादिस्मृतेश्च ॥ तत्र जयान् जुहुयादिति वत् ।  
पितामहादेरपि तथा । पितेत्युक्तेरिति केचित् । तस्यापि प्रधानत्वात् पितृव-  
दिति तु युक्तम् । सपिण्डीकरणादौ वार्षिकवत् । 'सपिण्डीकरणादीनि यानि  
श्राद्धानि षोडश ॥ तत्र पिण्डप्रधानत्वं प्रेतत्वविनिवर्तकम्' इति स्मृतेः ॥ म-  
हैकोद्दिष्टादौ तूभयंप्राधान्यादावृत्तिरेव । 'एक एव द्विजो भोज्यः पिण्डोप्येको  
विधीयते' इति स्मृतेः ॥ वृद्धिसंकल्पनित्यश्राद्धादौ तु भोजनप्राधान्याद्वान्ता-  
वावृत्तिरेव 'वृद्धिश्चाद्धे विकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतम् । नित्यश्राद्धमदैवं  
स्यात्पिण्डदानविवर्जितम्' इति स्मृतेः ॥ 'भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे  
संकल्पसंज्ञके । तत्रैव पितृविप्रस्य तूपघाते पुनः क्रिया' इति संग्रहोक्तेश्च ॥  
मघादावप्येवम् तीर्थमहालयादौ दर्शवदित्याशार्काद्यालोचनेन प्रतीमः ॥  
आश्वलायनः- 'तृप्तान् ज्ञात्वा मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीमन्दतेति च संपन्नं  
पृष्ठां यद्यदन्नमुपभुक्तं तत्तत्स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य शेषं निवेदयेद-  
भिर्मतेनुमते च' इति ॥ अत्र गायत्री मध्विति त्रिकजपोपि ज्ञेयः ॥ 'तृप्तान्  
बुध्वान्नमादाय सतिलं पूर्ववज्जपेत्' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ व्यासः- 'तृप्ताः  
स्थेति तु पृष्ठास्ते ब्रूयुस्तृप्ताः स्म इत्यथ' । अभिमते विप्रैः स्वीकर्तुमीष्टे ॥ शौ-  
नकोपि- 'अन्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत तांस्ततः । ते इष्टैः सह भोक्त-  
व्यमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम् । प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वा यथारुचि' । श्राद्धवि-  
शेषे प्रश्नभेदमाह हेमाद्रौ विष्णुः 'पित्र्ये स्वदितमिति गोष्ठ्या सुश्रुतं संपन्न-  
मित्यभ्युदये दैवे रोचत' इति । आयुष्यमिति स्वैरिषु स्वैरमिच्छाश्राद्धम् ॥ या-  
ज्ञवल्क्यः- 'अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च । तदन्नं प्रकिरेद्भू-  
मो दद्यादापः सकृत्सकृत् । इदं चात्र विकिरदानमन्यशाखिनाम् ॥ आश्वला-

१- 'तदैवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाधिधि' इति वचनाच्च । इति टीका । २- विप्राश्च  
सुसंपन्नमित्यूचुः । ३- व्यतिषङ्गपक्षे । अन्यत्र तु केवलभुक्तशेषेणैव ब्राह्मणसमीपे पिण्डदानम् ।  
४- तथाच ब्राह्मणैर्यदि स्वीकर्तुमभिमतः शेषः तदा तं तेभ्यो निवेदयेत् । अथ यद्यनुमतम् 'इष्टैः  
सह भुज्यताम्' इति तदा स्वयमेव सर्वं स्वीकृत्य बन्धुभिः सह भुञ्जीतेत्यर्थः ॥ इति टीका ॥



यनानां तु पिण्डान्त एव सूत्रकृतोक्तम् ॥ कात्यायनस्तु—विकिरोत्तरं  
 गायत्र्यादिजपं तृप्तिप्रश्नं चाह ॥ हेमाद्रौ देवलः—‘ततः सर्वाशनं पात्रे गृही-  
 त्वा विविधं बुधः । तेषामुच्छेषणस्थाने विकिरं भुवि निक्षिपेत्’ ॥ माधवीये  
 प्रचेताः—‘सार्ववर्णिकमादाय येअग्नीति भुवि क्षिपेत्’ । स च कुशे कार्यः ॥  
 ‘दर्भेषु विकिरश्च यः’ इत्युक्तेः ॥ मन्त्रः कातीयः ॥ ‘अग्निदग्धाश्च ये जीवा  
 येप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्’ इति ॥  
 अन्ये तु—‘असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः । तेषामन्नं प्रदास्यामि  
 विकिरं वैश्वदेविकम्’ इति हेमाद्रौ गोभिलोक्तेन दैवे ‘असंस्कृतप्रमीता ये  
 त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः । दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम्’  
 इत्यग्निपुराणोक्तेन पित्र्येन्नं विकीर्य ‘ये अग्निदग्धाः’ इत्युच्छिष्टपिण्डं कुशो-  
 परि पृथग्दद्यादित्याहुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ ब्राह्मे—‘ततः प्रक्षाल्य  
 हस्तौ च द्विराचम्य हरिं स्मरेत्’ ॥ माधवीयेगौतमः—‘विकिरमुच्छिष्टैः  
 प्रतिपादयेत्’ ॥ हेमाद्रौ व्यासः—‘उच्छिष्टैरेव विकिरं सदैव प्रतिपादयेत्’ ॥  
 भृगुः—‘पिण्डवत् प्रतिपत्तिः स्याद्विकिरस्येति तौल्वलिः’ ॥ श्राद्धकारिका-  
 याम्—‘यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तम । तस्मादन्नं त्यजेद्भूमौ वामभा-  
 गेषु पैतृके’ ॥ मनुः—‘उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्याशठस्य च । दासवर्गस्य  
 तत्पित्र्ये भागधेयं प्रक्षचेत्’ ॥ विष्णुः—‘उदङ्मुखेष्ववाचमनमादौ दद्यात्’ ततः  
 प्राङ्मुखेषु पित्र्ये दैवे चेत्यर्थः ॥ ज्ञातातपः—‘विश्वेदेवनिविष्टानां चरमं हस्त-  
 धावनम्’ ॥ हेमाद्रौ वाराहे ‘हस्तं प्रक्षाल्य यश्चापः पिबेद्भुक्त्वा द्विजः सदा ॥ त-  
 दन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः’ ॥ मरीचिः—‘हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पि-  
 बेदविचक्षणः । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते’ ॥ तत्रैव संग्रहे—‘पवि-  
 त्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डलं भुवि निक्षिपेत् । हस्तादीन्क्षालयेद्विद्वान्छरावादौ न

१ - गण्डूषप्रकारः स्मृतौ—‘अर्धं पिबति गण्डूषमर्धं त्यजति भूमिषु । प्रीणन्ति  
 पितरः सर्वे ये चान्ये भूमिदेवताः’ ॥ इति । तत्प्राशने ‘अमृतापिधानमसि इति मन्त्रः ।  
 तदवशिष्टतोयत्यागे च ‘रौरवेऽपुण्यनिलये ब्रह्मार्जुननिवासिनाम् । अर्थिनामुदकं दत्तं  
 अक्षय्यमुपतिष्ठतु’ इति मन्त्रः ॥ इति टीका ॥



कुत्रचित्' ॥ व्यासः— 'ताम्बूलोद्विणं चैव गण्डूषोद्विणं तथा । कांस्यपात्रे तथा  
ताम्रे न कुर्वीत कदाचन ॥ उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैः करो श्मश्रूणि शोधयेत्' ॥

अथ पिण्डदानम् ॥ तच्चार्चनोत्तरमग्नौ करणोत्तरं भोजनोत्तरं वि-  
पिण्डदान  
निर्णयः  
करोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरं चेति हेमाद्रौ स्मृ-  
तिषु च पक्षा उक्ताः ॥ तेषां शाखाभेदेन व्यवस्था ॥ 'प्रेतश्राद्धेषु

पूर्वमन्येषु भोजनोत्तरम्' इति चन्द्रिकामाधवौ ॥ सर्वत्र भोजनोत्तरमिति बह-  
वः ॥ आश्वलायनः— 'भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्निदध्यादाचान्तेष्वेके ॥ भु-  
क्तवत्स्विति पूर्वनिषेधार्थम् । साग्निरिति प्रणीतसमीपे अनग्निर्द्विजसमीपे ॥ हेमा-  
द्रौ जातूकर्ण्यः— 'व्याममात्रं समुत्सृज्य पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत्' प्रसारितभुजा-  
न्तरं व्यामः ॥ संकटे तु व्यासः— 'अरत्निमात्रमुत्सृज्ये'ति ॥ यत्तु तत्रैव—  
'सिकताभिर्मृदा वापि वेदी दक्षिणनिम्नगा' इति तदन्यशाखिपरम् । देवलः—  
'ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य च' ॥ चन्द्रिकायाम्— पिण्डनिर्वापणं  
कार्यं कुशाभावे विचक्षणैः । काशेषु राजदूर्वासु पवित्रे परमे हिते ॥  
आश्वलायनः— 'स्फ्येन रेखामुल्लिखेत् ॥ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिष-  
ददति तामभ्युक्ष सकृदाच्छिन्नैर्देवैरवस्तीर्य प्राचीनावीति रेखां त्रिरुदकेनोपन-  
येच्छुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इति तस्यां पि-  
ण्डान्निपृणीयात्पराचीनपाणिः पित्रे पितामहाय प्रपितामहायैतत्तसौ ये च  
त्वामत्रानु' इति ॥ हेमाद्रौ पारस्करः— 'कराभ्यामुल्लिखेत् स्फ्येन कुशै-  
र्वापि महीं द्विजः' ॥ बहुचानां करेणैव लेखा चाग्नेय्यभिमुखेति वृत्तिः ॥  
'दक्षिणाप्राचीं वेदिमुद्धृत्य' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥ देवलः— 'आवाहयित्वा  
दर्भाग्रैस्तेषां स्थानानि कल्पयेत् । तेष्वामीनेषु पात्रेण प्रयच्छेत्सतिलोदकम्' ॥  
पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन ॥ वायवीये— 'मधुसर्पिस्तिलयुतां स्त्रीन् पिण्डान्नि-

१—पिण्डपितृयज्ञेन व्यतिषङ्गपक्षे । साग्निरपि व्यतिषङ्गासत्त्वे इत्यपि बोध्यम् इति बो-  
ध्यम् ॥ 'हुत्वेवमग्निं पिण्डानां संनिधौ तदनन्तरम् । पक्वान्तेन बलिं तेभ्यः पिण्डेभ्योदापये-  
द्बुधः' ॥ इति देवलेनाग्नौ होमस्य पिण्डसंनिधानं वदतार्थादग्निसंनिधानेन पिण्डदानमुक्तम्  
अग्न्यभावे तु 'सर्वमन्नमुपादाय' इत्यग्निमयाज्ञवल्क्योक्तिर्विप्रतमीप एवाति टीका ॥



वेपेद्बुधः' ॥ त्रिस्थलीसेतौ- 'तिलमन्त्रं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा । मधु  
 सर्पिः खण्डयुक्तं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते' ॥ याज्ञवल्क्यः- 'सर्वमन्नमुपादाय  
 सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् दद्याद्वै पितृयज्ञवत्' ॥ के-  
 चित् पिण्डेषु माषान् वर्जयन्ति ॥ 'माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्नि-  
 पिण्डयोः । ब्राह्मणेषु यथा मयं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः' इति स्मृतिसारात् ॥  
 'माषान्सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्' इति स्मृतेश्च ॥ अत्रमूलं  
 चिन्त्यम् ॥ हेमाद्रावपि सर्वशब्दस्य प्रकृतार्थत्वात्सर्वान्नग्रहणमुक्तम् ॥ अत्र  
 शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमेकत्रोद्धृत्योच्छिष्टसमीपे दर्भेषु त्रीन्त्रीन् पिण्डान् दद्यात्  
 इति गोभिलसूत्रे 'सर्वस्मात्प्रकृतादन्नात्पिण्डान्मधुतिलान्वितान्' इति च ॥  
 शेषनियमात्तदभावे पिण्डनिवृत्तिः प्राप्नोतीति मैथिलवाचस्पती ॥ तन्नातुषो-  
 पवापवत्परप्रयुक्तद्रव्येत्वेऽप्यर्थकर्मत्वाद्गुणानुरोधेन प्रधानत्यागाच्च शेषलोपेऽपि  
 द्रव्यान्तरेण कार्यम् ॥ अतोनेयं प्रतिपत्तिः ॥ किंतु प्रधानमित्युक्तं प्राक् ॥ अन्यथा  
 सपिण्डीकरणादौ संयोजनादेः प्रधानस्य लोपापत्तेरिति दिक् ॥  
 अथ पिण्ड-  
 प्रमाणम् अथ पिण्डप्रमाणम् ॥ हेमाद्रावङ्गिराः- 'कपित्थविल्वमात्रा-  
 न्वा पिण्डान् दद्याद्विधानतः । कुकुटाण्डप्रमाणान्वामलकैर्बदरैः  
 पुमान्' ॥ इति ॥ तत्रैव धूम्रः- 'कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात्समाहितः ।  
 तत्समं विकिरं दद्यात् पिण्डान्तेतुषडङ्गुलैः' ॥ अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टास्तु-  
 'एकोद्दिष्टे सपिण्डे तु कपित्थं तु विधीयते ॥ नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके  
 तथा ॥ तीर्थे दर्शे च संप्राप्ते कुकुटाण्डप्रमाणतः । महालये गयाश्राद्धे कुर्या-  
 दामलकोपमम्' इत्याहुः ॥ कलिकायामाचार्यः- 'यत्रस्युर्बहवः पिण्डास्तत्र  
 विल्वफलोपमाः । यत्र चैको भवेत्पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः ॥ प्रेतपिण्डस्तु  
 दैर्घ्येण द्वादशाङ्गुल उच्यते' इति ॥ वायवीये- 'पत्नी पिण्डास्तु मृदनीयात्  
 त्रिवर्गस्य सहायिनी' ॥ हेमाद्रौ लौगाक्षिः- 'महालये गयायां च प्रेत-  
 श्राद्धे दशाहिके । पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत्' ॥ शाठ्या-  
 यनिः- 'असावेतत्त इत्युक्ता तदन्ते च स्वधा नमः' । असावित्यत्र सम्ब-



न्धरूपगोत्रादिविशिष्टं पित्रादिनाम सम्बुद्ध्यन्तमुक्त्वा पुनश्चतुर्थ्यन्तं तदन्तेऽयं  
 पिण्ड इदमन्नं वा स्वधा नमो नममेति वदेदिति हेमाद्रिः ॥ पित्रादीनामज्ञाने  
 त्वापस्तम्बः—‘यदि नामानि न विन्द्यात्स्वधापितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इति  
 प्रथमं पिण्डं दद्यात्, स्वधापितृभ्योन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्, स्वधापि-  
 तृभ्यो दिविषद्भ्य इति तृतीयम्, एवं मातामहेषु मातृषु च’ ॥ बहुचानां  
 तूक्तं प्राक् ॥ कलिकायां स्मृतिः—‘यावदेवोच्चरेन्मन्त्र तावत्प्राणं निरोध-  
 येत्’ ॥ येषां तु गृह्योक्ते दर्शे मातुः श्राद्धं पृथगुक्तं तेषां पितृभ्यः पश्चिमे  
 मातृभ्यस्तत्पश्चिमे मातामहीभ्यः पिण्डादि देयमिति सांख्यायनः ॥ अस्मि-  
 न्नपक्षे तत्पश्चिमे मातामहीभ्योपि दद्यादिति हेमाद्रिः ॥ ‘पूर्वासु पितृभ्यो  
 दद्यादपरासु स्त्रीभ्यः’ इति सूत्राच्च ॥ एवं यत्र तीर्थमहालयादौ ‘केचिदिच्छं-  
 न्ति नारीणां पृथक्श्राद्धं महर्षयः’ ॥ इति चतुर्विंशतिमतात् ‘पित्रादि नव-  
 दैवत्यं तथा द्वादशदैवतम्’ इत्यग्निपुराणाच्च मातृणां पृथगुक्तम् ॥ यत्र वा  
 ‘आचार्यगुरुशिष्येभ्यः सखिज्ञातिभ्य एव च । तत्पत्नीभ्यश्च सर्वाभ्यस्तथै-  
 व च जलाञ्जलीन् । पिण्डांस्तेभ्यः सदा दद्यात्पृथग्भाद्रपदे नरः । तीर्थेषु  
 चैव सर्वेषु माघमासे मघासु च’ इति चतुर्विंशतिमते ‘दौहित्रपुत्रदाराश्च ए-  
 कनिष्ठाः सहोदराः । निःसन्ताना मृता ये च तेभ्योप्यत्र प्रदीयते’ इति भ-  
 विष्ये एकोद्दिष्टान्युक्तानि तत्रापि तत्पश्चिमे पिण्डदानं ज्ञेयम् ॥ येषां न  
 पृथक् तैः सपत्नीकाः पित्रादयो वाच्याः ‘अन्वष्टका गया मातृश्राद्धं चैव  
 मृतेहनि । एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा स्त्रीषु नान्यत् पृथग्भवेत्’ इति शङ्खोक्तेश्च ॥  
 मनुः—‘तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृजेलेपभागिनाम् ॥’ हस्तलेपाभावेपि हस्तं  
 निमृज्यादेवेति मेधातिथिः ॥ विष्णुः—‘अत्र पितरोमादयध्वमिति दर्भमूले  
 करावघर्षणम् ॥ कलिकायां सुमन्तुः—‘एकोद्दिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न  
 विद्यते । सपिण्डीकरणादौ तु लेपः सर्वत्र शस्यते’ ॥ मनुः—‘आचम्योदक्  
 परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् । षड्भक्तूँश्च नमस्कुर्यात् पितृनेव च मन्त्रवत् ॥  
 उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः’ । त्रिः प्राणायामं कृत्वेति मेधा-



तिथिः ॥ अमन्त्रं प्राणान्निरुध्येति कर्काद्याः ॥ मन्त्रवत् वसन्ताय नमः ॥  
 'नमो वः पितरः' इत्याद्यैः । शेषं पूर्वावनयनशेषम् ॥ आश्वलायनः—  
 'निपृताननुमन्त्रयेतात्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति सव्यावृ-  
 दुदगावृत्य यथाशक्ति प्राणान्नासित्वाऽभिपर्यावृत्त्याऽमीमदन्त पितरो यथाभा-  
 गमावृषायीषतेति चरोः प्राणभक्ष्यं भक्षयेन्नित्यं निनयनम्' इति ॥ नित्यग्रहणं  
 शेषाभावेपि कुर्यादित्यर्थः ॥ शौनकः—'अथैषामत्र पितर इत्याद्येनानुमन्त्रणम्  
 अमीमदन्तेत्याद्येन मन्त्रेणाप्यनुमन्त्र्य तान् ॥ पिण्डशिष्टचरोरन्नं किञ्चिदाघ्रा-  
 य तत्त्यजेत् ॥ प्रक्षाल्याचम्य शुन्धन्तामित्याद्यैरेव पूर्ववत् । मन्त्रैः पिण्डेषु  
 पानीयं निषिञ्चेत् पितृतीर्थतः' ॥ व्याघ्रः—'अद्भिः प्रक्षाल्य तत्पात्रं तत्पि-  
 ण्डं प्रति पूर्ववत् । कृत्वावनेजनं कुर्यात्पिण्डपात्रमधोमुखम्' ॥ एतत्कातीयादी-  
 नाम् ॥ आचार्यः—'ततः सम्यग्द्विराचम्य नीवीं विस्रस्य वाग्यतः' ॥ आ-  
 श्वलायनः—'असावभ्यक्ष्वासावंध्वेति पिण्डेष्वभ्यजनाजने वासो दद्याद्द-  
 शाभूर्णास्तुकां वा पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वलोभैतद्वः पितरो वासो मानोतो-  
 न्यत्पितरोयुद्ध्वम्' इति ॥ श्राद्धचिन्तामणौ ब्राह्मे—'एतद्वः पितरो वास  
 इति जल्पन् पृथक्पृथक् । अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेद्वबुधः' ॥ इदं  
 कातीयानाम्'एतद्व इति सूत्राणि प्रतिपिण्डम्' इति तत्सूत्रात् ॥ हेमा-  
 द्रौ ब्राह्मे—'श्रेष्ठमाहुस्त्रैककुदमजनं नित्यमेव हि । तैलं कृष्णतिलैभ्यश्च दद्याद्-  
 भ्यजनं हितम् ॥ त्रैककुदं सुरमो इति प्रसिद्धम् ॥ अजनप्राथम्यमापस्त-  
 म्बादिविषयम् ॥ तत्रैव व्याघ्रः—'गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत्' ॥  
 देवलः—'दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत् ॥ भक्ष्याण्यपूपानिक्षूंश्च  
 व्यजनान्यशनानि च' ॥ तत्रैव शङ्खः—'यत् किञ्चित् पच्यते गेहे भक्ष्यं भो-  
 ज्यमर्गहितम् । अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथञ्चन' ॥ एतत्सव्येनेति  
 केचित् ॥ युक्तं त्वपसव्येन ॥ मनुः—'अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्यु-  
 तान् समाहितः' । ततो 'नमो वः पितर इष' इत्यादिनोपस्थानम् ॥ सात्स्ये—  
 अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात्सकृत्सकृत् । तिलपुष्पाक्षतान्पश्वादक्ष-



ग्योदकमेव च ' ॥ अत्र दैवे सव्यं पित्र्ये त्वपसव्यमिति कर्कः ॥ परिभाषो-  
 क्तवचनात्सव्यमिति युक्तम् ॥ अत्र शिवा आपःसन्तु । सौमनस्यमस्तिवत्यादि-  
 प्रयोगो ज्ञेयः ॥ मात्स्ये--'दत्वाशीःप्रतिगृह्णीयाद्विजेभ्यःप्राङ्मुखो बुधः ॥  
 अधोराः पितरः सन्तु सन्तिवत्युक्ते पुनर्द्विजैः ॥ गोत्रं तथा वर्ततां नस्तथेत्युक्तः  
 स तैः पुनः ॥ दातारो नोऽभिवर्धन्तामन्नं चैवेत्यदीरयेत् ॥ स्वस्तिवाचनकं  
 कुर्यात्पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥ स्वस्तिवाचनात्प्राक्पात्रचालनं कार्यम् ॥ हेमाद्रौ  
 बृहस्पतिः 'भोजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥ तदन्नमसुरैर्भुक्तं  
 निराशैः पितृभिर्गतैः ' ॥ जातूकर्ण्यः--'पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योथ  
 वा सुतः । न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथंचन ' ॥ याज्ञवल्क्यः--'स्व-  
 स्तिवाच्यं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव च ' । तत्रैव वृद्धशातातपः--'पितॄणां  
 नामगोत्रेण करे देयं तिलोदकम् । प्रत्येकं पितृतीर्थेन अक्षय्यमिदमस्तिवति ' ॥  
 अत्र षष्ठी प्रागुक्ता ॥ तत्रैव नागरखण्डे--'उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दत्त्वा  
 च दक्षिणाम् । हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ' ॥ बृहस्पतिः--'त-  
 स्मात्पणं काकिणीं वा फलपुष्पमथापि वा ॥ प्रदद्यादक्षिणां यज्ञे तथा स सफ-  
 लो भवेत् ' ॥ अत्र पित्रुद्देशेन दक्षिणादाने अपसव्यं विप्रोद्देशेन सव्यमिति माध-  
 वः ॥ कलिकायामाचार्यः--'दद्याद्यज्ञोपवीत्येव ताम्बूलं दक्षिणां तथा ' ॥ अ-  
 त्रिः--'वदेच्च तांस्ततो विप्रान् पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम् ' ॥ गोभिलः--'अ-  
 धोराः पितरः सन्तिवत्युक्ते स्वधां वाचयिष्य इति पृच्छति पितृभ्यः स्वधो-  
 च्यतामित्युक्तेऽस्तुस्वधेत्युच्यमाने धारां दद्याद्दूर्जवहन्ती 'ति ॥ 'आपस्तम्बेन  
 तु पुत्रान्पौत्रानभितर्पयन्ति' इत्यपि परिषेचने मन्त्र उक्तः ॥ आश्वलायनः--  
 'अथैतान्प्रवाहयेत् ॥ परेतन पितरः सौम्यासो गम्भीरेभिःपथिभिः पूर्वणे-  
 भिः ॥ दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नःसर्ववीरं नियच्छत'इति ॥ मा-  
 त्स्ये--'वाजे वाजे इति जपन्कुशाग्रेण विसर्जयेत् ' ॥ प्रचेताः--'स्व-  
 स्ति वाच्यं ततः कृत्वा पितृपूर्वं विसर्जयेत् ' ॥ आश्वलायनः--'अन्नं प्र-  
 कीर्योपवीत्योस्वधेति विसृजेदस्तुस्वधेति वा ' ॥ ब्रह्मवैवर्ते--'आमावाजेति



मन्त्रं तु पठित्वा च प्रदक्षिणाम् । द्वारोपान्ते ततःकृत्वा संयतः प्रविशेद्बृह-  
 म् । प्राञ्जलिं ततः प्राह तान् विप्रान् सत्यवादिनः ॥ दातारो नोभिवर्धन्ता  
 मन्नं च न इति बह्विति ॥ एवमस्त्विति ते तं च कथयन्ति समाहिताः ' ॥  
 एतन्मण्डलदेशे कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ मनुः—'दातारो नोभिवर्धन्तां वेदाः  
 संततिरेव च ॥ श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोस्त्विति ' ॥ बौधायनः—  
 'अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥ याचितारश्च नःसन्तु मा च या-  
 चिष्म कञ्चन' इति ॥ अत्र दातारो नोभिवर्धन्तां लभध्वं याचिद्वमि-  
 त्याद्यूहे पठित्वा विप्रैःप्रतिवचनं कार्यमिति सुदर्शनभाष्ये ॥ 'स्वादुसंसद' इति  
 'ब्राह्मणासः पितर' इति च मन्त्रद्वयं पठन्ति । शौनकः—'ब्राह्मणानथ नि-  
 र्यातान् परीत्य त्रिःप्रदक्षिणम् ॥ सस्त्रीकः स्वजनैःसार्द्धं प्रणमेद्भ्रुविताञ्जलिः ॥  
 कनिष्ठप्रथमा ज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे ' ॥ हेमाद्रौ बृहस्पतिः—'अद्य-  
 मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् ॥ अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्र-  
 हादिवम् ॥ पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः ॥ तत्क्लेशजातं वित्तान्तु  
 विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ' ॥ प्रचेताः—'विसृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमान्ते चाप्य-  
 नुव्रजेत् ' ॥ अथ पिण्डप्रतिपत्तिः ॥ हेमाद्रौ ब्रह्माण्डे—  
 पिण्डप्रतिप- 'पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी प्रथमं नरः । पत्न्यै प्रजार्थी द-  
 त्तिनिर्णयः द्याद्वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥ उत्तमां गतिमन्विच्छन् गोषु नि-  
 त्यं प्रयच्छति । आज्ञां प्रज्ञां यशःकीर्तिमप्यु पिण्डं प्रवेशयेत् ॥ प्राथयन्दी-  
 र्घमायुष्यं त्रायसेभ्यः प्रयच्छति ॥ आकाशं गमयेदप्यु स्थितो वा दक्षिणामु-  
 खः ' ॥ आश्वलायनः—'वीरं मे दत्त पितर ' इति पिण्डानां मध्यमं पत्नीं  
 प्राशयेत् ॥ 'आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ॥ यथायमरपाअसत्'  
 इति भर्त्रा दत्तस्याद्येनादाय द्वितीयेन प्राशनम् ॥ आपस्तम्बस्तु दाने मन्त्र-  
 माह—'अपां त्वोषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व ' इति मध्यमं  
 पत्न्यै प्रयच्छति इति ॥ प्राशनेपि ' यथेह पुरुषो असत् ' इति तद्विती-  
 यः पाठोऽन्येषां तत्तच्छाखायां ज्ञेयः ॥ तत्रैव शङ्खः—'पत्नी वा मध्यमं



प० ३ ]

पिण्डनिषिद्धकालनिर्णयः ।

४२५

पिण्डमश्रीयादार्तवान्विता' ॥ कलिकायां छागलेयः-- प्राचीनावीतिनाऽऽ-  
मन्त्र्य पत्नीपिण्डो विभज्यते ॥ प्रतिपत्न्यस्य मन्त्रस्य कर्तव्यावृत्तिरत्र तु' ॥  
माधवीये विष्णुधर्मे-- ' तीर्थे श्राद्धे सदा पिण्डान्क्षिपेत्तीर्थे सः ॥ हतः' ॥  
याज्ञवल्क्यः-- ' पिण्डांस्तु गोजविप्रोभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ' ॥ बृहस्पतः  
'अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा ॥ तदा तं जीर्णवृषभश्छागोवा भो-  
क्तुमर्हति' ॥ अथ पिण्डोपघाते हेमाद्रौ प्रायश्चि-  
पिण्डोपघातप्रा-  
यश्चित्निर्णयः तकाण्डे देवलः-- ' श्वसृगालखरैः पिण्डः स्पृष्टो भि-  
न्नः प्रमादतः ॥ कर्तुरायुष्यनाशः स्यात्प्रेतस्तं नोपसर्पति ॥'

जातूकर्ण्यः पूर्वश्लोकान्ते-- ' तद्दोषपरिहारार्थं प्राजापत्यं प्रकल्पयेत् ॥  
पुनः स्नात्वा तदा कर्ता पिण्डं कुर्याद्यथाविधि' ॥ काकस्पर्शे तु न दोषः ॥  
पिण्डोपघातं प्रक्रम्य ' धनस्य तु विनाशः स्यात्काकस्पर्शादिकं विना '  
इति तत्रैव श्लोके गौतमोक्तेः ॥ स्मृतिदर्पणे अत्रिः-- 'मार्जारमूषकस्पर्शेपिण्डे  
च द्विदलीकृते ॥ पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात्' ॥ बौधायनः--  
'श्वचाण्डालादिभिः स्पृष्टः पिण्डो यद्युपहन्यते प्राजापत्यं चरित्वाथ पुनः पिण्डं  
समाचरेत्' ॥ बोपदेवोप्येवमाह-- 'दिनान्तरे तु प्राजापत्यमात्रम् ॥ शेषप्र-  
तिपत्तित्वेन पिण्डावृतौ मानाभावादिति मैथिलास्तत्र ॥ सपिण्डीकरणादौ शे-  
षनाशे संयोजनादिलोपापत्तेः ॥ तेन वचनाद्वमन इवात्रापितन्मात्रपिण्डदानावृ-  
त्तिः ॥ अत एव 'नच नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनात्' इत्याप-  
स्तम्बसूत्रम् ॥ रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वद्युः कार्यम् ॥ श्राद्धसमाप्तिस्तु परदिने  
एव । समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्चेति हरिदत्तेन व्याख्यातम् ॥ तस्मात्

पिण्डनिषिद्ध-  
कालनिर्णयः

पाकान्तरेण पिण्डदानमात्रं कार्यम् ॥ अथ पिण्डनिषिद्ध  
कालः ॥ सच प्रायेण महालयादि निर्णये पूर्वमुक्तः ॥ हेमाद्रौ  
बृहत्पराशरः-- 'युगादिषु मघायां च विषुवत्ययने तथा ॥

भरणीषु च कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं नहि' ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्-- 'पुत्रे  
जाते व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन पिण्डनिर्व-



पणादते' ॥ तत्रैव कात्यायनः— 'वृद्धेरनंतरं चैव यावन्मासः समा-  
प्यते ॥ तावत् पिण्डान्नैव दद्यात् कुर्यात्तिलतर्पणम्' ॥ बौधायनः—  
'संस्कारेषु तथान्येषु मासं मासार्धमेव च ॥' तथा— 'भानौ भौमे  
त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च ॥ पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्प-  
णम्' ॥ त्रिस्थली सेतौ काष्णाजिनिः—'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं  
तदर्धकम्' ॥ उत्तरार्द्धं प्राग्वत् ॥ 'वृद्धिमात्रे तथान्यत्र पिण्डदाननि-  
राक्रिया ॥ कृता गर्गादिभिर्मुख्यैर्मासमेकं तु कर्मणाम्' ॥ हेमाद्रौ ज्योतिः-  
पराशरः—'विवाहे विहिते मासांस्त्यजेयुर्द्वादशैव हि ॥ सपिण्डाःपिण्डनि-  
र्वापं यौजीबन्धे षडेव हि ॥' तत्रैव—'महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोःक्षये-  
ऽहनि ॥ यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥ कृतोद्वाहेऽपि कुर्वीतपिण्ड-  
निर्वापणं सदा इति ॥ मातापित्रोरिति क्षयाहविशेषणम् ॥ हविरुभयत्ववादिवक्षि-  
तम् ॥ तेन भ्रातृपितृव्यादिवार्षिकेऽपि पिण्डदानं कार्यमिति केचित् ॥ सपिण्डीक-  
रणं नवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमिति निर्णयामृते उक्तम् ॥ क्षयाहविशेषः  
संग्रहे—'मातापित्रोराब्दिके तु विवाहादिषु सर्वदा ॥ तिलैः पिण्डाः प्रदातव्या  
अन्यश्राद्धे विवर्जयेत्' ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ रामकौतुके—'नन्दाश्व-  
कामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ॥ गण्डवैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेऽप्सु  
भिः' ॥ विश्वरूपनिबन्धे—'तिथिवारप्रयुक्तो यो दोषो वै समुदाहृतः ॥ स  
श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नान्यश्राद्धे कदाचन' ॥ अन्यतूक्तं प्राक् ॥ उच्छि-  
ष्टोद्वासनमाह हेमाद्रौ वसिष्ठः—'श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्ष-  
यात् ॥ श्रयोतन्ते वै सुधाधारास्ताः पिवन्त्यकृतोदकाः' ॥ व्यासः—'उ-  
च्छिष्टं न प्रमृज्यात्तु यावन्नास्तमितो रविः' ॥ इदं गृहान्तरसत्त्वे ॥ एकगृहे तु  
मनुः—'उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ॥ ततो गृहबलिं कुर्या-  
दिति धर्मो व्यवस्थितः' ॥ बलिं वैश्वदेवादि नित्यकर्मेति मेधातिथिः ॥  
ब्रह्माण्डे—'शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत्' ॥ तथा 'कामं दद्याच्च



सर्वं तु शिष्याय च सुताय च ' ॥ भोक्तुरिति शेषः ॥ जातूकर्ण्यः—'द्विज  
 भुक्तावशिष्टं तु शुचि भूमौ निखानयेत्' ॥ अथ वैश्वदेवादि ॥  
 वैश्वदेवादिनिर्णयः अत्र मामकः श्लोकः ॥ "श्राद्धेनग्निकर्तृकेग्निकरणात्पश्चा  
 ङ्जुहोतिर्बलिस्त्वन्ते स्यादथवा भवेद्विकिरतः पश्चात् पृथक्त्वे पचेः ॥ श्रा-  
 द्धान्ते त्वथवा महालयविधावूर्ध्वं भुजेः स्यात्क्षये त्वन्तेऽमासु च मध्यता  
 शुभविधावादौ तथा साग्निके " ॥ अस्यार्थः—साग्नेः पृथक्पाकेन सर्वत्रादौ  
 वैश्वदेवः ॥ 'पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः ॥ पिण्डयज्ञं ततः  
 कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः ॥ पित्रर्थं निर्वपेत्पाकं वैश्वदेवार्थमेव च ॥ वैश्वदेवं  
 न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम्' इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ अत्र साग्निक आहिता-  
 ग्निरिति हेमाद्रिः ॥ 'श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः ॥ एकाद-  
 शाहिकं भुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते' इति हेमाद्रौ शालंकायनोक्तेश्च ॥  
 तत्रैव परिशिष्टे—'संप्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च ॥ अग्रतो वैश्वदे-  
 वः स्यात् पश्चादेकादशेहनि' ॥ स्मार्ताग्निमतां तद्ग्रहितानां वाग्नौकरणोत्तरं  
 विकिरोत्तरं वा होममात्रं पृथक्पाकेन ॥ भूतयज्ञादि तु श्राद्धान्त एव ॥ अत्र मूलं  
 हेमाद्रिचन्द्रिकादौ स्पष्टम् ॥ सर्वेषां श्राद्धान्ते वा तत्पाकेन वैश्वदेव-  
 नित्यश्राद्धादीति तृतीयः ॥ 'श्राद्धं निर्वर्त्य विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः ॥ कु-  
 र्याद्भिक्षां ततो दद्याद्धन्तकारादिकं तथा' इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ ततः श्रा-  
 द्धशेषात् ॥ 'श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्' इति चतुर्विंशतिमता-  
 च्च ॥ एवं वैश्वदेवकालत्रयस्य आशार्कं सांख्यायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैव व्यव-  
 स्थोक्ता ॥ 'आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये ॥ एकोद्दिष्टे निवृत्ते  
 तु वैश्वदेवो विधीयते' इति बहुस्मृत्युक्तत्वात्सर्वेषां श्राद्धान्ते एवेति मेधा-  
 तिथिस्मृतिरत्नावल्यादयो बहवः ॥ बोपदेवस्तु वृत्तिकारेण विसर्जनान्तं

१-शिष्यसुतौ चानुपेतौ बोध्यौ तदिच्छायां दोषाल्पत्वार्थं कामपदम् । २-एतच्च  
 वाक्यमेकदिनप्रसक्तानामन्वाधानादीनां क्रमाकांक्षायां तन्मात्रं विधत्ते न तु कमपि पदा-  
 र्थम् । तेन कदाचित्पिण्डपितृयज्ञस्य सद्यस्कालीनदर्शयागपक्षे अन्वाधानस्य चोत्तरदि-  
 नकर्तव्यत्वेपि न दोषः । इति टीका ॥



श्राद्धमुक्त्वा 'उच्छेषणं तु' इति पूर्वोक्तमनुवाक्योदाहरणाद्वृत्तानां श्राद्धा-  
न्त एव । मध्यपक्षस्त्वन्यशाखापर इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु वृद्धावप्यन्ते एव  
वैश्वदेवमाह ॥ कातीयानां तु श्रौतस्मार्ताग्निमतामादावेकेनैवपाकेनेति कर्कः ॥  
अन्येषां मते तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः ॥ प-  
ञ्चयज्ञाश्च अन्ते चेति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ अस्य पक्षद्वयस्य पूर्ववद्वय-  
वस्था ॥ हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—'ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोति-  
थीन् ॥ ततस्तदन्नं भुंजीत सह भृत्यादिभिर्नरः' ॥ ततः श्राद्धशेषात् ॥ नि-  
त्यक्रियां नित्यश्राद्धं ॥ तत्र—'पृथक्पाकेन नैत्यकम्' इति तेनैवोक्तेः पा-  
कैक्ये विकल्पः ॥ अथ नित्यश्राद्धम् ॥ हेमाद्रौ व्यासः—  
नित्यश्राद्धं 'एकमप्याशयेद्विप्रं षण्णामप्यन्वहं गृही' ॥ अपीत्यनु-  
कल्पः ॥ प्रचेताः—'नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम् ॥ न पिण्ड-  
दानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम्' ॥ अत्र—'निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चि-  
द्वत्वा विसर्जयेत्' इति तेनैवोक्तेर्दक्षिणाविकल्पः ॥ यत्तु—'नित्यश्राद्धं देवहीनं  
नियमादिविवर्जितम् ॥ दक्षिणारहितं चैव दातृभोक्तृव्रतोज्झितम्' इति काशी-  
खण्डे ॥ तद्विप्राभावपरमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ भविष्ये—'आवाहनं स्वधाका-  
रं पिण्डाग्नौकरणादिकम् ॥ ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवा नचैव हि ॥ दातृणामथ  
भोक्तृणां नियमो न च विद्यते' ॥ एतद्विवाऽसंभवे रात्रावपि कार्यम् ॥ 'दिवोदिता  
नि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै ॥ यामिन्याः प्रहरं यावत्तावत्कर्माणि कार-  
येत्' इति बृहन्नारदीयोक्तेः ॥ 'रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् ॥  
ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः' इति पृथ्वीचन्द्रधृतसंग्रहोक्तेश्च ॥  
नच दार्शिकाब्दिकाद्यपि रात्रौ स्यादिति वाच्यम् ॥ इष्टापत्तेः ॥ तस्य तिथि  
संबन्धित्वात् 'संध्यारात्रौ न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः' इति वैष्णवाद्यै  
रात्रौ निषेधात् ॥ अत एवाल्पद्वादश्यां—'उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्मा-  
ध्याह्निकं तदा' इत्याद्यैर्वाक्यैस्त्रयोदशीश्राद्धं नापकृत्यते ॥ भिन्नविषयत्वा-  
दित्युक्तं मदनरत्ने ॥ मित्यं त्वपकृत्यते ॥ अन्वहमित्युक्तेस्तिथिसर्वार्थिका-



भावात् ॥ यथाच सुदर्शनभाष्ये— ‘परपक्षे पित्र्याणीति नियमेपि नित्य-  
 श्राद्धत्वे संवत्सरमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ बलाच्छुक्लपक्षेपी’त्युक्तं ॥ तथा  
 रात्रावपि ॥ तथा च माधवेन प्रतिपत्प्रकरे स्पष्टमुक्तम् ॥ वयं चाग्रे वक्ष्यामः ।  
 अस्य दिने करणे लोप एव ॥ ‘रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत’ इति निषेधादिति  
 पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ पात्राभावे कौर्मै— ‘उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं  
 प्रकल्पयेत्’ ॥ तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः— ‘भिक्षुकाभावे अन्नं गोभ्यो दद्या  
 दशौ वा प्रक्षिपेत्’ इति हेमाद्रौ नागरखण्डे— ‘नित्यश्राद्धं न कुर्वीत  
 प्रसङ्गाद्यत्र सिद्ध्यति ॥ श्राद्धान्तरे कृतेन्यत्र नित्यत्वात्तन्न हापयेत्’ ॥ षड्  
 दैवते पृथङ् नेत्यर्थः ॥ मात्स्ये— ‘ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः ॥  
 भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वपितृनिषेवितम्’ ॥ सर्वं पर्वनिषिद्धं मांसमाषाद्यपी-  
 त्यर्थः ॥ एवं कृष्णैकादश्यादौ गृहिणोपि भोजनम् ॥ अस्य वैधत्वेन निषेधा  
 प्रवृत्तेः ॥ एवं ग्रहणवेधेपि ॥ यत्त्वनाहिताग्नेरमाषममांसं व्रतयेदित्युक्तं तद्धेय  
 मेव ॥ श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वात् ॥ देवलः— ‘श्राद्धं कृत्वा तयोर्मर्त्यो न  
 भुङ्क्तेऽथ कदाचन ॥ देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा’ ॥ शिवरात्र्ये  
 कादश्यादौ त्ववघ्राणमेवेत्यक्तं प्राक् ॥ यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभक्तम  
 याचितं वा कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ जातूकर्ण्यः— ‘अहन्येव तु भोक्तव्यं  
 कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः ॥ अन्यथा ह्यासुरं श्राद्धं परपांके च सेविते’ ॥ श्रा-  
 द्धशेषभोजनस्य क्वचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे मार्कण्डेयः ‘पि-  
 त्रादीनामथाऽन्येषां श्राद्धशेषान्नभोजनम् ॥ व्रतिनां विधवानां च यतीनां च  
 विगर्हितम्’ ॥ अन्ये भिन्नगोत्राः ॥ व्रतिनो ब्रह्मचारिणः ॥ ‘श्राद्धवशिष्ट-  
 भोक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत्  
 इति तत्रैवोक्तेः ॥ तत्रैव जाबालिः— ‘विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भो-

१—नियम एवायम्, न परिसंख्या त्रैदोष्यात् । तेन यन्न दत्तं तन्न भुञ्जीतेति नार्थः,  
 किंतु पितृभ्यो दत्तं भुञ्जीतैवेति । २—‘श्राद्धं कृत्वा परगृहे यो भुंक्ते मदविद्वलः । पत-  
 न्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः’ इति ज्ञातातपात् ॥



जनं चरेत् ॥ प्राजापत्यविशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत् ' ॥ यतीनां व-  
पनं लक्षप्रणवजपश्चेति तत्रैवोक्तम् ॥ अस्यापवादमाह स एव ॥ 'श्वशुरस्य गु-  
रोर्वापि मातुलस्य महात्मनः ॥ ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः ॥ ए-  
तेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते ॥ इति केचित् प्रशंसन्ति मुनयस्त-  
दसांप्रतम् ' ॥ विशेषान्तरं तत्रैव ज्ञेयम् ॥ हेमाद्रौ जाबालिः— ' ताम्बूलं  
दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् ॥ रत्योषधिपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जये-  
त् ' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये आचार्यः— ' न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन  
तद्दिने ॥ श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि ' ॥ इति कमलाकरभट्ट  
कृते निर्णयसिन्धौ पार्वणश्राद्धम् ॥

अथानुकल्पः तत्र विप्रालाभे—' भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं  
श्राद्धानुकल्पः पङ्क्तिपावनम् ॥ दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्वपेत् '   
इति शंखोक्तेरेको विप्रः पूर्वमुक्तः ॥ विप्रभावे दर्भबटुः ॥ 'निधाय वा दर्भब-  
टूनासनेषु समाहितः ॥ प्रेषानुप्रेषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत् ' इति देवलोक्तेः ॥  
अशक्तावामश्राद्धम् ॥ 'आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि ॥ आमश्राद्धं  
प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे' इति कात्यायनोक्तेः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेजमद-  
ग्निः—' यावत्स्यान्नाग्निसंयुक्त उत्सनाग्निरथापि वा । आमश्राद्धं तदा कुर्या-  
द्धस्तेग्नौकरणं भवेत् ' ॥ कौर्मै—' अनग्निरधनो वापि तथैव व्यसनान्वितः ।  
आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्दृषलस्तु सदैव हि' ॥ आहिताग्नौ प्रवासस्थे तत्पत्नी गृ-  
हे दर्शं ऋत्विगादिना कारयेत् ॥ ' अमावास्यादि नियतं प्रोषिते धर्मचारिणी ॥  
पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना' इति लघुहारीतोक्तेरिति पृथ्वीच-  
न्द्रोदयः ॥ आदिपदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणि ॥ सुमन्तुः—' पा-  
काभावेधिकारः स्याद्विप्रादीनां नराधिप । अत्नीनां महाबाहो विदेशगमना-  
दिभिः ॥ सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः ' ॥ प्रचेताः—' स्त्री  
शूद्रः श्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ । आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्व-  
णेन तु' । स्वयं पचतीति श्वपचः अपत्नीकः ॥ विष्णूशनसौ—' आत्मनो



देशकालाभ्यां विष्टवे समुपस्थिते । आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसंभवे ॥  
चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः । न पक्वं भोजयेद्विद्वान् सच्छूद्रोपि क  
दाचन ॥ भोजयन् प्रत्यवार्या स्यान्न च तस्य फलं लभेत् ' ॥ अत्र प्रवा-  
सतीर्थग्रहणादावामहेमश्राद्धमेव ॥ पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रिरत्ना  
वल्यादयः ॥ अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु—'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं  
विधियते' इति सुमन्तूक्तेः साग्निकैर्निरग्निकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे आ  
मादि कार्यम् पाकसंभवेत्वन्नेनैवेत्याहुः ॥ अतएव पाकश्राद्धमुक्त्वा—'एतच्चानुप-  
नीतोपि कुर्यात्सर्वेषु कर्मसु । भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः'  
इति मात्स्ये निरग्नेरपि । पाकेनोक्तमिति शूलपाणिकल्पतरु ॥ एतच्छ-  
ब्दः श्राद्धमात्रपर इत्यन्ये ॥ 'एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम्' इति  
लघुहारीतीयमपि साग्रेव ॥ निरग्नेर्महैकोद्दिष्टमप्यामेन ॥ शूद्रस्य तु दशाह  
पिण्डायामेनेति हलायुधः ॥ उत्सन्नाग्नीनां त्वामश्राद्धमेव पूर्वोक्तं जमदग्निवा  
वाक्यात् ॥ मरीचिः—'श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् । अ-  
मावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते ' ॥ स्मृतिदर्पणे—'मृताहं च सपि-  
ण्डं च गयाश्राद्धं महालयम् । आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ' ॥  
हेमाद्रौ व्यासः—'आमं ददत्तु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम् । द्विगुणं त्रिगुणं  
वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् ॥ सिद्धान्ते तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः ॥  
आवाहनादि सर्वं स्यात्पिण्डदानं च भारत ॥ दद्याद्यच्च द्विजातिभ्यः शृतं वा  
शृतमेव वा ॥ तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्' ॥ पक्षान्तरमाह  
स एव—'आमं ददद्धि कौन्तेय तदामं द्विगुणं चरेत् । त्रिगुणं च-  
तुर्गुणं वापि न त्वेकगुणमर्पयेत् ' ॥ स्मृत्यर्थसारे सममप्युक्तं षट्त्रिंशन्म-  
ते—'आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथं भवेत् । गृहपाकात्समुद्धृत्य  
सक्तुभिः पायसेन वा ॥ पिण्डान्न दद्याद्यथालाभं तिलैः सह विमत्सरः ' ॥ पृ-  
थ्वीचन्द्रोदये व्यासः—'आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः सदा ।  
हस्तेग्नौकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः' ॥ एतत्साग्रेः निरग्नेः सदा तत्सत्त्वात्



यत्तु-‘आमेन पिण्डं दद्याच्चेद्विप्रान् पाकेन भोजयेत् । पक्केन कुरुते पिण्ड-  
मामान्नं यः प्रयच्छति ॥ तावुभौ मनुजौ प्रोक्तौ नरकाहौ न संशयः’ इति  
तद्वर्शादिपरम् ॥ देशाचाराद्व्यवस्थेति युक्तम् ॥ मरीचिः-‘आवाहने स्व-  
धाकारं मन्त्रा ऊह्या विसर्जने । अन्यकर्मण्यनूह्याः स्युरामश्राद्धविधिः स्मृ-  
तः’ ॥ आवाहने हविषे अत्तव इत्यत्र स्वीकर्तवे इत्यूहः ॥ स्वधाकारे  
नमो वः पितर इषे इत्यत्र इषेपदस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः ॥ विसर्जने वा-  
जेवाजे इत्यत्र तृप्ता इति स्थाने तत्स्पर्शत तृप्यतेति वोहः ॥ यद्यपि तस्मा-  
द्वचं नोहेदिति ऋच्यूहो निषिद्धः तथापि वचनाद्भवति ॥ ‘तृप्तिप्रश्नो-  
वगाहश्च जुषप्रश्नो यथासुखम् । आमश्राद्धे भवेन्नैतदापोशानं च पञ्चम-  
म्’ ॥ अयं चानुवादः खल्वेवाल्यां छेदनादीनामिवार्थाभावाल्लोपसिद्धेः ॥ ध-  
र्मप्रदीपे तु-‘आमं चतुर्गुणं दद्यादथवा द्विगुणं तथा । हेम चाष्टगुणं तद्व-  
दामे हैमेप्यसौ विधिः ॥ आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च । व्य-  
तीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत् ॥ गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पाय  
सेन वा ॥ पिण्डदानं प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति ॥ आमश्राद्धे च वृद्धौ च  
प्रेतश्राद्धे तथैव च ॥ विकिरं नैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोब्रवीत् । आम-  
श्राद्धमनङ्गुष्ठमग्नौकरणवर्जितम् । तृप्तिप्रश्नविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्ध्रुवम् ।  
आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम् । तृप्तिप्रश्नं न कुर्वीत आमे हैमे  
कदाचन’ इत्युक्तम् ॥ एतच्च-‘आवाहनं भवेत्कार्यमर्घ्यदानं तथैव च’  
इति हेमाद्रौ भविष्यादिविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ शाखान्तरविषयं वास्तु ॥ वि-  
किरोप्यामेनेति हेमाद्रिः शूद्रस्य तु तत्रैवोक्तम् ॥ ‘अग्नौकरणमन्त्रश्च नम-  
स्कारो विधीयते’ ॥ अग्नये कव्यवाहनाय नमः सोमाय पितृमते नमः इत्यं  
मन्त्रः ॥ मात्स्ये-‘मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्रस्य सर्वमेव विधीयते । एवं शूद्रोपि  
सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा ॥ नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नवद्बुधः’ ॥  
तच्च पूर्वाह्णे कार्यम् ॥ ‘आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे एकोद्दिष्टं च मध्यतः । पार्वणं

१-यूपः । तत्र छेदनादिकरणे स्वरूपहानिप्रसंगात् ।



चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ' इति हारीतोक्तेः ॥ एतद्विजविषयम् ॥ शूद्रकर्तृकं त्वपराह्ण एव ॥ ' मध्याह्नात्परतो यस्तु कुतुपःसमुदाहृतः । आमश्राद्धं तु तत्रैव पितृणां दत्तमक्षयम्' इति सुमन्तूकेरित्यपराकै हेमाद्रौ चोक्तम् ॥ तदभावे हेमश्राद्धमाह हेमाद्रौ मरीचिः—'आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान् । धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा' ॥ धर्मः—'आमं तु द्विगुणं प्रोक्तं हेमं तद्वच्चतुर्गुणम्' ॥ स्मृत्यर्थसारे—'हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा दद्यात्' ॥ हेमाद्रौ भविष्ये—'अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि । हेमश्राद्धं संग्रहे च तथा स्त्रीशूद्रयोरपि' ॥ षट्त्रिंशन्मते तुर्यपादे—'वर्जयित्वाक्षयेहनि' इति पाठः । 'यस्य भार्या रजस्वला' इति व्यासपाठः ॥ पुत्रोत्पत्तौ तु हेमनियममाह संवर्तः—'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेमैव बुद्धिमान् । न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्' भविष्ये—'गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा । पिण्डदानं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धे कृते सति ॥ शूद्रस्तु गृहपाकेन तत्पिण्डान्निर्वपेत्तथा । सक्तुमूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम्' ॥ 'हेमश्राद्धेपिण्डदानं न' इति दिवोदासः ॥ स्मृत्यर्थसारे तु विकल्प उक्तस्तदाशयं न विद्मः ॥ षट्त्रिंशन्मते—'नामन्त्रणाग्नौकरणं विकिरो नैव दीयते । तुमिप्रश्नोपि नैवात्र कर्तव्यः केनचिद्भवेत्' ॥ अत्र मरीचिना आमाभावे हेमविधानेन स्थानापत्त्या धर्मप्राप्तेः पूर्ववन्मन्त्रोहः पूर्वाह्नकालता च ज्ञेयेतिदिक् पूर्वोक्तधर्मप्रदीपोक्तेश्च ॥ व्यासः—'हिरण्यमामं श्राद्धीयं लब्धं यत्क्षत्रियादितः । यथेष्टं विनियोज्यं स्याद्भुञ्जीयाद्वाह्मणात्स्वयम्' ॥ विप्राल्लब्धं भुञ्जीयात् ॥ क्षत्रियादिलब्धे तु यथेष्टविनियोगः ॥ तेनापि श्राद्धवैश्वदेवादि न कार्यम् ॥ देवोद्देशेन त्यक्तस्य देवतान्तरायत्यागायोगादिति देवयाज्ञिकः ॥ शूद्रलब्धे तूक्तं तत्रैव षट्त्रिंशन्मते—'आमं शूद्रस्य यत् किञ्चिच्छ्राद्धिकं प्रतिगृह्यते । तत्सर्वं भोजनायालं नित्यनैमित्तिकेन च' इति ॥ शुद्धितत्त्वेङ्किराः—'शूद्रवेश्मनि विप्रेण क्षीरं वा यदि वा दधि । निवृत्तेन न भोक्त-



व्यं शूद्रान्नं तदपि स्मृतम् ॥ शूद्राद्विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचि' ॥ पराशरः—' तावद्भवति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः । द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वं तन्न विरुद्धयते' ॥ विष्णुपुराणे—' संप्रोक्षयित्वा गृह्णीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतम्' ॥ अङ्गिराः—'पात्रान्तरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतम्' ॥ सपिण्डश्राद्धाशक्तावाह हेमाद्रौ संवर्तः—'समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम् । अपि संकल्पविधिना काले तस्य विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः संकल्प उच्यते' ॥ व्यासः—'सांकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम् । नावाहनाशौकरणे पिण्डांश्चैव न दापयेत्' ॥ पात्रमर्घ्यस्य ॥ समन्त्रकावाहनस्य निषेधः ॥ तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः ॥ स्मृत्यर्थसारे—'विकिरं तु न दातव्यम्' इति तृतीयपादे पाठः ॥ स्मृत्यन्तरे—'त्यजेदावाहनं चार्घ्यमशौकरणमेव च । पिण्डांश्च विकिराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके' ॥ हेमाद्रौ वृद्धशातातपस्तु—'पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते । स्वधावाचनलोपोत्र विकिरस्तु न लुप्यते' इत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वसिष्ठः—'आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाशौकरणं तथा । विकिरं पिण्डदानं च सांकल्पे षड्विजयेत्' ॥ विकिरे विकल्पः स्मृत्यन्तरे—'अङ्गानिपितृयज्ञस्य यदा कर्तुं न शक्नुयात् । स तदा वाचयेद्विप्रान् संकल्पात्सिद्धिरस्तिवति' ॥ छागलेयः—'पिण्डो यत्र निर्वर्तत मघादिषु कंथचन । सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः' ॥ काष्णार्जिनिः—'मौजीबन्धाद्वत्सरार्धं वत्सरं

१-तत्पाकश्च शूद्रगृहेन कार्यः । 'शुष्कान्नं गौरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम् । पक्वं विप्रगृहे भुक्तं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत्' । इति पराशरमाधवीयस्मरणात् । २-अमन्त्रकावाहनाकरणे देवताया असंनिधानप्रसंगेन श्राद्धानिष्पत्तिप्रसंगात् । नवीनास्तु-पितृविग्रहः स्वीकार्यः अन्यथा धर्माधर्मफलभोगानुपपत्तेः । एवं तत्तृप्तिरपि श्राद्धफलत्वेन स्वीकार्या । देवताधिकरणे देवतातृप्तेर्निराकरणेपि रात्रिसन्न्यायेन पितृतृप्तित्वेन तस्या दुर्वारत्वात् । नत्वागमनरूपं सांनिध्यं मानाभावात् । यत्तु—'आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति यथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः' । इति प्रसादफलदातृत्वम्' तदपि नोपेयते अर्थवादकत्वात् । तस्मात्सांनिध्यफलदातृत्वयोरनुपगमादमन्त्रकावाहनं वृथैवेत्याहुः ॥ इति टीका ॥



पाणिपीडनात् । पिण्डान् सपिण्डा नो द्युःप्रेतपिण्डं विनात्र तु ' ॥ अस्या-  
 पवादः पित्रोरादिकादौ पूर्वमुक्तः ॥ त्यक्ताग्रेरपि सांकल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्म-  
 ते—'अनग्निको यदा विप्र उत्सन्नाग्निस्तथैव च । तथा वृद्धिषु सर्वासु संक-  
 ल्पश्राद्धमाचरेत्' ॥ अशक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये बृहन्नारदीये—'द्रव्याभावे-  
 द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ' ॥  
 देवलः—'पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते  
 भवेन्निरशनोपि वा ' ॥ वृद्धवसिष्ठः—'किञ्चिद्दद्यादशक्तस्तु उदकुम्भादिकं  
 द्विजे । तृणानि वा गवे दद्यात् पिण्डान्वाप्यथ निर्वपेत् ॥ तिलदैर्भैः पि-  
 तृन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ' ॥ हेमाद्रौ भविष्ये—'अग्निना वा दहेत्  
 कक्षं श्राद्धकाले समागते । तस्मिन्वोपवसेदह्नि जपेद्वा श्राद्धसंहिताम्' ॥  
 श्राद्धसंहिता समन्त्रश्राद्धसंकल्पः ॥ विष्णुवराहपुराणयोः—'असमर्थो-  
 च्छदानस्य धान्यं मांसं स्वशक्तितः । प्रदास्यति तिलान्वापि स्वल्पां वापि  
 च दक्षिणाम् ॥ सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः । सूर्यादिलोकपा-  
 लानामिदमुच्चैः पठिष्यति ॥ न मेस्ति वित्तं न धनं तच्चात्रं श्राद्धोपयोगि  
 स्वपितृन्नतोस्मि । तृप्यन्तु भक्त्या पितरौ मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मा-  
 रूतस्य ॥ इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम् । यः करोति कृतं  
 तेन श्राद्धं भवति भारत ' ॥ प्रभासखण्डे—'गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहु-  
 विरौत्यदः । निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो मानृणं कृथाः ॥ न मेस्ति वित्तं न धनं  
 न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि । वनं प्रविश्येह तु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ  
 वर्त्मनि मारूतस्य ॥ श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः ।  
 आख्याय चोत्क्षिप्य भुजौ ततो वै दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥  
 भवेत्स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ' ॥ इत्यनुकल्पः ॥

अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तम् ॥ दर्शे षट् प्राणायामाः ॥  
 श्राद्धभोजने प्रा- वृद्धौ त्रयः ॥ संस्कारेषु जातकर्मादिचूडान्तेषु सांतपनम् ॥  
 यश्चित्तनिर्णयः आद्ये चान्द्रं वा ॥ अन्यसंस्कारेषूपवासः ॥ सीमन्ते चान्द्र-



मिति विज्ञानेश्वरः ॥ आपदि नवश्राद्धैकादशाहेषु भोजने कायः ॥ द्वादशाहे  
ऊनमासे च पादोनः ॥ द्विमासे त्रिपक्षे ऊनषष्ठोनाब्दयोश्चाद्धकृच्छ्रः ॥ त्रिमा-  
साब्दिकान्तेषु सपिण्डने च पादकृच्छ्र उपवासो वा ॥ गुरुद्रव्यार्थभोजने-  
र्द्धम् ॥ जपशीले तदर्धम् ॥ अनापदि तूनमासान्तेषु चान्द्रं कायं वा ॥ द्वि-  
मासादौ पादोनम् ॥ त्रिमासावर्द्धकायः ॥ आब्दिके पादोनकायः ॥ पुनरा-  
ब्दिके एकाहः ॥ क्षत्रियादिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि ज्ञेयानि ॥ चाण्डालस-  
र्पश्वादिहतपतितकृत्वादिनवश्राद्धे चान्द्रम् ॥ आद्यमासिकान्ते चान्द्रं परा-  
कश्च ॥ द्वादशाहादौ पराकः ॥ द्विमासादावतिकृच्छ्रः ॥ त्रिमासादौ कायः ॥  
आब्दिके पादः ॥ अभ्यासे सर्वं द्विगुणम् ॥ आमहेमसंकल्पश्राद्धेषु तत्तद-  
र्थानि ॥ यतिर्ब्रह्मचारी चोक्तं प्रायश्चित्तं कृत्वा त्रीनुपवासान् प्राणायामान्धू-  
ताशनं चाधिकं कृत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ अनापदि द्विगुणम् ॥ दर्शादौ  
दशगायत्रीमन्त्रिता अपः पिबेत् षट्प्राणायामा वा ॥ संस्कारेषु चौले कृच्छ्रः  
सीमन्ते चान्द्रम् ॥ अन्येषूपवास इति दिक् ॥ अत्र माधवमिताक्षरादौ  
क्वचिद्विरोधो विषयभेदात्पारिहार्यः ॥ एकादशाहे चान्द्रं पुनःसंस्कारश्चेति प्रा-  
यश्चित्तकाण्डे हेमाद्रिः यत्तूजनाः—

‘दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्ध-

क्षयाहश्राद्ध  
निर्णयः

भुग्द्विजः’ इति तदनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धपरमिति विज्ञानेश्वरः ॥

अथ क्षयाहश्राद्धम् ॥ तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौ व्यासः—

‘मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् प्रियतेहनि । प्रत्यब्दं तु तथा-

भूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः’ ॥ नारदीये—‘पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्का-  
लिकी स्मृता’ । अत्र चान्द्रं मानं ज्ञेयं ॥ ‘आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो  
मासः प्रशस्यते’ इति गगोक्तेः ॥ मलमासमृतस्य तु सौरम् ‘मलमासमृतानां  
तु सौरं मानं समाश्रयेत्’ इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ एतन्मृतमासस्यैवाधिक्ये  
ज्ञेयम् ॥ ब्राह्मे—‘प्रतिसंवत्सरं कार्यं मातापित्रोर्मृतेहनि । पितृव्यस्याप्यपु-  
त्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि’ ॥ अपुत्रस्येति भ्रात्राप्यन्वयः ॥ ज्येष्ठस्येति  
कनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थम् ॥ मदनरत्ने भविष्ये—‘सर्वेषामेव श्राद्धानां



श्रेष्ठं सांवत्सरं मतम् ' ॥ तथा--'भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति स्वगा-  
धिप ॥ मातापितृभ्यां सततं वर्षेवर्षे मृतेहनि ॥ स याति नरकं घोरं तामिस्रं  
नाम नामतः' ॥ तच्च नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टं पार्वणं चोक्तम् ॥ आद्यमाह यमः--  
'सपिण्डीकरणाद्धूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृते-  
हनि' ॥ व्यासः--'एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पित्रोश्चैव मृतेहनि । एकोद्दिष्टं परि-  
त्यज्य पार्वणं कुरुते नरः ॥ अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः' ॥ अ-  
न्यमाह शातातपः--'सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात् पार्वणवत्सदा ॥ प्रति-  
संवत्सरं श्राद्धं छागलेनोदितो विधिः ॥ यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डे नि-  
योजयेत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ' ॥ अत्रौरसक्षेत्रजयोः  
पार्वणं दत्तकादीनामेकोद्दिष्टमित्येकः पक्षः ॥ साग्रेः पार्वणं निरग्रेकोद्दिष्ट-  
मित्यपरः ॥ तदूषणं मिताक्षरादौ ज्ञेयम् ॥ कल्पतरुस्तु--'साग्न्योरौरस-  
क्षेत्रजयोः पार्वणम् निरग्निकयोस्त्वेकोद्दिष्टम्' इत्याह ॥ अपराकैप्येवम् ॥  
दत्तकादयो दश पुत्रास्तु साग्नयो निरग्नयश्चैकोद्दिष्टमेव कुर्युः ॥ 'प्रत्यब्दं पा-  
र्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश' इति  
जातूकर्ण्योक्तेः । यदा तु दत्तकस्य पिता दर्शे महालये वा मृतस्तत्र पार्वणैको-  
द्दिष्टयोर्विकल्पः ॥ वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्वीहियववद्विकल्पः ॥  
स च देशाचाराद्व्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः ॥ अतएव पृथ्वीच-  
न्द्रोदये वृद्धपराशरः--'मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेहनि' इत्यु-  
क्त्वाह 'देशधर्म समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे । सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च  
क्षयाहचपि' इति ॥ तच्च केवलपितृणां न सपत्नीकानामिति हेमाद्रिः ॥ अत्र  
मातामहान कार्याः 'कर्षूसमन्वितं भुक्त्वा तथाचं श्राद्धषोडशम् । प्रत्या-  
ब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः' इति कात्यायनोक्तेः ॥ क-  
र्षूसमन्वितं सपिण्डनं यैरेकोद्दिष्टं क्रियते तेषामपि क्वचित् पार्वणमेवेति श-  
ङ्खोक्तेः ॥ एवं संन्यासिनोपि--'एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह । स-  
पिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ वायवोये-



‘संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत् ’ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धपराशरः—‘संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये ॥ तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेपि च सत्तमैः ॥ चन्द्रक्षयानाशकसंयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः । सपिण्डितानामपि चाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ’ ॥ तथा—‘भ्रातृज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्रातानुजस्य चाद्वैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदब्रवीत्’ ॥ दैवहीनमेकोद्दिष्टम् ॥ ज्येष्ठो भ्राता नाद्यगर्भजः ॥ तथा च तत्रैव ज्ञातातपः—‘अनाद्यगर्भज्येष्ठोपि भ्राता सद्भिर्निर्गद्यते । ऋते सपिण्डनात्तस्य नैव पार्वणमाचरेत्’ ॥ आद्यगर्भे तु पार्वणमेकोद्दिष्टं वेत्यर्थः ॥ मातुस्तु हेमाद्रौ कात्यायनः—‘प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् पुत्रः पित्रे सदा द्विजः । तथैव मातुः कर्तव्यं पार्वणं चान्यदेव वा ’ ॥ यत्तु तेनैवोक्तं—‘सपिण्डीकरणाद्धूर्ध्वं पित्रोरेव हि पार्वणं । पितृव्यभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं सदैव तु’ इति तत्सापत्नमातृपरम् ॥ यत्तु वृद्धपराशरः—‘अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रो भ्रातृजो भवेत् ॥ स एवास्य तु कुर्वीत पिण्डदानादिकां क्रियाम् ॥ पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु । पितृस्थाने तु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदुच्चरेत्’ इति । तत्पितृवद्देशाचारवद्वचवस्थितमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ श्राद्धदीपकलिकायां चतुर्विंशतिमते तु—‘पितृव्यभ्रातृमातृणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत् । एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दंपत्योः पार्वणं मिथः ॥ अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातृश्चैवाग्रजन्मनः ॥ मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद्भवेत्’ इत्युक्तं तत्पत्न्याः कर्तृत्वेपि पार्वणमेव ॥ ‘सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभ्रातृणाममन्त्रकम् । सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च’ इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ ‘ततः पत्न्यपि कुर्वीत सापिण्ड्यं पार्वणं तथा’ इति सुमन्तूक्तेश्चेति निर्णयामृते उक्तम् ॥ अन्ये त्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः ॥ अत एव ‘भर्तुः श्राद्धं तु या नारी मोहात्पार्वणमाचरेत् । न तेन तृप्यते भर्ता कृत्वा तु नरकं व्रजेत्’ इति वचनं क्षयाहे पाक्षिकैकोद्दिष्टप्रशंसार्थं न पार्वणनिषेधार्थमित्युक्तं त्रिस्थलीसितौ भट्टचरणैः ॥ ‘स्वभर्तृप्रभृतिभ्यः’ इत्यने-



न विरोधाच्च ॥ अपुत्राणां चाह हेमाद्रावापस्तम्बः—‘अपुत्रा ये मृताः के-  
चित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये । तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥  
मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारीभ्य एव च ॥ दद्याद्वै मासिकं श्राद्धं सांवत्सर-  
मतोन्यथा ’ ॥ पारिजाते च अन्यथापार्वणमित्युक्त्वा सर्वत्र पार्वणमित्यु-  
क्तम् । एकोद्दिष्टवाक्यानि तु तीर्थमहालयपराणीत्युक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये  
वृद्धगार्ग्यः—‘ मातुः सहोदरा या च पितुः सहभवा च या ॥ तयोश्च नैव  
कुर्वीत पार्वणं पिण्डनादते ’ ॥ प्रचेताः—‘सपिण्डीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं  
विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव च’ ॥ अपत्नीनां ब्रह्मचार्या-  
दीनाम् ॥ मार्कण्डेयपुराणे—‘प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ॥  
मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् ’ ॥ नृणामिति दृष्टान्ताद्भोविप्रहत-  
पाखण्ड्यादीनां सपिण्डनाभावेपि सांवत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः ॥  
अत्रिवृद्धवसिष्ठौ—‘सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । भ्रात्रे भगिन्यै  
पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥ पितृव्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्’ ॥  
यत्तु जातूकर्ण्यः—‘पितृव्यभ्रातृमातृणामपुत्राणां तथैव च । मातामहस्यासु-  
तस्य श्राद्धादि पितृवद्भवेत्’ इति, तदावश्यकत्वार्थं नतु पार्वणार्थमिति हेमा-  
द्विः ॥ युक्तं त्वेवम् ॥ ‘मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः । तेषां  
तु पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः’ इति पुलस्त्योक्तेर्मातामहस्य पार्वणमेव ॥  
तत्साहचर्यात् पितृव्यादौ तथा ॥ ‘पितृव्यभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं च पार्वणम्’  
इति क्षयाहोक्तोपक्रमे पुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः ॥ केचित्त्वापस्तम्बादिवाक्या-  
नि—‘व्युक्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता’ इत्यस्य पितृव्यादिपरत्वा-  
दकृतसपिण्डनपितृव्यादिपराणीत्याहुः ॥ माता सपत्नमाता ॥ एकोद्दिष्टं तु क-  
निष्ठपरमिति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् ॥ विशेषस्त्वधिकारिनिर्णये प्रागुक्तः ॥  
केचित्पुत्रान्तराभावेपि पितामहवार्षिकमप्यावश्यकम् ॥ ‘पुत्राभावे च तत्  
पुत्राः पत्नी माता तथा पिता । वित्ताभावेपि सच्छिष्यः कुर्यात्तस्योर्ध्वदेहि-  
कम्’ इति मार्कण्डेयपुराणादित्याहुस्तन्न ॥ ‘पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं



श्राद्धषोडशम्' इतिकातीये विशेषोक्तेः ॥ अथ क्षयाहद्वैधे निर्णयः ॥ तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने कार्यम् ॥ मध्याह्नश्च पञ्चधाविभक्तदिनतृतीयभाग इति माधवः ॥ 'आमश्राद्धं तु पूर्वाह्ने एकोद्दिष्टं तु मध्यमे। पार्वणं चापराह्णं तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति हारीतोक्तौ प्रातःशब्दसाहचर्यात् ॥ तत्रापि कुतुपादिषु मुहूर्तद्वितये ज्ञेयं ॥ 'प्रारभ्य कुरुते श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लंघयेत्' इति गौतमोक्तेरेतत्परत्वात् ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ मैथिलाः श्राद्धकौमुदी चैवम् ॥ अन्यथा—'ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् । मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते' इत्यादिविरोधात् ॥ दीपिकापि—'एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् कुतुपे' इति ॥ माधवीये व्यासोपि—'कुतुपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान्' ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये प्येवम् ॥ तेन कुतुपादिरौहिणान्तो मुख्यः कालः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ समव्याप्तौ च पूर्वा ॥ विषमव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः ॥ अव्याप्तौ पूर्व्व ॥ परविद्धाया निषेधात् सा च पूर्वदिने रौहिणलंघनापत्तेः परैवेति गौडाः ॥ शुक्लशुक्लवशात्स्वर्वदर्पाद्यैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये ॥ तत्र ॥ परविद्धानिषेधप्राबल्यात् अत्र मूलं कालमाधवीये ज्ञेयम् ॥ पार्वणं त्वपराह्णे कार्यं पूर्वोक्तवचनात् ॥ 'मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् । अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धगौतमोक्तेश्च ॥ पूर्वद्युरेव परेशुरेव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पशेऽशतः समव्याप्तौ वा पूर्व्व ॥ विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या ॥ 'द्वयपराह्णव्यापिनी स्यादाब्दिकस्य यदा तिथिः ॥ महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः' इति मरीचिस्मृतेः ॥ 'दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् ॥ पूर्वविद्धामकुर्वाणो नरकं प्रति

१—यस्तु—'अपराह्णः पितृणाम्' इत्यपराह्णः, यश्च 'पितृण्यं वास्तमिते रवौ' इति सायाह्नः योपि च 'दैवकार्ये तिथिर्ज्ञेया यस्यामभ्युदितो रविः । पितृकार्ये तिथिर्ज्ञेया यस्यामस्तमितो रविः' इति वृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरस्तमयः, स सर्वापि 'एकोद्दिष्टं तु मध्यतः' इति प्रतिपदोक्तेन मध्याह्नेवापोच्यते इति भावः ॥ इति टीका ॥



पद्यते' इत्यपराकै नारदोक्तेः ॥ 'द्वयहेप्यव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य यदा तिथिः । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदि' इति सुमन्तूक्तेः ॥ 'पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डानित्याङ्गिरसभाषितम्' इति हेमाद्रौ पाठः ॥ तत्रैव वृद्ध-  
मनुः—'न द्वयहव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य च या तिथिः । पूर्वविद्धैव क-  
र्तव्या त्रिमुहूर्ता च या भवेत्' ॥ मदनरत्नेप्येवम् । यत्तु कार्ष्णाजिनि-  
व्यासौ—'अन्होस्तमयवेलायां कलामात्रा यदा तिथिः ॥ सैव प्रत्याब्दिके ज्ञेया नापरा पुत्रहानिदा' इति त्रिमुहूर्तस्तुतिः ॥ पूर्वद्युः सायं त्रिमुहूर्ताभावे तु परैव ॥ 'त्रिमुहूर्ता न चेत् ग्राह्या परैव कुतुपे हि सा' इति कालादर्शो गोभिलोक्तेः ॥ कालादर्शोपि—'प्रत्याब्दिकेप्येवमेव तिथिर्याह्यापराह्निकी । उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथात्वेपि सा यदि त्रिमुहूर्ता भवेत्सायं सर्वेष्टोयं विनिर्णयः' ॥ अन्यत्रापि—'सायंतन्यपरत्र चेन्मृततिथिः सैवाब्दिके मासिके ग्राह्या सा व्यपराह्नयोर्द्यदि तदा यत्राधिका सा मता । तुल्या चेदुभयापराह्नसमये पूर्वा न चेत्तु द्वये पूर्वैव त्रिमुहूर्तगास्तसमये नो चेत्परैवोचिता' ॥ माधवपृथ्वीचन्द्रौ तु—'दिनद्वयेपराह्नव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये पूर्वा वृद्धौ परा' ॥ 'स्वर्वदपौ परौ पूज्यौ' इत्युक्तेः ॥ 'अपराह्नद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः । क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा' इति बौधायनोक्तेः ॥ 'क्षयाहस्य तिथिर्या तु अपराह्नद्वये यदि । पूर्वाक्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा' इति बृहन्नारदीयाच्चेत्याहतुः ॥ वृद्धिक्षयौ चात्र परतिथेर्नतु ग्राह्यतिथेः ॥ तस्याः क्षयेपराह्नद्वयव्याप्तेरसंभवात् ॥ तदाह माधवः—'न ग्राह्यतिथिगौ वृद्धिक्षयावूर्ध्वतिथेस्तु तौ' इति ॥ यत्तु पृथ्वीचन्द्रः—'पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्नास्तमययोगिनी तिथिरुक्ता तत्रापराह्नव्यापिनी ज्ञेया । 'सायान्हस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत्' इति मात्स्यादौ

१—इदं च त्रेधा—पूर्वेद्युरपराह्नस्य द्वितीयघटिकामारभ्य प्रवृत्ता परेद्युस्तिथिवृद्ध्या पञ्च घटिकैका, पूर्वेद्युश्चरमघटिकामारभ्य प्रवृत्ता परेद्युस्तिथिक्षयेणैकघटिका द्वितीया, पूर्वापराह्नस्य चरमघटित्रये सती परापराह्नस्यापिघटीत्रये सती चेति तृतीया ॥ इति टीका ॥



सायाहनिषेधात् । यच्च 'त्रिमुहूर्तादिग्रहणं, तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्त-  
परम्' इत्याह ॥ तद्धेमाद्रिमदनरत्नकालादर्शादिग्रन्थविरोधाल्लक्षणापत्ते-  
श्च चिन्त्यम् ॥ तस्मात्पूर्वोक्तमेव साधु ॥ यदा विघ्नवशादिने सांव-  
त्सरश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यम् ॥ 'मृताहं समतिक्रम्य चण्डा-  
लेष्वभिजायते' इति मरीचिना मृताहातिक्रमे दोषोक्तेः ॥ 'नच नक्तं श्राद्धं  
कुर्वीतारब्धे वा भोजनसमापनम्' इत्यापस्तम्बेनगौणकालोक्तेश्चेतिमाधवः ॥  
आरब्धे श्राद्धे विघ्नवशाद्रात्रिभागे पाते भोजनसमाप्त्यन्ते रात्रौ कार्यं ॥ शेष-  
समाप्तिः परदिन एवेति हरदत्तः ॥ ग्रहणदिने वार्षिकप्राप्तौ तद्दिन एवान्ते-  
नामेन हेम्ना वा कुर्यात् ॥ नोत्तरदिने इत्युक्तं प्राक्ग्रहणनिर्णये ॥ तच्च प्र-  
थमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यम् ॥ अन्यथा न ॥ 'प्रत्यब्दं द्वादशे मासि  
कार्या पिण्डक्रिया सुतैः ॥ क्वचित् त्रयोदशेपि स्यादायं मुक्ता तु वत्सरम्'  
इति लघुहारीतोक्तेः ॥ इदमन्त्याधिकमासपरं ॥ द्वादशे त्रयोदशे वातीत-  
इत्यर्थः ॥ तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेधिके एवाब्दिकं  
कार्यम् ॥ यत्राधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्यद्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे  
शुद्धे एव प्रथमाब्दिकमिति माधवीये ॥ हेमाद्रौ चैवम् ॥ द्वितीयाब्दिकं तु  
शुद्धमासे एव नाधिके, नाप्युभयोः ॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः  
स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्ध एवेति प्रागुक्तम् ॥ दर्शे वार्षिकं चेत्तदा पूर्वं  
वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञो दर्शश्राद्धं चेति निर्णयदीपे क्रम उक्तः ॥  
स्मृतिसारेपि—'दर्शे क्षयाहे संप्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । आदौ क्ष-  
याहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते' इति ॥ युक्तं त्वेवम् ॥ तद्वचने मूलाभा-  
वात् ॥ 'पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः' इति दर्शश्राद्धेपिण्डपितृय-  
ज्ञानन्तर्यात्तस्याब्दिकेप्यतिदेशात्प्राप्तेः ॥ 'पितृयज्ञानन्तरं वार्षिकं ततो  
दर्शश्राद्धम्' इति व्यतिषङ्गस्तु न भवत्येव ॥ तस्यार्थिकत्वात् कालादर्शेपि  
'निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्' इति ॥ सर्वान्प्रत्यैकरूप्याभा-  
वात्क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम् ॥ देवजानियेप्येवम् ॥ एवं मासिकादिष्वपि  
ज्ञेयम् ॥ 'प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्सतान्यपि' इतिसर्वातिदेशात् ॥



मृताहे वृषोत्सर्ग उक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे 'अयनद्वितये चैव मृताहे बान्ध-  
वस्य च । उत्सृजेन्नीलवृषभं कौमुद्याः समुपागमे' ॥ कौमुदी कार्तिकी ॥

अथ शुद्धिश्राद्धम् ॥ दिवोदासीये--'सपिण्डीकरणादूर्ध्व-  
शुद्धिश्राद्ध-  
निर्णयः यावदब्दत्रयं भवेत् । तावदेव न भोक्तव्यं क्षयेहनि कदाचन ॥

वर्षातसपिण्डनेप्येतत्तुल्यम् ॥ 'मृताहनि तु संप्राप्तेयावदब्दच-  
तुष्टयम् । बहिः श्राद्धं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनम् ॥ प्रथमेस्थानि  
मज्जा च द्वितीये मांसभक्षणम् । तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थकम्'  
इतिश्राद्धकारिकोक्तेः ॥ शुद्धं किंचिदिति ज्ञेयम् ॥ स्मृत्यन्तरे--'सप्त-  
त्रिंशच्च यो मासान् श्राद्धे भुंक्ते तमोहतः । स पंक्तिदूषितः पापः प्रेताशी च  
भवेत्तु सः' ॥ तत्र प्रथमेब्दे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वेह्नि सपिण्ड-  
नमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कुर्यात् इति स्मृत्यर्थसारे उक्त-  
म् ॥ हेमाद्रिस्तु मृताहे सपिण्डीकरणेनैव वार्षिकसिद्धिः ॥ 'पूर्णे संव-  
त्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः । तनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते'

इति वचनादित्याह ॥ इदमेव युक्तम् ॥ अथ क्षयाहाज्ञाने  
क्षयाहाज्ञाने  
निर्णयः मरीचिः--'श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेहनि । एकादश्यां  
तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः' इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपिबृह-

स्पतिः--'न ज्ञायते मृताहश्चेत् प्रमीते प्रोषिते सति ॥ मासश्चेत्प्रतिविज्ञात-  
स्तद्वर्षे स्यादथाब्दिकं ॥ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः । प्रस्था-  
नमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा' ॥ मदनरत्ने भविष्ये--'मृताहं यो  
न जानाति मानवो विनतात्मज । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं सांवत्सरं सदा ॥  
दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः । मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वात-  
द्दिनं भवेत्' ॥ निर्णयामृते तु--'यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव  
तु । तदा चाषाढके मासि माघेवा तद्दिनं भवेत्' इति बृहस्पतिस्मृतेराषाढो-  
प्युक्तः ॥ कालादर्शेपि--'मासाज्ञाने दिनज्ञाने कार्यमाषाष्टमाघयोः' इत्यु-  
क्तम् ॥ हेमाद्रौ प्रभासखण्डे--'मृताहं यो न जानाति मासं वापि कथंच-



न । तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं माधेय मार्गके ’ ॥ भविष्ये—‘ मृतवार्ताश्रु-  
 तेर्ग्राह्यौ तौ पूर्वोक्तक्रमेण तु’ । पूर्वोक्तेति प्रस्थानदिनाज्ञाने मासज्ञाने चतुर्दशे  
 मासाज्ञाने दिनज्ञाने च मार्गादाविति वच्छ्रवणदिनेपि ज्ञेयमित्यर्थः ॥ श्रवण-  
 दिने मासाज्ञाने माघमार्गदर्शे कार्यं पूर्वोक्तप्रभासखण्डात् ॥ अतोत्र लोपइति  
 शूलपाण्युक्तं हेयम् ॥ तिथितत्त्वे यमः—‘गतस्य न भवेद्वार्ता यावत्द्वादश  
 वार्षिकी । प्रेतावधारणं तस्य कर्तव्यं सुतबान्धवैः ॥ यन्मासि यदहर्ह्यतस्त-  
 न्मासि तदहःक्रिया । दिनाज्ञानं कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः’ ॥ अथ  
 श्राद्धविघ्ने निर्णयः ॥ तत्र विप्रस्य निमन्त्रणोत्तरं सूतके मृतके चाशौचा-  
 भावः ॥ ‘निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि । निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य  
 स्वाध्यायादिरतस्य च ॥ देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्’ इति  
 ब्राह्मोक्तेः ॥ कर्तुस्तु विष्णुराह—‘व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे ॥  
 आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्’ ॥ श्राद्धे प्रारम्भस्तेनैवोक्तः ॥  
 ‘प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पा-  
 कपरिक्रिया’ ॥ इति ॥ माधवीये ब्राह्मेपि—‘श्राद्धादौ पितृयज्ञे च कन्या-  
 दाने च नो भवेत्’ । मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे-सद्यःशौचं प्रकृत्य—  
 ‘यज्ञे सम्भृतसम्भारे विवाहे श्राद्धकर्मणि’ इति ॥ तिथितत्त्वादिगौडयन्थास्तु  
 निमन्त्रणोत्तरं कर्तुर्भोक्तुश्च नाशौचम् ॥ ‘निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्या-  
 दिति स्मृतिः’ इति विष्णूक्तेः ॥ यत्तु ‘श्राद्धे पाकपरिक्रिया’ इति, तद्वर्श-  
 श्राद्धविषयमित्याहुः ॥ दातृगृहे मरणादौ ब्राह्मे उक्तं ‘भोजनाद्धे तु संभुक्ते  
 विप्रैर्दातुर्विषद्यते’ ॥ गृहे इति शेषः ॥ ‘यदा कश्चित्तदोच्छिष्टं शेषं त्यक्त्वा स-  
 माहितः । आचम्य परकीयेन जलेन शुचयो द्विजाः’ इति ॥ अस्य श्राद्ध-  
 विषयत्वं हेमाद्रिणोक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ मम तु प्रतिभातीदं  
 विवाहादिविषयम् ॥ नतु श्राद्धविषयं तत्पदाभावात् ॥ ‘विवाहेत्सर्वय-  
 ज्ञेषु’ इत्युपक्रम्य—‘भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदका  
 चान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः’ इति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यत्वात् ॥ ‘निमन्त्र-



तेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि' इति पूर्वोक्तविरोधाच्च ॥ श्राद्धे तु यद्यपि  
 विष्णुना पाकोत्तरमाशौचाभाव उक्तः, तथापि कर्तुरेव सः, भोक्तुर्दोषोत्स्येव  
 'अपि दातृगृहीत्रोश्च सूतके मृतके तथा । अविज्ञाने न दोषः स्याच्छ्राद्धा-  
 दिषु कथंचन ॥ विज्ञाने भोक्तुरेव स्यात् प्रायश्चित्तादिकं क्रमात्' इति माध-  
 वीयब्राह्मोक्तेः ॥ आदिशब्देनाशौचमुच्यते ॥ तच्चाह विष्णुः—'ब्राह्मणादी-  
 नामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचम् ॥ यावत्तेषामाशौच-  
 व्यपगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात्' इति ॥ यत्तु—'देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं वि-  
 यते क्वचित्' इति ब्राह्मं, तत्तु श्राद्धकालीनस्य निषेधकम् ॥ न तदुत्तरका-  
 लीनस्य ॥ शुद्धिदीपस्तु निमन्त्रितेष्वित्यामश्राद्धपरम्, भोजनार्थेष्वित्यादि  
 त्वन्नश्राद्धपरमित्याह ॥ प्रायश्चित्तं त्वाह मार्कण्डेयः—'भुक्त्वा तु ब्राह्मणा-  
 शौचं चरेत्सांतपनं द्विजः' ॥ एतत्कामतः ॥ अभ्यासे शुद्धः—'ब्राह्मणस्य  
 तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत्' इति ॥ अज्ञानात्तु छागलेयः—'एकाहं  
 च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम् । ततः शुचिर्भवेद्विप्रः पञ्चगव्यं पिवेन्नरः' इति  
 वर्णक्रमेणेदम् । अभ्यासे तु द्वैगुण्यमित्यादि मिताक्षरामाधवीयादौ ज्ञेयम् ॥  
 मिताक्षरामाधवादौ तु श्राद्धे कर्तुर्भोक्तुश्च सर्वथा दोषाभाव उक्तः ॥ आशौ-  
 चमध्ये श्राद्धदिनप्राप्तौ तु माधवीये कालादर्शं च ऋष्यशृङ्गः—'देयेपितृणां  
 श्राद्धे तु आशौचं जायते यदा । आशौचे तु व्यतिक्रान्ते तेभ्यः श्राद्धं प्रदी-  
 यते' ॥ श्राद्धचिन्तामणौ ज्योतिषे—'प्रतिसांवत्सरं श्राद्धमाशौचात्पतितं  
 च यत् । मलमासेपि तत् कार्यमिति भागुरिभाषितम्' ॥ आशौचान्त्यदिन-  
 त्वेन निमित्तत्वादित्यर्थः ॥ एतन्मासिकादिपरं न दार्शिकादौ ॥ अत एव सुद-  
 र्शनभाष्ये अपरपक्षे पित्र्याणीति नियमात्तृणपक्षश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तमेव  
 नतुगौणकाले करणं तच्चोपवासः—'वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।  
 स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्' इति मनूक्तेरित्युक्तम् ॥ आशौचे  
 तु प्रायश्चित्तमपि न ॥ मुख्यकाले अनाधिकारात् ॥ आशौचान्ते सम्भवे तु  
 व्यासः—'श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने त्वन्तरामृतसूतके । आमावास्यांप्रकुर्याद्वैशुद्धा-



वेके मनीषिणः '॥ हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतेपि—'मासिके चाब्दिके त्वह्नि संप्राप्ते मृतसूतके । वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे चापि विचक्षणाः' ॥ गोभिलः 'देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके । आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेन्दुक्षये तथा' मरीचिः—'श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने ऽप्यविज्ञाते मृतेहनि । एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः' ॥ विशेषतः इत्युक्तेः शुक्लैकादश्यामपि ॥ आशौचेतरविघ्ने एतदिति माधवपृथ्वीचन्द्रौ ॥ यत्त्वत्रिः—'तदहश्चेत् प्रदुष्येत केनचित्सूतकादिना । सूतकानन्तरं कुर्यात्पुनस्तदहरेव च' इति, तत्पूर्वकालाभावे ज्ञेयम् ॥ एतदाब्दिकेतरश्राद्धपरम् ॥ यच्च देवलः—'एकोद्दिष्टे तु संप्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । मासेन्यस्मिन्स्तिथौ तस्मिन्श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः' इति ॥ तदपि मासिकपरमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च ॥ इदमपि पूर्वकालासंभवे व्याध्यादौ विस्मरणे चैवं ज्ञेयम् ॥ अथ भार्यारजोदर्शने ॥ तत्र दार्शिकमानेन कार्यम् ॥ 'श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते' इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ॥ व्याघ्रपादोपि—'आर्तवे देशकालानां विष्टवे समुपस्थिते । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रः कुर्यात्सदैव हि' इति ॥ दोषिकापि—'दर्शे तु भार्यार्तवेप्यामश्राद्धविधिं प्रवासिविधुराद्याश्वाचरेयुर्द्विजाः' ॥ वस्तुतस्तु 'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः ॥ पाककर्त्रन्तरसत्त्वेऽन्नेनान्यथामेनेत्युक्तम् ॥ 'मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला' इति कालिकायां वचनाच्च ॥ कालादर्शे तु स्त्रिया रजोदर्शने दर्शश्राद्धं पञ्चमेहनीति पक्षान्तरमुक्तम् ॥ पारिजातेप्येवम् ॥ एवं महालययुगादावपि ॥ आब्दिकं तु रजोदर्शनेपि तद्दिने एव कार्यम् ॥ 'पुष्पवत्स्वपि दारेषु विदेशस्थोप्यनग्निकः ॥ अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धिम्ना वामेन न क्वचित्' इति

१-वर्षान्तसपिण्डनपक्षादौ मासिकानामेकोद्दिष्टविधिर्नैव कर्तव्यत्वात् । इति टीका ॥

२-तुना दर्शादिश्राद्धस्य नाब्दिकादिश्राद्धतुल्यता आशौचमध्ये दर्शपाते सर्वसंमततल्लोपानुपपत्तेः तदनन्तरं सुकरत्वादित्यरुचिः सूचिता ॥ इति टीका ॥



माधवीये लौगाक्षिस्मृतेः ॥ मरीचिरपि—‘अनधिकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत न तत्कुर्यान्मृतेहनि’ ॥ काष्ण्णजिनिः—‘आपन्नोप्याब्दिकं नैव कुर्यादामेन कुत्रचित् । अन्नेन तदमायां वा कृष्णे वा हरिवासरे ’ प्रयोगपारिजाते—‘रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहं यः परित्यजेत् । स वै नरकमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ मासिकानि सपिण्डं च अमावास्या तथाब्दिकम् । अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला ’ ॥ देवयान्निकनिबन्धेषि—‘भर्तुः श्राद्धं पञ्चमेन्हि कुर्याद्भार्या रजस्वला ॥ पुत्रः पित्रोः प्रकुर्वीत मृताहनि शुचिर्यतः’ ॥ कालादर्शेपि—रजस्वलाङ्गनोऽनग्निर्विदेशस्थोथवाब्दिके ॥ दर्शादाविव नामेन त्वन्नेन श्राद्धमाचरेत् ’ ॥ अन्यत्रापि—‘विदेशको वा विगताग्निको वा रजस्वलायामपि धर्मपत्न्याम् । श्राद्धं मृताहे विदधीत पाकैर्नामेन हेम्ना नतु पञ्चमेहि’ ॥ एवं मासिकेपि ॥ यत्तु मरीचिः—‘आब्दिके समनुप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला । पञ्चमेऽहनि तच्छ्राद्धं न तत्कुर्यान्मृतेहनि’ ॥ माधवीये—‘श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेहनि’ इत्युत्तराद्धं, तदपुत्रकर्तृकश्राद्धविषयम् ॥ ‘अषुत्रा तु यदा भार्या संप्राप्ते भर्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत्सा तु कुर्यात्तत्पञ्चमेहनि’ इति श्लोकगौतमोक्तेः ॥ ‘दैवे कर्मणि पित्र्ये वा पञ्चमेहनि शुद्ध्यति’ इति प्रभासखण्डाच्च ॥ नन्वशुचित्वादेव तत्र पञ्चमेहन्यर्थात् श्राद्धं प्राप्तमिति वचनं व्यर्थम् ॥ मैवम् ॥ ‘गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारी वाप्यरौगिणी । यदा शुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्’ इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः ॥ ‘अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च श्राद्धमृत्विजा वा कारयेयुः ॥ ‘स्वयं वाऽमंत्रकं कुर्युः’ इति स्मृत्यर्थसाराचान्यद्वारा करणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य त्वदुक्तदिशा आशौचानन्तरं श्राद्धकर्तव्यताऽवेदकवाक्यवैयर्थ्याच्च अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नी पञ्चमेहनिइति युक्तं ॥ यत्तु—‘सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने’ इति, तद्रजोनिवृत्तिपरमिति हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबंधसिद्धांतः ॥ हेमाद्रिस्तु श्राद्धादौ स्त्रिया सहैवाधिकारात्तस्यां रजोदुष्टायां तन्निवृ-



त्तेरेकभार्येण पंचमेहनि कार्यं प्रागुक्तमरीच्युक्तेः; भार्यान्तरसत्त्वे तु पुष्पव-  
 त्स्वपीति वचनात्तद्दिने एवेत्याह ॥ दीपिकापि- 'भार्यतौ सति पञ्चमे च  
 दिवसे स्याद्द्वार्षिकं मासिकं पक्षात्रैर्बहुभार्यकस्त्वधिकृते पत्न्यन्तरे तिष्ठति ॥  
 कुर्यात्तत्तद्वितयं स्वमुख्यदिवसे' इति तच्चिन्त्यम् ॥ सहाधिकारः सहत्वश्रुत्या  
 वा एकफलभाक्त्वेन वा पाककर्तृत्वेन वा ॥ नायः । तदभावात् ।  
 'पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यस्याग्निसाध्यकर्मविषयत्वात् ॥ आब्दि-  
 कस्य च निरग्नेरपि पाकेनैवोक्तेः ॥ स्मार्ताग्निसाध्यत्वानियमात् 'तामपरुध्य'  
 इति पूर्वोक्तवचनासत्त्वाच्च ॥ कथं च भार्यान्तरसत्त्वेधिकारः ॥ 'ज्येष्ठया न  
 विनेतरा' इति नियमात् ॥ ज्येष्ठापरत्वे च तेनैव सिद्धेर्वचनवैयर्थ्यात् ॥  
 न द्वितीयः-- अविभक्तभ्रातृष्वेकस्याऽंशुचित्वेन्यस्याधिकारापत्तेः ॥ न तृती-  
 यः--प्रवासनिर्देशसूतिकारोगिण्यादिष्वप्यकरणापत्तेः ॥ 'आरभेत नवैः पात्रैर-  
 न्नारम्भं च बान्धवैः' इतिदेवलोक्तावामनेपदात्स्वस्य बान्धवानां च पाकक-  
 र्त्तृत्वोक्त्या विरोधाच्च ॥ 'ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी' इति पाञ्चा-  
 दित्तिज्ञात्प्राशस्त्यं भार्यापाकस्योच्यते ॥ न तत्कस्याप्यनिष्टम् ॥ तेनैतद्वच-  
 नं युक्त्यायभावात्पूर्वोक्तवचोविरोधाच्च यत्किञ्चिदेव ॥ यदपि--'श्राद्धीयाह-  
 नि संप्राप्ते यस्य भार्या रजस्वला ॥ श्राद्धं तत्र न कर्तव्यं कर्तव्यं पञ्चमेहनि'  
 इति श्लोकगौतमपाठोन्यथा दर्शितः माधवीये च तद्वशात् पक्षान्तरमुक्तम् ॥  
 तेनापि नाभिप्रेतार्थसिद्धिः यस्य प्रेतस्येत्यर्थात् ॥ तेनात्र हेमाद्रिर्बभामेति  
 बहु वक्तव्येपि नोच्यते ॥ अथान्वारोहणे निर्णयः ॥ लौगा-  
 णनिर्णयः-- 'मृताहनि समासेन पिण्डनिर्वपणं पृथक् ॥ नवश्राद्धं  
 च दम्पत्योरन्वारोहण एव तु' ॥ समासेन तु तन्त्रेण द्विपि-

१--यत्र पत्नी भर्तृचित्यामनारूढा तत्र भर्तुः तस्याश्च तिथिभेदेन मरणे तत्तत्तिथौ तस्य  
 तस्याश्च पृथगेव वार्षिकम् । यदा च तिथ्यैक्यं तदा यद्यप्येकदेशकालकर्तृत्वेनागृह्यमा-  
 णविशेषत्वादेयताभेदेन पृथक् क्रियमाणयोरपि प्रधानयोरङ्गानां च तन्त्रं प्राप्नोति तथापि-  
 'एककाले गतासूनां बहूनाम्' इत्युक्तवाक्यादैवादेकतिथौ मृतानामितरेषांभिव पाकमात्रत-  
 न्त्रतोक्तेः पृथगेव दम्पत्योः श्राद्धं प्राप्नोति तत्र तदभावेन प्रकारविशेषोनेन विधीयते ॥ इतिटीका



तृकश्चाद्धवद्वयोरेकः पिण्डो विप्रश्च ॥ पिण्डशब्दः श्राद्धपरः ॥ नवश्चाद्धं  
 पृथगिति हेमाद्रिपृथ्वीचन्द्रौ ॥ अत्र मृताहनीत्येकत्वात् ॥ दिनभेदे दि-  
 नैक्ये वा मृततिथेरेकत्वे कालैक्यं कर्त्रैक्यं पाकैक्यं च ॥ 'एकचित्य धि-  
 रोहे तु तिथिरेकैव जायते । एकपाकेन पिण्डैक्ये द्वयोर्गृहीत नामनी' इति  
 स्मृत्यन्तराच्च ॥ अन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टैरप्युदाहृतम् 'अन्वारोहे तु नारीणां  
 पत्युश्चैकोदकक्रिया । पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्धिकं तथा ॥ नव-  
 श्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र  
 दीयते' इति ॥ तिथिभेदे तु वार्षिकं पृथगेव ॥ तथा वार्षिके समासविधाना-  
 दन्यत्र सर्वत्र पृथक्ते प्राप्ते नवश्चाद्धमेव पृथगिति परिसंख्ययान्यत्र पृथगुक्ते-  
 ष्वपि वार्षिकषोडशश्राद्धतीर्थसपिण्डान्वष्टक्यादिषु समास एवेति मदन-  
 पारिजातनिर्णयामृतादयः ॥ अतः समासविधिवलात् ज्येष्ठपुत्रस्य क-  
 र्तृत्वे सपत्नमातुरन्वारोहणे तत्पुत्रे सत्यपि तद्धार्षिकादिकमविभक्तः सापत्न-  
 पुत्र एव ज्येष्ठः कुर्यान्नौरसः ॥ वक्ष्यमाणपृथ्वीचन्द्रादिमते तु औरस एव  
 मातुः पृथक्कुर्यात् ॥ एवं बह्वीष्वपि मातृषु ज्ञेयम् । त्रिस्थलीसेतौ पिता-  
 महचरैरप्येवमुक्तम् ॥ यत्तुः गार्ग्यः—'एकचित्यां समारूढौ दंपती निधनं  
 गतौ । पृथक्श्चाद्धं तयोः कुर्यादोदनं च पृथक्पृथक्' ॥ ओदनं पिण्डः । त-  
 न्नवश्चाद्धविषयम् ॥ यत्तु भृगुः—'या समारोहणं कुर्याद्भर्तुश्चित्यां पतिव्रता ।  
 तां मृताहनि संप्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् ॥ प्रत्यब्दं च नवश्चाद्धं युगप-  
 तु समाचरेत्' । तेषां वार्षिकमेकोद्दिष्टमुक्तं तद्विषयम् ॥ 'प्रत्यब्दं च मृता-  
 हनि' इत्यन्वयः ॥ नवश्चाद्धं युगपदिति दर्शे वर्गद्वयवदेकतन्त्रेण पृथगि-  
 त्यर्थमाह हेमाद्रिः ॥ 'एतन्मृततिथेर्भेदविषयम्' इति पृथ्वीचन्द्रनिर्णया-  
 मृताद्याः ॥ देवयाज्ञिकोप्येवम् ॥ पराशरमाधवस्तु—'गार्ग्यभृग्वादिवच-  
 नाल्लौगाक्षिवाक्ये समासेन पाकादितन्त्रैक्येन दर्शे वर्गद्वयवत् पृथक्श्चाद्धं  
 कुर्यात् नवश्चाद्धं च तथा' इत्याह ॥ पृथ्वीचन्द्रचन्द्रिकादयस्तु—'द्वयो-  
 रेकपिण्डदानं लौगाक्षिवचनं चापद्विषयम् ॥ पृथक्पिण्डदानं तु मुख्यः कल्पः'



तदाह बृद्धपराशरः—‘आरुह्य भर्तुश्चितिमङ्गना या प्राप्नोति मृत्युं खलु सत्व-  
युक्ता ॥ एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक्स्वर्गमपेक्ष्य सद्भिः ॥ एक-  
त्वमिच्छन्ति मतिप्रहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्योः ॥ ते स्वर्गमार्गं  
विनिहृत्य कुर्युःस्त्रीसत्वघातान्नरकाधिवासम् ॥ भर्त्रा सह मृता या तु नाक-  
लोकमभीप्सती । सार्हेच्छ्राद्धं पृथक्पिण्डान् नैकत्वं तु स्मृतं तयोः ॥ पृथ-  
गेव हि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम् । यानि श्राद्धानि सर्वाणि तान्युक्तानि  
पृथक्पृथक्’ ॥ विश्वादशैपि—‘मातुर्गयाष्टकावृद्धिर्मृताहेषु महालये । श्राद्धकु-  
र्यात्पृथग्दैवं तन्त्रं वानुगतावपि ॥ एकचित्यां समारुह्य मृतयोरेकवर्हिषि ।  
पित्रोःपिण्डान्पृथग्दद्यात्पिण्डंत्वापसुतत्सुतः’ इत्याग्निस्मृतेरित्याहुः ॥ यत्तु  
षट्त्रिंशन्मते—‘एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके । न पृथक्पि-  
ण्डदानं तु तस्मात्पत्नीषु विद्यते’ इति, तद्वशादिपरम् ॥ चन्द्रप्रकाशेपि--  
‘एकचित्यां समारूढौ दंपती प्रमितौ यदि । पृथक्श्राद्धं प्रकुर्वीत पत्युरेव  
क्षयेहनि ॥ मृतानामपि भृत्यानां भार्याणां पतिना सह । पूर्वकस्य मृतस्यादौ  
द्वितीयस्य ततः पुनः ॥ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं स्वामिक्षयेहनि ।  
तृतीयस्य ततः कुर्यात्संनिपातेष्वयं क्रमः’ इति ॥ सहगमने सर्वत्र श्राद्धार्थ-  
मेकपाक इत्याह मदनरत्ने प्रचेताः—‘एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती  
यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृथक्पिण्डं समावपेत्’ ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येव  
म् ॥ अत्र भर्तुराशौचमध्येऽन्यदिने स्त्रीमरणे पतिमरणदिनगणनयाशौच-  
पिण्डदानैकादशाहादि कार्यम्, नात्र पक्षिणीवृद्धिः ‘मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी  
चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्ध्यति ॥ पुत्रोन्यो वा-  
ग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापये-  
त्’ इति षडशीतिमतात् ॥ ‘यदा नारी विशेषाग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया ।  
तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेणहि’ इति लघुहारीतोक्तेश्च ॥ भर्त्रा-  
शौचोत्तरमन्वारोहणे तु त्र्यहमाशौचं ॥ ‘ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्म-  
घातिनी । त्र्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रतः’ इति ब्राह्मोक्तेरिति



पृथ्वीचन्द्रापराकौ ॥ एतदन्वारोहणे एव नत्वेकचितौ ॥ ऋग्वेदवादः—  
 'इमा नारीरविधवाः' इत्यादिः ॥ एतत्सवर्णापरमित्यन्ये ॥ स्मार्तगौडास्तु—  
 'देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्, इत्युपक्रम्य ब्राह्मे—'व्यहाशौचे  
 तु निर्वृत्ते इत्युक्ते भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे व्यहःसहगमने पुतूर्ण दशाहादि  
 पिण्डास्तु दशापि सहैव' । तथा च जनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासः—  
 'संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं ज्ञेयं क्रमशः  
 पतिपिण्डवत् । अन्विता पिण्डदानं तु यथा भर्तुर्दिनेदिने । तदर्थारोहिणीयस्मा-  
 त्स्मात्सानात्मघातिनी' इति विष्णूक्तेश्च । पृथक्चितौ तु भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्व  
 वा सत्यां व्यहेण दशपिण्डाः । 'अन्वितायाः प्रदातव्या दशपिण्डाद्व्यहेण तु ।  
 स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते' । इति तत्रैव पैठीनसिस्मृतेः ॥  
 भर्त्राशौचोत्तरं मृतौ तु चतुर्थेऽह्नि श्राद्धम् । शूलपाणिना त्विदमग्निपुरा-  
 णीयत्वेनोक्तम् 'युद्धहतस्य सद्यः शौचे त्वन्वारोहणे त्रिरात्रम्' । एकचितौ  
 तु संस्थितपतिम् 'इति प्रागुक्तव्यासोक्तेः सद्यः शौचमित्याहुः ॥ अन्यसपि-  
 ण्डाशौचमध्ये विदेशमृतान्वारोहणं त्वनाशक्यमेव ॥ शुचिताया अङ्गत्वा-  
 त् ॥ अन्ये तु रजोवत्याः सूतिकायाश्च गमननिषेधादितराशौचस्यानिषेधः ॥  
 अन्यथा प्रत्यक्षभर्तृमरणे का गतिरित्याहुः ॥ तन्मूलवचनं विना चिन्त्य-  
 मेव ॥ स्मृत्यर्थसारेपि—'सहगमने सर्वत्र श्राद्धपिण्डादौ पाकैक्यं कालैक्यं  
 कत्रैक्यं चेति' ॥ या तु पतिमुद्दिश्याऽन्यकालेऽन्यतिथावन्वारूढा तस्याः  
 श्राद्धं तत्क्षयतिथौ कार्यम् । न भर्तृतिथौ ॥ 'पारणे मरणे नृणां तिथिस्ता-  
 त्कालिकी स्मृता' इति स्कान्दात् ॥ 'तिथिरेकैव जायते' इत्यादिवचना-  
 च्चेति मदनरत्नपारिजातपृथ्वीचन्द्रादयः ॥ अन्ये तु तस्याः पतिमरणेन  
 मृतप्रायत्वात् 'सहाग्रतः पृष्ठतो वा तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं  
 प्रदातव्यं पृथक् पत्युः क्षयेहनि' इति स्मृत्यन्तरात् ॥ अग्रतः पृष्ठतो वापि  
 तद्भक्त्या म्रियते यदि । तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव क्षयेहनि' इति पुरा-  
 णसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेत्याहुः ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ



स्मृत्यन्तरे—‘माता मङ्गलसूत्रेण म्रियते यदि तद्दिने । उद्दिश्य विप्रपङ्क्तौ तां

भोजयेच्च सुवासिनीम् ’ ॥ अथ श्राद्धसंपाते निर्णयः ॥

श्राद्धसंपाते  
निर्णयः

अत्र पित्रोर्मृततिथ्येकत्वे मरणक्रमेण दर्शे वर्गद्वयवत्तन्त्रेण

श्राद्धं कुर्यात् ॥ पौर्वापर्याज्ञाने तु पितृपूर्वकं कुर्यादिति हेमाद्रिः

माधवादयस्तु—‘पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेपि वा । पितृपूर्वं सुतः  
कुर्यादित्यत्रासति योगतः’ । इति काष्णार्जिनिस्मृतेः ॥ सर्वत्र पितृपूर्वभिन्न-  
प्रयोगमाहुः ॥ पार्वणे कोद्दिष्टयोः संपाते माधवीये जावालिः—‘यद्येकत्र भ-  
वेद्यातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम् । पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत्’ ॥

युगपन्मरणे  
निर्णयः

गृहदाहादिना युगपन्मरणे भृगुः—‘एककाले गतासूनां बहू-

नामथवा द्वयोः । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृ-

थक् ॥ पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य

ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः’ ॥ ऋष्यशृङ्गः—‘भवेद्यदि सपिण्डानां युग-

पन्मरणं तदा । सम्बन्धासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत्’ ॥ गारुडे—

‘एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुतेत्र हि । विकिरं त्वेकतः कुर्यात् पिण्डा-

नूदयात्पृथक्पृथक्’ ॥ अत्रानुगमने च दाहसपिण्डनादौ विशेषं वक्ष्यामः ॥

अत्रिः—‘बहूनामथवा द्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा

पृथक्श्राद्धानि कारयेत्’ ॥ पुलस्त्यः—‘महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्ष-

येहनि । तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात् पृथक्पृथक् ॥ इदं च पृथ-

क्पाकेन भिन्नश्राद्धाशक्तौ ॥ पृथक्पाकेन सम्बन्धासत्त्या श्राद्धभेदस्तु मुख्य

पक्षः ॥ ‘एकत्रैव दिने श्राद्धं द्वयं प्राप्तं यदा तदा । चरेदेव पुरा वर्षात्पितुर्मातुश्च

यत्सुतः ॥ एकस्मिन्नुयः करोत्यह्नि द्वयोः श्राद्धं यदा द्विजः । तदा पूर्वमृत-

स्यादौ कृत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥ पश्चात्पश्चान्मृतस्यैव पृथक्पाकैः समा-

चरेत् । नैकस्मिन् दिवसे श्राद्धं त्रयाणां कुत्रचित् द्विजः । एकः कुर्यात्तथा

१-चिरंतने । २-अन्यत्र मातापितृभिन्ने । इति टीका ॥ ३ यद्यप्येकोद्दिष्टकालात्पार्व-  
णकालः परः, तथाप्येतद्वचनादेवैकोद्दिष्टं परं कार्यमित्यर्थः ॥ इति टीका ॥



प्राप्ते अन्यो भ्राता समाचरेत् ॥ भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेहि समाचरेत् ।  
 अन्यथा श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धसंकरकृद्भवेत् । इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वी  
 चन्द्रः ॥ कात्यायनः ॥ 'द्वे बहूनि निमित्तानि जायेरन्नेकवासरे ॥ नैमित्ति-  
 कानि कार्याणि निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ' ॥ जाबालिः—'श्राद्धं कृत्वा तु  
 तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने । नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तानुक्रमोदयम् ' ॥  
 कालादर्श—'नित्यदार्शिकयोश्चोदकुम्भं मासिकयोरपि । दार्शिकस्य युगा-  
 देश्च दार्शिकालभ्ययोगयोः ॥ दार्शिकस्य च मन्वादेः संपाते श्राद्धकर्मणः-  
 प्रसङ्गादितरस्यापि सिद्धेरुत्तरमाचरेत्' ॥ अस्य देवताभेदेऽपवादमाह स एव ।  
 'नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि । दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमा-  
 सिकयोरपि ॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि । युगाद्याब्दि-  
 कयोश्चैवमन्वाद्याब्दिकयोस्तथा ॥ प्रत्याब्दिकस्य चालभ्य योगेषु विहितस्य  
 च । संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुगं समाचरेत् ॥ निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानु-  
 ष्ठानकारणम् ॥ पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि' ॥ माधवीये स्मृ-

तिसंग्रहे—'काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिद्धय-  
 श्राद्धाङ्गतर्पणनिर्णयः ति' ॥ अथ श्राद्धाङ्गतर्पणम् ॥ पारिजाते पृथ्वोचन्द्रो-

दये च गर्गः—'पूर्वं तिलोदकं कृत्वा आमश्राद्धं तु कारयेत् ।  
 प्रत्यब्देन भवेत्पूर्वपरेऽहनि तिलोदकम् ॥ पक्षश्राद्धं हिरण्येन अनुव्रज्य ति-  
 लोदकम् । नच नित्यतर्पणस्यायं परेह्युत्कर्षः ॥ न तु श्राद्धाङ्गतर्पणमस्ती-  
 ति वाच्यम् ॥ 'यस्तर्पयति तान् विप्रः श्राद्धं कृत्वा परेहनि । पितरस्तेन  
 तृप्यन्ति नचेत्कुप्यन्ति वै भृशम्' इति गर्गेण फलनिन्दार्थवादाभ्यामङ्गत्वे-  
 नोक्तेः ॥ श्राद्धप्रक्रमाद्दार्शिकम् ॥ बृहन्नारदीयेऽप्याब्दिकं प्रक्रम्य—'परेषुः  
 श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन् । तस्य ते तितरः क्रूद्धाः शापं दत्वा



व्रजन्ति हि' ॥ पितृशब्दश्च श्राद्धेज्यवर्गपरः ॥ तेन तर्पणस्य पशुपुरोडाश  
यागवत्प्रस्तरेप्रहरणवच्छेष्टदेवतासंस्कारकता ॥ तेनाब्दिके दिने नित्यं स्वपित्रा  
दितर्पणं कार्यमेव ॥ श्राद्धाङ्गभूतस्यैव परेद्युरुक्तेः ॥ तदुक्तं—'प्रत्यब्दाङ्गं तिलं  
दद्यान्निषिद्धेऽपि परेहनि। वगैकस्य वचो येषामन्येषां तु विवर्जयेत्' ॥ कचिदि-  
शेषमाह गर्गः—'कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितृणां प्रत्यहं  
कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम्' ॥ तर्पणं तिलतर्पणम् ॥ निषिद्धाहेपीत्युक्तेः ॥ 'स  
कृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्त्वन्त एव हि' ॥ 'अत्र सप्तमीनिर्देशात् अङ्गिता  
स्फुटैव ॥ तत्रजयात् जुहुयात् ॥ मन्द्रं प्रायणीयायां मन्द्रं प्रातःसवने इत्यादिव  
त् ॥ अस्यापवादो बृहन्नारदीये—'वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासि-  
के। संवत्सरविमोके च कुर्यात्तु तिलतर्पणम्' ॥ तदयमर्थः—दर्शे विप्रनिमन्त्र-  
णोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा श्राद्धप्रयोगस्यारब्धत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरं नित्यत-  
र्पणं ॥ नैव श्राद्धाङ्गतर्पणस्य तन्त्रेण प्रसङ्गेन वा सिद्धिः ॥ ततः पूर्वं वैश्वदे-  
वोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धाङ्गतर्पणं पृथक्कार्यं ॥ पित्रोर्वार्षिके तु नित्यतर्पणं  
तिलवज्र्यं कार्यम् ॥ 'नैव श्राद्धदिने कुर्यात्तिलैस्तु पितृतर्पणम्। श्राद्धं कृत्वा  
पराह्णे च तर्पणं तु तिलैः सह' ॥ इति वचनात् ॥ 'सप्तम्यां भानुवारे च  
मातापित्रोर्मृतेहनि । तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत् पितृघातकः' इति स्मृ-  
तिरन्नावल्यां वृद्धमनूक्तेश्च ॥ अत्र नित्यतिलतर्पणे तिलमात्रनिषेधो न तु त-

१—'यदैवत्यः पशुः तदैवत्यः पुरोडाशः' इतिवत् श्राद्धं यदैवत्यं तदैवत्यमेव तर्पणमि-  
त्यर्थः । २--ननु तत्र विशिष्यदेवताभिधानात्तथेत्यतः सामान्यविशिष्यभावेन देवताभिधाने  
एकदैवत्ये दृष्टान्तमाह—प्रस्तरेतिसूक्तवाकाय प्रस्तरं 'प्रहरति' इति विशिष्याभिहिताना-  
मेवाश्यादीनां सूक्तवाक्येन सामान्येनाभिधानाच्चतुर्थ्या इष्टदेवतात्वलाभात्प्रस्तरप्रहरणस्ये-  
ष्टदेवतासंस्कारकतावत्तर्पणस्यापि दृष्टानां पित्रादीनां देवतानामेव संस्कारतयाङ्गत्वामि-  
त्यर्थः इति टीका । ३--नित्यस्य प्रयोगानन्तःपातित्वात् । वस्तुतस्तु-आरम्भणीयाबृह-  
स्पतिसंवादेः (?) क्त्वाप्रत्ययवशात्प्रयोगबहिर्भूतांगत्ववदिहापि क्त्वाप्रत्ययसत्त्वान्प्रयोग-  
बहिर्भूतनित्यतर्पणेनैव दार्शिकतर्पणसिद्धिरिति। यत्र च रविवारादौ तिलरहितं तर्पणं तत्र  
तन्त्रप्रसङ्गयोरभावात्पुनःसतिलतर्पणं कार्यम् । वार्षिकादौ च तन्त्रप्रसङ्गयोरुभयोरप्यभा-  
वात्पृथगेव तत् कार्यम् ॥ इति टीका ॥



र्पणस्य तिलैरित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः ॥ यत्तु कातीयम्—‘उपरागे पितुःश्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे । निषिद्धेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत्’ इति—तत् परेद्युः श्राद्धाङ्ग-तर्पणविषयमिति केचित् ॥ श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति युक्तम् ॥ सकृन्महालये परेद्युस्तर्पणं ॥ अष्टकासु तु सप्तम्यष्टमी-श्राद्धयोरन्ते तदैव वर्गद्वयस्य ॥ अन्वष्टक्ये तु मातृवर्गस्यापि तीर्थश्राद्धे दर्शवत् ॥ माघाद्यादिष्वष्टकावदन्ते ॥ अनेकश्राद्धसंपाते तु यदि तत्प्रसङ्गसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम् ॥ तन्त्रत्वे तु श्राद्धसमसंख्यत्वे आदावन्ते वा ॥ विषमसंख्यायां बह्वनुरोध इति ॥ तस्माच्छ्राद्धाङ्ग-तर्पणं सिद्धम् ॥ तद्विधिः संग्रहे—‘स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने ॥ संतर्पयेत् पितृन् सर्वान् स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत्’ ॥ तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः ॥ ‘अपसव्यंततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले।नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयान्तेन तर्पयेत्’ ॥ अत्र वस्वादिरूपतोक्ता स्मृत्यर्थसारे—‘वसुरुद्रादिति सुतान् श्राद्धार्थं तर्पयेत् पितृन्’ ॥ तत्र बहुचानां दक्षिणैव ॥ ‘अनादेशे दक्षिणं प्रतीयात्’ इति सूत्रात् ॥ अत्र प्रत्यञ्जलिमन्त्रावृत्तिः ॥ निर्वापवत्तत्संध्याव्यदानवच्च द्रव्यभेदात् ॥ अवघातवेदिप्रोक्षणादौ तु द्रव्यैकत्वान्न मन्त्रावृत्तिः ॥ केचित्तु परिव्याणमन्त्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेन करणत्वाभावात्सकृदिच्छन्ति ॥ तन्न ॥ तत्रापूपद्रव्यैक्यात्परवीरसीतिकरणीभूतमन्त्रान्तरसत्त्वादन्यतरेण व्यवधानापत्त्योभयोः कारणत्वायोगात्कर्तृभेदेन विकल्पायोगाच्च क्रियमाणानुवादित्वम् ॥ नत्वत्र तथेति बोधायनादिवचनात्करणत्वमेव ॥ तेनावृत्तिरेव युक्ता ॥ एवं नित्येऽपि ॥ यत्तु संग्रहनाम्ना पठन्ति ॥ पित्रोः क्षयाहे संप्रोक्ते यः कुर्यान्नित्यतर्पणम् । आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं ततोयं रुधिरं भवेत् ॥ सर्वदा तर्पणं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् । मृताहेनैव कर्तव्यं कृतं चेन्निष्फलं भवेत्’ ॥ तत्समूलत्वे सति फलविषयम् ॥ यच्च पठन्ति—कपिलः—‘मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शसंक्रमणेषु च । पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात् पूर्वं तिलोदकम् ॥ अर्धो-

१—‘युवा सुवासाः’ इति मन्त्रः । २—क्रियमाणं यूपैकादशिलादौ (?) परिव्याणम् ।



दये गजच्छाये षष्ठीषु च महालये । भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं वि-  
दुः' ॥ शौनकः—'मातापित्रोर्मृताहे च परेहनि तिलोदकम् । कारुण्यश्रा-

द्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम्' ॥ एतन्निर्मूलम् ॥ अथ ति-  
तिलतर्पण-  
निषेधः लतर्पणनिषेधः ॥ गार्ग्यः—'भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभु-

गुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्' ॥-

स्मृत्यर्थसारे—' विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । ' अर्धं तदेव ॥ 'वृ-

द्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम्' ॥ हेमाद्रौ मरीचिः—'सप्त-

म्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा । निशासंध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्ति-

लतर्पणम्' ॥ यत्तु संग्रहे—'नंदायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च। भरण्यां

भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥ अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ॥

पिण्डदानं मृदास्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्' ॥ इति, तच्चिन्त्यम् 'पानीयमप्यत्र तिलै-

र्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः' इत्यादिविरोधात् ॥ अत्रापवादः पृ-

थ्वीचन्द्रोदये—' तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके ॥ निषिद्धेऽपि दिने

कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम्' ॥ स्मृत्यर्थसारेऽपि—'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं

प्रेते च सर्वदा' इति ॥ गोभिलः—'तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वि-

तम् । तदभावे निषिचेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः ॥ पतितस्य तिलोदकं वक्ष्यामः ॥

अथ वृद्धिश्राद्धम् ॥ तन्निमित्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे ॥

वृद्धिश्राद्ध-  
निर्णयः 'जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च । पितृन्नान्दीमुखान्नाम

तर्पयेद्विधिपूर्वकम् ॥ देवव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च ।

नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे ॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च ।

राजाभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान् ॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन्पूर्वेषुः

सद्य एव वा । पितृन्पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत्कर्मसिद्धये' ॥ विष्णुपुराणे—'यज्ञो-

१--' आसु तोयमपि स्नात्वा तिलदर्भविमिश्रितम् । पितृनुद्दिश्य यो दद्यात्स गतिं  
परमां लभेत्' इति मन्वादीन्प्रकृत्य नागरखण्डोक्तेः 'मन्वाद्यासु युगाद्यासु प्रदत्तः स-  
तिलोज्ज्वलः । सहस्रवार्षिकीं वृत्तिं पितृणामावहेत्सदा' ॥ इति कालादर्शोक्तेश्च ॥



द्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः ॥ पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत्”  
तत्रैव—‘नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ’ इत्युक्तेर्निष्क्रमात्रप्राश-  
शनयोर्न श्राद्धमिति मैथिलाः ॥ पूर्वोक्तविरोधात् ॥ ‘नानिष्ठा’ इति विरोधा-  
त् ॥ ‘सुतोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिके तथा ’ इति रजामार्तण्डाच्च ॥  
यत्तु छन्दोगपरिशिष्टम्—‘सूर्येन्द्रोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विद्यते ’  
इति, तत्तेषामेवेति कल्पतरुः ॥ बहुचकारिकायाम्—‘स्यादाभ्युदयिकं  
श्राद्धं वृद्धिपूर्तेषु कर्मसु । पुंसःसवनसीमन्तचौलोपनयनेष्विह ॥ विवाहेचोनलाध-  
यप्रभृतिश्रौतकर्मणि । इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकम् ॥ अन्यैः षो-  
डशसंस्कारश्रावण्यादिष्वपीष्यते । वाप्याद्युद्यापनादौ तु कुर्युः पूर्तनिमित्तक-  
म्’ ॥ वोपदेवकालादर्शौ—‘सीमन्तव्रतचौलनामकरणान्नप्राशनोपायनस्ना-  
नाधानविवाहयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च । पुंसूत्यावसथप्रवेशनसुताद्यास्याव-  
लोकाश्रमस्वीकाराक्षितिपाभिषेकदयिताद्यतौ च नान्दीमुखम् ’ ॥ यत्तुकाम-  
धेनौ—‘जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिकर्मसु । वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्यो-  
त्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समाचरेत् ’ इति ॥ तत्र जला-  
शये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधो न तु कर्माङ्गस्येति केचित् ॥ अन्ये त्वस्य निर्मूल-  
तमाहुः ॥ श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृते च मात्स्ये—‘अन्नप्राशे च  
सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च निषेके च नवे वेश्मप्रवेशने ॥ देववृ-  
क्षजलादीनां प्रतिष्ठायां विशेषतः । तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकी-  
र्तितम् ’ ॥ इदं चावश्यकम् ॥ ‘वृद्धौ न तर्पिता ये वै पितरो गृहमेधिभिः । त-  
द्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव सः’ इति शातातपोक्तेः ॥ अत्र श्राद्धत्रयं स  
एवाह ‘मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च  
वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ’ ॥ तत्कालमाह पृथ्वीचन्द्रोदये गार्ग्यः—‘मातृ-  
श्राद्धं तु पूर्वद्युः कर्माहनि तु पैतृकम् । मातामहं चोत्तरेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं  
स्मृतम् ॥ अत्राप्यशक्तौ स एव ‘पृथक्दिनेष्वशक्तश्चैदेकस्मिन् पूर्ववास-  
रे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम्’ इति ॥ वृद्धमनुरपि—‘अ-



लाभेभिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः । पूर्वेषुर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्ने मातृपूर्वक-  
 म् ॥ अत्र 'महत्सु पूर्वेषुस्तदहरल्पेषु' इति गृह्यपरिशिष्टादयवस्था ज्ञेया । तच्च  
 प्रातरेव ॥ 'पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तम्' इति शातातपोक्तेः ॥  
 अत्र प्रातःशब्दः सार्धप्रहरपरः ॥ 'प्रहारोप्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभिधीयते' इति  
 गार्ग्योक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ इदं च पुत्रजन्मातिरिक्तविषयम् ॥ तदाहान्निः—  
 'पूर्वाह्णे वै भवेद्वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम् । पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं ता-  
 त्कालिकं बुधः' इति ॥ एतदनियतनिमित्तपरं ॥ 'नियतेषु निमित्तेषु प्रातर्वृद्धि-  
 निमित्तकं । तेषामनियतत्वे तु तदानन्तर्यामिष्यते' इति लौगाक्षिस्मृतेः ॥ आ-  
 धानाङ्गं नान्दीश्राद्धं त्वपराह्ण एव ॥ 'आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु  
 मध्यतः । पार्वणं वाऽपराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्रिकम्' इति निर्णयामृते  
 मालवोक्तेः ॥ 'नान्दीमुखाह्वयं प्रातराब्दिकं त्वपराह्णतः' ॥ इति विष्णूक्ते-  
 श्च ॥ इदं च मातृपितृमातामहादिक्रमेण नवदैवत्यं कार्यम् ॥ तत्र 'मातामहाः  
 सपत्नीकाः वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमातामहानां सपत्नीकानाम्' ॥ इति पृ-  
 थ्वीचन्द्रोदये गारुडे गघरूपेण पाठात् ॥ हेमाद्रौ शङ्खः—'नान्दीमुखे  
 सत्यवसू संकीर्त्यौ वैश्वदेविके' ॥ वृद्धपराशरः—'नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः  
 प्रदक्षिणकुशासनम् । पितृव्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः' ॥  
 यत्तु ॥ वृद्धवसिष्ठः—'नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् । नाम  
 संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम्' ॥ यच्च स्मृत्यर्थसारे—'वृद्धमुख्यास्तु  
 पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते' इति ॥ यच्च गारुडे—'व्युत्क्रमप्रतिपादनं तच्च  
 शाखान्तरविषयम् ॥ पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः' इति बह्व-  
 चपरिशिष्टे कात्यायनेन चानुलोम्यान्नातात् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ यत्तु  
 केचिद्वृद्धिपदं पित्रादिषु प्रयुज्यते, तन्न ॥ 'अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रि-  
 णाम् । अनाम्नामातिलायैश्च नान्दीश्राद्धं तु सव्यवत्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये  
 संग्रहोक्तेः ॥ नच निषेधादेव विधिः कल्प्यत इति वाच्यम् ॥ प्रौष्ठपदी-  
 श्राद्धे प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्नान्दीश्राद्धत्वसाम्येनेहापि



तत्प्राप्तौ निषेधात् ॥ गोत्रनामादिनिषेधस्तु—‘शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत्’ इत्युपक्रम्य ‘अनस्मद्वृद्धशब्दानाम्’ इत्युक्तेः संकल्प-  
 श्राद्धपरः ॥ ‘सपिण्डके तु सर्वं भवती’ति प्रयोगपारिजातः ॥ ‘गोत्रनामभि-  
 रामन्स्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत्’ इति छन्दोगपरिशिष्टे तद्विधानात् ॥  
 यत्तु ब्राह्मे—‘पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते  
 पितरः परिकीर्तिताः । तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु  
 नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते’ इति ॥ यच्च मार्कण्डेयपुराणे—‘ये  
 स्युः पितामहादूर्ध्वं ते तु नान्दीमुखाः स्मृताः’ इति तज्जीवत्पित्रादित्रिककर्तृ-  
 कवृद्धिश्राद्धविषयम् ॥ तेन तस्येदमावश्यकम् ॥ यत्तु विष्णुः—‘पितरि  
 पितामहे च जीवति नैव कुर्यात्’ इति तद्वर्शादिविषयम् ॥ इति कल्पतरुः ॥  
 मदनपारिजातेऽप्येवम् ॥ हेमाद्रिस्तु—‘नान्दीमुखानां श्राद्धं तु कन्यारा-  
 शिगते रवौ । पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा’ इति—प्रौष्ठपदीश्राद्धैक  
 वाक्यत्वात्तत्रैव पूर्वेषां देवतात्वमित्याह ॥ अत्र सत्यवसू विश्वदेवावित्युक्तं  
 प्राग्वत् ॥ यत्तु शातातपः—‘मातुःश्राद्धं तु युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक्  
 इति, तद्विन्नप्रयोगमातृश्राद्धभिन्नश्राद्धद्वये विश्वदेवविकल्पार्थम् ॥ प्रयो-  
 गैक्ये तु—‘विश्वदेवविहीनं तु केचिदिच्छन्ति मानवाः’ इति, तद्विन्न-  
 प्रयोगमातृश्राद्धभिन्नश्राद्धद्वये विश्वदेवविकल्पार्थम् ॥ प्रयोगैक्ये तु देवनियमः  
 इति हेमाद्रिः ॥ एतच्च मातृपूजापूर्वकं कार्यम् ॥ ‘अकृत्वा मातृयागं तु यः  
 श्राद्धं परिवेषयेत् । तस्य क्रोधतमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः’ इति  
 शातातपोक्तेः ॥ कौर्मैपि—पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि पूजयित्वा मातृ-  
 गणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः’ इति ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—‘कर्मादिषु तु  
 सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः । पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥  
 प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु ॥ अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च  
 पृथग्विधैः ॥ कुड्यलगां वसोर्धारां सप्तधारां घृतेन तु । कारयेत् पञ्चधा-  
 रां वा नातिनीचां नचोच्छ्रिताम् ॥ आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र



समाहितः । षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥ अत्र सर्वेष्विति ग्रहणात् ग्रहयज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं श्राद्धम् ॥ 'नानिष्ठा तु पितृन् श्राद्धे कर्म किंचित्समाचरेत्' इति ज्ञातातपोक्तेश्च ॥ इयं चवसोर्धारा तच्छाखीयानां नियता, अन्येषां त्वनियता ॥ 'बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं' इत्युक्ते करणे त्वभ्युदयः ॥ 'यन्नाम्नातं स्वशाखायाम्' इत्युक्तेः ॥ आयुष्याणि 'आ नो भद्राः' इत्यादीनि ॥ षड्भ्य इति मात्रादित्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ छन्दोगानां षड्दैवत्यन्येषां नवदैवत्यमित्याशार्कः ॥ मम तु मृतं कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति मात्रा सहैव मातामहश्राद्धकरणात् तद्विषयमिदं षड्भ्य इति ॥ मातरस्तत्रैवोक्ताः ॥ 'गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः' । इति सर्वविशेषणं तेन चतुर्दशत्वम् ॥ यदा षोडशेति पाठस्तदा देवतान्तरम् ॥ चन्द्रिकायां चतुर्विंशतिमते त्वन्या उक्ताः ॥ 'तिस्रः पूज्याः पितुः पक्षे तिस्रो मातामहे तथा । इत्येता मातरः प्रोक्ताः पितुर्मातुः स्वसाष्टमी' ॥ आसां जीवने प्रत्यक्षपूजनम् ॥ 'मृतानां त्वक्षतपुञ्जेषु' इति हेमाद्रिः ॥ 'ब्रह्माण्याद्यास्तथा सप्त दुर्गाक्षेत्रगणाधिपान् । वृद्ध्यादौ पूजयित्वा तु पश्चान्नान्दीमुखान्पितृन् ॥ मातृपूर्वान्पितृन्पूज्य ततो मातामहानपि । मातामहीस्ततः केचियुग्मा भोज्या द्विजातयः' इति ॥ अत्र द्वादशदैवतस्य देशाचाराद्व्यवस्था ॥ ब्रह्माण्याद्याः—'ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डाः सप्त मातरः' इत्यपराकै उक्ताः ॥ अत्र चौलादीनां यौगपथे तन्त्रतोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे—'गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु' ॥ मातृभ्यः इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥ गणेशः एकानेकपुत्राणां संस्कारेष्वेकदिने एकदेशका-

१-एकेनैव पार्वणेन मातृमातामहयोश्चारितार्थान्न षट्त्वानुपपत्तिरिति भावः । २-एकस्यापत्यादेरनेकेषु नामकर्मादिसंस्कारेष्वेकदिने एकेन कर्त्रा क्रियमाणेषु देशकालकर्त्रैक्याद्वृद्धिश्राद्धं सकृत् मातृणां पूजा च सकृदित्येकोन्ययः । एवमनेकस्यापत्यादेर्जातकर्मादिसंस्कारे प्रतिस्वमङ्गापूर्वोत्पत्तये संस्कार्याणां भेदेऽपि तत्र श्राद्धमेवेत्यपर इति ॥



लकर्त्रैक्यादित्यर्थः ॥ तथा—‘असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन् कर्मकारिभिः । प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः सगणाधिपाः ’ ॥ कर्मावृत्तावपि कुत्र श्राद्धं कार्यं क्वच नेत्युक्तं तत्रैव ॥ ‘आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च । बलिकर्मणि दर्शे च पूर्णमासे तथैव च ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक्’ ॥ एतेषु प्रतिप्रयोगं नावर्तते किंत्वादौ ॥ एतद्भिन्ने सोमयागादौ प्रतिप्रयोगमावर्तते एव ॥ श्राद्धमित्यर्थः ॥ क्वचिदादावपि निषेधमाह स एव ‘नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते । न सोष्यन्तीजातकर्मप्रोषितागतकर्मसु ॥ विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुमो यस्य चान्ते ॥ विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात्’ । सोष्यन्त्या आसन्नप्रसवायाः ‘सोष्यन्तीमभ्युक्ष्य’ इत्युक्तं कर्म ॥ कात्यायनोक्तस्य श्राद्धस्य पाकस्य प्राधान्यात्तस्य च ॥ ‘जातश्राद्धे न दद्यात् पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि’ इति निषेधान्न जातकर्मणि नान्दीश्राद्धमित्याशार्कः ॥ आमन्त्रेण वा कार्यमित्यपि तेनैवोक्तं ॥ गौडास्तु जातकर्मण्येव निषेधः । पुत्रजन्मनिमित्तकं तु कार्यमेव । ‘जन्मन्यथोपनयने’ इत्युक्तेः । ‘नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकं । पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्म समं नरैः’ इति मार्कण्डेयपुराणाच्चेत्याहुः ॥ हारलतायां श्राद्धविवेके चैवम् ॥ एतेन जातकर्मणि कालान्तरे श्राद्धनिषेधो न पुत्रजन्मदिने इति वाचस्पतिमतं परास्तम् ॥ अथ ‘निषेककाले’ इति वचनात् गर्भाधाने न निषेधः ॥ ‘निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं विधिवत्कृतम्’ । इति पारस्करः ॥ प्रोषितेति—‘प्रौष्येत्य गृहानुपतिष्ठते पुत्रं दृष्ट्वा जपतीति विहितं कर्म विवाहादिगर्भाधानान्तो यो गृहप्रवेशचतुर्थीकर्मादिकर्मसमूह उक्तः सूत्रकारेण ॥ तत्रापि प्रतिकर्म नेत्यर्थः ॥ अन्येपि हलाभियोगादयो अपवादविषयास्तत्रैव ज्ञेयाः ॥ तद्वाप्यचारात्प्रोच्यन्ते ॥



अथात्राधिकारिणः ॥ विष्णुपुराणे—‘जातस्य जातकर्मा-  
 अथजातश्राद्धाधिकारिणः दिक्रियाकाण्डमशेषतः । पिता पुत्रस्य कुर्वीत श्राद्धं चाभ्युद-  
 यात्मकम्’ ॥ अत्र केचित् जीवत्पितुः साग्रेव वृद्धिश्रा-  
 द्धेधिकारः नतु निरग्नेः । ‘न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य  
 एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत साग्निकः । पितामहेऽप्येवमेव कुर्याज्जीवति सा-  
 ग्निकः । साग्निकोऽपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे’ इति चन्द्रिकायां सुमन्तू-  
 केरित्याहुः ॥ प्रयोगपरिजातेऽप्यनाहिताग्निर्न कुर्यादिति यद्व्याख्यातं तन्न ।  
 ‘अनग्निकोऽपि कुर्वीत जन्मादौ वृद्धिकर्मणि । येभ्य एव पिता दद्यात्तानेवो-  
 द्दिश्य तर्पयेत्’ इति हारीतोक्तेः ॥ सौमन्तवं तु वृद्धिश्राद्धभिन्नश्राद्धपरमि-  
 त्युक्तं मदनरत्ने ॥ श्राद्धपदं पिण्डपितृयज्ञपरमिति पृथ्वीचन्द्रोदयः ॥ नि-  
 र्णयामृते तु हारीतीयेऽनग्निकोऽनाहिताग्निरभिप्रेतः ॥ पूर्ववचने तु साग्निकः  
 श्रौताग्निः स्मार्ताग्निश्चोच्यते ॥ तेनोभयाग्निहीनस्य नेत्युक्तं, तन्न । पूर्वोक्त-  
 दिशा गतिसंभवेनग्निपदस्य स्मार्ताग्निपरत्वे मानाभावात् ॥ वक्ष्यमाणनित्या-  
 नित्यसंयोगविरोधात् ॥ ‘पितरो जनकस्येज्या यावद्भूतमनाहितम् । समा-  
 हितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेत पितामहान्’ ॥ इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमवचो  
 विरोधाच्च ॥ अपराकोऽपि—‘समावर्तने ब्रह्मचारी स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्या-  
 दित्याह ॥ अतः पूर्वमेव साधु ॥ बोपदेवोऽप्येवमाह ॥ यत्तु मतं जीव-  
 त्पितुः पुत्रनामकर्मादौ न वृद्धिश्राद्धं हारीतीये जन्मादावित्यादिशब्देन तत्प्रा-  
 तावपि—‘उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते  
 षडेते जीवतः पितुः’ इति मैत्रपरिशिष्टे—‘उद्वाह एव तस्योपसंहारात् ॥  
 एवं यत्र तु संस्कारादिपदं तदप्युद्वाहादिपरमेव’ इति तन्न ॥ उद्वाहपदस्य स्व-  
 विवाहपरत्वस्यापि संभवात् ॥ पुत्रविवाहपरत्वे मानाभावात् ॥ ‘नामक-

१-पुत्रस्येति पुंस्त्वमविवक्षितम् अनुवाच्यगतत्वात् । तथाच पुत्रीणामपि जन्मादौ  
 आभ्युदयिकं भवति, तत्र समन्त्रम् मन्त्रबाधे मानाभावात् । ‘तुष्णीमेताः क्रियाः स्त्री-  
 णाम्’ इति याज्ञवल्क्यं तु जातकर्मादिसंस्कारेषु मन्त्रबाधार्थम् एता इत्यनेन प्रकान्त-  
 त्वात्तेषामेव परामर्शात् । तेन कन्याया जातकर्मादौ वृद्धिश्राद्धं समन्त्रमेव ॥ इति टीका ॥



मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा ' इत्यादिभिर्नित्यश्राद्धस्य चौलाद्यङ्गत्वा-  
वगतौ नित्यानित्यसंयोगविरोधाच्च ॥ अतो जन्मादाविति सर्वसंस्कारसंग्रहः ॥  
तथा कात्यायनः—' स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु । पिण्डानो-  
द्वाहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ' ॥ 'सुतानां चौलादिसंस्कारेषु पिता स्व-  
पितृभ्यः पिण्डान् श्राद्धं पिण्डदोशहरश्चैषाम्' इति दर्शनादोद्वाहनाद्विवाहपर्यन्तं  
दद्यात् ॥ विवाहश्च प्रथमः ॥ 'नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे बुधः ।  
अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्' इति स्मृतेः ॥ तस्य पितुरभावे  
तत्क्रमात्—'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः' इति—यः  
कर्तृक्रमस्तेन क्रमेण ज्येष्ठभ्रात्रादिर्दद्यादिति चन्द्रिकादयः ॥ हेमाद्रिस्तु तस्य  
पितुरभावे यः पितृव्यमातुलादिः संस्क्रुर्यात्स तत्क्रमात्संस्कार्यपितृक्रमाद्यान्न तु  
स्वपितृभ्य इति व्याचख्यौ ॥ समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात्पि  
तैव नान्दीश्राद्धं कुर्यात् ॥ तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिभिः ॥ तदभावे स्वयमेव कु-  
र्यात् ॥ उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् ॥ एवमाद्यविवाहेपीति पृथ्वीच-  
न्द्रोदयचन्द्रिकादयः ॥ मदनरत्नेष्वेवम् ॥ यदा तु पितरि संन्यस्ते प्रोषिते  
पतिते वा धर्मार्थं तत्पुत्रमन्यः संस्क्रुर्यात्तदा संस्कार्यपितुः पित्रादिभ्यो दद्या-  
त् ॥ 'पितरो जनकस्येज्या यावद्भ्रतमनाहितं । समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजे-  
त पितामहान्' इति पृथ्वीचन्द्रोदये यमोक्तेः ॥ जीवत्पितृकस्य विशेषमा-  
ह कात्यायनाः 'वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति ॥ येभ्य एव  
पितादद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः' इति ॥ यत्तु बहुचपरिशिष्टे—'जी-  
वत्पिता सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात् ॥ तस्यां जीवन्त्यां माताम-  
हस्यैवेति' तत्तच्छाखीयानामेवेति दिक् ॥ स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु तु जीव-  
न्मातृकः पितामहादिभ्यो वृद्धौ दद्यात् 'जीवन्तमपि दद्याद्वा प्रेतायान्नौदके  
द्विजः' इति कात्यायनोक्तेः 'जीवेतस्मिन्सुताः कुर्युः' पितामह्या सहेव  
तु । तस्यां चैव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्वेति निश्चयः' इति हारीतोक्तेश्चेत्यु-  
क्तम् ॥ तस्मिन् भर्तारि दाक्षिणात्यास्तु पूर्वोक्तस्य सपिण्डीकरणादिविषय-



त्वात् ॥ 'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्' इति वचनात्तद्वर्गस्य  
लोप एवेत्याहुः ॥ यत्तु चंद्रिकायां पारस्करः—'निषेककाले सोमे च सी-  
मन्तोन्नयने तथा ॥ ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं वृद्धिवच्च तत्' इति तत्र ग-  
र्भाधानादौ कर्माङ्गं जातकर्मादावुक्तं तु वृद्धिश्राद्धं पृथगेव विधिवदित्युक्तेः ॥  
गौडनिबन्धे मात्स्ये—'अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके । पुंसवे च  
निषेके च नववेश्मप्रवेशने ॥ वेदव्रतजलादीनां प्रतिष्ठायां तथैव च । तीर्थयात्रावृषो  
त्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम् ॥ अत्र भूतानिमित्तानां वृद्धित्वम्, भाविनि-  
मित्तानामङ्गत्वम् ॥ वृद्धिशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थं इति गोडाः ॥ अन्येतु निषे-  
कादौ कर्माङ्गवृद्धिश्राद्धयोः समुच्चयमाहुः ॥ नान्दीश्राद्धसंज्ञातूभयानुगता ॥ अथे-  
ति कर्तव्यता ॥ पृथ्वीचद्रोदये वृद्धपराशरः—'मालत्या-  
श्राद्धसर्वकर्त-  
व्यनिर्णयः शतपत्राया मल्लिकाकुब्जयोरपि केतक्याः पाटलाया वा दे-  
यामाला न लोहिता' ॥ श्राद्धे मालानिषेधस्यायमपवादः ॥  
तथा—'सुवेषभूषणैस्तत्र सालंकरस्तथा नरैः । कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्भाव्यं तु  
ब्राह्मणैः सह ॥ स्त्रियोपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः' ॥ हेमाद्रौ  
ब्रह्माण्डे—'कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये' । कुशा अपि व-  
क्ष्यन्ते ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—'प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्त-  
था' ॥ उभयतः दैवै पित्र्ये च ॥ वैश्वदेवे द्वौ विप्रौ पित्रादीनामेकैकस्य द्वौ-  
द्वाविति विंशतिः ॥ त्रिके वा द्वावित्यष्टौ विप्राः ॥ अत्र विप्रालाभे स्त्रियोपि  
भोज्या इत्याहापराकै वृद्धवासिष्ठः—'मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे पूज-  
येदपि ॥ पतिपुत्रान्विता भव्या योषितोष्टौ कुलोद्भवाः ॥' मातृत्रिके  
चतस्रः मातामहीत्रिके चेत्यष्टाविति हेमाद्रिः ॥ अत्र पित्र्ये प्राङ्मुखा  
विप्राः पाथे पित्र्ये चतुरस्रं मण्डलमिति जयन्तः ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मे-  
'विप्रान् प्रदक्षिणावर्तं प्राङ्मुखानुपवेशयेत्' ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—'गो-  
त्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं  
तीर्थमिष्यते ॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राग्रपवित्रकान् । कृत्वाऽर्घ्यं सं-



५० ३ ]

श्राद्धसर्वकर्तव्यनिर्णयः ।

४६५

प्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ' ॥ पित्रादेर्द्वौ द्वौ विप्रौ तयोर्दक्षिणहस्तौ सं-  
 योज्य प्रथमोपवेशिताविप्रकरोपरि तन्त्रेण द्वयोरर्घ्यं दद्यादित्यर्थः ॥ बह्व-  
 चकारिकायां तु—'दत्तार्घ्यादेकदेशः स्यादर्घ्यदानं प्रतिद्विजम् । आवृत्तिरपि  
 मन्त्रस्य प्रतिब्राह्मणमिष्यते ॥ प्रतिद्विजं पृथक्कुर्यान्निर्वीत्यर्घ्यानुमन्त्रणम् 'इ-  
 त्युक्तम् ॥ 'मधुमध्वितियस्तत्र त्रिजपोशितुमिच्छताम् । गायत्र्यानन्तरं स्तो-  
 त्रं मधुमन्त्रविवर्जितम् ॥ न चाश्वस्तु जपेदत्र कदाचित्पितृसूक्तम् ' ॥ त-  
 था—'संपन्नमिति तृप्ताःस्थ प्रश्नस्थाने विधीयते । सुत्तपन्नमिति प्रोक्ते शे-  
 षमन्नं निवेदयेत् ॥ अक्षय्योदकदानं च अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठ्यैव नियतं  
 कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ' ॥ चन्द्रोदये ब्राह्मे—'पठेच्छकुनिसूक्तं तु स्व-  
 स्तिसूक्तं शुभं तथा । नान्दीमुखान्नपितृभक्त्या साञ्जलिश्च समाह्वयेत् ' ॥ त-  
 था—'शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवास्तथा । मिश्रीकृत्वा तु चतुरः पि-  
 ण्डाञ्छीफलसंनिभान् ॥ दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो विधिपूर्वकम् । द्वा-  
 क्षामलकमूलानि यवांश्च विनियोजयेत् ॥ तान्येव दक्षिणार्थं तु दद्याद्विप्रेषु  
 सर्वदा ' ॥ तत्रैव चतुर्विंशतिमते—'द्वौ द्वौ चाभ्युदये पिण्डावेकैकस्मै विनि-  
 क्षिपेत् । एकं नाम्ना परं तूष्णीं दद्यात् पिण्डान्पृथक्पृथक्' ॥ वसिष्ठः—'प्रा-  
 ङ्मुखो देवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च । दत्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रम-  
 धोमुखम् ' ॥ नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहेतिवा पिण्डदानमन्त्र इति वृत्तिः ॥  
 अत्र पिण्डाःकृताकृता इत्युक्तम् ॥ तत्रैव भविष्ये—'पिण्डनिर्वपणं कुर्या-  
 न्नवा कुर्याद्विचक्षणः । वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ' ॥ छा-  
 गलेयः—'अग्नौकरणमर्घ्यं वा वाहनं चावनेजनम् । पिण्डश्राद्धे प्रकुर्वीत  
 पिण्डहीने निवर्तते ' ॥ तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदि विप्रस्य वमनं  
 तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्तिरिति सिद्धम् ॥ अत्र सांकल्पे विशेषः प्रयोग-  
 परिजाते संग्रहे । 'शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ सांकल्पमाचरेत् ॥ न षष्ठ्या  
 यदि वा कुर्यान्महादोषोभिजायते ' । नामगोत्रादिनिषेधोप्यत्रैव न तु सपि-  
 ण्डकश्राद्धे इति स एव ॥ अत्रायं क्रमः । नान्दीश्राद्धे 'दैवे क्षणः क्रियता-



म्' इति द्वौ युगपन्निमन्त्र्य ओं तथेति विप्राभ्यां युगपदुक्ते प्रामुतां भवन्तौ,  
 प्रामुवाव इति वैश्वदेववत्पित्र्ये च द्विवचनान्तेन विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात् ॥  
 आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे—'योऽग्नौ तु विद्यमानेऽपि वृद्धौ पिण्डान्न निर्वपेत् ।  
 पतन्ति पितरस्तस्य नरके स च पच्यते' । बह्वचपरिशिष्टे—'द्वौ दभौ प-  
 वित्रे पवित्राणि चत्वारि ॥ शंनो देवीत्यनुमन्त्रितासु यवानावपति' ॥ 'यवोऽसि  
 सोमदेवत्यो गोसवे निर्मितः । प्रत्नवाद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितृनि-  
 माल्लोकान्प्रीणयाहिनः स्वाहेति स्वाहाध्या' इति पृच्छति ॥ 'वैश्वदेवा इदं  
 वो अर्घ्यं नान्दीमुखाः पितर इति यथालिङ्गमर्घ्यदानं गन्धादिदानं द्विर्द्विः ॥  
 पाणौ होमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेत्यतो देवा अवं-  
 तु नो इत्यद्भुष्टग्रहणम् ॥ पावमानीः शंवतीरैन्द्रीरप्रतिरथं च श्रावयेन्म-  
 धुवाता ऋचः स्थाने उपास्मै गायतेति पञ्च मधुमतीः श्रावयेदक्षन्नमीम-  
 दंतेति च षष्ठी भुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ दद्यात्' इति ॥ चन्द्रिका-  
 यां वृद्धवशिष्टः—'पितृप्रश्ने तु संपन्नं दैवे रुचितमित्यपि ॥ दधिकर्कन्धु-  
 मिश्राश्च पिण्डाः कार्या यथाक्रमम्' ॥ कात्यायनः—'त्यमूषुवाजिनम्' इति  
 विप्रांश्च विसर्जयेत् । 'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्' इत्यक्षय्यस्थाने स्वधां  
 वाचयिष्य इत्यस्य स्थाने 'नान्दीमुखान् पितृन्वाचयिष्ये' इति न स्वधां  
 प्रयुज्जीतेति ॥ अत्र साग्निरनाग्निर्वा आदौ वैश्वदेवं कुर्यात् ॥ 'आदौ वृद्धौ  
 क्षये चान्ते मध्ये श्राद्धे तु पार्वणे ॥ एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते'  
 इत्याशार्के शाङ्खायनपरिशिष्टात् ॥ हेमाद्रौ तु—'शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेव  
 क्रियां ततः । श्राद्धाह्नि श्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेत्' इति चतुर्विंशति-  
 मतान्नान्दीश्राद्धेऽप्यन्ते वैश्वदेव उक्तः ॥ बह्वचानामपि वृत्त्यालोचनात्तथैव  
 पूर्वोक्तं तु येषां परिशिष्टं, तद्विषयमन्यविषयं वा ज्ञेयं ॥ अत्र श्राद्धाङ्ग-  
 तर्पणं नेत्युक्तं प्राक् ॥ इति निर्णयसिन्धौ वृद्धिश्राद्धम् ॥ ॥ अथ जीवत्-  
 जीवत्पितृकः पितृकश्राद्धम् ॥ तत्रानेकपक्षा दृश्यन्ते ॥ जीवन्तं पितरं भोज-  
 श्राद्धनिर्णयः यित्वा परयोः श्राद्धं कुर्यादित्येकः ॥ होमान्तमेव कुर्यादित्य-  
 न्यः ॥ 'होमान्तः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः ॥ पितरं



भोजयित्वा वा पिण्डौ निपृणुयात् परौ 'इति यज्ञपाश्वोक्तेः ॥ 'यदि जीव  
 त्पिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा विरमेत्' इत्यापस्तम्बोक्तेश्च ॥ 'जीवतांपिण्डान  
 श्रौ हुत्वा परेभ्यो देयम्' इत्यपरः ॥ 'जुहुयाज्जीवेभ्य' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥  
 जीवतामजीवतां च पिण्डदानमितीतरः ॥ 'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हि-  
 रण्यकेतुरिति निगमात् ॥ 'तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद्वाभ्यामेव न संशयः'  
 इति भविष्योक्तेर्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः ॥ एते पक्षाः कलौ निषिद्धाः ॥ 'प्रत्य-  
 क्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत् । पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम्'  
 इति पृथ्वीचन्द्रोदयभविष्योक्तेः ॥ चन्द्रिकाप्येवम् ॥ तस्मात्पितरि जीवति  
 श्राद्धानारंभ एवेत्येकः पक्षः ॥ 'सपितुःपितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते'  
 इतिकात्यायनोक्तेः ॥ 'जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्' इति ह्य  
 रीतोक्तेश्च ॥ पितुः पित्रादिभ्यो दद्यादिति सिद्धान्तः ॥ 'ध्रियमाणे तु पि-  
 तरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्' इति मनूक्तेः ॥ 'पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्य  
 पराश्रुतिः' इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ अयं बहुसंमतः पक्षः अन्ये शास्त्राभेदेन  
 ज्ञेयाः ॥ एवं जीवन्मातामहेनाप्यूहेन कार्यम् ॥ 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं  
 कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्' इति विष्णू  
 क्तेः ॥ 'एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके' इति पृथ्वीचन्द्रोदये-  
 ग्निपुराणाञ्च ॥ 'पितरि जीवति तु स्वमातरि मृतायामपि पितुरेव मातृमाता  
 महयोः कुर्यात् ॥ 'येभ्य एव पिता दद्यात्' इति वक्ष्यमाणवचनात्' इति  
 पितामहचरणाः ॥ मदनरत्ने तु 'जीवत्पिता स्वमातृमातामहयोर्दद्यात्' इ-  
 त्युक्तम् ॥ कालादर्शोप्येवम् ॥ मृते तु पितरि जीवन्मातृकः पितामहादिभ्यो  
 वृद्धौ दद्यात्' इति स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः ॥ दाक्षिणात्यास्तु—'पितृवर्गे  
 मातृवर्गे तथा मातामहस्य च । जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्' इति  
 वचनात्तद्गर्गत्याग एवेत्याहुः ॥ एवं पतितसंन्यस्तपितृकादेरपि ज्ञेयं ॥ 'वृद्धौ  
 तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं  
 सुतः' इति षड्विंशन्मतात् ॥ संन्यस्ते जीवतीत्यर्थः ॥ मृते तु संन्यस्ते तदाप्ये



एव देयम् ॥ मृतेपि परेभ्य एवेति गौडाः ॥ कात्यायनोपि—‘ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते। व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ’ ॥ अयं च संन्यस्तपित्रादेरपि शेषात्सर्वश्राद्धेधिकारः ॥ एतन्निदण्डिपरम् ॥ एकादशाहपार्वणवार्षिकाद्यपि तस्यैव ॥ ‘अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते’ । इत्युक्त्वा—‘त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते’ इत्युक्तनसा विशेषोक्तेः ॥ ‘ब्राह्मणादिहते’ इत्यादिनिषेधस्त्वेकदण्डादिपरः ॥ अतः परमहंसानां वार्षिकादिकमपि न कार्यमिति शूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः ॥ इदमेव तु युक्तम् ॥ यत्तु हेमाद्रौ कौण्डिन्यः—‘दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च’ इति, तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् ॥ मैत्रायणीयपरिशिष्टे—‘उद्धाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः’ ॥ तत्रैव—‘महानदीषु सर्वासु तीर्थेषु च गयामृते । जीवत्पितापि कुर्वीत श्राद्धं पार्वणधर्मवित्’ ॥ गयामृते इति मातृव्यतिरिक्तविषयम् ॥ ‘अन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यच्च मृतेहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति’ इति तत्रैवोक्तेः ॥ गयाप्राप्तौ प्रासङ्गिक्यात् ॥ ‘गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं समाचरेत्’ इति वचनात् ॥ तेन मृतमातृको गयायां तत्पार्वणमात्रं कुर्यात् । तज्जीवने तु तीर्थश्राद्धमपि नेति कालादर्शस्मृतिदर्पणादयः ॥ अन्येतु गत्वा श्राद्धं नेति निषेधार्थः ॥ सामान्यतः प्राप्तं तीर्थश्राद्धं भवत्येव गयायामित्याहुः ॥ यदा तु पितुः प्रतिनिधित्वेन गयां याति, तदा यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहा इत्येवं श्राद्धम् ॥ तत्र मातुः पितृपत्नीत्वेनैकोद्दिष्टं कृत्वा मातृत्वेन पुनः पार्वणं कुर्यादिति त्रिस्थलीसेतौ ॥ ‘तच्च फल्गुविष्णुपदाक्षय्यवटेष्वेवेति केचित् ॥ आद्यान्ते एवेत्यन्ये ॥ मध्यमान्ते इत्यपरे ॥ संकोचे हेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानि मातुः कार्याणीत्युक्तं प्रतिभाति ॥ यत्तु मदनपारिजाते—‘न जीवत्पितृकः कुर्याच्छ्राद्धमग्निमृते द्विजः । येभ्य एव पिता दद्याचेभ्यः कुर्वीत साग्निकः’ इति सुमन्तूक्तेः । साग्न्येव जीवत्पितृकस्य



तीर्थादिश्राद्धमुक्तम् । साग्नैरपि मैत्रायणीयशाखीयस्यैव नान्येषाम् । 'षडेते जीवतः पितुः' इति तत्परिशिष्टे एवोक्तेरिति रत्नावलीदिवोदासाद्यास्त-  
 दयुक्तम् ॥ सौमन्तवं पिण्डपितृयज्ञविषयं संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयं वेति  
 पृथ्वीचन्द्रोदयोक्तेः ॥ वृद्धौ तीर्थे चेत्यादेः साधारण्येनास्यापि तथात्वा-  
 च्च ॥ तथा निरग्नैरपि नान्दीश्राद्धमुक्तं प्राक् ॥ एवं पितामहजीवनेपि ज्ञेयम् ॥  
 विशेषः पितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयः ॥ अथ पितामहे जीवति मृते च  
 पितरि यद्यपि 'पितामहो वा तच्छ्राद्धे भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः' इति मनुना  
 जीवतः पितामहस्य भोजनमुक्तं तथापि प्रत्यक्षार्चनस्य पूर्वं निषिद्धत्वात्  
 पितामहं विहाय पितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यो देयम् । 'पिता यस्य तु वृत्तः  
 स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्'  
 इति मनूक्तेः ॥ अयमेव सर्वसंमतः पक्षः ॥ यत्तु छन्दोगपरिशिष्टे— 'पि-  
 तामहे ध्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निर्वपेत् ॥ पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत्  
 प्रपितामहः' इति एकपुरुषं द्विपुरुषं वा पार्वणमाह, तर्त्तीर्थपितृयज्ञपरम् ॥  
 वृद्धौ पूर्वोक्तमेव ॥ एवं पूर्वयोर्मृतयोः प्रपितामहे जीवति पितृमात्रे मृते परयो-  
 र्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयम् ॥ 'जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदके  
 द्विजः' इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ एतत्सर्वं मनसि कृत्वाऽहं हेमाद्रौ विष्णुः—  
 'पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां पितरि पितामहे च  
 जीवति येषां पितामहः, पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात् ॥  
 यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् पराभ्यां दद्यात् ॥  
 यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पि-  
 तामहात्पराभ्यां दद्यात् ॥ यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय  
 प्रपितामहात्पराभ्यां दद्यात् ॥ यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ता-  
 भ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहप्रपितामहाय दद्यात्' ॥ 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं  
 कुर्याद्विचक्षणः । मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्' इति ॥ अत्र  
 पितृवन्मातामहे जीवति तत्पित्रादिभ्यः यथा तत्र त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्त-



आत्रापित्यादि सर्वमतिदेश्यम् ॥ एवं मातृजीवनेपीति शूलपाणिकालाद-  
 शौ ॥ तन्न ॥ येभ्य एवेत्यादौ यच्छब्दादेर्व्यक्तिविशेषवाचित्वेन तदप्रसङ्गा  
 दिति दिक् ॥ उत्तरार्धं व्याख्यातं प्राक् ॥ यत्त्वत्र विज्ञानेश्वरेणोक्तं पित्रे  
 पिण्डं निधायेति पितुरेकोदिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं  
 कुर्यात् ॥ तद्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावपक्षे सपिण्डीकरणस्थानापन्नं ज्ञे-  
 यम् ॥ 'व्युत्क्रमात् प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना' इति वचनात् ॥ द-  
 र्शादौ तु पितुरेकोदिष्टमेव कार्यम् ॥ 'न जीवन्तमतिददाति' इति श्रुतेः ॥  
 'जीवेत्पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत् । पितुरेकस्य दातव्यमेव  
 माहुर्मनीषिणः' इति यज्ञपाश्वोक्तेः ॥ 'पितामहे जीवति वै पितर्येव समा-  
 पयेत्' इति हारीतोक्तेश्च ॥ शिष्टास्तु—'व्युत्क्रमात् प्रमीतानां नैव कार्या  
 सपिण्डता ॥ यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः' इति मा-  
 धवीये स्कान्दोक्तेर्व्युत्क्रममृतसपिण्डीकरणाभावः पितृव्यादिविषय इत्याहुः ।  
 एष विधिर्निषेधरूपः ॥ त्रिषु जीवत्सु विष्णुराह 'त्रिषु जीवत्सु नैव कुर्यात्'  
 इति, तद्वर्शादिविषयम् ॥ नान्दीश्राद्धं तु परेभ्यस्त्रिभ्यो भवत्येवेति कल्पत-  
 रुः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयस्तु—'दद्यात्त्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चैत्रितयं यदि'  
 इति मनुक्तेः सर्वत्र विकल्पः । स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इत्याहुः ॥ सुदर्शन-  
 भाष्ये तु मासिकश्राद्धं जीवत्पित्रादिना व्युत्क्रममृतपित्रादिना च कार्यमेवे-  
 त्युक्तम् ॥ मदनरत्ने क्रतुः—'अष्टकादिषु संक्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु । च-  
 न्द्रसूर्यग्रहे पाते स्वेच्छया पूज्ययोगतः ॥ जीवत्पिता नैव कुर्याच्छ्राद्धं काम्यं  
 तथाखिलम्' ॥ अन्ये विशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये. भट्टकृतत्रि-  
 स्थलीसेतौ च ज्ञेयाः ॥ ॥ इति निर्णयसिन्धौ जीवत्पि-  
 तृकादिश्राद्धम् ॥ अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः ॥ पृथ्वी-  
 चन्द्रोदये मरीचिः— 'बहवः सूर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र

विभक्ताविभक्त-  
 निर्णयः

१ स्वीयमातृमातामहादिभ्यो दानाप्रसङ्गादित्यर्थः । लक्षणायां मानाभावादिति भावः ।  
 मृतमातृकादिरपि पितुरेव पितृमातृमातामहादिभ्यएव दद्यादिति दिगर्थः ॥ इति टीका ॥



वासिनः । सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥ ज्येष्ठस्य कर्तृत्वेऽपि सर्वे फलभागिन इत्यर्थः ॥ तेन ये ब्रह्मचर्यादिनियमास्ते फलितसंस्कारत्वात्सर्वैः कार्याः ॥ एवं संसृष्टिनामपि तुल्यत्वात् ॥ मिताक्षरायां नारदः—‘भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक्पृथक्’ ॥ बृहस्पतिरपि—‘एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् ॥ एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे’ ॥ अत्र यद्यप्यविशेषश्रवणात् ब्रह्मयज्ञसंध्यादिष्वप्यविभक्तानां पृथङ्निषेधः प्राप्नोति, तथापि द्रव्यसाध्यश्राद्धवैश्वदेवादिष्वेव सः ॥ द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वेनैकस्य व्ययेऽनधिकारात् यानि तु द्रव्यासाध्यानि मन्त्रजपोपवाससंध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि तेषु पृथगेवाधिकारः, द्रव्यव्ययाभावेन्यनुमत्यनपेक्षणात् ॥ ‘द्रव्येण वा विभक्तेन’ इत्यस्याविषयत्वात् ॥ ‘पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत्तथा’ इति प्रयोगपारिजाते आश्वलायनस्मृतेश्च ॥ अग्निहोत्रशब्दोऽग्निसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्मपरः । तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेण न्यायसाम्यात् ॥ पितृश्राद्धादिषु तुल्यफलेषु नित्येष्वनुमतिं विनाप्येकस्याधिकारः ‘एकोऽपि स्थावरे कुर्याद्दानाध्ययनविक्रयम् । आपत्काले कुटुम्बार्थं धर्मार्थं च विशेषतः’ । इति वचनात् ॥ धर्मार्थेऽवश्यकर्तव्ये पितृश्राद्धादाविति विज्ञानेश्वरः ॥ केचित्त्वविभक्तानामपि पृथक्पाकत्वे देशान्तरे च दार्शिकाब्दिकयोः पृथक्त्वमाहुः । ‘भ्रातृणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि । वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुयुस्तवै पृथक् पृथक्’ इति हारीतोक्तेः ॥ ‘अविभक्तेन पुत्रेण पितृमेधो मृताहनि ॥ देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्राद्धं तथैव च’ इति यमोक्तेश्चेति ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तदयमर्थः ॥ पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृमनुष्ययज्ञानन्यानुमत्या ज्येष्ठ एव कुर्यात् ॥ ‘होमाग्रदानरहितं न

१—भ्रातृणामित्यविवक्षितम्, अविभक्तानामिति विवक्षितम् । तेन पितृपितामहपुत्र-  
भौत्रादिष्वविभक्तेषु सपिण्डेष्वेकएवधर्म इत्यर्थः ॥



भोक्तव्यं कदाचन ॥ अविभक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं कृतम्' इति व्यासो-  
 क्तेष्व ॥ यस्य तु ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवेन सिद्ध्येत्तेन तूष्णीमग्नौ किञ्चित्क्षि-  
 ष्वा भोक्तव्यम् ॥ यस्य त्वेषामग्रतोन्नं सिद्ध्येत्स नियुक्तमग्नौ कृत्वाग्रं ब्राह्म-  
 णाय दत्वा भुञ्जीतेत्यविभक्ताधिकारे पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलोक्तेः आश्व-  
 लायनस्तु पाकपार्थक्ये पृथक्त्वं तदेकत्वेऽपृथक्त्वमाह 'वसतामेकपाकेन  
 विभक्तानामपि प्रभुः । एकस्तु चतुरो यज्ञान् कुर्याद्वाग्यज्ञपूर्वकान् । अविभ-  
 क्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः । कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान् भोजना-  
 त्प्राग्दिने दिने' इति ॥ ब्रह्मयज्ञसंध्यास्नानतर्पणादि तूक्तहेतोः पृथगेव ॥ दे-  
 वपूजा तूक्तवचनद्वयादेकत्र पृथग्वा ॥ दर्शग्रहणश्राद्धादि त्वेकस्यैव ॥ तीर्थ-  
 श्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेकस्य । भेदेन प्राप्तौ भिन्नम् ॥  
 गयाश्राद्धेऽप्येवम् । 'एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषां तु  
 समवेतानां यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥ तारिताः स्मो वयं तेन स याति परमां  
 गतिम्' इति हेमाद्रौ कौर्मोक्तेः ॥ काम्येऽपि दानहोमादावन्यानुमत्यैवाधिका-  
 रः ॥ द्रव्यासाध्यजपादौ तां विनापि ॥ अपराकैः पैठीनसिः—विभक्तैस्तु  
 पृथक्कार्यं प्रतिसंवत्सरादिकम् । एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम्' ॥  
 सांवत्सरात्पूर्वाणि मासिकान्येकत्रैव । तदाह लघुहारीतः—'सपिण्डीकर-  
 णान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश । पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि  
 क्वचित् ॥ सपिण्डनं मासिकोपलक्षणम् ॥ 'अर्वाकृसंवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्या  
 त्समेत्य तु । ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः पृथक्पृथक्' इति व्यासोक्तेः ॥  
 उशानाः—'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश । एकेनैव तु कार्या-  
 णि संविभक्तधनेऽपि' । मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तानामपि पृथगित्युक्तं  
 प्राक् ॥ यत्तु वृद्धवसिष्ठः—'मासिकं च वृषोत्सर्गं सपिण्डीकरणं तथा ।  
 ज्येष्ठेनैव प्रकर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं तथा' इति ॥ तन्निर्मूलम् ॥ बह्वचपारि-  
 शिष्टे 'नवश्राद्धं सह द्युः' अथ तीर्थश्राद्धम् ॥ तत्र यद्यप्य-  
 स्मत्पितामहकृतत्रिस्थलीसेतुरेव जागर्ति, तथापि किञ्चिदु-  
 च्यते ॥ तत्र यात्रायां—'सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि सं-

तीर्थश्राद्ध-  
निर्णयः



यतः । प्रायश्चित्ती व्रती तीर्थं पत्नीविरहितोपि वा ॥ यज्ञेष्वनधिकारी वा यश्च  
 वा मन्त्रसाधकः' इति कौर्मादिवचनात्साग्नेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः ॥ भारते-  
 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम । न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्ती-  
 र्थे महात्मनः' । स्कान्दे विधवाधर्मेषु 'स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णुनामग्रहं मुहुः'  
 एतत्पुत्राद्यनुमत्यैव ॥ सधवायाः पत्या सहैवेति प्रागुक्तम् ॥ काशीखण्डे-  
 'मातुः पितुः क्षेतुमनास्तथास्थि सुतस्तु कुर्यात् खलु तीर्थयात्राम्' । तद्विधिः  
 स्कान्दे—'तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे । गणेशं च पितृन्  
 विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च ॥ कृतपारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक् पुनः ।  
 आगत्याभ्यर्च्य च पितृन् यथोक्तफलभागभवेत्' ॥ उपवासात् प्राग् मुण्डनं  
 च कार्यम् ॥ 'प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः । कचानां वपनं कु-  
 र्याद्यथा न विकचो भवेत्' इति विष्णूक्तेः ॥ प्रायश्चित्तार्थयात्रायां गयायां  
 चैतदित्येके ॥ केचित्तु हेमाद्रौ भारते—'केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न च शस्य-  
 ते । अतो न कार्यं वपनं गयाश्राद्धार्थिना सदा । ये भारतेस्मिन् पितृकर्मतत्पराः  
 संधार्य केशानतिभक्तिभाविताः । ऋणक्षयार्थं पितृतीर्थमागतास्तेषामृणं संक्ष-  
 यमेष्यति ध्रुवम्' इति निषेधात् ॥ गयायात्राङ्गं वपनं न कार्यमित्याहुः ॥  
 वस्तुतस्तु—'गयाधिकरणकस्यैवायं निषेधः । नतु यात्राङ्गस्य श्राद्धार्थिना'  
 इत्युक्तेः ॥ 'विशालं विरजं गयाम्' इत्यनेनैकवाक्यत्वाच्च ॥ श्राद्धं च  
 षण्णवद्वादशदैवतं वा घृतेन कार्यम् ॥ 'गच्छेद्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स  
 सर्पिषा' इति विष्णुपुराणात् ॥ यात्राङ्गवृद्धिश्राद्धोक्तेश्च ॥ श्राद्धं च पारणादि।  
 एव ॥ 'उपोष्य रजनीमेकां प्रातः श्राद्धं विधाय च । गणेशं ब्राह्मणान्नत्वा  
 भुक्त्वा प्रस्थितवान् सुधीः' इति स्कान्दलिङ्गात् ॥ गौडनिबन्धे गौतमः—  
 'तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेपि च । वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिः-  
 समन्वितम् ॥' वृद्धिपदं तद्धर्मार्थं श्राद्धोत्तरं यात्रासंकल्प इति भट्टाः । वाय-  
 वीये—'उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेपं

१—यात्रायां प्रायश्चित्तार्थगमने पत्नीकस्याप्यधिकारइत्यर्थः ॥ इति टीका ॥



ग्रामं गत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ॥ घृतस्य भोजनं, तच्च क्रोशमध्ये; श्राद्धोत्तरं क्रोशगमननिषेधात् ॥ 'ततः प्रतिदिनं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः' । गयायामेव तन्नान्यत्रेति केचित् ॥ हेमाद्रिस्तु गयायां श्राद्धदिने एव प्रस्थानं ॥ तीर्थान्तरे तु श्राद्धोत्तरदिनइत्याहुः ॥ प्रभासखण्डे—'यच्चान्यंकारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः। स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम्' ॥ यात्रामध्ये आशौचे रजसि वा शुद्धिपर्यन्तं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत् ॥ मार्गवैषम्ये त्वदोषः ॥ यात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादि कार्यमेव ॥ वाणिज्याद्यर्थं गतेन तु मुण्डनोपवासादि न कार्यमिति प्रयागसेतौ भट्टाः ॥ वस्तुतस्तु तत्रापि मुण्डनोपवासश्राद्धादि कार्यम् ॥ 'अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ स्कान्दे—'द्विर्भोजनं तृतीयांशं हरेत्तीर्थफलस्य च । वाणिज्यं त्रींस्तथाभागान् हन्ति सर्वं प्रतिग्रहः' ॥ यानं धर्मचतुर्थांशं छत्रोपानहमेव च ' इत्युत्तरार्धपाठान्तरम् ॥ अत्र नदीषु विशेषः—'मार्गेन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः । अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः' ॥ यत्तु—'पितृनृत्स तर्पयित्वा तु नदीस्तरति यो नरः । तस्यासृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखिताः' इति तत्सरस्वतीपरम् ॥ शङ्खः—'तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् । स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं नतु' ॥ स एव—'न स्तवन्तीमतिक्रामेत्' ॥ अनवसिच्य तीर्थप्राप्तौ तु प्रभासखण्डे—'यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैरनैः । लुटित्वा लोठनीं तत्र कृत्वा कार्पाटिकाकृतिम्' ॥ कृत्वेति गृहान्निर्गमसमये करणे इदम् ॥ 'प्रथमं चालयेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि । अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः' ॥ मन्त्रश्च प्रभासखण्डे—'नमोस्तु देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने । रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥ सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी । सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी' इति मन्त्रवत्सानं च वपनोत्तरं कार्यम् ॥ 'पूर्वमावाहनं तीर्थे मुण्डनं तदनन्तरम् ॥ ततः स्नानादिकं कुर्यात् पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत्' इत्युक्तेः ॥



यत्तु—‘ गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनन्तरम् ’ इति, तन्मुशालस्नानपरम् ॥  
 काशीखण्डे—‘ तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ’ ॥ उपवासे त-  
 न्नैवोक्तम् ॥ ‘ यदहि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदहः पूर्ववासरे । उपवासः प्रक-  
 र्तव्यः प्राप्तेहि श्राद्धदो भवेत् ’ ॥ अत्र—‘ उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि  
 सुव्रतः ’ इति प्राप्तिदिनेषूपवासोक्तेर्विकल्पः ॥ मुण्डने तु स्कान्ददेवलौ-  
 ‘ मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः । वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं वि-  
 रजं गयाम् ’ ॥ विरजं लोणारप्रसिद्धं । महातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः ॥ अत्र  
 विशेषः स्मृत्यन्तरे— ‘ ऊर्ध्वमब्दाद्विमासोनात्पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि । मुण्डनं  
 चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत् । तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते  
 द्विज ’ इति वा पाठः ॥ ‘ प्रयागे प्रतियात्रे तु योजनत्रय इष्यते ॥ क्षौरं  
 कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायात्सितासिते ॥ तथा च बृहस्पतिः— ‘ क्षौरं नैमि-  
 त्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेथ तीर्थके ’ ॥  
 अपरार्के स्कान्दे— ‘ उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केश-  
 श्मश्रुलोमनस्यान्युदक्संस्थानि वापयेत् ’ ॥ इदं प्रयागे सधवानामपि समूलं  
 भवतीति भट्टाः ॥ युक्तं तु—‘ सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम् ।  
 एवमेव हि नारीणां शस्यते वपनक्रिया ’ इति ॥ तच्चारुतचूडानां न कार्य-  
 मिति केचित् ॥ तत्त्वं तु नैमित्तिकत्वात्पित्रादिमृतवत्कार्यमेवेति ॥ तदपि  
 प्रयागे नित्यम् ॥ नान्यत्र ॥ तच्च यतिभिस्तीर्थेपि ऋतुसंधिष्वेव कार्यं  
 नान्यदा ॥ ‘ कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत् ’ इति स्मृतेः ॥ इदं जी-  
 पत्पितृकेणापि तीर्थे कार्यम् ॥ नच ‘ मुण्डनं पिण्डदानं च ’ इतिदक्षवचनेन  
 निषेधः ॥ ‘ विना तीर्थं विना यज्ञं मातापित्रोर्मृतिं विना । यो वापयति लो-  
 मानि स पुत्रः पितृघातकः ’ इति स्मृत्या तत्संस्मृत्वात् ॥ तदपि प्रयागे  
 प्रतियात्रम् अन्यतीर्थे आद्ययात्रायामेवेति शिष्टाः ॥ ततः स्नानम् ॥ परार्थे  
 तु मार्कण्डेयपुराणे— ‘ मातरं पितरं जायां भातरं सुहृदं गुरुं ! यमुद्दिश्य नि-  
 मज्जेत अष्टमांशं लभेत सः ’ ॥ पैठीनासिः— ‘ प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवा-



रिणि मज्जयेत् ॥ मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोष्टभागफलं लभेत् ॥ ततस्तर्पणश्राद्धे  
 पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्मदेवीपुराणकाशिखण्डादिषु ॥ ‘अकालेप्यथ वा काले  
 तीर्थश्राद्धं च तर्पणं । अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत्’ ॥ मात्स्ये-  
 ‘पितृणां चैव तर्पणम्’ इति तुर्यपादः ॥ तत्र देवता महालये प्रागुक्ताः ॥  
 शङ्खदेवलौ— ‘तीर्थद्रव्योपपत्तौ च न कलामवधारयेत् । पात्रं च ब्राह्मणं  
 प्राप्य सद्यः श्राद्धं समाचरेत्’ ॥ हारीतः— ‘दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्तो  
 वोषोषितोपि वा ॥ न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम्’ ॥ भारते—  
 ‘भुक्तो वाप्यथ वाभुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा । पर्वकालेथ वा काले शु-  
 चिर्वाप्यथ वाशुचिः ॥ यदैव दृश्यते तत्र नदी च त्रिपथा प्रिय ॥ प्रमाणद-  
 र्शनं तस्मान्न कालस्तत्र कारणम्’ ॥ आशौचेपि कार्यम् ‘विवाहदुर्गयज्ञेषु  
 यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत्’ इति पैठी-  
 नसिस्मृतेः ॥ तदानीमकरणे त्वाशौचान्ते एव कुर्यात् ॥ प्रभासखण्डे-  
 ‘न वारं नच नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम् । यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसह-  
 स्रकम्’ ॥ मलमासेपि कार्यं ‘नित्ये नैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन्मलिम्लुचे ।  
 तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च’ इति बृहस्पतिस्मृतेः ॥ एत-  
 द्वाशौचे प्रकृतभोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्तावाम-  
 हेमश्राद्धविषयं ग्रहणादिवत् ॥ नतु बुद्धिपूर्वमाशौचादौ तीर्थप्राप्तिः कार्या ॥  
 मलमासे तु मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति चन्द्रिकायां देवीपुराणे ‘श्राद्धं  
 च तत्र कर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम्’ ॥ हेमाद्रौ— ‘अर्घ्यमावाहनं चैव  
 द्विजांगुष्ठनिवेशनम् । तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत्’ ॥ भवि-  
 ष्ये— ‘आवाहनं विसृष्टिश्च तत्र तेषां न विद्यते । आवाहनं न तीर्थे स्या-  
 द्वार्घ्यदानं तथा भवेत् ॥ आहूताः पितरस्तीर्थे कृतार्घ्याः संति वै यतः’ ॥  
 अग्नौकरणं च नेति रत्नावल्याम् ॥ अत्र षड्देवते श्राद्धेपि मात्रादीनां पि-  
 ण्डमात्रं देयम् । ‘हविःशेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमादृतः । क्रमशः पितृपत्नीनां  
 पिण्डनिर्वपणं चरेत्’ इति तीर्थोपक्रमे देवलोकेरिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ततः



सामान्यपिण्डं दद्यात् ॥ 'ततःपिण्डमुपादाय हविषः संकृतस्य च । ज्ञा-  
तिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यं पिण्डमुत्सृजेत्' इति तेनैवोक्तेः ॥ पाद्मे- 'ती-  
र्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः । आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि' ॥  
पिण्डद्रव्याणि देवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च 'सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः  
पायसेन वा । कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा' पिण्डानां तीर्थ-  
प्रक्षेप एव । नान्या प्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक् ॥ एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यम्  
न सपुत्रयेत्युक्तं प्राक् ॥ 'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन' इति  
स्मृतेश्च । अनुपनीतेनापि कार्यम् ॥ 'एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु'  
इति पाद्मे तीर्थश्राद्धमुपक्रम्योक्तेः एतच्च जीवत्पितृकेणापि कार्यमित्यु-  
क्तं प्राक् ॥ 'न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम् । त्यक्तं संन्यास-  
योगेन ग्रहधर्मादिकं व्रतम् ॥ गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमातृकुलं धनम्' इति  
स्मृतेः ॥ गयायां तूक्तं वायवीये- 'दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः ।  
दण्डं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते । गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपे यूपे वटे  
तथा । दण्डं प्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते' ॥ कृतरत्नेप्रभासखण्डे-  
'तीर्थे चेत् प्रतिग्रह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः ॥ दशांशमर्जितं दद्यादेवंकुर्वन्  
हीयते' इति ॥ विशेषान्तराणि भट्टकृतत्रिस्थलीसेतौ ज्ञेयानीति दिक् ॥  
इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तीर्थश्राद्धविधिः समाप्तः ॥



श्रीः ।

## अथ आशौचप्रकरणम् ।

श्रीनणेशाय नमः ॥ अथाशौचप्रकरणं प्रारभ्यते ॥ नारायणात्मजः  
 श्रीमद्रामकृष्णस्य सूनुना । कमलाकरसंज्ञेनाशौचं निर्णीयतेधुना ॥ १ ॥  
 मरीचिः—‘आचतुर्थात् भवेत्स्नावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूति  
 स्यादशाहं सूतकं भवेत् ॥ स्नावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम् ।  
 पाते मातुर्यथामासं सपिण्डानां दिनत्रयम् ’ । अत्र सर्वत्र मूलं मिताक्षरायां  
 जननाशौचम् ज्ञेयम् ॥ अत्र मासत्रये त्रिरात्रं स्यादित्यनुवादः ॥ रजस्वला-  
 त्वेनैव तत्सिद्धेः ॥ यद्यप्यनेन चतुर्थमासेपि त्रिरात्रं प्राप्नोति  
 तथापि—‘षणमासाभ्यन्तरं यावद्गर्भस्नावो भवेद्यदि । तदा माससमैस्तासां  
 दिवसैः शुद्धिरिष्यते—’ इत्यादिपुराणात् । ‘ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्नावे  
 विशुध्यति ’ इति मनूके ‘ गर्भस्नावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः ’ इति म-  
 रीच्युक्तेश्चतूरात्रं ज्ञेयम् ॥ अचिरे त्रिमासमध्ये ॥ उत्तमे ब्राह्मणे ॥ अत्र  
 सपिण्डानां स्नानम् ॥ ‘ सद्यःशौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ’ इति तत्रै-  
 वोक्तेः ॥ एतदाचतुर्थमासात्पाते त्रिदिनस्योक्तेः ॥ अकारणायाः शुद्धेरसं-  
 भवात्सद्यःपदं स्नानपरम् ॥ एवमग्रेपि ॥ ‘ गर्भस्नावे स्नानमात्रं पुरुषस्य ’ इति  
 वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ पुरुषस्येति सपिण्डोपलक्षणं पूर्वोक्तवचनात् ॥ आ-  
 चतुर्थमासं सपिण्डानां न स्नानं, किंतु पुंस एव ॥ पाते त्रिदिनं निर्गुणपरम् ॥  
 गुणवतस्तु—‘ अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपिण्डानां तु सर्वे  
 षामेकरात्रमशौचकम् ’ इति यमोक्तेरेकाह इति मदनपारिजातः ॥ सप्तम-  
 मासादि दशाहम् ॥ एतत्सर्ववर्णविषयम् ॥ ‘ तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते  
 तथैव च ’ इति व्याघ्रोक्तेः ॥ पराशरः—‘ जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भू-  
 मिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ’ ॥ संवर्तः—‘ जाते पुत्रे  
 पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । माता शुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं  
 पितुः ’ ॥ पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौ न पितुः स्नानमिति हारलतायाम् ॥ तत्र ॥



पुत्रपदस्य 'पौत्री मातामहस्तेन' इति कन्यायामपि प्रयोगात् ॥ यच्च तत्रै-  
 वोक्तम्—'सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः । कृत्वा सचैलं स्नानं  
 तु शुद्धो भवति तत्क्षणात्' इत्यादिपुराणान्मुखदर्शनोत्तरमेव पितुः स्नानमि-  
 ति ॥ तन्न ॥ विदेशे मुखदर्शनावध्यस्पृश्यतापत्तेः ॥ मुखदर्शनोत्तरं पुनः स्नाना-  
 र्थमिदमिति स्मार्तगौडाः ॥ तन्न ॥ मूलैक्येन ज्ञानमात्रपरत्वात् । इदं सर्ववर्ण-  
 समम् ॥ 'सूतिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेण शुद्ध्यति । ऋतौ च न पृथक् शौचं  
 सर्ववर्णेष्वयं विधिः' इति हारलतायां प्रचेतसोक्तेः । यत्तु ब्राह्मे—'ब्राह्म-  
 णी क्षत्रिया वैश्या प्रसूता दशभिर्दिनैः । गतैः शूद्रा च संस्पृश्या त्रयोदशभि-  
 रेव च' इति ॥ प्रयोगपारिजाते पारस्करः—'द्विजातेः सूतिका या  
 स्यात्सा दशाहेन शुद्ध्यति । त्रयोदशोह्नि संप्राप्ते शूद्रा शुद्ध्यत्यसंशयः' इति, त-  
 दस्पृश्यत्वपरम् ॥ अङ्गिराः—'सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते ।  
 संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते ॥ नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न  
 गच्छति । रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते' ॥ संसर्गो मैथुनम् ॥  
 स्पर्श इत्यन्ये ॥ मातुरेव सूतकम्, तां स्पृशतश्चेति हारलतायां सुमन्तूक्तेरिति  
 तन्न ॥ 'संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते' इति स्नानमात्रोक्तेः ॥ सौ-  
 मन्तवचनस्य स्नानपर्यन्तमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात् ॥ एवकारो बालस्पृश्य  
 त्वार्थः ॥ माधवस्तु—'यस्तैः सह सपिण्डोपि प्रकुर्याच्छयनाशनम् । बा-  
 न्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुद्ध्यति' इति बृहस्पतिस्मृतेः शयनासना-  
 दिरूपं संसर्गमाह ॥ पराशरः—'यदि पत्न्यां प्रसूतायां द्विजः संपर्कमृच्छति ।  
 सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित्' ॥ पितृवत्सापत्नमातुः प्राक्स्नाना-  
 दस्पृश्यत्वम् । सूतिकास्पर्शे तु यावदाशौचं 'अन्याश्च मातरस्तद्वत्तद्गृहं न व्र-  
 जन्ति च' इति ब्राह्मोक्तेरिति शुद्धितत्त्वादयः ॥ तन्न ॥ 'तद्गृहं गत्वा सू-  
 तिकां यदि न स्पृशति, तदा स्पृश्याः अन्यथा ने'ति तस्यार्थः ॥ कर्मा-  
 नधिकारमाह पैठीनसिः—'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि का-  
 रयेन्मासेन स्त्रीजननीम्' ॥ इदमाशौचोत्तरम् । अन्यथा शूद्राः सपिण्डा-



नामाशौचे तदभावः स्याद्विध्यनुवादविरोधश्च ॥ एतच्च सोमयागादिश्रौतभिन्न-  
 परम् ॥ 'प्रजातायाश्च दशरात्राद्धर्षं स्नानात्' इतिकात्यायनोक्तेः ॥ व्या-  
 सः—'प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्र-  
 जन्मनि' ॥ पुत्रशब्दोपत्यमात्रपरः ॥ ब्राह्मे—'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते  
 द्विजन्मनाम् । आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा' । जनने विशेषः  
 प्रागुक्तः ॥ अत्र प्रयोगपारिजातः पुंसवे दशाहः क्यपत्ये तु त्र्यहः, 'पुंज-  
 न्मनि सपिण्डानां दशाहाच्छुद्धिरिष्यते । त्र्यहादेकोदकानां च एकाहं सूतकं क  
 चित् । स्त्रीजन्मनि सपिण्डानां सोदकानां त्र्यहाच्छुचिः । स्त्रीषु त्रिपुरुषं ज्ञेयं  
 सपिण्डत्वं द्विजोत्तमाः' इत्यग्निस्मृतेरित्याह ॥ मेधातिथिरपि—'अप्रत्तानां  
 तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वासिष्ठमुक्त्वा 'आशौचे एवैतत्, विवाहे  
 तु अवधिर्दर्शित एव इत्याह ॥ अन्ये तु त्रिपुरुषसापिण्ड्यस्य कर्त्तव्यकन्यापर  
 त्वमाहुः ॥ 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् । प्रत्तानां भर्तृ-  
 सापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः' इति कौर्मविरोधाच्च ॥ अत्रेदं तत्त्वम् 'पञ्चमा-  
 त्सप्तमाद्धीमान् यः कन्यामुद्वहेद्द्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः' इत्यारिविरोधा-  
 त्रिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम् । वासिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तेः ॥ तेन कन्या  
 प्रसवेपिसाप्तपौरुषं दशरात्रमेव ॥ नच कन्यापुत्रकृतं प्रसवेबलाबलं क्वाप्युक्तम् ॥  
 अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पोर्विगीतावेति सर्वसिद्धान्तः ॥ अन्यथा त्रिपुरुषं सपि-  
 ण्डानामष्टमादिसोदकानां च त्र्यहं साम्यायोगात् ॥ चतुर्थादिसप्तमान्तानां च  
 किमपि न स्यात् ॥ तेन कन्याप्रसवे दशाह एव ॥ किंच—स्त्रीजन्मोद्देशेन त्रि-  
 पुरुषं सापिण्ड्यं तेषां च त्रिरात्रमित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् ॥ वाक्यभेदा-  
 पत्तेः ॥ नच चतुर्थादीनां सोदकत्वं क्वापि सिद्धम् ॥ तेन त्रिपुरुषं चतुर्थादी-  
 नां स्त्रीजन्मनि सोदकत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादवि-  
 रोधो वाक्यभेदद्वयं चेत्यसंवादाथार्थाग्निस्मृतिर्हेया ॥ अथ मृता-  
 शौचम् ॥ हारीतः—'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां  
 दशाहम्' इति स्वाशौचपरम् ॥ जातमृते नालच्छेदोर्ध्वम्, 'याव-

मृताशौच-  
निर्णयः



न्न छिद्यते नालं तावन्नामोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु वि-  
 धीयते' इति जैमिन्युक्तेः 'नाड्यां छिन्नायामाशौचम्' इति हारोतोक्तेश्च ॥  
 नाडीछेदात्प्राक् मातुःस्पर्शेऽपि न दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता ॥ नाभि  
 च्छेदात्प्राक्मृतौ तु बृहन्मनुः—'जीवजातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु । सूत  
 कं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम्' ॥ इदं च प्रसवाशौचमेव, शावनिमित्तं  
 स्नानमात्रम् 'प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम्' इति शङ्खोक्तेः ॥ अत्र कश्चिदाह-  
 'नामकरणमाशौचान्तकालोपलक्षणम्' ॥ 'आशाचव्यपगमे नामधेयम्' इति  
 विष्णुक्तेः 'आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते' इति मनुक्तेश्च  
 नाम्नो नियतकालत्वात् ॥ नच-- 'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वापि  
 कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते' इति मनु  
 क्तेरनियतकालत्वम् । दशम्यामतीतायां विप्रः । द्वादश्यामतीतायां क्षत्रि-  
 यः । वैश्यः षोडशे । शूद्र एकत्रिंशे इत्यपि ज्ञेयम् । पुण्यइत्याद्यनुक-  
 ल्पः ॥ तेन नाम्नः कालोपलक्षणम् ॥ एवं दन्तजननेऽपि 'दन्तजन्म स-  
 त्तमे मासि' इत्युपनिषदि नियतकालत्वात् । चोले तु न कालोपलक्ष-  
 णम् 'प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुति चोदनात्' इति मनुक्तेः 'ततः संव-  
 त्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तव्यं स्मृतिदर्शनात्'  
 इति यमोक्तेश्च तस्यानियतकालत्वात् इति ॥ तन्मन्दम् ॥ 'चौलवन्नामद-  
 न्तजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्त्वोपपत्तेस्तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात्  
 सप्तममासादर्वागदन्तजनने तदभावप्रसङ्गाच्च ॥ यस्तूपनिषद्दर्शनेन निर्णयं कुर्या-  
 त्स नूनं 'शतायुःपुरुषः' इति श्रुतेरर्वाकिपट्टमरणे तदन्त्यकर्मापि त्यजेत् ॥  
 ननु कालानुपलक्षणे नामोत्कर्षे तदभावे वा स्नानमात्राच्छुद्धिः स्यात् ॥ ततः  
 किम् ॥ अस्तु अत एवोक्तं 'आदन्तजन्मनः सद्यः' इति ॥ सा च विष्णुव-  
 चनाद्वाहाभावविषयेति वक्ष्यामः ॥ त्रिवर्षादावपि स्यादिति चेत् ॥ न ॥ दाहदन्ता  
 दिनिमित्तैर्विशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् ॥ तदुक्तम्--'पूर्वाबाधेन नोत्पतिरु-  
 त्तरस्य हि सिध्यति' इति ॥ 'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे च' इति प-  
 रिशिष्टे 'द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णे तथापरे । अष्टादशेऽहनि तथा वद-



न्यन्ये मनीषिणः' इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च ॥ नच प्राथ-  
 म्यादशरात्रेऽतीति इति मुख्यः कालः अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम् ॥ चौलेपि  
 तथापत्तेः ॥ नच दन्तजननकालानुपलक्षणे सदन्तजातमृतस्य दाहैकाहप्रस-  
 ज्ञः ॥ दशाहे न बाधात् ॥ नामकरणोत्तरमेव दाहप्रवृत्तेः ॥ 'दशाहाभ्यन्तरे  
 बाले प्रमीति तस्य बान्धवैः । शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते' इति  
 बृहन्मनूक्तेश्च ॥ आशौचं दाहोपलक्षणम् ॥ 'सूतकवत्' इति पारस्क-  
 रोक्तेः ॥ यत्तु विष्णुः—'अनिवृत्ते दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति । सद्य  
 एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया' इति—तदपि प्रेताशौचनिषेधार्थं न  
 तु सद्यस्त्वपरम् ॥ वाक्यभेदात् ॥ किञ्च—नामकालात्प्राक्मृतस्य स्नानम्,  
 तदुत्तरं त्वेकाहादि, नामकाले त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपि स्यात् ॥ अथ  
 शङ्खवचने ल्यब्लोपेपञ्चमी, तदा प्रागिति नोपपद्येत ॥ 'नाम्नि वापि कृते स-  
 ति' इति मन्वादिविरोधात् ॥ कृतनाम्न इति माधवमिताक्षरादिविरोधाच्च न  
 कालोपलक्षणं क्वापीति दिक् ॥ नामोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राग्दाहे  
 दन्तोत्पत्तेः प्रागा- सत्यहः ॥ 'अदन्तजाते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा । सपि-  
 शौचनिर्णयः ण्डानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम्' इति यमोक्तेः ॥ दाहा-  
 भावे तु स्नानमात्रम् ॥ 'अदन्तजाते प्रेते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारः' इति  
 विष्णुना दाहाभावे तदुक्तेः ॥ 'आ दन्तजन्मनः सद्यः' इति याज्ञवल्कीया-  
 च्च ॥ दाहविकल्पं चाह लौगाक्षिः—'तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमे-  
 व च । सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम्' ॥ अन्यत्राकृतचूडे अत्र चू-  
 डाकरणं तृतीयवर्षरूपकालोपलक्षणार्थमिति मेधातिथिहरदत्तो मनुरपि—  
 'न त्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वा-  
 पि कृते सति' इति ॥ उदकं दाहोपलक्षणम् ॥ दन्तोत्पत्त्यन-  
 दन्तोत्पत्त्यनन्तर- न्तरं प्राक्त्रिवर्षान्तान्मृतेऽहः ॥ 'दन्तजातेप्यकृतचूडे त्वहो-  
 माशौचनिर्णयः रात्रेण शुद्धिः' इति विष्णूक्तेः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडे-

१—'बालस्त्वन्तर्दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति । सद्य एव विशुद्धिः स्यान्नाशौचं नैव  
 सूतकम्' इत्यत्रिस्मृतिस्तु स्वाग्रहविसंवादिवादेव त्यक्तेति धन्योऽयं स्वनिबन्धकरणाग्रहः ॥



ऽकृतचूडे वा प्रागुपनयनात्त्र्यहः ॥ 'यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः । तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत्' इत्यङ्गिरसोक्तेः ॥ अकृतायामपि चूडायां त्रिवर्षोर्ध्वं दाहादि नियतम् ॥ 'नात्रिवर्षस्य' इति वचनात् ॥ कृतायां वर्षत्रयत्वादपि तन्नियतं तूष्णीमेव ॥ अत्र जातदन्तत्वमुद्देश्यविशेषणत्वादविवक्षितं दाहयित्वेत्यप्यनुवादः ॥ उभयविधौ वाक्यभेदात् ॥ त्रिवर्षात्प्राक् चूडाभावेऽग्निदाने त्र्यहस्तदभावे विष्णूक्तेरेकाह इतिमाधवः ॥ यत्तु कश्चिदाह—अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात्त्रिवर्षोर्ध्वमपि तत्सिद्धिः ॥ विज्ञानेश्वरोक्तं च त्रिवर्षोर्ध्वमकृतचूडाविषयत्वं चिन्त्यम् ॥ जातदन्तपदवैयर्थ्यादिति तत्तुच्छम् ॥ दाहस्याविधेयत्वात् ॥ 'नृणामकृतचूडानामशुद्धिनैशिकी स्मृता' इतिमनूक्तेः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वमेकाहापत्तेरर्थात् त्र्यहासिद्धेः ॥ त्वयाप्यग्रे तथाङ्गीकारात्पदवैयर्थ्यस्य साम्याद्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलं मिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन ॥ प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य सदा त्र्यहः ॥ 'निवृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' इतिमनूक्तेः ॥ एतत्सर्वं प्रागुक्तं सपिण्डानाम् ॥ मातापित्रोस्तु दशाहोर्ध्वं मृते सर्वत्र त्रिरात्रम् ॥ 'बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेण शुद्धिः' इति कश्यपोक्तेः ॥ 'वैजिकादभिसंबन्धादनुरुध्यादधं त्र्यहम्' इतिमनूक्तेश्च ॥ शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—'अजातदन्तमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते । दन्तजाते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ' इतिकौर्मात्काश्यपं शूद्रपरम् ॥ 'अनूढानां तु कन्यानां तथा वै शूद्रजन्मनाम्' इतित्र्यहानुवृत्तौ शंखोक्तेः ॥ 'त्रिरात्रं तु भवेच्छूद्रे षण्मासेपि शिशौ मृते' इति मात्स्यसूक्ताच्च ॥ दन्तजाते शूद्रे तु पञ्चाहः ॥ यथाहाङ्गिराः—'शूद्रे त्रिवर्षान्यूने तु मृते शुद्धिस्तु पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते ॥ षड्वर्षान्तमतीतो यः शूद्रः संप्रियते यदि मासिकं तु भवेच्छौचमित्याङ्गिरसभाषितम्' इति ॥ यत्तु 'अनूढभार्यः शूद्रस्तु' इति शंखोक्तं मासाशौचं, तत्समुण-शूद्रपरम् ॥ निर्गुणे त्वनूढभार्ये शूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वं द्वादशाहः ॥ षडब्दोर्ध्वं मासः ॥

१ अयं च पाठोऽन्यपुस्तकेषु न दृश्यते ॥



षडब्दात्प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः ॥ एतत् 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति विरोधाच्छिष्टविगानान्नादर्थव्यमिति विज्ञानेश्वरादयः । दाक्षिणात्यानां तथैव । अन्यदेशे प्रागुक्तमिति गौडाः ॥ एवं कन्यास्वपि ॥ तास्वप्यजातदन्तासु मृतासु पित्रोरेकरात्रमिति माधवः ॥ यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तम्— 'ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि' इति याज्ञवल्क्योक्तेः गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाहं जाते उभयोः कृतनाम्नि सोदराणां चेति पैङ्ग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति तन्नेदानीं प्रचरति ॥ अत एव स्मृत्यर्थसारेतच्चादृतम् ॥ कन्यासु चौलात्प्राङ्मृतौ स्नानम् ॥ 'अचूडायां तु कन्यायां सद्यः शौचं विधीयते' इत्यापस्तम्बोक्तेः इदं त्रिपुरुषमध्ये ॥ 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ इदं वाग्दानोत्तरम् इति गौडाः ॥ तन्न ॥ 'अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' इति वचनात् ॥ चौलोत्तरं वाग्दानात्पूर्वं तास्वेकाहः ॥ 'अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः । त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते' इत्यङ्गिरसा त्रिरात्रविषयेऽहोविधानात् ॥ अतः शूद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वं त्रिरात्रम् ॥ विवाहोत्कर्षे तु षोडशाब्दमध्ये त्रिरात्रमेवेत्यपरार्काद्याः ॥ शूद्रे निर्गुणे तु त्र्यब्दोर्ध्वं पञ्चाहः ॥ षडब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावे द्वादशाहमिति गौडाः । सगुणानां षोडशाब्दोर्ध्वं तु विवाहाभावेपि पूर्णाशौचं वक्ष्यते ॥ तदुत्तरं प्राग्विवाहाद्भर्तृकुले च सप्तपुरुषावधि त्रिरात्रम् ॥ 'अवारिपूर्वं प्रत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम्' इति मरीच्युक्तेः ॥ रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शङ्खः— 'पितृवेश्मनि या नारी रजः पश्यत्यसंस्कृता । तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति' ॥ यावज्जीवमाशौचमिति वाचस्पतिमिश्राः ॥ अथानुपनीते किञ्चिदुच्यते ॥ नाम्नः पूर्वं खननमेव ॥ तदूर्ध्वं वर्षत्रयात्पूर्वं चौलाभावेऽग्न्युदकदानविकल्पः ॥ 'नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया । जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति' इति मनूक्तेः ॥ उदकक्रियासाहचर्याद्वाहोपलक्षणम् ॥ खनने तु नान्यदूर्ध्वदेहिकम् ॥



‘ऊनद्विवर्षं निखनेन कुर्यादुदकं ततः’ इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ उदकमन्त्यकर्मपरमित्यपरार्कः ॥ यमः—‘ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद्भुवि । यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन्’ ॥ माधवीये ब्राह्मेपि—‘स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथ वा । अजातदन्तो मासैर्वा मृतः सद्भिर्गैतैर्वहिः ॥ वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निःक्षिपेत्तु काष्ठवत् ॥ खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधीयते’ ॥ अलंकरणमपि वक्ष्यते ॥ कृतचूडस्य तु त्रिवर्षात्प्रागूर्ध्वं वायुदकदानं नियतम् ॥ यत्तु वसिष्ठः—‘ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रम्’ इति । तत्प्रथमाब्दचूडापरम् ॥ वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम् ॥ वर्षत्रयोर्ध्वमुपनयनात्पूर्वं च तूष्णीमवायुदकदानम् ॥ ‘तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च’ इति पूर्वोक्तलौगाक्षिस्मृतेः पिण्डदानमपि कार्यम् ॥ ‘असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु’ इति प्रचेतसोक्तेः ॥ ‘उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य’ इति गौतमोक्तेः ॥ उदकग्रहणमौर्ध्वदेहिकपरमिति हरदत्तः ॥ ‘द्वादशाद्वत्सरादर्वाक् पौगण्डं मरणे सति । सपिण्डीकरणं न स्यादेकोद्दिष्टानि कारयेत्’ इति हरदत्तधृतदेवलोक्तेः ॥ मरीचिरपि—‘प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्गर्भमन्त्रविवर्जितम्’ इत्येतदनुपनीतपरमिति विज्ञानेश्वरः ॥ अत्र चूडैव पूर्वावधिः ॥ पूर्ववाक्ये तु तद्ग्रहणात् ॥ उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वाद्वाहः पूर्वावधिरिति केचित् ॥ द्वादशाद्वत्सरादित्यनुपनीतद्विजानूढशूद्रविषयम् ॥ ग्रहाशौचे पिण्डदानविधिमाह पारस्करः—‘प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः’ इति ॥ अत्र देवयाज्ञिकनिबन्धे विशेषः—‘शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखः । कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिवन्धनात् ॥ आपञ्चवर्षात्कौमारं पौगण्डो नवहायनः’ । तथा—‘गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते । परं च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना’ ॥ तथा—‘यत्र प्रमीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते । किञ्चित्समानवयसां संस्कृत्याचं



यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च सुखभक्षिका । तद्वस्त्राणि प्रदे-  
यानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमाराणांच बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् ।  
यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते ॥ तथा—‘भूमिनिक्षेपणं बाले आवर्षद्वय-  
माशिखम् । ततः परं स्वगश्रेष्ठ देहदाहो यथाविधि ’ अचूडेप्यूध्वं स्वनननि-  
वृत्त्यर्थमावर्षद्वयमिति ॥ प्रागपि कृतचूडस्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिखमिति ॥ तथा  
‘चूडाकर्माणि संजाते विपत्तिस्तु यदा भवेत् । सूतकान्ते प्रकर्तव्यं वृषस्यो-  
त्सर्जनं तथा ॥ तत्र दाहः प्रकर्तव्य उदकं तत्र निश्चितम् । श्राद्धानि षोडशापि  
स्युः सपिण्डीकरणं विना ’ ॥ इदं पञ्चवर्षोत्तरम् ‘जन्मतः पञ्चवर्षाणि भुङ्क्ते  
दत्तमसंस्कृतम् । पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते । वृषोत्सर्गादिकं कर्म  
कर्तव्यमुदकं ततः । अहन्यहनि संप्राप्ते कुर्यात् श्राद्धानि षोडश ॥ पायसेन गु-  
डेनैव पिण्डं दद्याद्यथाक्रमम् । उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च ॥ दीप-  
दानानि यत्किञ्चित्पञ्चवर्षाधिके सदा । कर्तव्यं तु स्वगश्रेष्ठ व्रतार्वाक् प्रेतवृ-  
त्तये ॥ स्वाहाकारेणैव कार्याण्येकोदिष्टानि षोडश । ऋजुदर्भैस्तिलैः शुक्लैः प्राची-  
नावीतिना तथा’ इति तत्रैवोक्तेः ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ वार्षिकादि तु न  
भवत्येव ॥ सपिण्डनाभावे पितृत्वायोगाद्वचनाभावाच्च ॥ दिवोदासीये—  
‘अव्रत निधनं प्राप्ते विप्रादौ शूद्रजातिवत् । क्रियाः सर्वाः समुद्दिष्टाः सपिण्डी-  
करणं विना ॥ उदकं पिण्डदानं च कृतचूडे विधीयते’ इति ॥ स्त्रीणां तूद्वा-  
हात्प्रागुदकपिण्डदानविकल्पः ॥ ‘स्त्रीणां चैके प्रत्तानाम्’ इति गौतमो-  
क्तः ॥ ‘स्त्रीशूद्राश्च सधर्माणः’ इतिवचनात् शूद्रेष्ववधू ॥ एतद्वयोनिमित्ता-  
शौचं सर्ववर्णसमम् : ‘तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च’ इति व्याघ्र-  
पादोक्तः ॥ यानि तु— ‘निवृत्तचूडके विप्रे त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते’ इति ।  
‘निवृत्ते क्षत्रिये षड्भिर्वैश्ये नवभिरुच्यते । शूद्रे त्रिवर्षे न्यूने तु मृते शुद्धिस्तु  
पञ्चभिः । अत ऊर्ध्वं मृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते । षड्वर्षान्तमतीते तु शूद्रे  
मासमशौचकम्’ इत्याङ्गिरसादीनि—तानि विशिष्टविगानाच्चादत्तव्यानीति  
विज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः ॥ तेनैतद्वशाच्छूद्राणां व्यवस्था प्रागुक्ता



हेयैव ॥ 'तुल्ये वयसि सर्वेषाम्' इति दाक्षिणात्यपरम् ॥ अन्यदेशे कौ-  
 र्मोक्ता व्यवस्थेति शुद्धितत्त्वे ॥ अथ जात्याशौचम् ॥ तच्च  
 जात्याशौचम् द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वं प्रवर्तते 'त्रिरात्रमाव्रतादेशादशरात्रमतः  
 परम् । क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ॥ त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य  
 तदर्धं न्यायवर्तिनः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ यत्तु स एव— 'त्रिरात्रं दश-  
 रात्रं वा शावमाशौचमिष्यते' इत्याह— तत्र दशाहे त्रिरात्रमस्पृश्यत्वं ॥ एक-  
 दिनोत्पन्ने आशौचद्वये दशाहमस्पृश्यत्वम् ॥ 'मरणं यदि तुल्यं स्यान्मरणेन  
 कथंचन । अस्पृश्यं तु भवेद्गोत्रं सर्वमेव सबान्धवम्' इत्याङ्गिरसोक्तेः । द-  
 शाहाशौचपरत्वे 'दशरात्रमतः परम्' इत्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति शुद्धिविवे-  
 कादयः ॥ तत्र ॥ स्मृतिभेदात्रिरात्रं दशरात्रं वेति विकल्पायोगाच्च ॥ यस्तु  
 पुत्राणां वेदानध्याप्यवृत्तिं विदधाति तत्राहाश्वलायनः— 'द्वादशरात्रं महा-  
 गुरुषु दानाध्ययने वर्जयेरन्' इति ॥ अत्र यावदुक्तनिषेधो वास्पृश्यत्वमात्रं  
 वा न तु कर्मानधिकारः ॥ एकादशाहान्ते वैश्वदेवोक्तेः ॥ 'एकादशाहिकं मुक्त्वा  
 तत्र ह्यंते विधीयते' इति ॥ शुद्धितत्त्वे तु— 'त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भ-  
 वन्ति माता पिताचार्यश्च' इति विष्णूक्तेः पित्रादयो महागुरवः । भर्ताप्युक्ते  
 रामायणे 'पतिर्वन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च' ॥ ज्ञातातपः— 'पतिरेको  
 गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः' ॥ एकपदमूढानां पितृमातृनिषेधार्थ-  
 म् ॥ सोदकानां त्रिरात्रम् 'त्र्यहात्तूदकदायिनः' इति मनूक्तेः ॥ अग्निपु-  
 राणे— 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । समानोदकभावस्तु निवर्तते  
 चतुर्दशे ॥ जन्मनामस्मृतेर्वैके तत्परं गोत्रमुच्यते' ॥ बृहस्पतिः— 'दशा-  
 हेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्य-  
 न्ति गोत्रजाः' ॥ स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वं जात्याशौचम् ॥ 'वैवाहिको

१—एतेन पतिरेवविवाहोत्तरं स्वस्वशाखावेदमध्यापयेत् । अत एव तासामपि कठित्वा-  
 दिव्यवहारः ॥ 'आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च' इति स्मृत्युक्तगुरुनामग्रहण-  
 निषेधादेव भार्या पत्युर्नाम न गृह्णाति ॥



विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः' इत्युक्ते : 'दत्तानां भर्तुरेव हि' ॥ 'स्व-  
जात्युक्तमशौचं स्यान्मृतके जातके तथा' इति माधवीये ब्राह्म्याच्च ॥  
शूद्रस्य विवाहाभावेपि षोडशवर्षोर्ध्वं मासः ॥ 'अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशा-  
द्वत्सरात्परम् । मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ॥ शुद्धिं सम-  
धिगच्छन्ति नात्र कार्या विचारणा' इत्यपराकैः शङ्खोक्तेः ॥ निर्णयामृत  
मदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तम् हारीतः- 'आमौर्जीबन्धनाद्विप्रः क्षत्रि-  
यश्च धनुर्ग्रहात् । अप्रतोदग्रहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात्' । धनुःप्रतोदाव-  
ष्टमेन्दे द्वादशो वस्त्रद्वयमिति ॥ मेधातिथिस्तु- 'त्रिरात्रमाव्रतादेशात्' इ-  
त्यत्र व्रतं कालोपलक्षणार्थम् । स च कालः स्वकीयः सर्वेषां चाष्टमवर्षरूपः ।  
तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेऽप्यष्टमादूर्ध्वं पूर्णमेवाशौचम् । तत्रापि  
'प्रागष्टमाच्छिशवः प्रोक्ताः' इति स्मृत्यन्तरादूर्ध्वं संपूर्णमर्वाक्त्रिरात्रम् ।  
येपि 'आषोडशाद्भवेद्बालः' इत्याहुः । तेषामप्यष्टमादूर्ध्वं शूद्रे मास एव  
'ऊर्ध्वमष्टम्यो वर्षेभ्यः शुद्धिः शूद्रस्य मासिकी' इति वचनादित्याह ॥ हार-  
लताशुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्युक्तम् 'अनुपनीतो विप्रः' इत्युक्त्वा- 'मि-  
यते यत्र तत्र स्यादाशौचं व्यहमेव हि । द्विजन्मनामयं कालस्त्रयाणां तु षड-  
ब्दिकः' इत्यादिपुराणोक्तेरुपनयनं कालोपलक्षणम् ॥ षडब्दपदं मासत्रया-  
धिकपरम् ॥ 'गर्भाष्टमेष्टमे वाब्दे' इत्युक्तेः ॥ यत्तु जाबालः- 'व्रतचूडा  
द्विजानां च प्रतीतिषु यथाक्रमम् । दशाहव्यहएकाहैः शुद्ध्यन्त्यपि हि नि-  
र्गुणाः' इति द्विजा दन्ताः । इदं प्रतीतिष्वित्युक्तेः पञ्चाब्दोपनीतपरमिति ॥  
तदेतन्नाद्रियन्ते वृद्धाः ॥ यानि तु पराशरः- 'एकाहाद्बालणः शुद्ध्येद्योगि-  
वेदसमन्वितः । व्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः' ॥ केवलवेदः के-  
वलश्रौताग्नेरप्युपलक्षणम् ॥ अयं संकोचो होमाध्ययनपर एव न तु संध्यादा-  
विति हारलतायाम् ॥ आङ्गिराः- 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा ।  
दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोब्रवीत्' ॥ देवलः- 'आशौचं दशरात्रं तु

१-वैश्यानां कृषेर्वृत्त्यर्थात्त्वाद्धुर्यवाहनार्थं प्रतोदग्रहणं भवति ॥



सर्वेषामपरे विदुः । निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम् ॥ अत्यन्तो-  
त्कृष्टस्य कर्महानौ पीडावतो विप्रपरिचर्यापरम् ॥ शूद्रे दशरात्रमिति हारलता-  
याम् ॥ दक्षः— ‘सद्यःशौचं तथैकाहहृदयहृत्तुरहस्तथा । षट्दशद्वादशाहश्च  
पक्षो मासस्तथैव च ॥ मरणान्तं तथा चान्यदशपक्षास्तु सूतके ॥’ मिताक्ष-  
रायां स्मृत्यन्तरे—‘चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षणिशाः पुंसि पञ्चमेषष्ठे चतुरहा-  
च्छुद्धिः सप्तमे त्वंहेरेव तु ॥’ इत्यादीनि तान्यापदनापद्रुणवदगुणवादिषयाणि  
देशान्तरभेदाद्वा ज्ञेयानि । सद्यःशौचादिषडहान्ताः पक्षा यायावरादिपराः ।  
अत्र मरणान्तं जननादिनिमित्ताद्भिन्नम् ॥ ‘अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यम-  
प्याचरेन्न तु’ इत्युक्तत्वान्मधुपर्कपश्चालम्भवत् शिष्टविगानान्नादर्थव्यमिति  
विज्ञानेश्वरः ॥ ‘अस्नात्वा चाप्यहुत्वा च अदत्वाश्वंस्तथा द्विजः । ए-  
वंविधस्य विप्रस्य सर्वदा सूतकं भवेत्’ इति दक्षोक्ता ‘अन्यपूर्वा यस्य  
गेहे भार्या स्यात्तस्य नित्यशः । आशौचं सर्वकार्येषु देहे भवति सर्वदा’ इति  
ब्राह्मादिवशाद्व्यवस्थेत्यपरार्कमदनपारिजातादयः ॥ माधवस्तु—‘वृत्तस्वा-  
ध्यायसापेक्षमद्यसंकोचनं तथा’ इतिकलिवर्ज्येषूक्तेः—‘दशाह एव विप्र-  
स्य सपिण्डे मरणे सति । कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलो भवति किल्बिषी’  
इति हारीतोक्तेश्च न्यूनाशौचपक्षा युगान्तरविषया । मरणान्तादिपक्षास्तु नि-  
न्दार्थवादः अन्यथा—‘नामधारकविप्रस्तु दशाहसूतकी भवेत्’ इति वि-  
रोधः स्यादित्याह ॥ यत्तु देवलः—‘दशाहादित्रिभागेन कृते संचयने क्रमात् ।  
अङ्गस्पर्शनमिच्छन्ति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः’ इति पूर्णाशौचे स्पृश्यतामाह । य-  
च्चानुपनीतातिक्रान्ताशौचे त्रिरात्रादौ तेनैवोक्तं—‘स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्प-  
र्शनं तु त्रिभागतः’ इति—तदपि युगान्तरेषु ॥ ‘अस्थिसंचयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्श-

१—अत्रिपराशरयोस्तु ‘दिनत्रयात्’ इत्येव पाठो दृश्यते । २—इदं च ‘कलौ पराशराः  
स्मृताः’ इति कलिमुद्दिश्यैव प्रवृत्तायाः पराशरस्मृत्युगान्तरपरत्वं वदन्तस्तु स्वीयप्रति-  
भाभारकान्तचेतस एव ॥



नमेव च ' इति माधवीये कलौ तन्निषेधात् ॥ यत्तु हारलतायाम्—'चतुर्थे-  
 हनि कर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणेन तु' इति प्रचेतसोक्तेः ह्येकाहाशौचेऽपि चतु-  
 र्थाह एवाङ्गस्पर्श इति ॥ तन्न ॥ देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वात् ॥ ये  
 तु वर्णसंकरजा मूर्धावसिकाद्यास्तेषामाशौचे विशेषः कलौ नोपयुक्त इति नो-  
 च्यते ॥ प्रतिलोमजानां नाशौचम् ॥ मलापकर्षणार्थं तु स्नानमात्रमिति वि-  
 ज्ञानेश्वरः ॥ माधवस्तु—'शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवर्णस्य संकराः' इति  
 ब्राह्मोक्तेः शूद्रवदाह ॥ हारलतायामप्येवम् ॥ दत्तक्रीतकृत्रिमादिपुत्रेषु अही-  
 नवर्णगासु स्त्रीषु च सपिण्डत्वेऽपि प्रसवे मरणे च पूर्वापरपित्रोर्भर्तुश्च त्रिरात्रमेव  
 न दशाहादि । 'अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च । परपूर्वासु भार्यासु प्र-  
 सूतासु मृतासु च ' इति त्रिरात्रानुवृत्तौ विष्णुक्तेः ॥ सपिण्डानां त्वेकाहः ।  
 'परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । भर्तृपित्रोस्त्रिरात्रं स्यादेकाहस्तु सपिण्डतः'  
 इति माधवीये हारीतोक्तेः । 'सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः । एकाहस्तु  
 सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः' इति मरीच्युक्तेश्च ॥ शंखः—'अनौरसेषु  
 पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च । परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते' ॥  
 परपूर्वा पुनर्भूः ॥ इदं सवर्णासु ॥ हीनवर्णासु तु शंखलिखितौ—'परपूर्वासु  
 भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च । नानध्यायो भवेत्तस्य नाशौचं नोदकक्रिया' ॥  
 ब्राह्मेपि—'आशौचं तु त्रिरात्रं स्यात्समवर्णेषु निश्चितम्' ॥ यत्तु षडशी-  
 तौ—'अन्यपूर्वावरुद्धासु त्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते । तास्वेवानन्यपूर्वासु पञ्चा-  
 होभिर्विशुध्यति' ॥ तत्र पञ्चाहेमूलं चिन्त्यम् ॥ यत्तु याज्ञवल्क्यः—'अ-  
 नौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च' इत्येकाहमाह तदसंनिधौ ज्ञेयम् ॥ यदा  
 पितुरेकाहस्तदा सपिण्डानां स्नानम् ॥ 'अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च ।  
 गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता' इति प्रजापत्युक्तेः ॥ पितेति

१—कलिवर्ज्येष्वपि संन्यासाग्निहोत्रयोस्त्वाचरणम्, स्मार्तस्याप्यङ्गस्पर्शस्यानाचरणम्,  
 शुद्धिविवेकादिषु स्पर्शस्याप्यचरणम्, अत्र निदानं केवलं स्वस्वाग्रह एव । तस्माद्यत्र कृते  
 श्रुतिस्मृतिसंवादेन निषेधः, तन्नाचरणीयम्, मधुपर्कगवालम्भे 'न हिंस्यात्सर्वं भूतानि'  
 इति श्रुतिसंवादात् कलिवर्ज्यत्वमिव ॥



बोदुरुपलक्षणम् ॥ तथोपक्रमात् ॥ यत्तु दत्तके पालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात्पूर्वपितुर्न त्रिरात्रम् ॥ पूर्वसंबन्धनिवृत्तेश्च न दशाहादीति कश्चित् ॥ तन्न ॥ जनकेपि— 'बैजिकादाभिसंबन्धादनुरुध्यादधं व्यहम्' इति वाचनिकाशौचस्यानिर्वार्यत्वात् ॥ पितृमरणेपि दत्तकादीनां त्रिरात्रम् ॥ शुचित्वे ब्राह्मे— 'दत्तकश्च स्वयं दत्तः कृत्रिमः क्रीत एव च' इत्युपक्रम्य— 'सूतके मृतके चैव व्यहाशौचस्य भागिनः' इत्युक्तेः ॥ स्मृतिकौमुद्यां हारलतायामप्येवम् ॥ दत्तकस्य पुत्रपौत्राणां जनने मरणे वा सपिण्डानामेकाहः ॥ बीजिनश्चेति गौतमेन साप्तपौरुषसापिण्ड्योक्तेः ॥ सपिण्डानां चैकाहस्योक्तत्वात् ॥ सपिण्डे तु पुत्रीकृते सपिण्डदत्तोरस्योर्भात्रोस्तत्पुत्रयोर्दशाह एव । तत्राकाङ्क्षाभावात्सपिण्डत्वेन दशाहप्राबल्याच्च ॥ पूर्वापरयोर्भर्तुर्रुपंन्नयोः पुत्रयोस्त्वाह ॥ माधवीये मरीचिः— 'मातुरैक्याद्विपितृकौ भ्रातरावन्यगोत्रजौ । एकाहं सूतके तत्र त्रिरात्रं मृतके तयोः' इति दिक् ॥ ऊढकन्यानां तु विष्णुराह— 'सं-  
ऊढकन्यानां  
माशौचम्  
स्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे, तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च' इति— प्रसवे एकरात्रं मरणे त्रिरात्रमिति विज्ञानेऽवरापसकौ ॥ माधवस्तु— प्रसवेपि त्रिरात्रं पित्रोः, एकरात्रं भ्रात्रादिन्बधुवर्गस्य, 'दत्ता नारी पितुर्गृहे सूयेताथ म्रियेत वा ॥ तद्वन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः' इति ब्राह्मोक्तेरित्याह ॥ यत्तु कश्चिदाह— पक्षपदेन भ्रातरो गृह्यन्ते ॥ वाक्यान्तरेण भगिनीमृतौ त्रिरात्रोक्तेरिति तच्चिन्त्यम् ॥ तदभावे तद्विरोधाच्च । भ्रातुः प्रसवे एकाहः । मृतौ त्रिरात्रमिति केचित् ॥ युक्ता तु पक्षिणी । 'परस्परं मृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत्' इति ब्राह्मात् ॥ भ्रातृभिन्नानामेकाहः । वर्गोक्तेः । 'इतरेषां तु यथाविधि' इति वक्ष्यमाणवचनाच्च ॥ यत्तु प्रधानगृहे मृतौ पित्रोः पूर्णं भ्रातृगृह इति कश्चित् स निर्मूलत्वात् 'नाशौचं पितृपक्षे' इत्येतद्विरोधाच्च भ्रान्तः ॥ 'दत्ता नारी पितुर्गृहे प्रधाने सूयते यदा ॥ म्रियते वा सदा तस्याः पिता शुध्येत्रिभिर्दिनैः' इति कल्पतरौ शुद्धितत्त्वे च ॥ पतिगृहे प्रसवे तु पित्रादीनामाशौचं नास्ति ॥



मृतौ पित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव ॥ 'प्रताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु चामाता-  
 पित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि । अजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रम्' इति  
 माधवीये शंखकाष्णाजिनिस्मृतेः ॥ 'बैजिकादभिसंबन्धात्' इत्युक्तेश्च ॥  
 स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ॥ माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम् । दन्तोत्पत्तेः प्रागे  
 करात्रं पित्रोः । 'सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः । प्रदत्तायां त्रि-  
 रात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत्' इति पुलस्त्योक्तेः । अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः  
 पक्षिणीत्याह ॥ षडशीतावपि-पितृगेहादतोऽन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते ।  
 पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चयः' इति ग्रामान्तरे इयमिति स्मृ-  
 त्यर्थसारे भातुस्तु पक्षिणी ॥ 'श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले ।  
 पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्' इति वृद्धवृहस्पतिस्मृतेः । शु-  
 द्धितत्त्वे कौर्मै- 'आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात्  
 त्रिरात्रं स्यादशरात्रमतः परम्' ॥ पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरा-  
 त्रम् 'पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत् ॥ त्रिरात्रेणैव  
 शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः' इति माधवीये वृद्धमनू  
 क्तेः ॥ इदं दशाहान्तः ॥ ऊर्ध्वं तु पक्षिणी ॥ भातुर्भगिनीगृहे, तस्या वा तद्गृहे मृतौ  
 त्रिरात्रम् । अन्यत्र तु पक्षिणीति षडशीतावुक्तम् ॥ ब्राह्मेपि- 'परस्परं मृतौ  
 भातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् । मातुलाशौचवत्पुण्याः पितृव्याशौचमिष्यते'  
 इति ॥ शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः ॥ त्रिंशच्छ्लोक्या-  
 'प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियर्त्विक्सयाज्यस्वस्त्रयषु त्रिरात्रं त्रिदि-  
 वसमशुचिः सोदकस्तूभयत्र । पक्षिण्याशौचमृत्विगदुहितृसुतसहाध्यायिब-  
 न्धुत्रयान्तेवासिश्चश्रूसुमित्रश्चशुरभगिनिकाभागिनेयप्रयाणे ॥ मातामह्यां च  
 पित्रोः स्वसरि च विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषय-  
 नृपतौ ग्रामनाथे च जष्टे । शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रा-  
 न्नानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम् । रात्रिं सब्रह्मचारिण्यथ  
 पि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तु-



दौहित्रभा-  
गिनेययोः

ल्यम् ' इति ॥ अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम् ॥ दौ-  
हित्रभागिनेययोरुपनीतयोस्त्रिरात्रम् ॥ अनुपनीतयोः पक्षि-  
णी ॥ 'संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते  
तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः' इति वृद्धमनूक्तेः ॥ संस्कृते दाहेन ॥  
तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडाः ॥ तत्र ॥ विशेषवैयर्थ्यात् ॥ मातुला-  
दौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था ॥ मनुः—'त्रिरात्रमाहुराशौ-  
चमाचार्यैः संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः' ॥

श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् । 'श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रम-  
श्रोत्रिये स्वगृहेमृते शुचिर्भवेत्' इति स्मृतेरिति माधवः ॥ एकग्रामीणे त्वेकाहः ॥

ऋत्विक्षु बह्वल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये ॥ यद्यपि कर्म कु-  
र्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्वि-  
क्त्वग्विषये कत्वमुक्तं तथापि कर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैतज्ज्ञेयम् ॥

गौडास्तु—'एकोदकानां तु व्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे  
मण्डलाधिपतौ तथा' इति जाबालोक्तेर्मातृबन्धुष्वेकाहमाहुः ॥ शिष्ये स्वो-  
पनीते व्यहः ॥ 'शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारिषु क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः' इति  
माधवीये बौधायनोक्तेः ॥ अन्यत्र तु मनुः—'मातुले पक्षिणीं रात्रिं शि-  
ष्यत्विग्वान्धवेषु च' इति ॥ बन्धुत्रयम्—आत्मपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः  
पितुःपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः ॥ मातुःपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राश्चे-

पितृष्वस्त्रा-  
दिकन्यानाम्

ति विज्ञानेश्वरः ॥ अत्र पक्षिणी ॥ 'पितृष्वस्त्रादिकन्यानामूढानां  
त्वेकाहः ॥ तद्वन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्तब्राह्मात् यत्तु  
षडशीत्याम्—'एवं पित्रोर्भगिन्यौ ये ये पितामहयो-  
स्तथा । ये मातामहयोश्चैव भगिन्यौ तत्प्रजाश्च याः ॥ मातुलाः स्वस्य  
पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः ॥ भ्रातरश्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे  
व्यहम् ॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपदि स्मृतम्' ॥ यच्च यमः—'जामा-  
तरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता ॥ पक्षिणी शालकानां स्यादिति शा-



मृतौ पित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव ॥ 'प्रताप्रत्तासु योषित्सु संस्कृतासंस्कृतासु च।माता-  
 पित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि । अजातदन्तासु पित्रोरेकरात्रम्' इति  
 माधवीये शंखकाष्ण्णाजिनिस्मृतेः ॥ 'बैजिकादभिसंबन्धात्' इत्युक्तेश्च ॥  
 स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ॥ माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदन्तपरम् । दन्तोत्पत्तेः प्रागे  
 करारं पित्रोः । 'सद्यस्त्वप्रौढकन्यायां प्रौढायां वासराच्छुचिः । प्रदत्तायां त्रि-  
 रात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेत्' इति पुलस्त्योक्तेः । अन्यत्र कन्यामृतौ पित्रोः  
 पक्षिणीत्याह ॥ षडशीतावपि—पितृगेहादतोऽन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते ।  
 पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चयः' इति ग्रामान्तरे इयमिति स्मृ-  
 त्यर्थसारे भातुस्तु पक्षिणी ॥ 'श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले ।  
 पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्' इति वृद्धबृहस्पतिस्मृतेः । शु-  
 द्धितत्त्वे कौर्मे—'आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् । आप्रदानात्  
 त्रिरात्रं स्यादशरात्रमतः परम्' ॥ पित्रोर्मृतौ स्त्रीणां त्रिरा-  
 त्रम् 'पित्रोरुपरमे स्त्रीणां मूढानां तु कथं भवेत् ॥ त्रिरात्रेणैव  
 शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः' इति माधवीये वृद्धमनू-  
 केः ॥ इदं दशाहान्तः ॥ ऊर्ध्वं तु पक्षिणी ॥ भातुर्भगिनीगृहे, तस्या वा तद्गृहे मृतौ  
 त्रिरात्रम् । अन्यत्र तु पक्षिणीति षडशीतावुक्तम् ॥ ब्राह्मेपि—'परस्परं मृतौ  
 भातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत् । मातुलाशौचवत्पुण्याः पितृव्याशौचमिष्यते'  
 इति ॥ शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः ॥ त्रिंशच्छ्लोक्यां-  
 'प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियत्विक्सयाज्यस्वस्त्रयषु त्रिरात्रं त्रिदि-  
 वसमशुचिः सोदकस्तृभयत्र । पक्षिण्याशौचमृत्विग्दुहितृसुतसहाध्यायिब-  
 न्धुत्रयान्तेवासिश्चश्रूसुमित्रश्चश्वशुरभगिनिकाभागिनेयप्रयाणे ॥ मातामह्यां च  
 पित्रोः स्वसरि च विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषय-  
 नृपतौ ग्रामनाथे च नष्टे । शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रा-  
 नूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम् । रात्रिं सब्रह्मचारिण्यथ  
 तु कथमपि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं घासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तु-



दौहित्रभा-  
गिनेययोः

ल्यम् ' इति ॥ अत्र मूलं मिताक्षरादौ स्पष्टम् ॥ दौ-  
हित्रभागिनेययोरुपनीतयोस्त्रिरात्रम् ॥ अनुपनीतयोः पक्षि-  
णी ॥ 'संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते । संस्कृते  
तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः' इति वृद्धमनूक्तेः ॥ संस्कृते दाहेन ॥  
तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति गौडाः ॥ तन्न ॥ विशेषवैयर्थ्यात् ॥ मातुला-  
दौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था ॥ मनुः—'त्रिरात्रमाहुराशौ-  
चमाचार्यैः संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः' ॥

श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रम् । 'श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रम-  
श्रोत्रिये स्वगृहेमृते शुचिर्भवेत्' इति स्मृतेरिति माधवः ॥ एकग्रामीणे त्वेकाहः ॥

ऋत्विक्षु बह्वल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे त्रिरात्रैकरात्रे ज्ञेये ॥ यद्यपि कर्म कु-  
र्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति शम्बराचार्यैः कर्ममध्ये ऋत्वि-  
ऋत्विग्विषये कत्वमुक्तं तथापि कर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैतज्ज्ञेयम् ॥

गौडास्तु—'एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम् । मातृबन्धौ गुरौ मित्रे  
मण्डलाधिपतौ तथा' इति जाबालोक्तेर्मातृबन्धुष्वेकाहमाहुः ॥ शिष्ये स्वो-  
पनीते त्र्यहः ॥ 'शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारिषु क्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहः' इति  
माधवीये बौधायनोक्तेः ॥ अन्यत्र तु मनुः—'मातुले पक्षिणीं रात्रिं शि-  
ष्यत्विग्वान्धवेषु च' इति ॥ बन्धुत्रयम्—आत्मपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः  
पितुःपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राः ॥ मातुःपितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्राश्चे-

पितृष्वस्रा-  
दिकन्यानाम्

ति विज्ञानेश्वरः ॥ अत्र पक्षिणी ॥ 'पितृष्वस्रादिकन्यानामूढानां  
त्वेकाहः ॥ तद्वन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति पूर्वोक्तब्राह्मात् यत्तु  
षडशीत्याम्—'एवं पित्रोर्भगिन्यौ ये ये पितामहयो-  
स्तथा । ये मातामहयोश्चैव भगिन्यौ तत्प्रजाश्च याः ॥ मातुलाः स्वस्य  
पित्रोश्च पत्न्यश्चैषां प्रजाश्च याः ॥ भ्रातरश्चेति सर्वेषु पक्षिणी स्वगृहे  
त्र्यहम् ॥ एवं श्वशुरजामातृदौहित्रविपदि स्मृतम्' ॥ यच्च यमः—'जामा-  
तरि मृते शुद्धिस्त्रिरात्रेणोभयोः स्मृता ॥ पक्षिणी शालकानां स्यादिति शा-



तातपोब्रवीत्' इति ॥ निर्मूलत्वान्मिताक्षरादिविरोधाच्चोपेक्ष्यम् ॥ मद-  
नपारिजाते विष्णुः— 'असपिण्डे स्ववेशमनि मृते एकरात्रम्' ॥  
अत्र हरदत्तः— 'अन्तःशवे च' इत्यापस्तम्बसूत्रमन्तःशवे ग्रामे धनुः—  
शतादर्वागन्नमभोज्यम् । दीपमुदकुम्भं वोपनिधाय तु भुञ्जीत यदि समा-  
नवंशं न गृहमेवं सूतिकायामित्याह ॥ प्रधानगृहमृतौ तु— 'गृहे यस्य  
मृतः कश्चिदसपिण्डः कथंचन । तस्याप्याशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र  
संशयः' इत्यङ्गिरसोक्तमिति माधवः ॥ एतेन 'त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे सं-  
स्थितेषु च' इति कौर्म व्याख्यातम् ॥ शुद्धितत्त्वे बृहन्मनुः— 'श्वशूद्रपतिता-  
श्वान्त्या मृताश्चेद् द्विजमन्दिरे । शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा ॥  
दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः ॥ द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये  
मासचतुष्टयात् ॥ अत्यन्ते वर्जयेद्देहमित्येवं मनुब्रवीत्' ॥ अन्त्योस्लेच्छः  
अत्यन्तः श्वपाक इति वाचस्पतिः ॥ तत्रैव यमः— 'द्विजस्य मरणे वेश्म  
विशुध्यति दिनत्रयात्' ॥ संवर्तः— 'गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तस्थशवदू-  
षिते । प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ गोमयेनोपलिप्याथ  
छागेन प्रापयेद्बुधः ॥ ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः ॥ सर्वमभ्युक्षये-  
द्देश्म ततः शुध्यत्यसंशयम्' ॥ बृहद्विष्णुः— 'ग्राममध्यगतो यावच्छ-  
वस्तिष्ठति कस्यचित् । ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात्' ॥  
गृहे पश्वादौ मृतेऽप्येवम् ॥ यत्तु माधवीये प्रचेतसा मातृष्वस्त्रादिषु त्रिरा-  
त्रमुक्तम् 'मातृष्वसामातुलयोः श्वश्रूश्चशुरयोर्गुरोः । मृते चर्त्विजि याज्ये  
च त्रिरात्रेण विशुध्यति' इति । गुरुराचार्यः । ऋत्विक्कुलागतः ॥ तत्स्व-  
गृहमृतौ ज्ञेयम् ॥ श्वशुरयोरन्यत्र मृतावपि संनिधौ त्रिरात्रम् ॥ असंनिधौ  
पक्षिणी ॥ देशान्तरे एकरात्रम् ॥ वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति माधवगौडादयः ॥  
अन्यत्र तु मातृष्वस्त्रादिषु पक्षिणी ॥ 'पित्रोः स्वसारि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपये-  
त्तृणाम्' इति बृह्ममन्त्रोक्तेः ॥ यत्तु बृह्ममनुः— 'भगिन्यां संस्कृतायां तु  
पि च संस्कृते । मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥ शालके त-



पराशरोक्तेः ॥ मातुलत्वादिसम्बन्धे त्रिरात्रम् 'असंबन्धिद्विजान्वहित्वा द-  
 हित्वा च सद्यःशौचम्, संबन्धे त्रिरात्रम्' इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ गौत-  
 ममिताक्षरायां वृद्धात्रिः 'सूतकाद्विगुणं शवं शावाद्विगुणमार्तवम् ।  
 आर्तवाद्द्विगुणा सूतिस्ततोपि शवदाहकः' ॥ अत्र पूर्वोक्तोत्तरनिवृत्तिरित्य-  
 र्थः ॥ विष्णुः—'मृतं द्विजं न शूद्रेण हारयेत् शूद्रं द्विजेन' ॥ देवलः—  
 'ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकक्रियाम् । यदि कुर्याच्चरेत्कच्छं पुनः  
 संस्कारमेव च' ॥ याज्ञवल्क्यः—'आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हत्यापि ब्र-  
 ती ब्रती' । अनुगमने तु सपिण्डे न दोषः 'विहितं हि सपिण्डानां प्रेतनि-  
 र्हरणादिकम् । तेषां करोति यः कश्चित्तस्याधिक्यं न विद्यते' इति देवलो-  
 क्तेः ॥ 'दोषः स्यात्त्वसपिण्डस्य तत्रानाथक्रियां विना' इति हारीतोक्तेश्च ॥  
 समोत्कृष्टवर्णे तु माधवीये कण्वः—'अनुगम्य शवं बुद्ध्या स्नात्वा स्पृष्ट्वा  
 हुताशनम् । सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुध्यति' इति ॥ 'हीनवर्णे  
 तु क्षत्रियेऽहः, वैश्ये पक्षिणी, शूद्रे त्रिरात्रम्, क्षत्रियस्य वैश्येऽहः, शूद्रे पक्षि-  
 णी, वैश्यस्य शूद्रेहः' इति विज्ञानेश्वरः ॥ माधवस्तु—'विप्रस्य वैश्ये द्व्य-  
 हः, क्षत्रस्य शूद्रेऽप्येवम्, अन्यत्प्राग्वत्, स्नानाग्निस्पर्शघृताशनानि सर्वत्रे-  
 त्याह ॥ हीनवर्णस्य दाहौर्ध्वदेहिककरणे तु ब्राह्मे—'ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न  
 कुर्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥ कामालोभात्तथा मोहात्कृत्वा तज्ज्ञातितां व्रजेत्' ॥  
 मनुः—'वात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च । अभीचारमहीनं च  
 त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति' ॥ परेषां सर्ववर्णानां हीनेषु तद्वैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गु-  
 रोदने निर्णयः ॥ अथ रोदने समोत्तमवर्णयोः संचयनात्पूर्वं स-  
 चैलस्नानमूर्ध्वमाचमनम् । हीनवर्णेषु तु संचयात्प्राक् सचैलमूर्ध्वं  
 स्नानमात्रम् ॥ विप्रस्य क्षत्रवैश्यविषये तु ब्राह्मे—'अस्थिसंचयने विप्रो रौति  
 चेत्क्षत्रवैश्ययोः । तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेहनि शुध्यति । कृते तु संचये  
 विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत्' । क्षत्रस्य वैश्येऽप्येवम् । शूद्रे तु संचयात्प्राक् वि-  
 प्रस्य त्रिरात्रम् । क्षत्रवैश्ययोर्द्विरात्रम् । ऊर्ध्वं तु द्विजानामेकाहः । शूद्रस्य



शूद्रे स्पर्शं विना संचयात्पूर्वमेकाहः । ऊर्ध्वं सज्योतिरिति माधवीये ज्ञेयम् ॥  
 शुद्धितत्त्वे पारस्करस्तु- ' अस्थिसंचयनादूर्ध्वं मासं यावद्विजा-  
 तयः ॥ दिवसेनैव शुध्यन्ति वाससां क्षालनेन च ॥ सजातेर्दिवसेनैव व्यहा-  
 तक्षत्रियवैश्ययोः ' इत्युक्तम् ॥ सपिण्डानां रोदननिर्हारादावदोष इत्युक्तं प्रा-  
 क् ॥ विज्ञानेश्वरस्तु- ' मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् । वर्ज-  
 येत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादिकर्म च ' इति पारस्करोक्तेः सर्वत्रकैरात्रमाह ॥ अ-

थाशौचाभक्षणे विष्णुः- ' ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृ-  
 आशौचात्रभ-  
 क्षणे निर्णयः देवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचम् यावत्तेषामाशौचव्यपगमे  
 प्रायश्चित्तम् ' इति ॥ अज्ञाने त्वङ्गिराः- ' अन्तर्दशाहे भु-  
 क्त्वान्नं सूतके मृतकेपि वा ॥ अस्याशौचं भवेत्तावद्यावदन्नं व्रजत्यधः ' ॥  
 प्रायश्चित्तं त्वमत्या विप्रस्य वर्णक्रमेणैकाहत्र्यहपञ्चाहसप्ताहोपवासाः, दश  
 विंशतिः षष्टिः शतं च प्राणायामाः, पञ्चगव्याशनं च अभ्यासे द्विगुणम् । आ-  
 पदि तु प्राणायामशतं पञ्चशतमष्टशतमष्टसहस्रं गायत्रीजपश्च । मत्यापदि तु  
 सवर्णाशौचे त्रिरघमर्षणं गायत्र्यष्टसहस्रं च । क्षत्रियाशौचे उपवासस्तत्र वैश्या-  
 शौचे त्रिरात्रोपवासश्च । शूद्राशौचे कृच्छ्रः । क्षत्रवैश्ययोः पञ्चशतमष्टशतं गा-  
 यत्रीजपः । उत्तमेषु शूद्रस्य सर्वत्र स्नानम् । मत्यानापदि विप्रस्य वर्णेषु सां-  
 तपनकृच्छ्रमहासांतपनचान्द्राणि । अभ्यासे तु मासिकद्वैमासिकत्रैमासिकषा-  
 ण्मासिकानीत्यादि माधवीयादौ ज्ञेयम् ॥ अथ दासस्य स्वदास्युत्पन्नस्य  
 सपिण्डमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्ये स्पृश्यत्वम् ॥ भक्तदासस्य व्यहोर्ध्वम् ॥  
 ' सद्यःस्पृश्यो गर्भदासो भक्तदासस्यहाच्छुचिः ' इति स्मृत्यन्तरोक्तेः ' मूल्य  
 कर्मकराः शूद्रदासीदासास्तथैव च । स्नाने शरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यद्वेषिताः ' इ-  
 तिज्ञातातपोक्तेश्च ॥ एतच्चानन्यसाध्ये तत्कार्यमात्रे ॥ अन्यत्र मासाद्याशौ-  
 चमस्त्येव ॥ एवं दास्यामपि । सूतिकायास्तस्या अस्पृश्यत्वमपि मासमात्रम्  
 ' दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत् । तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्या  
 मासस्तु सूतकम् ' इत्यङ्गिरसोक्तेः ॥ षडशीतावपि- ' स्वामिशौचेन दासा-



द्याः स्पृश्या मासात्तु कर्मसु । योग्याः स्युर्मासतो दासी सूती चेत्स्पृश्यतामि-  
यात्' ॥ दत्तदासादीनां स्वसपिण्डमरणादौ स्वाम्याशौचसमसंख्यदिनोर्ध्वं  
सत्यपि मासाद्याशौचे स्वामिकार्ये स्पृश्यतेति हरदत्तः ॥ 'दासान्तेवासिभृ-  
तकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः । स्वामितुल्येन शौचेन शुध्यन्ति मृतसूतके' इति  
बृहस्पतिस्मृतेः ॥ दासश्चात्र— 'गृहजातस्तथा क्रीतो लुब्धो दायादुपागतः ।  
अन्नकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः ॥ मोक्षितो मतहश्चण्डिद्विप्राप्तः  
पणे जितः । तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः ॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्त-  
थैव वडवाहतः ॥ विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः' इति नारदो-  
क्तेषु गर्भभक्तदासौ विना ज्ञेयाः ॥ वडवा दासी तयाहतस्तामुद्वाह्य दासो जात इ-  
त्यर्थः ॥ अन्तेवास्यपि तेनैवोक्तः 'स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बान्धवानामनुज्ञया ।  
आचार्यस्य वसेदन्ते कृत्वा कालं सुनिश्चितम् ॥ आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृ-  
हे दत्तभोजनम्' इति ॥ शिष्यस्तत्तुल्यो विद्यार्थी ॥ दासादेः स्वामितत्सपि-  
ण्डमरणे तु विष्णुः— 'पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचम्,  
मृते स्वामिन्यात्मीयम्' इति प्रतिलोमदासानामाशौचाभावः ॥ 'वर्णानामानु-  
लोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः अथ  
रात्रौ जनने मरणे वा निर्णयः रात्रौ जनने मरणे वा-रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽद्यभागद्वये चे-  
त्पूर्वं दिनम्, अन्ये तूत्तरमिति मिताक्षरायाम् ॥ यत्तु प्रागर्ध-  
रात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वं दिनमित्युक्तं, तत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ सर्वं चा-  
शौचमाहिताग्नेर्दाहं तद्भिन्नस्य मरणमारभ्य ज्ञेयम् ॥ 'अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौ-  
चादिद्विजातिषु । दाहादग्निमतो विन्द्यादिदेशस्थे मृते सति' इति पैठीनसिस्मृ-  
तेः ॥ साग्निराहिताग्निः ॥ 'आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्त्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शवव-  
दाशौचम्' इति वसिष्ठे विशेषोक्तेः ॥ 'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको-  
विधिः' इति ब्राह्मन् ॥ यत्तु—धूर्तस्वामिना रामाण्डारेण चोक्तम् 'आ-  
हिताग्नेरपि मरणाद्येव दशरात्रं दशाहं शावमाशौचम्' इति मरणनिमित्तत्वा-  
त्तस्य । यत्तु दाहादेव तस्याशौचमुक्तं तत्संस्कारनिमित्ताशौचं पृथगेव । तेन



गृह्याग्निः संस्काराङ्गं त्रिरात्रम् । श्रौताग्नेस्तु दशरात्रम् । मरणनिमित्तं तूभयो-  
 दंशाहम् । दाहात्प्रागपीति ॥ तद्वचनविरोधात्पूर्वस्यैवोत्कर्षा-  
 अतिक्रान्ताशौच- न्मूलकल्पनालाघवाच्च चिन्त्यम् ॥ अथातिक्रान्ताशौचम् ।  
 निर्णयः तत्राशौचमध्ये जननादौ ज्ञाते तच्छेषेण शुद्धिः ॥ ‘विगतं तु  
 विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्’ इति  
 मनूक्तेः ॥ अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तविषयम् ॥ तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणेपि  
 तदाद्येव दशाहादि पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः । ‘श्रुत्वा तद्दिन-  
 मारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्’ ॥ इत्यस्य सर्वापवादत्वादित्याहुस्तत्र ॥ ज्ञातमर-  
 णस्य निमित्तत्वात् ‘अनग्निमत उत्क्रान्तेः’ इत्यादिविरोधाच्च ॥ स्मृत्यर्थ-  
 सारेपि— ‘जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिः’  
 इति ॥ षडशीतावपरार्के चैवम् ॥ दशाहादूर्ध्वं ज्ञाते तु वृद्धवसिष्ठः—  
 ‘मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा । अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नाने-  
 न शुध्यति’ ॥ जनने त्वतिक्रान्ताशौचं नास्त्येव ‘नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु  
 दिनेष्वपि’ इति देवलोक्तेः ॥ पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव ‘निर्दशं ज्ञातिमरणं  
 श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च । सवासा जलमाप्नुत्य शुद्धो भवति मानवः’ इति  
 मनूक्तेः ॥ तच्चातिक्रान्ताशौचं दशाहादिजात्याशौचविषयम् ॥ न त्वनुपनी-  
 तादिनिमित्तत्रिरात्रादौ ॥ ‘उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम्’ इति  
 व्याघ्रोक्तेः ॥ ‘निर्दशं ज्ञातिमरणम्’ ‘अतिक्रान्ते दशाहेतु’ इति मनूक्तेश्च ॥  
 माधवीये देवलस्तु— ‘आ त्रिपक्षात्रिरात्रं स्यात्षण्मासात्पक्षिणी ततः ।

१—‘मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः । आदाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको  
 विधिः’ ॥ इति शंखलिखितौ ॥ २—मृतम् । ३—स्नात्वादकदानं च कार्यम्, ‘प्रेते  
 दत्त्वोदकं शुचिः’ इति वचनात् । यत्तु देवलनाम्ना पठ्यते—‘आशौचाहे व्यतिक्रान्ते बन्धु-  
 श्चेच्छ्रूयते मृतः । तस्य त्रिरात्रमाशौचं पक्षिणी चार्धवत्सरे । ऊर्ध्वं संवत्सरार्धात्तु श्रूयते  
 चेन्मृतः स्वकैः । भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न तु’ । इति ॥ तत्रार्धवत्सरस्य प्रथमार्धे  
 त्रिरात्रम्, उत्तरार्धे तु पक्षिणी, नवममासान्तमहो द्रष्टव्यम् ॥ इति टीका ॥ ४—पुत्रस्येतिवर  
 णाज्जन्मानि सपिण्डानां नातिक्रान्ताशौचम् । अन्यथा ‘श्रुत्वा जन्म च निर्दशम्’ इत्येव  
 ब्रूयात् । पुत्रजन्मश्रवणे स्नानोक्तैरन्येषां स्नानमपि नास्ति ॥ इति टीका ॥



परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुध्यति ' इत्याह ॥ तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था ॥ इदं चैकदेशे ॥ देशान्तरे तु स्नानमात्रम् ॥ ' देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैस्नानसे यतौ । मृते स्नानेन शुध्यन्ति गर्भस्नावे च गोत्रिणः ' इति पराशरोक्तेरिति विज्ञानेश्वरः ॥ स्नानं वत्सरान्ते 'अर्वाक्त्रिपक्षात्रिनिशं षण्मासाच्च दिवानिशम् । अहः संवत्सरादर्वाग्देशान्तरमृतेष्वपि ' इति विष्णूक्तेरिति माधवः ॥ इदं सपिण्डानाम् देशान्तरे स्नानं सोदकानामिति युक्तम् ॥ लक्षणं त्वाह बृहस्पतिः— ' महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः । वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम् । चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैवच ' इति ॥ एतत्सर्वं मातापितृभिन्नविषयम् । 'तयोस्तु पितरौ चेत् ' इति पूर्वपैठीनसिवाक्यात्सदा पूर्णमेव दशाहादि ॥ स्मृत्यर्थसारेपि— ' मातापितृमरणे दूरदेशेपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात् । स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम् ' इति शुद्धितत्वादयो गौडास्तु— ' ऊर्ध्वं संवत्सरादाद्याद्वन्धुश्चेच्छ्रूयते मृतः । भवे देकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां नतु ' इति देवल्लोकेः पित्रोरब्दमध्ये त्रिरात्रमूर्ध्वमेकाहः । बन्धुर्माता पिता भर्ता चापूर्वोक्तदशाहस्तु कलिङ्गादिदेशपर इत्याहुः । ते बन्धुपदस्य पुत्रादिपरत्वे मानाभावादुपेक्षयाः । सापत्नमातुस्तु दक्षः— ' पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्जं द्विजोत्तमः । संवत्सरे व्यतीतेपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ' ॥ हीनवर्णमातृषु सपत्नीषु चैवम् ' इति स्मृत्यर्थसारे ॥ केचित् ' पितुः पत्न्यां प्रमीतायामौरसे तनये तथा ' इति ब्राह्मोक्तेरौरसेपीदमाहुः ॥ षडशीतावप्येवम् ॥ एतत्सर्ववर्णतुल्यम् ' तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैवच ' इति व्याघ्रोक्तेः ॥ अथाशौचसंपाते उच्यते ॥ तत्र अशौचसंपत्तिं शावे शावं, मृतके सूतकम् ॥ शावे सूतकं सूतके शावं निर्णयः वा ॥ तत्राप्युत्तरं कालतः पूर्वेण समं न्यूनमधिकं चेति द्वादश भेदाः ॥ यदैकदिने समं न्यूनमधिकं वाशौचद्वयं तत्र तन्त्रेणान्यसिद्धिः ॥ द्वयोरेककालत्वात् ॥ यदा तु द्वितीयादिदिनेषूत्तरं सजातीयं शावे जन-



न वा समकालं न्यूनकालं वा परं स्यात्तदा षट्सु पक्षेषु पूर्वशेषेण शुद्धिः ॥  
 ‘अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति’ इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ अन्तरा  
 ज्ञाते इत्यर्थः ॥ ज्ञातस्यैव जननादेर्निमित्तत्वात् ॥ पूर्वाशौचोत्तरं तन्मध्यो-  
 त्पन्ने जाते तूत्तरमेव कार्यम् ॥ शुद्धितत्वेऽप्युक्तम्—पूर्वाशौचान्तरुत्पन्नं  
 समानं लघु वा निमित्तं तत्कालादुपरिश्रुतं स्वाशौचहेतुरेव । अज्ञातं तु  
 न ॥ ‘अविज्ञाते न दोषः स्याच्छ्राद्धादिषु कथंचन’ इत्यस्याशौचसांकर्येऽपि  
 प्रवृत्तेः । तेनाज्ञानाद्दृष्टोत्सर्गादौ कृते पश्चात्ज्ञातेऽपि नावृत्तिरिति ॥ माधवीये  
 यमोपि—‘जनने जननं चेत्स्यान्मरणे मरणं तथा । पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादु-  
 त्तराशौचवर्जनम्’ ॥ अत्र केचित् ‘अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्तत्पुनर्मरणजन्मनीता  
 वत्स्यादशुचिर्विशो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्’ इति मनुपराशरायैर्दशाहग्रह-  
 णात्पूर्वाशौचे एव पूर्वशेषेण शुद्धिः । त्र्यहायल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धि-  
 रित्याहुः ॥ हरिदत्तोऽप्येवमाह ॥ गौडा अप्येवम् ॥ तत्र ॥ याज्ञवल्क्या-  
 दिवशेन दशाहस्य तुल्यकालशौचोपलक्षणत्वात् । ‘समानाशौचसंपाते प्र-  
 ामेन समापयेत् ॥ असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा’ इति माधवीये  
 उक्तेः ॥ अपरार्कमिताक्षरादिविरोधाच्च ॥ यदा तु सूतके शावं समन्यु-  
 नमधिकं वा, तदा न पूर्वशेषाच्छुद्धिः ॥ तदाहांगिराः—‘सूतके मृतकं चे-  
 त्स्यानमृतके त्वथ सूतकम् । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतके’ ॥  
 षट्त्रिंशन्मते—शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शु-  
 द्ध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी’ ॥ चतुर्विंशतिमतेऽपि—‘मृतेन शुद्ध्यते  
 जातं न मृतं जातकेन तु’ ॥ अतो यदा दशाहजननमध्ये तदन्ते वा त्र्यहादि  
 शावं तदा पूर्वेण शुद्धावपि तन्निमित्तमस्पृश्यत्वं भवत्येव ॥ ‘मरणोत्पत्ति-  
 योगे तु गरीयो मरणं भवेत्’ इति कौर्माच्च ॥ गौतमव्याख्यायां वृद्धात्रि-  
 रापि—‘सूतकाद्विगुणं शावं शावाद्द्विगुणमार्तवम् । आर्तवाद्द्विगुणा सूति  
 स्ततोऽपि शवदाहकः’ ॥ अत्र पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरनिवृत्तिरस्पृश्यत्वाधिक्या-  
 दित्यर्थः । षडशीतावपि—‘स्वभावबहुसूतिस्तु न्यूनशावविशोधिनी’



इति ॥ रात्रिशेषादौ वर्धितद्वित्रिदिनैरागन्तुकैः सूतेर्बहुत्वं न स्वभावेन । अत-  
स्तत्र न्यूनशावस्यापि न पूर्वेण शुद्धिरिति वक्तुं स्वभावेनेत्युक्तम् ॥ ब्राह्मेपि—  
'नागन्तुकैरथाहोभिराशौचमपनुद्यते । नच पातनिमित्तेन शावस्यान्यस्य  
शोधनम्' इति ॥ एवं नव पक्षाः ॥ यदा तु त्र्यहाद्यल्पाशौचमध्ये सजातीयं  
विजातीयं वा दीर्घकालमुत्तरं, तदाप्युत्तरं पूर्णं कार्यम्, न पूर्वेण शुद्धिः ॥  
'स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि । न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात्  
स्वकालेनैव शुध्यति' इत्युक्तसोक्तेः ॥ तेन त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसू-  
तकेपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः । शावनिमित्तमस्पृश्यत्वं च भवत्येव ॥  
शुद्धिविवेके तु— 'शावेन शुध्यते सूतिरिति प्रागुक्तेस्तत्राप्युत्तराशौचनिवृ-  
त्तिरुक्ता ॥ तत्र ॥ उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात् ॥ माधवीये यमो-  
पि— 'अघवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत् । यथा त्रिरात्रे प्रक्रान्ते दशाहं  
प्रविशेद्यदि ॥ आशौचं पुनरागच्छेत्तत्समाप्य विशुध्यति' हारोतोपि—  
'गुरुणा लघु शुध्येत्तु लघुना नैव तद्गुरु' इति गुरुत्वं लघुत्वं च कालकृत-  
मेव ॥ पूर्वानुरोधात् ॥ एतच्च हरदत्तेन स्पष्टमुक्तम् ॥ मिताक्षरायामप्ये-  
वम् ॥ यत्तु 'अघानां यौगपद्ये तु ज्ञेया शुद्धिर्गरीयसी । मरणोत्पत्तियोगे तु  
गरीयो मरणं भवेत्' इति हारीतकौर्मादि— तत्रास्पृश्यत्वाभिप्रायं शावस्य  
गुरुत्वं ज्ञेयम् ॥ कचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह देवलः—  
'परतः परतोशुद्धिरघवृद्धौ विधीयते ॥ स्याच्चेत्पञ्चतमादहः पूर्वैर्नैवात्र शिष्य-  
ते' ॥ अस्यार्थः ॥ अघवृद्धौ दीर्घाशौचे परतः शुद्धिः परमाशौचम् ॥ यदि  
पूर्वाशौचमुत्तरस्य पञ्चमदिनात्परतोऽनुवर्तते तदा पूर्वैर्नैव शुद्धिः ॥ पूर्वस्यो-  
त्तराशौचार्थाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः ॥ यथा षष्ठेमासे ग-  
र्भपातनिमित्तषडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वोत्तरनिवृत्तिः ॥ यथा या त्र्यह-

१—'शावेनशुध्यतेसूतिः' इत्यादेर्विजातीये समकालाशौचसंनिपाते शापेन शुध्यते सूति-  
रित्यर्थान्नविरोधः । ननु स्वल्पशावेन दीर्घसूत्याशौचनिवृत्तौ कुतो नतत्पर्यम्, तत्राह—अघ-  
वृद्धिमदिति ॥ इति टीका ॥ २—चतुरहान्तर्विदेशस्थमरणे श्रुते शेषशुद्ध्या तत्पञ्चदिनाधि-  
कमाशौचम् । तत्र दशाहपाते पूर्वेण शुद्धिरित्याद्यपि द्रष्टव्यमिति टीका ॥



मध्ये स्नावपातनिमित्तचतुरहपञ्चाहयोरिति कश्चित् ॥ तत्र ॥ दशाहावधिपूर्व-  
 शेषशुद्ध्यावेदवाक्यविरोधात् ॥ षष्ठादिदिने पूर्णाशौचमन्त्यरात्रौ तु द्वयह  
 इत्यनौचित्याच्च ॥ अस्मद्गुरवस्तु पञ्चतमादह आशौचं ततो न्यूनं त्र्यहादि  
 चेत्स्यादस्मिन्विषये पूर्वणैवाशुद्धिः शिष्यते । दशाहादिरात्रिशेषे त्र्यहादिपाते  
 त्र्यहाद्यल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपाते च न द्वयहादिवृद्धिरित्यर्थमाहुः ॥  
 कचित्पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादमाह गौतमः- 'रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां, प्रभाते  
 तिसृभिः' इति ॥ प्रभातेन्त्ययामे 'रात्रिशेषेद्वयहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचित्र्य-  
 हात्' इतिज्ञातातपोक्तेः ॥ इदं शावान्ते सूतकपाते सजातीये वा तुल्यम्  
 ॥ अत्र केचित् ॥ रात्रिशब्दोऽहोरात्रपरः ॥ 'अहःशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः'  
 इतिज्ञाङ्गलिखितोक्तेः ॥ 'अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमा-  
 शौचमानवमादिवसादत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण, व्युष्टायां त्रिरात्रेण' इति बौधायनो-  
 क्तेः ॥ 'पुनःपाते दशाहात्प्राक्पूर्वेण सह गच्छति । दशमेहि पतेयस्याहर्द-  
 यात्स विशुध्यति' इति ॥ 'प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः' इति  
 देवलोक्तेश्च ॥ नवमदशमशब्दौ चोपान्त्यान्त्यदिनपरौ ॥ तेन क्षत्रियादावपि  
 तथेत्याहुः ॥ माधवीयेप्येवम् ॥ अन्येत्वाहुः- 'अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पु-  
 नर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तस्यादनिर्दशम्' इति- 'म-  
 नुपराशराद्यैर्दशमदिनेनोत्तरस्य शुद्धेरुक्तत्वाद्विरोधः स्पष्ट एव ॥ विरोधे च-  
 'यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्वेषजम्' । 'कलौ पाराशरस्मृतिः' इत्यनेन पूर्व-  
 वचसां बाधः ॥ अतएव वाचस्पतिना तेषामनाकरत्वमुक्तम् ॥ साकर-  
 त्वेपि जातिमात्रविप्रादिविषयं देशान्तरविषयं वा युगान्तरविषयं वास्तु ॥ तेन

१--'अथ यदि दशरात्राः संनिपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमादिवसात्, अत ऊर्ध्वं द्विरा-  
 त्रेण, व्युष्टायां त्रिरात्रेण' इति बौधायनवाक्यस्थेनानवमादिवसादित्यनेन विरोधादित्यर्थः  
 इति टीका ॥ एवं चाभिः प्रत्यक्षस्मृतिभिर्विरोधात् 'आद्यभागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतकम्'  
 इत्यादि शुद्धिविवेकलिखितब्रह्मपुराणवाक्येन 'श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।  
 तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥' इति व्यासवचनेन शिष्टैर्नादतव्यम् ॥



गौतमीये रात्रिशब्दो नाहोरात्रपरः ॥ 'रात्रिमात्रावसिष्टे' इति मिताक्षरो-  
 क्तेष्व ॥ न कुकविरुतिरिवान्यथा व्याख्या युक्ता ॥ माधवस्तु--'अनिर्गत-  
 दशाहमि' ति पूर्वस्वग्रन्थविरोधादुपेक्ष्य इति अस्मत्पितृचरणास्तु बोधाय-  
 नीये--'आनवमादिवसात्' इति द्वितीयाशौचस्य नवमं दिनं प्रथमस्य  
 दशममेवाहुः । द्यौहादिवृद्धेः पूर्वशेषापवादत्वात् । तस्य च न्यायतो द्विती-  
 यविनादेव प्रवृत्तेः । अत ऊर्ध्वमिति दशमरात्रिपरम् । शङ्खलिखितोक्तौ  
 देवलोक्तौ चाहःशेषे दशमेहि चातीते रात्रौ पतेदित्यर्थः । दशम्यां पिता  
 नाम कुर्यादिति वत् । तेन न मन्वाद्यैर्विरोधो नापि मिताक्षराद्यैरित्या-  
 हुः ॥ अपराकैर्निर्णयामृतस्वरसोप्येवम् ॥ यत्तु तत्रैव ब्राह्मे--'आद्यं  
 भागद्वयं यावत्सूतकस्य तु सूतके । द्वितीये पतिते त्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरि-  
 ष्यते ॥ अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्ताच्छुचिः स्मृतः । एवमेव विचार्य  
 स्यान्मृतके मृतकान्तरे । मृतकस्यान्तरे यत्र सूतकं प्रतिपद्यते ॥ सूतकस्या-  
 न्तरे वाथ मृतकं यत्र विद्यते ॥ मृतकान्ते भवेत्तत्र शुद्धिर्वर्णेषु सर्वशः' इति ॥  
 अस्यार्थस्तत्रैवोक्तेः पूर्वाशौचचरमाहोरात्रस्य दिनरूपे आद्यभागद्वयेऽन्या-  
 शौचपाते पूर्वेण शुद्धिः भागद्वयोर्ध्वं रात्रौ सूतकान्तरे द्वितीयात्पूर्वभिन्ना-  
 त्सूतकान्ताद्द्व्यहादिरूपाच्छुद्धिरिति ॥ अपराकैर्त्वाशौचकालं त्रिधा विभज्य  
 निर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तम् ॥ अस्य वचनस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव ॥ अतः  
 पूर्वाशौचान्तरात्रावन्याशौचेहोरात्रद्वयमधिकं रात्रेरन्त्ययामे तु दिनद्वयमिति  
 भट्टचरणोपदिष्टः पन्थाः ॥ एतत्संपूर्णाशौचसंपाते एव ॥ रात्रिशेषे त्रिरा-

१-नन्वेवाविधविषये द्विरात्रादिवृद्धिप्रसङ्गः 'अत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण' इत्यनुपदमुक्तिरित्यत  
 आह-द्यहादीति । २-तस्य द्वितीयाशौचस्य । ३-आहुरित्यनेन 'आनवमादिवसात्' इत्य-  
 स्योक्तव्याख्याने यत्र द्वितीयादिदिनं तत्राष्टदिनाद्युपलक्षणत्वं वाच्यम् । तादृशव्याख्याने  
 प्रयोजनाभावश्चेत्यस्वरसः सूचितः वस्तुतस्तु-आनवमादिवसादित्याडोभिविध्यर्थकतयानव-  
 मपदे दशमलक्षणायाश्चाप्राकरणिकतया अत ऊर्ध्वमित्यतः शब्देन दशमादिनमेव लभ्यते, न  
 तुरात्रिः । शंखलिखितोक्तौ चातीत इति पूर्णं निर्बीजम् । तस्याहोरात्रार्थकत्वादिनां त्वार्षवच-  
 सामनायासलब्धयथाश्रुतार्थसंरक्षकम् । अपराकादिसर्वग्रन्थेष्वपिरात्रिपदमहोरात्रार्थकमेवे-  
 तिसिद्धान्तः । इति टीका । ४-चरमोहोरात्रस्योक्तव्याख्यानलब्धत्वादिति शेषः । इति टीका



त्रादिसंपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः ॥ द्विरात्रादिवृद्धेः पूर्ववाक्यैर्दशाहविषय-  
 त्वादपवादाभावे शेषशुद्धेरेव सामान्यतः प्रवृत्तेः ॥ षडशीतौ तु दशाहान्ते  
 ग्रहपातेपि द्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता 'रात्रिशेषे यदाशौचं पूर्वानधिकमापतेत् ।  
 ऊर्ध्वं दिनद्वयं पूर्वाद्यामशेषे दिनत्रयम्' इति ॥ अनधिकं समं न्यूनं वा तत्तु-  
 च्छम् ॥ निर्मूलत्वादन्ते पक्षिण्यादिपातेपि द्विरात्रादिवृद्ध्यापत्तेश्च ॥ पूर्वा-  
 शौचान्तर्वर्धितद्वित्रिदिनमध्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्धितस्याल्पत्वादधि-  
 केनैव शुद्धिः ॥ नच वर्धितस्य पूर्वशेषत्वं शङ्कनीयम् ॥ रात्रिशेषपूर्वशेषशु-  
 द्धयपवादे नैमित्तिकावृत्तिन्यायोज्जीवनात् ॥ अपवादाभावे उत्सर्गस्य प्राप्तेः ॥  
 अपवादान्तरमाह शङ्खः- 'मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता ।  
 पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥' पादत्रयं स्पष्टम् ।  
 तुर्यस्य त्रयमर्थः- पित्राशौचमध्ये मातृमृतौ पित्राशौचान्ते मातुःपक्षिणी-  
 मधिकां कुर्यादिति ॥ अत्राशुद्धावित्युक्तेरात्महादेः पितुराशौचाभावान्मा-  
 तृमरणे न पक्षिणी ॥ किंतु पूर्णमेवाशौचम् ॥ इयं च पक्षिणी तृतीयादिदि-  
 नपरा ॥ नाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्यायापवादपूर्वशेषापवाद-  
 त्वादिति पितृचरणाः ॥ सण्डाद्याशौचेन मातापित्रोराशौचापगमो नास्त्येव ॥  
 एवं भर्तुरपि ॥ इयं च पक्षिणी दशमदिनात्पूर्वं मातृमरणे ज्ञेया दशम्यां रात्रौ  
 तत्प्रभाते वा मातृमरणे द्व्यहत्र्यहसमुच्चिता पक्षिणीति कश्चित् ॥ तत्र ॥  
 संख्यान्तरोपजननापत्त्या ग्रहादिश्रुतिबाधापत्तेः ॥ अत एवैका देया षड्देया  
 इत्यादौ श्रुतसंख्याबाधापत्तेः समुच्चयो निरस्तो द्वादशे । गुरुणि लघोरन्तर्गते  
 'गुरुणा लघु शुद्ध्येदित्युक्तेश्च ॥ मातुरन्वारोहणे तु न पक्षिणी' यदा नारी विशे-  
 दग्निं प्रियस्य प्रियवाञ्छया । तदाशौचं विधातव्यं भर्त्राशौचक्रमेण हि' इति पृ-  
 थ्वीचन्द्रोदये लघुहारीतोक्तेः ॥ तत्रैव षडशीतिमतेपि- 'मृतं पतिमनुब्रज्य  
 पत्नी चेदनलं गता । न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुध्यति ॥ पुत्रोन्यो  
 वाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः । नवश्राद्धं च पिण्डं च युगपत्तु समापये-  
 त्' ॥ गृहीताशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे मातुः सपिण्डस्य वा मरणे



नायं निर्णयः ॥ अतिक्रान्तकालाद्विद्यमाननिमित्तस्य बलवत्त्वात् ॥ द्वादश  
 वर्षोत्तरं संस्काराशौचमध्ये सपिण्डमरणेऽप्येवम् ॥ यत्तु अपराकैर्ब्राह्मे—‘ऋ  
 ग्वेदवादासाध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । व्यहाशौचे तु निर्वृत्ते श्राद्धं प्रा-  
 मोति शास्त्रवत् ’ इति, तद्भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्राशौचपरम् इति  
 पृथ्वीचन्द्रः ॥ ब्राह्मणादेः क्षत्रियाद्यनुगमनेल्पाशौचपरमित्यपराकः ॥  
 शुद्धितत्त्वादयो गौडास्तु—‘भर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम् ॥ सह-  
 गमने तु संपूर्णम् । युद्धहतस्य सद्यः शौचेन्वारोहणे ब्राह्मोक्तेस्त्रिरात्रत्वात् ॥  
 भर्तुरपि व्यहेण पिण्डदानम् ॥ एकचित्तौ तु सद्यः शौचमित्याहुः ॥ अन्य-  
 त्प्रागुक्तम् । पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादान्तरमुक्तं षडशीत्याम् ‘पूर्वाशौचेन या शुद्धिः  
 सूतके मृतके च सा । सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि’ ॥ निर्णयामृते  
 स्मृतिसंग्रहेऽपि—‘इयं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना’ ॥ इदं मूल्येन दाह-  
 करणे मातुलादिसंबन्धेन । दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक् ॥ वृद्धा-  
 त्रिः—‘सूतकाद्द्विगुणं शावं शावाद् द्विगुणमार्तवम् ॥ आर्तवाद् द्विगुणा सूति  
 स्ततोऽपि शवदाहकः’ ॥ तथाशौचसंपातेऽपि न शावजनननिमित्तकार्यप्रतिबन्धः ।  
 ‘आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् ॥ कर्तुं स्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वा-  
 शौचेन शुध्यति’ इति प्रजापतिस्मृतेः ॥ आशौचे तु द्विविधेऽपि शातातपः—  
 ‘अन्तर्दाहे च जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि । प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं  
 यथाविधि ॥ प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत् । तथैवाशौचपिण्डास्तु  
 शेषान्दद्याद्यथाविधि’ ॥ मातुः पक्षिणी ॥ मध्ये पितुरेकादशाहं कुर्यात् ‘आयं  
 श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेहनि’ इति स्मृतेः ॥ केचित्त्विदं क्षत्रियादिपरम्  
 विप्रोदेस्त्वाशौचान्तर एकादशाहश्राद्धं नेत्याहुः ॥ अत एव विज्ञानेश्वरेण—  
 ‘दशनं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्’ इति शुचित्वं ग्रहैकोद्दिष्टाङ्ग-  
 विप्रनिमन्त्रणपरमिति वदता तत्र शुद्धेरङ्गत्वं दर्शितम् ॥ एवं वृषोत्सर्गशय्या-  
 दानादावपि देवयाज्ञिकेन त्वाशौचान्तरेऽपि भवत्येवेत्युक्तम् ॥

आशौचापवा-  
दनिर्णयः

अथाशौचापवादः ॥ स च पञ्चधा ॥ कर्तृतः कर्मतः द्र-  
 व्यतः मृतदोषतः विधानाच्च ॥ आद्यो ब्रह्मचारियत्यादिषु ‘नै-



ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ नशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च  
 तथा मृते' इति कौर्मौक्तेः । तुर्यपादे 'शावे वापि तथैव च' इति देवलपाठः ।  
 आशौचमन्त्यक्तमोपलक्षणम् । 'ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकाः क्रियाः ।  
 यदि कुर्याच्चरेत्कच्छं पुनः संस्कारमेव च' इति देवलोक्तेः ॥ एतत्पित्राद्यति-  
 रिक्तविषयम् ॥ 'आचार्यं स्वमुपाध्यायं मातरं पितरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्र-  
 ती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते' ॥ इति मनूक्तेः ॥ हारीतः— 'आचार्यं स्वमुपा-  
 ध्यायं पितरं मातरं गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं न व्रतेन वियुज्यते ॥ माता-  
 पित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः । व्रतस्थोपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदक-  
 क्रियाम् ॥ भवत्यशौचं नैवास्य न वाग्निस्तस्य लुप्यते । स्वाध्यायं च प्रकुर्वी-  
 त पूर्ववद्विधिदर्शितम्' ॥ संवर्तः— 'अन्यगोत्रोपसंबन्धः प्रेतस्याग्निं ददाति  
 यः । पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समाचरेत्' ॥ निर्हरणमन्त्यकर्मपरम् ॥  
 एवं मातामहस्य 'यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यात् क्रियां नृप । तथा  
 मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हति' इत्यपरार्कं भविष्योक्तेः ॥ 'माता-  
 पित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम् ॥ कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भक्ष्यते  
 व्रतात्' इति कालादृशाञ्च ॥ तत्रान्त्यकर्मनिमित्तमस्पृश्यत्वं दशाहमस्त्येव ॥  
 'सगोत्रो वासगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्चाद्धं शुद्धयेत्तु  
 दशमेहनि' इति दिवोदासोक्तवचनात् ॥ अतएव 'ब्रह्मचारिणः शवकर्मि-  
 णो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोर्गुरोश्च' इति गौतमीये व्रतनिवृत्तिरेवपर्युदासो  
 नाशौचस्य ॥ संध्यादिकर्मलोपस्तु नास्ति 'न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्व-  
 कं क्वचित्' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ 'पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्य-  
 पि यः सुतः । सुव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम् ॥ तेनाशौचं न क-  
 र्त्तव्यं संध्या चैव न लुप्यते । अग्निकार्यं च कर्त्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः'  
 इति चन्द्रिकायां संवर्तोक्तेश्च ॥ अत्र कर्मानधिकाररूपाशौचनिषेध एव ॥  
 अपरार्कमाधवादयस्तु—एकाहमाशौचमाहुः 'आचार्यं वाप्युपाध्यायं गुरुं  
 वा पितरं च वा ॥ मातरं वा स्वयं दग्ध्वा व्रतस्थस्तत्र भोजनम् ॥ कृत्वा प-



तति नो तस्मात् प्रेतान्नं तत्र भक्षयेत् । अन्यत्र भोजनं कुर्यान्न च तैः सह  
 संवसेत् ॥ एकाहमशुचिर्भूत्वा द्वितीयेहनि शुध्यति' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ तद-  
 न्नभोजने तु प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनमाशौचं च ॥ दिवोदासादयस्तु ब्राह्मो-  
 क्तेः प्रथमेहि संध्यादिलोपः 'ब्रह्मचारी यदा कुर्यात् पिण्डनिर्वपणं पितुः ।  
 तावत्कालमशौचं स्यात् पुनः स्नात्वा विशुद्ध्यति' इति प्रजापतिवचनात् ।  
 द्वितीयाहादौ पिण्डदानकाले एवास्पृश्यत्वमात्रं नान्यदेत्याहुः ॥ दशाहमस्पृ-  
 श्यत्वेपि कर्माङ्गस्नानविधानार्थमेतदिति युक्तं ॥ अन्त्यकर्माकरणेतु ब्रह्मचारिणः  
 पित्रादिमरणेऽप्याशौचाभाव एव ॥ सोऽपि ब्रह्मचर्यकाल एव । समावर्तनोत्तरं  
 तु पूर्वमृतानां त्र्यहाशौचं भवत्येव 'आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।  
 समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इति मनूक्तेः ॥ तत्रापि विकल्पः  
 'पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोन्ते स्यात् त्र्यहं  
 वा ब्रह्मचारिणाम्' इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ तथा कृतजीवच्छ्राद्धेन  
 किमप्याशौचं न कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मै- 'सद्यःशौचं  
 समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे । डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजः' ॥ उप-  
 द्रवेत्यन्तमरके ॥ 'उपसर्गमृते चैव सद्यःशौचं विधीयते' इति पराशरोक्तेः ।  
 उपसर्गोऽत्यन्तमरक इति शूलपाण्यनिरुद्धभट्टादयः ॥ याज्ञवल्क्यो-  
 पि- 'आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते' इति मरणसमयेपि  
 नाशौचम् ॥ तथाच शुद्धिरत्नाकरे दक्षः- 'स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं  
 परिकीर्तितम् । आपद्रतस्य सर्वस्य मूतकेपि न सूतकम् ॥ अतः सति वै-  
 राग्ये संन्यासोऽप्यातुरस्य भवतीति केचित् ॥ अथ कर्मतः  
 कर्मत आशौ-  
 चनिर्णयः  
 त्रिंशच्छोक्या- 'तत्तत्कार्येषु सत्रिव्रतिनृपनृपवद्दीक्षितत्वि-  
 क्स्वदेशभ्रंशापत्स्वप्यनेकश्रुतिपठनभिषक्कारुशिल्पातुराणाम् ॥  
 संप्रारब्धेषु दानोपनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडातीर्थार्थयात्राजपपरिणयना-  
 द्युत्सवेष्वेतदर्थे' ॥ नाशौचमिति शेषः ॥ सत्री अन्नसत्रवान् ॥ मुख्यसत्रस्य दीक्षि-  
 तपदात्सिद्धेः ॥ व्रती अनन्तव्रतादिनियमवान् ॥ 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णू-



क्तेः ॥ प्रचेताः—‘कारवः शिल्पिनो वैद्यदासीदासास्तथैव च । राजानो  
 राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः’ ॥ कारवः सूपकाराद्याः । शिल्पिन  
 श्वैलनिर्णेजकाद्याः । आतुरस्य व्याधिनाशार्थं दानादौ तुलादानादेः । प्रारम्भो  
 नान्दीश्राद्धं संकल्पो वा । यजनं तडागोत्सर्गकोटिहोमादिः ॥ लघुविष्णुः—  
 ‘व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेर्चने जपे ॥ आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु  
 सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ  
 श्राद्धे पाकपरिक्रिया’ इति ॥ पाकस्य परिसमंतात्क्रिया ॥ पाकप्रोक्षणमि-  
 ति शुद्धिप्रदीपस्तन्मन्दम् ॥ रूढेर्योगाद्वलवत्त्वात् ॥ तीर्थेति आशौचे आ-  
 कस्मिकतीर्थप्राप्तौ—‘विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि । न तत्र सूतकं तद्व-  
 त्कर्मयज्ञादि कारयेत्’ इति पैठीनसिस्मृतेः ॥ अत्र विशेषः प्रागुक्तः ॥ जपः पुर-  
 श्वरणादिः स्तोत्रपाठः, अविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशश्रवणादिश्च ॥ अत ए-  
 वोक्तं ब्राह्मे—‘गृहीतनियमस्यापि न स्यादन्यस्य कस्यचित्’ इति ॥ एवं देव-  
 पूजादि ॥ मदनपारिजाते यमोपि—‘शिवविष्णवर्चनं दीक्षा यस्य चाग्निप-  
 रिग्रहः । श्रौतकर्माणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात्’ ॥ गौडशुद्धित-  
 त्वे मन्त्रमुक्तावल्यां—‘जपो देवार्चनविधिः कार्या दीक्षान्वितैर्न रैः । नास्ति  
 पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम्’ ॥ राघवभट्टीये नारदः—‘अथ  
 सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमचोदिताम् । स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या  
 क्रियया तु वै ॥ बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् ॥ यदि कामो न चे-  
 त्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत्’ ॥ यत्तु नृसिंहकल्पे—‘सदा मन्त्रजपं मुक्ता  
 यदि स्यादशुचिर्नरः । मनसावहितस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूचरेत्’ ॥ तन्मूत्राद्या-  
 शौचपरम् ॥ रामार्चनचन्द्रिकायाम्—‘अशुचिर्वाशुचिर्वापि गच्छंस्ति-  
 ठन्स्वपन्नपि । मन्त्रैकस्मरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत् ॥ कालनियमाभावे  
 तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेव ॥ उत्सवो रथयात्रादिः ॥ एषु नाशौचम् ॥ अयं  
 चाक्षौचाभावोनन्यगतित्वे आर्तौ च ज्ञेयः ॥ अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् ॥ अत्र  
 दीक्षितस्य अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । तदादित्वाशौचमस्त्येव ॥ तेन वै-



तानोपासनाः कार्याः ' इति वैतानत्वेप्यवभृथादि न भवत्येव ॥ अतएवोक्तं  
 माधवीये ब्राह्मे— ' तद्वद्गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे । स्नाने त्ववभृथे  
 यावत्तावत्तस्य न सूतकम् ' इति ॥ वैतानोपासनाः कार्या इत्यनेनैव सिद्धे-  
 र्ऋत्विजां दीक्षितानां चेति पुनर्दीक्षितग्रहणं यजमाने स्वयंकर्तृत्वार्थं स्नानप्रा-  
 प्त्यर्थं वेति विज्ञानेश्वरः ॥ वस्तुतस्तु दीक्षया संस्कृतस्य प्रागवभृथात्कर्मप्रा-  
 प्त्यर्थदीक्षितग्रहणम् ॥ तेन ततः पूर्वं निषेध एव ॥ यत्तु 'प्रारम्भो वरणं यज्ञे'  
 इति, तद्वत्विष्णुपरम् ॥ तथा च छन्दोगपरिशिष्टे— 'न दीक्षिण्याः परं यज्ञे  
 न कृच्छ्रादितपश्चरन् ' इति ॥ शुद्धितत्वेप्येवम् ॥ ऋत्विजां च मधुपर्को-  
 त्तरमाशौचाभावः 'गृहीतमधुपर्कस्य यजमानान्तु ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते  
 न भवेदिति निश्चयः ' इति ब्राह्मात् ॥ अतएव रामाण्डारः— 'चतुर्णां व-  
 रणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्य आगमयितव्यः ' इत्याह ॥ एवं स्मार्तेपि तुला-  
 कोटिहोमादौ मधुपर्के सति दोषाभावो ज्ञेयः ॥ यत्तु ' प्रारम्भो वरणं यज्ञे '  
 इति, तत्रापि मधुपर्कान्तं ज्ञेयम् ॥ तेनाधानेष्टिपशुबन्धादौ तदभावादन्ये भव-  
 न्तीति सिद्धम् ॥ अपवादान्तरमाह याज्ञवल्क्यः— 'वैतानोपासनाः कार्याः  
 क्रियाश्च श्रुतिचोदनात्' ॥ तत्र त्यागमात्रे स्नानोत्तरं स्वयंकर्तृत्वम् ॥ 'श्रौ-  
 ते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ' इति स्मृतेः ॥ त्यागातिरिक्ते तु  
 श्रौते स्मार्ते चान्यस्यैव कर्तृत्वम् ॥ 'सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभो-  
 जने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत्' इति बृहस्पत्युक्तेः 'नित्या  
 निवर्तेरन्वैतानवर्ज्यम्, शालाग्रौ चैकेऽन्य एतानि कुर्युः' इति पैठीनसिस्मृ-  
 तेष्वेति विज्ञानेश्वरः ॥ एकग्रहणं पूजार्थं ॥ तेन स्मार्तं कार्यमेवेति हारल-  
 तायाम् ॥ दाक्षिणात्यास्तु विकल्पमाहुः ॥ अपराकादिनिबन्धास्तु—श्रौतं  
 सर्वं स्वयं कार्यं, स्मार्तं तु त्यागातिरिक्तेऽन्यस्यैव कर्तृत्वम् ॥ त्यागमात्रे  
 तु स्वस्य—'कर्म वैतानिकं कार्यं स्नानोपस्पर्शवान् स्वयम्' इति हारीतोक्तेः ॥  
 'दर्शं च पूर्णमासं च कर्म वैतानिकं च यत् । सूतकेपि त्यजेन्मोहात्प्राय-



श्वित्ती पतेद् द्विजः' इति मरीच्युक्तेः ॥ 'जन्महान्योवितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते । शालाग्रौ केवलो होमः कार्य एवान्यगोत्रजैः' । इति जावालोक्तेश्चेत्याहुः ॥ आचारार्कैः अप्येवम् ॥ याज्ञिका अप्येवम् ॥ 'सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् । पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत्' इति जातूकर्ण्योक्तेश्च ॥ चरुः स्मार्तस्थालीपाकः ॥ श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः ॥ प्रारब्धं तु सपिण्डेनापि कार्यम् ॥ 'न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचिर्भवेत्' इति मनूक्तेः ॥ छन्दोगपरिशिष्टेपि— 'होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेन फलेन वा । अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम्' ॥ अकृतं ब्राह्म्यादि ॥ कृताकृतं तन्दुलादि ॥ स्मार्तहोमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः ॥ 'शालाग्रौ चैके' इति प्रागुक्तेः ॥ यदा करणं तदान्यद्वारा ॥ अत्रेदं तत्त्वम् ॥ येष विहृचादीनां द्वादशरात्रमहोमेपि नाग्निविच्छेदस्तैर्न कार्यम् ॥ तैत्तिरीयायैः कार्यम् ॥ 'त्रिरात्रमहूयमानेऽग्नौऽग्निकः संपद्यते' इति सुदर्शनभाष्ये वचनात् ॥ समारूढे त्वग्रौ तेनापि न कार्यम् ॥ किंतु पुनराधानमेव ॥ समारोपप्रत्यवरोहयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च ॥ अन्यथा पुनराधानमपि स्यात् ॥ यत्त्वाश्वलायनः— 'तौ चापि सूतके शावपर्वणीष्टिं महापदि । पुष्पवत्यां च भार्यायां न कुर्यात्तां कदाचन ॥ स्मार्ताग्निः सूतके शावे स्वयं न जुहुयाद् द्विजः । श्रौताग्निस्तु सकृद्धत्वा समाप्ते वा स्वयं हुनेत्' इति ॥ तदपि समारूढपरम् ॥ तदाह स एव— 'स्मार्ताग्निरात्मनोऽन्येषामभावे सूतकादिषु । समारोप्य तदन्तेषु विहृत्य जुहुयात्स्वयम्' । इति ॥ तथा च मनुः— 'प्रत्यूहेऽग्निषु क्रियाः' इति 'वैश्वदेवस्य त्वग्निसाध्यत्वेपि वचनान्निवृत्तिः ॥ 'विप्रो दशाहमासीत् वैश्वदेवविवाजितः' इति संवर्तोक्तेः ॥ यद्यपि— 'पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनोः' इति तेनैवोक्तेः पूर्वनिषेधो व्यथः तथाप्यापस्तम्बादीनां वैश्वदेवस्य पञ्चयज्ञभिन्नत्वात्पृथङ्निषेधः ॥ हरदत्तस्त्वाशौचेपि बह्वैर्वैश्वदेवः कार्यः 'तस्य द्वावन्ध्यायौ यदात्माशुचिर्यद्देशः' इति ब्रह्मयज्ञस्येवाशौचे विशिष्य निषेधात् ॥



संन्ध्यादीनामप्यपवादमाहापरार्कं पुलस्त्यः—‘संध्यामिष्टिं चरुं होमं याव-  
 जीवं समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ सूतके  
 मृतके चैव संध्याकर्म समाचरेत् । मनसोच्चारयेन्मन्त्रान्प्राणायाममृते द्विजः’ ॥  
 यत्तु चन्द्रिकायां जाबालः—‘संध्या पञ्चमहायज्ञा नैत्यकं स्मृतिकर्म च ।  
 तन्मध्ये हापयेत्तेषां दशाहान्ते पुनःक्रिया’ इति ॥ यच्च संवर्तः—‘सूतके  
 कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते’ ॥ यच्च विष्णुपुराणम् ॥ ‘सर्वकाल-  
 मुपास्या तु संध्ययोः पार्थिवेष्यते । अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रयातुरभीतितः’  
 इति तत्पूर्णसंध्यापरम् ॥ ‘अर्घ्यान्ता मानसी संध्या कुशवारिविवर्जिता’  
 इति शुद्धिदीपे च्यवनोक्तेः ॥ पैठोनसिस्त्वर्घ्ये मन्त्रोच्चारणमाह ॥ ‘सूतके  
 सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात्’ ॥ प्रयोगपारिजाते भा-  
 रद्वाजोपि—‘सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम् । तथा मार्जनमन्त्रा-  
 स्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायाध्यं निवेदयेत् । मार्जनं  
 तु न वा कार्यमुपस्थानं नचैव हि’ ॥ ग्रहणे श्राद्धादावप्याशौचापवादमाह  
 व्याघ्रः—‘स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके’ इति ॥ लैङ्गेपि—‘सूतके  
 मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते’ ॥  
 प्रयोगपारिजाते बृहस्पतिः—‘कन्याविवाहे संक्रान्तौ सूतकं न कदाचन’ ॥  
 बृद्धशातातपः—‘यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः ॥ भूमौ निक्षिप्य तं  
 ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुध्य-  
 ति । अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुध्यति’ ॥ इदमविशेषात्सूतकादिपर-  
 मपीति शुद्धितत्त्वे शूलपाणौ च ॥ अथ द्रव्यतः ॥ म-  
 द्रव्यतः शुद्धि-  
 निर्णयः  
 रीचिः—‘लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च । शाककाष्ठतृ-  
 णेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च । तिलौषधाजिने चैव पक्वापके स्व-  
 यं ग्रहः ॥ पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके’ । स्वयमेव स्वाम्यनुज्ञया ग्राह्यं न  
 तद्धस्तादित्यर्थः ॥ क्रये तु तद्धस्तादपि न दोषः ॥ पक्वं लड्डुकादि ॥ अपक्वं

१—अग्निसाध्यनित्यनैमित्तिककर्मन्यतया निषेधप्राप्ताविति शेषः ॥



तण्डुलादि ॥ एतदन्नसत्रपरम् ॥ ‘अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम् । भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत्’ इत्याङ्गिरसोक्तैः ॥ पक्वान्नमोदनादि ननु भक्ष्यम् ॥ षट्त्रिंशन्मते—‘उभाभ्यामपरिज्ञाते मृतकं नैव दोषकृत् । एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके । परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥ भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः’ ॥ बृहस्पतिः—‘विवाहोत्सव’ इत्याद्युक्त्वा—‘पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः’ ॥ षडशीतौ—‘संसर्गाद्यस्य वाशौचं यस्यातिक्रान्तकालता । तदीयस्य पदार्थस्य नाशौचं विद्यते क्वचित्’ ॥ शुद्धितत्त्वे—‘शुद्धयेदि’  
 मृतदोषे निर्णयः  
 त्यनुवृत्तौ विष्णुः—‘प्रोक्षणेन पुस्तकम्’ इति ॥ अथ मृतदोषे हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कौर्मै च—‘व्यापादयेद्य आत्मानं स्वयमभ्युदकादिभिः । विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्यादकक्रिया’ ॥ शवदर्शनं यावदाशौचमस्त्येव ॥ ‘हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम्’ इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ शुद्धितत्त्वे कौर्मै—‘सद्यः शौचं समाख्यातं शापादिमरणे तथा’ । आदिपदादभिचारहते ॥ भविष्ये—‘स्वेच्छया मरणं विप्राच्छृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । अन्त्यान्त्यजविषोद्वन्धैरात्मना चैव ताडनैः । पाखण्डमाश्रिताश्चैव महापातकिनस्तथा ॥ स्त्रियश्च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास्तथा । न तेषां स्नानसंस्कारौ न श्राद्धं न सपिण्डनम्’ ॥ गौतमः—‘प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्वन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्’ इति ॥ नाशौचमिति शेषः । अङ्गिराः—‘चण्डालादुदकात्सर्पाद्वाहणाद्वैद्युतादपि दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ उदकं पिण्डदानं च प्रेतैभ्यो यत्प्रदीयते । नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति’ ॥ षड्त्रिंशन्मतेऽप्येवम् ॥ ब्राह्मेपि—‘शृङ्गिदंष्ट्रिणखव्यालविषवह्निक्रियाजलैः’ ॥ व्यालो गजः ॥ ‘सुदूरात्परिहर्तव्यः कुर्वन्क्रीडां मृतस्तु यः । नागानां विप्रियं कुर्वन्हतश्चाप्यथ विद्युतां ।

१—प्रायो महाप्रस्थानम्, अनाशकमनशनम्, प्रपतनं गिरिशिखरादेरवपातः । इति टीका ॥



‘निगृहीतः स्वयं राज्ञा चौर्यदोषेण कुत्रचित् । परदारान् हरन्तश्च द्वेषान् पतिभिर्हताः ॥ असमानैश्च संकीर्णैश्चण्डालाद्यैश्च विग्रहात् ॥ कृत्वा तैर्निहतास्तद्वच्चण्डालादीन् समाश्रिताः ॥ शस्त्राग्निगरदाश्चैव पाखण्डाः क्रूरबुद्धयः । क्रोधात्प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्वन्धनं जलम् ॥ गिरिवृक्षप्रपातं च ये कुर्वन्ति नराधमाः । कुशिल्पजीविनो यश्च सूनालंकारधारिणः ॥ मुखे भगास्तु ये केचित् क्लीबप्राया नपुंसकाः ॥ ब्रह्मदण्डहता ये च ये चापि ब्राह्मणैर्हताः । महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥ पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः । न चाश्रुपातः पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥ एतानि पतितानां तु यः करोति विमोहितः । ततश्चच्छ्रद्दयेनैव तस्य शुद्धिर्न चान्यथा ॥ एतबुद्धिपूर्वं ॥ सर्वेषां करणेतु माधवीये वसिष्ठः—‘य आत्मन्त्यागिनां कुर्यात्स्नेहात्प्रेतक्रियां द्विजः । स ततश्चच्छ्रदसहितं चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ अज्ञाने तु—‘ कृत्वाग्निमुदकं स्नानं संस्पर्शं वहनं कथाम् । रज्जुच्छेदाश्रुपातं च ततश्चच्छ्रेण शुध्यति’ इति ज्ञेयम् ॥ प्रत्येकं बुद्धिपूर्वं एतदिति मदनपारिजातः ॥ प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोर्मिताक्षरायाम् ‘तच्छ्रवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पतितं यदि । पूर्वोक्तानामकारि चेदेकरात्रमभोजनम् ॥ एकरात्रं तु नाश्रीयत् त्रिरात्रं बुद्धिपूर्वकम् ॥ इति माधवीये उत्तरार्द्धम् ॥ अन्येषु तु संवर्तः—‘एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा । कटोदकक्रियां कृत्वा कच्छं सांतपनं चरेत्’ । अज्ञाने त्वर्धम् ॥ एतदनाहिताग्नेः ॥ आहिताग्नेः कच्छ एवेति माधवः ॥ मिताक्षरायां—‘आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया । तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम् ॥ आहिताग्नेस्तु विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—‘वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे । पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि ॥ छन्दोगपरिशिष्टेपि—‘महापातकसंयुक्तो दौरात्म्यादग्निमान्यदि । पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंशयात् ॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा प्रियते यदि । गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येच्छपरिच्छदम् ॥ पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव

१-अयेः नौ रेतः सेकिनः । २-उत्सादितहन्तृक्रोधजनितशापादिः ॥



वा क्षिपेत्' ॥ माधवीये पराशरः— 'आहिताग्निर्मृतो विप्रश्चण्डालेनात्म-  
घातकः । दहेत ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्रौ मन्त्रवर्जितम् ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चा  
द्विप्राणामनुशासनात् । दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरेण क्षालयेत्ततः ॥ स्वेनाग्नि  
ना स्वमन्त्रेण पृथगेन पुनर्दहेत्' ॥ हेमाद्रौ तु 'दाहयित्वा शवं तेषां शूद्रैरवि-  
धि पूर्वकम्' इत्युक्तम् ॥ एतद्वर्पादिना मरणे ज्ञेयम् ॥ 'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छ-  
न्ति ये के चात्महनो जनाः' इति । श्रुतावात्महनने एव दोषोक्तेः ॥ प्रमादम-  
रणे त्वाशौचादि सर्वं भवत्येव । तदाहाङ्गिराः— 'अथ कश्चित्प्रमादेन म्रिये-  
ताग्न्युदकादिभिः । तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया' ॥ ब्राह्मेपि—  
'प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः । शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्यु-  
ज्जलादिभिः । चण्डालैरथ वा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं  
कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः' इति ॥ प्रमादमरणे त्रिरात्रमाशौचमिति गौडाः  
शुद्धितत्त्वादयः ॥ दशाहादिति दाक्षिणात्याः ॥ अस्यापवादो हेमाद्रौ भ-  
विष्ये— 'प्रमादादिच्छया वापि न कुर्यात्सर्पतो मृते' ॥ नागपूजां विना न  
कुर्यादित्यर्थः ॥ बौधायनोपि— 'बुद्धिपूर्वात्महन्तृणां क्रियालोपो विधीय-  
ते' ॥ क्रियान्त्यकर्म ॥ तत्र दुर्मरणनिमित्तं दानादि कार्यम् ॥ तच्च विश्वप्र-  
काशादौ शातातपीये च 'व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत् ।  
सर्पदष्टे नागबलिर्दयः सर्पश्च काञ्चनः ॥ चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद्गजैर्हते ।  
राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्यमयम् ॥ चौरिणे निहते धेनुं वैरिणा निहते  
वृषम् । वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्त्या तु काञ्चनं ॥ शय्यामृते प्रदातव्या श-  
य्या तूलीसमन्विता । निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥ शौचहीने  
मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम् । संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत् ॥  
निष्कत्रयं स्वर्णमितं दद्यादश्वं हयाहते । शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजश-  
क्तितः ॥ सूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् । कृमिभिश्च मृते दद्याद्गौ-  
धूमान्पञ्चखारिकाः ॥ वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम् । शृङ्गिणा निहते  
दद्याद्दृषभं वस्त्रसंयुतम् । शकटेन हते दद्याद्रव्यं सोपस्करान्वितम् ॥ भृगुपातमृ



ते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् । अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तिः ॥ दारु-  
 णा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा । शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्वि-  
 ताम् ॥ अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥ विषेण च मृते दद्या-  
 न्मेदिनीं हेमनिर्मिताम् ॥ उद्धन्धनेन च मृते कर्पिं कनकनिर्मितम् ॥ मृते जले-  
 न वरुणं हैमं दद्याद्विनिष्कजम् ॥ विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ।  
 घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठाक्षकवले मृते ॥ कासरोगेण च मृते अष्टरुच्छ्रं व्रतं  
 चरेत् । अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत् ॥ शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते  
 जपेद्बुधं यथोदितम् । विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् । अन्त-  
 रिक्षमृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यादस्पृश्यस्पर्शतो  
 मृते । पतिते च मृते कुर्यात्प्राजापत्यांस्तु षोडश ॥ मृते चापत्यरहिते  
 रुच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥ एवं कृते विधाने तु विदध्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥  
 तथा वधमरणेपि न दोषः ॥ तदाहतुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ— ‘वृद्धः शौचमृ-  
 ते लुप्तप्रत्याख्यातभिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥  
 तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्रा-  
 द्धमाचरेत् ’ इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मेपि— ‘नरस्तु व्याधिरहितो न त्यजेदा-  
 त्मनस्तनुम् । असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः ॥ तांस्ते प्रेत्याभि-  
 गच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः ॥ अरिष्टैरात्मनो ज्ञात्वा मृत्युकालमुपस्थित-  
 म् । व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णं वायुषि चात्मनः ॥ यथा युगानुसारेण  
 संत्यजेदात्मनस्तनुम् । तस्मिन्काले तनुत्यागाद्यथेष्टं फलमाप्नुयात् ॥ आयु-  
 षस्तु पुरा दृष्टं मरणं ब्राह्मणस्य च’ ॥ नेति गौडानामपपाठ उत्तरार्धे असंगतः ॥  
 ‘क्षत्रियस्य तु संग्रामे मृते भर्तारि योषितः’ ॥ अपराकै ब्रह्मगर्गः—‘यो जी-  
 वितुं न शक्नोति महाव्याध्युपपीडितः । सोऽग्न्युदकं महायात्रां कुर्वन्नात्र न दुष्य-  
 ति’ । अत्रोक्तवक्ष्यमाणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्स्यरोगाद्युपहताना-  
 मधिकारः ॥ सोऽपि जीर्णवानप्रस्थस्यैवेति विज्ञानेश्वरदेवयाज्ञिकादयः ॥ अत  
 एव मिताक्षरादौ भृगुपातानशनादिकं वानप्रस्थस्यैवोक्तम् ॥ मनुरपि—आसां



महर्षिचर्याणां त्यक्तवान्यतमया तनुम् । वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्प-  
ते' इति ॥ तेनान्यत्रापि तद्विषयतैव मूलैक्यादिति केचित् ॥ तन्न ॥ दानप्रस्थमरणे  
आशौचनिषेधात् ॥ तेन गृहस्थादिपरमवेदम् ॥ तेन यतेर्नाधिकारः । कास्येऽनधि-  
काराच्च ॥ नैमित्तिकत्वे त्वकरणे दोषो नित्यता च स्यात् । प्रयागे त्वरोगिणां रो-  
गिणां च ॥ यत्तु—'शूद्राश्च क्षत्रिया वैश्या अन्त्यजाश्च तथाधमाः । एते त्यजे-  
युः प्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप ॥ पतित्वा ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महा चात्महा  
भवेत् ' इति, तन्निर्मूलमिति भट्टाः ॥ तत्त्वं तु हेमाद्रौ व्रतकाण्डेऽलिखना-  
न्निर्मूलत्वं चिन्त्यमेव ॥ प्रक्रमात्तु पतित्वेति भृगुपातमात्रपरं युक्तम् ॥ ब्राह्म-  
णस्याप्यनुज्ञातमिति वक्ष्यमाणविरोधाच्च ॥ यत्त्वादित्यपुराणे—'अब्राह्मणो  
वा स्वर्गादिमहाफलजिगीषया । प्रविशेज्ज्वलनं तोयं करोत्यनशनं तथा'  
इति, तत्प्रयागातिरिक्तपरमिति केचित् ॥ हेमाद्रौ त्वेतदग्रे 'प्रयागवटशा-  
खायात्' इत्युक्तेर्ब्राह्मणस्य प्रयागेऽपि नेति प्रतीयते ॥ माधवीयेऽप्यार्षे  
चादित्यपुराणे—'दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तु पुमानपि । प्रविशेज्ज्वलनं  
दीप्तं करोत्यनशनं तथा ॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव च । गच्छे-  
न्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात् ॥ प्रयागवटशाखायाद्देहत्यागं करोति च ।  
स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः ॥ उत्तमान् प्राप्नुयाल्लोकानात्म-  
घाती भवेत् क्वचित् । महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान् भोगान् समश्नुते ॥ एतेषा-  
मधिकारस्तु सर्वेषां सर्वजन्तुषु ॥ नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा ॥  
ईदृशं मरणं येषां जीवतां कुत्रचिद्भवेत् । आशौचं स्यात्त्यहं तेषां वज्रानल-  
हते तथा ॥ वाराणस्यां श्रियेयस्तु प्रत्याख्यात भिषक्क्रियः । काष्ठपाषाण-  
मध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः ॥ अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलं गतो हरः ।  
प्रणवं तारकं ब्रूते नान्यथा कुत्रचित्क्वचित् ' ॥ हेमाद्रौ चैवम् ॥ अत्र प्राप्ते  
काले इत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः स्त्रिया अन्वारोहणे संपूर्णमेवाशौचम् ॥  
पृथ्वीचन्द्रस्त्वत्रापि त्र्यहमाह ॥ शुद्धितत्त्वादिगौडग्रन्थेष्वप्येवम् ॥ एत-  
च्च वृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धम् ॥ 'भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा'  
इति—माधवेन पृथ्वीचन्द्रेण च कलिर्वर्जेषूक्तेः नचात्र यावदुक्तनिषेधः ॥



विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदात् ॥ न च कलौ वानप्रस्थाश्रमनिषेधादेव सिद्धमरण-  
निषेधो व्यर्थ इति वाच्यम् ॥ सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्तद्विन्नस्यापि प्राप्तेः काम्यं  
भवत्येव ॥ 'ये वै तन्वं विसृजन्ति' इति श्रुतेः स्मृत्या संकोचायोगात् ॥  
नचेयं स्वाभाविकमृत्युपरा, धीरपदोक्तेः ॥ मात्स्यभारतादिषु—'न लोक-  
वचनात्तात न वेदवचनादपि ॥ मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति' इत्यु-  
क्तेः ॥ अतएव विष्णुधर्मे रोग्यादिमरणमुक्तोक्तम् 'यथायुगानुसारेण संत्य-  
जेदात्मनस्तनुम्' इति ॥ काश्यामप्युक्तं मात्स्ये—'अग्निप्रवेशं ये कुर्युर-  
विमुक्ते विधानतः । प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने' ॥ हेमाद्रौ  
विवस्वान्—'सर्वेन्द्रियविमुक्तस्य स्वव्यापाराक्षमस्य च । प्रायश्चित्तमनुज्ञात-  
मग्निपातो महापथः ॥ धर्मार्जनासमर्थस्य कर्तुः पापाङ्कितस्य च । ब्राह्मण-  
स्याप्यनुज्ञातं तीर्थे प्राणविमोक्षणम्' ॥ अपराकै चैवम् ॥ सहगमनं कलौ  
भवत्येव ॥ 'कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादते' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥

१—यत्तु कैश्चिदुक्तम्—पुरुषाणामिव स्त्रीणामप्यात्महननस्य प्रतिषिद्धत्वादतिप्रवृद्धस्व  
र्गाभिलाषायाः प्रतिषेधशास्त्रमतिक्रामन्त्या अयमनुगमनोपदेशः श्येनवदिति । तदयुक्तम्  
येतावत्श्येनकरणिकायां हिंसायां विधिसंस्पर्शाभावेन प्रतिषेधसंस्पर्शात् फलद्वारेण श्येन-  
स्यानर्थत्वं वर्णयन्ति, तेषां मते हिंसाया एव स्वर्गार्थतयानुगमनशास्त्रेण विधीयमानत्वात्प्र  
तिषेधसंस्पर्शाभावादग्नीषोमीयपशुवत्स्पष्टमेवानुगमनस्य श्येनवैषम्यम् । यत्तु मतम्—हिंसा  
नाम मरणा नुकूलो व्यापारः, श्येनश्च परमरणानुकूलव्यापाररूपत्वाद्धिसैव । कामाधिकारे  
च करणांशेरागतः प्रवृत्तिसंभवेन विधेरप्रवर्तकत्वाद्वागप्रयुक्ता हिंसारूपत्वात् श्येनः प्रतिषिद्धः  
स्वरूपेणैवानर्थ इति, तत्राप्यनुगमनशास्त्रेण मरणस्यैव स्वर्गसाधनतया विधानान्मरणेयद्यपि  
रागतः प्रवृत्तिः तथापि मरणानुकूले व्यापारे अग्निप्रवेशादावितिकर्तव्यतारूपे विधित एव  
प्रवृत्तिरिति न निषेधस्यावकाशः 'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः' इति वत् । तस्मात्स्पष्टमे  
वानुगमनस्य श्येनवैषम्यम् । 'तस्मादुह न परायुषः स्वः कामी प्रेयात्' इति श्रुतिविरोधादनु  
गमनमयुक्तमिति । 'स्वः काम्यायुषः प्राक् न प्रेयादिति' । स्वर्गफलोद्देशेनायुषः प्रागायुर्व्ययो  
न कर्तव्यो मोक्षार्थिना, यस्मादायुषः शेषे सति नित्यनैमित्तिककर्मनुष्ठानक्षपितान्तःकरण  
कलंकस्य श्रवणमनननिदिध्यासनसंपत्तौ संत्यामात्मज्ञानेन नित्यनिरतिशयानन्दब्रह्मप्राप्ति  
लक्षणमोक्षसंभवः, तस्मादनित्याल्पसुखरूपस्वर्गार्थमायुर्व्ययो न कर्तव्य इत्यर्थः । अतश्च  
मोक्षमनिच्छन्त्या अनित्याल्पसुखरूपस्वर्गार्थिन्या अनुगमनं युक्तम् । इतरकाम्यानुष्ठा-  
नवदिति सर्वमनवद्यम् ॥ इति मिताक्षरा ।



एतेन मरणान्तिकप्रायश्चित्तं काशीखंडादौ चानुर्वर्ण्यस्य ॥ तनुत्यागविध-  
यश्च युगान्तरपरा एव ॥ प्रयागेपि त्रिस्थलीसेतौ स्कान्दे— ‘यथाकथं-  
चितीर्थेस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः । तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सिता-  
न्यपि’ पाद्मे विष्णुः— ‘देहत्यागं तथा धीराः कुर्वन्ति मम संनिधौ । मत्तनुं-  
प्रविशन्त्येव न पुनर्जन्मने नराः’ ॥ कौर्मै— ‘व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो  
वापि भवेन्नरः । गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ईप्सितोल्ल-  
भते कामान्वदन्ति मुनिपुंगवाः’ ॥ तथा— ‘या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य  
मनीषिणः । सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे’ ॥ वाराहे— ‘तत्र  
यो मुञ्चति प्राणान् वटमूलेषु सुन्दरि । सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रप-  
द्यते’ ॥ तथा— ‘अकामो वा सकामो वा वटमूलेषु सुन्दरि ॥ शीघ्रं प्राणा-  
न्प्रमुञ्चेत् यदीच्छेत्परमां गतिम्’ ॥ तथा— ‘पञ्चयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य  
तु मण्डले । व्यतीतान्पुरुषान्सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरस्तारयते सर्वान्  
यस्तु प्राणान्परित्यजेत्’ ॥ ब्राह्मे— ‘ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे वि-  
ष्णुतत्परः । तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ दुष्कृतोपि दुरा-  
चारो ब्रह्महत्यादिपातकी । हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रायशो मुक्तिमान्भवेत्’ ॥  
भविष्योत्तरे— ‘समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश ।  
महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः’ ॥ इति सामा-  
न्यतोपि फलम् ॥ एवमन्येपि विधयो ज्ञेयाः ॥ यत्तु गौडाः । प्रयागादिम-  
रणं ब्राह्मणभिन्नविषयमित्याहुस्तदूषणं पितामहचरणैः प्रयागविधौ कृत-  
मिति नात्रोच्यते ॥ अत्र दशाहमाशौचम् त्रिरात्रस्य प्राप्तकालगोचरत्वादिति  
भट्टाः ॥ युक्तं तु त्रिरात्रम् ॥ दिवोदासीयेष्वेवम् ॥ शुद्धितत्त्वेपि का-  
श्यपः— ‘अनशनमृतानामशनहतानामग्निजलप्रविष्टानां भृगुसंग्रामदेशान्तर-  
मृतानां जातदन्तानां च त्रिरात्रम्’ इति ॥ एवं मरणान्तप्रायश्चित्तेपि ॥ पूर्वो-  
क्तश्चात्महादेर्दाहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव ॥ वत्सरान्ते तु सर्वमौर्ध्वदेहिकं  
कुर्यात् ॥ गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैवच । ऊर्ध्वसंवत्सरात्कुर्यात्स-



'वमेवौर्ध्वदेहिकम्' इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ एवं म्लेच्छीकृतानामपि  
 गयाश्राद्धमपि कार्यम् ॥ 'ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्चपातकी ।  
 सर्वे ते निष्कृतिं यान्ति गयायां पिण्डपातनात्' इत्यग्निपुराणात् ॥ एवं ब्राह्मे-  
 पि— 'क्रियते पतितानां तु गते संवत्सरे क्वचित् । देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाकूपे  
 स्वबन्धुभिः ॥ मार्तण्डपादमूले वा श्राद्धं हरिहरौ स्मरन् ॥ सूर्यपद इत्यर्थः ॥  
 तत्र वर्षमध्ये कृत्यमुक्तमपराकं वायुपुराणे— 'शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां कुर्यात्  
 श्राद्धं तु वत्सरम् । द्वादशाहनि वा कुर्याच्छुक्ले च प्रथमेहनि' छागलेयः—  
 नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्य-  
 ब्रवीद्यमः' ॥ व्यासः— 'नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शु-  
 द्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा' इति ॥ स चात्मघातादिप्रायश्चित्तं कृत्वा  
 कार्यः ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते— 'कृत्वा चान्द्रायणं पूर्वं क्रिया कार्या  
 यथाविधि । नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः ॥ पिण्डोदकक्रियाः  
 पश्चादृषोत्सर्गादिकं च यत् । एकोद्दिष्टानि कुर्वीत सपिण्डीकरणं तथा'  
 दिवोदासीये वृद्धशातातपस्तु— 'पतिते च मृते शुद्धौ प्राजापत्यांस्तु षोडश।  
 मृते चापत्यरहिते कच्छ्राणां नवतिं चरेत्' इत्याह ॥ इदं प्रायश्चित्तार्हपित्रादिवि-  
 षयम् ॥ 'इन्द्रियैरपरित्यक्ता ये च मूढा विषादिनः ॥ घातयन्ति स्वमात्मानं  
 चाण्डालादिहताश्च ये ॥ तेषां पुत्रश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः । यथा  
 श्राद्धं प्रतन्वन्ति विष्णुनामप्रतिष्ठितम् ॥ तथा ते संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्व-  
 यंभुवे' हेमाद्रौ तेनैवोक्तेः ॥ तत्रैव बौधायनोपि— 'नारायणबलिं व्याख्या-  
 स्यामोऽभिषिक्तपतितसुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि  
 वा कुर्वीत' इति ॥ गृह्यपरिशिष्टे तु— चण्डालादित्यायुक्ता— 'दग्ध्वा  
 शरीरं प्रेतस्य संस्थाप्यास्थीनि यत्नतः । प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं पुत्रैश्चान्द्रायण-  
 त्रयम्' इत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने ब्राह्मे— 'प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्वि-  
 धिचोदितः । चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित् ॥ तस्य दाहादिकं  
 कार्यं यस्मान्नपतितस्तु सः । चान्द्रायणं तप्तकच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये ॥  
 यद्वा कच्छ्रान्पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत् । बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंश-



त्कच्छं समाचरेत्' इत्युक्तम् ॥ स्मृतिरत्नावल्यां तु—'द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वावर्गप्यब्दात्सर्वं कार्यम्' इत्युक्तम् 'आत्मनो घातशुद्धयर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् । तप्तकच्छचतुष्कं च त्रिंशत्कच्छाणि वा पुनः ॥ अर्वाक् संवत्सरात्कुर्याद्दहनादि यथोदितम् । कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः' इति ॥ इदं चात्मवधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुचितं कार्यम् ॥ अतएव बौधायनोक्तं 'द्वादश वर्षाणि त्रीणि वा' इति ॥ मदनपारिजाते स्मृत्यर्थसारे च—'ब्रह्महादीनां तद्योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वा नारायणबलिः कार्यः' इत्युक्तम् ॥ एवं स्लेच्छीकृतानामपि ॥ यत्तु कश्चिदाह—'पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशे मानाभावः आत्मघाते तु वचनादस्तु । महापातके तु कथं स्यादिति ॥ स स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तेन समुच्चयंवदन् हृदयशून्य एव ॥ नहि जातिवधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति ॥ पुत्रकृतृकसर्वप्रायश्चितादिविषुवापत्तेः ॥ प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक् ॥ इदं प्रायश्चित्तार्हाणामेव ॥ प्रायश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकमात्रं कार्यम्' इति केचित् ॥ मदनपारिजातादिस्वरसोप्येवम् ॥ वस्तुतस्तु—'तदर्हानर्हयोर्वचनेनुपादानादानाद्विशेषात्तत्रापि नारायणबलिर्गयाश्राद्धं चेति युक्तम् ॥ पतितोदकविधिस्तु 'पित्राद्यतिरिक्तविषयः' इत्यपरे ॥ स यथा हेमाद्रौ ब्राह्मे—'पतितस्य तु कारुण्याद्यस्तृप्तिं कर्तुमिच्छति । स हि दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतनाम् ॥ अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि । हे दासि गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम् । तोयपूर्णं घटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी । उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप ॥ कीर्तयेः पातकीसंज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वदेः । निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्यां करोति तत् ॥ एवं कृते भवेत्तृप्तिः पतितानां च ना-

१—प्रायश्चित्तार्हाणामिति शेषः ॥ २—स्मृत्यर्थसारादिवशान्माधवग्रन्थो जीवतां जातिवधेन समुच्चितस्य तस्यावश्यकतापरः, न तु तन्मरणोत्तरं तत्समुच्चितस्य तस्याप्रामाणिकत्वपरोपि बौधायनवाक्यस्यैव तत्प्रमाणत्वाद्ग्रन्थद्वयस्याप्यविरोधानिर्वाहाच्चेति दिग्गर्थः ॥ ३—इदमापा ततः 'कारुण्यात्' इति हेतुना प्रायश्चित्तनारायणबलिसहितौर्ध्वदौहिकायोग्यत्वासेद्धेः ॥ इति टीका ॥



न्यथा ' इति ॥ इदं च मृताहे कार्यम् ॥ पतितस्य दासी मृताहि यदा घटमपव-  
 र्जयेदेतावतायमुपचरितो भवतीति मदनरत्नेविष्णूक्तेः ॥ इदं चात्मत्यागिवि-  
 षयम् । आत्मत्यागिनः पतितास्ते नाशौचोदकभाजः स्युरित्युपक्रम्य विष्णुना  
 एतस्याभिधानादिति गौडाः ॥ यत्तु कश्चिदाह यः पतितो घटस्फोटेन बान्ध-  
 वैर्बहिष्कृतस्तद्विषयाणि क्रियानिषेधवाक्यानि जीवत्येव तस्मिन्नन्त्यकर्मणः  
 कृतत्वात्तत्पुनःकरणाभावादिति ॥ स बन्धुत्यागेन जातवैराग्यस्य कृतप्रा-  
 यश्चितास्याप्यकरणापत्तेर्मिताक्षरादिविरोधमपश्यन् मूर्ख इत्युपेक्षणीयः ॥  
 नच कृतघटस्फोटस्य संग्रहविधिर्नैति वाच्यम् ॥ मनुनाऽकृतघटस्फोटस्य  
 त्यागमुक्त्वा—'प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्धं प्रास्येयुः  
 स्नात्वा पुण्ये जलाशये ' इत्युक्तेः । अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् ॥  
 अतो घटस्फोटेन बहिष्कृतस्यापि पित्रादेरब्दान्ते नारायणबलिः ॥ निषे-  
 धास्तु पितृव्यादिपरा इति तत्त्वम् ॥ केचित्तु नारायणबलौ कृतेऽप्यन्त्यकर्म  
 सपिण्डनवर्जं कार्यम् ' गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैवच । व्युत्क्रमाच्च  
 प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डना ' इति वचनात् । ' ब्राह्मणादिहते तातेपतिते  
 सङ्गवर्जिते ' इति श्राद्धप्रकारोक्तेश्चेत्याहुः ॥ ते हेमाद्रिस्थपूर्वोक्तषट्त्रिं-  
 शन्मतविरोधान्निर्मूलत्वाच्छ्राद्धप्रकारस्य वृद्धिश्राद्धविषयत्वादुपेक्षयाः ॥ नारा-  
 यणबलिस्तु हेमाद्र्याद्यनुसारेणोच्यते ॥ तत्रादौ क्रियानिवन्धे  
 नारायणबलि-  
 निर्णयः गारुडे तर्पणमुक्तम् ' कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवै-  
 रपि । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन् ॥ अनादि-  
 विधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदोभव ' इति  
 शुक्लैकादश्यां देशकालौ संकीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषना-  
 शार्थमौर्ध्वदेहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये इतिसं-  
 लप्य ' ब्रह्माणं विष्णुं शिवं यमं प्रेतं च पञ्चकुम्भेषु । विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो  
 रुद्रस्ताम्रमयस्तथा । ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥ प्रेतो  
 दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना ' इति गारुडोक्तासु सर्वासु हैमीषु वा प्रतिमासु



षोडशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्याग्निं प्रतिष्ठाप्य चरुं पुरुषसूक्तेन प्रत्यूचं नारायणायेदमिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदर्भेषु विष्णुरूपं प्रेतं स्मरन् नाम-  
 गोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान् दश पिण्डान् यज्ञोपवीत्येवामुकगोत्रामुकशर्मन्  
 प्रेतं विष्णुरूपाय ते पिण्ड उपतिष्ठतामिति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमन्त्र्य तेनैव  
 शङ्खोदकेनाभिषिच्याभ्यर्च्यामुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि'  
 इति पुरुषसूक्तेन प्रत्यूचं तर्पयित्वा एकमामान्नं ब्रह्मादिपञ्चभ्यो दद्यात् ॥ मन्त्र  
 स्तु—'ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सकिंकरः । बलिं गृहीत्वा कुर्वन्तु प्रेतस्य च  
 शुभाङ्गतिम्' इति ॥ मिताक्षरायां तु होमबल्यादि नोक्तम् ॥ ततः प्रतिदैवतं  
 त्रिविधं फलं शर्करामधुगुडघृतानि च निवेद्य पिण्डानभ्यर्च्य नद्यां क्षिप्त्वा रात्रौ  
 नव सप्त पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषितो जागरं कृत्वा श्वोभूते पुनर्विष्णुं यमं  
 संपूज्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्य इत्युक्त्वा विष्णुयमप्रेतान् स्मरन्  
 विप्रानुपवेश्य प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन् पाद्यावाहनार्घ्ययुतं तृप्तिप्रश्नान्तं  
 कृत्वोल्लेखनादि कृत्वान्नशेषेण विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय सपरिवाराय  
 चतुरः पिण्डान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पञ्चमं दत्त्वाभ्यर्च्या-  
 चान्तेभ्यो दक्षिणां दत्त्वैकं प्रेतं स्मृत्वा विशेषतः संतोष्य विप्रैः प्रेतायेदं तिलो-  
 दकमुपतिष्ठतामिति सतिलमुदकं दापयित्वा भुञ्जीतेति ॥ अत्र विशेषान्तरं  
 भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् ॥ सर्पहते तु वर्षपर्यन्तं पूर्वह्येकभक्तपूर्वं शुक्लप-  
 ञ्चम्यामुपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं नागमनन्तवासुकिशङ्खपद्मकम्बलकर्को  
 टकाश्वतरधृतराष्ट्रशङ्खपालकालियतक्षककपिलेतिनामभिः प्रतिमासं संपूज्य  
 पायसेन विप्रान् संपूज्य वत्सरान्ते हैमं नागं गां च दत्त्वा नारायणबलिं कु-  
 र्यात् ॥ एतन्मूलं तु हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ बौधायनसूत्रे 'सर्पमृतानां नमोस्तु  
 सर्पेभ्यः' इति तिस्र आहुतीर्हुत्वा, उदके मृतानां समुद्राय वयुनाय हुत्वेति'  
 क्रियां कुर्यादिति शेषः ॥ व्यासः— ॥ 'सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा  
 तथैव गाम् । व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्तवान्' ॥ हेमाद्रौ भ-  
 विष्ये— 'पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत् । क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं



पूज्यविप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना ' इति ॥  
अपराके स्मृत्यन्तरेपि— ' तदैव शुद्धयति प्रेतो नारायणबलौ कृते । यो  
ददाति क्रियापिण्डं तस्मै प्रेताय वै सुतः ॥ तस्यैवाशौचमुद्दिष्टं व्यहमेव न  
संशयः । विष्णुश्राद्धसमाप्तौ तु त्रयोदश्यां दिनत्रयम् ॥ आशौचं दिण्डदः  
कुर्यान्न तु तद्वन्धुगोत्रजाः । यस्य वै मृत्युकाले तु व्युच्छिन्ना संततिर्भवेत् ॥  
स वसेन्नरके नित्यं पङ्कमग्नः करी यथा ' इत्युपक्रम्य— ' बलिं नारायणं कु-  
र्यात्तस्योद्देशेन भक्तिमान् ' इति गारुडोक्तेरपुत्रस्यापि पत्न्याद्यैः कार्यं इत्युक्तं  
देवयाज्ञिकेन ॥ अथ विधानादाशौचाभावः यथा—यतिशुद्धमृतादिषु

त्रयाणामाश्रमाणां च कुर्याद्वाहादिकाः क्रियाः । यतः  
विधानादाशौ- किञ्चिन्न कर्तव्यं नचान्येषां करोति सः ' इति ब्राह्मात् ॥  
चाभावः

उशनाः—' एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा । अह-  
न्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ॥ सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुता-  
दिभिः । त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥ अथ तत्संस्कारं वक्ष्या-  
मः ॥ दत्तात्रेयः—' एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रिया । न कुर्या-

द्वार्षिकदन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ' ॥ वार्षिकादिति पूर्वभा-  
भिषुप्रेतसं- विमासिकादिनिषेधो नतु दशदिः ॥ ' संन्यासिनोप्याब्दि-  
स्कारः कादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि ' इति वायवीयोक्तेः ॥ पृथ्वी-

चन्द्रोदये प्रजापतिः—' अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ।  
सपिण्डीकरणं तस्य न कर्तव्यं सुतादिभिः ' ॥ एषु सपिण्डनादिनिषे-  
धानुवादेन पार्वणोक्तेस्तत्स्थानापन्नत्वं पार्वणस्य गम्यते ॥ ' नगिरागिरेति  
ब्रूयादैरंकृतवोहेयम् ' इतिवत् ॥ इदं वार्षिकादिविधानं च त्रिद-  
ण्डनामेव एकदण्डिपरमहंसादीनां तु न किमपि कार्यम् । पूर्वोक्तो-  
शनोवाक्ये त्रिदण्डिग्रहणादिति शूलपाण्यादयो गौडाः ॥ त्रिदण्ड-  
शब्देन मनोदण्डादिदण्डत्रयोक्तेः ॥ ' यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिद-

१—' महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यामेव तद्भवेत् इत्युत्तरार्धम् ॥



ण्डीति चोच्यते' इति स्मृतेः ॥ बौधायनः—' नारायणबलिश्चास्य कर्तव्यो  
द्वादशेहनि' ॥ अस्य पार्वणेन समुच्चयो ज्ञेयः ॥ तं च स एवाह—'कृत्वा  
विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् । अग्नौ कृत्वा तु तच्छेषं व्याहृतीभिः  
समाहितः ॥ यतीन् गृहस्थान्साधून्वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् । अभ्यर्च्य  
गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः ॥ संभोज्य हव्येनान्येन दक्षिणां च निवेद-  
येत् । त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं संयतोन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथातथाभ्यर्च्य  
पाद्याद्यैश्च विधानतः । दद्यात् पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥ व-  
स्त्रालंकरणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् । उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्शना-  
स्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवःस्वःस्वधायुक्तैस्तस्मै दद्याद्वलित्रयम् । अश्वमेधस-  
हस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ तत्फलं लभते देव यः करोति यतिक्रिया-  
म्' शौनकस्तु—'शौनकोहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिं परम् । च-  
ण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रीभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषा-  
श्मभिः । देशान्तरमृतानां च मृतानां वान्यसाधनैः ॥ जीवच्छ्राद्ध  
मृतानां च कनिष्ठानां तथैव च । यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्ष-  
कांक्षिणाम् ॥ पुण्यायाघक्षयार्थाय द्वादशेहनि कारयेत् ॥ द्वादश्यां श्रव-  
णेन्दान्ते पञ्चम्यां पर्वणोस्तु वा' इत्युक्त्वा पूर्वोक्तं सर्वं विधिमुक्त्वा अतोदे-  
वेति षड्भिः पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा केशवादिद्वादशनामभिस्तद्रूपिणे  
पित्रे द्वादश विप्रान् संभोज्य तैरेव द्वादशपिण्डान्दद्यादित्यधिकमाह ॥ युद्धमृते  
तु प्रागुक्तम् ॥ कृतजीवच्छ्राद्धमृते सपिण्डैराशौचादि कार्यं न वा ॥ तदुक्तं हे-  
माद्रौ लैङ्गे—' मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम् । कालं गते  
द्विजे भूमौ खनेद्वापि दहेत वा ॥ पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते' ॥  
जीवत्यपि विशेषस्तत्रैवोक्तः 'नित्यं नैमित्तिकं यत्तु कुर्याद्वा संत्यजेत वा ॥  
बान्धवेपि मृते तस्य नैवाशौचं विधीयते ॥ सूतकं च न संदेहः स्नानमात्रेण  
शुद्ध्यति' ॥ एतद्योगिविषयम् 'योगमार्गरतोपि च' इति तस्याप्युक्तेः ॥ त-  
थाऽऽहिताग्नौ प्रोषितमृते तदस्थिदाहात्पूर्वं पित्रादीनामाशौचं संध्यादिकर्मलो-



पथ नास्ति 'अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्या-  
द्विदेशस्थे मृते सति' इति मृतेः॥ आहिताग्नेर्दाहात्प्रागपि दशाहः ॥ संस्कारा-  
ङ्गं च भिक्षो दशाह इति धूर्तस्वामी रामाण्डारश्च ॥ तच्चिन्त्यम् ॥ मूलै-  
क्याद्वचोविरोधाच्च ॥ एतत्प्रागुक्तम् ॥ अत्र देहस्यैव संभवे दाहः ॥ 'आहि-  
ताग्नौ विदेशस्थे मृते सति कलेवरम् ॥ निधेयं नाग्निभिर्यावत्तदीयैरपि दह्यते  
इति ब्राह्मोक्तेः ॥ तदभावे छन्दोगपरिशिष्टे—'विदेशमरणेस्थीनि आहृत्या-  
भ्यज्य सर्पिषा । दाहयेद्वाहिषाच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ अस्थामलाभे  
पर्णानि शकलान्युक्तयावृता ॥ दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम्' ॥  
हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते— 'कुर्याद्दर्भमयं प्रेतं दर्भैस्त्रिंशतषष्टिभिः । पालाशिभिः  
समिद्धिर्वा संख्या चैवं प्रकीर्तिता' ॥ भविष्ये— 'चत्वारिंशच्छिरस्थाने ग्रीवा-  
यां च दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद्विंशतिं च तथोरसि ॥ उदरे विंशतिं दद्या  
त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजंघयोः ॥ पादाङ्गुली  
षु दश वै एषा च प्रेतकल्पना' ॥ मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—'शिरस्यशीत्यर्धं दद्याद्  
ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैकशतं दद्याद्दश चैवाङ्गुलीषु च ॥ उरसि त्रिं-  
शतं दद्याद्विंशतिं जठरोदरे । द्वादशार्द्धं वृषणयोरष्टार्धं शिश्न एव तु ॥ ऊर्वोश्चै  
कशतं दद्यात्त्रिंशतं जंघयोर्द्वयोः । पादाङ्गुलीषु द्वे दद्यादेतत्प्रेतस्य कल्पनम् ॥  
मस्तके नारिकेरं तु अलावुं तालुके तथा । पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां  
कदलीफलम् ॥ चक्षुषोस्तु कपर्दी द्वौ नासिकायां तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्म-  
पत्राणि केशे वटप्ररोहकाः । नालकं कमलानां तु अन्त्रस्थाने विनिक्षिपेत् ।  
मृत्तिका तु वसा धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुक्रे तु पारदं दद्यात्पुरीषे पित्तलं  
तथा । संधीषु तिलपिष्टं तु मांसे स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्व-  
चास्थाने मृगत्वचा । स्तनयोर्जर्जरे देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं ना-  
भिदेशे स्याद्दन्ताके वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥  
गोमूत्रं गोमयं गन्धं सर्वौषध्यादि सर्वतः' इति ॥ इदं निरग्नेरपि ॥ तत्रैव वृद्ध-  
मनुः—प्रोषितस्य तथाकालो गतश्चेद् द्वादशाब्दिकः । प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे



प्रेतकार्याणि कारयेत् ॥ बृहस्पतिः— 'यस्य न श्रूयते वार्ता यावद्द्वादश-  
वत्सरात् । कुशपुत्रकदाहेन तस्य स्यादवधारणा' ॥ भविष्ये— 'पितरि  
प्रोषिते यस्य न वार्ता नैव चागमः । ऊर्ध्वं पञ्चदशाद्वर्षात्कृत्वा तत्प्रतिरूपकम् ॥  
कुर्यात्तस्य तु संस्कारं यथोक्तविधिना ततः । तदादीन्येव सर्वाणि प्रेतकर्माणि  
कारयेत्' । द्वादशाब्दप्रतीक्षापितृभिन्नविषयेति मदनरत्ने उक्तम् ॥ गृह्य-  
कारिकायां तु— 'तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रिया । ऊर्ध्वं पञ्च-  
दशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता । द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता ।  
चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा सुतैः ॥ कुशैः प्रतिकृतिं दग्ध्वा  
कार्याः शौचादिकाः क्रियाः' इत्युक्तम् ॥ पराशरः— 'देशान्तरगतो  
नष्टस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी  
च या ॥ उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत्' । इदं मास-  
ज्ञाने ॥ तत्राहिताग्नेः पूर्णाशौचम् ॥ अनाहिताग्नेस्तु त्रिरात्रम् 'अना-  
हिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना स्वयम् । तदभावे पलाशानां वृन्तैः  
कार्यः पुमानपि ॥ वेष्टितव्यस्तथा यत्नात् कृष्णसारस्य चर्मणा । ऊर्णासूत्रेण  
बद्धा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा ॥ सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना । अ-  
सौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सचान्धवैः ॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरा-  
त्रमशुचिर्भवेत्' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये दाहे तत्र 'प्रो-  
षिते कालशेषः स्यात्' इत्युक्तेः ॥ किंतु तदूर्ध्वम् ॥ तत्र पत्नीपुत्रयोः पूर्वमेगृही-  
ताशौचयोर्दशाहायेव ॥ गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रम् ॥ पत्नीमृतौ भर्तुश्चैवं  
सपत्न्योश्चैवमिति स्मृत्यर्थसारे ॥ अन्यसपिण्डानां तु सर्वत्र पर्णशरदाहे त्रिरा-  
त्रम् ॥ तदाहाङ्गिराः— 'देशान्तरमृतं श्रुत्वानाशौचं चेत्कथंचन' ॥ गृहीत-  
मितिशेषः ॥ 'कालात्ययेपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयम्' इति । स्मृत्यर्थसा-  
रे तु— 'गृहीताशौचानां स्नानमात्रमुक्तम् ॥ बह्वचपरिशिष्टेपि अथाती-

१-द्वादशावर्षादिप्रतीक्षास्थले तत्पूर्वं मरणसंदेहादन्यत्र मरणाज्ञानादाशौचस्याग्रहः ।

२-मरणनिश्चयेनेत्यादि ।



तसंस्कारः ॥ स चेदन्तर्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वं समापयेदूर्ध्वमाहिताग्ने-  
र्दाहात्सर्वमाशौचं कुर्यादन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोः सर्वमाशौ-  
चम् । गृहीताशौचयोः कर्माङ्गमिति त्रिरात्रम् ॥ षडशीतावप्येवम् ॥ विश्वा-  
दर्शे तु 'प्रतिकृतिदहने त्वग्निदे स्यात्त्रिरात्रम्' इत्युक्तम् ॥ द्वादशवर्षादिप्रती-  
क्षोत्तरं दाहे तु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरात्रमिति कल्पतरुदिवोदासादयः ॥

अथ प्रेतसंस्कारे कालः ॥ हेमाद्रौ गार्ग्यः—'प्रत्यक्षशवसं-  
प्रेतसंस्कारे कालः स्कारे दिनं नैव विशोधयेत् । आशौचमध्ये संस्कारे  
दिनं शोधयं तु संभवे ॥ आशौचविनिवृत्तौ चेत्पुनः संस्क्रियते मृतः । संशोध्यै-  
व दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि ॥ प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तराय-  
णम् । कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनत्रयम्' । वाराहे—'चतुर्थाष्टमगे  
चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत् । प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ पारिवे तथा ॥ करणे  
विष्टिसंज्ञे च शनैश्वरदिने तथा । त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मतारात्रये तथा' ॥  
जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः । भारते—'नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मि-  
न्जातो भवेन्नरः । न प्रौष्ठपदयोः कार्यं तथाग्रेये च भारत ॥ दारुणेषु च सर्वेषु  
प्रत्यरिं च विवर्जयेत्' ॥ काश्यपः—'भरण्याद्रामघाश्लेषामूलद्विच-  
रणानि च । प्रेतकृत्येतिदुष्टानि धनिष्ठाद्यं च पञ्चकम् ॥ फाल्गुनीद्वितयं रो-  
हिण्यनूराधापुनर्वसू । आषाढे द्वे विशाखा च भानि द्विचरणानि च' ॥  
ज्योतिर्नारदः—'चतुर्दशीतिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं  
द्वयङ्घ्रिभं विषमाऽङ्घ्रिभम् ॥ शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरा-  
र्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात्कुलनाशनम्' ॥  
अस्यापवादमाह तत्रैव बैजवापः—'प्रेतस्य साक्षाद्गृध्रस्य प्राप्ते त्वेकादशेह-

१-वस्तुतस्तु-पुत्रपत्नीभिन्नसपिण्डानां द्वादशाब्दोत्तरं दाहे त्रिरात्रं तत्र मरणकालानव-  
धारणेन कालविशेषव्यवस्थितत्रिरात्राद्यतिक्रान्ताशौचपक्षासंभवेन त्रिरात्रपक्षस्य बोचित-  
त्वात् । अन्यत्र तु व्यवस्थया त्रिरात्राद्यतिक्रान्ताशौचपक्ष एवेति । अन्ये तु गृहीताशौ-  
चानामगृहीताशौचानां वा सर्वेषां पुत्रादिसपिण्डानां सर्वत्र स्वाशौचकालादूर्ध्वं प्रति-  
कृतिदाहे त्रिरात्रमित्याहुः ॥ इति टीका ॥



नि । नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किञ्चन ॥ युगमन्वादिसंक्रातिदर्शे प्रे-  
तक्रिया यदि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत् ' ॥ विश्वप्रकाशो-  
पि—' गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे । नातीतः पितृमेधः स्याद्भयां  
गोदावरीं विना ' दानमपि तत्रैवोक्तम्—' भद्रायां भूमिदानं स्यात्त्रिपादक्षे  
हिरण्यदः ॥ वारेषु तत्तद्वर्णं तु वासोदानं विधीयते ॥ धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्च-  
स्तनानि दापयेत् । एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्थं वा तदर्थकम् ॥ नवषट्त्रि-  
पलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ' इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ हेमाद्रौ वृद्धमनुः—  
' अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदेहिकम् । प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वा-  
ग्नीनादधीत च । जीवन् यदि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्ज्य तम् ॥ उद्धृत्य  
स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ द्वादशाहं व्रतचर्या त्रिरात्रमथवास्य  
तु ॥ स्नात्वोद्वहेत तां भार्यामन्यां वा तदभावतः । अग्निनाधाय विधिवद्  
व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् ॥ अथेन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु ।  
इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूस्ततः ' ॥ अनाहिताग्नेस्तु चरुः ॥ मृतवार्ता-  
श्रवणे त्वाश्वलायनः—' सुरभय एव यस्मिन् जीवे मृतशब्दः ' इति ॥  
यस्य तु जीवत एव मृतिवार्ता श्रुत्वा स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तद्वैधमेव  
भर्तुर्मरणज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । प्रमात्वस्य गौरवेणायुक्तत्वाच्चेति केचित् ॥  
तत्र ॥ मरणज्ञानस्य निमित्तत्वेतीतानागतयोरपि तत्त्वापत्तेः । भर्तुर्वैधदा-  
हाभावेन तस्याः सहगमनाभावाच्च ॥ तस्मादाशौचवज्ज्ञातमरणस्यैव निमित्त-  
त्वम् ॥ नचात्र तदस्ति ॥ परं काम्यं मरणमस्तु ॥ अत आत्महननदोषोस्तीति  
तातपादाः ॥ तथा सर्पसंस्कारे कृते त्रिरात्रमाशौचं तद्विधिं  
सर्पसंस्कारविधिः चाह शौनकः—' अथ वक्ष्यामि सर्पस्य संस्कारविधिमुत्तम-  
म् । सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत् ॥ कृतसर्पवधो विप्रः  
पूर्वजन्मनि वा यदि । वधं प्रख्यापयेत्पापी चरेत्कच्छ्रांश्चतुर्दश ॥ विप्राय लो-  
हदण्डं च तन्मूल्यं वापि दापयेत् ॥ मूल्यमाह—' निष्कत्रयं द्विनिष्कं वा निष्क-

१—सहगमनादिनाऽन्यथा मरणात् । २—लोहं सुवर्णं सुवर्णपर्यायेषु तस्य पाठादिति टीका ॥



मेकं कनीयसम् । अनुमत्यादिकर्तृणां निष्कमर्धं तदर्धकं ॥ इदं स्वर्णरूप्ययोः  
 शक्त्या ज्ञेयम् ॥ संस्कारमाह प्रियङ्गुव्रीहिगोधूमतिलपिष्टेन वा पुनः । कृत्वा  
 सर्पाकृतिं शूर्पे निधाय प्रार्थयेदहिम् ॥ एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समा-  
 विश । संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समासतः ॥ वस्त्रोपवीतगन्धाद्यैः सं-  
 पूज्य च हरेद्वहिः । कुर्यात्संस्कारसंकल्पं प्राणायामपुरःसरम् ॥ यज्ञोपवी-  
 तिना कार्यं सर्पसंस्कारकर्म तु । लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्य समिदाधानमाचरेत् ॥  
 ततोऽग्रेरग्निदिग्भागे भूमिं संप्रोक्ष्य वारिभिः । चितिं कृत्वाथ संस्तीर्य कुशैराग्ने  
 यकाग्रकैः ॥ पर्युक्ष्याग्निं परिस्तीर्य परिषिच्य समर्चयेत् । कृत्वेध्माधान-  
 माधारौ चक्षुषी च यथाविधि ॥ सर्पं गृहीत्वा यत्नेन चितिमारोपयेत्सुधीः ।  
 सुवेण जुहुयादाज्यमग्नौ व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ सर्पास्ये जुहुदाज्यं व्याहृत्या च  
 समग्रया । आज्यशेषं सुवेणैव सर्पदेहे निषेचयेत् ॥ चमसस्यैर्जलैः सर्पं व्या-  
 हृत्याभ्युक्ष्य पाणिना । अग्ने रक्षान इत्यनया सर्पायाग्निं प्रदापयेत् ॥  
 उपातिष्ठेदह्यमानं नमोस्तु सर्पमन्त्रतः ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्प-  
 वधो मया । पूर्वजन्मनि वा सर्पं तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ क्षीराज्येन ततश्चाग्निं  
 प्रोक्ष्य व्याहृतिभिर्जलैः । नास्थिसंचयनं कुर्यात् स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् ।  
 ब्रह्मचर्यादिकं कार्यं त्रिरात्राशौचमिष्यते ॥ सचैलं तु चतुर्थेहि स्नात्वा  
 विप्रान् समर्चयेत् ॥ सर्पोनन्तस्तथा शेषः कपिलो नाग एव च । कालिकः  
 शंखपालश्च भूधरश्चेति नामभिः ॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद् द्विजान् ।  
 घृतपायसभक्ष्यैश्च द्विजानष्टौ तु भोजयेत् ॥ एवंकृते विधानेन सर्पसं-  
 स्कारकर्मणि ॥ सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ इति सर्पसं-  
 स्कारः ॥ क्वचित्तु जीवतोऽप्यन्त्यकर्माशौचं च कार्यम् ॥

जीवतोऽन्त्यक- यथा—प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य घटस्फोटे— ‘पतितस्यो-  
 र्माशौचं च.

दकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह । निन्दितेहनि सायाह्नौ  
 ज्ञात्यृत्विगुरुसंनिधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्तदा । अहो-  
 रात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह’ इति मनूकेः ॥ निन्दिते रिक्तादौ अप



परार्के वसिष्ठोपि— 'वेदविष्ठावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णवर्गपतितास्तेषां पात्रनि  
नयनमपात्रसङ्कारादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोन्सवर्णपुत्रो वा बन्धुरसदृशो वा  
गुणहीनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापिः पूर्णपात्रमस्मै  
निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशा ज्ञातयोन्वालाभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु  
स्वैरमापयेरन्नत ऊर्ध्वं तेन तं धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः' इति ॥ ऊत्तमवर्णा  
ब्राह्मणादयः तेषां वर्गः समूहस्तस्मात्पतिता ब्रह्महादयः । अपात्रसंस्कारः  
कुत्सितपात्रसमूहः । प्रवृत्ताग्राः छिन्नाग्राः । स्वैरं यथेच्छं धर्मादिकार्यं कुर्युः  
अस्माद्वचनसामर्थ्यात्पात्रनिनयनात्प्राक्पतीतज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो ना  
स्तीत्यपरार्कः । 'तस्य विद्यागुर्योनिस्सम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदका-  
दिप्रेतकार्याणि कुर्युः, पात्रं वास्य विपर्यस्येयुः 'दासः कर्मकरो वाऽवकराद-  
मेध्यं पात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुदकं  
करोमि इति नामग्राहं सर्वेन्वालाभरेन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अप उपस्पृ-  
श्य ग्रामं प्रविशेयुः' इति गौतमोक्तेश्च ॥ उदकादीत्युक्तेर्दाहनिवृत्तिः । प्रेत-  
कार्याण्येकादशाहश्राद्धान्तानि ॥ दास्याहतोऽम्बुघटो दासीघटः । तेनोदके-  
नामेध्यपात्रं पूरयित्वा दासादिन्युब्जं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः ॥ अत्र  
नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वर्जनत्वार्थम् ॥ तेन तत्तूष्णीं भवति ॥  
एतच्च प्रायश्चित्तानिच्छोः ॥ 'तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभि-  
ख्याप्य तमनुभाष्य पुनःपुनराचारं लभस्वेतिसपथेवमप्यनवस्थितमतिः स्या-  
त्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्' इति शङ्खोक्तेः ॥ जीवन्तमेवोद्दिश्य पिण्डोदक-  
श्राद्धानि नाम्ना दद्यादित्यपरार्कः ॥ कृतप्रायश्चित्तस्य घटस्फोटे कृतेऽपि

संग्रहविधिमाह गौतमः 'यस्तु प्रायश्चित्तेन शुध्येत्तस्मिच्छुद्धे  
पुनःसंग्रहविधिः

शातकुम्भमयं पात्रं पुण्यहृदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत  
एनमुपस्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्स प्रतिगृह्य जपेच्छान्ताद्यौः शान्तापृ-  
थिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभि  
स्तरत्समन्दीभिः कूष्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्याद्वा चाचार्याय ॥ यस्य



तु प्राणान्तिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्धयेत्सर्वाण्येव तस्मिन्नुदकादीनि प्रेतक-  
 र्माणि कुर्युरेतेदेवशान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु ' इति ॥ घटस्फोटोत्तरं प्राणा-  
 न्तिकप्रायश्चित्ते कृते तु मृत एव शुद्धयेन्न तत्र संग्रहविधिः । अतस्तेन विना-  
 पि प्रेतकर्म कुर्यादित्यर्थः ॥ उपपातकेष्वपि घटस्फोटे कृत एवं कार्यमि-  
 त्यर्थः ॥ याज्ञवल्क्यः— ' चरितव्रत आयाते निनयेरन्नवं घटम् । जुगुप्से-  
 रन्नचाप्येनं संवसेयुश्च सर्वशः ' ॥ कृतघटस्फोटस्यैवायं परिग्रहविधिरिति  
 मिताक्षरायामपराकै च ॥ अन्यथा प्रायश्चित्तमात्रे एतत्प्रसङ्गात् ॥ मनु-  
 रपि घटस्फोटमुक्त्वा— ' निवर्त्तेरंस्ततस्तस्मात्संभाषणसहासनैः ' इत्युक्त्वा—  
 ' प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् । तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा  
 पुण्ये जलाशये ' इति तच्छब्दं प्रायुङ्क्त ॥ अपराकै वसिष्ठोपि— ' पतितानां  
 चरितव्रतानां प्रत्युद्धारोऽथाप्युदाहरन्ति ' अग्रेऽत्युद्धरतां गच्छेत्कीडन्निव  
 हसन्निव । पश्चात्पातयतां गच्छेच्छोचन्निव रुदन्निव ' इत्याचार्यमातृपितृ-  
 न्तारस्तत्प्रसादादपगतपापा एतेषां प्रत्यापत्तिः पूर्णहृदात्प्रवृत्ताद्वा सकाञ्चनं पात्रं  
 माहेयं वाद्भिः पूरयित्वापोहिष्ठीयाभिरेनमद्भिरभिषिञ्चेयुः, सर्व एवाभिषिक्तस्य  
 प्रत्युद्धारः पुत्रजन्मना व्याख्यातः ' इति ॥ प्रत्युद्धारः परिग्रहः ॥ तत्रोद्ध-  
 रतां हसन्निवाग्रेसरः स्यात् पातयतां घटस्फोटं कुर्वतां शोचन्निव पश्चाद्रच्छे-  
 त् । मातापित्रादिहन्तृणां परिग्रहो न कार्यः । तत्प्रसादे सति चीर्णव्रतानां  
 कार्यः । प्रवृत्तं निर्झरः । पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरं जातकर्मादयः संस्काराः  
 पुत्रजन्मवत्कार्या इत्यपराको व्याचख्यौ ॥ अतएव विज्ञानेश्वरः ' घटे  
 पवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम् ॥ प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि  
 सत्क्रिया ' इत्यत्र गवां भक्षणाभावे पुनर्व्रतं चरेदित्येतत्प्रकृते, एवं चरितव्रत-  
 विधौ विशेषोयमिति वदन् घटस्फोटोत्तरं परिग्रह एवैतन्न सर्वत्रेत्याह ॥ त-  
 स्मात्कृतेपि घटस्फोटे प्रायश्चित्तं परिग्रहविधिः पुनः संस्कारा भवन्तीति सि-  
 द्धम् ॥ तथा जीवच्छास्त्रे कृते हेमाद्रौ बौधायनः— ' तत्राशौचं दशाहं  
 स्यात्स्वस्य ज्ञातेर्न विद्यते ' इत्यलं प्रसङ्गेन ॥ एवं सापवादे आशौचे उक्ते



प्रतिशाखं भिन्नेष्वन्यकर्मणि साधारणं किञ्चिदुच्यते ॥ तत्रा-  
 अन्यकर्मसा- धारणाविधिः धिकारिणः प्रागुक्ताः ॥ सर्वाभावे धर्मपुत्रो वा कार्यः 'अपु-  
 त्रेण सुतः कार्यो यादृक्तादृक्प्रयत्नतः । पिण्डोदकक्रियाहेतो-  
 र्नामसंकीर्तनाय च ' इति व्यासवचनात् ॥ गृह्यपरिशिष्टे— 'असंगोत्रः  
 संगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समा-  
 पयेत् ' ॥ दद्यात्पिण्डमिति शेषः ॥ भविष्ये— 'यत्रायो दीयते पिण्डस्तत्र  
 सर्वं समापयेत् ॥ ब्राह्मेपि— 'प्रथमेऽहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः ।  
 अन्नं नवसु चान्येषु स एव प्रददात्यपि ' ॥ विज्ञानेश्वरादयस्तु— 'के-  
 चित्तुअग्निं दद्यादि' ति व्याचक्षते ॥ 'संगोत्रो वाऽसंगोत्रो वा योऽग्निं दद्या-  
 त्सखे नरः । सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धयेत्तु दशमेऽहनि ' इति दिवोदासीये  
 वचनाच्च ॥ तत्रैव— 'दृष्ट्वा स्थानस्थमासन्नधर्मोन्मीलितलोचनम् । भूमि-  
 ष्ठं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् ॥ तद्विशिष्टं भयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि' ॥  
 तानि यथा— 'मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन  
 मुकुन्दः प्रीयतां मम ' इति मोक्षधेनुमन्त्रः ॥ 'ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तज-  
 न्मार्जितं ऋणम् ॥ तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददतो मम ' इति ऋण-  
 धेनोः ॥ 'आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ तत्सर्वं नाशमा-  
 यातु गोप्रदानेन केशव ' इति पापधेनोः ॥ भारते— 'शुक्लपक्षे दिवा भूमौ  
 गङ्गायां चोत्तरायणे । धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने' ॥ हेमाद्रौ  
 वाराहे— 'व्यतीपातोथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः । पुण्यकालास्तदा सर्वे  
 यदा मृत्युरुपस्थितः' ॥ व्यासः— 'आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पू-  
 र्ववत् । तदभावे तु गौरेव नरकोत्तरणाय वै ॥ तदा यदि न शक्नोति दातुं  
 वैतरणीं तु गाम् । शक्नोन्योरुक्तदा दत्वा दद्याच्छ्रेयो मृतस्य तु ' मदनरत्ने  
 जातूकर्ण्यः— 'उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु । गोभूतिलहि-

१--पतितादिभिन्न इति च स्मृत्यन्तरादवगन्तव्यम् । २--संनिकृष्टासंनिधानात् ॥

३--अरुगिति छेदः ॥



रण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात् ॥  
 एतानि दश दानानि नराणां मृत्युजन्मनोः । कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतेपि  
 हि परत्र वै ' ॥ ब्राह्मे—'ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रं द्विजाय तु ।  
 सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते ग-  
 तिमुत्तमाम् ॥ उत्क्रान्तवैतरिण्यौ च दशदानानि चैव हि । प्रेतेपि कृत्वा  
 तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत् ' ॥ तत्रैव परिशिष्टे—'त्रियमाणस्य कर्णे तु  
 पुण्यमन्त्रान् जपेत्ततः ' ॥ क्रियानिवन्धे गारुडे त्वष्टौ दानान्युक्तानि ॥  
 'तुलसीसंनिधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा । तिला लोहं हिरण्यं च  
 कार्पासं लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ' ॥  
 इति ॥ दशदानवैतरिणीधेनूत्क्रान्तधेनुदानादि भट्टकृतान्त्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयम् ॥  
 कर्ताऽन्त्यकर्मधिकारार्थं त्रीन् कृच्छ्रान् कुर्यादिति तत्रैवोक्तम् ॥ अत्र  
 देवयाज्ञिकेन मुमूर्षोर्भधुपर्कदानमुक्तम् । तदुक्तं वाराहे—'दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं  
 यममार्गानुसारिणम् । प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ॥ मधुपर्कं  
 त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् ' ॥ 'ॐ गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं  
 ह्यमृतेन तुल्यम् । नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्तिकरणं सु-  
 रलोकपूज्यम् ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम् । नरस्य मृत्युकाले  
 तु परलोकसुखावहम् ' ॥ अथ दुर्मरणे दिवोदासीये—'चण्डा-  
 दुर्मरणे लादिमृते विप्रे त्वन्तरिक्षमृतेपि वा । कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तु शु-  
 द्धिस्तत्र प्रकीर्तिता ' ॥ देवजानीये जाबालिः—'शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न  
 लभेच्छाश्वतीं गतिम् । प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः पापशुद्धये ॥ चान्द्रायणं  
 पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम् ' ॥ गृह्यकारिकायाम्—'उदक्या सूतिका वापि  
 यदि प्रेतं स्पृशन्ति हि । तस्यैष विधिरादिष्टो वात्स्येनैव महात्मना ' ॥ एष सूति  
 कोक्तः ॥ मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे—'ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टो भयोच्छिष्टे तथैव  
 च । अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणेपि च । एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं स-  
 माचरेत् ॥ कृच्छ्रांस्त्रिषट्पञ्चदशांश्चान्द्रत्रयमथापि वा । शुद्धयै तदानीं सम्पाद्य  
 शवधर्मेण दाहयेत् ' ॥ गृह्यकारिकायाम्—'खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन्क-



च्छान्प्रकल्पयेत् । सप्तान्त्यजैस्तु संस्पृष्टो मृतो दैवात्कथंचन ॥ एकत्रिंशत्  
 कृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । कुणपे त्वर्धदग्धे तु चितास्पृष्टान्त्यजादि-  
 भिः । तत्स्पर्शने दूषणं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति '॥ धर्मप्रदीपे—'चाण्डा-  
 लसूतिकोदक्यास्पृष्टे प्रेते तथैव च । तस्य पापविशुद्धयर्थं कृच्छ्रान् पञ्चदशा-  
 चरेत्' इत्युक्तम् ॥ मनुः—'अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसम्पर्कदूषिता' ॥  
 अत्रापि कृच्छ्रत्रयम् 'अस्पृश्यस्पर्शने चैव' इत्युक्तेः ॥ तत्रैव कर्मप्रदीपे—  
 'रात्रौ वा रात्रिशेषे वा म्रियन्ते चेत् द्विजातयः । दाहं कृत्वा यथान्यायं  
 द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्सुतः' ॥ रजस्वलागर्भिण्यादिमृतौ तु वक्ष्यामः ॥ निर्णया-  
 मृते पारिजाते यमः—'सन्ध्यायां वा तथा रात्रौ दाहः पाथेयकर्म च । नव-  
 श्राद्धं च नो कुर्यात्कृतं निष्फलतां व्रजेत्' ॥ एतद्दिनमृतस्य रात्रिनिषेधार्थम् ।  
 यत्तु स्कान्दे—'यदि रात्रौ दहेत्तस्य समाभिर्द नस्य तु ॥ परेऽह्न्युदिते सूर्ये  
 कार्या तस्योदकक्रिया ॥ दग्धस्य तु न वै कार्या रात्रौ जातूदकक्रिया' इति ॥  
 तन्निर्मूलं ॥ रात्रिमृतस्य तु तत्रैव संग्रहे—'रात्रौ दद्धा तु पिण्डान्तं कृत्वा  
 वपनवर्जितम् । वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया' इति ॥ वपनं तु प्रा-  
 तः ॥ तच्च सर्वैः पुत्रैः कार्यम् 'गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरुर्मृतौ । आ-  
 धाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम्' इति मिताक्षरायां स्मृतेः ॥ मरण-  
 स्याऽनङ्गित्वान्नैमित्तिकमिदम् ॥ तदेव संग्रहवचनेन परेषुरुक्तं कृष्यते तीर्थव-  
 त् ॥ तेन कस्यचिद्दाहाङ्गत्वोक्तिश्चिन्त्या ॥ मदनरत्ने गालवः—'प्रथमेऽ-  
 हनि कर्तव्यं वपनं चानुभाविनाम् प्रेतस्य केशश्मश्र्वादि वापयित्वाऽथ दा-  
 हयेत्' ॥ आशौचान्ते तु पुनः कार्यं विधिबलात् ॥ मदनपारिजातेऽप्ये-  
 वम् ॥ तेन सर्वस्याऽस्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—  
 'शवं रात्र्युषितं चेत्त्रीन् कृच्छ्रान् कृत्वा दहेत्सुतः ॥ मदनरत्नेऽङ्गिराः—

१—'क्रियां च कुरुते यस्तु तद्दिने तस्य मुण्डनम् । लघीयसां दशाहे तु पुत्राणां वपनं  
 भवेत्' इति देवलवचनात् । यथाचारमिति भट्टाः । वपनं चादौ वाग्मश्रुणः 'वामकर्णकेशवा-  
 पनम्' इति प्रघटकेऽभिधानात् । प्रेतकर्मणोऽप्रादक्षिण्याच्च ॥ इति टीका ॥ २—'दिवा वा  
 यदि वा रात्रौ श्वस्तिष्ठति कर्हिचित् । तत्पर्युषितमित्याहुर्दहने तस्य का गतिः । पञ्चगव्येन  
 संस्त्राप्य प्राजापत्यत्रयं चरेत्' । इति गालवोक्तं पञ्चगव्यस्नानमपि कार्यामिति टीका ॥



ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तरिक्षमृतेपि वा । कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे म-  
 रणेपि च' ॥ अथ साग्नेर्विशेषः ॥ कारिकायाम्— 'कृष्ण-  
 साग्नेर्विशेषः पक्षे प्रमीयेत यद्यह्नि प्रातराहुतीः । शेषास्तु जुहुयादर्शपर्यन्ताः  
 पक्षहोमवत्' ॥ प्रतिपत्प्रातर्होमान्ता इत्यर्थः ॥ 'यद्याहिताग्निरपरपक्षे अग्नि-  
 ताहुति भिरेन पूर्वपक्षे हरेयुः' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ 'तदानीमेव जुहुयात्  
 सायंकालाहुतीरपि । सायं अग्निं चेतसायमाहुतीर्जुहुयादथ ॥ तदानीमेव जुहु-  
 यात् प्रातःकालाहुतीरपि । सकृद्गृहीतमन्त्रेष्टं भिन्नतन्त्रं च होमयोः ॥ दार्श-  
 चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु ॥ छन्दोगपरिशिष्टे—'हुतायां  
 सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद्गृही भवेत् । प्रातर्होमस्तदैव स्यात् जीवेच्च स  
 पुनर्नवा' ॥ इदं शुक्लपक्षपरम् ॥ दुर्बलो मुमूर्षुः ॥ त्रिकाण्डमण्डनः—  
 'दर्शोष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न संभवेत् । देवतानां प्रधानानामेकै-  
 कस्य हुनेत्पृथक् ॥ पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यां चतुराक्षवृताहुतीः' । तथा—  
 'अग्रावरणयोरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि । प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपा-  
 वरोहणम् ॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया' ॥ विच्छिन्नश्रौ-  
 ताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं तत्रैवोक्तम् 'प्रेतं स्वाम्यालये क्षिप्त्वा मथित्वाभ्यान-  
 लेरणी । सन्निधायारणीं मन्थेत् यस्येतियजुषा ततः ॥ यस्याग्नयो जुह्वतो  
 मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसम् ॥ जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं  
 लोकमिमं प्रेतं नयन्तिवति मन्त्रतः । 'प्रणीय पावकं तूष्णीं द्वादशोपात्तसर्पिषा ।  
 तूष्णीं हुत्वा ततः कुर्यात्प्रेते माल्या इति क्रियाम् ॥ नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशि  
 स्वामी अग्निं चेत् । आहरेदरणीन्द्रद्व मनोज्योतिर्क्वा ततः' ॥ यज्ञपाश्वः—  
 'यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति । वर्षाद्यभिहते वह्नौ कथं कुर्वन्ति  
 याज्ञिकाः ॥ तदर्धदग्धकाष्ठेन मन्थनं तत्र कारयेत् । तच्छेषालाभतोन्येन  
 दग्धशेषे वा पुनः ॥ हुत्वाज्यं लौकिके वह्नौ हुतशेषं दहेत् वा' । अत्राग्निषु

१—भस्मशेषेणेति । 'अग्निनाशे मृतिश्चेत्स्यादाहिताग्नेस्तदोच्यते । नर्योल्लुक् मथित्वैनं  
 संस्क्रुयुस्तदभावतः । तद्भस्मस्पृष्टकाष्ठेन मथित्वा निर्दहेच्च तम्' इति कारिकोक्तेः । दग्धशे-  
 पेणेति व्यर्थपाठः । इति टीका ॥



सत्सु पर्णशरैः शरीरोत्पत्तिः ॥ शरीरे वासति प्रेताधानेनाश्रयुत्पत्तिः ॥ उभया-  
भावे तु प्रेताधानेऽनधिकाराद्वाहादिसंस्कारलोपः ॥ उदकदानाद्येव कार्यमिति  
केशवीकारशतद्वयीप्रमुखाः ॥ तन्न 'निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्र-  
तः क्रियाः' इतिविरोधात् ॥ 'क्रियालोपगता ये च' इतिनिषेधात्तदभावे  
पलाशानां वृन्तैः कार्यः ॥ पुमानपीत्यभावे विधानस्याश्रयभावेपि साम्याच्च ॥  
तेन प्रेताहुत्यभावेपि स्विष्टकृद्व्यान्तरोक्तेरदृष्टार्थत्वात् ॥ प्रेताधानं दाहोपि  
भवत्येव ॥ प्रतिकृतेरग्नीनां च प्रेताधानप्रयोजकत्वाक्षतेः ॥ पत्न्या अप्येवम् ॥  
'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं व्रतवतीं पतिः' इतियाज्ञवल्क्योक्तेः ॥ यत्तु—  
'द्वितीयां चैव यो भार्या दहेद्वैतानिकाग्निभिः । जीवन्त्यां प्रथमायां तु सुरा-  
पानसमं स्मृतम्' इति तदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञानेश्वरः म-  
दनरत्ने ब्राह्मेपि—'आहिताश्रयोश्च दंपत्योर्यस्त्वादौ श्रियते भुवि । तस्य  
देहः सपिण्डैश्च दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ॥ पश्चांमृतस्य देहस्तु दग्धव्यो लौकि-  
काग्निना । अनाहिताग्निदेहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना द्विजैः ॥ त्रिकाण्डमण्डनस्तु  
विकल्पमाह—'ज्येष्ठायां विद्यमानायां द्वितीयायै स्वयोषिते । काम्यं नि-  
त्याग्निहोत्रं वा न कथंचित्प्रयच्छति ॥ स्त्रीमात्रमविशेषेण दग्ध्वान्यैर्वैदिका-  
दिभिः । विवाह्यादधते यद्वाधानमेवास्ति चेद्वधूः' इति ॥ अत्रेदं तत्त्वम् साग्नेः  
पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ ॥ पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्देहेदित्येकः पक्षः 'भार्यायै  
पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च' इति  
मनूक्तेः ॥ 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं व्रतवतीं पतिः' इति याज्ञवल्क्यो-  
क्तेश्च ॥ पुनर्विवाहशक्तौ निर्मन्थ्येन तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रेष्ट्यादि  
कार्यमित्यर्थः ॥ 'आहार्येणाहिताग्निं पत्नीं च' इत्याश्वलायनोक्तेः ॥ भर-  
द्वाजोपि—'निर्मन्थ्येन पत्नीम्' इति ॥ पूर्वाग्न्येकदेशेन दहेदिति यज्ञपार्श्व-

- १—यथा हुतशेषनाशे आज्येन स्विष्टकृद्धोमः, तथा मृतशरीरनाशे पर्णशराहुतिरित्यर्थः ।  
२—यन्मृतिशङ्कादौकर्तव्यहोमदर्शादिकमारभ्य एतदन्तमुक्तम्, तन्न केवलं यजमानस्यैव  
किंतु पत्न्या अपि, तस्या अपि आहिताग्नित्वस्मात्ताग्नित्वयोः सत्त्वात् ॥ इति टीका ॥  
३—निर्मन्थ्येन ।



देवयाज्ञिकादयः ॥ यानि च— ‘तस्मादपत्नीकोप्यग्निहोत्रमाहरेत्’ इति श्रुतिः । विष्णुः छन्दोगपरिशिष्टं च—‘मृतायामपि भार्यायां लौकिकाग्निं न हित्यजेत् । उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत्’ ॥ उपाधिर्हमकुशपत्न्यादिः ॥ ‘अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः । अग्निहोत्रमुपासन्ते यावज्जीवमनुव्रताः’ इत्यपराकै स्मृत्यन्तरात् ॥ कात्यायनोपि—‘रामोपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् । ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सह भ्रातृभिरच्युतः’ इत्यादीनि— तानि पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादिपराणि, नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि क्रतुविधीनामाधानाप्रयोजकत्वात् ॥ अपत्नीकस्याधानाप्रवृत्तिरिति मानवपरिशिष्टाच्च ॥ ‘सोमषो न भवत्येव अपत्नीकोप्यसोमपः’ इति श्रुतेः यत्तु भरद्वाजापस्तम्बसूत्रम्—‘दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयम्’ इति ॥ अस्यार्थः पुनर्विवाहाशक्तौ यदग्न्याधेयं पूर्वं कृतमस्ति तदात्मार्थमेव न पत्न्यै दद्यादिति ॥ ब्राह्मणभाष्यापराकैकाशारामाण्डादितत्त्वमप्येवम् ॥ त्रिकाण्डमण्डनस्तु पक्षद्वयमाह ॥ अन्येप्यपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्मः ॥ वृद्ध याज्ञवल्क्यः—‘आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः । अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः’ ॥ क्रतुः—‘एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वभारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित्’ ॥ कारिकायाम्—‘पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वं मृता यदि । अनग्निकां दहेदेवं कपालेन हविर्भुजा’ ॥ आशौचप्रकाशे क्रतुः—‘विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत् । ब्रह्मचारियती चैव दहेदुत्तपनाग्निना ॥ तुषाग्निना च दग्धव्यः कन्यका बाल एवच । अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिक्षिपेत् ॥ करीषादि ततो वह्निर्जातो यः स कपालजः’ ॥ अनुपनीते यद्यपि जातारण्यग्निः कैश्चिदुक्तस्तथापि तस्य कलौ निषिद्धत्वोक्तेरयमेव ज्ञेयः ॥ स्मृत्यन्तरे—‘गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः ॥ औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निस्तु कपालजः’ ॥ उत्तपनस्तु—‘दर्भाग्निं तु प्रज्वाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः । पुनर्दर्भैस्तृतीयेग्निरुत्तपनः स्मृतः’ ॥ यमः—‘यस्यानयति शूद्रोर्ध्वं



तृणकाष्ठहवींषि च । प्रेतत्वं च सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते' ॥ देवलः—'चण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः' ॥ मनुः—'दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः' ॥ अत्र प्रातिलोम्येनक्रमः 'पूर्वामुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बान्धवैर्गृहात् । उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा ॥ दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबान्धवैः' इत्यादिपुराणादित्यपरार्कः ॥ तेन त्रिंशच्छ्लोक्युक्तोऽनुलोमक्रमो हेयः ॥ आश्वलायनः—'ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजवन्या गच्छेयुः' ॥ आधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृते यजमानमरणे श्रौतस्मार्तार्गयोः संसर्गः ॥ बौधायनसूत्रे—'अथ यद्याहिताग्निर्द्वे भार्ये विन्देत प्राक्संयोगान्मिष्येतौपासनं संपरिस्तीर्याज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्धाग्नौ जुहोति संमितं संकल्प्येथामिति मिंदाहुतीर्व्याहृतीश्च हुत्वा अथैतमग्निभ्यं ते योनिर्कृत्विज इति समिधि समारोप्य गार्हपत्ये समिधमभ्यादधाति भवतं नः समनसाविति गार्हपत्य आज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गार्हपत्ये जुहोत्यग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट इत्यपरं चतुर्गृहीत्वा चित्तिः स्तुगिति सग्रहं जुहोति, अथ गार्हपत्ये सुवाहुतीर्जुहोति ब्राह्मण एक होतेति दशभिः, अथ प्राचीनावीत्यन्वाहार्यपचने जुहोति येसमाना येसजाता इति द्वाभ्याम्, अथ तत्रैव सुवाहुतिं जुहोत्यग्नये कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा नमः स्वाहेति, अथ यज्ञोपवीती द्वादशगृहीतेन स्तुचं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेनाहवनीये जुहोति, अथ सुवाहुतीर्जुहोत्यग्नये विविचये स्वाहाग्नये व्रतपतयेग्नये पवमानायाग्नये पावकायाग्नये शुचये स्वाहाग्नये पथिकृते स्वाहाग्नये तन्तुमतेग्नये वैश्वानरायेति, अथ चतुर्गृहीतं जुहोति मनोज्योतिरित्यत ऊर्ध्वं पैतृकं कर्म प्रतिपद्यते' इति ॥ आहिताग्नौ विदेशमृते पथिकृतीष्टिर्मृताग्निहोत्रं तद्वाहः । पात्रयोजनं च कल्पसूत्रादिभ्योऽस्मत्पितामहकृतपद्धतेश्च ज्ञेयमिति बहुवक्तव्येऽप्युपरम्यते ॥ स्मार्ताग्निसूत्रे मदनरत्ने छन्दोगपरिशिष्टे च—'दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् । दक्षिणाशिरसं भूमौ बर्हिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ घृतेनाभ्यक्तमाष्ठाव्य शुद्धवस्त्रोपवीतनम् ।



चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सुमनोभिर्विभूषयेत् ॥ हिरण्यशकलान्य-  
 प्रेतनिर्हरणदाहौ  
 स्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु । मुखेष्वथापि धायैनं निर्हरेयुः सुता-  
 दयः ॥ आमपात्रेऽग्निमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् । एको नु गच्छेत्तस्यार्धमर्धपथ्युत्सृजे-  
 द्भुवि ॥ ऊर्ध्वमादहनं कार्यमासीनो दक्षिणामुखः ॥ सव्यं जान्वाच्यशनकैः सतिलं  
 पिण्डदानवत् ॥ अथ पुत्रादिरप्लुत्य कुर्याद्धारुचयं महत् । तत्रोत्तानं निपात्यैनं  
 दक्षिणाशिरसं मुखे ॥ आज्यपूर्णं स्तुवं दद्याद्दक्षिणाग्रां नसि स्तुचम् । पादयोरधरां  
 प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥ पार्श्वयोः शूर्पचमसौ सव्यदक्षिणयोः क्रमात् । सुसमे  
 तु न्यसेद्भुजमन्तरूर्वोरूलूखलम् ॥ चान्त्रो विलीढमत्रैव अग्नयेरप्ययं विधिः ।  
 अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः । अथाग्निं सव्यमावृत्को दद्याद्दक्षि-  
 णतः शनैः ॥ अस्मान्त्वमधिजातोसि त्वंदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लो-  
 काय स्वाहेति परिकीर्तयेत्' ॥ तथा—'एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं  
 भवेत् । कृष्णाजिनादिकं चात्र विशेषो ध्वर्युचोदितः' ॥ तत्रैव—'अनयैवावृता  
 नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता । अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥  
 इदं छन्दोगानामेव । पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहतं साग्निपरम्, निरग्निस्तु पुमान-  
 धोमुखः, स्त्रीतूत्ताना दाह्या ॥ 'सगोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्यतैः शवः ।  
 अधोमुखो दक्षिणादिक्चरणस्तु पुमानिति । उत्तानदेहा नारी तु सपिण्डैरपि ब-  
 न्धुभिः' इत्यादित्यपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः ॥ उत्तरशिरस्त्वं  
 सामगेतरपरम् ॥ वाराहे त्वग्निदानेऽन्यो मन्त्रः 'कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता  
 वाप्यजानता । मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ धर्माधर्मसमायुक्तं  
 लोभमोहसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान्स गच्छतु ॥ ज्वलमानं  
 महावाह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत् । चतुर्वर्णेषु संस्थानमेवं भवति पुत्रके' ॥  
 अत्र क्रियानिवन्धे गारुडे षट्पिण्डदानमुक्तम् ॥ 'मृतस्योत्क्रान्तिसमये षट्  
 पिण्डान् क्रमशो ददेत् । मृतिस्थाने तथा द्वारि चत्वरे ताक्ष्यकारणात् ॥ वि-

१—'मुसलेन सह' इति मूलस्मृतिपाठः । २—'चत्रौ विलीकमत्रैव मनस्त्रुनयनो विधिः' इति  
 मूलस्मृतिपाठः । 'चात्रौ विलीकमत्रैवम्' पुस्तकान्तरपाठः ॥



श्रामे काष्ठचयने तथा संचयने च षट् ॥ तथा—‘आदौ देयास्तु षट् पिण्डा दश देया दशाहिकाः। स्थाने चार्धपथेतीते चितायां शवहस्तके ॥ श्मशानवासि- भूतेभ्यः षष्ठं संचयने तथा’ । ततः—‘त्वं भूतरुज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः ॥ उक्तःसंहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय’ इत्यग्निं दत्त्वा, अस्मात्त्वमिति मन्त्रेणार्ध- दग्धे आज्याहुतिरुक्ता । आहिताग्नौ पराशरः—‘शम्यां शिश्वे विनिक्षिप्य अरणीं मुष्कयोरपि । जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ शिश्वे तू- लूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुसलं न्यसेत् ॥ उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मु- खे। श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥ कर्णे नेत्रमुखे घ्राणे हि- रण्यशकलं न्यसेत् । अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र निक्षिपेत् ’ ॥ प्रचेताः— ‘स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नग्नेदं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्य- जेत् ’ यमः—‘ प्रेतं दहेच्छुभैर्गन्धैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् ’ । आश्व- लायनसूत्रे—‘संस्थिते प्रेतालंकारान् कुर्वन्ति केशश्मश्रुलोमनखानि वाप- यन्ति नलदेनानुलिम्पन्ति नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति ’ इति—माधवीये ब्राह्मे— ‘दारिद्र्योपि न दग्धव्यो नग्नेः कस्यां चिदापदि ’ ॥ तथा—‘ निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित्त्यजेन्नरः ’ । दाहकालेऽग्निनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः—‘ यजमाने मृते कापि चितादौ वा प्रवेशिते । वर्षाद्यभिहतेग्नौ तु कथं प्रेतविकल्पना ॥ शेषं दग्ध्वा प्रदग्धेषु निर्मथ्यैव तु कारयेत् ’ ॥ अथ पर्णशरादिदाहेनाग्निनाशे पश्चात्तद्देहालाभे मदनरत्ने ब्राह्मे—‘अथ प- र्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति । गतेष्वग्निषु तद्देहो यदूर्ध्वं लभ्यते क्वचित् ॥ तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत् ॥ यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै न लभ्यते ॥ तदा तदस्थिखण्डं तु निक्षेप्यं महाजले ॥ दंप- त्योरेकदा मृतौ विशेषमाहापस्तम्बः—‘ तथैव प्रेते सहैव पितृमेधो द्विवचनलिङ्गान्मन्त्रान् सन्धारयन्ति ॥ पितृमेधो दा- हान्तं कर्म ॥ ‘दाहान्तमेकतन्त्रत्वम् ’ इतिबौधायनोक्तेः ॥ अस्थिसंच यनमप्येवम् ॥ उदकपिण्डदानादि पृथगेव ॥ सहगमनेप्येवम् ॥ तदाह मद-

दम्पत्योरेक-  
दामृतौ



नरत्ने भाष्यार्थसंग्रहकारः— ‘एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेत्  
 द्वयोः ॥ मन्त्रेण दहनं कुर्यात्पिण्डश्राद्धं पृथक्पृथक् ॥ एककाले मृतौ जाया  
 पती यदि तदा पिभुः । विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति यत्तदसांप्रतम् ॥ दा-  
 हान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञिकसंमतम् ॥ मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं  
 गता । अस्थिसंचयनान्तोस्या भर्तुः संस्कार एव हि ॥ कीकसानां तु सं-  
 स्कारो न्यायसिद्धोपि यो मतः । एककालेमृतेऽप्येवं कीकसानां विधिः स्मृतः ॥  
 नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा ’ ॥ कपर्दिकारिकापि— ‘मृते  
 भर्तरि तद्दाहात्प्राक् पत्नी म्रियते यदि । पत्न्यां वा प्राक् प्रमीतायां दाहादवा  
 कपतिर्मृतः ॥ तत्र तन्त्रेण दाहः स्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते । कीकसानां तु सं-  
 स्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् ॥ एकाहमृत्यौ युगपन्नवश्राद्धादिकं तयोः । मृतं  
 पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता ॥ तत्रापि दाहस्तन्त्रेण पृथगस्थिक्रिया भ-  
 वेत् ’ ॥ अस्थिसंचयनपृथक्त्वे विकल्पः ॥ सहगमने सर्वत्र पाकैक्यमाह प्र-  
 चेताः— ‘एकचित्यां समारूढौ म्रियेते दंपती यदि । तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात्पृ-  
 थक्पिण्डं समाचरेत् ’ ॥ अथोदकदानं वसिष्ठः— ‘शरीरमग्नौ  
 उदकदानम् संयोज्यानवेक्षमाणा अपोभ्यवयन्ति सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्या-  
 मुदकक्रियां कुर्वन्त्ययुग्मम् ’ ॥ आपस्तम्बः— ‘मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्यः  
 पितुश्चासप्तमात् पुरुषाद्यावतां वा सम्बन्धो ज्ञायते तेषां प्रेतपूदकक्रिया’ इति ॥  
 याज्ञवल्क्यः— ‘सप्तमादशमाद्यापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः । अपनःशोशुच-  
 दधमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ’ ।  
 सप्तमादशमाद्या दिवसादातदन्तमिति विज्ञानेऽवरः ॥ कातोयास्तु सप्तमाद-  
 शमाद्या पुरुषादित्याहुः ॥ सप्तमादशमाद्या पुरुषात्समानग्रामवासे यावत्सम्बन्ध  
 मनुस्मरेयुः ’ इति पारस्करोक्तेः ॥ मन्त्रस्नानाङ्गमेवेति हेमाद्रिः ॥ प्रचे-  
 ताः— ‘प्रेतस्य बान्धवा यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्वर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिञ्चे-  
 युरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणामुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च  
 राजन्यवैश्ययोः ’ ॥ स एव ‘नदीकूलं ततो गत्वा’ इत्युक्त्वा ‘सचैलस्तु ततः



स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्याद्दशाञ्जलीन् ॥  
द्वादश क्षत्रिये दद्याद्द्वैश्वे पञ्चदश स्मृताः ॥ त्रिंशच्छूद्राय दातव्या ततस्तु प्र-  
विशेद्बृहम् ॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ' ॥ प्रेतस्नाने वि-

शेषः शुद्धितत्त्वे आदित्यपुराणे- ' आदौ वस्त्रं च प्रक्षाल्य  
प्रेतस्नानम्

तेनैवाच्छादितस्ततः । कर्त्तव्यतैः सचैलं तु स्नानं सर्वमला-  
पहम् ' ॥ पूर्वपरिहितं वस्त्रं प्रक्षाल्य पुनः परिधाय स्नायादित्यर्थः ॥ अपन  
इतिमन्त्रेण वामहस्तानामिकया जलालोडनम् ॥ अवतरणे वृद्धपुरःसरत्वाक्तेः  
' यथाबालं पुरस्कृत्य ' इतिबोधायनीयं जलादुत्थानपरमिति हारलताद-  
यः ॥ आश्वलायनः- ' सव्यावृतो व्रजन्त्यनीक्षमाणा यत्रोदकमवहद्भवति ' ॥

तत्प्राप्य सकृदुन्मृज्यैकाञ्जलिमुन्मृज्य तस्य गोत्रं नाम गृही-  
अञ्जलिदानम्

त्वा ' इति ॥ प्रचेतसाऽन्वहमञ्जलित्रयमप्युक्तं ' त्रिःप्रसेकं  
कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु ' इति ॥ तथा- ' दिनेदिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रे-  
तकारणात् । तावद्वृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते ' ॥ एक-  
वृद्धिस्तिकवृद्धिर्वेत्यर्थः ॥ मदनरत्ने भरद्वाजगृह्ये तु द्विकवृद्धिरप्युक्ता ' आ-  
शौचान्तेप्रदद्यात्तु प्रेतपुत्रस्तिलाञ्जलीन् । प्रथमेऽह्नि सकृदद्यात्पिण्डयज्ञावृता  
दिवा ॥ त्रींश्च दद्याद्वितीयेऽह्नि तृतीये पञ्च एव च । चतुर्थे सप्तसंख्यास्तु  
पञ्चमे नव चोत्सृजेत् ॥ षष्ठेऽह्नि चैकादशकाः सप्तमे तु त्रयोदश । अष्टमे प-  
ञ्चदशका नवमे दश सप्त च ॥ एकोनविंशतिं चाग्रे शताञ्जलिमतं स्मृतम् ॥  
केचिद्दशाञ्जलीन् प्रोचुः केचिदाहुः शताञ्जलीन् । पञ्चपञ्चाशतं चान्ये स्व-  
शाखोक्तव्यवस्थया ' ॥ छन्दोगपरिशिष्टे- ' अथानवे क्षमेत्पापः सर्वे चैव  
शवस्पृशः । गोत्रनामपदान्ते तु तर्पयामीत्यनन्तरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशा-  
न्कृत्वा सतिलं तु पृथक् पृथक् ' ॥ विष्णुपुराणे- ' सपिण्डीकरणं यावद्-  
जुद्धैः पितृक्रिया । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् ' ॥ रामायणे-  
' इदं पुरुषशार्दूल विमलं दिव्यमक्षयम् । पितृलोकेषु पानीयं महत्तमुपतिष्ठ-  
ताम् ' दानवाक्ये विकल्पः ॥ याज्ञवल्क्यः- ' कामोदकं सखिप्रत्तास्व-



स्त्रीयश्वशुरत्विजाम् ' ॥ काम इच्छा ॥ प्रेततृप्तीच्छायां देयमन्यथा नेत्यर्थः ॥  
 शङ्खपारस्करौ—'आचार्ये चैवं' 'मातामहयोश्च स्त्रीणां चाप्रत्तानां कुर्वी-  
 रंस्ताश्च तेषाम्' इति ॥ द्विवचनान्मातामह्या अपि ॥ शङ्खलिखितौ—'उ-  
 दकक्रिया कामं श्वशुरमातुल्योः शिष्ये सहाध्यायिनि राजनि च' इति ॥ बृद्ध-  
 मनुः—'क्रीवाद्या नोदकं कुर्युःस्तेन व्रात्या विधर्मिणः । गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सु-  
 राप्यश्चैव योषितः' याज्ञवल्क्यः—'न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तथा' ॥  
 षडशीतौ—'स्वीयाचारादपि भ्रष्टाः पतिता ये च दूषिताः । न कुर्युरुदकं ते  
 वै तेभ्योप्यन्ये न चैव हि' ॥ मदनरत्ने हारीतः—'पतितानामवृद्धानां चर-  
 न्तीनां च कामतः । प्रत्तानां चैव कन्यानां निर्वर्त्या सलिलक्रिया' ॥ अप-  
 रार्के शङ्खलिखितौ—'अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि व्यावर्तन्ते' ॥  
 अपपात्रितः कृतघटस्फोटः ॥ तस्यापि संग्रहविधौ कृते आशौचोदकादि कुर्या  
 देवेत्याशौचप्रकाशः ॥ अथाशौचे नियमाः ॥ याज्ञवल्क्यः  
 आशौचे नियमाः 'इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः ॥ विदश्य निम्बप-  
 त्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ आचम्याभ्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् ।  
 प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥ प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिना  
 मपि । क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्क्षितौ' ॥ इदं चाद्येहि ॥ व-  
 सिष्ठः—'अथ प्रस्तरे गृहमनश्नन्त आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वा वर्त्तेरन्' ॥  
 शुद्धितत्त्वे बैजवापः—'शमीमालभन्ते शमी पापं शमयतु इति, अश्मा-  
 नमश्मेव स्थिरो भूयासमिति, अग्निमग्निर्नः शर्म यच्छत्विति, ज्योतित्वन्तरा गा  
 मजमुपस्पृशन्तः क्रीत्वा लब्ध्वा वान्यगेहोदकान्नमलवणमेकरात्रं दिवा भुञ्जी-  
 रंस्त्रिरात्रं च कर्मोपरमणम्, क्रीतायशनमुपवासाशक्तस्य' ॥ आश्वलायन-  
 स्तु—'नैतस्यां रात्र्यामन्नं पचेरन्, त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनः स्युः द्वादश-  
 रात्रं वा' इत्याह ॥ अशक्तौ रत्नाकरे आपस्तम्बः—'नार्याः परमगुरुसं-  
 स्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन्' ॥ यदा मृतिः, परदिने तावत्कालपित्य-  
 र्थः ॥ बृहस्पतिः—'अधः शय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिताः । अक्षा-



रालवणाच्चाःस्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा ॥ भोगोऽभ्यङ्गताम्बूलादिः ॥ क्षाराः  
 परिभाषायामुक्ताः ॥ यत्तु मार्कण्डेयपुराणे—‘तैलाभ्यङ्गो बान्धवाना-  
 मङ्गसंवाहनं च यत् । तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः ॥ प्र-  
 थमेहि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा । वस्त्रत्यागं बहिः स्नानं कृत्वा दद्यात्ति-  
 लोदकम्’ इति ॥ तदन्त्यदिनपरम् ‘आशौचान्ते तिलकल्कैः स्नाता  
 गृहं प्रविशेयुः’ इति विष्णुक्तेः ॥ विष्णुपुराणे त्वस्थिसंचयोर्ध्वं भोगोप्यु-  
 क्तः ‘शय्यासनोपभोगस्तु सपिण्डानामपीष्यते । अस्थिसंचयनादूर्ध्वं संयो-  
 गस्तु न योषिताम्’ ॥ भारते—‘तिलान्ददत पानीयं दीपं ददत जाग्रतः ।  
 ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम्’ ॥ मनुः—‘मांसाशनं च नाश्नी-  
 युः शयींश्च पृथक्क्षितौ’ ॥ देवजानीये कारिकायाम्—‘लवणक्षीरमाषा  
 न्नापूपमांसानि पायसम् । वर्जयेदाहृतान्नेषु बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौप्रेते  
 पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत्’ ॥ मरीचिः—‘प्रथमेहि तृतीये च सप्तमे दशमे  
 तथा । ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम्’ ॥ भोजनं च दिवैव ॥ ‘दिवा  
 चैव तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ’ इति विष्णुपुराणात् ॥ ‘क्रीत्वा लब्ध्वा  
 वा दिवान्नमश्नीयुः’ इति पारस्करोक्तेश्च ॥ मदनरत्ने हारीतः—‘पाणिषु  
 मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाश्नीरन्’ ॥ देवजानीये ब्राह्मे शुद्धितत्त्वे आदित्यपु-  
 राणे ‘आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान्’ । अन्त्यदिने तु मदनरत्ने  
 ब्राह्मे—‘यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र गृहशुद्धिं च  
 वस्त्रशुद्धिं करोत्यपि’ ॥ अन्त्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तु तन्त्रेणैवोक्तम् ॥ ‘ग्रा-  
 माद्वहिस्ततो गत्वा प्रेतपृष्ठे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं  
 करोत्यथ’ । इति । शङ्खः—‘दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ।  
 प्रेतपिण्डक्रियावर्ज्यमाशौचे विनिवर्तते’ ॥ काठकगृह्ये—‘यत्र प्राणोत्क्र-  
 मस्तत्रान्वहं महाबलिं कुर्यात्’ इति ॥ पारस्करः—‘तदानीमेव वस्त्रं तण्डु-  
 लं दीपं कांस्यभाजनं प्रेताय दद्यात्’ ॥ आशौचप्रकाशे भरद्वाजः—  
 ‘वासोन्नं च जलं कुम्भे प्रदीपं कांस्यभाजनम् । नम्रप्रच्छादने श्राद्धे ब्राह्म-



णाय निवेदयेत्' ॥ भृगुः— 'तिलोदकं तथा पिण्डान् नम्रपञ्छादनादिकम् ।

रात्रौ न कुर्यात्संध्यायां यदि कुर्यान्निरर्थकम्' ॥ अथ प्रेतपि-  
प्रेतपिण्डनिर्णयः

पण्डः ॥ 'यद्यपि हेमाद्रौ पारस्करेण— 'ब्राह्मणे दशपिण्डास्तु  
क्षत्रिये द्वादश स्मृताः । वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः' ॥ इत्यु-  
क्तं तथापि— 'प्रेतेभ्यः सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान्दद्याद्दशैव तु' इति तेनैवोक्तेः सर्व-  
ेषां दशैव ज्ञेयाः ॥ मदनरत्नेष्वेवम् ॥ तथा च हेमाद्रौ ब्राह्मणादयोः—  
'जात्युक्ताशौचतुल्यास्तु वर्णानां क्वचिदेव हि । देशधर्मान्पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डा-  
न्वपन्त्यपि' इत्युक्ता—विप्रान्नेषु दशमपिण्डोत्कर्ष उक्तः 'देयस्तु दशमः  
पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेहनि । वैश्यानां वै पञ्चदशे देयस्तु दशमस्तथा ॥ शूद्रस्य  
दशमः पिण्डो मासे पूर्णेहि दीयते' । इति युद्धमृतादेः सद्यःशौचे व्यहादौ  
च तेनैवोक्तम् 'सद्यःशौचे प्रदातव्यः सर्वेपि युगपत्तथा । व्यहाशौचे  
प्रदातव्यः प्रथमेह्येक एव हि ॥ द्वितीयेहनि चत्वारस्तृतीये पञ्च चैव हि' ।  
व्यहे प्रकारान्तरं प्रागुक्तम् ॥ ज्ञातातपः—'आशौचस्य च हासेपि पिण्डान्द-  
द्याद्दशैव तु' । तत्रैकपात्रे सकृत्यक्त्वा दश पिण्डान् दद्यात् 'उत्तरीयशिला-  
पात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये । पूर्वदत्ताञ्जलीन् दद्यात्पूर्वपिण्डान्स्तथैव च' इति गृह्य-  
कारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः शिलाविपर्ययेघटस्फोटादेर्नावृत्तिः ॥ अ-  
श्वाभ्यञ्जनादिपदकर्मण एकहायनिनयनवदप्रयोजकत्वात् ॥ तद्वच्चान्नलौकि-  
कग्रहणं ॥ केचित्तु—'नवान्यादाय भाण्डानि आरुकं चरुकं तथा' इति प्रचे-  
तसोक्तेः पात्रानेकत्वमाहुः ॥ क्रियाकर्तुर्नाशेऽन्येन शेषः समापनीयः 'एवं क्रिया  
प्रवृत्तानां यदि कश्चिद्विपर्यये । तद्वन्धुना क्रिया कार्या सर्वैर्वा सहकारिभिः' ॥  
इति शुद्धितत्वे बृहस्पतिस्मृतेः ॥ पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने च तदन्ते कुर्यात्  
'शावात् द्विगुणमार्तवम्' इत्युक्तेः ॥ आशौचान्ते आर्तवे कर्तुरस्वास्थ्ये वान्येन

१—'आचार्यविपर्ययेष्वेवम्' इति वदतामयमभिप्रायः—आचार्यस्यापि कारयितृत्वेन प्रयोज-  
ककर्तृत्वमिति ॥ २ 'पित्रोर्दशाहं कुर्वन् यदि पुत्रो मृतस्तदा' । पुत्रान्तरं शेषपिण्डं दद्यात्, त-  
दसत्त्वे तु तत्पुत्र एव प्रत्यहमादौ स्वपितुः पिण्डं दत्त्वा स्नात्वा पितामहस्य शेषपिण्डं  
दद्यात् अन्यस्याधिकाराभावात् ॥ इति टीका ॥



क्रिया सर्वावर्तनीया कर्तुर्विपर्ययात्कालातिक्रमयोगाश्च ॥ वाराहे— 'स्थण्डिले  
 प्रेतभागं तु दद्यात्पूर्वाह्ण एव तु । कृत्वा तु पिण्डं संकल्पनामगोत्रेण सुन्दरि' ॥  
 मरीचिः— 'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम् । प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा  
 स्नातः प्रयतमानसः ' ॥ दर्भवर्जनमनुपनीतपरम् ' असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं  
 दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु' इति प्रचेतसोक्तेः ॥ मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे—  
 'भूमौ माल्यं पिण्डं पानीयमुपले वा दद्युः' ॥ शुनःपुच्छः 'फलमूलैश्च पय-  
 सा शाकेन च गुडेन च । तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत् ॥ तूष्णीं  
 प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च । शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्व-  
 पेत् ॥ प्रथमेहनि यद्द्रव्यं तदेव स्यादशाहिकम् ' । मदनरत्ने मात्स्ये—  
 'तैजसं न्मृन्मयं वाथ पात्रं संशोध्य यत्नतः । लौकिकाग्नावधिश्रित्य पचेदन्नं  
 घृतप्लुतम् ॥ स्नात्वाथ तिलसंमिश्रं प्रदद्याद्दर्भसंस्तरे ' ॥ शुद्धितत्त्वे देवजा-  
 नीये च ब्राह्मे— 'प्रथमेहनि यो दद्यात्प्रेतायान्नं समाहितः । अन्नं नवसु-  
 चान्येषु स एव प्रददात्यपि ॥ मृन्मयं भाण्डमादाय नवं स्नातः सुसंयतः । त-  
 ण्डुलप्रसृतिं तत्र त्रिः प्रक्षाल्य पचेत्स्वयम् ॥ सपवित्रैस्तिलैर्मिश्रं कृमिकेशवि-  
 वर्जितम् । द्वारोपान्ते ततः क्षिप्वा शुद्धां वा गौरमृत्तिकाम् ॥ भूपृष्ठे संस्तरे  
 दर्भान् याम्याग्रान्देशसंभवान् । ततोऽवनेजनं दद्यात् संस्मरन् गोत्रनामनी ॥  
 तिलसर्पिर्मधुक्षीरैः संसिक्तं तप्तमेव हि ॥ दद्यात्प्रेताय पिण्डं तु दक्षिणाभिमु-  
 खः स्थितः ॥ अष्ट्यैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैस्तोयैश्च शीतलैः । ऊर्णातन्तुमयैः  
 शुद्धैर्वासोभिः पिण्डमर्चयेत् ॥ दिवसे दिवसे देयः पिण्ड एवं क्रमेण तु । सद्यः  
 शौचे प्रदातव्याः सर्वेपि युगपत्तथा ॥ व्यहाशौचेपि दातव्याश्चयः पिण्डाः समाहि-  
 तैः । द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा ॥ त्रीस्तु दद्यात्तृतीयेहि वस्त्रादि  
 क्षालयेत्ततः । दशाहेपि च दातव्यः प्रथमे त्वेक एव हि ॥ एकस्तोयाञ्जलिस्त्वे-  
 व पात्रमेकं च दीयते । द्वितीये द्वौ तृतीये त्रीन् ' इत्याद्युक्ता— 'एवं स्युः  
 पञ्चपञ्चाशत्तोयस्याञ्जलयः क्रमात् ॥ तोयपात्राणि तावन्ति संयुक्तानि ति-  
 लादिभिः' इति ॥ पात्रं कुम्भः ॥ अत्राहः पदमहोरात्रपरम्, तेन रात्रावपि देय-



मिति गौडाः ॥ दिवसपदाद्रात्रौ नेतिमैथिलाः ॥ स एवेत्युक्तेः सपिण्डेन दश-  
 पिण्डे प्रक्रान्ते पुत्रागमेपि स न दद्यात् ॥ ' असगोत्रः सगोत्रो वा ' इति प्रागु-  
 क्तेः ॥ दाहकर्तैव दशाहं कुर्यादिति मिताक्षरायाम् ॥ शुद्धितत्वे वायवीये-  
 पि—' असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । यश्चाग्निदाता प्रेतस्य  
 पिण्डं दद्यात्स एव हि ' इति ॥ तत्रैव—' पूरकेण तु पिण्डेन देहो निष्पाद्यते  
 यतः । कृतस्य करणायोगात् पुनर्नावर्तते क्रिया ' ॥ शुद्धिप्रकाशे वायवी-  
 येपि—' निर्वर्तयति यो मोहात् क्रियामन्यानिवर्तिताम् । विधिघ्नस्तेन भ-  
 वति पितृहा चोपजायते ॥ तस्मात्प्रेतक्रिया येन केनापि च कृता यदि न तां  
 निर्वर्तयेत्प्राज्ञः सतां धर्ममनुस्मरन् ' इति ॥ आदित्यपुराणे—' पितृशब्दं स्व-  
 धां चैव न प्रयुञ्जीत कर्हिचित् । अनुशब्दं तथा चेह प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥  
 उपतिष्ठतामयं पिण्डः प्रेतायेति समुच्चरेत् ' ॥ क्रियानिबन्धे व्यासः—' प्रे-  
 ताय पिण्डं दत्त्वा तु ततोश्चीयादिनात्यये ' ॥ भविष्ये—' ओदनामिषसकू-  
 नां शाकमूलफलादिषु । प्रथमेहनि यद्दद्यात्तद्दद्यादुत्तरेहनि ॥ गृहद्वारि श्मशाने  
 वा तीर्थे देवगृहेपि वा । यत्राद्ये दीयते पिण्डस्तत्र सर्वं समापयेत् ' ॥ ब्राह्मे-  
 ' शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा । द्वितीयेन तु कर्णाक्षीनासिका-  
 श्च समासतः ॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम् । चतुर्थेन तु पिण्डेन  
 नाभिलिङ्गगुदानि च ॥ जानूजंघे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा । सर्वमर्माणि षष्ठेन  
 सप्तमेन तु नाडयः । दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन चादशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता  
 शुद्धिपर्ययः ' इति ॥ याज्ञवल्क्येन तु—' पिण्डयज्ञावृता देयं प्रेतायान्नं दि-  
 नत्रयम् ' इत्युक्तम् ॥ अत्र फलतारतम्यं ज्ञेयमिति विज्ञानेश्वरः ॥ तेन  
 त्र्यहाशौचपरत्वं देवयाज्ञिकोक्तं चिन्त्यम् ॥ ' आशौचस्य च हासेपि पिण्डा-  
 न्दद्याद्दशैव तु ' इति वचनाच्च ॥ दिनत्रयावश्यकत्वार्थमिति हारलतादयः ॥  
 शातातपः—' जलमेकादशाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ' ॥ पार-  
 स्करः—' मृन्मये तां रात्रिं क्षीरोदके विहायसि निदध्युः, प्रेतात्रस्नाही-  
 युदंकं, पिब चेदमिति क्षीरम् ' ॥ इदं रात्रावेवेति गौडाः ॥ गारुडे तु—



‘अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम्’ इत्युक्तम् ॥ हेमाद्रौ पात्रे तु दशाहमुक्तम् ॥ ‘तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयोजलम् । सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्’ ॥ देवजानीये कारिकायाम्—‘तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम् । कुर्यात्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्तिकम् । भोज्याद् भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत् ॥ नामगोत्रेण संबुद्ध्या धरित्र्यां पितृयज्ञवत्’ ज्ञातातपः—‘भूलोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत् तत्पा-

दशाहमध्ये-  
दर्शपातेर्निर्णयः

थेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य तु’ ॥ अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः ॥ भविष्ये—‘प्रवृत्ताशौचतन्त्रस्तु यदि दर्शं प्रपद्यते । समाप्य चोदकं पिण्डान् स्नानमात्रं समाचरेत्’ ॥

ऋष्यशृङ्गः—‘आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् । समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः’ ॥ पैठीनासिः—‘आद्येन्दावेव कर्तव्या प्रेतपिण्डोदकक्रिया । द्विरैन्दवे तु कुर्वाणः पुनः श्रावं समश्नुते’ ॥ मातापित्रोस्तु—श्लोकगौतमः—‘अन्तर्दशाहे दर्शश्चेत्तत्र सर्वं समापयेत् । पित्रोस्तु यावदाशौचं दद्यात्पिण्डान् जलाञ्जलीन्’ ॥ इदमपि व्यहममध्ये दर्शपाते ॥ तदूर्ध्वं दर्शं तु पित्रोरपि तन्त्रं समाप्येव ‘पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापयेत् । तावेदोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् व्यहात्परम्’ इति गालवोक्तेः ॥ अन्येषां तु व्यहमध्येपि समाप्तिरिति पराशरमाधवीये निर्णयामृते चोक्तम् ॥ कालादशौपि—‘दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत् । त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्मृताविति निनिश्चयः’ ॥ मदनपारिजाते तु गालवीयमापदनौरसपुत्रादिविषयम् ॥ ‘व्यहोर्ध्वमपि पित्रोर्न तन्त्रसमाप्तिरिति’ त्युक्तम् ॥

अस्थिसंचयः

मदनरत्नेप्येवम् ॥ मम तु देशाचाराद्व्यवस्थेति प्रतिभाति ॥

अथ्रास्थिसंचयः ॥ तत्राश्वलायनेन च कृष्णपक्षे एकादशीत्रयोदशीदर्शेषु आषाढीफाल्गुनीप्रौष्ठपदीभिन्नर्क्षे उक्तम्, तदाशौचमध्येऽसंभवे तदूर्ध्वं च प्रागब्दात्करणे ज्ञेयं ॥ आशौचमध्ये तु मदनरत्ने संवर्तः—‘प्रथमेहि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः



सह ' ॥ छंदोगपरिशिष्टे तु— 'अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थिसंचयनं भवेत् ' इति द्वितीयेऽप्युक्तम् ॥ विष्णुकात्यायनौ 'संचयनं चतुर्थ्याम्' इति ॥ माधवीये यमः— 'भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत् ॥ वर्जयेदेकपादर्शं द्विपादर्शस्थिसंचयम् ॥ प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्शं विशेषतः ॥ ब्राह्मे-  
'चतुर्थे ब्राह्मणानां तु पञ्चमेहनि भूमताम् । नवमे वैश्यजातीनां शूद्राणां दशमात्परम् ' ॥ दशमेहनीति वा पाठः ॥ शौनकः— 'पालाशेष्वस्थिदाहे च सद्यःसंचयनं भवेत् ' ॥ काम्यमरणे तु तस्य त्रिरात्रमाशौचम्, द्वितीये त्वस्थिसंचय इत्युक्तम् ॥ अङ्गिराः— 'प्रेतीभूतं तथोद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् । देवतानां तु यजनं तं शपन्त्यथ देवताः' ॥ तद्विधिः स्वस्वसूत्रे भट्टकृतौ ज्ञेयः ॥ हेमाद्रौ नागरखण्डे— 'त्रीणि संचयनस्यार्थं तानि वै शृणु सांप्रतम् । यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः ॥ ततः संचयनस्यार्थं तृतीये श्राद्धमिष्यते ' ॥ अपराकं मदनरत्ने च ब्राह्मे— 'सद्यःशौचे तथैकाहे सद्यःसंचयनं भवेत् । त्र्यहशौचे तृतीयेहि कर्तव्यस्त्वस्थिसंचयः' ॥ तत्रैव— 'श्मशानदेवतायागं चतुर्थे दिवसे चरेत् । मृन्मयेषु च भाण्डेषु कुम्भेषु रुचकेषु वा ॥ सुपकैर्भक्ष्यभोज्यैश्च पायसैः पानकैस्तथा । फलैर्मूलेर्वनोत्थैश्च पूज्याः क्रव्याददेवताः ॥ धूपो दीपस्तथामाल्यमर्घ्यं देयं त्वरान्वितैः । तत्र पात्राणि पूर्णानि श्मशानाग्नेः समन्ततः ॥ निवेदयाद्भिर्वक्तव्यं तैः सर्वैरनहंकृतैः । नमः क्रव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा ॥ येन श्मशाने देवाः स्युर्भगवन्तः सनातनाः । तेस्मत्सकाशाद्गृह्णन्तु बलिमष्टाङ्गमक्षयम् ॥ प्रेतस्यास्य शुभान् लोकान् प्रयच्छन्तु च शाश्वतान् । अस्माकमायुरारोग्यं सुखं च ददतां चिरम् ॥ एवं कृत्वा बलीन्सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः । एवं दत्वा बलिं चैव दद्यात्पिण्डत्रयं बुधः ॥ एकं श्मशानवासिभ्यः प्रेतायैव तु मध्यमम् । तृतीयं तत्सखिभ्यश्च दक्षिणासंस्थमादरात् ॥ ततो यज्ञियवृक्षोत्थां शाखामादाय वाग्यतः ॥ प्रेतस्यास्थीनि गृह्णाति प्रधानाङ्गोद्भवानि च ॥ शिरसो वक्षसः पाण्योः पार्श्वाभ्यां चैव पा-



दतः । पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्टय च ॥ प्रक्षिप्य मृन्मये भाण्डे नवे साच्छादने शुभे ॥ अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयत्यपि । गृहीत्वास्थीनि तद्भस्म नीत्वा ताये विनिक्षिपेत् ॥ ततः संमार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयाम्बुभिः ।

तीर्थेस्थिक्षेप-  
निर्णयः

पूजां च पूष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववत्क्रमात् ' इति ॥ अथ तीर्थेस्थिक्षेपविधिः ॥ तत्रैव— ' तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा कदाचिज्जाह्नवीजले । कश्चित्क्षिपति सत्पुत्रो दौहित्रो वा सहो-

दरः ॥ मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः । अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ' ॥ तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे— ' अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कथंचित् । सद्धान्धवस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥ स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्य । ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपरूढाम् ॥ नमोस्तु धर्माय वदेत्प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च । उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं स दक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात् ॥ एवं कृते प्रेतपुरःस्थितस्य स्वर्गे गतिः स्यात्तु महेन्द्रतुल्या ' ॥ यमः— ' गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्बललोकात्सनातनात् ' ॥ तथा— ' अस्तं गते गुरौ शुके तथा मासे मलिम्लुचे । गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ' ॥ दशाहान्तर्न दोषः ' दशाहस्यान्तरे यस्य गङ्गातोयेस्थि मज्जति । गङ्गायां मरणं यादृक् तादृक्फलमवामुयात् ' इति मदनरत्ने वृद्धमनूक्तेः ॥ शौनकः— ' शौनकोहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात् । आदौ ग्रामाद्वहिर्गत्वा स्नानं कुर्यात्सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत्पञ्चगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः । गायत्र्याद्यैः पञ्चगव्यमन्त्रैर्निखातास्थिभूमिं प्रोक्षेदित्यर्थः ॥ उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं स्वननं तथा । मृत्तिकोद्धरणं चास्थनां ग्रहणं च यथाक्रमम् ' ॥ उपसर्पेति चतुर्भिर्मन्त्रैः क्रमेण प्रार्थनादि ज्ञेयम् ॥ ' स्नात्वास्थिशुद्धिं कुर्वीत एतान्विन्देति सूक्ततः । स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः



कुशोदकम् । भस्म मृन्मधु आदीनि मन्त्रतस्तानि वै दश ॥ कुशैःसंमार्जयेदस्थीन्यतोदेवेतिमन्त्रतः । एतान्विन्द्रं शुचिर्वेति नतमंह इतीति च ॥ पावमानीर्ममाग्रेष्व रुद्रसूक्तं यथाक्रमम् ॥ एतैः कुशैर्मार्जनम् ॥ 'हेमश्राद्धं ततः कुर्यात्पितृनुद्दिश्य यत्नतः । पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम् ' ॥ अस्थिक्षेपाङ्गं चेदम् ॥ 'अजिनं कम्बला दर्भा गोकेशाःशाणमेव च । भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा वेष्टनं स्मृतम् ॥ हैमं च मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा । निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः ॥ उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ततो गत्वाक्षिपेत्तीर्थे स्पर्शदोषो न विद्यते ॥ मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वन्नास्थीनि धारयेत् ' । अत्र दशदानं वैतरणीकरणमोक्षपापभेनुदानमुक्तम् दिवोदासीये काशीखण्डे— 'धनं ज्योतिषि धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः । आदायास्थीन्यथो मातुर्गङ्गामार्गस्थितो भवत् ॥ पञ्चगव्येन संस्त्राप्य तथा पञ्चामृतेन वै यक्षकर्मलेपेन क्षिप्त्वा पुष्पैः प्रपूज्य च । आवेष्ट्य नेत्रवस्त्रेण ततः पट्टाम्बरेण च ॥ ततः सुरसवस्त्रेण ततो माञ्जिष्ठवाससा ॥ नेपालकम्बलेनाथ मृदा चाथ विशुद्धया ॥ ताग्रसंपुटके कृत्वा मातुरङ्गान्यथो वहेत् ' ॥ व्यासः— 'पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्ठं श्वेतवस्त्रकम् । कम्बलं शाणपट्टं च अजिनं च तथोत्तरम् ' ॥ एषां विकल्पः ॥ अन्यश्चात्र विशेषस्त्रिस्थलीसेतौ दिवोदासीये च ज्ञेयः ॥ संचयनोत्तरं श्राद्धमाहाश्वलायनः— 'श्राद्धमस्मै दद्युः ' इति स्मृत्यर्थसारे— 'संचयने कृते मनुष्यलोकं गच्छतः पाथेयश्राद्धमामेन कार्यमिति ॥ अनुपनीतस्य न संचयनम् ॥ अथ नवश्राद्धं पृथ्वीचन्द्रोदयेन नवश्राद्धनिर्णयः ॥ जिह्राः— 'प्रथमेहि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ' ॥ शिवस्वामी— 'नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशास्त्रिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ' ॥ पञ्च एकादशाहिकं विना 'मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादानवमाद्, यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात् ' इति मदनरत्ने बोधायनोक्तेः ॥



भविष्ये—‘नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यन्तयोर्वर्ण-  
 योस्तु षडित्याहुर्महर्षयः’ ॥ हेमाद्रौ वृद्धवसिष्ठः—‘अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं  
 प्रेतत्वान्न विमुच्यते । अर्वाकृतु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम्’ ॥ अतः  
 षडेव ॥ एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यन्ते ॥ नागरखण्डे तु—‘पञ्चमे सप्तमे  
 तद्ददष्टमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव नवश्राद्धानि तानि च’ इत्युक्तम् ॥ का-  
 त्यायनस्तु—‘चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा । यदत्र दीयते जन्तो-  
 स्तन्नवश्राद्धमुच्यते’ ॥ प्रथमेसप्तमे चैवेत्याद्यपादे व्यासपाठः ॥ बह्वृचानां  
 तु—‘नवश्राद्धदशाहानि नवमिश्रं तु षड्कृतून्’ इत्युक्तं नारायणवृत्तौ ॥  
 दीपिकायाम् ॥ अथ तनुयादाये चतुर्थेदिने श्राद्धे ॥ पञ्चसप्त-  
 चतुर्थेदिनकृत्यम् ॥ माष्टनवदिशुद्देशु युग्मद्विजैः ॥ ‘प्रथमेहि तृतीयेह्निपञ्चसप्तनव  
 स्वपि । द्वौ द्वौ पिण्डौ प्रदातव्यौ शेषेष्वेकं तु विन्यसेत्’ ॥ एको विषमश्राद्धे-  
 वयवपिण्डश्चैक इति द्वावित्यर्थः ॥ अत्र शाखाभेदाद्वयवस्था ॥ अपरार्के भ-  
 विष्ये—‘नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासिकानि च । न करोति सुतो यस्तु  
 तस्याधः पितरो गताः’ ॥ वाराहे—‘गतोसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तवि-  
 हितात्पथः । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजयेत् । पूजयिष्यामि भोगैस्त्वा  
 मेवं विप्रं निमन्त्रयेत्’ ॥ आवाहनेपि तत्रैव—‘इह लोकं परित्यज्य गतोसि  
 परमां गतिम् । मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये’ इति ॥ तत्रैव बह्वृच-  
 परिशिष्टे—‘अनूदकमधूपं च गन्धमाल्यविवर्जितम् । नवश्राद्धमन्त्रं  
 च पिण्डोदकविवर्जितम्’ ॥ उदकमर्घ्यः ॥ पिण्डोदकं शुन्धन्तां पितर इत्य  
 वनेजनादि । ‘एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । नाशौकरणमन्त्रश्च  
 एकं वात्र तिलोदकम् ॥ अनपत्येषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् । स्वस्त्य  
 स्तु विसृजेदेवं सकृत्प्रणववर्जितम् ॥ एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न विद्यते ।  
 पितृशब्दं न कुर्वीत पितृहा चोपजायते’ ॥ सपिण्डनात्प्रागिति हेमाद्रिः । ‘तेन  
 स्वधां प्रयुजीत प्रेतश्राद्धे दशाहिके’ ॥ इति ऋष्यशृङ्गोक्तौ दशाहिकोक्ते-  
 रेकादशाहे स्वधाप्रयोग एवेति हारलता परास्ता ॥ रत्नावल्याम्—‘आशिषो



द्विगुणा दर्भा जयाशीः स्वस्तिवाचनम् । पितृशब्दः स्वसंबद्धः शर्मशब्दस्त-  
थैव च ॥ पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम् । तृतिप्रश्नश्च विक्रिः  
शेषप्रश्नस्तथैव च ॥ प्रदक्षिणाविसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा । अष्टादश पदार्थाश्च  
प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ' ॥ अथ स्वधापितृनमःशब्दानां तिलोसीतिमन्त्रे प्रेतश-  
ब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम् ॥ तूष्णीमर्घ्यदानम् ॥ अमुष्मै स्वाहेति प्रेत-  
नाम्ना पाणिहोमः ॥ नाम्ना एकः पिण्डः ॥ निनयनमन्त्रे ऊहः ॥ अनुमन्त्रणादि  
त्वमन्त्रकम् ॥ अभिरम्यतामिति विसर्जनम् ॥ एवं नवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु ॥ 'नव-  
श्राद्धे त्वमन्त्रकं सर्वमि' ति नारायणवृत्तिः ॥ क्रियानिवन्धे— 'उत्तानं स्था-  
पयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः । न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्तस्योपरि कुशाज्यसेत् ॥  
नवश्राद्धं गृहे कुर्याद्भार्या यत्राययोपि' वा । सपिण्डीकरणान्तानि प्रेतश्रा-  
द्धानि यानि वै । तानि स्युलौकिके ब्रह्मावित्याह त्वाश्वलायनः' ॥ इदं संभवेन्नेन  
कार्यम् ॥ 'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहपर्युषितं च यत् । दंपत्योर्भुक्तशेषं च न  
तद्भुजीत कर्हिचित्' इत्यङ्गिरोवचनलिङ्गात् ॥ 'द्वाभ्यां तदा तु रुच्छ्राभ्यां  
शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनाम्' इति ब्राह्मे उक्तम् ॥ विघ्ने तु निर्णयामृते कण्वः—  
'नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् । तत्तदुत्तरसातन्त्यादनुष्ठेयं प्रच-  
क्षते' ॥ हेमाद्रौ गालवः— 'शावे तु सूतकं चेत्स्यान्निशायां च मृतौ त-  
था ॥ नवश्राद्धानि देयानि यथाकालं यथाक्रमम्' ॥ निशायामाशौचान्ते  
द्वयहवृद्धौ ॥ अन्वारोहणे तु— 'नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् ।  
एक एव वृषोत्सर्गो गौरैका तत्र दीयते' ॥ आशौचान्तदिने कार्यमुक्तं ब्राह्मे—  
'यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यत्स्यात्पश्चिमं त्वहः । स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं  
करोत्यपि ॥ समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृष्टे तु वाससी । अन्त्यानामाश्रितानां  
च त्यक्त्वा स्नानं करोति च ॥ श्मश्रुलोमनखानां च यत्स्याज्यं तज्जहात्यपि ।  
गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन संयुतम् ॥ शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाच-  
म्य वाग्यतः । वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः' ॥ क्रियानिवन्धे-  
गृह्यकारिकायाम् 'अत्र पिण्डत्रयं द्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमम् । प्रेताय-



मध्यमं तद्वृत्तीयं च यमाय वै' ॥ तथा— 'कर्त्रात्र प्रार्थिताः सन्तो ज्ञातिसंबन्धिवान्धवाः। द्युरभ्यङ्गतः पूर्वं त्रींस्त्रीन्धर्मोदकाञ्जलीन् ॥ पूर्ववन्नामगोत्राभ्यां नियमो नेह कश्चन' ॥ मदनरत्ने विष्णुहारीतौ— 'आशौचान्ते कृतश्मश्रुकर्माणस्तिलकलकैः सर्षपकलकैर्वा स्नाताः शुक्लवाससो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शान्तिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युः' इति ॥ देवलः— 'दशमेहनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्वहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च' ॥ अपरार्के बृहस्पतिः— 'नवमे वासंसां त्यागो नखरोम्णां तथान्तिमे' ॥ तत्रैव व्यासः— आशौचान्त्यदिने क्षौरं जनन्यां च गुरौ मृते' एतत्प्रेताल्पवयसामित्याहापस्तम्बः 'अनुभाविनां च परिवापनम्' इति ॥ अनुभाविनः कनिष्ठा इति विज्ञानेश्वररत्नाकरादयः ॥ 'आशौचमनुभवतां पुंसां सर्वाशौचे तु मुण्डनम् । आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्ममृतसूतकेषु च । बन्धमोक्षमखदीक्षणेऽपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु' ॥ इति रत्नमालोक्तेर्जननाशौचेपीति शुद्धितत्त्वादयः ॥ अत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ परं शिखावर्ज्यम् 'केशश्मश्रुनखलोमानि वापयीत शिखावर्ज्यम्' इति गोभिलोक्तेः ॥ यत्त्वापस्तम्बः— 'न समावृत्ता वपेयुरन्यत्र विहारादित्येके' विहारो दर्शादियागः ॥ तेन विना समावृत्ता गृहस्था न वपेयुरित्यर्थः ॥ यच्च— 'वृथा छिनत्ति यः केशांस्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम्' इति, तत्— 'केशश्मश्रु धारयतामग्र्या भवति संततिः' इति दानधर्मोक्तं काम्यपरम् ॥ अनुभाविनः पुत्रादय इत्येके ॥ 'पुत्रः पत्नी च वपनं कुर्यादन्ते यथाविधि । पिण्डदानोचितोऽन्योऽपि कुर्यादित्थं समाहितः' इत्यपरार्के व्यासोक्तेः ॥ यनुमिताक्षरायाम्— 'द्वितीयेहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीये पञ्चमे वापि दशमे वाप्रदानतः' इति ॥ 'आप्रदानतः' इति चतुर्थादीनि ॥ तत्प्रथमदिने संभवे ज्ञेयम् ॥ 'अलुप्तकेशो यः पूर्वं सोऽत्र केशान्प्रवा-

१-निर्णेजकादौ निर्णेजनार्थः । २-ऐकेशब्दाभिधान आत्रादेर्निवृत्तावस्वारस्यसूचकम् । तेषामप्यभ्युदयकामनायां तत्प्राप्तेः ॥ इति टीका ॥



पयेत् । द्वितीयोहि तृतीयोहि पञ्चमे सप्तमेपिवा ॥ यावच्छ्राद्धं प्रदीयेत ता-  
वदित्यपरं मतम् 'द्वितीयाध्वीये मदनरत्ने च बौधायनोक्तेः ॥ मदन-  
पारिजाते तु दशमे प्रथमे च समुच्चय उक्तः ॥ यत्तु—'दशमं पिण्डमुत्सृज्य  
रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्' इति,— तदेकादशाहश्राद्धाङ्गविप्रनिमन्त्रणार्थं ज्ञेयम् ।

अथैकादशाहः ॥ मनुः—'विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रि-  
एकादशाह- यो वाहनायुधैः । वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रि-  
निर्णयः यः' ॥ शुद्धितत्त्वे देवलः—'आद्याहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः

कृतमङ्गलाः । आशौचाद्द्विज मुच्यन्ते ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च' ॥ या-  
ज्ञवल्क्यः—'आद्यमेकादशेहनि' क्षत्रियाद्यैराशौचेप्येकादशेहि श्राद्धं का-  
र्यम् 'आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेहनि । कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः  
पुनरेव सः' इति हेमाद्रौ शङ्कोक्तेः ॥ पैठीनसिः—'एकादशेहि यच्छ्राद्धं  
तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक्पृथक्' ॥ यत्तु  
मरोचिः—'आशौचान्ते ततः सम्यक्पिण्डदानं समाप्यते । ततः श्राद्धं प्रदा-  
तव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः' इति ॥ तत्सर्ववर्णानां दशाहशौचपरम् ॥ यत्तु  
विष्णुः—'अथाशौचापगमः' इति ॥ यच्च गौडग्रन्थे हारीतः—'श्वोभूते  
एकोद्दिष्टं कुर्यात्' ॥ यच्च वैजवापः—'ऊर्ध्वं दशम्या अपरेद्युः' इति त-  
द्विप्रविषयम् ॥ एतेन दर्शमपिण्डापकर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकाद-  
शाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ वचनादाशौचमध्ये इव, तत्राप्यविरो-  
धात् ॥ भविष्ये—'एकादशभ्यो विप्रभ्यो दद्यादेकादशेहनि । भोजनं त-  
त्र वैकस्मै ब्राह्मणाय महात्मने' ॥ यत्तु मात्स्ये—'एकादशेहनि तथा वि-  
प्रानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेद्युजो द्विजान्' इति ॥ तद्गु-  
द्रगणश्राद्धपरमिति मदनपारिजातः ॥ गौडास्त्वस्माद्वचनात्क्षत्रियादीना-

१—'सर्वेभ्यः प्रेतवर्णेभ्यः पिण्डान्दद्यादशैव तु' । 'इति पारस्कारोक्तपक्षे 'राज्ञस्तु दशमः  
पिण्डो द्वादशेहनि दीयते । वैश्यस्य पञ्चदशमे ज्ञेयस्तु दशमस्तथा । शूद्रस्य दशमः  
पिण्डो मासे पूर्णेहि दीयते' इत्यादिपुराणोक्त इत्यर्थः ॥ इति टीका ॥



माशौचान्त एवेत्याहुः ॥ रामायणेपि—‘समतीते दशाहे तु कृतशौचो यथा-  
विधि । चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च ’ ॥ द्वादशिकं द्वादशाहेन  
निर्वर्त्य त्रयो दशाहश्राद्धं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयं सपिण्डनपाथेयादि ॥  
क्षत्रियाणां द्वादशाहाशौचे त्रयोदशे महैकोद्दिष्टं चतुर्दशे सपिण्डनम् ॥  
द्विविधवाक्यादेकादशाहाशौचान्तयोर्विकल्प इत्येके ॥ सद्यःशौचादौ  
युद्धहतादेरेकादशाहः अन्येषां आशौचान्त इति वयम् ॥ कौर्मे—‘ए-  
कादशेहि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्यभावतः । द्वादशे वाह्नि कर्तव्यमनिन्येष्यथ वा-  
ह्नि ॥ निन्यं प्रेतक्रियाकालयुक्तं ॥ एकादशे तु न निषेध इत्युक्तं  
प्राक् ॥ बृहस्पतिः—‘वस्त्रालंकारशय्यादि पितुर्यद्वाहनादिकम् ।  
गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे तदर्पयेत् ॥ श्रोत्रिया भोजनी-  
यास्तु नव सप्त त्रयोदश । जातयो बान्धवा निःस्वास्तथा चातिथयो-  
परे ’ ॥ देवयाज्ञिकनिबन्धे—‘एकादशसु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजयेत् ॥  
तत्राद्याय च शय्यादि दद्यादाद्यमिति स्मृतम् ’ ॥ विष्णुः—‘एकवन्मन्त्रा-  
नूहेनैकोद्दिष्टे ’ ॥ बहुवचनान्तानेकवचनान्तान्वदेदित्यर्थः ॥ एतत् दृष्टार्थ-  
त्वे ॥ अस्य विघ्ने गौणकालमाह हेमाद्रौ बौधायनः—‘एकोद्दिष्टं श्व एव  
स्यात्द्वादशेहनि वा पुनः ॥ अत ऊर्ध्वमयुग्मेषु कुर्वीताहःसु शाक्तितः ॥ अर्ध  
मासेथ वा मासि ऋतौ संवत्सरेपि वा ’ इति ॥ तत्रैव लघुहारीतः—‘एको-  
द्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहःसमुपो-

१-अर्थ भावः—प्रायश एकसंवत्सरस्थायी वायवीयःप्रेतदेहः, तदारम्भश्च शरीरारम्भ-  
काधर्मविशेषः पितृत्वप्राप्तिप्रतिबन्धकस्तद्देहभोग्यदुःखभोगनाशस्तदधर्मनाशार्थं दुःख-  
भोगः, तदर्थं च प्रेतदेह आवश्यकः तदुत्पत्त्यर्थं च पिण्डदानमिति प्रेतदेहोत्पत्तिर्भव-  
त्येव, एकादशादिश्राद्धानां पूर्णप्रेतशरीरनिवृत्तिः फलम् ‘यस्यैतानि न दत्तानि प्रेत-  
श्राद्धानि षोडश । पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ’ इति यमोक्तेः ‘एका-  
दशादिभिः श्राद्धैर्मृतस्याप्यायनंभवेत् । सम्यक् संवत्सरे पूर्णे पितॄणां स्थानमृच्छति ।’  
इति देवलोक्तेश्च आप्यापनं प्रेतत्वपरिहारः इति शूलपाणिः । सर्वथापिण्डदाने तु विल-  
म्बेन क्लेशेन तदिति सिद्धम् । तथा च दशमपिण्डदानात्पूर्वं प्रेतदेहस्यैवानिष्पन्नत्वात्त-  
न्निवृत्त्यर्थानामेकादशाहादिश्राद्धानामाशौचमध्ये कथं करणमिति । इति टीका ॥



षणं ' ॥ गोभिलः— 'ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथवा । पुनश्च भोजये दकं द्विरावृत्तिर्भवेदिति ' ॥ एतदाद्यमासिकाद्याब्दिकयोः सिद्धयर्थमिति भट्टाः ॥ तेन महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्भिन्नमेव ॥ अतएवाद्यं सर्वैकोद्दिष्टप्रकृति- भूतमेकादश इति विज्ञानेश्वरः ॥ अन्येत्वाद्यमासिकाब्दिकयोः ' आद्यमेकादशेहनि ' इति नियमादभेदमाहुः ॥ द्वयोस्तन्त्रत्वबाधार्थं गालवीयमित्यन्ये ॥ युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये पैठीनसिः ' सद्यःशौचेपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिषु ' ॥ एवमेकादशाहादौ ॥ अतोत्र द्वितीये ह्यैकादशाहं वदन् ढौढूःशूलपाणिःस्मार्त-गौडश्च परास्तः ॥ एतेन ' आद्यमेकादशेहनि ' इत्याशौचान्तरदिनपरम्, विष्णूक्तेः । प्रागुक्तशङ्खादिवचनानां चानाकरत्वादिति वदन्तः कल्पतरु-वाचस्पतिप्रमुखाः सर्वमहानिबन्धविरोधादुपेक्ष्याः ॥ उशनाः— ' व्यहा-शौचेपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेहनि । अतीतविषये सद्यस्त्यहोर्ध्वं वा तदिष्यते' ॥ याज्ञवल्क्यः— ' एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकाद्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौक-रणरहितं त्वपसव्यवत् ॥ उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने अभिर-म्यतामिति वदेयुस्तेभिरताः स्म ह' इति अग्नौकरणनिषेधोन्यपरः ॥ बह्व-चानां सर्वैकोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक् ॥ स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति का-त्यायनः ॥ प्रथमे पात्रे संस्त्रवानित्यस्य तृतीयेनापिधानस्य च बाधान्न पात्र-न्युब्जतेति शूलपाणिः ॥ प्रचेताः— ' नात्र पात्रालम्भो नाशिषः प्रार्थयेत्' ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ वाराहे— 'श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदं तथैव च । स्नपनाभ्यञ्जनं दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम्' ॥ तथा— 'उपवेश्यासने भद्रे छत्रं तत्र प्रकल्पयेत् । पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वाण्याभरणानि च' ॥ विष्णुः— 'दक्षिणान्तं श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु चतुरङ्गुलपृथ्वीस्तावदन्तरालस्ताव-दधःखाता वितस्त्यायतास्तिस्रः कर्षूः कुर्यात् कर्षूणां समीपेऽग्निमाधाय परि-स्तीर्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधानमोग्रये कव्यवा-हनाय यमायाङ्गिरस्वते इति' ॥ स्थानत्रये प्राग्वत्पिण्डनिर्वपणं दधिमधुघृत-



मांसैः कर्षूत्रयं पूरयित्वैतत्त इति जपेत् ॥ शेषं नवश्राद्धवत् ॥ अत्र साग्रे-  
 प्यन्ते वैश्वदेव इत्युक्तं प्राक् ॥ इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तं क्रि-  
 यानिवन्धे ॥ गृह्यकारिकायां—‘ तिलोसि प्रेतदेवत्यः प्रेतं लोकान्हि नो-  
 न्तकम् । मन्त्रमुक्त्वा तिलानेवं प्रक्षिपेदघ्नपात्रतः ॥ दक्षिणामुदकुम्भं च सान्नं  
 दत्त्वा तथैव गाम् । तस्मै दद्याद्भुक्तशेषं तद्भाण्डान्यपि भाजनम् ’ ॥ विप्राभा-  
 वेष्वावेकोद्दिष्टं ॥ ‘अग्नौ पायसं श्रपयित्वाज्यभागान्ते तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ  
 प्रेतमावाह्य गन्धाद्यैः संपूज्य पृथिवी ते पात्रमित्यादिनान्नं संकल्प्योदीरतामवर  
 इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्ताभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिण्डदानादिश्राद्धं समापयेत्’ इति  
 याज्ञवल्क्यः— ‘एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रियामपि ’ ॥  
 वृषोत्सर्गनिर्णयः  
 अथ वृषोत्सर्गः ॥ स च नित्यः काम्यः ॥ ‘न करोति वृषोत्सर्गं  
 सुतीर्थे वा जलाञ्जलिम् ॥ न ददाति सुतो यस्तु पितुरुच्चार एव सः ’ ॥ उ-  
 च्चारः पुरीष ॥ ‘एष्टव्यां बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमे-  
 धेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ’ इति मत्स्यकौर्मौक्तेः ॥ ‘ एकादशोहि प्रेतस्य  
 यस्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि’ इति षट्-  
 त्रिंशन्मते निन्दाश्रुतेः ॥ एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमु-  
 दिश्योत्सृजेन्नीलं स लभेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान्द-  
 शापरात् ’ इति देवीपुराणे भविष्यादौ फलश्रुतेश्च ॥ अयं द्वादशाहे उक्तो  
 भविष्ये— ‘ चैत्र्यां वापि तृतीयायां वैशाख्यांद्वादशोहि वा ’ । इति ॥ वि-  
 ष्णुधर्मे तु मृताहेप्युक्तः ॥ ‘विषुवद्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च’ इति ॥  
 अयं गृहे न कार्यः— ‘ न गृहे मोचयेन्नीलं कामयन्पुष्कलं फलम् ’ इति का-  
 लिकापुराणात् ॥ कामधेनौ— ‘ वत्सराभ्यन्तरेपित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ।  
 वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत् ’ ॥ तल्लक्षणं तु ब्राह्मे— ‘ लोहितो  
 यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष

१-श्राद्धशेषम् । भोजनाभावात् । इति टीका ॥ २-कार्तिक्यामथ वा माध्यामयने  
 वा युधिष्ठिर । इत्यादिः ॥



उच्यते' ॥ श्वेतवर्णस्य मुखादीनि श्यामानि श्यामस्य वा श्वेतानि यस्य सोपि नील उक्तो मात्स्यादौ ॥ देवीपुराणे—'चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वैमासं भवतोपि वा ' ॥ यत्तु पठन्ति 'वृषोत्सर्जनवेलायां वृषभावः कथंचन । मृद्धिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत् ॥ न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत् ' इति, तन्निर्मूलम् ॥ तद्विधिहेमाद्रौ भट्टकृतौ च येयः ॥ अत्र देवयाज्ञिकेन वृषोत्सर्गात्पूर्वं पुरुषसूक्तेन विष्णुरुपिप्रेतोद्देशेन विष्णुतर्पणमुक्तम् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ पारस्करः—' सव्येन पाणिना पुच्छं समालम्ब्य वृषस्य तु । दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः ॥ प्रेत-गोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन् । वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा ॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिक्षिपेत् ' ॥ ॥ तथा—'विधारयेन्नतं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् । न दोहयेच्च ता धेनूर्न च कश्चन बन्धयेत् ' ॥ स्त्रीषु विशेषः संग्रहे—' पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि । वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ' ॥ पतिपुत्रयोः साहित्यं विवक्षितम् ॥ अन्वारोहणेपि गोदानमेवेत्युक्तं ॥ प्राक् ॥ आशौचान्तरेपि वृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादि दद्यादेवेत्युक्तम् ॥ क्रियानिवन्धे स्मृत्यन्तरे—' सूतके मृतके चैव द्वितीयं मृतकं यदि । पिण्डदानं प्रकुर्वीत वृषोत्सर्गं तथैव च ॥ न हन्यात्सूतके कर्म द्वादशैकादशाहिकम् । शुद्धो वा यदि वा शुद्धः कुर्यादेवाविचारयन् ' इति ॥ अत्र पददानमुक्तं देवजानीये गारुडे—एकादशाहं पददाननिर्णयः प्रक्रम्य—' तदहि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः । पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदशे ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवतोप्यात्महेतवे । सुखी भूत्वा महामार्गे वैनतेय स गच्छति ' ॥ तथा—' आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः । भाजनं भाजनाधारो वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ' ॥ तथा—

१—अत्राहुः—सत्यपि वृषोत्सर्गाधिकारिणि पुत्रे भर्तृसमक्षं मृताया यदि न वृषोत्सर्गः, तदा सुतरां पुत्राभावे, भर्तृसमक्षमृतेरेव तदकरणप्रयोजकत्वात् । 'अपि पुत्रवती नारी' इति पाठान्तराच्च । तस्मात्साहित्यं न विवक्षितमिति ॥ इति टीका ॥



‘भाजनासनदानेन मुद्रिकाभोजनेन च । आज्ययज्ञोपवीतेन पदं संपूर्णतां व्रजेत् ॥ महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् । सर्वोपस्कारयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश ॥ यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे । स गच्छति परं स्थानं महाकष्टविवर्जितः ॥ त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतायैकादशेहनि । दातव्यानि यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत् ॥ अन्नं चैवोदकं चैवोपानहौ च कमण्डलुः ॥ छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं तथाष्टमम् ॥ अग्नीष्टिकां च दीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च । चन्दनं पुष्पदानं चोपदानानि चतुर्दश ॥ योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् । स्वमहिम्नोनुसारेण तत्तत्सुखमवामुयात् ’ इति ॥

अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अथ शय्यादानम् हेमाद्रौ भवि-

शय्यादान-  
निर्णयः

ष्ये-‘तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभदण्डोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपादिवासिताम् । तस्यां संस्थापयेद्द्वैमं हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥ अत्र हरिस्थाने प्रेतम् ॥ ‘उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् ॥ ताम्बूलं कुङ्कुमक्षोदकपूरागरुचन्दनम् ॥ दीपिकोपानहौ छत्रं चामरासनभाजनम् । पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ॥ शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् । भृङ्गारकरकायं तु पञ्च वर्णवितानकम् ॥ मन्त्रस्तु-‘यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया ॥ शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥ यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च’ । अर्धं तदेव ॥ ‘देवैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । एकादशाहेपि तथा विधिरेष प्रकीर्तितः ॥ विशेषं चात्र राजेन्द्र कथ्यमानं निशामय । तेनोपभुक्तं यत्किञ्चिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥ यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् । तमेव पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ’ ॥ पाद्मे-‘मृतकान्ते द्वितीयेहि शय्यां दद्यात्सलक्षणाम् ॥ काञ्चनं पुरुषं तद्वत्फलवस्त्रसमन्वितम् ॥ संपूज्य द्विजदांपत्यं नानामणिविभूषितम् । उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो वदेत् ॥ रजतस्य तु पात्रेण दधिदुग्ध



समन्वितम् । अस्थि लालाटिकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद्  
द्विजदांपत्यं विधिरेष सनातनः ॥ एष एव विधिर्दृष्टः पार्वतीयैर्द्विजोत्तमैः ॥  
एतत्प्रतिग्रहे तत्रैवोक्तम्—‘गृहीतायां तु तस्यां वै पुनःसंस्कारमर्हति’ ॥  
शय्यादानफलं भविष्ये—‘स्वर्गे पुरंदरपुरे सूर्यपुत्रालये तथा । सुखं वसत्य-  
सौ जन्तुःशय्यादानप्रभावतः ॥ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः’ इति ॥

अथोदकुम्भः ॥ हेमाद्रौ स्मृतिसमुच्चये—‘एकादशाहात्प्रभृति  
उदकुम्भदान-घटस्तोयान्नसंयुतः । दिनेदिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः’ ॥  
निर्णयः

लौगाक्षिः—‘यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्  
मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम्’ ॥ उत्तरार्धे—‘तस्याप्यन्नं  
सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे’ । इति याज्ञवल्क्यपाठः ॥ सपिण्डनापकर्षेऽ  
स्यापकर्षप्राप्ते बाधकमिदमिति शूलपाणिः । तन्न । प्रकृतिविकाराभावेन तद-  
न्तन्यायविषयत्वात् ॥ मात्स्ये—‘यावदब्दं च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः ।  
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोश्वमेधफलं लभेत्’ ॥ केचित्रयोदशाहमारभ्याहुस्तन्नि-  
र्मूलम् ॥ देवयाज्ञिकः—‘सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भं अर्वागेव  
दद्यात्’ नोर्ध्वम् ‘प्रेतलोकगतस्यान्नं सोदकुम्भं प्रयच्छत’ इति गोविन्द-  
राजधृतविष्णुक्तेः । ‘अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाब्दिकावधि ।  
दातव्यं ब्राह्मणे स्कन्धघटादौ निष्कयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना  
नराः । दारिद्र्याः दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥ तेनापकृष्य दातव्यं प्रे-  
तस्याप्युदकुम्भकम्’ इति गोभिलभाष्ये स्कान्दाच्च सपिण्डनात्प्रागेव तस्य  
विधानादूर्ध्वं निषेधादित्याह ॥ तन्न ॥ उदकुम्भे पार्वणविधिनानुपपत्तेरेवं  
व्याख्यायां मानाभावान्मिताक्षरादिविरोधाच्च वचनं च यदि समूलं तदा वृ-  
द्धावपकर्षे विधत्ते ॥ ‘प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डी करणं तथा’ इति हेमाद्रौ शा-  
ठ्यायनोक्तेः ॥ ‘तस्याप्यन्नं सोदकुम्भम्’ इति याज्ञवल्क्यविरोधाच्च ॥ मदरत्ने

१—अयं पार्वतीयानामाचारो न्यदेशीयानां निन्द्यः । एतद्वचनानां निर्मूलत्वमिति तु  
धार्मिकाः ॥ इति टीका ॥



गौतमः—‘अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ’ ॥ अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनम् ॥ एतन्मासिकवदेकोद्दिष्टं पार्वणं कार्यम् ॥ अपरार्कस्तु ‘ सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्तेनोपपद्यते । पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कार्या सपिण्डना ’ ॥ इति ॥ लघुहारीतोक्तावपि—‘तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं देयं संवत्सरं द्विजे ’ इति । याज्ञवल्कीये तस्येत्येकत्वोक्तेः सपिण्डनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह ॥ अत्र पिण्डदानं कृताकृतम् ॥ ‘ अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात्पिण्डमप्येके निपृणन्ति ’ इति हेमाद्रौ पारस्करोक्तेः श्राद्धाशक्तौ पिण्डमात्रमिति गौडाः ॥ तन्न ॥ अपिशब्दबाधापत्तेः ॥ हारीतः—‘मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत् । अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः ’ ॥ प्रेतशब्दोच्चारणेनेति हलायुधः ॥ यद्वा प्रेतस्य निर्देशो यत्र तदेकोद्दिष्टं तद्धर्मकमित्यर्थः अत्राशौचान्तदिनाद्यब्दान्तं यावद्वत्सरापूतेः शौचं नाधिकारिविशेषणम् ॥ तेन मृतिदिनमारभ्यैतत्कार्यमिति केचित् ॥ तन्न ॥ हेमाद्रिधृतवचोविरोधात् मध्ये आशौचादिना बाधे तु लोप एव दार्शवत् ॥ तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम् ॥ देवजानीये गारुडे—‘प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः । यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये । कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः संकल्प्य सुस्थितम् ’ ॥

अथ मासिकानि ॥ तानि च कृत्वैवं सपिण्डनं कार्यम् ॥ तथा मासिकनिर्णयः गोभिललौगाक्षी । ‘ श्राद्धानि षोडशादत्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनम् । श्राद्धानि षोडशाप्याप्य विदधीत सपिण्डनम् ’ । तानि त्वाह जातूकर्ण्यः—‘द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ’ ॥ आद्यषाण्मासिकाब्दिकशब्दा ऊनमासिको-

१-कर्तृमात्रोक्तिरित्यादिः । २-अकृतनवश्राद्धादिकस्य न मासिकेष्वधिकारः ‘नवश्राद्धानि श्राद्धानि न कृतानि तु यस्य वै । नाधिकारी भवेत्तत्र मासषाण्मासिकाब्दिके’ इति वचनात् । इति टीका ॥ ३-मासश्च मृतातिथिं गृहीत्वा चान्द्रविंशतित्थिसमुदायः । अयमेवेदानींतनाचारसंवादिपक्षः । इति टीका ॥



नषष्ठोनाब्दिकपराः ॥ हेमाद्रौ तु सपिण्डीकरणं चैव इत्येतत् 'श्राद्धषोडशम्' इत्युत्तरार्द्धे पाठः ॥ तदा आद्यमूनमासिकं द्वादशाहे, षण्मासिकम् ऊनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थः ॥ कात्यायनस्तवन्यथाह 'द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षण्मासिके तथा । सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ॥ एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः । न्यूनाः संवत्सराश्चैव स्यातां षण्मासिके तदा' ॥ द्विवचनादूनषष्ठोनाब्दिके इत्यर्थमाह पृथ्वीचन्द्रः ॥ व्यासस्तवन्यथाह 'द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकाब्दिके ॥ श्राद्धानि षोडशैतानि संस्मृतानि मनीषिभिः' ॥ द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्य द्वादशाहेप्युक्तेरिति कालादर्शः । मदनरत्ने ब्राह्मे त्वन्यथोक्तम् 'नृणां तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोडश सर्वदा । चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा ॥ ततो द्वादशभिर्मसैः श्राद्धा द्वादश संख्यया' इति ॥ चतुर्थादीनि दिनानि ॥ भविष्येत्वन्यथोक्तम् ॥ 'अस्थिसंचयनं श्राद्धं त्रिपक्षे मासिकानि तु । रिक्तयोश्च तथा तिथ्योः प्रेतश्राद्धानि षोडश' इति ॥ रिक्तयोस्तिथ्योरिति न्यूनषष्ठोनाब्दिकपरमिति हेमाद्रिः ॥ अत्र देशकुलशाखाभेदाद्वच्यस्थेति सर्वनिबन्धाः ॥ गालवः— 'ऊनषण्मासिकं षष्ठे मासे वा न्यूनमासिकम् । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनाब्दं द्वादशे तथा' ॥ ऊनमासिके तु गोभिलः— 'मरणात् द्वादशाहे स्यान्मास्यूने चोनमासिकम्' ॥ मदनरत्ने कालादर्शं च श्लोकगौतमः 'एकद्वित्रिदिनैरुने त्रिभागेनो न एव वा । श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः ॥ क्रियानिवन्धेऽक्रतुस्तु— 'सार्धं एकादशे मासे सार्द्धं वै पञ्चमे तथा । ऊनाब्दमूनषण्मासं भवेतां श्राद्धकर्मणि' । इत्युक्तं ॥ तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ ऊनेषु वर्ज्यान्याह मरीचिः— 'द्विपुष्करे च नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने । चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे' ॥ ज्योतिषे— 'त्रिपादक्षं तिथिर्भद्रा भौमेज्यरविभिः सह । तदा त्रिपुष्करो योगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः' ॥ गालवः— 'त्रिभिर्वा दिवसैरुने त्वेकेन द्वितयेन वा ॥ आद्यादिषु च मासेषु कुर्यादूनाब्दिकादिकम्' ॥ एकन्यूनपक्षे पञ्चम्यां



मृतस्य तृतीयायां त्रिभिन्न्यूने प्रतिपदि द्व्यूने द्वितीयायामिति केचित् ॥ मा-  
 धवस्तु— ‘षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वद्युरेव ते । मासिकानि स्व-  
 कीये तु दिवसे द्वादशेपि च’ इति पैठीनसिवाक्ये ऊनषण्मासिकं सप्तममा-  
 सगतमृताहात्पूर्वद्युः कार्यम्, ऊनाब्दिकं तु द्वितीयाब्दे मृताहदिनात्पूर्वद्युः  
 कार्यमित्यर्थमाह । ‘मासिकानि स्वकीये तु दिवसे’ इत्युक्तेः ॥ इदमेव युक्त-  
 म् ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ याज्ञवल्क्यः— ‘मृतेहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु  
 वत्सरम् । प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि’ ॥ अत्राद्यमासिकमाब्दिकं  
 चैकादशेह्नाति निर्णयामृतादयः । ‘ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथ-  
 वा । पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिति’ इति गोभिलीयं च तद्विषयमाहुः ॥  
 अन्ये तु ‘मासपक्षतिथिस्पष्टे’ इत्यादिचिरोधादाब्दिकं वर्षान्तमेव ॥ मासिकं  
 तु मासादौ ॥ द्विरावृत्तिस्तु एकादशाहिकाद्यमासिकपरा ॥ देवयाज्ञिकोप्ये-  
 वमाह ॥ लौगाक्षिरपि— ‘मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते ॥ आ-  
 द्यमेकादशे कार्यमधिके त्वधिकं भवेत्’ दीपिकायां तु— ‘आद्यं रुद्रमिते-  
 र्कसंमितदिने वा स्यात्’ इत्युक्तम् ॥ गौडास्तु मृततिथ्यवधिके एकदिनाधि-  
 के माससंवत्सरपदं गौणम् । पूर्णेब्दे इति ईषदसमाप्तपरत्वमिति शूलपाणिः ॥  
 तेन द्वितीयमासादावाद्यमासिकादीनि तन्मौख्यकृतं ॥ अशक्तौ तु हारीतः—  
 ‘मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति । द्वादशाहेन वा भोज्या ए-  
 काहे द्वादशापि वा’ ॥ ऋतुं प्रति द्वेद्वे इत्यर्थः ॥ यदा पितुर्मरणात्रयोविंश-  
 तितमे दिने दशौ वृद्धिर्वा स्यात्तदा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कार्या-  
 नीत्यर्थः ॥ त्रैपक्षिकं तु त्रिपक्षेतीति मृताहे कार्यम् ॥ ‘त्रैपक्षिकं  
 भवेद्वृत्ते त्रिपक्षे तदन्तरम्’ इति भविष्योक्तेः इति मदनरत्ने उ-  
 क्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रकालादर्शनिर्णयामृतादयस्तु— ‘ऊनान्यूनेषु मा-

१—यावदिति शेषः । २—आदिना—आद्याब्दिकं द्वितीयवर्षाद्यतिथौ कार्यमित्यस्य  
 ग्रहः । अत्राद्याब्दिकस्य द्वितीयवर्षाद्यतिथौ कर्तव्यत्वेपि आद्यमासिकस्य द्वितीयमा-  
 साद्यतिथौ कथं करणं, तत्राद्यमासत्वाव्यवहारात् ‘आद्यमासो गतः’ इति व्यवहाराचे-  
 त्यस्वरसः । इति टीका ॥



सेषु विषमाहे समेपि वा । त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहे त्वितराणि तु'  
इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः पूर्वत्र वृत्ते प्रवृत्ते इत्यर्थमाहुः ते तदनन्तरश-  
ब्दविरोधात् त्रैपक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापत्तेरेवं व्याख्यायां मानाभावा-  
च्चोपेक्षयाः ॥ त्रिपक्षसपिण्डने त्वेवंशब्दाभावादधिकरणत्वमेव ज्ञेयम् ॥ यत्तु-  
क्रियानिवन्धे गारुडे—'त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे तु प्रवृत्ते विषमे दिने । मासिकान्य-  
पि चोनानि अष्टाविंशतिमे दिने ' ॥ इति, तन्निर्मूलम् ॥ स्मृतिरत्नाव-  
ल्याम्—'द्वादशाहे यदा कुर्यात्पितुः पुत्रः सपिण्डनम् । एकादशेहि कुर्वीत  
प्रेतश्राद्धानि षोडश ' ॥ पैठीनसिः—'सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्वन् श्राद्धानि  
षोडश । एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु ॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं  
यदा कुर्यात्तदा पुनः । प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि' ॥ मद्-  
नरत्ने कात्यायनः—'श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेहनि । ध्रुवाणि तु  
प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ' ॥ ध्रुवाणि त्रैपक्षिकादूर्ध्वानि ॥ क्रियानिवन्धे  
गारुडे—'त्रिपक्षात्पूर्वतः साग्नेर्भवेत्संस्कारवासरे । ऊर्ध्वं मृतदिनेऽग्नयेः स  
र्वाण्येव मृताहतः ' ॥ एतानि च यदा सपिण्डनात्पूर्वं युगपत्कुर्यात्तदा देश-  
कालकर्त्रैक्यतन्त्रत्वादेकः पाक इति केचित् ॥ पाकभेद इति भट्टचरणाः ॥  
अत्र केचिदाहुः देशकालदैवतैक्ये तन्त्रत्वात् श्राद्धकालातिक्रमापत्तेः—'द्वाद-  
शाहेथ सर्वाणि संक्षेपेण समापयेत् । तान्येव तु पुनः कुर्यात्प्रेतशब्दं न का-  
रयेत् ' इतिकात्यायनोक्तेः 'नैव श्राद्धद्वयं कुर्यात् समानेहनि कुत्राचि-  
त् ' इत्यस्य दैवतैक्यपरत्वेऽप्यत्र तत्सत्त्वात्—'श्राद्धं कृत्वा तु तस्य वै मुनः  
श्राद्धं न कारयेत् ' इति जाबाल्युक्तेः । षोडशसंख्यायाश्च वाजपेये प्राजाप-  
त्ययागसप्तदशत्ववत्सान्नाप्ययागद्वित्ववच्च दर्शपातसंक्रान्तिश्राद्धवयुगपदनु-  
ष्ठानेऽप्युपपत्तेः—'आद्यमासिकाद्यूनाब्दिकान्तेषु षोडशश्राद्धेषु च क्षणः क्रिय-  
ताम् ' इत्येवं प्रयोगेणैको विप्रः पिण्डोर्ध्वश्चेति ॥ विरुद्धविधिविध्वंसेऽप्येवं

१-त्रैपक्षिकान्तं पूर्वश्राद्धं दाहवासरमारभ्य भवेदित्यर्थः । 'ऊर्ध्वं त्रिपक्षाद्यच्छ्राद्धं मृता-  
न्येव तद्भवेत् । अधस्तु कारयेद्दाहादाहिताग्नेर्दिजन्मनाम्' इति जातृकर्ण्यवचनात् ॥ इ० ॥



तन्मन्दम् ॥ ‘द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा’ इति हेमाद्रौ  
 हारीतवचोविरोधात्तेन विप्रभेदात्सपिण्डाध्यायपि भिन्नमिति सिद्धम् ॥ एतानि  
 द्वादशाहादौ सपिण्डनात्पूर्वं कृतान्यपि वृद्धिं विनापकर्षे पुनः स्वकाले का-  
 र्याणि ॥ ‘यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुम्भं  
 च देयं तस्यापि वत्सरम्’ इति मदनरत्नेद्विरसोक्तेः ॥ नचेदं मासिका-  
 नामपकर्षं विधत्ते किंतु सपिण्डनोर्ध्वं स्वकालेनुष्ठानमेवेति वाच्यम् ॥ ‘श्रा-  
 द्धानि षोडशादत्वा नतु कुर्यात्सपिण्डताम्’ इति विरोधात् ॥ ‘यस्य संवत्स-  
 रादर्वाग्विहिता तु सपिण्डता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश’  
 इति माधवीये गोभिलोक्तेश्च ॥ ‘अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं कृत-  
 म् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः’ इति तत्रैव गालवोक्तेः ॥  
 षोडशत्वं चैकादशाहासपिण्डनपक्षे तत्रायमासिकस्य कालसत्त्वादन्यपक्षेषु  
 यथासंभवं ज्ञेयं ॥ यत्तु दीपिकायाम्—‘अनुमासिकानि तु चरेत्तान्येव  
 सापिण्ड्यतः पश्चात् । द्वादशेत्युक्तेरूनानां न पुनः कृतिरित्युक्तं तदेतद्विरोधा-  
 च्छिन्त्यम् ॥ यत्तु गौडाः—‘सपिण्डीकरणान्ता तु ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः’  
 इति ज्ञातातपोक्तेर्मासिकानां प्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्सपिण्डनापकर्षे तदन्त-  
 न्यायेन तेषामपकर्षान्मासिकानां न पुनः कृतिः । यत्तु ‘मासिकं चोदकुम्भं  
 च’ इति लौगाक्ष्यादिवचनं, तन्निर्मूलम् । समूलत्वेपि दार्शपरं चेत्याहुः ॥  
 ते उक्तवक्ष्यमाणवचोनिबन्धविरोधान्मूर्खा इत्युपेक्षयाः ॥ यत्तु मिताक्षरायां  
 सपिण्डनोर्ध्वं स्वकाले एव कार्याणि अपकर्षस्त्वनुकल्प इत्युक्तम्, तदपि  
 पूर्वविरोधाच्छिन्त्यम् ॥ तेन वृद्धिं विनापकर्षे पुनः कृतिः । ‘अर्वाक्संवत्स-  
 राद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप’ इत्य-  
 ग्निपुराणात् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे त्वस्त्येव तन्निवृत्तिः । अन्यथा वृद्धा-  
 वसंभवादिति शूलपाणिः ॥ काष्णार्जिनिः—‘सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य  
 कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्धयुत्तरनिषेधनात्’ ॥ निषेधं चाह कात्या-  
 यनः—निर्वर्त्य वृद्धितन्त्रं तु मासिकानि न तन्त्रयेत् ॥ अयातयामं मरणं



प० ३ ]

प्रेतकर्मनिर्णयः ।

५६९

न भवेत्पुनरस्य तु' इति ॥ द्विरनुष्ठानं चोत्तरेषामेव, न पूर्वेषां स्वस्वकालकृतानाम् । तदाह माधवीये काष्णाजिनिः— 'अर्वागन्दाद्यत्र यत्र सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वमासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः' ॥ हेमाद्रौ शाक्यायनिः— 'प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणं तथा । अपरुष्यापि कुर्वीतकर्तुं नान्दीमुखं द्विजः' ॥ वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाहोशनाः— 'वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति' इति ॥ आधानेपकर्षमाह हेमाद्रावुशनाः— 'पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतिवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात्' ॥ विशेषस्तूक्तो विवाहनिर्णये ॥ कण्वः— 'नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत् ॥ तत्तदुत्तरसातन्व्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥' गारुडेपि— 'आपदाद्यकृतं यत्तु

कुर्यादूर्ध्वं मृताहनि' ॥ अथ सपिण्डीकरणम् ॥ माधवीये

सपिण्डीकरण-  
निर्णयः

हारीतः— 'या तु पूर्वममावास्या मृताहादशमी भवेत् ॥ सपिण्डीकरणं तस्यां कुर्यादेव सुतोयिमान्' ॥ मृताहादूर्ध्वं

दशमी एकादशीत्यर्थः ॥ 'सपिण्डीकरणं कुर्यात्पूर्ववच्चाग्निमान्सुतः । परतो दशरात्राच्चेत्कुहूरब्दे परेतरः' इति काष्णाजिनिस्मृतेः ॥ आहिताग्नेस्तेन विना श्रौतपिण्डपितृयज्ञासिद्धेः ॥ तदाह गालवः— 'सपिण्डीकरणात्प्रेते पैतृकं पदमास्थिते । आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते' ॥ मदनरत्ने प्रजापतिः— 'नासपिण्ड्याग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्' । अपरार्के कात्यायनः— 'एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शायथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमान्विप्रो मातापित्रोः सपिण्डताम् । आशौचान्तप्रथमदर्शयोर्मध्ये कस्मिंश्चिदह्नीत्यर्थः ॥ पित्रादीनां सपत्नीकानां देवतात्वेन मातुरपि प्राग्दर्शात्सपिण्डनं युक्तमित्यपरार्कः ॥ एवं पितामहादेरपि सपिण्डनं प्राग्दर्शात्कार्यम् ॥

१--इदं तु बोध्यम्— 'प्रेतश्राद्धानि शिष्टानि सपिण्डीकरणादर्वाक्' इति विधेः, 'निवृत्त्य वृद्धितन्त्रं तु' इति निषेधस्य च सामान्यरूपत्वेपि चौलोपनयनविवाहाधानेष्वप्युत्तरेष्वेव प्रवृत्तिः, नतु गर्भाधानपुंसवनसीमन्तजातकर्मनामान्नप्राशनादिषु, दाक्षिणात्यानां तथैवाचारात् जातकर्मादौ केषांचिदनुमासिकाद्यपकर्षाचारस्तु नादरणीयः ॥ इति टीका ॥



तेन विना पार्वणायोगाद्द्वादशाहे वा कार्यम् ॥ 'साग्निकस्तु यदा कर्ता  
 प्रेतश्चानग्निमान् भवेत् । द्वादशाहे भवेत्कार्यं सपिण्डीकरणं सुतैः' इति गो-  
 भिलोकेः ॥ साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्षे 'प्रेतश्चेदा हिताग्निः स्यात् कर्तान-  
 ग्रिर्यदा भवेत् । सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके' इति सुमन्तूक्तेः ॥  
 मदनरत्ने लघुहारीतोपि— 'अनग्निस्तु यदा वीर भवेत्कुर्यात्तदा गृही ॥  
 प्रेतश्चेदग्निमांस्तु स्यात् त्रिपक्षे वै सपिण्डनम्' ॥ द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाह एव  
 'साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतोवाप्यग्निमान्भवेत् ॥ द्वादशाहे तदा कार्यं स-  
 सपिण्डीकरणं पितुः' इति तेनैवोक्तेः ॥ द्वयोरनग्नित्वे तु भविष्ये— 'सपि-  
 ण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेब्दे भतर्षभ ॥  
 द्वादशाहनि षण्मासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा ॥ एकादशोपि वा मासि मङ्गल-  
 स्याप्युपस्थितौ' ॥ कात्यायनगोभिलौ— 'यदहर्वा वृद्धिरापद्यते' । तच्च वृ-  
 द्धिदिन एवेति वाचस्पतिः ॥ तन्न ॥ 'प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति निय-  
 मात्सपिण्डनस्य चापराह्णकालीनत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः ॥ वृद्धिदिने तत्पूर्व-  
 दिने चेति श्रीदत्तः ॥ स्मार्तगौडस्तु 'वृद्धिपूर्वो वषान्त्यश्च क्षणः स-  
 पिण्डनस्य प्रेतत्वनाशे सहकारी । तेन परेद्युर्विघ्नाद्वृद्ध्यभावेपि तत्कर्तव्यता-  
 निश्चयसहितमेव कालान्तरक्रियमाणवृद्धिपूर्वलक्षणसहकृतं प्रेतत्वनाशकमि'-  
 त्याह ॥ तन्न ॥ अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात् ॥ एतेन निमित्तनिश्चयवत्  
 एवाधिकाराद्वृद्ध्यभावेपि न क्षतिरिति मिश्रोक्तिः परास्ता ॥ वृद्धिपूर्वदिनस्य  
 च कालस्याङ्गत्वेन निमित्तत्वाभावात्तेन पुनः कार्यमित्यन्ये ॥ मदनरत्ने  
 पुलस्त्यः— 'निरग्निकः सपिण्डत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः । पूर्णे संवत्सरे कु-  
 र्याद्वृद्धिर्वा यदहर्भवेत्' ॥ चतुर्विंशतिमते— 'सपिण्डीकरणं चाब्दे संपूर्णे  
 ऋदयेपि वा । द्वादशाहे तु केषांचिन्मतं चैकादशे तथा ॥' पृथ्वीचन्द्रोदये  
 बौधायनः— 'अथ सपिण्डीकरणं, त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि, षष्ठे चैका-  
 दशे वा द्वादशे वा द्वादशाहे वा' इति ॥ एतत्प्रक्रमे विष्णुः ॥ मासिकार्थं

१-मध्याह्नकालीनत्वेन वेति शेषः ॥



द्वादशाहं श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशोहि वा कुर्यान्मन्त्रवर्ज्यं हि शूद्राणां ॥ द्वादशोहि संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासो भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेत् ' इति ॥ आशौचोत्तरं द्वादशस्वहस्सु मासिकानी ॥ तेष्वेवाद्यषष्ठद्वादशदिनेषु मासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशोहि सपिण्डनं कुर्यात् ॥ अधिमासे तु चतुर्दशोहि कुर्यात् ॥ शूद्रश्च त्रयोदशो द्वादशोहीत्यस्य मासिकान्त्यदिनपरत्वादिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ पैठीनसिः—' संवत्सरान्ते संसर्जनं नवमे मासीत्येके ' ॥ अत्र साग्रेरन्ये-  
 र्वोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरान्तानामनुकल्पा ज्ञेयाः ॥ कल्पतरुस्त्वग्रे-  
 वृद्धिनिश्चय एव सर्वेऽपकर्षप्रकारा इत्याह ॥ तन्न ॥ 'यदहर्वा' इति स्वात-  
 न्यश्रुतेः ॥ यद्यपि वृद्धिनिमित्तोपकर्षो निरग्रेरेवोक्तः तथापि साग्रावपि  
 ज्ञेयः ॥ उक्तकालासंभवे वर्षान्तादिगौणकालवद्बृद्धेरपि प्राप्तेः ॥ वक्ष्यमाण-  
 गोभिलवचनात् ॥ 'अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य तु' इति दोषश्रु-  
 त्यविशेषाच्च ॥ अपरार्कपृथ्वीचन्द्रादिस्वरसोप्येवम् ॥ अत्र वृद्धिपदं चूडो  
 पनयनविवाहमात्रपरम् । सीमन्तादौ तु वृद्धिश्राद्धलोप एवेत्याचार्य-  
 चूडामणिः ॥ पुंसवनाद्यन्नप्राशनान्तेष्वावश्यकेष्वपकर्ष इति श्राद्धविवे-  
 कः ॥ श्रुतिसागरेपि बृहस्पतिः—' प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्न कृते वृ-  
 द्धिकर्मणि । तन्निमित्तं समाकृष्य पित्रोः कुर्यात्सपिण्डनम् ' ॥ गर्भाधानस्य  
 त्वन्तरेपि संभवात् ॥ 'अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम्' इति  
 देवलेन प्रथमान्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयस्तन्न ॥  
 'ऋतुस्नातां तु यो भार्याम्' इति निषेधात् 'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चत-  
 स्रश्च वर्जयेत्' इति मैथुने दोषाभावाच्च पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ ना-  
 पकर्षः ॥ तस्य महागुरुत्वाभावात् ॥ तत्र तदूर्ध्वेभ्यो वृद्धिश्राद्धमिति श्रा-  
 द्धचन्द्रिका ॥ तन्न ॥ 'भ्राता च' इत्यादौ तदभावेऽप्यपकर्षोक्तेः तेन निर्देशो-  
 प्युपलक्षणम् ॥ व्याघ्रः—'आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।  
 अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते' ॥ एतदाशौचान्तोपलक्षणम् ॥ 'स-  
 र्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनम्' इति निर्णयामृते कात्यायनोक्तेः ॥



सर्वेषामिति त्रैवर्णिकपरम् ॥ शूद्राणां त्वाशौचमध्ये ॥ ‘मन्त्रवज्र्यं हि शूद्राणां द्वादशेहनि कीर्तितम्’ इति विष्णुक्तेः ॥ एतदर्शश्राद्धकारिशूद्रविषयमित्यपराकै कल्पतरौ च ॥ वृद्धमनुः—‘द्वादशेहनि विप्राणामाशौचान्ते तु भूभुजाम् । वैश्यानां तु त्रिपक्षादावथ वा स्यात्सपिण्डनम्’ ॥ निर्णयामृते गोभिलः—‘द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम् । सपिण्डीकरणं कुर्यात् कालेषूत्तरभाविषु’ ॥ इदं साग्नैरुक्तकालासंभवे गौणकालविधानार्थमिति मदनपारिजातः ॥ मदनरत्नेष्वेवम् ॥ ऋष्यशृङ्गः—‘सपिण्डीकरणं श्राद्धमुक्तकाले न चेत्कृतम् ॥ रौद्रे हस्ते च रोहिण्यां मैत्रभे वा समाचरेत्’ ॥ कालादशौपि—‘एकादशे द्वादशेहि त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा ॥ षष्ठे चैकादशे वाब्दे संपूर्णे वा शुभागमे ॥ सपिण्डीकरणस्येत्यमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः । साग्नौ कर्तर्युभावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः ॥ अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्तकाला मुनीरिताः । रोहिणी-रौद्रहस्तेषु मैत्रभे वापि तच्चरेत्’ ॥ नारदसंहितायां तु—‘सपिण्डीकरणं कार्यं वत्सरे वार्धवत्सरे । त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा मासि वा द्वादशेहि वा इत्युक्तम् ॥ वत्सरेतीतेपि ज्ञेयम् ॥ ‘ततः सपिण्डीकरणं वत्सरात्परतः स्थितम्’ इति भविष्योक्तेः ॥ ‘पितुः सपिण्डीकरणं वत्सरादूर्ध्वतः स्थितम्’ इति नागरखण्डोक्तेः ॥ ‘पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे’ इत्युशनसोक्तेश्च ॥ ‘पूर्णे संवत्सरे पिण्डः षोडशः परिकीर्तितः । तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते’ इति हेमाद्रौ वचनाच्च ॥ अस्यानाकरत्वोक्तिर्मूर्खोक्तिरेव ॥ यत्तु—‘पूर्णे संवत्सरे कुर्यात् सपिण्डीकरणं सुतः । एकोद्दिष्टं च तत्रैव मृताहनि समापयेत्’ इति धवलनिबन्धे जाबाल्युक्तेः ॥ ‘पुत्रः सपिण्डनं कृत्वा कुर्यात्स्नानं सचैलकम् । एकोद्दिष्टं ततः कुर्यात् कुतपं न विचारयेत्’ इति स्वल्पमात्रस्योक्तेश्चाब्दिकं तद्दिने पुनः कार्यमिति केचित् ॥ ते निर्मूलत्वाद्धेमाद्रिविरोधाच्चोपेक्षयाः ॥ षोडशत्वं च सपिण्डनस्य षोडशश्राद्धान्तर्भावपक्षे ॥ स्मृत्यर्थसारे तु वर्षान्त्यदिने संवत्सरविमोक्षश्राद्धं सपिण्डनं च कृत्वा परेषु मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम् ॥ गौडा अप्येवमाहुः ॥



तत्पूर्वविरोधाच्चिन्त्यम् ॥ तच्च पुत्रे सति नान्यः कुर्यात् ॥ 'श्राद्धानि षोड-  
 दशादत्वा नतु कुर्यात्सपिण्डताम् । प्रोषितावसिते पुत्रःकालादपि चिरादपि' ।  
 इति वायव्योक्तेः ॥ षोडशश्राद्धानां वर्षादूर्ध्वं कालाभावेपि तान्यदत्वा न  
 कुर्यात् ॥ किं तु दत्तैव ॥ तानि यदि कनिष्ठभ्रात्रादिना कृतानि तदा सपिण्ड-  
 नमेव कुर्यादित्युपपत्त्यर्थः ॥ सपिण्डने तु कनिष्ठानां नैवाधिकार इत्यर्थः ॥ त-  
 न्नैव—'अज्ञानादथ वा मोहान्न कृता चेत्सपिण्डता । तत्रापि विधिवत्कार्या  
 कालादपि चिरादपि' ॥ तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः ॥ 'ज्येष्ठेन जातमात्रेण  
 पुत्री भवति मानवः' । इति मनूक्तेः ॥ अपराकै प्रचेता अपि—'एका-  
 दशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः । कुर्यान्निर्गणकः श्राद्धमाब्दिकं तु  
 पृथक्पृथक्' ॥ मरीचिः—'सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ।  
 द्रव्येण वाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्' ॥ यत्तु वाचस्पतिशूलपाणिभ्यामुक्तं  
 द्रव्यदानानुमत्यभावे कनिष्ठैः पृथक्कार्यमिति ॥ तन्न एवकारस्य तदभावेपि  
 पृथक्करणभावार्थत्वात् ॥ अन्धादेरिव ज्येष्ठे सति कनिष्ठानामनधिकाराच्च ॥  
 अतस्तेषां प्रत्यवायमात्रम् ॥ आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यादेव ॥ अन्यथा पितृ-  
 यज्ञासिद्धेः एवमावश्यकवृद्धावपि कनिष्ठोन्यः सपिण्डो वा कुर्यात् 'भाता  
 वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च ॥ सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं  
 ततः । तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादौ' इति मदनरत्ने लघुहारी-  
 तवचनात् ॥ वृद्धयनन्तरं प्रथमाब्दमध्येपि काम्यं कुर्यात् ॥ वृद्धयभावे तु  
 प्रथमाब्दादूर्ध्वमेवेत्यर्थः ॥ काम्योक्तेरनावश्यके इष्टापूर्तादौ नापकर्षः ॥ एत-  
 द्भ्रातृपुत्रादिसंस्कारे प्राप्ताधिकारस्य नान्दीश्राद्धाधिकारार्थम् अभ्युदयपदं  
 च नान्दीश्राद्धनिमित्तकर्ममात्रपरमिति हेमाद्रिः ॥ तेन ज्येष्ठे देशान्तरस्थे

१-अत्र 'श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डताम् । श्राद्धानि षोडशादत्वा  
 नतु कुर्यात्सपिण्डताम्' इति समानकर्तृकत्वमङ्गापत्तिरित्यस्वरसः ॥ इति टीका ॥  
 २-एवकार आवृत्तिव्यवच्छेदार्थः । अयं चाधिकारो ज्येष्ठस्यासंनिधाने सूतकादिप्रति-  
 बन्धेवा ॥ ३-'एकादशाहं निर्वर्त्य पूर्वं दर्शाद्यथाविधि । प्रकुर्वीताग्निमानुपुत्रो मातापित्रोः  
 सपिण्डनम् । नासपिण्ड्याग्निमानुपुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् ।' इत्यादिवचनात् ॥



कनिष्ठः सपिण्डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसंस्कारं कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः प-  
रास्ता ॥ भ्रातृशिष्याद्युक्तेर्नान्दीश्राद्धेज्यदेवतामात्रपरोपकर्ष इत्यपास्तम् ॥ अ-  
स्य क्रममात्रपरत्वाद्वृद्धिकर्तैव सपिण्डनं कुर्यादिति न नियम इति गौडाः ॥  
अत एव कन्याया मातृमरणे भ्रात्रा सपिण्डने कृते पितुर्नाधिकारः ॥ शूलपा-  
णिस्तु- 'महागुरौ प्रेतभूते वृद्धिकर्म न युज्यते' इति निषेधात् ॥ मृतस्य  
भ्रात्रादिः सपिण्डनं कृत्वा तत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयं कुर्यान्नतु स्वपुत्रसंस्कारे सं-  
स्कार्यपितुः सपिण्डनं विना वृद्धौ देवतात्वाभावादित्याह ॥ तन्नविदेशस्थेन  
ज्येष्ठेन पुनः कार्यम् ॥ 'यवीयसा कृतं कर्म प्रेतशब्दं विहाय तु । तज्ज्या-  
यसापि कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पुनः' इति स्मृतेः ॥ 'ज्येष्ठेन वा कनिष्ठेन स  
पिण्डीकरणे कृते' । आद्यपादे 'मातापित्रोः कनिष्ठेन' इति वा पाठः 'देशान्त-  
रगतानां च पुत्राणां तु कथं भवेत् । श्रुत्वा तु वपनं कार्यं दशाहान्तं तिलोद-  
कम् ॥ ततः सपिण्डीकरणं कुर्यादेकादशेहनि । द्वादशाहे न कर्तव्यमिति शाता  
तपोब्रवीत्' इति वचनाच्चेति भट्टाः ॥ सिद्धाभट्टीयेप्येवम् ॥ पूर्ववचनेत्र च  
मूलं चिन्त्यम् ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'विभक्ता ऋद्धिकामाश्चेत्पुत्राः पृथक्सपि-  
ण्डीकरणं कुर्युः' इत्युक्तम् ॥ अत्र दत्तकस्य तत्पुत्रादीनां विशेषः प्रागुक्तः ॥  
केचित्तु वृद्धिं विनापि कनिष्ठस्य सपिण्डनमाहुः ॥ 'मातापित्रोर्मृते काले ज्ये-  
ष्ठे देशान्तरस्थिते । कनिष्ठेन प्रकर्तव्यं सपिण्डीकरणं तथा' इति काष्ण्णाजि-  
निस्मृतेः 'गते वा रोधिते ज्येष्ठे पित्रा वा प्रेषिते सति । षण्मासान्न निवर्तेत  
तदा कार्यं कनीयसा' ॥ संवर्तः- 'पुनः सपिण्डीकरणं श्राद्धं पार्वणवच्चरेत्  
अर्घ्यसंयोजनं नैव पिण्डसंयोजनं न च' इति ॥ तेषां वचसां निर्मूलत्वात्- 'प्रो-  
षितावसिते पुत्रे' इत्यादिविरोधाच्चोपेक्षयाः ॥ व्युत्क्रममृतौ तु  
व्युत्क्रममृतौ हेमाद्रौ ब्राह्मे- 'मृते पितरि यस्याथ विद्यन्ते च पितामहाः ।  
तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ तेभ्यश्च पैतृकः पिण्डो नियोक्त-  
व्यस्तु पूर्ववत् । मातर्यथ मृतायां च विद्यते च पितामही ॥ प्रपितामहीपूर्वस्तु  
कार्यस्तत्राप्ययं विधि' ॥ एवं प्रपितामहजीवने तत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम् ॥ तदाह



सुमन्तुः—‘त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः’ ॥ यत्तु—‘व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता’ इति, तन्मातापितृभर्तृभिन्नविषयम् ॥ ‘व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते । यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः’ इति माधवीये स्कान्दोक्तेः ॥ मदनरत्नादौ चैवम् ॥ अत्र ‘प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृते पितामहे मृते तत्सपिण्डने सति पुनस्तेन सह पितुः सपिण्डनं कार्यम्’ इति हेमाद्रिर्मतमाह ॥ अन्ये नैव तन्मन्यन्ते ॥ तत्त्वं तु पितुः सपिण्डनाभावे पितामहेन सह पुनः कार्यं, न तत्सत्त्वे ॥ ‘त्रयाणामपि पिण्डानामेकेनापि सपिण्डने । पितृत्वमश्नुते प्रेत इति धर्मो व्यवस्थितः’ इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ पितामहे प्रपितामहे वा पुत्रान्तरैरसंस्कृतेऽप्यसंस्कृताभ्यामेव पितुः सपिण्डनं कुर्यात् ॥ ‘असंस्कृतौ न संस्कार्यो पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकौ ॥ पितरं तत्र संस्कुर्यात् इति कात्यायनोब्रवीत्’ इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ असंस्कृतौ दाहाद्यैरिति केचित् ॥ असपिण्डीकृताविति तु तत्त्वं ॥ अतएवोक्तं तत्रैव ‘पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा । पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः’ पापिष्ठमकृतसपिण्डनं न तु पतितादि । ‘अभिशस्तपतितभूणघ्नाः स्त्रियश्चातिचारिणीर्न संसृजेत्’ इति वैजवापोक्तेः ॥ ‘पापकर्मिणो न संसृजेरन्’ इति गौतमोक्तेश्चैत्युक्तं निर्णयामृते ॥ पूर्वयोः पुत्राभावे तु पौत्रः कुर्यादेव ॥ ‘पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति । पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः । पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम्’ इति कात्यायनोक्तेः ॥ अपराकै शूलपाणौ चैवम् ॥ तेन सपिण्डनस्यानित्यत्वादकृतसपिण्डनयोरेव पार्वणानुप्रवेश इति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ ‘कृते सपिण्डीकरणे प्रेतः पार्वणभागभवेत्’ इति हारीतविरोधाच्च ॥ केचित्पुत्रान्तराभावे पितामहवार्षिकमप्याहुः ॥ तत्र ॥ श्राद्धषोडशमिति नियमात् ॥ इच्छया भवत्येव ॥ ‘पितामहस्य चेद्दद्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्’ इति वाचस्पतिधृतगर्गोक्तेः ॥ त्रयाणां यौगपद्ये तु



प्राधान्यात्पितुः सपिण्डनं कृत्वा पूर्वयोः कुर्यात् ॥ पितामहे मृते दशाहान्तः  
 पितुर्मृतौ पितुः संस्कारं कृत्वा पितामहस्य पुनः सर्वमावर्तयेत् ॥ वृत्ते दशाहे  
 नैव ॥ अशक्त्या पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामहश्राद्धे प्रक्रान्ते पितृमृतौ तदा  
 शौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहकर्म कुर्यात्प्रक्रान्तत्वादिति मदनपारिजातपृ-  
 थ्वीचन्द्रौ ॥ यत्तु—‘उत्तरात्रितयरोद्ररोहिणीयाम्यसर्पपितृभेषु चाग्निभे ।  
 श्मश्रुकर्म सकलं च वर्जयेत्प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः’ इति सपिण्डनप्रकरणे  
 पाठान्मुख्यकाले निषिद्धर्क्षे सपिण्डनापकर्षः ॥ सर्वकालेषु तद्वत्त्वे तद्वर्ज्या-  
 न्येव ॥ पूर्वोक्तब्राह्मोक्तानि षोडशश्राद्धानि कार्याणीति वाचस्पतिमिश्राः,  
 तन्न ॥ अस्य परिभाषात्वेन वाक्यात्सावकाशकर्मपरत्वात् ॥ अस्य प्रेतमा-  
 त्रदेवत्यभावाच्च ॥ अथ स्त्रीषूच्यते ॥ हेमाद्रौ बृहस्पतिः—  
 स्त्रीणांसपिण्डन-  
 निर्णयः ‘भर्तृगोत्रेण नाम्ना च मातुः कुर्यात्सपिण्डनम्’ ॥ यत्तु भ-  
 विष्ये—‘पितृगोत्रं समुत्सृज्य न कुर्याद्रतृगोत्रतः’ इति,  
 तदासुरादिविवाहोदापरम् ‘आसुरादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्’ इतिवृ-  
 द्दशातातपोक्तेः ॥ तच्चानेकवचनेषु पितामह्या पत्या मातामहेन वा सहो-  
 कम् ॥ तत्र व्यवस्थोक्ता भविष्ये—‘जीवत्पिता पितामह्या मातुः कुर्यात्स-  
 पिण्डनम् । प्रसीतपितृकः पित्रा तत्पित्रा पुत्रिकासुतः’ ॥ तत्पित्रा मातुः  
 पित्रा ॥ लौगाक्षिः—‘पितामह्यादिभिः सार्धं मातरं तु सपिण्डयेत् । पितरि  
 ध्रियमाणे तु तेनैवोपरते सति’ शङ्खः—‘मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं  
 भवेत्सुतैः । पितामह्यादिभिः सार्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम्’ ॥ येनकेनापि मातुः  
 सापिण्डये यत्रान्वष्टकादौ मातुः श्राद्धं पृथगुक्तं तत्र पितामह्या सह कार्यम् ॥  
 ‘नान्दीमुखेऽष्टकाश्राद्धे गयायां च मृतेहनि । पितामह्यादिभिः सार्धं मातुः  
 श्राद्धं समाचरेत्’ इति शातातपोक्तेः ॥ अपुत्रायां तु पैठीनसिः—‘अ-  
 पुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिण्डनम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपि-  
 ण्डीकरणं भवेत्’ ॥ यत्तु लघुहारीतः—‘पुत्रेणैव तु कर्तव्यं सपिण्डीकरणं  
 स्त्रियाः । पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्रादयोपि ये’ इति ॥ यच्च मार्कण्डे-



यपुराणे— ‘सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते’ इति ॥ तत्पुत्रपत्य-  
 भावे ज्ञेयम् ॥ अत्र सपत्नीपुत्रोपि ज्ञेयः ‘बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी  
 भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः’ इति मनूक्तेरेतत्परत्वात् ॥  
 यत्तु शातातपः— ‘मृते पितरि मातुस्तु न कार्या सहपिण्डता । पितुरेव स-  
 पिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत्’ इति, तदशक्तपरम् ॥ केषांचिद्वा मतमिति  
 हेमाद्रिः ॥ अन्वारोहणे तु भर्त्रैव सापिण्ड्यम् ॥ ‘मृता यानुगता नाथं सा तेन  
 सहपिण्डताम् । अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंष्टवम्’ इति शातातपोक्तेः ॥  
 ‘पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । सा मृतापि हि तेनैक्यं गता  
 मन्त्राहुतिव्रतैः’ इति यमोक्तेश्च ॥ अत्रैकशब्दः पितामह्यादिपक्षनिवृत्त्यर्थः ॥  
 पतिपदं वर्गपरम् ॥ सपिण्डनस्य पार्वणैकोद्दिष्टरूपत्वादिति माधवकल्पतरु-  
 मदनरत्नादयः ॥ अन्ये तु भर्त्रैवैकेनाहुः ‘स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डी-  
 करणं भवेत्’ इत्येवकारश्रवणात् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेपि विकल्प उक्तः ॥  
 इदं तु तत्त्वम् ॥ यदा हेमाद्र्यादिमते द्वयोरेकः पिण्डस्तदा वर्गेण सह ॥ यदा  
 माधवपृथ्वीचन्द्रादिमते पृथक्सपिण्डस्तदैकेन पत्यैकवचनाच्चैकेनापि ॥ अतो  
 मातृपिण्डमसपिण्डीकृतेनैव पतिपिण्डेन संयोज्यैकीकृतं पिण्डद्वयं तत्पित्रादि-  
 भिः संयोजयेत् ॥ अन्त्यपक्ष एव युक्तः ॥ स्मृत्यर्थसारे तु— ‘अन्वारोहणेनैक-  
 दिनमरणे स्त्रियाः पृथक्सपिण्डनं नास्ति ॥ भर्तुः कृते स्त्रियाः अपि कृतं भवती’  
 त्युक्तम् ॥ तन्मतान्तरमस्तु ॥ इदं ब्राह्मादिविवाहेषु ज्ञेयम् ॥ आसुरादिषु  
 तु शातातपः— ‘तन्मात्रा तत्पितामह्या तच्छुश्र्वा वा सपिण्डनम् । आसु-  
 रादिविवाहेषु विन्नानां योषितां भवेत्’ ॥ मातामह्या मातुः पितामह्या तत्प्र-  
 पितामह्या चेत्यर्थः ॥ सुमन्तुः— ‘पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे  
 सुतैः । माता मातामहे तद्वदित्याह भगवाञ्छिवः’ ॥ इदमासुरादिपरं पुत्रि-  
 कापुत्रपरं चोक्तं प्राक् ॥ हेमाद्रिस्तु ब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र देशभेदादिकल्प-  
 माह ॥ अतो गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति  
 श्राद्धप्रयोगसपिण्डनं च दृश्यते हेमाद्रावापस्तम्बोपि— ‘कोकिलस्य यथा



पुत्रा अन्यसंचयजीविनः । पुष्टास्ते स्वकुलं यान्ति एवं नारी मृता सती ' ॥  
यदपि विज्ञानेश्वरो मातामहेन मातुः सापिण्ड्येन पितृश्राद्धवन्मातृश्राद्धं नि-  
त्यमित्याह, यच्च वृद्धिश्राद्धे छन्दोगपरिशिष्टे— ' षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु  
श्राद्धदानमुपक्रमेत् ' इति, तदेतद्विषयमेव ॥ मातुः पृथक्श्राद्धाभावात् ॥  
अत एव हेमाद्रौ भविष्ये— मातुः सपिण्डनं प्रक्रम्य— ' उदितेनुदिते चैव  
होमभेदो यथा भवेत् । तथा कुलक्रमायातमाचारं च चरेद्बुधः ' इत्युक्तम् ॥  
अस्य वृद्धावपवादमाह तत्रैव व्याघ्रपात् ॥ ' कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदा  
मातृपूर्वकम् । विधिज्ञो विधिमास्थाय वृद्धो मातामहादिवत् ' ॥ केचिदेतत्पु-  
त्रिकापुत्रपरमाहुः । पत्युः सापिण्ड्यमाह लौगाक्षिः— ' सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः  
स्वभर्तृणाममन्त्रकम् । सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततःपार्वणमेव च ' इति ॥ यत्तु  
वचनं— ' अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सपिण्डताम् ' इति यच्चापस्तम्भः—  
' अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोपि वा । तेषां सपिण्डनाभावादे-  
कोद्दिष्टं न पार्वणम् ' इति, तत्पुत्रोत्पादनविधिप्रशंसार्थमिति माधवः । ' स-  
पिण्डीकरणाद्धर्ममेकोद्दिष्टं विधीयते । अपुत्राणां च सर्वेषामपत्नीनां तथैव  
च ' इति हेमाद्रौ प्रचेतसोक्तेश्च ॥ अन्येतु द्विविधवाक्यदर्शनाद्विकल्पमाहुः ॥  
स्मृत्यर्थसारेपि— ' ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च सपिण्डनं नास्ति, तेषां सदै-  
कोद्दिष्टमेव, व्युत्क्रममृतानां सापिण्ड्यं कार्यं न वा ॥ केचित्सर्वत्र सपिण्ड-  
नमाहुरिति ॥ अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषो रेणुकारिकायाम् ' भ्राता वा भ्रा-

१—'पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः । पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तये-  
त्प्रपितामहम् ' इति मनुक्तौ ' पितुः स नाम संकीर्त्य पितरं देवतात्वेनोद्दिश्य प्रपितामहं  
तदादींस्त्रीनुद्दिशेत् ' । इत्यर्थात् ' यस्य पिता भेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहा  
त्पराभ्यां दद्यात् ' इति विष्णूक्तौ ' पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्याम् ' इत्यत्र  
तृतीयस्याप्युपलक्षणादिति व्याख्यापक्षे कार्यम् । अन्यथाव्याख्यायां तु न कार्यम् ' सा-  
चेत्यम्—व्युत्क्रममृतपुत्रेण दर्शादौ पितामहादीनामेव पार्वणं कार्यम् ' ब्राह्मणादिहते ताते  
पतिते सङ्गवर्जिते । व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ' इति कात्यायनोक्तेः । एवं  
चोक्तमानवं ' पितुःपितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्यः ' इति प्रयोगनियमार्थम् ' पितामहा  
त्पराभ्याम् ' इति विष्णूक्तेः । पितुर्यः पितामहस्तत्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादित्यर्थः ॥ इति टीका ॥



तृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा ॥ सपिण्डीकरणं कुर्यात्पुत्रहीने मृते स-  
ति ॥ सर्वबन्धुविहीनस्य पत्नी कुर्यात्सपिण्डताम् ॥ ऋत्विजं कारयेद्वापि पु-  
रोहितमथापि वा ॥ वसुरुद्रादितिमुतैः कार्या तेषां सपिण्डता । व्युक्रमाच्च  
प्रमीता ये तद्विना प्रेतताधुवम् ॥ पुनः सपिण्डनं तेषां कुर्यात्प्रेते पितामह  
इति ॥ अत्र मूलं मृग्यम् ॥ यतीनां सपिण्डनं नास्ति किंत्वेकादशोहि पार्वणं  
कार्यम् ॥ तदपि त्रिदण्डिनः ॥ एकदण्ड्यादीनां तदपि नेत्युक्तं प्राक् ॥ दण्ड-

ग्रहणात्पूर्वं मृते तु दाहादिसपिण्डनान्तं सर्वं कार्यमिति भट्टच-  
सपिण्डनाविधिः

रणाः सपिण्डनविधिमाह बैजवापः— ‘समाप्ते संवत्सर च-  
त्वार्युदपात्राणि प्रयुनक्ति, एकं प्रेताय, त्रीणि पितृभ्यः, प्रेतपात्रं पितृपात्रे-  
श्वासिंचति ये समाना इति, द्वाभ्यामेवं पिण्डोत्थाभिर्मृशति’ एष वोनुगतः प्रेतः  
पितरस्तं ददामि वः । शिवं भवतु शेषाणां जायन्तां चिरजीविनः ’ ॥ समा-  
नीवः संगच्छध्वं संवदध्वम् ’ इति ॥ यद्यपि— ‘तच्चापि देवरहितमेकादशै-  
कपवित्रकम् । नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम्’ इति मार्कण्डेयेनो-  
क्तम् । तथापि— ‘सपिण्डीकरणं श्राद्धं दैवपूर्वं नियोजयेत्’ इत्यादिविरो-  
धाद्विकल्पः प्रेतांशे वा ज्ञेयम् ॥ अत्र कामकालौ वैश्वदेवावपीत्युक्तं प्राक् ॥  
मैत्रायणीयपरिशिष्टे— ‘पित्र्यविप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह’ ॥ यत्तु  
गोभिलः— ‘अनुक्तकालेष्वपि तु व्युत्क्रमेण मृतावपि । आमेन वापि सा-  
पिण्ड्यं हेम्ना वापि प्रकल्पयेत्’ इति तदापदि मातापितृभिन्नपरम् ॥ ‘आ-  
पन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्’ इति तेवैवोक्तेः ॥ शुद्धितत्वे  
कामधेनौ च लघुहारीतः— ‘सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धं तु षोडशम् ।  
पक्वान्नेनैव कर्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः’ ॥ विश्वप्रकाशे— ‘प्रेतः सपि-  
ण्डनादूर्ध्वं पितृलोकेनुगच्छति । कुर्यात्तस्य तु पाथेयं द्वितीयेहि सपिण्डना-  
त्’ ॥ स्मृत्यर्थसारेष्वेवम् ॥ ततो वृद्धिश्राद्धं कुर्यात् ॥ एतन्मलमासेपि  
कार्यम् ॥ ‘अधिमासे न कर्तव्यं श्राद्धमाभ्युदयं तथा । तथैव काम्यं यत्कर्म  
वत्सरात्प्रथमादौ’ इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः ॥ इति भट्टकमलाकरकृते नि-



र्णयसिन्धौ सपिण्डीकरणम् ॥ अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि ॥

प्रथमाब्दनिषिद्ध-  
निर्णयः

हेमाद्रौ-‘स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम् । प्रथ-  
मेब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने ’ ॥ अग्नितर्पणं लक्षहोमादि ॥

नत्वाधानम् तत्तु प्रथमाब्दे भवत्येव ॥ तदाह हेमाद्रावुज्ञानाः- ‘ पितुः स-  
पिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे । आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात् ’ ॥  
अन्यतर्पणमिति शुद्धितत्वे पाठः ॥ आदिपदं वृद्धिनिमित्तनित्यकर्मपरम् ॥  
दिवोदासीये- ‘ महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च ॥ संवत्सरं न कुर्वीत  
महागुरुनिपातने ’ ॥ इदं श्राद्धकौमुद्यां देवीपुराणस्थमुक्तम् ॥ गौडनिबन्धे  
मात्स्ये- ‘ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवेत् । वृद्धीष्टापूर्तयोग्यश्च  
गृहस्थश्च सदा भवेत् ’ ॥ वर्षान्तसपिण्डनाभावे नाधिकारीत्यर्थः ॥ गृ-  
हस्थः सपिण्डोपीत्यर्थः ॥ अत एव- ‘ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्यु-  
दयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ’ इति ज्यो-  
तिषे उक्तम् ॥ माधवीये देवलः- ‘ प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्या-  
शुचिर्भवेत् । न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णां न वत्सरः ॥ इदं वर्षान्तसपि-  
ण्डनपरम् ॥ ‘तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादत्ते’ इति लघुहारीतायेकवा-  
क्यत्वात् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु काम्यादि भवत्येवेति गौडाः ॥ पित्र्यं स-  
पिण्डनम् ॥ अत एव लौगाक्षिः- ‘ अन्येषां प्रेतकार्याणि महागुरुनिपातने ।  
कुर्यात्संवत्सरादर्वाक्श्राद्धमेकं तु वर्जयेत् ’ ॥ दाहाद्येकादशाहान्तं कार्यम् ॥  
तत्राशौचान्तरस्याप्रतिबन्धकत्वात् ॥ ‘ आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशे  
हनि ’ इत्युक्तेश्च ॥ एकं सपिण्डनम् ॥ पत्न्यादौ त्वपवादमाह माधवीये ऋ-  
ष्यशृङ्गः- ‘ पत्न्याः पुत्रस्य तत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयेषु च । स्नुषास्वस्रोश्च पि-  
त्रोश्च संघातमरणं यदि ॥ अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वं सपिण्ड्यमाचरेत् ’ ॥ लौ-  
गाक्षिः- ‘ पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्पुत्रका अपि । पितरौ च यदै-  
कस्मिन् म्रियेरन्वासरे तदा ॥ आद्यमेकादशे कुर्यात्त्रिपक्षे तु सपिण्डनम् ’ ॥  
धवलनिबन्धे- ‘ महागुरुनिपाते तु प्रेतकार्यं यथाविधि । कुर्यात्संवत्सराद-



वागेकोद्दिष्टं न पार्वणम्' ॥ भृगुः—‘माता चैव तथा भ्राता भार्या पुत्रस्तथा  
 स्नुषा। एषां मृतौ चरेच्छ्राद्धमन्यस्य न पुनः पितुः’ ॥ एतदपि सपिण्डनपरम् ॥  
 पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धं न चरेदित्यर्थः ॥ शुद्धितत्वे देवलः—‘अन्यश्राद्धं  
 परात्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम् । वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूर्णा न वत्सरः’ ॥  
 पारस्करभाष्ये बृहस्पतिः—‘पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धान्निवर्तते । मार्तय-  
 पि च वृत्तायां पितृश्राद्धादृते समम्’ ॥ समं पितरं विनान्यश्राद्धं  
 नेत्यर्थः ॥ शुद्धितत्वे देवलः—‘महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्नचाचरेत् ।  
 आर्त्विज्यं ब्रह्मचर्यं च श्राद्धं देवक्रियां तथा’ ॥ एतत्सपिण्डनात्प्रागिति के-  
 चित् ॥ तदुत्तरमपित्यन्ये ॥ श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे पूर्वार्द्धे—‘वि-  
 शेषतः शिवपूजां प्रसीतपितृको नरः । यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसापि नचाचरे-  
 त्’ ॥ केचित्तु—‘पित्रोरब्दमशौच स्यात्षण्मासं मातुरेव च । त्रैमासिकं तु  
 भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः’ इति स्मृतेः सप्तनमातुरब्दार्धमाहुः ॥ श्राद्धकौ-  
 मुदीकारस्तु—‘द्वयोरेव महागुरोरब्दमेकमशौचकम् । नान्येषामधिकाशौचं  
 स्वजातिविहितात्किल’ इति समूलजातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह ॥ हेमाद्रौ  
 भविष्ये—‘गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णं त्वब्दे प्रशस्यते’ ॥ त्रिस्थलीसेतौ  
 गारुडे—‘तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम् । अब्दमध्ये न कुर्वीत  
 महागुरुविपत्तिषु ॥ इदं वृद्धचर्यसपिण्डनाभावे ॥ वृद्धौ सपिण्डनापकर्षेऽब्द  
 मध्येपि दर्शादि कार्यमेव ॥ ‘पितुः सपिण्डनां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासि-  
 कम्’ इति छन्दोगपरिशिष्टात् ॥ ‘सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभुग्भवे-  
 त्’ इति मात्स्यात् ॥ ‘ततः प्रभृति वै प्रेतः पितुसामान्यमश्नुते ।  
 विन्दते पितृलोकं च ततः श्राद्धं प्रवर्तते’ इति हारीताञ्चेति शूलपाणिः ॥  
 यत्तु कातीयं—‘सपिण्डीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् । एकोद्दिष्ट-

१- यत्र मातृमरणानन्तरं पिता मृतः, तत्र मातुः सपिण्डनस्यावश्यकतया स्वपुत्रादिना  
 तत्करणीयम्, अथवा यत्र मातुः सपिण्डनमपि न कार्यम्, तत्रान्यसपिण्डने किं वक्तव्यम्  
 इत्यन्यसपिण्डननिन्दायां तात्पर्यम् इति टीका ॥



विधानेन दद्यादित्याह शौनकः 'इति ॥ तत्रैकोद्दिष्टविधिनाञ्च दद्यादित्यन्वयः ॥  
 तुर्यपादेन पार्वणे विकल्प उक्तः ॥ ब्रह्मवैवर्ते—'उद्वाहश्चापनयनं प्रथमेब्दे म-  
 हीपते । कृते सपिण्डनेषूध्वमस्थनां चोद्धरणं त्यजेत् ॥ तथापि कर्तुमिच्छन्ति  
 त्रीणि चैतानि वै सुताः । मासिकान्यवशिष्टानि चापकृष्य चरेत्पुनः ' ॥ अ-  
 त्रेदं तत्त्वम् ॥ वृद्धिं विनार्वागपि सपिण्डनापकर्षे पितृत्वप्राप्तिर्वर्षान्त एव ॥  
 'कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् । प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्य-  
 ते' इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ 'अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् ।  
 प्रेतत्वमपि तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप' इत्यग्निपुराणाच्च ॥ तेन तत्सत्त्वेपि  
 वृद्धिदैवपित्र्येष्वनधिकारः ॥ वृद्धिनिमित्ते त्वनन्तरमेव ॥ 'अर्वाक्संवत्सराद्ब्रह्म-  
 पूर्णे संवत्सरेपि वा । ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां तु पृथक्क्रिया' इति  
 शातातपोक्तेः ॥ तथैव काम्यमिति हेमाद्रिधृतहारीतादिवशाच्चैवमिति ॥  
 तथा ॥ 'अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । प्रथमेब्दे न कुर्वीत कृ-  
 तेपि तु सपिण्डने' । अस्यापवादः—'अस्थिक्षेपं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरप-  
 क्षिकम् । प्रथमेब्देपि कुर्वीत यदि स्याद्भक्तिमान्सुतः ' ॥ भक्त्याख्यं श्राद्धं  
 तद्वानिति मदनपारिजातादयः ॥ अन्ये यथाश्रुतमाहुः ॥ तत्त्वं तु—यदीदं  
 समूलं, तदा वृद्धिं विनापकर्षे पूर्वं, वृद्धयर्थे तु परमिति योज्यम् ॥ पतितानां  
 गयायां विशेषो ब्राह्मे—'क्रियते पतितानां च गते संवत्सरे कचित् । देशध-  
 र्मप्रमाणत्वाद्गयाश्राद्धं स्वबन्धुभिः ' ॥ अथ विधानानि ॥ तत्र  
 पञ्चकमृते मदनरत्ने गारुडे—'आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेत-  
 न्नक्षत्रपञ्चकम् । रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि ॥ शवस्य तु समीपे  
 तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा । दर्भमग्न्यास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः ॥ त-  
 तो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते ततः पुत्रैः कार्यं शान्ति-  
 कपौष्टिकम् ॥ पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः ॥ तिलांश्चैव हिरण्यं च  
 तमुद्दिश्य घृतं दहेत् ॥ क्रियानिवन्धे 'भाजनोपानहौ छत्रं हैममुद्रां च वाससी ।  
 दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी' ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः—'यदि भद्राति-



थीनां स्याद्भानुभौमशनैश्वरैः । त्रिपादक्षैश्च संयोगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः ॥  
 द्वित्रिपुष्करयोगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात्त्रिपु-  
 ष्करे ॥ खननेप्येवमेव स्यादेतद्दोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्यवैर्वापि शरीरं  
 कारयेत्ततः ॥ शूर्पं निधायालंकृत्य दाहयेत्पैतृकोपरि ' ॥ तदाहे मन्त्रमाह  
 बौधायनः— ' अस्मात्त्वमिति मन्त्रेण तिलपिष्टं प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयो-  
 र्दोषस्त्रिभिः रुच्यैर्व्यपोहति ॥ वासवे मरणं चेत्स्याद्दूहे वापि पुनर्मृतिः ।  
 सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ' वासवं धनिष्ठा ॥ ब्राह्मे—'कुम्भ-  
 मीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते । न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा संततौ न शुभं भवे-  
 त् ॥ न तस्य दाहः कर्तव्यो विना शास्त्रेषु जन्तुषु । अथवा तद्दिने कार्यो  
 दाहस्तु विधिपूर्वकम् ॥ धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथंचन । त्रिपुष्करे  
 याम्यभे वा कुलजान्मारयेद्ध्रुवम् ॥ तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते ।  
 दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः  
 सह शवं दहेत् ॥ प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः । प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु  
 नामान्येतानि च क्रमात् ' ॥ अत्र प्रतिमा गन्धपुष्पैः पूजयित्वा ॥ प्रथमां शि-  
 रसि । द्वितीयां नेत्रयोः । तृतीयां वामकुक्षौ । चतुर्थीं नाभौ । पञ्चमीं  
 पादयोर्न्यस्य तदुपरि नामभिर्वृतं हुत्वा—यमाय सोमं व्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां  
 प्रत्येकं तास्वाज्यं हुनेदिति भट्टाः ' सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच्छान्ति-  
 कपौष्टिकम् । कांस्यपात्रस्थितं तैलं वीक्ष्य दद्याद्विजन्मने ॥ ब्रह्मविष्णुमहे-  
 शेन्द्रवरुणप्रीतये ततः । माषमुद्रयवव्रीहिप्रियंग्वादि प्रयच्छति ॥ स्वर्णदानं  
 रुद्रजाप्यं लक्षहोमो द्विजार्चनम् । गोभूदानं षडंशेन कुर्याद्दोषोपशान्तये ॥  
 अपराकै— ' धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे । प्रास्याहुतितयं तत्र हु-  
 नेद्वहवपामिति ॥ ततो निर्हरणं कुर्यादेष साग्नेर्विधिः स्मृतः । इतरं नि-  
 खनेदेव जले वा प्रतिपादयेत् ॥ त्रिपादक्षमृते तद्वद्धिरण्यशकलं मुखे । तस्य  
 पिष्टमयं कुर्यात्पुरुषत्रितयं ततः । होमं प्रतिमुखं कुर्यात्तथा वहवपामिति ॥  
 कार्णायसं च कार्पासं कुसुम्भं प्रतिपाद्य च । निर्यात्य साग्निं संस्कुर्याद्भुव्यग्नौ



वान्यमुत्सृजेत् ' ॥ तत्रैव— 'कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् ।  
 पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥ रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षा-  
 र्धमेव च । सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ' ॥ मदनरत्नेप्ये-  
 वम् ॥ तथा— 'एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् नवषट्त्रिः—  
 पलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ' ॥ तथान्यत्र— 'स्वगृह्योक्तविधानेन कृत्वाग्नेः  
 स्थापनं ततः । अन्वाधानं निर्वपणं देवतानां तथाहुतिः ॥ यमाय धर्मराजाय  
 मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च । औदुम्बराय  
 दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै क्रमात् ॥ विधिना  
 श्रपणं कृत्वा एकैकामाहुतिं हुनेत् । कृष्णां गां कृष्णवस्त्रां च हैमनिष्कसम-  
 न्विताम् ॥ दद्याद्विप्राय शान्ताय प्रीतो भवतु मे यमः ' ॥ त्रिपादक्षेप्येतदेव ॥  
 अपराकै— 'पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी । पूर्वाभाद्राविशाखा च  
 ज्ञेयमेतन्निपादभम् ' ॥ मयूरचित्रे गर्गः— 'मृतः श्मशानं यो नीत उपजीवति  
 मानवः । गृहे यस्य प्रविष्टोसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥ अचिरान्मृत्युमायाति  
 हृतदारपरिग्रहः । तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥ सक्षीराणां घृता-  
 कानामग्नेर्हुत्वा मुखे बुधः । औदुम्बरीणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भ-  
 वेत् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् कपिलां तिलकांस्यं च  
 हुतांते भूरिदक्षिणा ' इति ॥ अथ ब्रह्मचारिमृतौ शौनकः—  
 'ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः । तत्रावकीर्णदो-  
 षस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्ते ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं श-  
 क्त्याथवा चरेत् । स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि ॥ संयोज्य चा-  
 र्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ' ॥ देशकालौ स्मृत्वा 'अमुकगो-  
 त्राऽमुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये' इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दी-  
 श्राद्धं कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याधारान्ते चतसृभिर्यज्ञाहतिभिरग्नये व्रतपतये व्रतानु-  
 ष्ठानसंपादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादिसमाप्यपुनर्देशकालौ  
 स्मृत्वा र्कविवाहं करिष्ये इत्युक्त्वा हेम्ना नान्दीश्राद्धं कृत्वा र्कशाखां शवं च

अथ ब्रह्मचा-  
 रिमृतौ



हरिद्रया लिङ्वा पीतसूत्रेण वस्त्रयुग्मेन चावेष्ट्याग्निं प्रतिष्ठाप्याधारान्तेऽग्नये बृहस्पतये विवाहविधियोजकाय च यस्मै त्वं कामं कामायेति कामाय व्याहृतिभिश्चाज्यं हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्यार्कशाखां शवं च दहेत् । विधानमालायाम्—‘एषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि । तत्कुलं क्षयमामोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात् । मृतस्य प्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमादिशेत् ॥ त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनकान्नवान् ॥ हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च । पादुकाछत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च ॥ मणिप्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत् । एवं कृते विधाने च विघ्नः कोऽपि न जायते’ ॥ अत्र मूलं

मृग्यम् ॥ कुष्ठिमृतौ तु यमः—‘मृतस्य कुष्ठिनो देहं निखकुष्ठिमरणे नेद्रोष्ठभूमिषु । वासरत्रितयं पश्चादुद्धृत्यान्यत्र तं दहेत् ॥ न

गङ्गाप्लवनं कार्यं निक्षेपे विधिरुच्यते । षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनात्यं ऋतुं चरेत् ॥ ततोऽस्थिसंचयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः । मासिमासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणात् ॥ इत्येतत्कुष्ठिमरणे कथितं शास्त्रकोविदैः’ ॥ शुद्धितत्वे भविष्ये—‘शृणुकुष्ठगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुम् । विचर्चिका तु दुश्कर्मा चर्चरीयस्तृतीयकः । विकर्चूर्वणताम्रौ च कृष्णश्चेते तथाष्टकम्’ इत्युक्त्वा—‘मृते तु प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम् । न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दानक्रियां चरेत् ॥ षण्मासीयत्रिमासीयमृतः कुष्ठी कदाचन । यदि स्नेहाचरेद्दाहं यतिश्चान्द्रायणं चरेत्’ ॥ अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठ्यादिदाहे इदं प्रायश्चित्तम् ॥ अतएव कुनख्यादिवत्कुष्ठिनोऽपि द्वादशरात्रं शूलपाणिनोक्तम् । अतएवान्यदीय कुष्ठिनो मरणान्तमाशौचमुक्तम् ॥ कौर्म—‘क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च । यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम्’ ॥ महारोगास्तु—‘वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः ॥ अशांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकी-

र्तिताः’ इति ॥ रजस्वलायास्तु वृद्धशातातपः—‘रजस्वरजस्वलामृतौ लायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् । उर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां

तां शवधर्मेण दाहयेत्’ ॥ अतः प्रक्षाल्य काष्ठवद्गध्वा व्यहीनं दहेत् ॥ संकटे तु मदनरत्ने स्मृत्यन्तरे ‘उदकया सूतिका वापि मृता स्याद्यदि तां तदा ।



आशौचेत्वनतिक्रान्ते दाहयेदन्तरा यदि ॥ उद्धृतेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मन्त्रतः। आपोहिष्ठेति तिसृभिर्हीरण्यवर्णाश्वतसृभिः ॥ पवमानानुवाकेन यदंतीति च सप्तभिः । ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाथ ते द्विजाः ॥ स्नापयित्वान्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः । दाहादिकं ततः कुर्यात्प्रजापतिवचो यथा '॥ यज्ञपवित्रमापोऽस्मानिति मिताक्षरायाम् ॥ 'पञ्चाभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् । वस्त्रान्तरावृतं कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम्' ॥ गृह्यकारिकायां—' अन्तरिक्षमृता ये च वह्नावप्सु प्रमादतः ॥ उदक्या सूतिका नारी चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥ ततो यवपिष्टेनानुलिप्याष्टोत्तरशतं शूर्पादकैः संस्नाप्य भस्मगोमयमृत्कुशोदकपञ्चगव्यशुद्धोदकैरापोहिष्ठापावमानीभिः संस्नाप्यान्यवस्त्रे धृते दहेदिति भट्टाः ॥ अत्र प्रायश्चित्तमाह बौधायनः—' उदक्यासूतिका मृत्यौ चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ' इति ॥ सूतिकायास्तु मिताक्षरायाम्—' सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं क्षिपेत्ततः ॥ पुण्याद्रिरभिमन्त्र्याथो वाचाशुद्धिं लभेत्ततः ॥ तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥ अब्लिङ्गाभिर्मन्त्रिताभिर्वा मदेव्यभिरेव च ॥ अन्यैश्च वारुणैर्मन्त्रैः संस्नाप्य विधिना दहेत्' ॥ गृह्यकारिकायाम्—' सूतिका मरणे प्राप्ते सर्वोषध्यनुलेपनम् । असूतकी तु संस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत्' ॥ प्रायश्चित्ते विशेषस्तत्रैव—' सूतिका तु यदा साध्वी विस्त्राता मरणं गता । त्रिवर्षपूर्णपर्यन्तं शुद्ध्येत्कृच्छ्रेण सर्वदा' ॥ इदं चाद्यव्यहे ॥ 'सूतिका तु यदा नारी रजसा तु परिप्लुता । त्रियेत चेत्तु सा नारी द्विवर्षं कृच्छ्रमाचरेत्' ॥ इदं द्वितीयव्यहे ॥ सूतिका तु यदा साध्वी विस्त्राता मरणं गता । अब्दकृच्छ्रेण शुद्ध्येत् व्यासस्य वचनं यथा' ॥ इदं तृतीयव्यहे ॥ अत्राशक्तौ पक्षान्तरमुक्तं तत्रैव 'सूतिका तु यदा नारी विस्त्राता मरणं गता । त्रिषण्णवदिनादर्वागेकाब्देन विशुद्ध्यति' ॥ ऊर्ध्वं तु—' सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत् । मासमेकावधिं यावन्निभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति' ॥ गर्भिणीमृतौ तु मदनरत्ने शौनकः—' गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशुसंस्कारमेव च । प्रवक्ष्यामि समासेन शौनकोहं द्विजन्मनाम् ॥ गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमू-



त्रेण जलैः सह । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समास्थितः ॥ प्रेतं श्म-  
 शाने नीत्वाऽथोल्लिख्य सव्योदरं ततः । पुत्रमादाय जीवंश्चेत्स्तनं दत्वा सुता-  
 य तु ॥ यस्ते स्तनः शशय इत्यृचा ग्रामे निधाय च । उदरं चाव्रणं कुर्या-  
 त्पृषदाज्येन पूर्य च ॥ मृद्भस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । स्नाप्य चा-  
 च्छाद्य वासोभिः शवधर्मेण दाहयेत् ॥ तत्रैव षडशीतिमते गद्यानि 'गर्भि-  
 ण्यां मृतायांदक्षिणाशिरसं निधाय तस्या नाभिरन्ध्रात्सव्यमुदरं चतुरंगुलं-  
 हिरण्यगर्भः समवर्ततेति छित्त्वा गर्भश्चेदप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखनेत्स यदि जी-  
 वन् 'जीव त्वं मम पुत्रक' इत्युक्त्वा क्षेत्रियेत्वेतिपञ्चभिः स्नापयित्वा हिर-  
 ण्यमन्तर्धाय भूमौ निधाय व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य यस्ते स्तनःशशय इति स्तनं  
 पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत् ॥ गर्भच्छेदस्थले शतायुधायेति पञ्चाहुतीहुत्वा  
 प्राणाय स्वाहा पूष्णे स्वाहेत्यनुवाकाभ्यांव्याहृत्या वाज्यं हुत्वा भिन्नमुदरं  
 सूत्रेण संग्रथ्य घृतेनानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलान्गुणभूमिं सुवर्णं दद्यादथ य-  
 थोक्तेन कल्पनेन दहेत् ॥ बौधयनेन तु शतायुधायेति पञ्चहोमानन्तरं  
 प्रयासायायासाय वियासाय संयासायौद्यासाय शुचे शोकाय तप्यते तपत्यै  
 ब्रह्महत्यायै सर्वस्मै इति स्वाहान्तैराहुतयोप्यधिका उक्ताः ॥ गृह्यकारिकाया  
 म्—'यदा गर्भवती नारी सशल्यया संस्थिता भवेत् । कुक्षिं भित्त्वा ततः शल्यं  
 निर्हरेद्यदि जीवति ॥ प्रमीतं निखनेत्तं तु प्रायश्चित्तमतः परम् । सा त्रयस्त्रिं-  
 शताःकृच्छ्रैः शुद्ध्यते शल्यदोषतः ॥ स गर्भदहने तस्या वर्णजं वधपातकम् ।  
 प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुद्ध्यन्ति पापकारिणः ॥ दग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं  
 कृच्छ्रमाचरेत् । अथान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च ॥ सर्वपा-  
 क्षयकरं निरयोत्तारणाय च । अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव  
 च । जन्मान्तरे च । सौभाग्यधनपुत्रादिवृद्धिदम् ॥ देशकालौ  
 स्मृत्वाऽरुन्धतीसमाचरत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्वमनुष्यलोमसंरूपाब्दावच्छि-  
 न्नस्वर्गवासभर्तृसहितचतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वशुर-  
 कुलत्रयपूतत्वब्रह्मघ्नमित्रघ्नकृतघ्नपतिपूतत्वपत्यवियोगकामा भर्तृज्वलाक्षितारो-  
 हणं करिष्ये ॥ अनुगमने तु फलमुल्लिख्यान्वारोहणं करिष्ये इत्युक्त्वा हरिद्राकुङ्कु-



माञ्जनादियुतशूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात् ॥ मन्त्रस्तु—‘लक्ष्मीनारायणोदेवो बलसत्त्वगुणाश्रयः । गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वाणकैः परितोषितः ॥ सोपस्कराणि शूर्पाणि बाणकैः संयुतानि च । लक्ष्मी नारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम् ॥ अग्नेः समीपमागत्य पञ्चरत्नानि प्लवे । नीलाञ्जनं तथा बद्ध्वा मुखे मुक्ताफलं न्यसेत् ॥ ततोऽग्निप्रार्थनं कृत्वा मन्त्रेणानेन मिश्रितम् । स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णं सर्वगोत्रहुताशन ॥ सत्त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ ततोऽग्रा वाज्येनाग्नये तेजोधिपतये, विष्णवे सत्त्वाधिपतये, कालाय धर्माधिपतये, पृथिव्यै लोकाधिपतये, अद्भ्योरसाधिष्ठात्रीभ्यः, वायवे बलाधिपतये, आकाशाय सर्वाधिपतये, कालाय धर्माधिष्ठाने, कलाभ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः, ब्रह्मणे वेदाधिपतये, रुद्राय श्मशानाधिपतये च हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलां च संपूज्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत् ॥ त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् । त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥ अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभयपीडिता । सत्त्वं मार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम् ’ ॥ गौडास्तु—‘इमानारीरविधवा’ इति, ॐ इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो या याः सुशोभनाः । सह भर्तुः शरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ’ इति च विप्रः पठेदित्याहुः ॥ कातरान्तु—‘प्रेतोत्तरे सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति द्वाभ्यामुत्थापयेत् ’ ॥ एतन्महिमा मिताक्षरादौ ज्ञेयः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये स्कान्दे—‘अनुव्रजति भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ’ ॥ यस्त्वाङ्गिराः ‘या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ’ इति ॥ यच्च व्याघ्रपात्—‘न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता । न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी ’ इति, तत् पृथक्चितिपरम् ॥ पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः ’ इत्युशनसोक्तेः ॥ पृथक्चितिस्तु क्षत्रियादिपरा ॥ तद्विधिब्राह्मे—‘देशान्तरे मृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् । निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ ऋग्वेदवादात्साध्वी स्त्री न भवेदात्मघातिनी । त्र्यहाशौचे निवृत्ते तु



श्राद्धं प्राप्नोति शास्त्रवत् ' ॥ इमा नारीरविधवा इति ऋग्वेदवादः ॥ त्र्यहा-  
 शौचमन्वारोहणपरमिति स्मार्ताः ॥ निषेधवाक्यानि प्रायश्चित्तार्थं मृतेन  
 पतितेन वा सहमरणनिषेधपराणीत्यप्याहुः ॥ अस्थिदाहे पलाशदाहे वा न  
 पृथक्चित्तिदोषः ॥ अङ्गत्वेन स्थानापत्त्या वा शरीरतुल्यत्वात् ॥ यत्तु—  
 'ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तमादाय  
 मृता तु या' इति हारीतीयं, तत्पतितदाहादिनिषेधेन सह गमनस्य दूरतोपा-  
 स्तत्वादर्थवादमात्रमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ जन्मान्तरीयपापवता सह मरणेनो-  
 द्धार इति स्मार्तगौडाः ॥ शुद्धितत्वे व्यासः— 'दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी  
 चेत्कृतनिश्चया । न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत्' ॥ तत्रैव भवि-  
 ष्ये— 'तृतीयेहि उदकयाया मृते भर्तारि वै द्विजाः । तस्यानुमरणार्थाय स्था-  
 पयेदेकरात्रकम् ॥ एकां चितां समासाद्य भर्तारं यानुगच्छति । तद्भर्तुर्यः क्रि-  
 याकर्ता स तस्याश्च क्रियां चरेत् ॥ 'एतद्देशाहान्तम्' ॥ यश्चाग्निदाता प्रेतस्य  
 पिण्डं दद्यात्स एव हि' इति वायवीयोक्तेः ॥ आपस्तम्बः— 'चितिभ्रष्टा  
 तु या नारी मोहाद्विचलिता भवेत् ॥ प्राजापत्येन शुध्येत तस्माद्वै पापकर्मणः ॥  
 तथा— 'अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रियाम् । पिण्डदानक्रिया त  
 द्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्धिकं तथा ॥ अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक्पिण्डांस्तिलाञ्ज-  
 लीन् । पृथक्शिलेन कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा' ॥ अन्यैत्रागुक्तम् । इदं  
 गर्भिणीबालापत्यासूतिकारजस्वलाव्यभिचारिणीभिर्न कार्यम् ॥ 'स्वैरिणीनां  
 गर्भिणीनां पतितानां च योषिताम् । नास्ति पत्याग्निसंवेशः पतितौ हि तथा  
 उभौ' इति मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहोक्तेः ॥ मदनरत्ने बृहस्पतिः— 'बालसं-  
 वर्धनं मुक्ता बालापत्या न गच्छति । व्रतोपवासनियता रक्षेद्भर्तुं च गर्भिणी' ॥

१—प्रायश्चित्ती प्रायश्चित्तमकृत्वा मृतः, तस्य प्रायश्चित्तं दत्तौर्ध्वदैहिके सहगमनस्तावक-  
 मिदमिति वस्तुस्थितिः ॥ इति टीका ॥ २—एकादशाहादिभिन्नमित्यभिप्रायः । परे तु—यदि  
 मृतस्य भिन्नमातृका अनेके पुत्राः तदापितुः सर्वज्येष्ठ एवौर्ध्वदैहिकं कुर्यात्, अन्वारूढायास्तु  
 कनीयानपि साक्षात्पुत्र एव सर्वं कुर्यात् न तु सपत्नीपुत्रो ज्येष्ठ एव, तत्र तन्निरूपितपुत्र-  
 त्वाभावात् ॥ इति टीका ॥ ३—'नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् । एकएव  
 वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते' इति ॥



तृतीयपादे 'रजस्वला सूतिका च' इति पृथ्वीचन्द्रोदये गौडीयशुद्धितत्वे च पाठः ॥ तत्रैव बृहन्नारदीयेपि— 'बालापत्या च गर्भिण्यो ह्यदृष्टकृतवस्तथा । रजस्वला राजसुता नारोहन्ति चितां तु ताः' इति ॥ अत्र—'पतिव्रता सा संदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम्' इति भारतात् 'ऋग्वेदवादात्साध्वीस्त्री'ति ब्राह्मण्ये पतिव्रतानामेवाधिकारो न दुर्वृत्तानाम् ॥ यत्तु—'अवमत्य च या पूर्वं पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तन्ते याश्च सततं भर्तृणां प्रतिकूलतः ॥ तत्रानुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथाविधाः । कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात्सर्वाः पूता भवन्त्युत' इति भारतम्,—तत्तु कैमुतिकन्यायेन स्तावकमिति पृथ्वीचन्द्रः ॥ ब्राह्मण्या एकचित्तिरेव, न पृथक्चित्तिः ॥ क्षत्रियादीनां पृथगेका वेति कल्पतरुरन्नाकरमदनपारिजातादयः ॥ शुद्धिचिन्तामणौ चैवम् ॥ तत्रान्वारोहणे भर्तृशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा कृते त्रिरात्रमध्ये एव दश पिण्डाः ॥ सहगमने तु भर्तुराशौचतुल्यमाशौचं पिण्डदानं च ॥ 'अन्वितायाः प्रदातव्या दश पिण्डाश्च्यहेण तु । स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते' इति शुद्धितत्वे शूलपाणौ च पैठीनसिस्मृतेः ॥ संस्थितं पतिमालिङ्ग्य प्रविशेद्या हुताशनम् । तस्याः पिण्डादिकं देयं क्रमशः पतिपिण्डवत्' इति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेः ॥ अन्यत्प्रागुक्तम् ॥ यदा तु रजस्वलापि पत्नी मृते पत्यौ देशकालवशात्तदैवानुगच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते तत्र विधिः देवयाज्ञिकनिबन्धे—'यदा स्त्रियामुदक्यायां पतिः प्राणान्समुत्सृजेत् । द्रोणमेकं तण्डुलानामवहन्याद्विशुद्ध्यते । मुसलाघातैस्तदसृक् स्रवते योनिमण्डलात् । विरजस्का मन्यमाना स्वे चित्ते तदसृक्क्षायम् ॥ दृष्ट्वा शौचं प्रकुर्वीत पञ्चमृत्तिकया पृथक् । त्रिंशद्विंशतिर्दश च गवदत्वा त्वहः क्रमात् ॥ विप्राणां वचनाच्छुद्धा समारोहेऽहुताशनम् । नारीणां सरजस्काणामियं शुद्धिरुदाहता' ॥ अत्र श्राद्धादौ निर्णयः पूर्वमुक्तः ॥ ॥

अग्निप्रवेशाशक्तौ

इति श्रीभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धावन्त्यकर्मनिर्णयः ॥

अग्निप्रवेशाशक्तौ तु विष्णुः—'मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं च' इति ॥ ब्रह्मवैवर्ते—'सहानुगमनं शस्तं वैधव्यस्याथ पालनम्' ॥



यत्तु तत्रैव—‘कलौ नान्या गतिः स्त्रीणां सहानुगमनादते ’ इति, ब्रह्मचर्या-  
शक्यत्वपरम् ॥ तथा च मनुः—‘ब्रह्मचर्यं चरेद्वापि प्रविशेद्वा हुताशनम् ’ ।  
काशीखण्डेपि—‘पत्यौ मृतेपि या योषिद्वैधव्यं पालयेत्कचित् । सा पुनः  
प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते ॥ अनुयाति न भर्तारं यदि दैवात्कथंचन ।  
तत्रापि शीलं संरक्षेच्छीलभङ्गात्पतत्यधः ॥ तद्वैगुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति  
नान्यथा । तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च ’ ॥ ॥ अथ वि-  
धवाधर्माः ॥ मदनरत्ने स्कान्दे—‘विधवाकबरीबन्धो भ-  
विधवाधर्माः ॥ तृबन्धाय जायते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ॥

एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन । मासोपवासं वा कुर्याच्चा-  
न्द्रायणमथापि वा ॥ पर्यंकशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । नैवाङ्गोद-  
र्तनं कार्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ॥ गन्धद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तथा  
पुनः । तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुस्तिलकुशोदकैः ॥ तत्पितुस्तत्पितृश्चापि नाम-  
गोत्रादिपूर्वकम् ॥ इदमपुत्रापरमिति मदनपारिजातः ॥ ‘नाधिरोहेदनङ्गाहं प्राणैः  
कण्ठगतैरपि । कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विरुतं वसेत् ॥ वैशाखे कार्तिके माघे  
विशेषनियमं चरेत् ’ ॥ प्रचेताः—‘ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।  
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ’ ॥ श्राद्धादौ तु विशेषः प्रागुक्तः ॥  
यत्तु बौधायनः—‘संवत्सरं प्रेतपत्नी मधु मांसं विवर्जयेत् । अधः शयीत  
षण्मासानिति मौद्गल्यभाषितम् ’ इति तदसवर्णापरमित्यपराकः ॥ ॥ अथ सं-  
न्यासः ॥ याज्ञवल्क्यः—‘वनाद्गृहा द्वाकृत्वेषि सार्ववेदसद-  
संन्यासनिर्णयः ॥ क्षिणाम् । प्राजापत्यां तन्दते तानग्नीनारोप्य चात्मनि ॥ अधी-

तवेदो जयकृतपुत्रवानन्नदोगिमात् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनःकुर्यात्तु नान्य-  
था ’ ॥ एतदाश्रमसमुच्चयपक्षे ॥ जाबालश्रुतौ त्वन्येपि पक्षा उक्ताः—‘यदि चेतस्था  
ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा ॥ अथ पुनरवती वा स्नातको वास्नातको वो-  
त्सन्नाग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ’ इति ॥ अङ्गिराः—‘प्रव-  
१—तथाच संन्यासो ब्रह्मचर्यादिभिरेव ग्राह्य इति न नियमः, किंतु स्नातकविधुरादिभिर  
पीत्यर्थः ॥ उपनयनस्यापि नापेक्षा । शुक्वामदेवादि वत्सुकृतपाकातिशयसत्त्वेयदहरेवेति ।



जेद्वल्लचर्याद्वा प्रव्रजेद्वा गृहादपि । वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः' ॥  
 आतुरो मुमूर्षुः ॥ दुःखितश्चौरव्याघ्रादिभीतः ॥ भारते— 'आतुराणां च सं-  
 न्यासे न विधिर्नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत्' ॥ जा-  
 बालश्रुतावपि— 'यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्' इति ॥ अ-  
 त्र विप्रस्यैवाधिकारः 'ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति' इति जाबालश्रुतेः— 'आत्म-  
 न्यग्रीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्' इति मनूक्तेश्चेति विज्ञानेश्वरा-  
 दयः ॥ वृद्धयाज्ञवल्क्योपि— 'चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुति-  
 चोदिताः । क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः' इति ॥ माधव-  
 स्तु— 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद्गृहात्' इति कौर्मायुक्तेर्व-  
 र्णत्रयस्याप्यधिकारः । पूर्ववाक्यं तु काषायदण्डादिनिषेधार्थं । 'मुखजाना-  
 मयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् । राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः' । इति  
 बौधायनोक्तेरिति पक्षान्तरमाह ॥ तत्त्वं तु कुटीचकादिपरमेतदिति ॥ योपि  
 'संन्यासं पलपैतृकम्' इति कलौ निषेधः, सोपि त्रिदण्डादिपरः इत्युक्तं प्राक् ॥  
 सच संन्यासश्चतुर्थेत्याह हारीतः— 'कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः ।  
 चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात्स उत्तमः' ॥ आद्यः पुत्रादिना कुटीं कार-  
 यित्वा तत्र गृहे वा वसन् काषायवासाः शिखोपवीतत्रिदण्डवान् बन्धुषु  
 स्वगृहे वा भुञ्जान आत्मज्ञो भवेत् । एतदत्यन्ताशक्तपरम् ॥ द्वितीयस्तु ब-  
 न्धून् हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः स्यात् ॥ हंसस्तु पूर्वोक्तवे-  
 षोप्येकदण्डः ॥ 'एकं तु वैणवं दण्डं धारयेन्नित्यमादरात्' इति स्कान्दा-  
 त् ॥ विष्णुरपि— 'यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् । तावान्परि-  
 ग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः' ॥ चतुर्थोपि स्कान्दे— 'परहंसस्त्रिदण्डं च  
 रज्जुं गोवालनिर्मिताम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म पारित्यजेत्' ॥  
 अयमप्येकदण्ड एव ॥ ये तु शिखोपवीतादित्यागनिषेधाः, ते कुटीचकादिप-  
 राः ॥ यत्तु मेधातिथिः— 'यावन्न स्युस्त्रयो दण्डास्तावदेकेन वर्तयेत्' इति ॥  
 तदपि तत्परमेव ॥ यच्चात्रिः— 'चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः'  
 इति,— तद्वाग्दण्डादिपरम्, न यष्टिपरम् ॥ 'वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथै-



व च । यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति चोच्यते' इति मनूकेः ॥ तस्मात्पर-  
महंसस्यैकदण्ड एव ॥ सोप्यविदुषः ॥ विदुषस्तु सोपि नास्ति 'न दण्डं न शि-  
खां नाच्छादनं चरति परमहंसः' इति महोपनिषदुक्तेः ॥ 'ज्ञानमेवास्य  
दण्डः' इति वाक्यशेषाच्च ॥ यत्तु यमः—'काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानव-  
र्जितः । स याति नरकाच्चोरां महारौरवसंज्ञितान्' इति तद्वैराग्यं विना  
जीवनार्थसंन्यासपरम् 'एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः । नरके रौरवे  
घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते' इति स्मृतेः ॥ यच्चाश्वमेधिके—'एकदण्डी त्रिद-  
ण्डी वा शिखामुण्डित एव वा । कषायमात्रसारोपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर' इति त

स्यापि पूर्वोक्तव्यवस्था ज्ञेया ॥ अथ तद्विधिः ॥ बौधायनः—  
संन्यासविधिः 'कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योष्टकं पृथक् ॥ वापयि-

त्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः' ॥ सर्वाणीति स्वस्य नवश्राद्धषोड-  
शश्राद्धादि कृत्वेत्यर्थः ॥ स्मृत्यर्थसारेपि—'एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्रा-  
द्धानि षोडश । अग्निमान्पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत्स्वयम्' इति ॥ क्रात्या-  
यनः—'कृच्छ्रास्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी । आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं  
तेनासौ योग्यतां व्रजेत्' ॥ बौधायनः—'सदैव मार्षकं दिव्यं पित्र्यं मा-  
तृकमानुषे । भौतिकं चात्मनश्चांति अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत्' ॥ अत्र क्रममाह  
हेमाद्रौ शौनकः—'देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा देवताः ॥ आर्षे देवर्षि-  
ब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः, देवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षयो वा' ॥ मरीच्यादिऋषय इति संन्या-  
सपद्धतौ तच्चिन्त्यम् ॥ दिव्ये वसुरुद्रादित्याः ॥ मानुषे सनकसनंदनसनातनाः ॥  
भूतश्राद्धे पृथिव्यादिभूतानि चक्षुरादिकरणानि चतुर्विधो भूतग्रामश्चेति तिस्रः ॥  
पित्र्ये पित्रादित्रयो मातामहाश्च ॥ मातृके मात्रादयस्तिष्ठः ॥ आत्मश्राद्धे  
आत्मपितृपितामहा देवताः ॥ आत्मश्राद्धं परमात्मदैवत्यमिति संन्यासपद्धतौ  
तच्चिन्त्यम् ॥ सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणं ज्ञेयम् ॥ सर्वत्र पिण्डदानम् ॥  
युग्मा विप्राः ॥ दक्षक्रतू सत्यवसू वा विश्वेदेवौ ॥ अन्यन्नान्दीश्राद्धवदिति  
हेमाद्रिः ॥ स्मृत्यर्थसारे—'केशश्मश्रुलोमनखं वापयित्वोपकल्पयेत् । दण्डं  
जलं पवित्रं च शक्यं पात्रं कमण्डलुम्' ॥ आसनं कौपीनमाच्छादनं कन्थां



पादुके इति दश पञ्च वा ॥ एतच्च पूर्वैद्युर्नान्दीमुखं कृत्वा परेद्युः पुण्याहवाचनं  
 कृत्वा कार्यमिति शौनकः ॥ बौधायनः—‘त्रीन्दण्डानङ्गुलीस्थूलान्वैणवान्  
 मूर्धसंमितान् । एकादश नव द्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान् । वेष्टितान् कृष्ण-  
 गोवालरज्ज्वा तु चतुरङ्गुलान् । एको वा तादृशो दण्डो गोवालसदृशो भवे-  
 त् ॥ अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः’ । पृष्ठो दिवि विधानेनेत्यर्थः ॥  
 स्वाग्नावेवाग्निमान् कुर्यादपवर्गोक्तमादितः । आज्यं पयो दधीत्येतत्त्रिवृद्धा  
 जलमेव वा ॥ ॐभूरित्यादिना प्राश्य रात्रिं चोपवसेत्ततः । अथादित्यास्त  
 मयात्पूर्वमग्नीन्विहृत्य सः ॥ आज्यमग्नौ गार्हपत्ये संस्कृत्यैतेन च सुचा ॥  
 पूर्णयाहवनीये तु जुहुयात्प्रणवेन तत् । ब्रह्मान्वाधानमेतत्स्यादग्निहोत्रे हुने-  
 त्ततः ॥ संस्तीर्य गार्हपत्यस्य दर्भानुत्तस्तोत्र तु ॥ पात्राण्यासाद्य दर्भेषु ब्रह्मा-  
 यतन एव तु ॥ जागृयाद्रात्रिमेतां तु यावद्ब्राह्मो मुहूर्त्तकः । अग्निहोत्रं स्व-  
 काले तु हुत्वा प्रातस्तनं ततः ॥ इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्प्राजापत्यमथापि वा’ ॥  
 जावालश्रुतौ—‘तद्वैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वीत तदु तथा कुर्यादाग्नेयी-  
 मेव कुर्यात्पश्चात्त्रैधातवीयामेव कुर्यात् ’इत्युक्तम् ॥ तेनात्र विकल्पः ॥  
 अत्राहुः—‘त्रेताग्नेः प्राजापत्यातद्वाक्यशेषेष्तीनिति बहुत्वश्रुतेः ॥ ‘एकाग्ने-  
 स्त्वाग्नेयी’ इति ॥ अनाहिताग्नेरिष्टिस्थाने वैश्वानर आग्नेयो चरुरिति माध-  
 वः ॥ कात्यायनः—‘आत्मन्यग्नीन्समारोप्य : वेदिमध्यस्थितो हरिम् ।  
 ध्यात्वा हृदित्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषमीरयेत्’ ॥ कपिलः—‘विधिवत्प्रैषमुक्ताथ  
 त्रिरुपांशु त्रिरुच्चकैः । अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तःस्वाहेत्यथो भुवि ॥ निनीय  
 दण्डशिक्यादि गृहीत्वाथ बहिर्व्रजेत्’ ॥ बौधायनः—‘सखे मेत्यादिना दण्डं  
 येन देवाः पवित्रकम् । यदस्य पारे शिक्यं तु पात्रं व्याहृतिभिस्तथा ॥ युवा-  
 सुवासाःकौपीनं गृहीत्वा बान्धवांस्त्यजेत्’ ॥ अथ क्रमः ॥  
 संन्यासग्रह- तत्र संन्यासेधिकारसिद्ध्यर्थं स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्ड-  
 णक्रमः नानि साग्निः पार्वणान्यनग्निस्त्वेकोद्दिष्टविधिना कृत्वाऽनाश्रमी  
 चेत्कच्छ्रचतुष्टयम्, अन्यस्तु तप्तकच्छ्रं कृत्वोदगयने एकादश्यां द्वादश्यां वा  
 साग्निरमावास्यायां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां वा यथा पर्वणि प्राजापत्यं स्यात् ॥



तत्र देशकालौ स्मृत्वा परमहंसादिसंन्यासग्रहणं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशं  
 संपूज्य पुण्याहं वाचयित्वा मातृकापूजां वृद्धिश्राद्धं च कृत्वाऽस्तमयात्प्रागौ-  
 पासनं समिध्याहिताग्निस्तु गार्हपत्ये, विधुरोग्निहोत्री तु त्रिकाण्डमण्डनोक्त-  
 दिशा कुशपत्न्या सह पवमानेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वाधानं कुर्यात् ॥ ब्रह्मचारी  
 चेल्लौकिके विधुरश्चेद्याहतिभिः प्रणवेन चाग्निमाधायान्वग्निरुषसामित्यानीय पृ-  
 थोदिवीति निधाय तेनैव समिध्य तत्सवितुः, तां सवितुः, विश्वानि न इति  
 तिस्रः समिधोऽभ्याध्यात् ॥ एवमग्नौ सिद्धे कक्षोपस्थवर्ज्यं वपनं कृत्वा प-  
 योदधियुतमाज्यमपो वा ॐभूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यमिति प्रा-  
 श्याचम्य पुनरादाय ओम् भुवःसावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहीति द्वि-  
 तीयम्, ओम्स्वःसावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयादिति तृतीयम्, सम-  
 स्तयाचतुर्थं, ओम्भूर्भुवःस्वःसावित्रीं प्रविशामि । तत्सवितुः ० यात् इति ॥ सं-  
 न्यासपद्धतौ तु त्रिवृदसीति प्रथमं प्रवृदसीति द्वितीयं विवृदसीति तृतीयं प्रा-  
 श्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्य सावित्रीप्रवेश उक्तः ॥ तत आहवनीयं विहृत्य  
 ब्रह्माणमुपवेश्याज्यं संस्कृत्य चतुर्द्वादश वा गृहीत्वा समित्पूर्वामोस्वाहा पर-  
 मात्मन इदमिति हुत्वोपवसेत् ॥ ततः सायं होमं वैश्वदेवं च कृत्वा अग्रेरुद-  
 कुशानास्तीर्य दण्डादीनि दश पञ्च वासाय ब्रह्मासने कृष्णाजिनोपविष्टो रात्रौ  
 जागरं कृत्वा प्रातर्होमानन्तरं प्राजापत्यां वैश्वानरीं वा कृत्वा ऋत्विग्न्यः स-  
 र्वस्वं ब्रह्मणे च मधुपूर्णं तैजसपात्रं दत्वा दारुपात्राण्याहवनीये श्मश्रुन्मयानि  
 च जले क्षिपेत् ॥ कृष्णाजिनं त्वाददीत ॥ अनाहिताग्निस्तु वैश्वानरमा-  
 ग्रेयं वा चरुं हुत्वा पात्राण्यग्नौ क्षिप्त्वा भूर्भुवःस्वरित्यपः स्पृष्ट्वा तरत्समन्दी-  
 ति जप्त्वा विप्रान्संभोज्य पुण्याहं वाचयित्वा अत्र वा वपनं कृत्वा हैमरूप्य  
 कुशजलैः स्नात्वा पुरुषाय चरुं कृत्वा प्राणायस्वाहेति पञ्चाहुतीहुत्वा पुरुष-  
 सूक्तेन प्रत्यृचमाज्यचरुं च जुहुयात् ॥ अत्र विरजाहोमं केचिदाहुः ॥ यथो-  
 क्तं शिवगोतासु—जुहुयादिरजामन्त्रैः प्राणापानादिभिस्ततः । अनुवाका-  
 न्तमेकाग्रः समिदाज्यचरुन्पृथक् ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य याते अग्नेति मन्त्र-  
 तः । भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥ पापैर्विमुच्यते सत्यं



मुच्यते नात्र संशयः' ॥ तथा--'प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् ॥  
ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा' ॥ सर्वत्र लिङ्गोक्तदेवताभ्य इद-  
मिति त्यागः ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शु-  
ध्यन्तां ॥ ज्योति० त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोस्थीनि मे शुध्य-  
न्तां ॥ ज्योति० शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरुदरजंघशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्य-  
न्तां ॥ ज्योतिरहं० उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गललोहिताक्षदेहिदेहि ददापयिता  
मे शुध्यन्तां ॥ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं मे शुध्यतां ॥ ज्योतिरहं० श-  
ब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम् ॥ ज्योति० मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्य-  
न्तां ॥ ज्योतिः० अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिःआत्मा मे शुध्यन्ताम् ॥ क्षुधे स्वा-  
हा । क्षुत्पिपासाय स्वाहा । विविध्यै स्वाहा । ऋग्विधानाय स्वाहा । कषो-  
त्काय स्वाहा । क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठामलक्ष्मीर्नाशयाम्यहं । अभूतिमसमृद्धिं  
च सर्वान्निर्णुद मे पाप्मानं ॥ स्वाहा ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयान-  
न्दमयमात्मा मे शुध्यन्तां ॥ ज्योति० ॥ ततःस्विष्टकृदादि हुत्वा ब्रह्मणे हि  
रण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्वा समासिञ्चत्वित्युपतिष्ठेत् ॥ अत्र केचिदनग्रे  
सावित्रीप्रवेशं पूर्णाहुतिं चाहुः ॥ ततो याते अग्रे यज्ञिया तनूरिति तिसृभिरे-  
कैकं जिघ्रन्नात्मन्यग्नीन् समारोप्य गुरवे सर्वस्वं दत्वा ' यो ब्रह्माणं विद-  
धाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै श-  
रणमहं प्रपद्ये ' इत्युपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य पादावुपसंगृह्याधीहि भगवो  
ब्रह्मेति वदेत् ॥ ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा शङ्खं द्वादशप्रणवैरभिमन्त्र्य  
तेन शिष्यमभिषिच्य शन्नो मित्र इति शान्तिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्वा  
पुरुषसूक्तं जप्त्वा मम व्रते हृदयं ते दधामीति च जप्त्वोदङ्मुखः प्रणवार्थमनु-  
संदधदक्षिणे कर्णे प्रणवमुपदिश्य, तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य, अयमात्मा  
ब्रह्म तत्त्वमसि प्रज्ञानं ब्रह्मेत्याद्युपदिशेत् ॥ तदर्थं च वदेत् ॥ ततो नाम दद्या-  
त् ॥ ततः शिष्यस्तेनोपदिष्टो हरिं स्मरन्बुध्वाहुस्तिष्ठन् देवान्साक्षिणः कृत्वा  
ओम्भूर्भुवःस्वःसंन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशु त्रिरुच्चैश्चिरत्युच्चैश्चोक्त्वा, जलसमीपं  
गत्वा, स्नात्वा अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तःस्वाहेति त्रिरञ्जलिन् क्षिप्त्वा, युवा



सुवासा इति काषायं कौपीनं वासश्च परिधाय, सखा मे गोपायेति मुख्यवैणवं  
पालाशं बैल्वमौदुम्बरं वा दण्डं गृह्णीयात् ॥ अत्र पुत्रकामो गृहस्थः शङ्केन  
पुरुषसूक्तेन दण्डमभिषिच्य दद्यादित्याचारः ॥ ततः शिखामुत्पाद्य ॐभूः  
स्वाहेत्यग्नौ जले वा हुत्वा, तथैवोपवीतं हुत्वा, येन देवाः पवित्रेणेति जले पवित्रं  
यदस्य पार इति शिष्यं सावित्र्या कमण्डलुं सप्तव्याहृतिभिर्भोजनपात्रमिदं  
विष्णुरित्यासनं वृषीं वा गृहीत्वा ॥ ॐभूस्तर्पयामीति व्यस्तसमस्ताभिर्म-  
हर्नम इति तर्पयित्वा, ॐभूः स्वधो भुवः स्वधोस्वः स्वधोभूर्भुवः स्वर्महर्नमः स्व-  
धेतिपितृस्तर्पयित्वा, उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्हंसः शुचिषन्नमो मित्रस्येति स्नात्वा  
सुरभिर्मतीभिरापोहिष्ठेति हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिर्व्याहृतिभिश्च मार्जयित्वा  
अष्टोत्तरशतवारमघमर्षणं प्राणायामांश्च कृत्वा, ॐभूर्भुवः सुवरित्तिच पठि-  
त्वा, नमः सवित्र इति सूर्यं चोपस्थाय, पुनः स्नात्वा जंघे क्षालयित्वा, ॐमि-  
ति ब्रह्मोमितीदं सर्वमोमिति ब्रह्म वा एष ज्योतिर्य एष वेदो य एष तपति वेद्यमे-  
वैतद्य एष वेदो यदवनमस्तीति जपित्वा, अष्टसहस्रं गायत्रीं जपेदिति ॥ ॥

अथ यतिधर्माः ॥ प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पते इति जपित्वा दण्डादी-  
यतिधर्माः नि मृदं च निधाय मूत्रपुरीषयोर्गृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाऽऽचम्य  
पर्वद्वादशीवर्ज्यं प्रणवेन दन्तधावनं कृत्वा तेनैव मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्प-  
णवर्ज्यं स्नात्वा पुनर्जंघे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा मार्जनान्तं कृत्वा केशवादि-  
नमोन्तनामभिस्तर्पयित्वा, ॐभूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्प-  
यामीति तर्पयेत् ॥ ॐभूः स्वाहेति स्वाहाशब्दांतैः स्वधाशब्दांतैश्चैभिरेव पू-  
नस्तर्पयेदिति केचित् ॥ तत आचम्याञ्जलिना प्रणवेन जलमादाय व्या-  
हृतिभिरुदुत्य गायत्र्या त्रिःक्षिप्वा गायत्रीं जपेत् ॥ उदिते सूर्ये प्रणवेन व्या-  
हृतिभिर्वाद्यं त्रिदत्वा मित्रस्य चर्षणीत्याद्यैः पूर्वोक्तसौरीभिरिदं विष्णुस्त्रिदेवो  
ब्रह्मजज्ञानमिति चोत्थाय, सर्वभूतेभ्यो नम इति प्रदक्षिणमावर्तते ॥ ततो न-  
त्वा, आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयादिति त्रिर्ज-  
पेत् ॥ एवं त्रिकालं विष्णुपूजां ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात् ॥ अथ  
भिक्षा भिक्षा ॥ 'विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । काले-



उपराणहे भूयिष्ठे नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ' इत्युक्तकाले ॥ उद्वयमिति चत-  
 सभिरादित्यमुपस्थाय, तेनैक्यं ध्यात्वा ॥ आकृष्णेनेति प्रदक्षिणं कृत्वा  
 'येते पन्थानः' इति जप्त्वा 'योसौ विष्णुवाक्य आदित्ये पुरुषो  
 न्तर्हृदि स्थितः । सोहं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम् ॥ त्रिद-  
 ण्डं दक्षिणे त्वङ्गे ततः संधाय बाहुना ॥ पात्रं वामकरे क्षिप्त्वा श्लेषयेदक्षि-  
 णेन तु ' इति बौधायनोक्तदिशा त्रीन्पञ्च सप्त वा गृहान्गत्वा भवत्पूर्वा भि-  
 क्षां याचित्वा, पूर्णमसि पूर्णं मे भूया इत्यागत्य शुचिरन्नं प्रोक्ष्य, ॐ  
 भूःस्वधा नम इत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः सूर्यादिदेवभ्यो भूतेभ्यश्च  
 भूमौ क्षिप्त्वा भुक्त्वा प्रणवेन षोडशप्राणायामान्कुर्यादिति संक्षेपः ॥ गौतम-  
 व्याख्यायां भृगुः—'यतिहस्ते जलं दत्त्वा भैक्ष्यं दद्यात्पुनर्जलम् । भैक्ष्यं पर्व-  
 तमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम्' ॥ अत्र सर्वत्र मूलं माधवापरार्कमदनर-  
 त्नस्मृत्यर्थसारादौ ज्ञेयम् ॥ कण्वः—'एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पञ्चरा-  
 त्रकम् । वर्षाभ्योन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत्' ॥ जाबालश्रुतौ—  
 'शून्यागारे देवगृहतृणकुटीवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाग्रिहोत्रगृहनदीपुलिन  
 गिरिकुहरनिर्झरस्थण्डिलेष्वनिकेतनः' इति ॥ मात्स्ये—'अष्टौ मासान्वि-  
 हारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम् । एकत्र चतुरो मासान् वार्षिकान्निवसेत्पुनः ॥  
 अविमुक्तप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते' ॥ अत्रिः—'भिक्षाटनं जपं स्नानं  
 ध्यानं शौचं सुरार्चनम् । कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत् ॥ मञ्चकं  
 शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च । दिवास्वापं च यानं च यतीनां पतनानि  
 षट् ॥ आसनं पात्रलोभंश्च संचयः शिष्यसंग्रहः । दिवास्वापो वृथाजल्पो यते  
 बन्धकराणि षट्' ॥ दक्षः—'नाध्येतव्यं न वस्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन । य-  
 तिपात्राणि मृद्वेणुदार्ढ्याम्बुमयानि च' ॥ मदनरत्ने अत्रिः—'पित्रर्थं क-  
 ल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात् । वर्जयेत्तादृशीं भिक्षां परवाधाकर्त्री तथा' ॥  
 बृहस्पतिः—'न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः । नचाध्ययन-  
 शीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्' ॥ एतद्वेदार्थभिन्नपरम् ॥ अत्रिः—'स्नानं  
 सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो बलिस्तुतिः । भिक्षाटनं जपः संध्या त्यागः क-



मफलस्य च '॥ एते यतिधर्मा इत्यर्थः ॥ अन्येपि माधवमिताक्षरादौ ज्ञेयाः ॥

यतिधर्मसमुच्चये— 'न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते । पितृमातृक्षयं

श्रुत्वा स्नात्वा शुद्ध्यति साम्बरः ' ॥ अथ यतिसंस्कारः ॥

यतिसंस्कारः

“संन्यसेद्ब्रह्मचर्याद्वा संन्यसेच्च गृहादपि ॥ वनाद्वा प्रव्रजेद्वि-

द्वानातुरो वाथ दुःखितः । आतुराणां च संन्यासे न विधिनैव च क्रिया । प्रेष-

मात्रं च संन्यास आतुराणां विधीयते । उत्पन्ने संकटे घोरे चौरव्याघ्रादिगो-

चरे । भवभीतस्य संन्यासमंगिरा मनुरब्रवीत् । यथातुरः स्यान्मनसा वाचा

वा संन्यसेद्विज ” । इति जाबालश्रुतिः । “आतुराणां च संन्यासे न विधि-

नैव च क्रिया । प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत् । संन्यस्तोहमिति

ब्रूयात्सवनेषु त्रिषु क्रमात् । त्रिवारं चे त्रिलोकात्मा शुभाशुभमुधादवे । य-

त्किंचिद्वाधकं कर्म कृतमज्ञानतो मया । प्रमादालस्यदोषाद्यत्तत्तत्संत्यक्तवान-

हम् । एवं संत्यज्य भूतेभ्यो दद्यादभयदक्षिणाम् । पद्भ्यां कराभ्यां विहर-

न्नाहं वाक्कायमानसैः ॥ करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः संतु निर्भयाः ” ।

इत्यातुरस्य स्वशक्त्याऽवस्थानुरूपमंगलभूतप्रेषोच्चारणादियथाशास्त्रं मनसा वा-

चा वा कुर्वतस्तावतैव कृच्छ्रचांद्रायणनांदीश्राद्धनखकृतनादीनिकृत्वासंन्यास-

पूर्तिरिति प्रतीयते । अङ्गिराः । “षष्टिः कुलान्यतीतानि षष्टीनामधिकानि च ।

कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ” ॥ विष्णुः । “एकरात्रोषि-

तस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते ॥ न सा शक्या गृहस्थेन आतुरोपि च संन्यसेत् ।

संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कंठगतैरपि । न तत्क्रतुशतैः पुण्यं प्राप्तुं शक्नोति

मानवः ” ॥ मनुः । “यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजो मया

लोका भवंति ब्रह्मवादिनः ” ॥ अथ सौत्यातुरस्य विलंबितस्य “प्रेषमात्रं समुच्चा-

र्यं संन्यासं तत्र पूजयेत् ” इति ॥ अत्र मात्रत्वोपसंभवादंगकलापव्यापकत्वेनाप्यु-

पपत्तौ कर्तुर्यागत्यागकलापव्यावृत्तस्यैकत्वानुपपत्तेः कृच्छ्रनांदीश्राद्धविरजाहो-

मादिकर्तुमशक्तस्यातुरस्य विद्यमानाग्नेरिष्टदेवतायै पूर्णाहुतिं हुत्वा असौ स्वर्गा-

यलोकाय स्वाहेति आहवनीये दारुमयानि पात्राणि प्रज्वाल्य मृण्मयान्यप्सु



प्राक्षिप्य समानि च मरुत इत्युपस्थाय यातेअग्ने इत्यनेन हस्तंप्रताप्य आत्मन्य  
 ग्निं समारोप्य सर्वप्रायश्चित्तपूर्वकं सप्तपंचकेशान् विसृज्य वापायित्वा यथा  
 विधि स्नात्वा आतुरसंन्यासं कुर्यात् ॥ अथातुरसंन्यासविधिः ॥ अपां  
 समीपे गत्वातिथ्याःस्मरणपूर्वकं स्नानसंध्यावंदनादि कृत्वा देशकालौसंकीर्त्य  
 ममाशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानंदप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये चपरमहंससंन्यासं  
 करोमीति संकल्पयेत् । तत्र प्रधानानि । प्रेषोच्चारणप्रणवोपदेशमहावाक्यानि ।  
 ततः संन्यासोचितं क्षौरं कृत्वा पूर्ववत्सप्तपंचकेशान् विसृज्य स्नात्वाचम्य  
 पात्रेण तोयमादाय उपस्पृश्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति।एष वोग्नेःयोनिर्यः  
 प्राणंगच्छस्वाहा । इति प्रथमाहुतिः । आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं  
 देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा । इति द्वितीया । ततो हुतशेषं आशुः शिशान  
 इत्यनुवाकेनाभिमंत्र्य पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणा मया त्यक्ता स्वाहेति  
 प्रथमं पिबेत् । ॐ ॐ भूर्भुवःस्वरोम्मया संन्यस्तं स्वाहेति द्वितीयां पिबेत् ।  
 अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति तृतीयां पिबेत् । ततो न्यतोयमंजलिपूर्णमा-  
 दाय प्रागादिदिक्षु प्रत्येकं निनयेत्। ॐभूः सावित्रीप्रवेशयामि ॐभुवःसावित्रीं  
 प्रवेशयामि ॐस्वःसावित्रीं प्रवेशयामि ॐभूर्भुवःस्वःसावित्रीं प्रवेशयामि इति  
 सावित्रीप्रवेशं कृत्वा अथोद्धवाहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा ॐ भूःसंन्यस्तं मया  
 ॐभुवःसंन्यस्तं मया ॐ स्वःसंन्यस्तं मया ॐभूर्भुवःस्वःसंन्यस्तंमयेति प्रेषो-  
 चारं ब्रूयात् ॥ एवं मंद्रमध्योच्चैस्त्रिरुक्त्वा तूष्णींशिखांनिकृत्यस्नात्वाचम्ययज्ञो  
 पवीतमुद्धृत्यांजलिना गृहीत्वा भूःस्वाहेति अप्सु हुत्वादिगंबरोभूत्वा पुत्रेषणा  
 वित्तेषणालोकेषणातो मुक्तोहमिति ब्रूयात् । अत ऊर्ध्वं न पुत्रगृहं गच्छेत् ।  
 मृते च पुरुषसूक्तेन विष्णुबुद्ध्याभिषिञ्चति संस्कारमेव कुर्यात् । एवं विर-  
 क्तस्यातुरस्य स्वस्थस्य संन्यासविहिताङ्गेषु यन्मन्त्रानुष्ठाने शक्तिर्यथाविधि  
 तदनुष्ठानपूर्वकं प्रधानं प्रेषोच्चारणमात्रं मत्वा संन्यासयुक्तिरिति श्रवणात् ।  
 तदुत्तरकालमेव मृतस्योपदेशविकलस्यापि खननसंस्कारमेव कुर्यात् ॥ जीव-  
 तश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च नित्यक्रियाविधिवद्विसृज्य दण्डकाषायवस्त्रादीनि



वादाय यतिधर्मानिवानुतिष्ठेत् । सद्गुरुमन्विष्य तदुपदेशं गृहीत्वा स्वधर्मनिष्ठो भवेत् । अयमर्थो विद्वत्संमतः प्रयोक्तव्यः । इत्यातुरसंन्यासः । स्मृत्यर्थ-  
 सारे—‘सर्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च ॥ न तस्य दहनं कार्यन्नाशौचं  
 नोदकक्रिया ’ ॥ तथा—‘कुटीचकं तु प्रदहेत्पूरयेत्तु बहूदकम् । हंसो जले तु  
 निक्षेप्यः परहंसं प्रपूरयेत् ’ ॥ पालाशमूले नदीतीरेऽन्यत्र वा गन्धपुष्पालंकृतं शवं  
 वाद्यघोषेण नीत्वा दण्डमात्रं व्याहृतिभिः स्नात्वा सप्तव्याहृतिभिस्त्रिःप्रोक्ष्य दर्भा  
 नांस्तीर्थं नवघटे पञ्चरत्नोदकं क्षिप्वा नारायणः परंब्रह्मेत्यभिमन्त्र्य, तेनैव  
 संस्नाप्याष्टाक्षरेण वस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपादीन् दत्वा, विष्णो हव्यं रक्षस्वेति शवं  
 गर्ते निधाय ‘इदं विष्णुः’ इति दक्षिणहस्ते दण्डं ‘यदस्य पारे’ इति सव्ये शि-  
 क्यं ‘येन देवाः पवित्रेण’ इति मुखे जलपवित्रं सावित्र्योदरे पात्रं ‘भूमिः श्वभे’  
 ति गुह्ये कमण्डलुं निधाय ‘चित्तिः स्रुक्’ इति दशहोत्राभिर्मन्त्रयेदिति विश्वा-  
 दर्शटीकायां स्मृत्यर्थसारे च ॥ बृहच्छौनकरस्तु—‘यतिं पुरुषसूक्तेन स्नाप-  
 यित्वावटं ततः । प्रणवेनाष्टवारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति  
 यजुषा प्रणवेन च । गर्ते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे ॥ इति मन्त्रेण  
 दंडं तु दद्यादक्षिणहस्तके । मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शङ्खेन भेदयेत् ॥  
 गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत् । सृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यग्गर्तं प्रपूरयेत्’  
 इति ॥ कुटीचकस्य तु दाहः कार्यः ॥ यथा सर्वं प्राग्वत्कृत्वाऽग्निं प्रज्वाल्य  
 साग्नेर्दक्षिणकरे उपावरोहेत्यवरोह्य निर्मथ्य वा गर्ते चितिं कृत्वाग्निनाग्निः  
 समिध्यते इत्यग्निं दत्वा सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत् ॥ ततोऽष्टशतं प्रणवं नारायणः  
 परंब्रह्मेति जप्त्वा सशिरःप्रणवव्याहृत्या गायत्र्या तदस्यास्थीनि तीर्थे  
 क्षिप्त्वा स्नानाच्छुचिः ॥ नास्यान्यदौर्ध्वदोहिकम् ॥ ‘त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं  
 नैव जायते’ इति उशनसः स्मृतेः ॥ ‘एकादशोहि पार्वणन्तदपि त्रिद-  
 ण्डिनः ॥ हंसपरमहंसादीनां पार्वणादि किमपि न कार्यम्’ इति शूलपाणिः  
 श्राद्धचिंतामणौ दत्तात्रेयः ‘एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ॥ न  
 कुर्याद्दार्षिकादन्यद्ब्रह्मभूताय भिक्षवे’ ॥ प्रेतक्रिययैकोद्दिष्टनिषेधे सिद्धे पुनस्त



द्व्यहणमाब्दिकपरम् ॥ तेन तत्पार्वणमेवं त्रिदण्डिनां द्वादशे नारायणबलिः ॥  
तद्विधिरन्यश्च विशेषः प्रागुक्तः ॥ इत्यलं बहुना ॥

एवं निरूपितमिदं गहनं तु धर्मतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् ।  
तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोऽस्मि तेषु ॥ १ ॥  
मया सदासदा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाध्यवसितुमपि  
स्वल्पमतिना । तदेवं यत्किंचिद्भूतमिह विख्यातमहिमा प्रतापोयं सर्वो विक-  
सति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्रगणनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्त-  
रेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता । योत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमु-  
नास्तु स कृती बुधरामकृष्णः ॥ ३ ॥ श्रीभट्टरामेश्वरसूरिसूनुश्रीभट्टनारायणसू-  
रिसूनोः ॥ श्रीरामकृष्णस्य सुतः कृतीमं व्यधान्निबन्धं कमलाकराख्यः ॥ ४ ॥  
नानानिर्णयवत्त्वान्निर्णयसिन्धुः प्रोच्यतां विबुधाः । निर्णयसरोजवत्त्वान्नि-  
र्णयकमलाकरोप्यस्तु ॥ ५ ॥ वसुक्रतुक्रतुभूमिते १५६८ गतेब्देनरपातिविक्र-  
मतोऽथ याति रौद्रे । तपसि शिवतिथौ समापितोऽयं रघुपतिपादसरोरुहेऽर्पितश्च  
॥ ६ ॥ जगति सकलविद्यासिन्धुमुष्टिधयानां परभणितिपरीक्षा युज्यते सज्ज-  
नानाम् । तदिह मम निबन्धे दूषणं भूषणं वा यदि भवति विदग्धैस्सद्बुद्धयवश्यं  
विमृश्यम् ॥ इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणश्रीमद्रामेश्वरभट्टसूरिसूनु  
नारायणभट्टसुताविद्वन्मुकुटहोराङ्कुरश्रीरामकृष्णभट्टात्मजादिनकरभट्टानुजकम-  
लाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥

इदं पुस्तकं मुंबय्यां श्रीकृष्णदासतनयक्षेमराजश्रेष्ठिना “ श्रीवेङ्कटेश्वर ”  
नामकस्वकीये मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । सं० १९५५.



## विक्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची ।

| नाम.                                                                                                     | की. रु. आ. |
|----------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------|
| मनुस्मृति सटीक कुल्लूकभट्टकृत संस्कृत टीकासहित जिल्दबन्धी                                                | २-०        |
| मनुस्मृति सान्वय भाषाटीका ग्लेज ... ..                                                                   | २-८        |
| तथा रफू ... ..                                                                                           | २-०        |
| व्रतराजअतिउत्तमटिप्पणीसहितजिस्मेंवर्षभरकीसबतिथियोंके-                                                    |            |
| व्रतउद्यापननिर्णयकथाहैं ... ..                                                                           | ४-०        |
| व्रतराजटिप्पणीसहित रफू ... ..                                                                            | ३-०        |
| निर्णयामृत ( अनेक प्राचीन ग्रंथोंसे शुद्ध हुवाहै ) ... ..                                                | १-१२       |
| याज्ञवल्क्यस्मृति मिताक्षरा पं० मिहिरचंदकृत पद, जोजना,<br>भावार्थ और तात्पर्यार्थ और टिप्पणी तथा भाषाटी- |            |
| कासहित अत्युत्तम... ..                                                                                   | ५-०        |
| धर्मसिंधु ❀ ... ..                                                                                       | ३-०        |
| अष्टादशस्मृति उत्तम शुद्ध मोटा टैप ... ..                                                                | २-०        |
| विवादार्णवसेतु ( धर्मशास्त्र व न्याय राजनीति ) ... ..                                                    | २-०        |
| पाराशरीस्मृतिका उत्तरखंड ... ..                                                                          | ०-४        |
| शांतिमयूख ❀ ... ..                                                                                       | १-०        |
| प्रपंचसारविवेक ( इस जन्ममें मनुष्यका अवश्य कर्तव्य कर्म ... ..                                           | १-०        |
| दयानन्दतिमिरभास्कर भाषाटीका पं. ज्वालाप्रसादजी कृत                                                       |            |
| ( दयानन्दमत खण्डन ) ... ..                                                                               | ३-०        |
| पाराशरीस्मृति ( छोटी ) ... ..                                                                            | ०-३        |
| क्षौरनिर्णयसटीक. ... ..                                                                                  | ०-४        |
| क्षौरनिर्णय मूल ... ..                                                                                   | ०-१        |
| तिथिनिर्णय ... ..                                                                                        | ०-२        |



( २ )

## जाहिरात ।

| नाम.                                                                             | की. रु. आ. |
|----------------------------------------------------------------------------------|------------|
| प्रायश्चित्तदुशेखर ... ..                                                        | ०-१०       |
| धर्मराजका लेखा ... ..                                                            | ०-८        |
| आशौचनिर्णय. ... ..                                                               | ०-२        |
| भवाब्धिसेतु भाषाटीकासहित ... ..                                                  | ०-१२       |
| वर्णविवेकचंद्रिका. ... ..                                                        | ०-२        |
| स्मृत्यर्थसागर माध्वसंप्रदायी धर्मशास्त्र वैष्णवोंको परमोपयोगी...                | १-४        |
| शुद्धिविवेक (सूतकोंसे शुद्धीका निर्णय ) ... ..                                   | ०-८        |
| दानचंद्रिका ... ..                                                               | ०-१०       |
| शांतिसार ( सब प्रकारकी शांति हैं )... ..                                         | १-४        |
| आचारार्क ... ..                                                                  | ०-१२       |
| आचारादर्श ... ..                                                                 | ०-१२       |
| श्राद्धविवेक ( इसमें सब श्राद्धोंकी विधिहै ) ... ..                              | ०-१२       |
| प्रतिष्ठामयूख ... ..                                                             | ०-६        |
| आशौच निर्णय भाषाटीका ... ..                                                      | ०-४        |
| सनातनधर्मदीपक भाषा ( धर्मशास्त्रानुकूल उदाहरणों समेत<br>सनातन धर्ममण्डन ) ... .. | ०-८        |

संपूर्ण पुस्तकोंकी 'सूची' अलगहै ( डाकभाड़ा ) आघआनेका  
टिकट भेजनेसे मुफ्त भेजीजातीहै ।

पुस्तकोंके मिलनेका-पता-

खेमराज श्रीकृष्णदास,  
“श्रीविष्णुशेखर” छापाखाना-मुंबई.







This PDF you are browsing is in a series of several scanned documents containing the personal collection of Jagannath Bhattarai ji from Kathmandu, Nepal.

CV:

Jagannath Bhattarai

Date of Birth: 31 December 1960

Place of Birth: Kathmandu, Nepal

Address: Nagarjun (Ramkot), Kathmandu

Educational Qualifications

Bachelor of Science (B.Sc.) – Major in Biology

Master's Degree – Sociology & Anthropology

Shastri (Ongoing) – Balmiki Vidyapeeth

Professional Experience

Government School Teacher (Madhyamik Pratham Shreni)

Taught at Secondary Level (Madhyamik)

Taught at Higher Secondary Level (Uchcha Madhyamik)

Served as Head Teacher

Led academic and administrative development

Strengthened institutional performance and student outcomes

Areas of Interest

Sanskrit Vyakaran

Spiritual & Philosophical Studies

Educational Leadership

Digitization by eGangotri Trust

Funding by MIDF, New Delhi